

विवेकानन्द साहित्य

जन्मशती संस्करण

प्रथम खंड

केन्द्रीय सरकार तथा उत्तर प्रदेश, बिहार एवं मध्य प्रदेश सरकारों की उदारतापूर्ण सहायता से यह कष्टसाध्य एवं महंगा प्रयास सफल हो पाया, इन सरकारों ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए विभिन्न परिमाणों में आर्थिक सहायता दी, अतः इसके लिए हम सभी सरकारों के प्रति आभारी हैं।



अद्वैत आश्रम
५ डिही एण्टाली रोड
कलकत्ता १४

प्रकाशक

स्वामी गम्भीरानन्द

ग्रन्थालय अद्वैत आश्रम

मायावती अस्मोडा हिमाचल

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण

5 M 3 C—१९९३

मूल्य ₹ १५०

मुद्रक

मन्मोहन मुद्रणालय

प्रयाग भारत

प्रकाशकीय

भारत एव विदेशो मे अपनी साधुता, स्वदेश-भक्ति, सम्पूर्ण मानव-जाति के आध्यात्मिक उत्थान एव प्राच्य तथा पाश्चात्य के मध्य भ्रातृभाव के सार्वभौमिक सदेश के लिए सुपरिचित स्वामी विवेकानन्द को किसी भूमिका की आवश्यकता नहीं है। फिर भी भारत के हिन्दी भाषा-भाषियों को अब तक यह अवसर न मिल पाया था कि वे उनकी सम्पूर्ण कृतियों को हिन्दी भाषा मे उपलब्ध कर अध्ययन कर सकें, जो स्वच्छ एव आकर्षक ग्रथो मे सुपाठ्य एव विश्वसनीय अनुवाद के माध्यम से प्रस्तुत की गयी हो।

अद्वैत आश्रम, मायावती, अल्मोडा बहुत दिनों से इन बहुमूल्य कृतियों को हिन्दी मे प्रकाशित करने का विचार कर रहा था। इसी उद्देश्य से इस आश्रम ने स्वामी जी की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तको का अनुवाद अपनी हिन्दी पत्रिका 'समन्वय' मे प्रकाशित करना शुरू किया था। यह पत्रिका अब बंद हो गयी है। आश्रम को इस कार्य मे सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से काफी सहायता मिली थी। चूँकि समुचित आर्थिक सहायता नहीं मिल सकी थी, इसलिए कुछ समय बाद इस प्रयास को त्याग देना पडा। बाद मे रामकृष्ण आश्रम, नागपुर ने इस कार्य को पुन आरम्भ किया, लेकिन वह आश्रम भी इसे पूर्ण न कर सका।

साथ ही समयान्तर के साथ पुराने अनुवादो मे सागोपाग सशोधन-सम्पादन की आवश्यकता थी, जो प्रस्तुत ग्रथो मे उपलब्ध है। यही तक नहीं, किसी किसी स्थल पर इन अनुवादो को योग्य विद्वानो द्वारा पर्याप्त नया रूप दिया गया है, अत वर्तमान कृतियाँ केवल पुराने सस्करण की पुनरावृत्ति मात्र नहीं हैं, यद्यपि हमे इनसे काफी सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त अब तक हिन्दी मे अप्रकाशित स्वामी जी के अनेक भाषण, लेख आदि का अनुवाद भी इसमे सयोजित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द की जन्मशती (१९६३-६४), जो सम्पूर्ण भारत एव विदेशो मे मनायी जा रही है, के अवसर पर इन ग्रथो को हम दस खण्डो मे जनता के सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं। आनन्द की वात है कि भारत के अन्य क्षेत्रो मे भी, जैसे बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र, तमिलनाड, मैसूर, केरल, महाराष्ट्र एव गुजरात मे, इन ग्रथो को प्रान्तीय भाषाओ मे प्रकाशित किया जा रहा है।

केन्द्रीय सरकार तथा उत्तर प्रदेश विहार एवं मध्य प्रदेश सरकारों की उदात्तापूर्ण सहायता से यह कष्टसाध्य एवं महँगा प्रयास सफल हो पाया इन सरकारों ने इस सत्य की पुष्टि के लिए विभिन्न परिभाषों में आर्थिक सहायता की पर धन का अधिकार बँटत आभन को ही बहन करता पड़ा है। सरकारी सहायता के कारण ही इन धनों का इतने सस्ते मूल्य पर किराने सम्भव हो पाया। अतः इस आर्थिक सहायता के लिए हम सभी सरकारों के प्रति आभारी हैं।

अनुवाद के लिए हमें निम्नांकित विद्वानों का सहयोग मिला है जिनके प्रति हम हार्दिक धन्यवाद प्रकट करते हैं

पंडित सुमित्रानन्दन पन्त डॉ प्रभाकर माधवे श्री फ़कीरख़तान 'रेनु' श्री भगवान् श्री सोडा डॉ नर्मदेश्वर प्रसाद श्री आत्माराम झाह डॉ नित्यानन्द मिश्र डॉ मदनमोहन सहाय श्री रामचन्द्र राव श्री संभारदन पाण्डे श्री रामचन्द्र तिवारी श्री एम एस द्विवेदी श्री ब्रजनाथ सिंह श्री ब्रजमोहन अवस्थी श्री ब्रजनाथ सिंह इत्यादि।

डॉ एनुबस श्री आत्माराम झाह तथा अन्य विद्वानों के प्रति हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने सम्पादनार्थि कार्य में हमें सहायता दी है।

हम पंडित सुमित्रानन्दन पन्त के प्रति विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने इस कार्य में यहूरी दिव्यवस्ती लौ एवं स्वामी जी के कई पक्षों का अनुवाद किया जो ब्रह्म खण्ड में प्रकाशित हैं। 'निराळा' जी द्वारा अनुचित पक्ष नवम खण्ड में प्रकाशित हैं। कुमारी निर्मला बर्मा ने अनुक्रमिका तैयार करते एवं श्री श्रीराम बर्मा तथा श्री कस्तूर सिंह ने प्रूफ-संशोधन तथा अन्य प्रकार से सहयोग दिये हैं। इसके अतिरिक्त हम अनेक मित्रों के भी कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस कार्य में हमें विभिन्न रूपों से सहायता दी।

सम्प्रेषण मन्त्रालय के प्रति हम उसके निपुण कार्य एवं पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हैं।

अगस्त १९६३

प्रकाशक

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	छ
स्वामी विवेकानन्द	ण
व्याख्यानमाला : विद्व-धर्म-महासभा	
धर्म-महासभा स्वागत का उत्तर	३
हमारे मतभेद का कारण	५
हिन्दू धर्म पर निबन्ध	७
धर्म भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं	२२
बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की निष्पत्ति	२३
अंतिम अधिवेशन में भाषण	२६
राजयोग	
भूमिका	३१
अवतरणिका	३५
साधना के प्राथमिक सोपान	४८
प्राण	५८
प्राण का आध्यात्मिक रूप	७२
आध्यात्मिक प्राण का समय	७८
प्रत्याहार और धारणा	८३
ध्यान और समाधि	९१
संक्षेप में राजयोग	१०१
पातञ्जल योगसूत्र	
उपक्रमणिका	१०९
समाधिपाद	११५
साधनपाद	१५१
विभूतिपाद	१८५
कौटल्यपाद	२०३
परिशिष्ट	२१९

केन्द्रीय सरकार तथा उत्तर प्रदेश बिहार एवं मध्य प्रदेश सरकारों की उदात्तापूर्वक सहायता से यह कष्टसाध्य एवं महंगा प्रयास सफल हो पाया इन सरकारों ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए विभिन्न परिमाणों में आर्थिक सहायता दी परन्तु मध्य का अधिकार्य मईत आभम को ही बहन करना पड़ा है। सरकारी सहायता के कारण ही इन प्रर्थों का इतने सस्ते मूल्य पर बितरण सम्भव हो पाया। अब इस आर्थिक सहायता के लिए हम सभी सरकारों के प्रति आभारी हैं।

अनुबाद के लिए हमें निम्नांकित विद्वानों का सहयोग मिला है जिनके प्रति हम आर्थिक मन्त्रबाद प्रकट करते हैं

पंडित सुमित्रानन्दन पन्त डॉ प्रभाकर माधवे श्री कबीरवारभाब 'रेणु श्री मन्वान् जी जोसा डॉ नर्मदेस्वर प्रसाद श्री आत्माराम साहू, डॉ नित्यानन्द निम डॉ मदनमोहन सहाय श्री रामचन्द्र राव श्री पनारत्न पाखे श्री रामचन्द्र तिवारी श्री एम एल टिवेदी श्री पूषणाप सिंह श्री जममोहन बबस्वी श्री ब्रजलाल सिंह इत्यादि।

डॉ रघुबंस श्री आत्माराम साहू तथा अन्य विद्वानों के प्रति हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने सम्पादनार्थि कार्य में हमें सहायता दी है।

हम पंडित सुमित्रानन्दन पन्त के प्रति विशेष रूप से आभारी हैं जिन्होंने इस कार्य में गहरी रिकचस्पी ली एवं स्वामी जी के कई पर्थों का अनुबाद किया जो बसम लक्ष में प्रकाशित हैं। 'निराला' जी द्वारा अनुबिठ पद्य मन्म लक्ष में प्रकाशित हैं। कुमारी निर्मला बर्मा ने अनुक्रमधिका तैयार करने एवं श्री श्रीराम बर्मा तथा श्री कस्तुरन सिंह ने प्रूक-संशोधन तथा अन्य प्रकार से सहयोग दिये हैं। इसके अतिरिक्त हम अनेक मित्रों के भी कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस कार्य में हमें विभिन्न रूपों से सहायता दी।

सम्भेकन मद्रासलक्ष के प्रति हम उसके निपुण कार्य एवं पूर्ण सहयोग के लिए आभारी हैं।

विषय	पृष्ठ
व्याख्यान प्रबन्धन एवं कक्षाकार्य - १	
भारत : जसका धर्म तथा समाज	
हिन्दू दार्शनिक चिन्तन के सोपान	२२१
बहप्रणीत धार्मिक भावार्थ	२४
भारतीय आध्यात्मिक चिन्ताधारा	२५४
हिन्दू धर्म	२५८
भारतीय कला	२६२
क्या भारत तमसाच्छादित देश है ?	२६६
भारत -	२६९
भारत की जनता	२७३
हिन्दू और ईसाई	२७५
भारत में ईसाई धर्म	२८
हिन्दू और मुसलमान	२८६
स्वतंत्र विचार	२८७
भारतीय नारी	३१
प्राच्य नारी	३२४
अधिकांतीवाद के बाप	३२६
पञ्चावली - १	३३१
अनुसूचितिका	४१३

भूमिका

हमारे गुरु और उनका सन्देश

प्रस्तुत सस्करण मे सकलित स्वामी विवेकानन्द की कृतियों के चार खंडो मे' हमे समग्र ससार के प्रति केवल धर्म का शुभ सन्देश ही नही, बल्कि इस देश की सतति के लिए भी हिन्दू धर्म की सुन्द मिलती है। आधुनिक युग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण मे हिन्दू-धर्म को आवश्यकता थी एक ऐसी चट्टान की, जहाँ वह लगर डाल सके, एक ऐसी प्रामाणिक वाणी की, जिसमे वह स्वय को पहचान सके। स्वामी विवेकानन्द के इन शब्दो और कृतियों में हिन्दू धर्म को यह वरदान उपलब्ध हो गया।

जैसा अन्यत्र कहा गया है, यहाँ इतिहास मे पहली बार स्वय हिन्दू धर्म ही एक उच्चतम कोटि की हिन्दू प्रतिभा के सामान्यीकरण का विषय बना है। युग युग तक अपने पूर्वजो के धार्मिक आदर्शो-विश्वासो को परखनेवाला हिन्दू भाई तथा बाल-बच्चो को उनकी शिक्षा देनेवाली हिन्दू माता आश्वासन और प्रकाश के लिए इन पुस्तको के पृष्ठ पलटेगी। भारत मे अंग्रेजी के लुप्त हो जाने के बाद भी बहुत दिन तक, उम भाषा के माध्यम से विश्व को प्राप्त हुई यह देन अक्षुण्ण रहेगी और पूर्व तथा पश्चिम को समान रूप से सुफल प्रदान करती रहेगी। हिन्दू धर्म को आवश्यकता थी अपने ही भावादशो को सुव्यवस्थित और सुगठित करने की और ससार को ज़रूरत थी सत्य से भयभीत न होनेवाले एक धर्म की। ये दोनो ही यहाँ उपलब्ध हैं। सकट के क्षणो मे जातीय चेतना को एकत्र करने और वाणी प्रदान करनेवाले व्यक्ति के इस आविर्भाव से बढकर सनातन धर्म की अनन्त प्राणशक्ति का, और इस सत्य का कोई दूसरा महत्तर प्रमाण नही दिया जा सकता था कि भारत आज भी उतना ही महान् है, जितना कि वह अतीत मे सदा रहा है।

सम्भवत इस बात का पूर्व-ज्ञान रहा हो कि (भारत अपनी आवश्यकता के प्रति सतुष्ट केवल तभी होगा, जब वह इस जीवनदायी सदेश को अपनी सीमाओ के बाहर की मानव-जाति तक पहुँचाये) ऐसा प्रथम बार केवल



स्वामी विवेकानन्द

ज्ञान में ऐसा बहुत कम है, यूरोप के अतीत से उत्तराधिकार में प्राप्त ऐसा बहुत कम है, जिसकी कोई न कोई चौकी शिकागो की नगरी में न विद्यमान हो। और जहाँ हममें से कुछ को इस केन्द्र का जनसकुल जीवन और अधीर उत्सुकता अभी निरी विश्रुखल ही क्यों न प्रतीत हो, फिर भी इसमें कोई सदेह नहीं कि वे मानवीय एकता के किसी महान् किन्तु धीरसचारी आदर्श को उस समय व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, जब उनकी परिपक्वता के दिन पूर्ण हो जायेंगे।

ऐसी मनोवैज्ञानिक भूमि थी, ऐसा मानस-सागर था—तरुण, तुमुल तथा अपनी शक्ति और आत्मविश्वास से उफनाता, फिर भी जिज्ञासु और जागरूक—जो भाषण आरम्भ करते समय विवेकानन्द के सम्मुख था। इसके ठीक विपरीत, उनके पीछे युग युग के आध्यात्मिक विकास का प्रशान्त सागर था। उनके पीछे एक ससार था, जो अपनी काल-गणना वेदों से करता है और अपनी याद उपनिषदों में करता है—एक ससार, जिसकी तुलना में बौद्ध धर्म प्रायः आधुनिक है, एक ससार—मत-मतान्तरों की धार्मिक व्यवस्थाओं से पूर्ण, उष्ण कटिबन्ध की सूर्य-रश्मियों से स्नात शान्त देश, जिसकी सड़कों की रज पर युग-युगान्तर से सतों के चरण-चिह्न अंकित होते रहे थे। सक्षेप में, उनके पीछे था वह भारत—सहस्रों वर्षों के अपने राष्ट्रीय विकास के साथ—जिनमें उसने अपने देश और काल के महान् विस्तार के एक छोर से दूसरे छोर तक अपने समस्त देशवासियों द्वारा सामान्य रूप से मान्यताप्राप्त कुछ मौलिक और सारभूत सत्यों का पता लगाया है, अनेक बातें सिद्ध की हैं, और केवल एक पूर्ण मर्तक्य को छोड़कर, लगभग सबको उपलब्ध किया है।

तो यही थे वे दो मानस-प्लावन, प्राच्य और अधुनातन चिन्तन के मानो दो प्रबल महानद। धर्म-महासभा के रगमच पर विद्यमान गैरिक वसनमडित यह परिज्राजक एक क्षण के निमित्त इन दोनों प्लावनों का सगम-चिन्दु बन गया। हिन्दू धर्म के सामान्य आधारों का सूत्रीकरण इस परम नैर्व्यक्तिक व्यक्तित्व से उन प्लावनों के सम्पर्क के आघात का अपरिहार्य परिणाम था। स्वामी विवेकानन्द के अधरों से जो शब्द उच्चरित हुए, वे स्वयं उनके अनुभवजनित नहीं थे। न उन्होंने अपने गुरुदेव की कथा सुनाने के निमित्त ही इस अवसर का उपयोग किया। इन दोनों के स्थान पर, भारत की धार्मिक चेतना—सम्पूर्ण अतीत द्वारा निर्धारित उनके समग्र देशवासियों का सदेश ही उनके माध्यम से मुखर हुआ था। और जब वे पश्चिम के यौवन और मध्याह्न में बोल रहे थे, तब प्रशात के दूसरी ओर, तमसाच्छन्न गोलार्ध की छायाओं में प्रनुप्त एक राष्ट्र अपनी ओर गतिमान अरणो-दय के पखों पर आनेवाली और उसके प्रति स्वयं उसके ही महत्त्व और शक्ति का

इसी सबसुर पर घटित नहीं हुआ। एक बार पहले भी एक राष्ट्र-निर्मायक धर्म का सन्देश ब्रह्म वेदों को भेजकर समूचे भारत में अपने चिन्तन की परिभाषा मानी थी—एक ऐसा एकात्मिकरण जिससे स्वयं आधुनिक हिन्दू धर्म का जन्म हुआ है। हमें यह कमी न सुझा बना चाहिए कि इसी भारत की भूमि पर सर्वप्रथम धर्मों को अपने पुरु का यह माधेय श्रुतिमोचर हुआ था (तुम सारे संसार में जाभा और जगत् के कोने कोने में प्राणिमात्र को धर्म का उपदेश करो।) यह वही विचार और प्रेम का वही आवेग है जो एक नया रूप धारण करके स्वामी विवेकानन्द के श्रीमुख से उस समय निवृत्त हुआ जब पश्चिम में एक महती समाजे उन्होंने कहा 'बहि एक धर्म सच्चा है तब निश्चय ही ब्रह्म सभी धर्म सच्चे हैं। अतएव हिन्दू धर्म उतना ही आपका है जितना मेरा। और इसी भाव को विद्यार करके हुए वे फिर कहते हैं "हम हिन्दू केवल सहिष्णु ही नहीं हैं हम ब्रह्म धर्मों के साथ—मुसलमानों की मस्जिद में नमाज पढ़कर, पापुसियों की जग्गि की उपासना करके तथा ईसाइयों के क्रूस के सम्मुख नतमस्तक होकर उनसे एकत्प हो जाते हैं। हम जानते हैं कि निम्नतम जड़-पूजावाय से लेकर उच्चतम निर्गुण अद्वैतवाय तक सारे धर्म समान रूप से असीम की उन्नयने और उसका साक्षात्कार करने के निमित्त मानवीय आत्मा के विविध प्रयास हैं। अतः हम इन सभी धर्मों को संघित करते हैं और उन सबको प्रमसूत्र में बाँधकर आराधना के निमित्त एक अद्भुत स्तम्भ निर्माण करते हैं। इन ब्रह्म के हृदय के लिए कोई भी विदेशी या विजातीय नहीं था। इनके लिए केवल मानव-जाति और सर्व का ही अस्तित्व था।

विस्क-धर्म-महासभा के सम्मुख स्वामी जी के अधिभाषण के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जब उन्होंने अपना मानव आरम्भ किया तो विषय था 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार' किन्तु जब उन्होंने वत किया तब तक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी। इस सम्भावना के लिए समय भी परिपक्व हो चुका था। उनके सम्मुख उपस्थित विज्ञान मोटा-समूह पारश्चात्य विचारधारा का ही प्रतिनिधि था लेकिन इसमें जो परमोत्कृष्ट विधिष्टता है उस सबका कुछ विकास भी मोटाव्यों में विद्यमान था। अमेरिका को और विशेष रूप से धिकागा को जहाँ यह सम्मेलन हुआ यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र ने अपने मानवीय योगदान से आच्छादित किया है। आधुनिक उद्योग और सभ्य के बहुत कुछ उत्कृष्ट और उनमें से कुछ निकृष्ट भाव पश्चिम की इस नगरों की रानी की सीमाओं के भीतर मिलते हैं जिसके पदस्त—जब वह अपनी आँखों में उत्तर का प्रकाश भरकर बैठती और चिन्तामय होती है—मिथिलन बीच के तट पर है। आधुनिक

मचित कोप ।” प्रसगवश वे सनातन धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार को भी प्रकट करते हैं। ‘विज्ञान की नूतनतम खोजे जिसकी प्रतिध्वनि जैसी लगती हैं, उस वेदान्त दर्शन के उच्च आध्यात्मिक स्तरों से लेकर, विविधतामय पौराणिक-तायुक्त मूर्ति-पूजा के निम्नतम विचार, बौद्धों के अज्ञेयवाद और जैनों के निरीश्वरवाद तक प्रत्येक और सबका स्थान हिन्दू धर्म में है।’ उनकी दृष्टि में भारतवासियों का कोई भी मत, संप्रदाय अथवा कोई भी सच्ची धर्मानुभूति—वह किसीको कितनी ही घूमिल क्यों न प्रतीत हो—ऐसी नहीं है, जिसे हिन्दू धर्म की बाहुओं में औचित्यपूर्वक वहिष्कृत किया जा सके। और उनके अनुसार इस भारतीय धर्म-माता का विशिष्ट सिद्धान्त है इष्ट देवता—हर आत्मा को अपने मार्ग को चुनने तथा ईश्वर को अपने ढंग से खोजने का अधिकार। अतः इस प्रकार से परिभाषित हिन्दू धर्म के बराबर विराट् साम्राज्य की पताका का वहन कोई अन्य वाहिनी नहीं करती, क्योंकि जिस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति इसका आध्यात्मिक लक्ष्य है, उसी प्रकार इसका आध्यात्मिक नियम है, प्रत्येक आत्मा की स्वस्वरूप में प्रतिष्ठित होने की पूर्ण स्वतंत्रता।

किन्तु सबों का यह समावेश, प्रत्येक की यह स्वतंत्रता हिन्दू धर्म की ऐसी गरिमा न बन पाती, यदि उसका परम आह्वान और उसकी मधुरतम प्रतिज्ञा यह न होती ‘हे अमृतपुत्रो ! सुनो ! उच्चतर लोको में रहनेवालो, तुम भी सुनो मैंने उम पुराण पुरुष को पा लिया है, जो समस्त अधिकार, समस्त भ्राति के परे है। और तुम भी उसको जानकर मृत्यु से मुक्ति प्राप्त कर सकोगे।’ यही है वह शब्द, जिसके निमित्त शेष सबका अस्तित्व है और रहा है। इसीमें वह चरम अनुभूति है, जिसमें अन्य सबका तिरोभाव हो जाता है। जब ‘हमारा प्रस्तुत कार्य’^१ नामक अपने व्याख्यान में स्वामी जी सबको यह शपथ दिलाते हैं कि वे उनकी सहायता एक ऐसे मंदिर का निर्माण करने में करें, जहाँ देश का प्रत्येक उपासक उपासना कर सके, एक ऐसा, जिसके गर्भगृह में केवल ॐ शब्द मात्र होगा, तो हममें से कुछ को उनके इस वचन में एक इससे भी महान् मंदिर की झलक मिलती है—स्वयं भारत की, मातृभूमि की, जैसी कि वह है—और हम केवल भारतीय धर्मों के ही

१ श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थु ।

वेदाहमेत पुरुष महान्त आदित्यवर्णं तमसं परस्तात् ।

तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यं पन्था विद्यतेऽप्यनाय ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥२।५, ३।८॥

२ ब्र० विवेकानन्द साहित्य, पंचम खण्ड, पृ० १६३।

रहस्य उद्घाटित करनेवासी नाभी की प्रतीक्षा अपनी आत्मा में कर रहा था। उसी ब्रह्म-महासमा के मंत्र पर स्वामी विवेकानन्द के अतिरिक्त विशिष्ट मठा और संभो के ब्रह्मदूत भी उपस्थित थे। किन्तु एक ऐसे धर्म का प्रचार करने का गौरव उन्हींको था जिस तक पहुँचने के लिए इनमें से प्रत्येक उन्हींके धर्मों में विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों के द्वारा उन्हीं एक क्रम तक पहुँचने के निमित्त विभिन्न स्त्री-पुरुषों की यात्रा प्रयत्न मात्र है। और जैसा कि उन्हींको बोधित किया वे वहाँ एक ऐसे महापुरुष का परिचय देने के लिए लड़े हुए थे जिसने इन सभी मत-मतान्तरों के नियम में कहा है कि ऐसा नहीं है कि इनमें से कोई एक या दूसरा इस या उस पक्ष में इस या उस कारण सत्य या असत्य है बल्कि सत्य सर्वत्र प्रोक्तं सचैव अविषया इव — यह सब मूत्र में मातियों की माँति मूत्रम ही पुष्ट हुए हैं। 'जहाँ मानव-जाति की पवित्र और उसका उत्थान करती असामान्य पवित्रता असामान्य सक्ति तेरे दृष्टने में आये तू जान कि मैं वहाँ हूँ।'^१ विवेकानन्द का कहना है कि एक हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जाता बल्कि सत्य से सत्य की ओर अपसर होता है। निम्नतर सत्य से उच्चतर सत्य की ओर जाता है। यह तथा मुक्ति का यह सिद्धान्त कि मनुष्य को ईश्वर का साम्राज्य करके ईश्वर होता है। यह सत्य कि धर्म केवल तभी हममें पूर्णता को प्राप्त करता है जब वह हमें उस तक ले जाता है जो मृत्यु के संचार में एकमात्र जीवन है, उस तक जो नित्य परिवर्तनशील जगत् का चिरन्तन आधार है उस एक तक ले जाता है जो केवल आत्मा ही है। अन्य सभी आत्माएँ जिसकी भाव अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं—ये ही महान् विशिष्ट सत्यों के रूप में मान्य हो सकते हैं। भारत ने मानव-वृद्धि का ही बीजतम और अटिक्रम्य अनुभूति के द्वारा प्रमाणीकृत इन दोनों सत्यों को उनके माध्यम से पश्चिम के आधुनिक जगत् में बोधित किया।

सब भारत के लिए, जैसा पहले ही कहा जा चुका है यह सक्षिप्त अभिप्राय मठाधिकार को एक छोटी सी सनद थी। बसताने हिन्दू धर्म को सर्वांगतया बेहो पर आधारित किया है किन्तु वेद सम्बन्धी हमारी धारणा का वे इस सम्बन्ध के उच्चारण मात्र से ही आध्यात्मिकरण कर देते हैं। उनके निकट जो कुछ सत्य है, वह सब वेद है। वे कहते हैं वेदों का अर्थ कोई धर्म नहीं है। वेदों का अर्थ है, विविध समयों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक नियमों का

१ पीता ॥५७॥

२ मधुसूक्तिमत्स्य भीमवृद्धिमेव वा।

तत्तदेवावयवत्वं त्वं धर्मोऽस्यैवम् ॥पीता ॥१ ॥४१॥

लक्ष्य है। यह एक और भी महान् तथा अधिक सरल, इस सिद्धान्त का अंग है कि अनेक और एक, विभिन्न समयों पर विभिन्न वृत्तियों में मन के द्वारा देखे जानेवाला एक ही तत्त्व है, अथवा जैसा श्री रामकृष्ण ने उसी सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया है, “ईश्वर साकार और निराकार, दोनों ही हैं। ईश्वर वह भी है, जिसमें साकार और निराकार, दोनों ही समाविष्ट हैं।” यही—वह वस्तु है, जो हमारे गुरुदेव के जीवन को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान करती है, क्योंकि यहाँ वे पूर्व और पश्चिम के ही नहीं, भूत और भविष्य के भी सगम-विन्दु बन जाते हैं। यदि एक और अनेक सचमुच एक ही सत्य हैं, तो केवल उपासना के ही विविध प्रकार नहीं, वरन् सामान्य रूप से कर्म के भी सभी प्रकार, सघर्ष के सभी प्रकार, सर्जन के सभी प्रकार भी, सत्य-साक्षात्कार के मार्ग हैं। अतः लौकिक और धार्मिक में अब आगे कोई भेद नहीं रह जाता। कर्म करना ही उपासना करना है। विजय प्राप्त करना ही त्याग करना है। स्वयं जीवन ही धर्म है। प्राप्त करना और अपने अधिकार में रखना उतना ही कठोर न्यास है, जितना कि त्याग करना और विमुख होना।

स्वामी विवेकानन्द की यही अनुभूति है, जिसने उन्हें उस कर्म का महान् उपदेष्टा सिद्ध किया, जो ज्ञान-भक्ति से अलग नहीं, वरन् उन्हें अभिव्यक्त करने-वाला है। उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, खेत और क्रीडाभूमि आदि भगवान् के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य स्थान हैं, जैसे साधु की कुटी या मन्दिर का द्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सन्धे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है। एक दृष्टि से उनकी सम्पूर्ण वाणी को इसी केन्द्रीय दृढ आस्था के भाष्य के रूप में पढा जा सकता है। एक बार उन्होंने कहा था, “कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के त्रिविध माध्यम हैं। लेकिन इसे समझने के लिए निश्चय ही हमें अद्वैत का सिद्धान्त चाहिए।”

उनके दर्शन का निर्माण करनेवाले रचनात्मक प्रभाव को शायद त्रिगुणात्मक माना जा सकता है। पहले तो सस्कृत और अंग्रेज़ी में उनकी शिक्षा थी। इस प्रकार दो जगत् उनके सम्मुख उद्घाटित हुए एवं उनके वैषम्य ने उन पर एक ऐसी विशिष्ट अनुभूति का बलिष्ठ प्रभाव डाला, जो भारत के धर्म-ग्रन्थों की विषय-वस्तु है। यदि यह सत्य हो, तो यह स्पष्ट है कि वह, जैसे कुछ अन्य लोगों को प्राप्त हो गया, उस प्रकार भारतीय ऋषियों को सयोगवश अप्रत्याशित रूप से नहीं प्राप्त हो गया। वरन् वह एक विज्ञान की विषय-वस्तु था, एक ऐसे तार्किक विश्लेषण का विषय था, जो सत्य की खोज में बड़े से बड़े बलिदान से पीछे हटनेवाला नहीं था।

नहीं बल्कि समग्र मानव-जाति के विभिन्न मार्गों को बड़ा कमिष्ठ हाते देवत है उस पुनीत स्वक के चरणों में जहाँ वह प्रतीक प्रतिष्ठित है जो प्रतीक है ही नहीं जहाँ वह नाम है, जो ध्वनि मान के अतीत है। सभी उपासनाओं का समस्त मार्ग और सभी बर्म इसी ओर पहुँचते हैं इससे भिन्न दिशा में नहीं। भारत अपनी इस बोधना में विश्व के परम विभूततावासी धर्मों के साथ है कि प्रयति पूस्य स बहुस्य की मार, अमक से एक की ओर, निम्न से उच्च की ओर, साकार से निराकार की ओर होती है किन्तु विपरीत दिशा में कदापि नहीं। भारत के साथ अंतर कमल इतना है कि वह हर सच्ची अवस्था को—वह जो भी हो और जहाँ भी हो—उस महान् आरोहण का एक सोपान मानकर उसको सहानुभूति और आस्वासन प्रदान करता है।

यदि हिन्दू धर्म के रूत के रूप में उनका कुछ अपना होता तो स्वामी विवेकानन्द जो कुछ से उससे कम महान् सिद्ध हुए होते। पीता के रूप की भाँति बुद्ध की भाँति सकलार्थ की भाँति भारतीय जितन के अन्य प्रथक महान् विचारक की भाँति उनके वाक्य भी वेदों और उपनिषदों के उद्धरणों से परिपूर्ण हैं। भारत के पास जो अपनी ही विधियाँ सुरक्षित हैं भारत के ही प्रति उनके मान उद्घाटक और भाष्यकार के रूप में ही स्वामी जी का महत्त्व है। यदि वे कभी अन्य ही न केते तो भी जिन सत्ता का उपरोध उन्होंने किया व वैश सत्य बने रहते। यही नहीं वे सत्य उठने ही प्राप्राणिक भी बने रहते। अंतर केवल होता उनकी प्राप्ति की कठिनाई में उनकी अभिव्यक्ति में आधुनिक स्पष्टता और तीक्ष्णता के अभाव में और उनके पारस्परिक सामयस्य एवं एकता की हानि में। यदि वे न होते तो आज सहस्राब्दों को जीवनवासी सदैव प्रदान करनेवाले वे सब पंडितों के विचार के विषय ही बने रह जाते। उन्होंने एक पंडित की भाँति नहीं एक अधिकारी व्यक्ति की भाँति उपरोध दिया। क्योंकि जिस सत्यानुभूति का उपरोध उन्होंने किया उसकी पहचान में वे स्वयं ही गीता जमा चुके थे और रामानुज की भाँति उसका रहस्यों को बाह्य भाँति-बहिष्कृत और विरोधियों को अतृप्तने के निमित्त ही वे जहाँ से लौटे थे।

किन्तु फिर भी यह कथन कि उनके उपदेशों में कुछ नवीनता नहीं है पूर्णत सत्य नहीं है। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वे स्वामी विवेकानन्द ही वे जिन्होंने अद्वैत दर्शन के सेप्टर की बोधना करत हुए कहा था कि इस अद्वैत में यह अनुभूति समाविष्ट है जिसमें सब एक हैं जो एकमेवादितीय है पर साथ साथ उन्होंने हिन्दू धर्म में यह सिद्धास्त भी संयोजित किया कि ईत विधिष्टाईत और अद्वैत एक ही विकास के तीन सोपान या स्तर हैं जिनमें अंतिम अद्वैत ही

स्वामी विवेकानन्द

कभी कभी समय की दीर्घ अवधि के बाद एक ऐसा मनुष्य हमारे इस ग्रह में आ पहुँचता है, जो असदिग्ध रूप से दूसरे किसी मंडल से आया हुआ एक पर्यटक होता है, जो उस अति दूरवर्ती क्षेत्र की, जहाँ से वह आया हुआ है, महिमा, शक्ति और दीप्ति का कुछ अंश इस दुःखपूर्ण ससार में लाता है। वह मनुष्यों के बीच विचरता है, लेकिन वह इस मर्त्यभूमि का नहीं है। वह है एक तीर्थयात्री, एक अजनबी—वह केवल एक रात के लिए ही यहाँ ठहरता है।

वह अपने चारों ओर के मनुष्यों के जीवन से अपने को सम्बद्ध पाता है, उनके हर्ष-विषाद का साथी बनता है, उनके साथ सुखी होता है, उनके साथ दुःखी भी होता है, लेकिन इन सबों के बीच, वह यह कभी नहीं भूलता कि वह कौन है, कहाँ से आया है और उसके यहाँ आने का क्या उद्देश्य है। वह कभी अपने दिव्यत्व को नहीं भूलता। वह सदैव याद रखता है कि वह महान्, तेजस्वी एवं महामहिमान्वित आत्मा है। वह जानता है कि वह उस वर्णनातीत स्वर्गीय क्षेत्र से आया हुआ है, जहाँ सूर्य अथवा चन्द्र की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह क्षेत्र आलोको के आलोक से आलोकित है। वह जानता है कि जब 'ईश्वर की सभी सतानें एक साथ आनन्द के लिए गान कर रही थीं', उस समय से बहुत पूर्व ही उसका अस्तित्व था।

ऐसे एक मनुष्य को मैंने देखा, उसकी वाणी सुनी और उसके प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित की। उसीके चरणों में मैंने अपनी आत्मा की अनुरक्ति निवेदित की।

इस प्रकार का मनुष्य सभी तुलना के परे है, क्योंकि वह समस्त साधारण मापदण्डों और आदर्शों के अतीत है। अन्य लोग तेजस्वी हो सकते हैं, लेकिन उसका मन प्रकाशमय है, क्योंकि वह समस्त ज्ञान के स्रोत के साथ अपना सयोग स्थापित करने में समर्थ है। साधारण मनुष्यों की भाँति वह ज्ञानार्जन की मधुर प्रक्रियाओं द्वारा सीमित नहीं है। अन्य लोग शायद महान् हो सकते हैं, लेकिन यह महत्त्व उनके अपने वर्ग के दूसरे लोगों की तुलना में ही सम्भव है। अन्य मनुष्य अपने साधियों की तुलना में साधु, तेजस्वी, प्रतिभावान हो सकते हैं। पर यह सब केवल तुलना की बात है। एक सन्त साधारण मनुष्य से अधिक पवित्र, अधिक पुण्यवान, अधिक एकनिष्ठ है। किंतु स्वामी विवेकानन्द के सम्बन्ध में

अपने बुद्ध भी रामकृष्ण परमहंस में जो ललितेश्वर के उद्यान-मन्दिर में रखते और उपरोध करते थे स्वामी विवेकानन्द—उन दिनों के 'नेरम'—को प्राचीन धर्मग्रन्थों का वह संस्थापन प्राप्त हुआ जिसकी माँग उनका हृदय और बुद्धि करती रही थी। यहाँ वह सत्य उपलब्ध था जिसका टूटा-फूटा वर्जन ही प्रथम कर पाते हैं। यहाँ एक ऐसा व्यक्ति था जिसके लिए समाधि ही ज्ञान प्राप्त करने का सतत साधन थी। हर बटे भिन्न जनक से एक की ओर बोधायमान था। हर समय प्रतिबन्धन भूमिका से संगृहीत ज्ञान की बाणी से प्रेरित होता था। उनके ललितकट हर व्यक्ति को ईश्वर दर्शन की शक्ति मिल जाती थी और सिय में भी परम ज्ञान की अभीप्सा 'ऊपर चढ़ने के सबूत' जग उठती थी। किन्तु तथापि वे सम्पूर्ण अज्ञात रूप से ही धर्मग्रन्थों की जीवन्त प्रतिमूर्ति थे क्योंकि उन्होंने उनमें से किसीका कभी अध्ययन ही नहीं किया था। अपने मुद्देय रामकृष्ण परमहंस में विवेकानन्द को जीवन की कुञ्जी मिल गयी थी।

किन्तु फिर भी अपने जीवन-कार्य के निमित्त उनकी तैयारी पूरी नहीं हो पायी थी। उनके मुद्देय का जीवन एक व्यक्तित्व जिस विराट् परिपूर्णता का अल्पकालिक एवं प्रथम प्रतीक था उसकी परिष्कारिता को आत्मसात करने के लिए कल्याणकुमारी से हिमाचल तक समग्र भारत का भ्रमण करना सर्वप्रथम साध-सत विद्या और जन-साधारण से सम भाव से मिलना सबसे सिद्धा प्रह्व करना और सबको सिद्धा देना सबके साथ जीवन बिताना और भारत के अतीत एवं वर्तमान का यथार्थ परिचय प्राप्त करना अनिवार्य था।

इन प्रकार विवेकानन्द की कृतियाँ का समीच प्राप्त हुए तथा मत्स्यभूमि—उन तीन स्वर-सहस्रियों में निर्मित हुआ है। उनके पास देने योग्य यही निधि है। इन्होंने उनको वे उपकरण मिल जिनसे विश्व-विचार को दूर करनेवाले भाष्या गिरक बरदान की विशालकरणी उन्हींमें प्रस्तुत की। १९ सितंबर, १८९३ ई. में ८ जुलाई, १९ २ ई. तक कार्य की अस्थापि में भारत में अपनी तथा विश्व की धर्मनिरपेक्ष प्रवर्धन के लिए उनका हाथा ग जा हीय प्रवृत्तिन एवं प्रतिष्ठित कराया उनका भीतर य ही तीन शीतलियाएँ प्राग्भक्त हैं। हममें से कुछ एमें साथ भी हैं या इसी प्रकार और अपने पीछे छोड़ी गयी उनकी कृतियाँ के लिए उनकी प्रथम धर्मार्थी पुष्पभूमि का तथा जिन अनुस्य गतिस्था में उन्हें विश्व में भेजा उनकी प्रथम बहान है और विचारन करन है कि उनका महान् मरण की ध्यायकता एवं मार्गदर्शक का कार्य जानने में हम वर्षों तक अनमर्ष रहें हैं।

व्याख्यानमाला
विश्व-धर्म-महासभा

कोई तुलना नहीं हो सकती। वे स्वयं ही अलग बर्म क है। ब एक दूमेरे स्तर क हैं न कि इस सामारिक स्तर क। य एक भास्वर मत्ता है जा एक मुनिशिष्ट प्रयोजन क लिए दूमेरे एक उच्चतर मडल न इस मर्त्वभूमि पर अवतरिन हुए है। कोई सापद जान समता वा कि ब मही पर बीपे काल तक नहीं टहरेमे।

इसमें क्या आश्चर्य है कि प्रकृति स्वयं ऐम मनुष्य क जन्म पर आनन्द मनाती है स्वर्ग क द्वार खुल जाते हैं और सबहुन कीर्ति-गान करते हैं ?

धम्य है बह देस जिसन उनका जन्म दिया है धम्य है ब मनुष्य जा उस समय इस पृथ्वी पर जीवित थ और धम्य है ब कुछ ताम—धम्य धम्य धम्य—जिह उनके पादपदों में बैठन का मीभाग्य मिला था।

—भयिनी विद्वान

धर्म-महासभा : स्वागत का उत्तर

(विश्व-धर्म-महासभा, शिकागो, ११ सितम्बर, १८९३ ई०)

अमेरिकावासी बहनो तथा भाइयो,

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगो का स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खडे होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। ससार मे सत्यासियो की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूँ, और सभी सम्प्रदायो एव मतो के कोटि कोटि हिन्दुओ की ओर से भी धन्यवाद देता हूँ।

मैं इस मंच पर से बोलनेवाले उन कतिपय वक्ताओ के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राची के प्रतिनिधियो का उल्लेख करते समय आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशो के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशो मे प्रसारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने मे गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने ससार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनो की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता मे ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशो के उत्पीडितो और शरणार्थियो को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष मे यहूदियो के विशुद्धतम अवशिष्ट अश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल मे मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने मे मैं गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने महान् ज़रथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो, मैं आप लोगो को एक स्तोत्र की कुछ पक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं अपने वचन से करता रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखो मनुष्य किया करते हैं

रचीना वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

—'जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मढ़े ऋषिवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।'^१

यह सभा जो अभी तक आयोजित सर्वभेद पवित्र सम्मेलनों में से एक है स्वतः ही गीता के इस अद्भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी बापमा है :

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम् ।

मम चित्तानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वथा ॥

—'जो कोई मेरी ओर आता है—चाहे किसी प्रकार से हो—मैं उसको प्राप्त होता हूँ। लोग भिन्न भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं।'^२

साम्प्रदायिकता हठधर्मिता और जनकी बीमत्स बंधनर बर्मान्विता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानकटा के रक्त से नहसाती रही हैं सम्मताओं को विम्वस्त करती और पूरे पूरे बेसा को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीमत्स बलवी न होतीं तो मानव-समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है और मैं आंतरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा-ध्वनि हुई है वह समस्त बर्मान्विता का तस्कार या सेवनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही मध्य की ओर अपसर होनेवाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मूल-मिनाह मिड हो।

१ विद्वत्सहितोपनिषद् ॥१०॥

२ गीता ॥१०॥११॥

हमारे मतभेद का कारण^१

(१५ सितम्बर, १८९३ ई०)

मैं आप लोगो को एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ। अभी जिन वाग्मी वक्ता महोदय ने व्याख्यान समाप्त किया है, उनके इस वचन को आप लोगो ने सुना है कि 'आओ, हम लोग एक दूसरे को बुरा कहना बंद कर दें', और उन्हें इस बात का बड़ा खेद है कि लोगो में सदा इतना मतभेद क्यों रहता है।

परन्तु मैं समझता हूँ कि जो कहानी मैं सुनानेवाला हूँ, उससे आप लोगो को इस मतभेद का कारण स्पष्ट हो जायगा। एक कुएँ में बहुत समय से एक मेढक रहता था। वह वही पैदा हुआ था और वही उसका पालन-पोषण हुआ, पर फिर भी वह मेढक छोटा ही था। हाँ, आज के क्रमविकासवादी (evolutionists) उस समय वहाँ नहीं थे, जो हमें यह बतला सकते कि उस मेढक की आँखें थी अथवा नहीं, पर यहाँ कहानी के लिए यह मान लेना चाहिए कि उसकी आँखें थी, और वह प्रतिदिन ऐसे पुरुषार्थ के साथ जल को सारे कीड़ों और कीटाणुओं से रहित पूर्ण स्वच्छ कर देता था कि उतना पुरुषार्थ हमारे आधुनिक कीटाणुवादियों^२ (bacteriologists) को यशस्वी बना दें। इस प्रकार धीरे धीरे यह मेढक उसी कुएँ में रहते रहते मोटा और चिकना हो गया। अब एक दिन एक दूसरा मेढक, जो समुद्र में रहता था, वहाँ आया और कुएँ में गिर पड़ा।

“तुम कहाँ से आये हो?”

“मैं समुद्र से आया हूँ।”

“समुद्र! भला, कितना बड़ा है वह? क्या वह भी इतना ही बड़ा है, जितना

१ १५ सितम्बर, शुक्रवार के अपराह्न में धर्म-महासभा के पंचम दिवस के अधिवेशन के समय भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी अपने अपने धर्म की प्रधानता का प्रतिपादन करने के लिए वितण्डावाद में जुट गये थे। अन्त में स्वामी विवेकानन्द ने यह कहानी सुनाकर सबको शांत कर दिया। स०

२. सब बीमारियाँ कीड़ों से उत्पन्न होती हैं, अतएव कीड़ों को नष्ट करना चाहिए—यह इन लोगो का मत है। स०

मेरा यह कुर्बा? और यह कहते हुए उसने कुर्से में एक किनारे से दूसरे किनारे तक छमाँय मारी।

समुद्रबाले मेडक ने कहा "मेरे मित्र! ममा समुद्र की तुम्हना इस छोटे से कुर्से से किस प्रकार कर सकते हो?"

तब उस कुर्सेबाले मेडक ने एक दूसरी छमाँय मारी और पूछा "तो क्या तुम्हारा समुद्र इतना बड़ा है?"

समुद्रबाले मेडक ने कहा "तुम कौसी बेबकूठी की बात कर रहे हो। क्या समुद्र की तुम्हना तुम्हारे कुर्से से हो सकती है?"

जब तो कुर्सेबाले मेडक ने कहा "जा जा। मेरे कुर्से से बढ़कर और कुछ हो ही नहीं सकता। संसार में इससे बड़ा और कुछ नहीं है। मूठा कहीं का! जरे इसे बाहर निकाल दो!"

यही कठिनाई सबैव रही है।

मैं हिलू हूँ। मैं अपने सुद कुर्से में बैठे यही समझता हूँ कि मेरा कुर्बा ही संपूर्ण संसार है। ईसाई भी अपने सुद कुर्से में बैठे हुए यही समझता है कि सारा संसार उसीके कुर्से में है और मुसलमान भी अपने सुद कुर्से में बैठे हुए उसीको सारा ब्रह्माण्ड मानता है। मैं आप अमेरिकावालों को बन्ध कहता हूँ क्योंकि आप हम लोगों के इन छोटे छोटे संसारों की सुद सीमाओं को तोड़ने का महान् प्रयत्न कर रहे हैं, और मैं आशा करता हूँ कि भविष्य में परमात्मा आपके इस उद्योग में सहायता देकर आपका मनोरथ पूर्ण करेगा।

हिंदू धर्म पर निबन्ध

(धर्म-महासभा में, १९ सितम्बर, १८९३ ई० को पठित)

प्रागैतिहासिक युग से चले आनेवाले केवल तीन ही धर्म आज ससार में विद्यमान हैं—हिन्दू धर्म, पारसी धर्म और यहूदी धर्म। उनको अनेकानेक प्रचंड आघात सहने पड़े हैं, किन्तु फिर भी जीवित बने रहकर वे सभी अपनी आन्तरिक शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। पर जहाँ हम यह देखते हैं कि यहूदी धर्म ईसाई धर्म को आत्मसात नहीं कर सका, वरन् अपनी सर्वविजयिनी दुहिता—ईसाई धर्म—द्वारा अपने जन्म-स्थान से निर्वासित कर दिया गया, और केवल मुट्ठी भर पारसी ही अपने महान् धर्म की गाथा गाने के लिए अब अवशेष हैं,—वहाँ भारत में एक के बाद एक न जाने कितने सम्प्रदायों का उदय हुआ और उन्होंने वैदिक धर्म को जड़ से हिला सा दिया, किन्तु भयकर भूकम्प के समय समुद्र-तट के जल के समान वह कुछ समय पश्चात् हज़ार गुना बलशाली होकर सर्वप्राप्ति आप्लावन के रूप में पुन लौटने के लिए पीछे हट गया, और जब यह सारा कोलाहल शान्त हो गया, तब इन समस्त धर्म-सम्प्रदायों को उनकी धर्म-माता (हिंदू धर्म) की विराट् काया ने चूस लिया, आत्मसात कर लिया और अपने में पचा डाला।

वेदान्त दर्शन की अत्युन्नत आध्यात्मिक उड़ानों से लेकर—आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी केवल प्रतिध्वनि मात्र प्रतीत होते हैं, मूर्ति-पूजा के निम्न स्तरीय विचारों एवं तदानुषंगिक अनेकानेक पौराणिक दन्तकथाओं तक, और बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनो के निरीश्वरवाद—इनमें से प्रत्येक के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है।

तब यह प्रश्न उठता है कि वह कौन सा एक सामान्य विन्दु है, जहाँ पर इतनी विभिन्न दिशाओं में जानेवाली त्रिज्याएं केन्द्रस्थ होती हैं? वह कौन सा एक सामान्य आधार है, जिस पर ये प्रचंड विरोधाभास आश्रित हैं? इसी प्रश्न का उत्तर देने का अब मैं प्रयत्न करूँगा।

हिन्दू जाति ने अपना धर्म श्रुति—वेदों से प्राप्त किया है। उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनन्त हैं। श्रोताओं को, सम्भव है, यह बात हास्यास्पद लगे कि कोई पुस्तक अनादि और अनन्त कैसे हो सकती है। किन्तु वेदों का अर्थ कोई

पुस्तक है ही नहीं। ब्रह्मा का अर्थ है भिन्न भिन्न कालों में भिन्न भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक सत्यों का संचित रूप। जिस प्रकार मूलतत्त्वज्ञान का मिथ्यात्व मनुष्यों के पता लगने के पूर्व से ही अपना काम करता पला आया था और आज यदि मनुष्य-जाति उस भूमि में जाय तो भी वह नियम अपना काम करता ही रह्या ठीक वही बात आध्यात्मिक जन्म का धामन करनेवाले नियमों के सम्बन्ध में भी है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ और जीवात्मा का आत्माओं के परम पिता के साथ जो नैतिक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध हैं, वे उनके आविष्कार के पूर्व भी थे और हम यदि उन्हें भूल भी जायें तो भी बन रह्ये।

इन नियमों या सत्यों का आविष्कार करनेवाले 'ऋषि' कहलाते हैं और हम उनको पूज्यता तक पहुँची हुई आत्मा मानकर सम्मान देते हैं। श्रोतार्थों को यह बतलाते हुए मुझे हर्ष होता है कि इन महान्तम ऋषियों में कुछ स्त्रियाँ भी थी।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि ये नियम नियम के रूप में अनन्त भसे ही हों पर इनका आविष्कार तो अवश्य ही होना चाहिए। वेद हमें यह सिखाते हैं कि सृष्टि का न आविष्कार न अन्त। विज्ञान ने हमें सिद्ध कर दिखाया है कि समय विश्व की सारी ऊर्जा-समष्टि का परिमाण सदा एक सा रहता है। तो फिर, यदि ऐसा कोई समय था जब कि किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं था उस समय यह सम्पूर्ण अन्त ऊर्जा कहाँ थी? कोई कोई कहते हैं कि ईश्वर में ही वह सब सम्बन्ध रूप में निहित थी। तब तो ईश्वर कमी सम्बन्ध और कमी अन्त है इससे तो यह विकारशील हो पायगा। प्रत्येक विकारशील पदार्थ यौगिक होता है और हर यौगिक पदार्थ में वह परिवर्तन अवश्यम्भावी है जिसे हम विनाश कहते हैं। इस तरह तो ईश्वर की मृत्यु हो पायगी जो अनर्गल है। अतः ऐसा समय कभी नहीं था जब यह सृष्टि नहीं थी।

यै एक उपमा है अष्टा और सृष्टि मामो दो रेखाएँ हैं जिनका न आविष्कार, न अन्त और जो समाप्तान्तर चलती है। ईश्वर नित्य क्रियाशील विधाता है जिसकी सक्ति से प्रकृत्य-व्योषि से से निम्नतः एक के बाद एक ब्रह्माण्ड का सृजन होता है वे कुछ काल तक गतिमान रहते हैं और तत्पश्चात् वे पुनः विनष्ट कर दिये जाते हैं। सूर्याभ्यन्तरी वाता पदार्थसमूहसमूह अर्थात् इस सूर्य और इस जगत्मा को विधाता ने पूर्व कल्पों के सूर्य और जगत्मा के समान निर्मित किया है—इस वाक्य का नित्य पाठ प्रत्येक हिन्दू बालक प्रतिदिन करता है।

यहाँ पर मैं बड़ा हूँ और अपनी जैसे बन्ध करके यदि मैं अपने अस्तित्व — मैं मैं 'मैं' को समझने का प्रयत्न कई तो मुझमें किस भाव का उदय होता है? इस भाव का कि मैं खरीर हूँ। तो क्या मैं नैतिक पदार्थों के संघात के

सिवा और कुछ नहीं हूँ? वेदों की घोषणा है—'नहीं' मैं शरीर में रहनेवाली आत्मा हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर मर जायगा, पर मैं नहीं मरूँगा। मैं इस शरीर में विद्यमान हूँ और जब इस शरीर का पतन होगा, तब भी मैं विद्यमान रहूँगा ही। मेरा एक अतीत भी है। आत्मा की सृष्टि नहीं हुई है, क्योंकि सृष्टि का अर्थ है, भिन्न भिन्न द्रव्यों का सघात, और इस सघात का भविष्य में विघटन अवश्यम्भावी है। अतएव यदि आत्मा का सृजन हुआ, तो उसकी मृत्यु भी होनी चाहिए। कुछ लोग जन्म से ही सुखी होते हैं, पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द भोगते हैं, उन्हें सुंदर शरीर, उत्साहपूर्ण मन और सभी आवश्यक सामग्रियाँ प्राप्त रहती हैं। दूसरे कुछ लोग जन्म से ही दुखी होते हैं, किसीके हाथ या पाँव नहीं होते, तो कोई मूर्ख होते हैं, और येन केन प्रकारेण अपने दुखमय जीवन के दिन काटते हैं। ऐसा क्यों? यदि ये सभी एक ही न्यायी और दयालु ईश्वर ने उत्पन्न किये हों, तो फिर उसने एक को सुखी और दूसरे को दुखी क्यों बनाया? ईश्वर ऐसा पक्षपाती क्यों है? फिर ऐसा मानने से भी बात नहीं सुधर सकती कि जो इस वर्तमान जीवन में दुखी हैं, वे भावी जीवन में पूर्ण सुखी रहेंगे। न्यायी और दयालु ईश्वर के राज्य में मनुष्य इस जीवन में भी दुखी क्यों रहे?

दूसरी बात यह है कि सृष्टि-उत्पादक ईश्वर को मान्यता देनेवाला सिद्धान्त वैपम्य की कोई व्याख्या नहीं करता, बल्कि वह तो केवल एक सर्वशक्तिमान पुरुष का निष्ठुर आदेश ही प्रकट करता है। अतएव इस जन्म के पूर्व ऐसे कारण होने ही चाहिए, जिनके फलस्वरूप मनुष्य इस जन्म में सुखी या दुखी हुआ करता है। और ये कारण हैं, उसके ही पूर्वनिष्ठित कर्म।

क्या मनुष्य के शरीर और मन की सारी प्रवृत्तियों की व्याख्या उत्तराधिकार से प्राप्त क्षमता द्वारा नहीं हो सकती? यहाँ जड़ और चैतन्य (मन), सत्ता की दो समानान्तर रेखाएँ हैं। यदि जड़ और जड़ के समस्त रूपान्तर ही, जो कुछ यहाँ है, उसके कारण सिद्ध हो सकते, तो फिर आत्मा के अस्तित्व को मानने की कोई आवश्यकता ही न रह जाती। पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि चैतन्य (विचार) का विकास जड़ से हुआ है, और यदि कोई दार्शनिक अद्वैतवाद अनिवार्य है, तो आध्यात्मिक अद्वैतवाद निश्चय ही तर्कसंगत है और भौतिक अद्वैतवाद से किसी भी प्रकार कम वाछनीय नहीं, परन्तु यहाँ इन दोनों की आवश्यकता नहीं है।

हम यह अस्वीकार नहीं कर सकते कि शरीर कुछ प्रवृत्तियों को आनुवंशिकता से प्राप्त करता है, किन्तु ऐसी प्रवृत्तियों का अर्थ केवल शारीरिक रूपाकृति है, जिसके माध्यम से केवल एक विशेष मन एक विशेष प्रकार से काम कर सकता है। आत्मा की कुछ ऐसी विशेष प्रवृत्तियाँ होती हैं, जिनकी उत्पत्ति अतीत के कर्म से होती

है। एक विशेष प्रकृतिवाली जीवतत्त्वा 'योस्य योस्यन युज्यते' इस नियमानुसार उसी शरीर में जगम ग्रहण करती है जो उस प्रकृति के प्रकट करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हो। यह विज्ञानसंगत है क्योंकि विज्ञान हर प्रकृति की व्याख्या माध्यम से करना चाहता है और आदर्श आकृतियों से बनती है। अतएव नवजात जीवतत्त्वा की नैसर्गिक आदतों की व्याख्या के लिए आकृतियाँ अनिवार्य हो जाती हैं। और पूँक से प्रस्तुत जीवन में प्राप्त नहीं होतीं अतः वे पिछले जीवनों से ही आती होती।

एक और दृष्टिकोण है। ये सभी बातें यदि स्वयंसिद्ध भी मान लें तो मैं अपने पूर्व जन्म की कोई बात स्मरण क्यों नहीं रख पाता? इसका समाधान सरल है। मैं अभी अंग्रेजी बोल रहा हूँ। वह मेरी मातृभाषा नहीं है। वस्तुतः इस समय मेरी मातृभाषा का कोई भी अक्षर मेरे चित्त में उपस्थित नहीं है पर उन शब्दों को सामने खाने का बड़ा प्रयत्न करते होंगे वे मेरे मन में उमड़ भाते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि चेतना मानस-सागर की सतह मात्र है और शीघ्र, उसकी गहराई में हमारी समस्त अनुभवशक्ति संचित है। केवल प्रयत्न तथा सघम कीजिए, वे सब ऊपर उठ आयेगे और भाप अपने पूर्व जन्मों का जी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

यह प्रत्यक्ष एवं प्रतिपाद्य प्रमाण है। सत्य-साधन ही किसी परिकल्पना का पूर्ण प्रमाण होता है और अविद्यमान यहाँ समस्त ससार को एक चुनौती दे रहे हैं। हमने उस रहस्य का पता लगा लिया है जिससे स्मृति-सागर की गंभीरतम मह राई तक का मन्थन किया जा सकता है—उसका प्रयोग कीजिए और भाप अपने पूर्व जन्मों की सपूर्व संस्मृति प्राप्त कर लेंगे।

अतएव हिन्दू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। 'उसको घसने काट नहीं सकते अग्नि शय्य नहीं कर सकती भस्म नहीं कर सकता और वायु मुखा नहीं सकती। हिन्दुओं की यह धारणा है कि आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसकी परिधि नहीं है, किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है और मृत्यु का अर्थ है, इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित हो जाना। यह आत्मा बड़ की सपनाओं से बड़ा नहीं है। वह स्वयंसेवक मित्य-बुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव है। परन्तु किसी कारण से वह अपने को बड़ से बँधी हुई पाती है और अपने को बड़ ही समझती है।

१ नैर्न चिन्तयति धरत्राजि नैर्न बहुति पात्यकः।

न नैर्न लोकेत्यन्त्यापो न जीवति साक्यः ॥ पविता ॥ १२३ ॥

अब दूसरा प्रश्न यह है कि यह विशुद्ध, पूर्ण और विमुक्त आत्मा इस प्रकार जड का दासत्व क्यों करती है? स्वयं पूर्ण होते हुए भी इस आत्मा को अपूर्ण होने का भ्रम कैसे हो जाता है? हमें यह बताया जाता है कि हिन्दू लोग इस प्रश्न से कतरा जाते हैं और कह देते हैं कि ऐसा प्रश्न हो ही नहीं सकता। कुछ विचारक पूर्णप्राय सत्ताओं की कल्पना कर लेते हैं और इस रिक्त को भरने के लिए बड़े बड़े वैज्ञानिक नामों का प्रयोग करते हैं। परन्तु नाम दे देना व्याख्या नहीं है। प्रश्न ज्यों का त्यों ही बना रहता है। पूर्ण ब्रह्म पूर्णप्राय अथवा अपूर्ण कैसे हो सकता है, शुद्ध, निरपेक्ष ब्रह्म अपने स्वभाव को सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण भर भी परिवर्तित कैसे कर सकता है? पर हिन्दू ईमानदार है। वह मिथ्या तर्क का सहारा नहीं लेना चाहता। पुरुषोचित रूप में इस प्रश्न का सामना करने का साहस वह रखता है, और इस प्रश्न का उत्तर देता है, "मैं नहीं जानता। मैं नहीं जानता कि पूर्ण आत्मा अपने को अपूर्ण कैसे समझने लगी, जड-पदार्थों के संयोग से अपने को जड-नियमाधीन कैसे मानने लगी।" पर इस सबके वावजूद तथ्य जो है, वही रहेगा। यह सभी की चेतना का एक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को शरीर मानता है। हिन्दू इस बात की व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं करता कि मनुष्य अपने को शरीर क्यों समझता है। 'यह ईश्वर की इच्छा है', यह उत्तर कोई समाधान नहीं है। यह उत्तर हिन्दू के 'मैं नहीं जानता' के सिवा और कुछ नहीं है।

अतएव मनुष्य की आत्मा अनादि और अमर है, पूर्ण और अनन्त है, और मृत्यु का अर्थ है—एक शरीर से दूसरे शरीर में केवल केन्द्र-परिवर्तन। वर्तमान अवस्था हमारे पूर्वानुष्ठित कर्मों द्वारा निश्चित होती है और भविष्य, वर्तमान कर्मों द्वारा। आत्मा जन्म और मृत्यु के चक्र में लगातार घूमती हुई कभी ऊपर विकास करती है, कभी प्रत्यागमन करती है। पर यहाँ एक दूसरा प्रश्न उठता है—क्या मनुष्य प्रचंड तूफान में ग्रस्त वह छोटी सी नौका है, जो एक क्षण किसी वेगवान तरंग के फेनिल शिखर पर चढ़ जाती है और दूसरे क्षण भयानक गर्त में नीचे ढकेल दी जाती है, अपने शुभ और अशुभ कर्मों की दया पर केवल इधर-उधर भटकती फिरती है, क्या वह कार्य-कारण की सतत प्रवाही, निर्भर, भीषण तथा गर्जनशील धारा में पड़ी हुई अशक्त, असहाय भग्न पोत है, क्या वह उस कारणता के चक्र के नीचे पड़ा हुआ एक क्षुद्र शलभ है, जो विधवा के आँसुओं तथा अनाथ बालक की आहों की तनिक भी चिन्ता न करते हुए, अपने मार्ग में आनेवाली सभी वस्तुओं को कुचल डालता है? इस प्रकार के विचार से अतःकरण कांप उठता है, पर यही प्रकृति का नियम है। तो फिर क्या कोई आशा ही नहीं है? क्या इससे बचने का कोई माग नहीं है?—यही करुण पुकार निराशाविह्वल हृदय के

है। एक विशेष प्रवृत्तिवादी जीवात्मा 'योम्य योम्येन युज्यते' इस नियमानुसार उसी शरीर में जन्म ग्रहण करती है जो उस प्रवृत्ति के प्रकट करने के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हो। यह विज्ञानसंगत है क्योंकि विज्ञान हर प्रवृत्ति की व्याख्या माध्यम से करना चाहता है और आवृत्त भावप्रवृत्तियों से बनती है। अतएव मनुजात जीवात्मा की नैसर्गिक आवृत्तों की व्याख्या के लिए आवृत्तियाँ अनिवार्य हो जाती हैं। और चूंकि वे प्रस्तुत जीवन में प्राप्त नहीं होती अतः वे पिछले जीवनों से ही आयी होती हैं।

एक और दृष्टिकोण है। ये सभी बातें यदि स्वयंसिद्ध भी मान लें तो मैं अपने पूर्व जन्म की कोई बात स्मरण क्यों नहीं कर पाता? इसका समाधान सरल है। मैं अभी अभी बने हूँ। वह मेरी मातृभाषा नहीं है। बस्तुतः इस समय मेरी मातृभाषा का कोई भी अक्षर मेरे चित्त में उपस्थित नहीं है। पर उन अक्षरों को सामने खाने का थोड़ा प्रयत्न करते ही वे मेरे मन में उमड़ आते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि वेतना मानस-सागर की सतह मात्र है और नीचे, उसकी गहराई में हमारी समस्त अनुभवशक्ति संचित है। केवल प्रयत्न तथा उद्यम कीलिए, वे सब ऊपर उठ आयेगे और आप अपने पूर्व जन्मों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

यह प्रत्यक्ष एवं प्रतिपाद्य प्रमाण है। सत्य-साधन ही किसी परिकल्पना का पूर्ण प्रमाण होता है और आधिगम यहाँ समस्त सत्कार को एक धुनीटी वे खड़े हैं। हमने उस रहस्य का पता लगा लिया है जिसके स्मृति-सागर की बंसीरतम गहराई तक का मन्थन किया जा सकता है—उसका प्रयोग कीलिए और आप अपने पूर्व जन्मों की संपूर्ण संस्मृति प्राप्त कर लेंगे।

अतएव हिन्दू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। 'उसको घस्य काट नहीं सकते अग्नि दहन नहीं कर सकती बल भिन्नो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।' हिन्दुओं की यह धारणा है कि आत्मा एक ऐसा ब्रह्म है, जिसकी परिधि नहीं है, किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में अवस्थित है और मृत्यु का अर्थ है, इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरित हो जाना। यह आत्मा जड़ की उपाधियों से बद्ध नहीं है। वह स्वकल्पित निरल्प-सूक्ष्म-बुद्ध-मुक्तस्वभाव है। परन्तु किसी कारण से वह अपने को जड़ से बंधी हुई पाती है और अपने को जड़ ही समझती है।

१ नैनं किञ्चनित् घसत्राणि नैनं बहुति पावकः।

२ नैनं नैवेद्यमन्वापो न ज्योत्यसि नास्तः ॥ मीमा॥२।२३॥

वह सर्वत्र है, शुद्ध, निराकार, सर्वशक्तिमान है, सब पर उसकी पूर्ण दया है। 'तू हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तू हमारा परम प्रेमास्पद सखा है, तू ही सभी शक्तियों का मूल है, हमें शक्ति दे। तू ही इन अखिल भुवनो का भार वहन करनेवाला है, तू मुझे इस जीवन के क्षुद्र भार को वहन करने में सहायता दे।' वैदिक ऋषियों ने यही गाया है। हम उसकी पूजा किस प्रकार करें? प्रेम के द्वारा। 'ऐहिक तथा पारत्रिक समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अधिक प्रिय जानकर उस परम प्रेमास्पद की पूजा करनी चाहिए।'

वेद हमें प्रेम के सम्बन्ध में इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं। अब देखें कि श्री कृष्ण ने, जिन्हें हिन्दू लोग पृथ्वी पर ईश्वर का पूर्णवितार मानते हैं, इस प्रेम के सिद्धांत का पूर्ण विकास किस प्रकार किया है और हमें क्या उपदेश दिया है।

उन्होंने कहा है कि मनुष्य को इस ससार में पद्मपत्र की तरह रहना चाहिए। पद्मपत्र जैसे पानी में रहकर भी उससे नहीं भीगता, उसी प्रकार मनुष्य को भी ससार में रहना चाहिए—उसका हृदय ईश्वर में लगा रहे और उसके हाथ—कर्म करने में लगे रहे।

इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्रत्याशा से ईश्वर से प्रेम करना बुरी बात नहीं, पर केवल प्रेम के लिए ही ईश्वर से प्रेम करना सबसे अच्छा है, और उसके निकट यही प्रार्थना करनी उचित है, 'हे भगवन्, मुझे न तो सम्पत्ति चाहिए, न सन्तति, न विद्या। यदि तेरी इच्छा है, तो सहस्रो बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ूंगा, पर हे प्रभो, केवल इतना ही दे कि मैं फल की आशा छोड़कर तेरी भक्ति करूँ, केवल प्रेम के लिए ही तुझ पर मेरा निस्वार्थ प्रेम हो।' कृष्ण के एक शिष्य उस समय भारत के सम्राट् थे। उनके शत्रुओं ने उन्हें राजसिंहासन से च्युत कर दिया था और उन्हें अपनी सम्राज्ञी के साथ हिमालय के जंगल में आश्रय लेना पड़ा था। वहाँ एक दिन सम्राज्ञी ने उनसे प्रश्न किया, "मनुष्यों में सर्वोपरि पुण्यवान होते हुए भी आपको इतना दुःख क्यों सहना पड़ता है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महारानी, देखो, यह हिमालय कैसा भव्य और सुन्दर है। मैं इससे प्रेम करता हूँ। यह मुझे कुछ नहीं देता, पर मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं भव्य और सुंदर वस्तु से प्रेम करता हूँ और इसी कारण मैं उससे प्रेम करता हूँ। उसी प्रकार मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ। वह अखिल सौन्दर्य, समस्त सुपमा का मूल है। वही एक ऐसा पात्र है, जिससे प्रेम करना चाहिए। उससे प्रेम करना मेरा स्वभाव

१ न घन न जन न च सुन्दरी कवितां धा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥ शिक्षाष्टक ॥४॥

अन्तस्तस्य से ऊपर उठी और उस करुणामय के सिंहासन तक जा पहुँची। वहाँ से माया तथा सात्त्विकता की बानी निकली और उसने एक वैदिक ऋषि को अंत-स्फूर्ति प्रदान की और उसने संसार के सामने खड़े होकर तूर्य-स्वर में इस आनंद-सन्देश की घोषणा की है अमृत के पुत्रो! मुनो हे दिव्यधामवासी इक्ष्वाकु! तुम भी मुनो मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष का प्राप्त कर लिया है जो समस्त अज्ञान-अधकार और माया के परे है। केवल उस पुरुष को जानकर ही तुम मृत्यु के चक्र से छूट सकते हो। पूछता कोई पत्र नहीं है! 'अमृत के पुत्रो'—कैसा मधुर और आसाजनक सम्बोधन है मह! बन्धुजो! इसी मधुर नाम—अमृत के अधिकारी से आपको सम्बोधित करें आप इसकी आज्ञा सुनें। निश्चय ही हिन्दू आपको पापी कहना अस्वीकार करता है। आप तो ईश्वर की सन्तान हैं, अमर आनंद के भागी हैं पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं। आप इस मर्त्यभूमि पर देवता हैं। आप मछा पापी? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है, वह मानव स्वल्प पर घोर साक्ष्य है। आप उठें! हे सिंहो! आर्ये और इस मिथ्या भ्रम को झटककर दूर फेंक दें कि आप भेड़ हैं। आप हैं आत्मा अमर, आत्मा मुक्त आनंदमय और निरपे। आप भेड़ नहीं हैं, आप खरीर नहीं हैं। भेड़ तो माधका बास है न कि आप हैं बास भेड़ के।

अब यह ऐसी घोषणा नहीं करते कि यह सृष्टि-व्यापार कृपिय निर्मम विधानों का संघात है और न यह कि यह कार्य-कारण की अनन्त कारा है। बरन् वे यह घोषित करते हैं कि इन सब प्राकृतिक नियमों के मूक से भेड़-तल्प और शक्ति के प्रत्येक अनु-परमाणु में जोतप्रोत वही एक विराजमान है जिसके आदेश से वामु चळती है अग्नि बहूकती है बादल बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर नाचती है।

और उस पुरुष का स्वल्प क्या है?

१ मृष्यन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा सा ये आत्मानि दिव्यानि तस्युः ।

* * *

वेदाहुर्मेतं पुरुषं महात्ममादित्यवर्चं तमसः परस्तात् ।

तमेव चिदित्वाप्सिमृत्युमेति नाम्ब पन्था विद्यतेऽप्रयथात् ॥

—इष्येवास्वतरोपनिषद् ॥२।५। ३-८॥

२ भयात्प्रत्याप्तिस्तपति भयात्तपति कूर्यः ।

भयादिनाह च वाप्यह मृत्युर्वाविति पंचमः ॥

—उडोपनिषद् ॥२।३।३॥

वह सर्वत्र है, शुद्ध, निराकार, सर्वशक्तिमान है, सब पर उसकी पूर्ण दया है। 'तू हमारा पिता है, तू हमारी माता है, तू हमारा परम प्रेमास्पद सखा है, तू ही सभी शक्तियों का मूल है, हमें शक्ति दे। तू ही इन अखिल भुवनों का भार वहन करनेवाला है, तू मुझे इस जीवन के क्षुद्र भार को वहन करने में सहायता दे।' वैदिक ऋषियों ने यही गाया है। हम उसकी पूजा किस प्रकार करें? प्रेम के द्वारा। 'ऐहिक तथा पारत्रिक समस्त प्रिय वस्तुओं से भी अधिक प्रिय जानकर उस परम प्रेमास्पद की पूजा करनी चाहिए।'

वेद हमें प्रेम के सम्बन्ध में इसी प्रकार की शिक्षा देते हैं। अब देखें कि श्री कृष्ण ने, जिन्हें हिन्दू लोग पृथ्वी पर ईश्वर का पूर्णवितार मानते हैं, इस प्रेम के सिद्धांत का पूर्ण विकास किस प्रकार किया है और हमें क्या उपदेश दिया है।

उन्होंने कहा है कि मनुष्य को इस ससार में पद्मपत्र की तरह रहना चाहिए। पद्मपत्र जैसे पानी में रहकर भी उससे नहीं भीगता, उसी प्रकार मनुष्य को भी ससार में रहना चाहिए—उसका हृदय ईश्वर में लगा रहे और उसके हाथ—कर्म करने में लगे रहे।

इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्रत्याशा से ईश्वर से प्रेम करना बुरी बात नहीं, पर केवल प्रेम के लिए ही ईश्वर में प्रेम करना सबसे अच्छा है, और उसके निकट यही प्रार्थना करनी उचित है, 'हे भगवन्, मुझे न तो सम्पत्ति चाहिए, न सन्तति, न विद्या। यदि तेरी इच्छा है, तो सहस्रो बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ूंगा, पर हे प्रभो, केवल इतना ही दे कि मैं फल की आशा छोड़कर तेरी भक्ति करूँ, केवल प्रेम के लिए ही तुझ पर मेरा निस्वार्थ प्रेम हो।' कृष्ण के एक शिष्य उस समय भारत के सम्राट् थे। उनके शत्रुओं ने उन्हें राजसिंहासन से च्युत कर दिया था और उन्हें अपनी सम्राज्ञी के साथ हिमालय के जंगल में आश्रय लेना पड़ा था। वहाँ एक दिन सम्राज्ञी ने उनसे प्रश्न किया, "मनुष्यों में सर्वोपरि पुण्यवान् होते हुए भी आपको इतना दुःख क्यों सहना पड़ता है?" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "महारानी, देखो, यह हिमालय कैसा भव्य और सुन्दर है। मैं इससे प्रेम करता हूँ। यह मुझे कुछ नहीं देता, पर मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि मैं भव्य और सुन्दर वस्तु से प्रेम करता हूँ और इसी कारण मैं उससे प्रेम करता हूँ। उसी प्रकार मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ। वह अखिल सौन्दर्य, समस्त सुपमा का मूल है। वही एक ऐसा पात्र है, जिससे प्रेम करना चाहिए। उससे प्रेम करना मेरा स्वभाव

१ न धन न जन न च सुन्दरीं क्विंतां वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताव्भक्तिरहेतुकी स्वयि ॥ शिक्षाष्टक ॥४॥

है और इसीलिए मैं उससे प्रेम करता हूँ। मैं किसी बात के लिए उससे प्रार्थना नहीं करता मैं उससे कोई वस्तु नहीं माँगता। उसकी जहाँ इच्छा हा मुझे रहे। मैं तो सब अवस्थावा में केवल प्रेम के लिए ही उस पर प्रेम करना चाहता हूँ मैं प्रेम में सीमा नहीं कर सकता।”

बह कहते हैं कि आत्मा दिव्यस्वरूप है, वह केवल पंचभूतों के बन्धनों में बंध गयी है और उन बन्धनों के टूटने पर वह अपने पूज्य को प्राप्त कर लेगी। इस अवस्था का नाम मुक्ति है, जिसका अर्थ है स्वाधीनता—अपूर्वता के बन्धनों से छुटकारा जन्म-मृत्यु से छुटकारा।

और यह बन्धन केवल ईश्वर की दया से ही टूट सकता है और यह दया पवित्र सोचों को ही प्राप्त होती है। अतएव पवित्रता ही उसके अनुग्रह की प्राप्ति का उपाय है। उसकी दया किस प्रकार काम करती है? वह पवित्र हृदय में अपने को प्रकाशित करता है। पवित्र और निर्मल मनुष्य इसी जीवन में ईश्वर-दर्शन प्राप्त कर झटार्थ हो जाता है। 'तब उसकी समस्त कुटिलता गप्ट हो जाती है, सारे सन्देह दूर हो जाते हैं।' तब वह कार्य-कारण के मयावह नियम के हाथ का बिलौना नहीं रह जाता। यही हिन्दू धर्म का मूलभूत सिद्धान्त है—यही उसका अखंड मार्मिक भाव है। हिन्दू सम्प्रदाय और सिद्धान्तों के आल में जीना नहीं चाहता। यदि इन साधारण इन्द्रिय-संवेद्य विषयों के पर और भी कोई सत्ताएँ हैं, तो वह उनका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता है। यदि उसमें कोई आत्मा है जो एक वस्तु नहीं है, यदि कोई दयामय सर्वव्यापी विश्वात्मा है, तो वह उसका साम्राज्य करेगा। वह उसे अबस्य देखेगा और मात्र उसीसे उसकी समस्त धंकारें दूर होंगी। अतः हिन्दू ऋषि आत्मा के विषय में ईश्वर के विषय में यही सर्वोत्तम प्रमाण देता है 'मैंने आत्मा का दर्शन किया मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। और यही पूर्णत्व की एकमात्र धर्त है। हिन्दू धर्म मित्र मित्र मठ-मठालयों या सिद्धान्तों पर विश्वास करने के लिए सचर्च और प्रयत्न में निहित नहीं है, बल्कि वह साक्षात्कार है वह केवल विश्वास कर लेना नहीं है वह होना और बनना है।

१ मातुं कर्मफलान्नेषी राजभुवि पराम्पुत।

इदामि देयमित्येष यत्र पण्डित्यभिरपुत ॥

कर्म एव नतः कुर्वन् स्वभावात्कर्म मे कृतम्।

कर्मव्यतिक्रमो ह्येवो कर्मव्यो कर्मव्यतिक्रमम् ॥

—महानारयण, वनपर्व ॥११२५॥

२ निन्दते ह्युद्वेगप्रवृत्तिद्वन्द्वे सर्वसंनया ॥

धीमन्ते चात्म कर्माणि तस्मिन्पुत्रे परावरे ॥ मुंडकोपनिषद् ॥२१२८॥

इस प्रकार हिन्दुओं की सारी साधना-प्रणाली का लक्ष्य है—सतत अव्यवसाय द्वारा पूर्ण बन जाना, दिव्य बन जाना, ईश्वर को प्राप्त करना और उसके दर्शन कर लेना, और ईश्वर को इसी प्रकार प्राप्त करना, उसके दर्शन कर लेना, उस स्वर्गस्थ पिता के समान पूर्ण हो जाना—हिन्दुओं का धर्म है।

और जब मनुष्य पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है, तब उसका क्या होता है ? तब वह असीम परमानन्द का जीवन व्यतीत करता है। जिस एकमात्र वस्तु में मनुष्य को सुख पाना चाहिए, उसे अर्थात् ईश्वर को पाकर वह परम तथा असीम आनन्द का उपभोग करता है और ईश्वर के साथ भी परमानन्द का आस्वादन करता है।

यहाँ तक सभी हिंदू एकमत हैं। भारत के विविध संप्रदायों का यह सामान्य धर्म है। परन्तु पूर्ण निरपेक्ष होता है, और निरपेक्ष दो या तीन नहीं हो सकता। उसमें कोई गुण नहीं हो सकता, वह व्यक्ति नहीं हो सकता। अतः जब आत्मा पूर्ण और निरपेक्ष हो जाती है, तब वह ब्रह्म के साथ एक हो जाती है, और वह ईश्वर को केवल अपने ही स्वरूप की पूर्णता, सत्यता और सत्ता के रूप में—परम सत्, परम चित्, परम आनन्द के रूप में—प्रत्यक्ष करती है। इसी साक्षात्कार के विषय में हम बारम्बार पढा करते हैं कि इसमें मनुष्य अपने व्यक्तित्व को खोकर जड़ता प्राप्त करता है या पत्थर के समान बन जाता है।

‘जिन्हे चोट कभी नहीं लगी है, वे ही चोट के दाग की ओर हँसी की दृष्टि से देखते हैं।’ मैं आपको बताता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं होती। यदि इस एक क्षुद्र शरीर की चेतना से इतना आनन्द होता है, तो दो शरीरों की चेतना का आनन्द अधिक होना चाहिए, और उसी तरह क्रमशः अनेक शरीरों की चेतना के साथ साथ आनन्द की मात्रा भी अधिकाधिक बढ़नी चाहिए, और विश्व-चेतना का बोध होने पर आनन्द की परम अवस्था प्राप्त हो जायगी।

अतः उस असीम विश्व-व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिए इस कारास्वरूप दुःखमय क्षुद्र व्यक्तित्व का अंत होना चाहिए। जब मैं प्राणस्वरूप से एक हो जाऊँगा, तभी मृत्यु के हाथ से मेरा छुटकारा हो सकता है, जब मैं आनन्दस्वरूप हो जाऊँगा, तभी दुःख का अंत हो सकता है, जब मैं ज्ञानस्वरूप हो जाऊँगा, तभी सब अज्ञान का अन्त हो सकता है, और यह अनिवार्य वैज्ञानिक निष्कर्ष भी है। विज्ञान ने मेरे निकट यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा यह भौतिक व्यक्तित्व भ्रम मात्र है, वास्तव में मेरा यह शरीर एक अविच्छिन्न जडसागर में एक क्षुद्र सदा परिवर्तित होता रहनेवाला पिंड है, और मेरे दूसरे पक्ष—आत्मा के सबंध में अद्वैत ही अनिवार्य निष्कर्ष है।

विज्ञान एकत्र ही खोज के सिवा और कुछ नहीं है। ज्यों ही कोई विज्ञान पूर्ण एकत्र एक पहुँच जायगा त्यों ही उसकी प्रगति रुक जायगी क्योंकि तब वह अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। तब्राह्मणार्थ रसायनशास्त्र यदि एक बार उस एक मूख तत्व का पता लगा सके जिससे और सब द्रव्य बन सकते हैं तो फिर वह और आगे नहीं बढ़ सकेगा। भौतिकी जब उस एक मूख शक्ति का पता लगा लेगी अन्य शक्तियाँ जिसकी अभिव्यक्ति है तब वह नहीं रुक जायगी। जैसे ही धर्मशास्त्र भी उस समग्र पूर्णता को प्राप्त कर लेगा तब वह उसको खोज लेगा या इस मृत्यु के इस लोक में एकमात्र जीवन है जो इस परिवर्तनशील जगत् का धारकत आधार है जो एकमात्र परमात्मा है अन्य सब आत्माएँ जिसकी प्रतीय मान अभिव्यक्तियाँ हैं। इस प्रकार अनेकता और ईश्वर में होते हुए इस परम ईश्वर की प्राप्ति होती है। धर्म इससे माने नहीं जा सकता। यही समस्त विज्ञानों का अन्त स्वरूप है।

समस्त विज्ञान अंततः इसी निष्कर्ष पर अभिजायत पहुँचेंगे। आज विज्ञान का अन्त अभिव्यक्ति है, सृष्टि नहीं और हिन्दू को यह देखकर बड़ी प्रसन्नता है कि जिसको वह अपने अन्तस्वरूप में इतने युगों से महत्त्व देता रहा है अब उसीकी शिक्षा अधिक सक्षम माया में विज्ञान के नूतनतम निष्कर्षों के अतिरिक्त प्रकाश में ही जा रही है।

अब हम दर्शन की अमीप्यार्यों से उत्तरकर ज्ञानरहित लोगों के धर्म की ओर आते हैं। यह मैं प्रारम्भ में ही आपको बता देना चाहता हूँ कि भारतवर्ष में अनेकस्वरूपता नहीं है। प्रत्येक मन्दिर में यदि कोई बड़ा होकर सुने तो वह यही पायेगा कि भक्तमय सर्वव्यापित्व आदि ईश्वर के सभी गुणों का आरोप उन मूर्तियों में करते हैं। यह अनेकस्वरूपता नहीं है, और न एकदेववाद से ही इस स्थिति की व्याख्या हो सकती है। 'गूढाच को चाहूँ वृत्त कोई भी नाम क्यों न दे दिया नाम पर वह सुषुप्ति तो वैसी ही मग्न देता रहेगा। नाम ही व्याख्या नहीं होती।

वचन की एक बात मुझे यहाँ याद आती है। एक ईसाई पादरी कुछ मनुष्यों की भीड़ जमा करके धर्मोपदेश कर रहा था। बहुतेरी मजेदार बातों के साथ वह पादरी यह भी कह पाया "अगर मैं तुम्हारी देवपूर्ति को एक बंडा बनाऊँ, तो वह भेरा क्या कर सकती है? एक घोटा ने जट चुमता सा जवाब दे डाला "अगर मैं तुम्हारे ईश्वर को माँकी दे दूँ तो वह भेरा क्या कर सकती है? पादरी बोला "मरने के बाद वह तुम्हें छोड़ा देगा। हिन्दू भी तनकर बोले उवा 'तुम मरोगे तब ठीक उसी तरह हमारी देवमूर्ति भी तुम्हें बंध लेगी।

वृक्ष अपने फलो से जाना जाता है। जब मूर्तिपूजक कहे जानेवाले लोगो मे मैं ऐसे मनुष्यो को पाता हूँ, जिनकी नैतिकता, आध्यात्मिकता और प्रेम अपना सानी नहीं रखते, तब मैं रुक जाता हूँ और अपने से यही पूछता हूँ—‘क्या पाप से भी पवित्रता की उत्पत्ति हो सकती है?’

अधविश्वास मनुष्य का महान् शत्रु है, पर धर्मान्धता तो उससे भी बढकर है। ईसाई गिरजाघर क्यो जाता है? क्रूस क्यो पवित्र है? प्रार्थना के समय आकाश की ओर मुँह क्यो किया जाता है? कैथोलिक ईसाइयो के गिरजाघरो मे इतनी मूर्तियाँ क्यो रहा करती हैं? और प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयो के मन मे प्रार्थना के समय इतनी मूर्तियाँ क्यो रहा करती हैं? मेरे भाइयो! मन मे किसी मूर्ति के बिना आये कुछ सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना श्वास लिये बिना जीवित रहना। साहचर्य के नियमानुसार भौतिक मूर्ति से मानसिक भावविशेष का उद्दीपन हो जाता है, अथवा मन मे भावविशेष का उद्दीपन होने से तदनु रूप मूर्ति-विशेष का भी आविर्भाव होता है। इसीलिए तो हिन्दू आराधना के समय बाह्य प्रतीक का उपयोग करता है। वह आपको बतलायेगा कि यह बाह्य प्रतीक उसके मन को अपने ध्यान के विषय परमेश्वर मे एकाग्रता से स्थिर रहने में सहायता देता है। वह भी यह बात उतनी ही अच्छी तरह से जानता है, जितना आप जानते हैं कि वह मूर्ति न तो ईश्वर ही है और न सर्वव्यापी ही। और सच पूछिए तो दुनिया के लोग ‘सर्वव्यापित्व’ का क्या अर्थ समझते हैं? वह तो केवल एक शब्द या प्रतीक मात्र है। क्या परमेश्वर का भी कोई क्षेत्रफल है? यदि नहीं, तो जिस समय हम सर्वव्यापी शब्द का उच्चारण करते हैं, उस समय विस्तृत आकाश या देश की ही कल्पना करने के सिवा हम और क्या करते हैं?

अपनी मानसिक सरचना के नियमानुसार, हमे किसी प्रकार अपनी अनतता की भावना को नील आकाश या अपार समुद्र की कल्पना से सम्बद्ध करना पडता है, उसी तरह हम पवित्रता के भाव को अपने स्वभावानुसार गिरजाघर, मस्जिद या क्रूस से जोड लेते हैं। हिन्दू लोग पवित्रता, नित्यत्व, सर्वव्यापित्व आदि आदि भावो का सम्बन्ध विभिन्न मूर्तियो और रूपो से जोडते हैं। अन्तर यह है कि जहाँ अन्य लोग अपना सारा जीवन किसी गिरजाघर की मूर्ति की भक्ति मे ही बिता देते है और उससे आगे नहीं बढते, क्योकि उनके लिए तो धर्म का अर्थ यही है कि कुछ विशिष्ट सिद्धान्तो को वे अपनी बुद्धि द्वारा स्वीकृत कर लें और अपने मानव-बन्धुओं की भलाई करते रहे—वहाँ एक हिन्दू की सारी धर्म-भावना प्रत्यक्ष अनुभूति या आत्म-साक्षात्कार मे केन्द्रीभूत होती है। मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करके दिव्य बनना है। मूर्तियाँ, मन्दिर, गिरजाघर या ग्रन्थ तो धर्म-जीवन की बाल्यावस्था

में केवल आचार या सहायक मात्र हैं पर उसे उत्तरोत्तर उत्पत्ति ही करनी चाहिए।

मनुष्य को कहीं पर कलना नहीं चाहिए। सास्त्र का वाक्य है कि 'बाह्य पूजा या मूर्ति-पूजा सबसे नीचे की अवस्था है आगे बढ़ने का प्रयास करते समय मात्र सिद्ध प्रार्थना साधना की दृष्टि अवस्था है और सबसे उत्कृष्ट अवस्था तो वह है जब परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाय।' देखिए, वही अनुरागी साधक जो पहले मूर्ति के सामने प्रणम रहता था अब क्या कह रहा है—सूर्य उस परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकता न चन्द्रमा या ताराग्रह ही वह विद्युत्प्रभा भी परमेश्वर को उद्भासित नहीं कर सकतीं तब इस सामान्य जगत् की बात ही क्या! ये सभी उसी परमेश्वर के कारण प्रकाशित होते हैं।^१ पर वह किसीकी मूर्ति को माझी नहीं देता और न उसकी पूजा को पाप ही बताता है। वह तो उसे जीवन की एक आवश्यक अवस्था जानकर उसको स्वीकार करता है। 'बाह्यक ही मनुष्य का जन्म है। तो क्या किसी बृद्ध पुंस्य का बचपन या युवावस्था को पाप या बुरा कहना उचित होगा?

यदि कोई मनुष्य अपने विषय स्वरूप को मूर्ति की बहामता से अनुभव कर सकता है, तो क्या उसे पाप कहना ठीक होगा? और जब वह उस अवस्था के परे पहुँच गया है, तब भी उसके लिए मूर्ति-पूजा को प्रभात्मक कहना उचित नहीं है। हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जा रहा है, वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्न श्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर ही रहा है। हिन्दू के मतानुसार निम्नतम जड़पूजावाच से लेकर सर्वोच्च ब्रह्मवाच तक जितने धर्म हैं वे सभी अपने अपने धर्म तथा साहचर्य की अवस्था द्वारा निर्धारित होकर उस असीम के ज्ञान तथा उपकर्म के निमित्त मानवधामा के विविध प्रयत्न हैं और वह प्रत्येक प्रयत्न उत्पत्ति की एक अवस्था को सूचित करता है। प्रत्येक जीव उस युवा मरुद् पक्षी के समान है, जो धीरे धीरे ऊँचा उड़ता हुआ तथा अधिकाधिक सफ़ेद-जम्पावन करता हुआ अंत में उस भास्वर सूर्य तक पहुँच जाता है।

१ उत्तमो ब्रह्मतद्वाचो प्यजन्मत्वास्तु धर्म्यतः।

स्तुतिर्बर्होऽप्यनो भावो बह्विःपूजाऽप्यभाषणा ॥ बह्वानिर्वाच तत्र ॥४११२॥

२ न तत्र सूर्यो भवति न चन्द्रतारकं
 वैवा विद्युतो भान्ति पुस्तोऽप्यवन्तिः।

इमेव वास्तवमुभासि तर्ब

सत्यं भासा सर्वनिर्ब विनासि ॥ कठोपनिषद् ॥२०२॥१५॥

अनेकता में एकता प्रकृति का विधान है और हिन्दुओं ने इसे स्वीकार किया है। अन्य प्रत्येक धर्म में कुछ निर्दिष्ट मतवाद विधिवद्ध कर दिये गये हैं और सारे समाज को उन्हें मानना अनिवार्य कर दिया जाता है। वह समाज के सामने केवल एक कोट रख देता है, जो जैक, जॉन और हेनरी, सभी को ठीक होना चाहिए। यदि वह जॉन या हेनरी के शरीर में ठीक नहीं आता, तो उसे अपना तन ढँकने के लिए बिना कोट के ही रहना होगा। हिन्दुओं ने यह जान लिया है कि निरपेक्ष ब्रह्म-तत्त्व का साक्षात्कार, चिन्तन या वर्णन केवल सापेक्ष के सहारे ही हो सकता है, और मूर्तियाँ, क्रूस या नवोदित चन्द्र केवल विभिन्न प्रतीक हैं, वे मानो बहुत सी खूंटियाँ हैं, जिनमें धार्मिक भावनाएँ लटकायी जाती हैं। ऐसा नहीं है कि इन प्रतीकों की आवश्यकता हर एक के लिए हो, किन्तु जिनको अपने लिए इन प्रतीकों की सहायता की आवश्यकता नहीं है, उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं कि वे गलत हैं। हिन्दू धर्म में वे अनिवार्य नहीं हैं।

एक बात आपको अवश्य बतला दूँ। भारतवर्ष में मूर्ति-पूजा कोई जघन्य बात नहीं है। वह व्यभिचार की जननी नहीं है। वरन् वह अविकसित मन के लिए उच्च आध्यात्मिक भाव को ग्रहण करने का उपाय है। अवश्य, हिन्दुओं के बहुतेरे दोष हैं, उनके कुछ अपने अपवाद हैं, पर यह ध्यान रखिए कि उनके वे दोष अपने शरीर को ही उत्पीड़ित करने तक सीमित हैं, वे कभी अपने पड़ोसियों का गला नहीं काटने जाते। एक हिन्दू धर्मान्वि भले ही चित्ता पर अपने आपको जला डाले, पर वह विधर्मियों को जलाने के लिए 'इन्विश्रिशन' की अग्नि कभी भी प्रज्वलित नहीं करेगा। और इस बात के लिए उसके धर्म को उससे अधिक दोषी नहीं ठहराया जा सकता, जितना डाइनो को जलाने का दोष ईसाई धर्म पर मढ़ा जा सकता है।

अतः हिन्दुओं की दृष्टि में समस्त धर्म-जगत् भिन्न भिन्न रुचिवाले स्त्री-पुरुषों की, विभिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में से होते हुए एक ही लक्ष्य की ओर यात्रा है, प्रगति है। प्रत्येक धर्म जबभावापन्न मानव से एक ईश्वर का उद्भव कर रहा है, और वही ईश्वर उन सबका प्रेरक है। तो फिर इतने परस्पर विरोध क्यों है? हिन्दुओं का कहना है कि ये विरोध केवल आभासी हैं। उनकी उत्पत्ति सत्य के द्वारा भिन्न अवस्थाओं और प्रकृतियों के अनुरूप अपना समायोजन करते समय होती है।

वही एक ज्योति भिन्न भिन्न रंग के काँच में से भिन्न भिन्न रूप से प्रकट होती है। समायोजन के लिए इस प्रकार की अल्प विविधता आवश्यक है। परन्तु प्रत्येक के अन्तःस्थल में उसी सत्य का राज्य है। ईश्वर ने अपने कृष्णावतार में हिन्दुओं को यह उपदेश दिया है, 'प्रत्येक धर्म में मैं, मोती की माला में सूत्र की तरह पिरोया

हुमा है ?" जहाँ भी तुम्हें मानव-सृष्टि को उत्पन्न बनानेवाली और पावन करने-वासी अतिशय पवित्रता और असाधारण शक्ति दिखायी व तो जान लो कि वह मरे तब के भँस स ही उत्पन्न हुमा है।" और इस विद्या का परिणाम क्या हुमा है ? सारे मसार का मेरी मह श्रुतीही है कि वह समय संस्कृत दर्शनशास्त्र म मुझे एक ऐसी उक्ति तो दिखा दे जिसम मह बतलाया गया हो कि केवल हिन्दुओं का ही उद्धार हाभा भीर दुसरत का नहीं। श्याम कहते हैं हमारी पाठि भीर सम्प्रदाय की सीमा के बाहर भी पूजत्य तक पहुँचे हुए मनुष्य हैं।" एक बात और है। ईस्वर म ही अपने सभी भावों को कर्मिष्ठ करनवाळा हिन्दू अज्ञेयवादी बौद्ध धर्म और निरीश्वरवादी जैन धर्म पर कैस धडा रख सकता है ?

यद्यपि बौद्ध तथा जैन ईस्वर पर निर्भर नहीं रहते तथापि उनके धर्म की पूर्ण शक्ति प्रत्येक धर्म क महान् केन्द्रीय शक्त—मनुष्य में ईश्वरत्व क विकास की भार उन्मुख है। उन्होंने पिता को भले न देखा हो पर पुत्र को अवश्य देखा है। और जिसने पुत्र का देखा किया उसने पिता को भी देखा किया।

भाइयो ! हिन्दुओं क धार्मिक विचारों की मही संक्षिप्त रूपरेखा है। हो सकता है कि हिन्दू अपनी सभी योजनाओं को कार्यान्वित करने में असफल रहा हो पर यदि कभी कोई सार्वभौमिक धर्म होता है, तो वह किसी देश या काल से सीमाबद्ध नहीं होगा वह उस मसीम ईश्वर के सम्बन्ध ही असीम होगा जिसका वह उपदेश हैमा जिसका सूर्य की कल्प और ईसा क अनुयायियों पर, सन्तों पर और पापियों पर समान रूप से प्रकाश विकीर्ण करेमा जो न तो ब्राह्मण होमा न बौद्ध न ईसाई और न इस्लाम परन्तु इन सबकी सम्मिष्टि होगी किन्तु फिर भी जिसमें विकास के लिए अर्थात् अन्वेषण होमा जो इतना उदार होमा कि पशुओं के स्तर से किचित् उन्नत भिन्नतम श्रुतिव जगती मनुष्य से लेकर अपने हृष्य और मस्तिष्क के मुर्खों के कारण मानवता से इतना ऊपर उठ गये उन्नततम मनुष्य तक को जिसके प्रति सादा समाज भ्रष्टानत हो जाता है और ध्यान जिसके मनुष्य होने म सम्बन्ध करते हैं, अपनी मातृओं से आश्रित कर सके और उनमें सबको स्थान दे सके। वह धर्म ऐसा होना, जिसकी नीति मे उत्पीड़ित या असहिष्णुता का स्थान नहीं होना वह प्रत्येक इष्ट और पुण्य में दिव्यता को स्वीकार करेगा और उसका संपूर्ण बल और सामर्थ्य

३ । मयि सर्वमिदं प्रोक्तं सुमे मन्त्रिणवा इव । श्रुता ॥१७॥

२ - प्रत्यक्षित्तमस्वरत्वं धीमनुचितमेव वा ।

तत्तदेवात्मनोत्तमं त्वं मम शेषोऽस्तममवन् ॥ श्रुता ॥११॥ १४१॥

३ - अन्तःक शक्ति तु तद्बुद्धेः ॥ वेदान्त सूत्र ॥३॥१६६॥

मानवता को अपनी सच्ची, दिव्य प्रकृति का साक्षात्कार करने के लिए सहायता देने में ही केन्द्रित होगा।

आप ऐसा ही धर्म सामने रखिए, और सारे राष्ट्र आपके अनुयायी बन जायेंगे। सम्राट् अशोक की परिषद् बौद्ध परिषद् थी। अकबर की परिषद् अधिक उपयुक्त होती हुई भी, केवल बैठक की ही गोष्ठी थी। किंतु पृथ्वी के कोने कोने में यह घोषणा करने का गौरव अमेरिका के लिए ही सुरक्षित था कि 'प्रत्येक धर्म में ईश्वर है।'

वह, जो हिंदुओं का ब्रह्म, पारसियों का अहुर्मज्द, बौद्धों का बुद्ध, यहूदियों का जिहोवा और ईसाइयों का स्वर्गस्थ पिता है, आपको अपने उदार उद्देश्य को कार्यान्वित करने की शक्ति प्रदान करे। तक्षत्र पूर्व गगन में उदित हुआ और कभी घुंघला और कभी देदीप्यमान होते धीरे धीरे पश्चिम की ओर यात्रा करते करते उसने समस्त जगत् की परिक्रमा कर डाली और अब वह फिर प्राची के क्षितिज में सहस्र गुनी अधिक ज्योति के साथ उदित हो रहा है।

ऐ स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया,^१ तू धन्य है। यह तेरा ही सौभाग्य है कि तूने अपने पड़ोसियों के रक्त से अपने हाथ कभी नहीं भिगोये, तूने अपने पड़ोसियों का सर्वस्व हरण कर सहज में ही धनी और सम्पन्न होने की चेष्टा नहीं की, अतएव समन्वय की ध्वजा फहराते हुए सम्यता की अग्रणी होकर चलने का सौभाग्य तेरा ही था।

१ अमेरिका का दूसरा नाम। कोलम्बस ने इसका आविष्कार किया था, इसलिए इसका नाम कोलम्बिया पडा। स०

धर्म : भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं

(२० सितंबर १८९३ ई०)

ईसाइयों को सत् आलोचना सुनने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए, और मुझे विश्वास है कि यदि मैं आप लोगों की कुछ आलोचना करूँ तो आप बुरा न मानेंगे। आप ईसाई लोग को मूर्तिपूजकों की आत्मा का उधार करने के निमित्त अपने धर्म-प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक रहते हैं, उनके धरीरों को भूख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते ? भारतवर्ष में जब भवानक अकाल पड़ा था तो सहस्रों और लाखों हिन्दू सुधा से पीड़ित होकर मर गये पर आप ईसाइयों ने उनके लिए कुछ नहीं किया। आप लोग धारे हिन्दुस्तान में भिरखे बनाते हैं पर पूर्व का प्रधान अमाव्य धर्म नहीं है, उनके पास धर्म फर्माष्ट है—जलते हुए हिन्दुस्तान के लाखों बुखारत भूखे लोग सूखे मले से रोटी के लिए चित्का रहे हैं। वे हमसे रोटी माँगते हैं और हम उन्हें देते हैं परन्तु। सुनासुरों का धर्म का उपरोध देना उनका अपमान करना है सुखों को दर्शन सिखाना उनका अपमान करना है। भारतवर्ष में यदि कोई पुरोहित द्रव्य-मायि के लिए धर्म का उपरोध करे, तो वह जाति से अत्युत कर विमा जायमा और लोग उस पर पूछेंगे। मैं यहाँ पर अपने हरिख भाइयों के निमित्त सहायता माँगने आया था पर मैं यह पूरी तरह समझ गया हूँ कि मूर्तिपूजकों के लिए ईसाई-बर्माबलम्बियों से और विवेककर उन्हीके देव में सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है।

बौद्ध धर्म: हिंदू धर्म की निष्पत्ति

(२६ सितम्बर, १८९३ ई०)

मैं बौद्ध धर्मावलम्बी नहीं हूँ, जैसा कि आप लोगो ने सुना है, पर फिर भी मैं बौद्ध हूँ। यदि चीन, जापान अथवा सीलोन उस महान् तथागत के उपदेशो का अनुसरण करते हैं, तो भारतवर्ष उन्हे पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार मानकर उनकी पूजा करता है। आपने अभी अभी सुना कि मैं बौद्ध धर्म की आलोचना करनेवाला हूँ, परन्तु उससे आपको केवल इतना ही समझना चाहिए। जिनको मैं इस पृथ्वी पर ईश्वर का अवतार मानता हूँ, उनकी आलोचना मुझसे यह सम्भव नहीं। परन्तु बुद्ध के विषय मे हमारी धारणा यह है कि उनके शिष्यो ने उनकी शिक्षाओ को ठीक ठीक नहीं समझा। हिंदू धर्म (हिंदू धर्म से मेरा तात्पर्य वैदिक धर्म है) और जो आजकल बौद्ध धर्म कहलाता है, उनमे आपस मे वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा यहूदी तथा ईसाई धर्मों मे। ईसा मसीह यहूदी थे और शाक्य मुनि हिन्दू। यहूदियो ने ईसा को केवल अस्वीकार ही नहीं किया, उन्हे सूली पर भी चढा दिया, हिन्दुओ ने शाक्य मुनि को ईश्वर के रूप मे ग्रहण किया है और वे उनकी पूजा करते हैं। किन्तु प्रचलित बौद्ध धर्म मे तथा बुद्धदेव की शिक्षाओ मे जो वास्तविक भेद हम हिंदू लोग दिखलाना चाहते हैं, वह विशेषत यह है कि शाक्य मुनि कोई नयी शिक्षा देने के लिए अवतीर्ण नहीं हुए थे। वे भी ईसा के समान धर्म की सम्पूर्ति के लिए आये थे, उसका विनाश करने नहीं। अन्तर इतना ही था कि जहाँ ईसा को प्राचीन यहूदी नहीं समझ पाये, वहाँ बुद्धदेव की शिक्षाओ के महत्त्व को स्वयं उनके शिष्य ही अवगत नहीं कर पाये। जिस प्रकार यहूदी प्राचीन व्यवस्थान की निष्पत्ति नहीं समझ सके, उसी प्रकार बौद्ध भी हिन्दू धर्म के सत्यो की निष्पत्ति को नहीं समझ पाये। मैं यह बात फिर से दुहराना चाहता हूँ कि शाक्य मुनि ध्वंस करने नहीं आये थे, वरन् वे हिन्दू धर्म की निष्पत्ति थे, उसकी तात्किक परिणति और उसके युक्तिसंगत विकास थे।

हिन्दू धर्म के दो भाग है—कर्मकांड और ज्ञानकांड। ज्ञानकांड का विशेष अध्ययन सन्यासी लोग करते हैं।

आत्मकांड मे जाति-येत नहीं है। आत्मकांड मे

संन्यासी हो सकत हैं, और तब बोनो जातियाँ समान ही जाती हैं। धर्म में जाति-भेद नहीं है। जाति तो एक सामाजिक संस्था मात्र है। सायब मुनि स्वयं संन्यासी थे और यह उनका ही नरिमा है कि उनका हृदय इतना विस्मय था कि उन्होंने बंबों के छिपे हुए सत्तों का निकालकर उनको समस्त संसार में बिक्री में कर दिया। इस धर्म में सबसे पहले वे ही ऐसे हुए, जिन्होंने धर्म प्रचार की प्रथा पलायी—इतना ही नहीं बल्कि मनुष्य को दूसरे धर्म से अपने धर्म में दीक्षित करने का विचार भी सबसे पहले उन्होंने के मन में उचित हुआ।

सर्वभूतों के प्रति और विशेषकर अज्ञानी तथा बिन बल के प्रति अद्भुत सहानुभूति में ही उपासक का महाम् पीर्य सधिहित है। उनके कुछ सिष्य ब्राह्मण थे। बुद्ध के धर्मोपदेश के समय संस्कृत भारत की जनभाषा नहीं रह गयी थी। वह उस समय केवल पंडितों के ग्रंथों की ही भाषा थी। बुद्ध के कुछ ब्राह्मण सिष्यों ने उनके उपदेशों का अनुवाद संस्कृत भाषा में करना चाहा था पर बुद्ध ने उनसे कहा नहीं कहते "मैं ब्रह्म और साधारण जनों के लिए आया हूँ अर्थात् जनभाषा में ही मुझे बोलने दो। और इसी कारण उनके अधिकार उपदेश अब तक भारत की तत्कालीन लोकभाषा में पाये जाते हैं।

वर्धमानात्म का स्वान भी ही तत्त्वज्ञान का स्वान भी ही पर जब तक इस लोक में मृत्यु नाम की वस्तु है जब तक मानव-हृदय में दुर्बलता वैसी वस्तु है जब तक मनुष्य के अतःकरण से दुर्बलताजनित कर्म करने बाहर निकलता है तब तक इस संसार में ईश्वर में विश्वास भी क्लायम रहेगा।

जहाँ तक वर्धन की बात है, उपासक के सिष्यों ने वेदों की समाप्त पट्टियों पर बहुत हान-पीर पटके पर वे उसे तोड़ न सके और दूसरी ओर उन्होंने जनता के बीच से उस समाप्त परमेस्वर को उठा लिया जिसमें हर नर-नारी इतने अनुपम से मान्य होता है। फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म को भारतवर्ष में स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त करनी पड़ी और आज इस धर्म की जन्मभूमि भारत में अपने को बौद्ध कहने वाला एक भी स्त्री या पुरुष नहीं है।

किन्तु इसके साथ ही ब्राह्मण धर्म ने भी कुछ बोया—समाज-सुधार का वह उस्ताह प्राथिमात्र के प्रति यह आश्चर्यजनक सहानुभूति और करुणा तथा वह अद्भुत रसायन जिस बौद्ध धर्म ने जन जन को प्रदान किया था एवं जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज इतना महान् हो गया था कि तत्कालीन भारत के सम्बन्ध में विद्यमान बाह्य एक सुनारी इतिहासकार को यह सिखना पड़ा कि एक भी एसा हिन्दू नहीं दिखानी देता जो विध्या-प्रापक करता हो एक भी ऐसी हिन्दू नारी नहीं है, जो अनिष्टता न हो।

हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बिना नहीं रह सकता और न बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के बिना ही। तब यह देखिए कि हमारे पारस्परिक पार्थक्य ने यह स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया है कि बौद्ध, ब्राह्मणों के दर्शन और मस्तिष्क के बिना नहीं ठहर सकते, और न ब्राह्मण बौद्धों के विशाल हृदय के बिना। बौद्ध और ब्राह्मणों के बीच यह पार्थक्य भारतवर्ष के पतन का कारण है। यही कारण है कि आज भारत में तीस करोड़ भिखमगों निवास करते हैं, और वह एक सहस्र वर्षों से विजेताओं का दास बना हुआ है। अतः आइए, हम ब्राह्मणों की इस अपूर्व मेधा के साथ तथागत के हृदय, महानुभावता और अद्भुत लोकहितकारी शक्ति को मिला दें।

संन्यासी हो सकते हैं, और तब दोनों प्राणियों समान हो जाती है। धर्म में प्राणि-श्रेण नहीं है। प्राणि तो एक सामाजिक सत्त्वा भाग है। शाक्य मुनि स्वयं संन्यासी थे और यह उनकी ही परिभाषा है कि उनका हृदय इतना विद्यालय था कि उन्होंने बेशर्तों के किये हुए सत्त्वों को निकालकर उसकी समस्त सत्कार में विकीर्ण कर दिया। इस कर्म में सबसे पहले वे ही ऐसे हुए, जिन्होंने धर्म-प्रचार की प्रथा बसायी—इतना ही नहीं बल्कि मनुष्य को दूसरे धर्म से अपने धर्म में दीक्षित करने का विचार भी सबसे पहले उन्होंने मन में उदित हुआ।

सर्वभूतों के प्रति और विशेषकर ब्रह्मानी तथा बीम जनों के प्रति अद्भुत सहा-नुमृति में ही तत्प्रायत का महान् गौरव उल्लिखित है। उनके कुछ शिष्य ब्राह्मण थे। बुद्ध के धर्मोपदेश के समय संस्कृत भारत की जनभाषा नहीं रह गयी थी। वह उस समय केवल पंडितों के प्रार्थों की ही भाषा थी। बुद्धदेव के कुछ शिष्य शिष्यों ने उनके उपदेशों का अनुवाद संस्कृत भाषा में करना चाहा था पर बुद्धदेव उनसे कहा यही कहते 'मैं ब्रह्म और साधारण जनों के लिए आया हूँ अथ जनभाषा में ही मुझे बोलने दो। और इसी कारण उनके अधिकार उपदेश अब तक भारत की तत्कालीन जनभाषा में पाये जाते हैं।

पश्चिमोत्तर का स्वान जो भी हो तत्प्रायत का स्वान जो भी हो पर जब तक इस लोक में मृत्यु नाम की वस्तु है जब तक मानव-हृदय में दुर्बलता बीसी वस्तु है, जब तक मनुष्य के अंतःकरण से दुर्बलताजनित कष्ट कष्टन बाहर निकलता है तब तक इस संसार में ईश्वर से विश्वास ही क्षायम रहेगा।

जहाँ तक धर्मन की बात है तत्प्रायत के शिष्यों ने बेशर्तों की घनावन चट्टानों पर बहुत हाथ-पैर पटकें पर वे उधे टोड़ न सके और बुरी ओर उन्होंने जनता के बीच से उस घनावन परमेश्वर को उठा लिया जिसमें हर तर-नारी इतने अनुराग से आश्रय लेता है। फल यह हुआ कि बौद्ध धर्म को भारतवर्ष में स्वामाजिक मृत्यु प्राप्त करनी पड़ी और आज इस धर्म की जन्मभूमि भारत में अपने को बौद्ध कहने-बाला एक भी स्त्री या पुरुष नहीं है।

किन्तु इसके साथ ही ब्राह्मण धर्म ने भी कुछ बोया—समाज-मुधार का वह उरसाह प्राथिभाव के प्रति वह आश्चर्यजनक सहायुमृति और कर्मा तथा वह अद्भुत रसात्मक जिस बौद्ध धर्म न जन जन को प्रदान किया था एवं जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज इतना महान् हो गया था कि तत्कालीन भारत के सम्बन्ध में लिखने-वाले एक यूनानी इतिहासकार को यह लिखना पड़ा कि एक भी ऐसा हिन्दू नहीं दिखायी देता जो विषय-माग्न कर रहा हो एक भी ऐसी हिन्दू नारी नहीं है जो अनिष्टता न हो।

के सार-भाग को आत्मसात करके पुष्टि-लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।

इस धर्म-महासभा ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है उसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सप्रदायविशेष की ऐकान्तिक सम्पत्ति नहीं है, एव प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एव अतिशय उन्नत-चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है। अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखे कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसका धर्म ही जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हूँ और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही, सारे प्रतिरोधों के बावजूद, प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा रहेगा—‘सहायता करो, लडो मत।’ ‘पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश’, ‘समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह।’

अंतिम अधिवेशन में भाषण

(२७ सितम्बर, १८९३ ई०)

विश्व-धर्म-महासभा एक मूर्तिमान तथ्य सिद्ध हो गयी है। स्वामीय प्रभु ने उन लोगों की सहायता की है, जिन्होंने इसका आयोजन किया तथा उनके परम निस्वार्थ मन को सफलता से विमुक्ति किया है।

उन महापुरुषों को मेरा धन्यवाद है, जिनके विचारक हृदय तथा सत्य के प्रति अनुग्रह ने पहले इस अद्भुत स्वप्न को देखा और फिर उसे कार्यरूप में परिणत किया। उन उदार भावों को मेरा धन्यवाद जिनसे यह सभामंडप आस्थाबिंदु हो रहा है। इस प्रबुद्ध भोक्तृमण्डली को मेरा धन्यवाद जिसने मुझ पर अधिकक क्षपा रखी है और जिसने मत-मत्तान्तरों के मनोमास्त्रिम को हटाने का प्रयत्न करनेवाके प्रत्येक विचार का उत्कार किया है। इस समयसुरता में कुछ बेसुरे स्वर भी बीच-बीच में सुन गये हैं। उन्हें मेरा विशेष धन्यवाद क्योंकि उन्होंने अपने स्वर वैधिम्य से इस समरसता को और भी मधुर बना दिया है।

धार्मिक एकता की सर्वसामान्य मिति के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस समय में इस सम्बन्ध में अपना मत आपके समक्ष नहीं रखूंगा। किंतु यदि यहाँ कोई यह आशा कर रहा है कि यह एकता किसी एक धर्म की विषय और बाहरी सब धर्मों के विनाश से सिद्ध होगी तो उनसे मेरा कहना है कि 'यार्ह, तुम्हारी यह आशा असम्भव है। क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिन्दू हो जायें? कदापि नहीं। ईस्वर ऐसा न करे। क्या मेरी यह इच्छा है कि हिन्दू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायें? ईस्वर इस इच्छा से बचाये।

बौद्ध धूमि में जो दिशा गया और मिट्टी बामु तथा जल उसके चारों ओर रख दिये गये। तो क्या वह बौद्ध मिट्टी हो जाता है अथवा बामु या जल बन जाता है? नहीं। वह तो बूझ ही होता है, वह अपनी बुद्धि के नियम से ही बढ़ता है—बामु जल और मिट्टी को अपने में पचाकर, उनको उद्भिन्न पदार्थों में परिवर्तित करके एक बूझ हो जाता है।

ऐसा ही धर्म के सर्वत्र में भी है। ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए, और न हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर ही प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों

राजयोग

भूमिका

ऐतिहासिक जगत् के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान काल तक मानव-समाज में अनेक अलौकिक घटनाओं के उल्लेख देखने को मिलते हैं। आज भी, जो समाज आधुनिक विज्ञान के भरपूर आलोक में रह रहे हैं, उनमें भी ऐसी घटनाओं की गवाही देनेवाले लोगों की कमी नहीं। पर हाँ, ऐसे प्रमाणों में अधिकांश विश्वास-योग्य नहीं, क्योंकि जिन व्यक्तियों से ऐसे प्रमाण मिलते हैं, उनमें से बहुतेरे अज्ञ हैं, अधविश्वासी हैं अथवा धूर्त हैं। बहुधा यह भी देखा जाता है कि लोग जिन घटनाओं को अलौकिक कहते हैं, वे वास्तव में नकल हैं। पर प्रश्न उठता है, किसकी नकल? यद्यपि अनुसन्धान किये बिना कोई बात विल्कुल उडा देना सत्यप्रिय वैज्ञानिक-मन का परिचय नहीं देता। जो वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी नहीं, वे मनोराज्य को नाना प्रकार की अलौकिक घटनाओं की व्याख्या करने में असमर्थ हो उन सबका बस्तित्व ही उडा देने का प्रयत्न करते हैं। अतएव वे तो उन व्यक्तियों से अधिक दोषी हैं, जो सोचते हैं कि बादलों के ऊपर अवस्थित कोई पुरुषविशेष या बहुत से पुरुषगण उनकी प्रार्थनाओं को सुनते हैं और उनके उत्तर देते हैं—अथवा उन लोगों से, जिनका विश्वास है कि वे पुरुष उनकी प्रार्थनाओं के कारण सत्कार का नियम ही बदल देंगे। क्योंकि इन बाद के व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह दुहाई दी जा सकती है कि वे अज्ञानी हैं, अथवा क्रम से कम यह कि उनकी शिक्षा-प्रणाली दूषित रही है, जिसने उन्हें ऐसे अप्राकृतिक पुरुषों का सहारा लेने की सीख दी और जो निर्भरता अब उनके अवनत-स्वभाव का एक अंग ही बन गयी है। पर पूर्वोक्त शिक्षित व्यक्तियों के लिए तो ऐसी किसी दुहाई की गुजाइश नहीं।

हजारों वर्षों से लोगो ने ऐसी अलौकिक घटनाओं का पर्यवेक्षण किया है, उनके सम्बन्ध में विशेष रूप से चिन्तन किया है और फिर उनमें से कुछ साधारण तत्त्व निकाले हैं, यहाँ तक कि, मनुष्य की धर्म-प्रवृत्ति की आधारभूमि पर भी विशेष रूप से, अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ, विचार किया गया है। इन समस्त चिन्तन और विचारों का फल यह राजयोग-विद्या है। यह राजयोग आजकल के अधिकांश वैज्ञानिकों को असमर्थ धारा का अवलम्बन नहीं करता—वह उनकी भाँति उन घटनाओं के अस्तित्व को एकदम उडा नहीं देता, जिनकी व्याख्या टुल्लू हो, प्रत्युत वह तो धीरे धीरे, पर स्पष्ट शब्दों में, अन्वविश्वान से भरे व्यक्ति को बता देता है कि यद्यपि

अधौकिक पटनाएँ, प्रायनाशों की पूर्ति और विरवास की दक्षिण ये सब सत्य हैं तथापि इनका स्वप्नीकरण एसी कुसंस्कारभरी व्याख्या द्वारा नहीं हो सकता कि य सब व्यापार बाह्यता के ऊपर अवस्थित किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होते हैं। यह घोषणा करता है कि प्रत्येक मनुष्य सारी मानव-जाति के पीछे बसमान ज्ञान और दक्षिण के अनन्त सागर की एक क्षुद्र कुत्सा मात्र है। यह सिद्ध करता है कि जिस प्रकार बामनाएँ और अभाव मानव के अन्तर में हैं उसी प्रकार उसका नीचतर ही उन अभावों के मोक्षन की दक्षिण भी है और जहाँ कहीं और जब कभी किसी ज्ञानना अभाव या प्रायनाश की पूर्ति होती है, वो समझना होगा कि यह हम अनन्त मध्यार से ही पुनः होती है, किसी अप्राकृतिक पुरुष से नहीं। अप्राकृतिक पुरुषों की नायना मानव में काय की दक्षिण को मछे ही कुछ परिमाण में उद्दीप्त कर देना हा पर उसमें जाप्यारिक अकनति भी भात्री है। उसमें स्वाधीनता नहीं आती है मय और कुसंस्कार हृदय पर अधिकार जमा करते हैं तथा 'मनुष्य स्वभाव से ही पुनःप्रवृत्ति है' एसा यथकर विरवास हममें पर कर करता है। योपी कहते हैं कि अप्राकृतिक नाम की कोई चीज नहीं है पर ही प्रकृति में दो प्रकार की अति व्यक्तियाँ हैं—एक है स्पृक और दूसरी मूर्ख। मूर्ख कारण है और स्पृक कार्य। स्पृक मात्र ही उन्निवा द्वारा उपलब्ध की जा सकता है, पर मूर्ख नहीं। राजयोग के अन्वय में मूर्खतर मनुभूति अत्रित होती है।

मारुतवर्ष में त्रिगुण ब्रह्मदानुयाया वर्धनसास्त्र है, उन सबका एक हा कल्प है, और यह है—पुनःता प्राप्य करके आत्मा का मुक्त कर सना। इसका उपाय है धाम। 'धाम' शब्द बहुनायम्प्यायी है। शास्त्र और ब्रह्मन्त उभय मत किसी न किसी प्रकार के धाम का समर्पण करते हैं।

प्रमृत्त पुस्तक का विषय है—राजधाम। पानकलनून राजधाम का सास्त्र है और उस पर सर्वोच्च प्रामाणिक शब्द है। अत्यान्व साधनिका का किसी किसी साधनिक शिष्य में पत्रलि से पत्रभर जाने पर भी बसभी निरिपिन रूप से उनकी माफना प्रजापी का अनकारण कर्ण है। मगक न म्युपार्क में कुछ छात्रों का हम धाम की शिक्षा देने के लिए जो बलुगार्ग ही थी व ही इस पुस्तक के प्रथम अंश में निरव है। और हमें दूखते जय न पत्रलि के मून उन मून के अर्थ और उन पर अर्पण हीका भी अर्पणित्य कर ही मनी है। जहाँ तक लक्ष्य हा मका पारिमा रिक्त मगा का प्रयास न करन और बार्गीता की मग्य और मरल भाषा में निगन का धाम दिया गया है। इनके प्रथमाम में नायनाशिका के लिए कुछ मरल और विभन सास्त्र दिन पर है पर उन मगा का मटी रिचन कर में बार्गीता कर दिया गया है कि धाम के कुछ नाशरल अर्थों का छाड़कर, निरवध धाम-विधा के लिए

गुरु का सदा पास रहना आवश्यक है।' वातलाप के रूप में प्रदत्त ये सब उपदेश यदि लोगों के हृदय में इस विषय पर और भी अधिक जानने की पिपासा जगा दे, तो फिर गुरु का अभाव न रहेगा।

पातजल दर्शन साख्य मत पर स्थापित है। इन दोनों मतों में अन्तर बहुत ही थोड़ा है। इनके दो प्रधान मतभेद ये हैं—पहला तो, पतजलि आदिगुरु के रूप में एक सगुण ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं, जब कि साख्य का ईश्वर लगभग पूर्णताप्राप्त एक व्यक्ति मात्र है, जो कुछ समय तक एक सृष्टि-कल्प का शासन करता है। और दूसरा, योगीगण आत्मा या पुण्य के समान मन को भी सर्वव्यापी मानते हैं, पर साख्य मतवाले नहीं।

—ग्रन्थकर्ता^१

प्रत्येक आत्मा अभ्यक्त ब्रह्म है।

ब्राह्मण एवं अन्तःप्रकृति का बखीभूत करके आत्मा के इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

कर्म उपासना मन-समम अथवा ज्ञान इनमें से एक एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।

बस यही धर्म का सबस्व है। मत, अनुष्ठान पद्धति शास्त्र मन्दिर अथवा अन्य ब्राह्मण क्रिया-कलाप तो उसके गौण व्योरे मात्र हैं।

प्रथम अध्याय

ऋवतरणिका

हमारे समस्त ज्ञान स्वानुभूति पर आधारित हैं। जिसे हम आनुमानिक ज्ञान कहते हैं, और जिसमें हम सामान्य से सामान्यतर या सामान्य से विशेष तक पहुँचते हैं, उसकी बुनियाद स्वानुभूति है। जिनको निश्चित विज्ञान^१ कहते हैं, उनकी सत्यता सहज ही लोगों की समझ में आ जाती है, क्योंकि वे प्रत्येक व्यक्ति से कहते हैं—“तुम स्वयं यह देख लो कि यह बात सत्य है अथवा नहीं, और तब उस पर विश्वास करो।” वैज्ञानिक तुमको किसी भी विषय पर विश्वास कर बैठने को न कहेंगे। उन्होंने स्वयं कुछ विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव किया है और उन पर विचार करके वे कुछ सिद्धान्तों पर पहुँचे हैं। जब वे अपने उन सिद्धान्तों पर हमसे विश्वास करने के लिए कहते हैं, तब वे जनसाधारण की अनुभूति पर उनके सत्यासत्य के निर्णय का भार छोड़ देते हैं। प्रत्येक निश्चित विज्ञान की एक सामान्य आधार-भूमि है और उससे जो सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं, इच्छा करने पर कोई भी उनका सत्यासत्य तत्काल समझ ले सकता है। अब प्रश्न यह है, धर्म की ऐसी सामान्य आधार-भूमि कोई है भी या नहीं? हमें इसका उत्तर देने के लिए ‘हाँ’ और ‘नहीं’, दोनों कहने होंगे।

ससार में धर्म के सम्बन्ध में सर्वत्र ऐसी शिक्षा मिलती है कि धर्म केवल श्रद्धा और विश्वास पर स्थापित है, और अधिकांश स्थलों में तो वह भिन्न भिन्न मतों की समष्टि मात्र है। यही कारण है कि धर्मों के बीच केवल लड़ाई-झगडा दिखायी देता है। ये मत फिर विश्वास पर स्थापित हैं। कोई कोई कहते हैं कि बादलों के ऊपर एक महान् पुरुष है, वही सारे ससार का शासन करता है, और वक्ता महोदय केवल अपनी बात के बल पर ही मुझसे इसमें विश्वास करने को कहते हैं। मेरे भी ऐसे अनेक भाव हो सकते हैं, जिन पर विश्वास करने के लिए मैं दूसरों से कहता हूँ,

१ निश्चित विज्ञान (exact science)—अर्थात् वे विज्ञान, जिनके तत्त्व इतनी दूर तक सत्य निर्णयित हुए हैं कि गणना के बल पर उनके द्वारा भविष्य निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है, जैसे गणित, गणित-ज्योतिष इत्यादि। स०

सोचते हैं कि हम सदा जीवित रहेंगे। किसी समय राजा युधिष्ठिर से यह प्रश्न पूछा गया, “इस पृथ्वी पर सबसे आश्चर्य की बात क्या है?” राजा ने उत्तर दिया, “हमारे चारों ओर प्रतिदिन लोग मर रहे हैं, फिर भी जो जीवित हैं, वे समझते हैं कि वे कभी मरेंगे ही नहीं।” बस, यही माया है।

हमारी बुद्धि में, हमारे ज्ञान में, यही क्यों, हमारे जीवन की प्रत्येक घटना में ये विषम विरुद्ध भाव दिखायी पड़ते हैं। सुख दुःख का पीछा करता है और दुःख सुख का। एक सुधारक उठता है और किसी राष्ट्र के दोषों को दूर करना चाहता है। पर इसके पहले कि वे दोष दूर हो, हजार नये दोष दूसरे स्थान में उत्पन्न हो जाते हैं। यह बस एक ढहते हुए पुराने मकान के समान है। तुम उस मकान के एक भाग की मरम्मत करते हो, तो उसका कोई दूसरा भाग ढह जाता है। भारत में हमारे समाज-सुधारक जीवन भर जवरन वैवच्य-धारण रूपी दोष के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। तो पश्चिमी देशों में विवाह न होना ही सबसे बड़ा दोष है। एक ओर अविवाहिताओं का कष्ट दूर करने में सहायता करनी होगी, तो दूसरी ओर विधवाओं के आँसू पोछने का प्रयत्न करना होगा। यह तो बस पुरानी गठिया की बीमारी के समान है—उसे सिर से भगाओ, तो कमर में आ जाती है, कमर से भगाओ, तो पैर में उतर जाती है। सुधार करने-वाले उठते हैं और शिक्षा देते हैं कि विद्या, धन, संस्कृति कुछ इने-गिनो के हाथों ही नहीं रहनी चाहिए, और वे इनको सर्वसाधारण तक पहुँचा देने का भरसक प्रयत्न करते हैं। हो सकता है, इससे कुछ लोग अधिक सुखी हो जायें, पर जैसे जैसे ज्ञानानुशीलन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे शारीरिक सुख भी कम होने लगता है। सुख का ज्ञान अपने साथ ही दुःख का ज्ञान भी लाता है। तब हम फिर किस मार्ग का अवलम्बन करें? हम लोग जो कुछ थोड़ा सा सुख भोगते हैं, दूसरे स्थान में उससे उतने ही परिमाण में दुःख भी उत्पन्न होता है। बस, यही नियम है—सब वस्तुओं पर यही नियम लागू होता है। जो युवक हैं, जिनका खून अभी गरम है, वे इस बात को शायद स्पष्ट रूप से समझ न पायें, पर जिन्होंने घूप में बाल पकाये हैं, अपने जीवन में आँधी और तूफान के दिन देखे हैं, वे इसे सहज ही समझ लेंगे। बस, यही माया है। दिन-रात ये बातें घट रही हैं, पर इनका ठीक ठीक समाधान करना असम्भव है। ऐसा भला क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर पाना सम्भव नहीं, क्योंकि प्रश्न ही तर्कसंगत नहीं है। जो बात घट रही है, उसमें न ‘कैसे’ है, न ‘क्यों’, हम बस इतना ही जानते हैं कि वह है और हमारा उसमें कोई हाथ नहीं। यहाँ तक कि उसकी धारणा करना—अपने मन में उसका ठीक ठीक चित्र खींचना भी हमारी शक्ति के बाहर है। तब हम भला उसे कैसे सुलझायें?

वत इस संसार की गति के तत्प्रायः क वर्णन का नाम माया है। साधारणतया भाग यह बात सुनकर मयभीत हो जाते हैं। हमें साहसी होना पड़ेगा। घटनाओं पर परदा डालना राग का प्रतिवार नहीं है। कुत्तों से पीछा किये जाने पर जिस प्रकार खरगांज अपने मुँह को टीलों में छिपाकर अपने को सुरक्षित समझ बैठता है, उसी प्रकार हम भी आशावादी होकर छिप-छुप कर खरपोत के समान आचरण करते हैं। पर यह कोई उपाय नहीं है। दूसरी ओर, सांसारिक जीवन की प्रचुरता सुख और स्वच्छन्दता भोगनेवाले इस मायावाद के सम्बन्ध में बड़ी आपत्तियाँ उठाते हैं। इस बेस (इम्पेड) में निराशावादी होना बहुत कठिन है। सभी मुससे कहते हैं—संसार का कार्य कितने सुन्दर रूप से चल रहा है, संसार कितना उपतिथीस है! किन्तु उनका अपना पीबित ही उनका संसार है। एक पुण्या प्रस्त उठता है—ईसाई धर्म ही एकमात्र धर्म है। क्यों? इसलिए कि ईसाई धर्म को माननेवाले सभी राष्ट्र समृद्धिवादी हैं। पर इस प्रकार की युक्ति से तो यह सिद्धान्त स्वयं ही भ्रामक सिद्ध हो जाता है क्योंकि अन्य राष्ट्रों का दुर्मिय ही तो ईसाई धर्मावलम्बी राष्ट्रों की समृद्धि का कारण है और एक का सौभाग्य बिना दूसरे का शून्य चूँचे नहीं बनता। यदि सारी पृथ्वी ही ईसाई धर्म को मानने लग जाय तब तो महमत्वरूप कोई अ-ईसाई राष्ट्र न रहने के कारण ईसाई राष्ट्र स्वयं पतित हो जायगा। वत यह युक्ति अपना ही कण्ठन कर लेती है। पशु उद्भिन्न पर पीबित रहते हैं, मनुष्य मनुष्यों पर, और सबसे खराब बात तो यह है कि मनुष्य एक दूसरे पर पीबित रहते हैं—बलवान दुर्बल पर। वत ऐसा ही सर्वत्र हो रहा है। और यही माया है। इसका समाधान तुम क्या करते हो? हम प्रतिबिन् नयी नयी युक्तियाँ सुनते हैं। कोई कोई कहते हैं कि अन्त में सबका सम्पाय होगा। मान लो कि हमने यह बात स्वीकार कर ली तो अब प्रस्त यह है कि धूम की साधना का क्या केवल वैसाभिक उपाय ही है? वैसाभिक रीति को छोड़कर क्या धूम द्वारा धूम नहीं हो सकता? वर्तमान मनुष्यों के बंधन सुधी हमें किन्तु इस समय इस मीपण बुद्ध-कष्ट का होना क्यों बहरी है? इसका समाधान नहीं है। यही माया है।

किन्तु, हम बहूना सुनते हैं कि अधुम विकास के क्रम में क्रमशः धीरे धीरे दूर होते जायेंगे और संसार से बोध के इस प्रकार क्रमशः दूर हो जाने पर अन्त में केवल धूम ही धूम रहे जायगा। यह बात सुनने से तो बड़ी बन्धी बन्धी बन्धी है। इस संसार में जिनके पास किसी बात का समाधान नहीं जिन्हें रोड एड़ी पीटी का पसीना एक करना नहीं पड़ता जिन्हें क्रमविकास की बन्धी में पिसना नहीं पड़ता उन लोगों के हम्म को इस प्रकार के सिद्धान्त बड़ा सकते हैं, और उनके लिए ये सिद्धान्त

सचमुच अत्यन्त हितकर और शान्तिप्रद है। साधारण जनसमूह दुःख-कष्ट भोगे—उससे उनका क्या? वे मर मर भी जायें—उसके लिए वे बयो छटपट करे? ठीक है, पर यह युक्ति आदि से अन्त तक भ्रमपूर्ण है। पहले तो, इन लोगो ने बिना किसी प्रमाण के ही यह धारणा कर ली है कि मसार में अभिव्यक्त शुभ और अशुभ, दोनो विल्कुल निरपेक्ष सत्य है। और दूसरे, इससे भी अधिक दोषयुक्त धारणा तो यह है कि शुभ का परिमाण क्रमशः बढ़ता जा रहा है और अशुभ क्रमशः घटता जा रहा है। अतएव एक समय ऐसा आयेगा, जब अशुभ का अंश विकास द्वारा इस प्रकार घटते घटते अन्त में विल्कुल शून्य हो जायगा और केवल शुभ ही बच रहेगा। ऐसा कहना है तो बड़ा सरल, पर क्या यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अशुभ परिमाण में घटता जा रहा है? क्या अशुभ की भी क्रमशः वृद्धि नहीं हो रही है? उदाहरणार्थ, एक जगली मनुष्य को ले लो। वह मन का सस्कार करना नहीं जानता, एक अक्षर तक नहीं पढ़ सकता, लिखना किसे कहते हैं, उसने कभी सुना तक नहीं। यदि उसे कोई गहरी चोट लग जाय, तो वह शीघ्र चगा हो उठता है। पर हम हैं, जो खरोच लगते ही मर जाते हैं। मशीनो से चीजें सुलभ और सस्ती होती जा रही हैं, उनसे उन्नति और विकास के मार्ग की बाधाएँ दूर होती जा रही हैं, पर साथ ही, एक के धनी होने के लिए लाखो लोग पिसे जा रहे हैं—उधर एक के धनी होने के लिए इधर हजारो लोग दरिद्र से दरिद्रतर होते जा रहे हैं, और असंख्य मानव-समूह क्रीतदास बनाया जा रहा है। जगत् की रीति ही ऐसी है। पाशवी प्रकृतिवाले मनुष्य का सुख-भोग इन्द्रियो में आवद्ध रहता है, उसके सुख और दुःख इन्द्रियो में ही रहते हैं। यदि उसे पर्याप्त भोजन न मिले, तो वह दुःखी हो जाता है। यदि उसका शरीर अस्वस्थ हो जाय, तो वह अपने को अभाग्य समझता है। इन्द्रियो में ही उसके सुख और दुःख दोनो का आरम्भ और अन्त होता है। जैसे जैसे वह उन्नति करता जाता है, जैसे जैसे उसके सुख की सीमा-रेखा विस्तृत होती जाती है, वैसे वैसे उसका दुःख भी, उसी परिमाण में, बढ़ता जाता है। जगल में रहनेवाला मनुष्य ईर्ष्या के वश में होना नहीं जानता, वह नहीं जानता कि कचहरी में जाना, नियमित रूप से कर अदा करना, समाज द्वारा निन्दित होना, पैशाचिक मानव-प्रकृति से उत्पन्न भीषण अत्याचार से अर्हनिश शासित होना, जो एक दूसरे के हृदय के गुप्त से गुप्त भावों का अन्वेषण करने में लगा हुआ है, वह नहीं जानता। वह नहीं जानता कि भ्रान्त ज्ञान से सम्पन्न, गर्वीला मानव किस प्रकार पशु से भी सहस्र गुना पैशाचिक स्वभाव-वाला हो जाता है। बस, इसी प्रकार हम ज्यो ज्यो इन्द्रियपरायणता से ऊपर उठते जाते हैं, त्यों त्यों हमारी सुख अनुभव करने की शक्ति बढ़ती जाती है, और

उसके साथ ही कुछ अनुभव करने की शक्ति भी बढ़ती रहती है। नाड़ियाँ और भी सूझ होकर अधिक यत्रया के अनुभव में समर्थ हो जाती है। सभी समाजों में हम देखते हैं कि एक साधारण मूर्ख मनुष्य तिरस्कृत होने पर उतना दुःखी नहीं होता पर पिट जाने पर अवश्य दुःखी हो जाता है। किन्तु सम्य पुरुष एक साधारण सी बात भी सहन नहीं कर सकता उसकी नाड़ियाँ इतनी सूझ हो गयी हैं। उसकी मुक्त प्रवणता बढ़ जाने के कारण उसका दुःख भी बढ़ गया है। इससे तो शार्पनिको के कमनिकासवाद की कोई पुष्टि नहीं होती। हम अपनी सुखी होने की शक्ति को जितना ही बढ़ाते हैं, हमारी दुःख-भोग की शक्ति भी उसी परिमाण में बढ़ जाती है। मेरा तो विनीत मत यह है कि हमारी सुखी होने की शक्ति यदि 'गणितीय क्रम' (arithmetical progression) के नियम से बढ़ती है, तो दुःखी होने की शक्ति 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढ़ेगी। पंचमी मनुष्य समाज के सम्बन्ध में अधिक नहीं जानता। किन्तु हम उपरिधीरु कोण जानते हैं कि हम जितने ही उन्नत होये हमारे सुख और दुःख की सीधियाँ और भी अधिक बढ़ती चार्येगी। और यही माया है।

अतएव हम देखते हैं कि माया विश्व की व्याख्या करने के निमित्त कोई दिखावट नहीं है। वह संसार की वस्तु-स्थिति का दर्शन मात्र है—विद्वत् भाव ही हमारे अस्तित्व की मिति है सर्वत्र इन्हीं मयात्मक विद्वत् भावों में से होकर हम जा रहे हैं। जहाँ धूम है, वहीं अधुम भी है और जहाँ अधुम है वहीं अवश्य धूम है। जहाँ जीवन है वही मृत्यु छाया की भाँति उसका अनुसरण कर रही है। जो हँस रहा है उसीको रोना पड़ेगा और जो रो रहा है, वह भी हँसेगा। यह क्रम बदल नहीं सकता। हम भले ही ऐसे स्वाम की कल्पना करें, जहाँ केवल धूम रहेगा अधुम नहीं जहाँ हम केवल हँसेंगे रोयेंगे नहीं—पर जब वे सब कारण समान रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं तो दग प्रसार होना स्वभावतः अनन्वय है। जहाँ हमे हँसाने की शक्ति विद्यमान है वही फिर रुकाने की भी शक्ति निहित है। जहाँ गुण उत्पन्न करनेवाली शक्ति विद्यमान है दुःख देनेवाली शक्ति भी वही छिपी हुई है।

अतएव वैशाल्य दर्शन आनाजारी भी नहीं है और निराशावाणी भी नहीं। वह तो बोदा ही बोदो का प्रकाश बनना है। गारी चन्कारों त्रिम रूप में दानी है। वह उन्हें बम उमी रूप में प्रकाश बनना है। अर्थात् उनमें मन में यह गगार राम

१ 'गणितीय क्रम' अंश ३।५।३। इत्यादि; यहाँ पर प्रत्येक चरकी अंक करने पूर्वकी अंक से दो दो अधिक है। 'ज्यामितीय क्रम' अंश ३।६।१२।३४ इत्यादि; यहाँ पर प्रत्येक चरकी अंक करने पूर्वकी अंक का दुगुना है। त

और अशुभ, सुख और दुःख का मिश्रण है, एक को बढ़ाओ, तो दूसरा भी साथ साथ बढ़ेगा। केवल सुख का ससार अथवा केवल दुःख का ससार हो नहीं सकता। इस प्रकार की धारणा ही स्वतः विरोधी है। किन्तु इस प्रकार का मत व्यक्त करके और इस विश्लेषण के द्वारा वेदान्त ने इस महान् रहस्य का भेद किया है कि शुभ और अशुभ, ये दो एकदम विभिन्न, पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं। इस ससार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसे एकदम शुभ या एकदम अशुभ कहा जा सके। एक ही घटना, जो आज शुभजनक मालूम पड़ती है, कल अशुभजनक मालूम पड़ सकती है। एक ही वस्तु, जो एक व्यक्ति को दुःखी करती है, दूसरे को सुखी बना सकती है। जो अग्नि बच्चे को जला देती है, वही भूख से मरते व्यक्ति के लिए स्वादिष्ट खाना भी पका सकती है। जिस स्नायुमण्डल के द्वारा दुःख का संवेदन हमारे अन्दर पहुँचता है, सुख का संवेदन भी उसीके द्वारा भीतर जाता है। अशुभ को दूर करना चाहो, तो साथ ही तुम्हें शुभ को भी दूर करना होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। मृत्यु को दूर करने के लिए जीवन को भी दूर करना पड़ेगा। मृत्युहीन जीवन और दुःखहीन सुख, ये बातें परस्पर विरोधी हैं, इनमें कोई सत्य नहीं है, क्योंकि दोनों एक ही वस्तु की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। कल जो शुभप्रद लगता था, आज वह वैसा नहीं लगता। जब हम बीते जीवन पर नज़र डालते हैं और भिन्न भिन्न समय के अपने आदर्शों की आलोचना करते हैं, तो इस बात की सत्यता हमें तुरन्त दीख पड़ती है। एक समय था, जब शक्तिशाली घोड़ों के जोड़े हाँकना ही मेरा आदर्श था। अब वैसी भावना नहीं होती। बचपन में सोचता था कि यदि मैं अमुक मिठाई बना सकूँ, तो मैं पूर्ण सुखी होऊँगा। कभी सोचता था, स्त्री-पुत्र और धन-धान्य से भरा घर होने से मैं सुखी होऊँगा। अब लड़कपन की ये सब निरर्थक बातें सोचकर हँसी आती है।

वेदान्त कहता है कि एक समय ऐसा अवश्य आयेगा, जब हम पीछे नज़र डालेंगे और उन आदर्शों पर हँसेंगे, जिनके कारण अपने इस क्षुद्र व्यक्तित्व का त्याग करते हममें भय का संचार होता है। सभी अपनी अपनी देह की रक्षा करने में व्यस्त हैं। कोई भी उसे छोड़ना नहीं चाहता। हम सोचते हैं कि इस देह की पथेच्छ समय तक रक्षा कर लेने से हम अत्यन्त सुखी होंगे, पर समय आने पर हम इस बात पर भी हँसेंगे। अतएव, यदि हमारी वर्तमान अवस्था सत् भी न हो और असत् भी नहीं—पर दोनों का सम्मिश्रण हो, दुःख भी न हो और सुख भी नहीं—पर दोनों का सम्मिश्रण हो, अर्थात् हम यदि ऐसे निराशाजनक अन्तर्विरोध की स्थिति में हों, तो फिर वेदान्त तथा अन्यान्य दर्शनशास्त्र और धर्म-मत आदि की क्या आवश्यकता है? और सर्वोपरि, शुभ कर्म आदि करने

का भी भसा क्या प्रयोजन है? यही प्रश्न मन में उठता है, क्योंकि सोम यही पूछेगी कि यदि कुछ कर्म करने पर भी असुम रहता ही हो और कुछ उत्पन्न करने का प्रयत्न करने पर भी बोर कुछ बना ही रहता हो तो फिर इस प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता ही क्या? तो इसका उत्तर यह है कि पहले तो हमें कुछ को कर्म करने के लिए कर्म करना ही चाहिए, क्योंकि स्वयं सुखी होने का यही एकमात्र उपाय है। हममें से प्रत्येक अपने अपने जीवन में बेर-सबेर इस बात की यथार्थता समझ लेते हैं। तीरुण बुद्धिवाले कुछ धीम्र समझ जाते हैं और मन्द बुद्धिवाले कुछ बेटी से। मन्द बुद्धिवाले कड़ी मातना भोगने के बाद इसे समझ पाते हैं, तो तीरुण बुद्धिवाले जोड़ी ही मातना भोगने के बाद। और दूसरे, यद्यपि हम जानते हैं कि ऐसा समय कभी न आयेगा जब यह जगत् केवल सुख से भर खेया और कुछ बिस्तुकुम रहेगा फिर भी हमें यही कार्य करना होगा। अन्तर्बिरोध से बचने के लिए यही एकमात्र उपाय है। ये दोनों शक्तियाँ—सुख एवं असुम जगत् को जीवित रखेगी और अन्त में एक दिन ऐसा आयेगा जब हम स्वयं से जाग जायेंगे और यह सब मिट्टी के बरतरे बनाना बन्द कर देंगे। सबसुख हम बिरकार से बरतरे बनाने में ही कमे हुए हैं। हमें यह शिक्षा लेनी ही होगी और इसके लिए समय भी बहुत लग पायगा।

जर्मनी में इस भित्ति पर कि—असीम सचीम हो गया है—बर्लिनसास्त्र रखने की चेष्टा की गयी है। इंग्लैण्ड में अब भी इस प्रकार की चेष्टा बर रही है। पर इन सब शार्शनिकों के मत का विश्लेषण करने पर यही पामा जाता है कि असीम अपने को जगत् में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा है और एक समय आयेया जब वह ऐसा करने में सफल हो पायगा। बहुत ठीक है और हमने असीम 'विकास' 'अभिव्यक्ति' आदि शार्शनिक शब्दों का भी प्रयोग किया। किन्तु सचीम किस प्रकार असीम को पूर्ण रूप से व्यक्त कर सकता है इस सिद्धान्त की स्पामसंगत मूल भित्ति क्या है, यह प्रश्न शार्शनिक नन स्वयावत ही पूछ सकते हैं। निरपेक्ष और असीम सत्ता सोपाधिक होकर ही इस जगद्रूप मे प्रकाशित हो सकती है। जो कुछ इन्द्रिय मन और बुद्धि के माध्यम से जायगा उसे स्वतः ही सीमाबद्ध होना पड़ेगा जतएव सचीम का असीम होना निरान्त असंभव है, ऐसा हो नहीं सकता। दूसरी ओर, वेदान्त कहता है, यह ठीक है कि निरपेक्ष या असीम सत्ता अपने को सचीम रूप में व्यक्त करने की चेष्टा कर रही है, किन्तु एक समय ऐसा आयेया जब इस प्रयत्न को असम्भव जानकर उसे पीछे कौटना पड़ेगा। यह पीछे कौटना ही धर्म का यथार्थ आरम्भ है जिसका अर्थ है वैराग्य। आधुनिक मनुष्य से वैराग्य की बात कहना अत्यन्त कठिन है। अमेरिका में मेरे बारे में कोष कहते

थे कि मैं पाँच हजार वर्ष तक मृत और विस्मृत एक देश से आकर वैराग्य का उपदेश दे रहा हूँ। इंग्लैण्ड के दार्शनिक भी शायद ऐसा ही कहे। पर यह भी सत्य है कि धर्म का एकमात्र पथ यही है। त्याग दो और विरक्त बनो। ईसा ने क्या कहा है? 'जो मेरे निमित्त अपने जीवन का त्याग करेगा, वही जीवन को प्राप्त करेगा।' बार बार पूर्णता की प्राप्ति के लिए त्याग ही एकमात्र साधन है, इसकी शिक्षा उन्होंने बारबार दी है। ऐसा समय आता है, जब अन्तरात्मा इस लम्बे विषादमय स्वप्न से जाग उठती है, बच्चा खेल-कूद छोड़कर अपनी माता के निकट लौट जाने को अधीर हो उठता है। तब इस उक्ति की यथार्थता सिद्ध होती है—

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।

हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ॥

—'काम्य वस्तु के उपभोग से कभी वासना की निवृत्ति नहीं होती, वरन् घृताहुति के द्वारा अग्नि के समान वह तो और भी बढ़ जाती है।'

इस प्रकार, इन्द्रिय-विलास, बौद्धिक आनन्द, मानवात्मा का उपभोग्य सब प्रकार का सुख—सभी मिथ्या है—सभी माया के अधीन है। सभी इस ससार के बन्धन के अन्तर्गत है, हम उसका अतिव्रमण नहीं कर सकते। हम उसके अन्दर भले ही अनन्त काल तक दौड़ते फिरें, पर उसका अन्त नहीं पा सकते, और जब कभी हम थोड़ा सा सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, तभी दुःख का ढेर हमारे सिर पर आ गिरता है। कितनी भयानक अवस्था है यह! जब मैं इस पर विचार करता हूँ, तो मैं निस्सन्दिग्ध रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह मायावाद, यह कथन कि सब कुछ माया है, इसकी एकमात्र ठीक ठीक व्याख्या है। इस ससार में कितना दुःख है! यदि तुम विभिन्न देशों में भ्रमण करो, तो तुम समझ सकोगे कि एक राष्ट्र अपने दोषों को एक उपाय के द्वारा दूर करने की चेष्टा कर रहा है, तो दूसरा राष्ट्र किसी अन्य उपाय द्वारा। एक ही दोष को विभिन्न राष्ट्रों ने विभिन्न उपायों से दूर करने का प्रयत्न किया है, पर कोई भी कृतकार्य न हो सका। यदि किसी स्थान पर दोष कुछ कम हो भी गया, तो किसी दूसरे स्थान पर दोषों का एक ढेर खड़ा हो जाता है। वस, ऐसा ही चलता रहता है। हिन्दुओं ने अपने जातीय जीवन में सतीत्व धर्म को पुष्ट करने के लिए बाल-विवाह के प्रचलन द्वारा अपनी सन्तान को, और धीरे धीरे सारी जाति को, अधोगामी कर दिया है। पर यह बात भी मैं अस्वीकार नहीं कर सकता कि बाल-विवाह ने हिन्दू जाति को सतीत्व-धर्म से विभूषित किया है। तुम क्या चाहते हो? यदि जाति को सतीत्व-धर्म से थोड़ा-बहुत विभूषित करना चाहो, तो इस भयानक बाल-विवाह द्वारा सारे स्त्री-

पुरुषों को पारंपरिक दृष्टि से बुझल करना पड़ेगा। दूसरी ओर, क्या तुम्हारी स्थिति इन्फैन्ट में कुछ भी बदली है? नहीं क्योंकि सतीत्य ही तो जाति की जीवनी दक्षिण है। क्या तुमने इतिहास में नहीं पढ़ा है कि बेघ की मृत्यु का निह्न असतीत्य के भीतर से होकर आया है—जब यह किसी जाति में प्रवेश कर जाता है तो समझना कि उसका बिनास निकट आ गया है। इस सब कुलजनक प्रश्नों की भीमांसा कहाँ मिलेगी? यदि माता-पिता अपनी संतान के लिए पर-बन्धु का निर्वाचन करें, तो यह दोष कम हो सकता है। भारत की बेटियाँ भावुक होने की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक होती हैं। किन्तु उनके जीवन में फिर कविता बहुत कम रह जाती है। पर यदि लोग स्वयं पति और पत्नी का निर्वाचन करते हैं तो इससे भी उन्हें कोई अधिक सुख नहीं मिलता। भारतीय नारियाँ अधिक मुसी हैं। स्त्री और स्वामी के बीच कलह अधिकतर नहीं होता। दूसरी ओर, अमेरिका में जहाँ स्वाधीनता की अधिकता है, सुखी परिवार बहुत कम देखने में आते हैं। कुछ यहाँ यहाँ सभी बचक है। इससे क्या सिद्ध होना है? यही कि इन सब आवसों के द्वारा अधिक सुख प्राप्त नहीं हो सका। हम सभी सुख के लिए उत्कट सख्य कर रहे हैं पर एक ओर कुछ प्राप्त होने के पहले ही दूसरी ओर पुनः आ उपस्थित होता है।

तब क्या हम कोई धूम कर्म न करें? बचक्य करें, और पहले की अपेक्षा अधिक उत्साहित होकर हम ऐसा करें। इस बातों के ज्ञान से इतना होगा कि हमारी बर्मान्धता कटूरता मष्ट हो जायगी। तब अपेक्ष लोग उत्तेजित होकर 'बोह पैदायिक हिन्दू। नारियों के प्रति कैसा दुर्व्यवहार करता है। —ऐसा कहते हुए हिन्दू की ओर अगुमी नहीं उठायेंगे। तब वे विभिन्न देशों के रीति-रिवाजों का जावर करना सीखेंगे। बर्मान्धता कम होगी कार्य अधिक होगा। बर्मान्ध अधिक कर्म नहीं कर पाता। वह अपनी सक्ति का तीन चौथाई व्यर्थ ही नष्ट कर देता है। जो धीर, प्रसास्तचित्त 'नाम के आदमी' कहे जाते हैं, वे ही कर्म करते हैं। बोधी बकवास करनेवाला बर्मान्ध व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव यह जान लेने से कि वस्तु-स्थिति ऐसी ही है, हमारी तितिभा अधिक होगी। पुनः और अभूम के दुख हमें साम्यमात्र से भ्युत् न कर सकेंगे और छात्रा के पीछे पीछे बौद्धा न सकेंगे। अतएव यह जानकर कि संसार की गति ही ऐसी है हम दीर्घधामी बनें। जबाहुरपस्वरूप हम कह सकते हैं कि सभी मनुष्य बोधधूम्य हो जायेंगे पशु भी कर्मण मनुष्यत्व प्राप्त कर इन्हीं अवस्थाओं में से होकर गुजरेंगे और बन्धवतियों की भी मही बसा होगी। पर यह एक बात निश्चित है—वह मष्टी नहीं प्रबल वेग से समुद्र की ओर बढ़ रही है पुनः पते जाति सब इसके

स्रोत में बहे जा रहे हैं और सम्भवतः विपरीत दिशा में बहने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु ऐसा समय आयेगा, जब प्रत्येक वस्तु उस अनन्त सागर के वक्षस्यल में समा जायगी। अतएव यह निश्चित है कि जीवन सारे दुःख और क्लेश, आनन्द, हास्य और क्रन्दन के साथ उस अनन्त सागर की ओर प्रबल वेग से प्रवाहित हो रहा है, और यह केवल समय का प्रश्न है, जब तुम, मैं, जीव, उद्भिद् और सामान्य जीवाणु कण तक, जो जहाँ पर है, सब कुछ उसी अनन्त जीवन-समुद्र में—मुक्ति और ईश्वर में आ पहुँचेगा।

मैं एक बार फिर कहता हूँ कि वेदान्त का दृष्टिकोण न तो आशावादी है और न निराशावादी ही। वह ऐसा नहीं कहता कि ससार केवल शुभ ही शुभ है अथवा केवल अशुभ ही अशुभ। वह कहता है कि हमारे शुभ और अशुभ, दोनों का मूल्य बराबर है। ये दोनों इसी प्रकार हिल-मिलकर रहते हैं। ससार ऐसा ही है, यह समझकर तुम धैर्यपूर्वक कर्म करो। पर क्यों? क्यों हम कर्म करें? यदि घटना-चक्र ही इस प्रकार का हो, तो हम क्या करें? हम अज्ञेयवादी क्यों न हो जायें? आजकल के अज्ञेयवादी भी तो कहते हैं कि इस समस्या का कोई समाधान नहीं है, वेदान्त की भाषा में कहेंगे कि इस मायापाश से छुटकारा नहीं है। अतएव सन्तुष्ट रहो और सबका उपभोग करो। पर यहाँ भी एक अत्यन्त असंगत और महान् भ्रम है। और वह यह है। तुम जिस जीवन से चारों ओर से घिरे हुए हो, उस जीवन के विषय में तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है? क्या 'जीवन' शब्द से तुम केवल पाँच इन्द्रियों में आवद्ध जीवन को ही लेते हो? यदि ऐसा हो, तो हम पशुओं से कोई अधिक भिन्न नहीं हैं। किन्तु मुझे विश्वास है कि यहाँ बैठे हुए लोगों में से एक भी ऐसा नहीं है, जिसका जीवन सम्पूर्ण रूप से केवल इन्द्रियों में आवद्ध हो। अतएव हमारे वर्तमान जीवन का अर्थ इन्द्रियों की अपेक्षा और भी कुछ अधिक है। सुख-दुःख अनुभव करानेवाली हमारी मनोवृत्ति और हमारे विचार भी तो हमारे जीवन के अग्रस्वरूप हैं। और उस महान् आदर्श, उस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा भी क्या हमारे जीवन का उपादान नहीं है? अज्ञेयवादी कहते हैं कि जीवन जैसा है, वस, वैसा ही उसका भोग करो। पर जीवन कहने से सर्वोपरि इस आदर्श के अन्वेषण की, इस पूर्णता की ओर अग्रसर होने की कठोर चेष्टा का बोध होता है। हमें इसीको प्राप्त करना होगा। अतएव हम अज्ञेयवादी नहीं हो सकते और अज्ञेयवादी के ससार को नहीं अपना सकते। अज्ञेयवादी तो जीवन के आदर्शात्मक उपादान को छोड़कर अवशिष्ट अंश को ही सर्वस्व मानते हैं। वे इस आदर्श को ज्ञान का अगोचर समझकर इसका अन्वेषण त्याग देते हैं। वस, इस प्रकृति, इस जगत् को ही माया कहते हैं।

सभी धर्म इसी प्रकृति के बन्धन को तोड़ने की अत्याधिक चेष्टा कर रहे हैं। चाहे देवोपासना द्वारा हो चाहे प्रतीकोपासना द्वारा चाहे सार्धनिक विचारों द्वारा हो अथवा देव-परित्र प्रेत-परित्र सामु-परित्र ऋषि-परित्र महात्मा-परित्र अथवा अनन्तार-परित्र की सहायता से अनुष्ठित हो सभी धर्मों का चाहे वे विकसित हों चाहे अतिकवित उद्देश्य एक ही है—सभी सीमाओं के परे जाना। संक्षेप में सभी धर्म स्वाधीनता की ओर अग्रसर होने का फ़ोरे प्रयत्न कर रहे हैं। जाने या अनजाने मनुष्य समझ गया है कि वह बड़ है। वह जो कुछ होने की इच्छा करता है, सो मही है। जिस क्षण से उसने अपने चारों ओर दृष्टि फेरी उसी क्षण से उसे यह ज्ञान हो गया। उसी क्षण से उसे अनुभव हो गया कि वह बन्दी है। उसने यह भी जाना कि इस सीमा से अकड़ा हुआ कोई मानो उसके अन्तर में विद्यमान है जो वेह क भी असम्भ्य स्थान में उड़ जाना चाहता है। संसार के उन निम्नतम धर्मों में भी जहाँ दुर्बलता मुसल आत्मीयों के चरों में लक-छिपकर फिरनेवाके हत्या और मुराप्रिय मृत पितरों या अन्य भूत-प्रेतों की पूजा की जाती है, इस स्वाधीनता का यह भाव पाते हैं। जो छोटे देवताओं की उपासना करते हैं, वे उन देवताओं को अपनी अपेक्षा अधिक स्वाधीन देखते हैं। उनका ऐसा विश्वास रहता है कि द्वार बन्द होने पर भी देवता कोप घर की दीवारों को भेदकर जा सकते हैं दीवारें उनके मार्ग में बाधा मही बाल सकतीं। स्वाधीनता का यह भाव क्रमशः बढ़ते बढ़ते अन्त में समुच्च ईश्वर के आदर्श में परिप्लत हो जाता है। इस आदर्श का केन्द्रीय भाव यह है कि ईश्वर मात्रा से बर्तीत है। मैं मानो अपने मनश्चक्षु के सामने मारुत के उन प्राचीन आचार्यों को अरुध्यस्थित आत्मम मे इन्हीं सब प्रश्नों पर विचार करते देखा रहा हूँ और सुन रहा हूँ उनके स्वर बड़े बड़े ज्योबुद्ध पवित्र महर्षिजन भी इन प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ हो रहे हैं, पर एक मुसक उनके बीच खड़ा हो बोधना कण्ठा है—हे विष्वक्वामवासी अमृत के पुत्रगण! मुनो मुझे मार्ग मिल गया है। जो अन्धकार या अज्ञान से बर्तीत है उस ज्ञान लेने पर अन्धकार के बाहर जाने का मार्ग मिल जाता है।

यह माया हमें चारों ओर से घेरे हुए है और वह बलि अर्पणकर है। फिर भी हमें माया से से होकर ही कार्य करना पड़ता है। जो कहता है, 'संसार को पूर्ण

१. शुक्लानु विन्दे अमृतस्य पुत्रा वा वे आमानि विष्णानि तस्यु ।

वेदाङ्गैर्त्तं प्रकृतं अज्ञानम् अद्वित्यवर्षं तमसः परस्वजु ।

तमेव विदित्वाऽप्रितमृतपुमैति मत्तः बन्धा विच्छेदजलाप ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ॥१५॥ ३।८॥

शुभमय हो जाने दो, तब मैं कार्य करूँगा और आनन्द भोगूँगा”, तो उसकी बात उसी व्यक्ति की तरह है, जो गगातट पर बैठकर कहता है कि जब इसका सारा पानी समुद्र में पहुँच जायगा, तब मैं इसके पार जाऊँगा। दोनों बातें असम्भव हैं। रास्ता माया के साथ नहीं है, वह तो माया के विरुद्ध है—यह बात भी हमें जान लेनी होगी। हम प्रकृति के सहायक होकर नहीं जन्मे हैं, वरन् हम तो प्रकृति के विरोधी होकर जन्मे हैं। हम बाँधनेवाले होकर भी स्वयं बंधे जा रहे हैं। यह मकान कहाँ से आया? प्रकृति ने तो दिया नहीं। प्रकृति कहती है, ‘जाओ, जगल में जाकर बसो।’ मनुष्य कहता है, ‘नहीं, मैं मकान बनाऊँगा और प्रकृति के साथ युद्ध करूँगा।’ और वह ऐसा कर भी रहा है। मानव जाति का इतिहास प्राकृतिक नियमों के साथ उसके युद्ध का इतिहास है और अन्त में मनुष्य ही प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है। अन्तर्जगत् में आकर देखो, वहाँ भी यही युद्ध चल रहा है—पशु-मानव और आध्यात्मिक मानव का, प्रकाश और अन्धकार का यह सग्राम निरन्तर जारी है। मानव यहाँ भी जीत रहा है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रकृति के बन्धन को चीरकर मनुष्य अपने गन्तव्य मार्ग को प्राप्त कर लेता है।

हमने अभी तक देखा कि वेदान्ती दार्शनिकों ने इस माया के परे ऐसी किसी वस्तु को जान लिया है, जो माया के अधीन नहीं है, और यदि हम उसके पास पहुँच सकें, तो हम भी माया से बँध नहीं जायेंगे। किसी न किसी रूप में यह भाव सभी धर्मों की सामान्य सम्पत्ति है। किन्तु वेदान्त के मत में यह धर्म का केवल प्रारम्भ है, अन्त नहीं। जो विश्व की सृष्टि तथा पालन करनेवाले हैं, जो मायाधिष्ठित हैं, जिन्हें माया या प्रकृति का कर्ता कहा जाता है, उन सगण ईश्वर का ज्ञान ही वेदान्त का अन्त नहीं है, केवल आदि है। यह ज्ञान क्रमशः बढ़ता जाता है और अन्त में वेदान्ती देखता है कि जिसे वह बाहर खड़ा हुआ समझता था, वह उसके अन्दर ही है और वह स्वयं वस्तुतः वही है। जिसने अपने को अध्यास के कारण बद्ध समझ रखा था, वह वास्तव में वही मुक्तस्वरूप है।

माया और ईश्वर धारणा का क्रमविकास

(२० अक्टूबर, १८९६ को लन्दन में दिया हुआ व्याख्यान)

हमने देखा कि अद्वैत वेदान्त का एक व्यापारिक सिद्धान्त मायावाद बीज रूप से संहिताओं में भी मिछटा है और जिन विचारों का विकास उपनिषदों में हुआ है, वे किसी न किसी रूप में संहिताओं में विद्यमान हैं। तुममें से बहुत से लोग अब माया की धारणा से परिचित हो गये होंगे और यह भी जान गये होंगे कि प्रायः लोग भक्तिमय माया को 'भ्रम' कहकर उसकी व्याख्या करते हैं। अतएव जब जगत् को माया कहते हैं, तब उसे भी भ्रम ही कहकर उसकी व्याख्या करनी पड़ती है। किन्तु माया को 'भ्रम' के अर्थ में लेना ठीक नहीं। माया कोई विशेष सिद्धान्त नहीं है, वह तो यह संसार जैसा है, कबल उसीका तथ्यात्मक कथन है। इस भाषा को समझने के लिए हमें संहिताओं तक जाना होगा और उसके मूल बीज का जर्म समझना होगा।

हम यह देख चुके हैं कि कार्यों में देवताओं का ज्ञान किस प्रकार आया। हमें समझना होगा कि ये देवता पहले केवल सक्तिशास्त्री सत्तार्थ मान थे। तुम लोगों में से अनेक ग्रीक शिष्ट, पारसी जबदा अन्य जातियों के प्राचीन शास्त्रों में यह पढ़कर सपत्नीत हो जाते हों कि देवता जेय कमी कभी ऐसा कार्य करते थे जो हमारी दृष्टि में अव्यक्त शृणित है। पर हम यह भूल जाते हैं कि हम लोग अभीसारी सत्ताओं के हैं और देवतापण सत्ताओं वर्य पढ़ने के बीच में और हम यह भी भूल जाते हैं कि इन सब देवताओं के उपासक लोग उनके चरित्र में कुछ भी असंगत बात नहीं देख पाते थे और वे जिस ढंग से अपने उन देवताओं का वर्णन करते थे उससे उन्हें कुछ भी भय नहीं होता था क्योंकि वे सब देवता सन्हीके अनुसूत थे। हम लोगों को आजीवन यह बात सीखनी होगी कि प्रत्येक व्यक्ति की परब उसके अपने आदर्शों के अनुसार करनी चाहिए, दूसरों के आदर्शों के अनुसार नहीं। ऐसा न करके हम दूसरों को अपने आदर्शों की दृष्टि से देखते हैं। यह ठीक नहीं। अपने आसपास खुलेबाछे लोगों के साथ व्यवहार करते समय हम सब यही भूल करते हैं, और मेरे मतानुसार, दूसरों के साथ हमारी जो कुछ भी अनबन हो जाती है, वह अनिष्टार प्रती एक कारण से होती है कि

हम दूसरो के देवता को अपने देवता के द्वारा, दूसरो के आदर्शों को अपने आदर्शों के द्वारा और दूसरो के उद्देश्य को अपने उद्देश्य के द्वारा परखने की चेष्टा करते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों से वाव्य हो, मान लो, मैंने कोई एक विशेष कार्य किया, और जब मैं देखता हूँ कि एक दूसरा व्यक्ति वही कार्य कर रहा है, तो मैं सोच लेता हूँ कि उसका भी वही उद्देश्य है, मेरे मन में यह बात एक बार भी नहीं उठती कि यद्यपि फल एक हो सकता है, तथापि उस एक फल के उत्पन्न करनेवाले भिन्न भिन्न सहस्रो कारण हो सकते हैं। मैं जिस हेतु से उस कार्य को करने में प्रवृत्त होता हूँ, अन्य मनुष्य लोग उसी कार्य को अन्य हेतुओं से कर सकते हैं। अतएव इन सभी प्राचीन धर्मों पर विचार करते समय हम सामान्यतया जिस तरह दूसरो के सम्बन्ध में विचार करते हैं, वैसा न करके अपने को प्राचीन काल के लोगों के जीवन और विचार की स्थिति में रखकर विचार करना चाहिए।

प्राचीन व्यवस्थान (Old Testament) में क्रूर और निष्ठुर जिहोवा के वर्णन से बहुत से लोग भयभीत हो उठते हैं, पर क्यों? लोगों को यह कल्पना करने का क्या अविकार है कि प्राचीन यहूदियों का जिहोवा आधुनिक रुढिगत कल्पना के ईश्वर के समान होगा? और हमें यह भी न भूलना चाहिए कि हमारे वाद जो लोग आयेंगे, वे उसी तरह हमारे धर्म और ईश्वर की धारणा पर हँसेंगे, जिस तरह हम प्राचीन लोगों के धर्म एवं ईश्वर की धारणा पर हँसते हैं। यह सब होने पर भी, इन सब विभिन्न ईश्वर सम्बन्धी धारणाओं का संयोग करनेवाला एक स्वर्ण सूत्र है, और वेदान्त का उद्देश्य है—इस सूत्र की खोज करना। भगवान् कृष्ण ने कहा है—“भिन्न भिन्न मणियाँ जिस प्रकार एक सूत्र में पिरोयी हुई रहती हैं, उसी प्रकार इन सब विभिन्न भावों के भीतर भी एक सूत्र विद्यमान है।” और आजकल की धारणाओं की दृष्टि में वे सब प्राचीन धारणाएँ कितनी ही बीभत्स, भयानक अथवा घृणित क्यों न मालूम पड़ें, वेदान्त का कर्तव्य उन सभी प्राचीन धारणाओं एवं सभी वर्तमान धारणाओं के भीतर इस संयोग-सूत्र की दृढ़ प्रतिष्ठा करनी है। प्राचीन काल की भूमिका में वे धारणाएँ सामंजस्यपूर्ण मालूम पड़ती हैं और ऐसा लगता है कि हमारी वर्तमान धारणाओं से वे शायद अधिक बीभत्स नहीं थीं। उनकी बीभत्सता हमारे सामने तभी प्रकट होती है, जब हम उनको उनकी भूमिका से अलग करके उन पर अपनी परिस्थितियाँ लागू करते हैं। जिस प्रकार प्राचीन यहूदी आज के तीक्ष्ण-बुद्धि यहूदी में और प्राचीन आर्य आज के बौद्धिक हिन्दू में परिणत हो गया है, उसी प्रकार जिहोवा की और अन्य देवताओं की भी क्रमोन्नति हुई है।

हम इतनी ही भूल करते हैं कि हम उपासक की क्रमोन्नति तो स्वीकार

करते हैं, परन्तु उपास्य की नहीं। हम उपासकों को जिस प्रकार उन्नति का भोग देते हैं, उस प्रकार उपास्य को नहीं देना चाहते। तात्पर्य यह कि हम-तुम जिस प्रकार कुछ विशिष्ट भावों के चोकर होने के माते उन भावों की उन्नति के साथ साथ उन्नत हुए हैं, उसी प्रकार देवतागण भी विधेय विधेय भावों के चोकर होने के कारण उन भावों की उन्नति के साथ उन्नत हुए हैं। तुम प्रायः यह आश्चर्य करो कि ईश्वर की भी कहीं उन्नति होती है? तो इस पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि क्या मनुष्य की भी कभी उन्नति होती है? आगे चलकर हम देखेंगे कि इस मनुष्य के पीछे जो यथार्थ पुरुष है वह अचल अपरिणामी शुद्ध और निरय मुक्त है। जिस प्रकार यह मनुष्य उस यथार्थ मनुष्य की छाया मात्र है उसी प्रकार हमारी ईश्वर सम्बन्धी चारणाएँ केवल हमारे मन की सृष्टि हैं—वे उस प्रकृत ईश्वर की आधिक अभिव्यक्ति आभास मात्र हैं। इन समस्त आधिक अभिव्यक्तियों के पीछे प्रकृत ईश्वर है जो निरय शुद्ध अपरिणामी और अजर है। किन्तु ये आधिक अभिव्यक्तियाँ सर्वथा ही परिणामशील हैं—वे अपने अस्तित्वस्वरूप की त्रुटि-अभिव्यक्ति मात्र हैं वह तब जब अधिक परिमाण में अभिव्यक्त होता है, तब उसे उन्नति और जब उसका अधिकार इका हुआ या अभिव्यक्त रहता है तब उसे अवधि कहते हैं। इस प्रकार, जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है, वैसे ही वैसे देवताओं की भी होती है। वैसे-वैसे धर्मों में जैसे जैसे हमारी उन्नति होती है वैसे वैसे हमारा स्वरूप प्रकाशित होता है वैसे ही वैसे देवता भी अपना स्वरूप प्रकाशित करते जाते हैं।

अब हम मायावाद को समझ सकेंगे। संसार के सभी धर्मों ने इस प्रश्न को उठाया है—संसार में यह अज्ञान-अज्ञेय क्यों है? संसार में यह अज्ञान क्यों है? आदिम धर्मवाद के आधिर्भाव के समय हम इस प्रश्न को उठाने नहीं देखते हमका चारण यह है कि आदिम मनुष्य को जगत् अज्ञान-अज्ञेयपूर्ण नहीं लगा। जगत् के बाग और कोई अज्ञान-अज्ञेय नहीं था किसी प्रकार का मन-विरोध नहीं था अज्ञेय-अज्ञेय की कोई प्रतिउत्पत्ति नहीं थी। उसके हृदय में केवल दो भावों का प्रकाश हो रहा था। एक चरणी थी—यह करण और दूसरे उन्नत करने का नियम चरणी थी। आदिम मानव भावनाओं का बाग था। उसके मन में जो आना था वही चरणी के चर टालना था। वह इन भावनाओं के सम्बन्ध में विचार करने अथवा उनका मयन करने का शिष्टान्त प्रयत्न नहीं करता था। इन सब चरणाओं के सम्बन्ध में ही चरणी बाग है। वे लोग भी अपनी भावनाओं के अज्ञेय थे। इन भावनाओं के उन्नत अज्ञेय-अज्ञेय को विप्र-भिषय कर दिया। विद्वेष विद्वेष ही सम्बन्ध था वही चरणी बाग था। वह कोई भी नहीं जानता जानता

भी नहीं चाहता। इसका कारण यह है कि उस समय लोगों में अनुसन्धान की प्रवृत्ति ही नहीं जगी थी, इसलिए वे जो कुछ भी करते, वही ठीक था। उस समय भले-बुरे की कोई धारणा नहीं थी। हम जिन्हें बुरा कहते हैं, ऐसे बहुत से कार्य देवता लोग करते थे, हम वेदों में देखते हैं कि इन्द्र और अन्यान्य देवताओं ने अनेक बुरे कार्य किये हैं, पर इन्द्र के उपासकों की दृष्टि में पाप या बुरा काम कुछ भी न था, अतः वे इस सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं करते थे।

नैतिक भाव की उन्नति के साथ साथ मनुष्य के मन में एक सग्राम प्रारम्भ हुआ, मनुष्य में मानो एक नयी इन्द्रिय का आविर्भाव हुआ। भिन्न भिन्न भाषाओं और भिन्न भिन्न जातियों ने इसे भिन्न भिन्न नाम दिये हैं, कोई कहता है—यह ईश्वर की वाणी है, और कोई यह कि वह पहले की शिक्षा का फल है। जो भी हो, उसने प्रवृत्तियों को दमन करनेवाली शक्ति के रूप में काम किया। हमारे मन की एक प्रवृत्ति कहती है, यह काम करो, और दूसरी कहती है, मत करो। हमारे भीतर एक प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं, जो इन्द्रियों के द्वारा बाहर जाने की चेष्टा करती रहती हैं। और उनके पीछे, चाहे कितना ही क्षीण क्यों न हो, एक स्वर कहता रहता है—बाहर मत जाना। इन दो बातों के संस्कृत नाम हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति। प्रवृत्ति ही हमारे समस्त कर्मों का मूल है। निवृत्ति से धर्म का आरम्भ है। धर्म आरम्भ होता है—इस 'मत करना' से, आध्यात्मिकता भी इस 'मत करना' से ही आरम्भ होती है। जहाँ यह 'मत करना' नहीं है, वहाँ जानना कि धर्म का आरम्भ ही नहीं हुआ। इस 'मत करना' से ही निवृत्ति का भाव आ गया, और परस्पर युद्ध में रत देवतागण आराधित होने के बावजूद भी मनुष्य की धारणाएँ विकसित होने लगीं।

अब मानवता के हृदय में कुछ प्रेम जाग्रत हुआ। अवश्य उसकी मात्रा बहुत थोड़ी थी और आज भी वह मात्रा कोई अधिक नहीं है। पहले-पहल यह प्रेम कबीले तक सीमित रहा। ये सब देवता केवल अपने कबीले से प्रेम करते थे। प्रत्येक देवता एक एक कबीले का देवता था और उस विशिष्ट कबीले का रक्षक मात्र था। और जिस प्रकार भिन्न भिन्न देशों के विभिन्न वंशीय लोग अपने को उस एक पुरुषविशेष का वंशज कहते हैं, जो उस वंश का प्रतिष्ठाता होता है, उसी प्रकार कभी कभी किसी कबीले के लोग अपने को अपने देवता का वंशधर समझते थे। प्राचीन काल में कुछ ऐसी जातियाँ थी, और आज भी हैं, जो अपने को चन्द्र या सूर्य का वंशधर कहती थीं। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में तुमने बड़े बड़े सूर्यवंशी वीर सम्राटों की कथाएँ पढ़ी होंगी। ये लोग पहले चन्द्र या सूर्य के उपासक थे, और बाद में ये अपने को चन्द्र या सूर्य का वंशज कहने लगे।

अब जब यह कृत्रीमीय भाव आने लगा तब किंचित् प्रेम आया एक बूंदरे के प्रति जोड़ा कर्तव्य-भाव आया कुछ सामाजिक गृहकार्य की उत्पत्ति हुई और इसके साथ ही साथ यह भावना भी आने लगी कि एक बूंदरे का दोष सहन मा क्षमा किये बिना हम कैसे एक साथ रह सकते हैं ? एक न एक समय अपनी प्रवृत्तियों का संयम किये बिना मनुष्य मत्ता किस प्रकार बूंदरों के साथ यहाँ तक कि एक भी व्यक्ति के साथ रह सकता है ? यह असम्भव है। अब इसी प्रकार संयम की भावना आयी। इस संयम की भावना में ही सम्पूर्ण समाज गुंथा हुआ है, और हम जानते हैं कि जो नर या नापी ने इस सहिष्णुता या क्षमाक्षी सहानु पाठ को नहीं पड़ा है वे अत्यन्त कष्ट में जीवन बिताते हैं।

अतएव जब इस प्रकार धर्म का भाव आया तब मनुष्य के मन में एक अपेक्षाकृत उच्चतर एवं अधिक नीतिसंमत भाव उदित हुआ। तब वे अपने उन्हीं प्राचीन देवताओं में—वैश्वदेव, इन्द्र, अग्नी, सोम, वायु, शिव, ब्रह्मा, इत्यादि देवताओं में—जिनको उनके मांस की गन्ध और तीव्र सुरा की आहृति से ही परम आनन्द मिळता था—कुछ अंतर्पति देखने लगे। शून्यतत्त्वस्वरूप वेदों के बीच में वर्तन जाता है कि कभी कभी इन्द्र इतना मद्यपान कर लेता था कि वह बेहोस होकर गिर पड़ता और अर्ध-अर्ध बर्फ में जमता था। इस प्रकार के देवता अब अगह्य हो गये। तब सभी के उद्देश्यों की सोच बारम्बार हो गयी और देवताओं के कार्यों के उद्देश्य भी पूछे जाने लगे। अमुक देवता के अमुक कार्य का क्या उद्देश्य है ? कोई उद्देश्य नहीं मिळा। अतएव लोगों ने उन सब देवताओं का त्याग कर दिया जबदा बूंदरे शब्दों में वे फिर देवताओं के विषय में और भी उच्च चारणाएँ बनाने लगे। उन्होंने देवताओं के उन सब गुणों तथा कार्यों को जो अच्छे थे विल्हे वे समझ सकते थे एकत्र किया और जिन कार्यों को उन्होंने अच्छा नहीं समझा अथवा समझा ही नहीं उन्हें अज्ञान कर दिया। इन अच्छे अच्छे भावों की समष्टि को उन्होंने एक नाम देव-देव या देवताओं का देवता दे दिया। तब उनके उपास्य देवता केवल शक्ति के परिणामक मात्र नहीं रहे शक्ति से अधिक और भी कुछ उनके लिए आवश्यक हो गया। अब वे भीतिपरमय देवता हो गये वे मनुष्यों से प्रेम करने लगे मनुष्यों का हित करने लगे। पर देवता सम्बन्धी चारणा फिर भी अशुभ रही। उन लोगों ने देवता की नीतिपरमयता तथा शक्ति को केवल बढ़ा भर दिया। अब वे देवता विश्व में सर्वश्रेष्ठ नीतिपरमयता तथा एक प्रकार से सर्वशक्तिमान भी हो गये।

किन्तु यह जोड़-बाँध जब तक जब तक रहती थी ? जैसे जैसे व्याख्याएँ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गयी जैसे जैसे यह कठिनाई मानो और भी कठिन होती गयी। देवता अथवा ईश्वर के गुण यदि 'अधितीय क्रम' (arithmetical

progression) के नियम से बढ़ने लगे, तो सन्देह और कठिनाइयाँ 'ज्यामितीय क्रम' (geometrical progression) के नियम से बढ़ने लगी। निष्ठुर जिहोवा के साथ जगत् का सामजस्य स्थापित करने में जो कठिनाई होती थी, उससे भी अधिक कठिनाई ईश्वर मन्वन्वी नवीन धारणा के साथ होने लगी। और यह कठिनाई आज तक बनी रही। सर्वशक्तिमान और प्रेममय ईश्वर के राज्य में ऐसी पैशाचिक घटनाएँ क्यों घटती हैं? सुख की अपेक्षा दुःख इतना अधिक क्यों है? साधु-भाव जितना है, असाधु-भाव उससे इतना अधिक क्यों है? ससार में कुछ भी अशुभ नहीं है, ऐसा समझकर भले ही हम आँखें बन्द करके बैठे रहे, पर उससे ससार की वीभत्सता में कुछ भी अन्तर नहीं आता। बहुत हुआ, तो यह समार बस टैण्डालस के नरक^१ के समान है, उससे यह किसी अश में अच्छा नहीं। यहाँ हम हैं प्रबल प्रवृत्तियाँ लिये और इन्द्रियो को चरितार्थ करने की प्रबलतर वासनाएँ लिये, पर उनकी पूर्ति का कोई उपाय नहीं। अपनी इच्छा के विरुद्ध हममें एक तरग उठती है, जो हमें आगे बढ़ने को बाध्य करती है, परन्तु जैसे ही हम एक पाँव आगे बढ़ाते हैं, वैसे ही एक धक्का लगता है। हम सभी टैण्डालस की भाँति इस जगत् में जीवित रहने और मरने को मानो विधि-विधान से अभिशप्त हैं। पचेन्द्रिय द्वारा सीमाबद्ध जगत् से अतीत के आदर्श हमारे मस्तिष्क में आते हैं, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी हम देखते हैं कि उन्हें हम कभी भी कार्य-रूप में परिणत नहीं कर सकते। प्रत्युत हम अपने चारों ओर की परिस्थिति के चक्र में पिसकर चूर चूर हो परमाणुओं में परिणत हो जाते हैं। और दूसरी ओर, यदि मैं आदर्श-प्राप्ति की चेष्टा का परित्याग कर केवल सासारिक भाव को लेकर रहना चाहूँ, तो भी मुझे पशु-जीवन बिताना पड़ता है और मैं अपने को पतित और गर्हित कर लेता हूँ। अतएव किसी भी ओर सुख नहीं। जो लोग इस ससार में जिस अवस्था में उत्पन्न हुए हैं, उसी अवस्था में रहना चाहते हैं, तो उनके भाग्य में भी दुःख है। और जो लोग सत्य तथा उच्चतर आदर्श के लिए—इस पाशविक जीवन की अपेक्षा कुछ उन्नत जीवन के लिए—प्राण देने को आगे बढ़ते हैं, उनके लिए तो और भी सहस्र

१ ग्रीक लोगों की एक पौराणिक कथा है कि टैण्डालस नामक राजा पाताल के एक तालाब में गिर पड़ा था। तालाब का पानी उसके ओठों तक आता था, परन्तु जैसे ही वह अपनी प्यास बुझाने का प्रयत्न करता, वैसे ही पानी कम हो जाता था। उसके सिर के ऊपर नाना प्रकार के फल लटकते थे, और जैसे ही वह उन्हें पकड़ने जाता कि वे गायब हो जाते थे। स०

पुना कुछ है। यही वस्तु-स्थिति है पर इसकी कोई व्याख्या नहीं। और व्याख्या हो भी नहीं सकती। पर बेदान्त इससे बाहर निकलने का मार्ग बतलाता है। ये सब मापण वेते समय सायब मुझे कुछ ऐसी भी बातें कहनी पड़ें जिनसे तुम भ्रमभीत हो जाओ पर जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे यदि तुम याद रखो सही भाँति आत्मसात कर लो और उसके सम्बन्ध में दिन-रात चिन्तन करो तो वह तुम्हारे अन्दर बैठ जायगी तुम्हारी चञ्चल करेगी और सत्य को समझने तथा सत्य में प्रतिष्ठित होने में तुमको समर्थ करेगी।

जब यह एक तत्प्रात्मक वर्णन है कि यह संसार एक टैप्टासस का भरक है और हम इस जगत् के बारे में कुछ भी नहीं जानते पर साथ ही हम यह भी तो नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। जब मैं सोचता हूँ कि मैं इस जगत् शृंखला के बारे में नहीं जानता तो मैं यह नहीं कह सकता कि इसका अस्तित्व है। वह मेरे अस्तित्व का पूर्ण भ्रम हो सकता है। हो सकता है, मैं केवल स्वप्न देख रहा हूँ। मैं स्वप्न देख रहा हूँ कि मैं तुमसे बातें कर रहा हूँ और तुम मेरी बात सुन रहे हो। कोई भी यह सिद्ध नहीं कर सकता कि यह स्वप्न नहीं है। मेरा अस्तित्व भी तो एक स्वप्न हो सकता है और सचमुच अपना अस्तित्व देखा किसने है? वह तो हमने केवल मान लिया है। सभी विषयों के सम्बन्ध में यही बात है। अपने धरीर को भी तो हम मान ही लेते हैं। फिर यह भी नहीं कह सकते कि हम नहीं जानते। ज्ञान और अज्ञान के बीच की यह अवस्था वह रहस्यमय पहेली यह सत्य और मिथ्या का मिश्रण—कहाँ जाकर इनका मिश्रण हुआ है कौन जाने? इस स्वप्न में विचरण कर रहे हैं—अर्थ निरहित अर्थ प्राप्त—जीवन भर एक पहेली में जाबद्ध हममें से प्रत्येक की बस यही दशा है। सारे इन्द्रिय-ज्ञान की यही दशा है। सारे वर्णनों की सारे विज्ञान की सब प्रकार के मानवीय ज्ञान की—जिनको लेकर हमें इतना अहंकार है—सबकी बत यही बसा है—यही परिणाम है। बस यही संसार है।

चाहे परार्थ बहो चाहे मन चाहे आत्मा चाहे किसी भी नाम से क्यों न पुकारो बात एक ही है—हम यह नहीं कह सकते कि ये सब हैं और यह भी नहीं कह सकते कि ये सब नहीं हैं। हम इन सबको एक भी नहीं कह सकते और अनेक भी नहीं। यह प्रकाश और अल्पकार का खेल—यह तात्कालिक बुद्धिमान यह अविदित अज्ञान और अविभाज्य मिश्रण जिसमें सारी बन्नाएँ कभी सत्य मान्य होती हैं कभी मिथ्या—सदा से चल रहा है। इनके कारण कभी लगता है कि हम जागृत हैं कभी लगता है कि सोये हुए हैं। बस यही माया है, यही बन्धु-स्थिति है। इसी माया में हमारा जन्म हुआ है, इसीमें हम जीवित हैं

इसीमें सोच-विचार करते हैं, इसीमें स्वप्न देखते हैं। इसीमें हम दार्शनिक हैं, इसीमें साधु हैं, यही नहीं, हम इस माया में ही कभी दानव और कभी देवता हो जाते हैं। विचार के रथ पर चढ़कर चाहे जितनी दूर जाओ, अपनी धारणा को ऊँचे से ऊँचा बनाओ, उसे अनन्त या जो इच्छा हो, नाम दो, पर तो भी यह सब माया के ही भीतर है। इसके विपरीत हो ही नहीं सकता, और मनुष्य का जो कुछ ज्ञान है, वह बस, इस माया का ही साधारण भाव है। इस माया के दिखनेवाले रूप का ज्ञान ही सारे मानवीय ज्ञान की सीमा है। यह माया नाम-रूप का कार्य है। जिस किसी वस्तु का रूप है, जो भी कुछ तुम्हारे मन में किसी प्रकार के भाव का उद्दीपन कर देता है, वह सब माया के ही अन्तर्गत है। जो कुछ देश-काल-निमित्त के नियम के अधीन है, वही माया के अन्तर्गत है।

अब हम पुनः यह विचार करेंगे कि उस प्रारम्भिक ईश्वर-धारणा का क्या हुआ। यह धारणा कि एक ईश्वर अनन्त काल से हमें प्यार कर रहा है, अनन्त, सर्वशक्तिमान और निस्वार्थ पुरुष है और इस विश्व का शासन कर रहा है, स्पष्ट ही हमें सतुष्ट नहीं कर सकती। दार्शनिक साहस के साथ इस सगुण ईश्वर-धारणा के विरुद्ध खड़ा होता है। वह पूछता है—तुम्हारा न्यायशील, दयालु ईश्वर कहाँ है? क्या वह अपनी मनुष्य और पशुरूप लाखों सन्तानों का विनाश नहीं देखता? कारण, ऐसा कौन है, जो एक क्षण भी दूसरों की हिंसा किये बिना जीवन धारण कर सकता है? क्या तुम सहस्रो जीवन का सहारा किये बिना एक साँस भी ले सकते हो? लाखों जीव मर रहे हैं, इसीसे तुम जीवित हो। तुम्हारे जीवन का प्रत्येक क्षण, तुम्हारा प्रत्येक निश्वास सहस्रो जीवों के लिए मृत्यु है, तुम्हारी प्रत्येक हलचल लाखों का काल है। तुम्हारा प्रत्येक ग्राम लाखों की मौत है। वे क्यों मरें? इस सम्बन्ध में एक प्राचीन कुतर्क है—'वे तो अति क्षुद्र जीव हैं।' पर यह तो एक सन्दिग्ध विषय है। कौन कह सकता है कि चीटी मनुष्य से श्रेष्ठ है, अथवा मनुष्य चीटी से? कौन सिद्ध कर सकता है कि यह ठीक है अथवा वह? यदि मान भी लिया जाय कि वे अति क्षुद्र जीव हैं, तो भी वे मरें क्यों? यदि वे क्षुद्र हैं, तो उनको बचे रहने का तो और भी अधिकार है। वे क्यों न जीवित रहें? उनका जीवन इन्द्रियों में ही अधिक आवद्ध है, अतः वे हमारी-तुम्हारी अपेक्षा सहस्र गुना अधिक दुःख-सुख का बोध करते हैं। कुत्ता या भेड़िया जिस चाव के साथ भोजन करता है, उस तरह कौन मनुष्य कर सकता है? इसका कारण यह है कि हमारी समस्त कार्य-प्रवृत्ति इन्द्रियों में नहीं है—वह बुद्धि में है, आत्मा में है। पर कुत्ते के प्राण इन्द्रियों में ही पड़े रहते हैं, वह

विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम रिय बिना हम व्यक्ति में कर्म प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। सारे विश्व का यदि एक अणुएक रूप में बिम्बित किया जाए तो वही ईश्वर है और उस पुरुष पुरुष रूप में देखने पर वही वह वृक्षमान संसार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकाई है जिसमें सारा छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय शार्ङ्गिक व्यक्ति पर ही नहीं एक जाने-बैठा व्यक्ति पर एक परमपरी दृष्टि डालकर तुरन्त एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की लोच में लय जाते हैं जिसमें सब व्यक्तियों या विधियों का अस्तमाँव हो। इस समष्टि की यात्र ही भारतीय द्यन और कर्म का उदय है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्त्व की कामना करता है जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। मन्त्र उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपलब्धि कर लेना चाहता है जिससे प्रेम करने में वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योही उस मूलमूल शक्ति को अपने अविचार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन तथा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान भक्तितत्त्व दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व लोच में लगा रहता है। अतएव मन्त्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते चले जाओ तो भी अन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब वह मूल तत्त्व प्राप्त हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है संसार के मुक्त बद्ध या मुमुक्षु सारे जीवात्माओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिकल्पमान जगत् उसीका परिष्कृत भाव है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब अन्त को प्यार करना और उसकी मलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले मन्त्रप्रेम के द्वारा हमें यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी अन्यथा संसार की मलाई करना कोई हँसी-खेळ नहीं है। मन्त्र कहता है, 'सब कुछ उसीका है, वह मेरा प्रियतम है मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार मन्त्र को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान है, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरों को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते हैं? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतों के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमें है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने में सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतों में देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओं में पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओं में क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप में नहीं दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप में ही दीख पड़ता है, पशु में पशु-रूप नहीं दिखायी पड़ता, वरन् उसमें स्वयं भगवान् ही दीख पड़ते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखों से वाघ का भी वाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमें स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पड़ता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ़ अवस्था में सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतों में अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियों के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'

इस प्रगाढ़, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ससार में भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नहीं। शास्त्रों ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प!" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "घन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ़ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था में भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नहीं होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम् ॥

विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि में प्रेम किस बिना हम व्यक्ति में प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है। मारे बिना का यदि एक अणु भी हमें चिन्तन किया जाय तो बड़ी ईश्वर है और उसे पुष्य पुष्य रूप में बनने पर बड़ी यह दृश्यमान संगार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इनाई है जिसमें साया छोटी छोटी इकाइया का योग है। इस समष्टि के माध्यम में ही मारे बिना को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय दार्शनिक व्यक्ति पर ही नहीं रुक जाने के ता व्यक्ति पर एक सरसरी दृष्टि झाँककर तुम्हें एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की गोज में लग जाने हैं जिसमें सब व्यक्तियों या विशेषों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की गोज ही भारतीय दर्शन और धर्म का कर्ण है। मानी पुष्य ऐसी एक समष्टि की ऐसी एक निरपेक्ष और व्यापक उत्पत्ति की कामना करता है जिसे जानने में वह सब कुछ जान सके। मन्त उस एक सर्वव्यापी पुष्य की माझान् उपस्थित कर लेना चाहता है जिसमें प्रेम करने में वह सारे विश्व से प्रेम कर सके। योमी उस मूलभूत धर्म को अपने अधिभार में लाता चाहता है जिसके नियमन में वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान मन्त्रितत्त्व दाम आदि सभी में—एक समष्टि का व्यापक उत्पत्ति की इस अनूर्ध्व गोज में लगा रहा है। अतएव मन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बार दूसरे व्यक्ति में प्रेम करते जैसे भागी तो भी अन्तःकाल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब वह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है संसार के मुक्त बन्ध या मुमुक्षु सारे धीकारमात्रों की आवर्ष-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाग है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि का प्यार करते, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी सलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले मनवत्प्रेम के द्वारा हमें यह धर्म प्राप्त कर लेनी होगी जस्यवा संसार की सलाई करना कोई हौसी-बेक नहीं है। मन्त कहता है, "सब कुछ उसीका है, वह मेरा मित्रताम है मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार मन्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते है? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने मे सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'^१

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प !" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "घन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्जात्वा सर्वभूतमय हरिम्॥

विश्वप्रेम और उससे आत्मसमर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किये बिना हम व्यक्ति में कैसे प्रेम कर सकते हैं? ईश्वर ही वह समष्टि है, सारे विश्व का यदि एक अग्रगण्य रूप में विस्तृत किया जाय तो वही ईश्वर है, और उसे पूजन पूजक रूप से देगने पर वही यह दृश्यमान संसार है—व्यक्ति है। समष्टि वह इकाई है जिसमें सारों छोटी छोटी इकाइयों का योग है। इस समष्टि के माध्यम से ही सारे विश्व को प्रेम करना सम्भव है। भारतीय शाक्तिक व्यष्टि पर ही नहीं रक्त जाते वे तो व्यष्टि पर एक सरमरी दृष्टि डालकर तुलना एक ऐसे व्यापक या समष्टि भाव की शोच में लग जाते हैं, जिसमें सब व्यष्टियों या कियेयों का अन्तर्भाव हो। इस समष्टि की शोच ही भारतीय दर्शन और धर्म का लक्ष्य है। ज्ञानी पुरुष ऐसी एक समष्टि की ऐसे एक निरपेक्ष और व्यापक तत्त्व की कामना करता है जिसे जानने से वह सब कुछ जान सके। अतः उस एक सर्वव्यापी पुरुष की साक्षात् उपस्थिति कर लेना चाहता है, जिससे प्रेम करने से वह सारे विश्व से प्रेम कर सकें। योही उस मूलभूत शक्ति को अपने अभिकार में लाना चाहता है, जिसके नियमन से वह इस सम्पूर्ण विश्व का नियमन कर सके। यदि हम भारतीय विचार-धारा के इतिहास का अध्ययन करें तो देखेंगे कि भारतीय मन सदा से हर विषय में—भौतिक विज्ञान मनोविज्ञान भक्तितत्त्व दर्शन आदि सभी में—एक समष्टि या व्यापक तत्त्व की इस अपूर्व शोच में लगा रखा है। अतएव भक्त इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि तुम केवल एक के बाद दूसरे व्यक्ति से प्रेम करते जाके जाओ तो भी अनन्त काल में भी संसार को एक समष्टि के रूप में प्यार करने में समर्थ न हो सकोगे। पर अन्त में जब यह मूल सत्य ज्ञात हो जाता है कि समस्त प्रेम की समष्टि ईश्वर है, संसार के मुक्त बन्ध या मुमुक्षु सारे पीडाग्रहाओं की आदर्श-समष्टि ही ईश्वर है, तभी यह विश्वप्रेम सम्भव होता है। ईश्वर ही समष्टि है और यह परिदृश्यमान जगत् उसीका परिच्छिन्न भाग है—उसीकी अभिव्यक्ति है। यदि हम इस समष्टि को प्यार करें, तो इससे सभी को प्यार करना हो जाता है। तब जगत् को प्यार करना और उसकी भलाई करना सहज हो जाता है। पर पहले भगवत्प्रेम के द्वारा हम यह शक्ति प्राप्त कर लेनी होगी अन्यथा संसार की भलाई करना कोई हौसी-खेच नहीं है। भक्त कहता है, "सब कुछ उसीका है, वह मेरा प्रियतम है, मैं उससे प्रेम करता हूँ। इस प्रकार भक्त को सब

कुछ पवित्र प्रतीत होने लगता है, क्योंकि वह सब आखिर उसीका तो है। सभी उसकी सन्तान हैं, उसके अगस्वरूप हैं, उसके रूप हैं। तब फिर हम किसीको कैसे चोट पहुँचा सकते हैं? दूसरो को बिना प्यार किये हम कैसे रह सकते हैं? भगवान् के प्रति प्रेम के साथ ही, उसके निश्चित फलस्वरूप, सर्व भूतो के भी प्रति प्रेम अवश्य आयेगा। हम ईश्वर के जितने समीप आते जाते हैं, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सब कुछ उसीमे है। जब जीवात्मा इस परम प्रेमानन्द को आत्मसात करने में सफल होती है, तब वह ईश्वर को सर्व भूतो मे देखने लगती है। इस प्रकार हमारा हृदय प्रेम का एक अनन्त स्रोत बन जाता है। और जब हम इस प्रेम की और भी उच्चतर अवस्थाओ मे पदार्पण करते हैं, तब ससार की वस्तुओ मे क्षुद्र भेद की भावनाएँ हमारे हृदय से सर्वथा लुप्त हो जाती हैं। तब मनुष्य मनुष्य के रूप मे नही दीखता, वरन् साक्षात् ईश्वर के रूप मे ही दीख पडता है, पशु मे पशु-रूप नही दिखायी पडता, वरन् उसमे स्वयं भगवान् ही दीख पडते हैं, यहाँ तक कि ऐसे प्रेमी की आँखो से बाघ का भी बाघ-रूप लुप्त हो जाता है और उसमे स्वयं भगवान् प्रकाशमान दीख पडता है। इस प्रकार, भक्ति की इस प्रगाढ अवस्था मे सभी प्राणी हमारे लिए उपास्य हो जाते हैं। 'हरि को सब भूतो मे अवस्थित जानकर ज्ञानी को सब प्राणियो के प्रति अब्यभिचारिणी भक्ति रखनी चाहिए।'^१

इस प्रगाढ, सर्वग्राही प्रेम के फलस्वरूप पूर्ण आत्मसमर्पण की अवस्था उपस्थित होती है। तब यह दृढ विश्वास हो जाता है कि ससार मे भला-बुरा जो कुछ होता है, कुछ भी हमारे लिए अनिष्टकर नही। शास्त्रो ने इसीको 'अप्रातिकूल्य' कहा है। ऐसा प्रेमी जीव दुःख उपस्थित होने पर कहता है, "दुःख ! स्वागत है तुम्हारा।" यदि कष्ट आये, तो कहेगा, "आओ कष्ट ! स्वागत है तुम्हारा। तुम भी तो मेरे प्रियतम के पास से ही आये हो।" यदि सर्प आये, तो कहेगा, "विराजो, सर्प !" यहाँ तक कि यदि मृत्यु भी आये, तो वह अघरो पर मुस्कान लिये उसका स्वागत करेगा। "धन्य हूँ मैं, जो ये सब मेरे पास आते हैं, इन सबका स्वागत है।" भगवान् और जो कुछ भगवान् का है, उस सबके प्रति प्रगाढ प्रेम से उत्पन्न होनेवाली इस पूर्ण निर्भरता की अवस्था मे भक्त अपने को प्रभावित करनेवाले सुख और दुःख का भेद भूल जाता है। दुःख-कष्ट आने पर वह तनिक भी विचलित नही होता। और प्रेमस्वरूप ईश्वर की इच्छा पर यह जो स्थिर, खेदशून्य निर्भरता

१ एव सर्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।

कर्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्वभूतमय हरिम् ॥

है वह तो सबकुछ महान् पीठ्यापुत्र जिया-कलापों से मिछनेवासे नाम-व्रत की अपेक्षा कहीं अधिक वाछनीय है।

अधिकतर मनुष्यों के लिए देह ही सब कुछ है। देह ही उनकी सारी दुनिया है। वैहिक सुख-भोग ही उनका सर्वस्व है। देह और देह से सम्बन्धित वस्तुओं की उपासना करने का भूत हम सबमें प्रविष्ट हो गया है। भले ही हम सम्बी चौड़ी बातें करें बड़ी ठेकी ठेकी उद्गारों से पर आखिर हैं हम गिद्धों के ही समान हमारा मन सदा नीचे पड़ हुए सड़े-भसे मांस के टुकड़े में ही पड़ा रहता है। हम घेर से अपने शरीर की रक्षा क्यों करें? हम उसे घेर को क्यों न दे दें? कम से कम उससे घेर की तो तृप्ति होगी और यह कार्य आरमत्याग और उपासना से अधिक भिन्न न होगा। क्या तुम ऐसे एक भाव की उपसन्धि कर सकते हो जिसमें स्वार्थ की तनिक भी भाव न हो? क्या तुम अपना यह भाव सम्पूर्ण रूप से गप्ट कर सकते हो? यह प्रेम-बर्ष के शिकार की यह सिर चकरा देनेवाली ठेकाई है और बहुत पौड़े लोग ही उस तक पहुँच सके हैं। पर जब तक मनुष्य इस प्रकार के आरमत्याग के लिए सारे समय पूरे हृदय के साथ प्रस्तुत नहीं रहता तब तक वह पूर्ण मक्त नहीं हो सकता। हम अपने इस शरीर को अल्प अवकाश अधिक समय तक के लिए भले ही बनाये रख ले पर उससे क्या? हमारे शरीर का एक न एक दिन नाश होना तो अबसम्भवावी है। उसका अस्तित्व चिरस्थायी नहीं है। वे बन्ध है जिसका शरीर दूसरों की सेवा में अर्पित हो जाता है। एक साधु पुरुष केवल अपनी सम्पत्ति ही नहीं बरन् अपने प्राण भी दूसरों की सेवा में उत्सर्ग कर देने के लिए सर्वत्र उद्यत रहता है। इस संसार में जब मृत्यु निश्चित है तो श्रेष्ठ यही है कि यह शरीर किसी नीच कार्य की अपेक्षा किसी उत्तम कार्य में ही अर्पित हो जाय। हम भले ही अपने जीवन को पचास वर्ष या बहुत हुआ तो सी वर्ष तक जीवन के कार्य पर उसके बाध? उसके बाध क्या होता है? जो वस्तु संघात से उत्पन्न होती है वह विचटित होकर नष्ट भी होती है। ऐसा समय अवश्य आता है, जब उसे विचटित होना पड़ता है। ईसा बुद्ध और मुहम्मद सभी दिवगत हो गये। संसार के सारे महापुरुष और आचार्यजन आज इस बरती से उठ गये हैं।

मक्त कहता है "इस सगर्भगुर संसार में जहाँ प्रत्येक वस्तु टुकड़े टुकड़े हो चुक यं मिली जा रही है। हमें अपने समय का सदुपयोग कर लेना चाहिए। और वास्तव में जीवन का सर्वश्रेष्ठ उपयोग यही है कि उसे सर्वभूतों की सेवा में क्या दिया जाय। हमारा सबसे बड़ा भ्रम यह है कि हमारा यह शरीर ही हम है और जिस किसी प्रकार से हो इसकी रक्षा करनी होगी इसे सुखी रक्षना होगा। और यह ममानक बेहात्म बुद्धि ही संसार में सब प्रकार की स्वार्थपट्टा की बड़ है। यदि तुम यह निश्चित

रूप से जान सको कि तुम शरीर से विल्कुल पृथक् हो, तो फिर इस दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं रह जायगा, जिसके साथ तुम्हारा विरोध हो सके। तब तुम सब प्रकार की स्वार्थपरता के अतीत हो जाओगे। इसीलिए भक्त कहता है कि हमें ऐसा रहना चाहिए, मानो हम दुनिया की सारी चीजों के लिए मर से गये हों। और वास्तव में यही यथार्थ आत्मसमर्पण है—यही सच्ची शरणागति है—‘जो होने का है, हो।’ यही ‘तेरी इच्छा पूर्ण हो’ का तात्पर्य है। उसका तात्पर्य यह नहीं कि हम यत्र-तत्र लड़ाई-झगडा करते फिरें और सारे समय यही सोचते रहे कि हमारी ये सारी कमजोरियाँ और सासारिक आकाशाएँ भगवान् की इच्छा से हो रही हैं। हो सकता है कि हमारे स्वार्थपूर्ण प्रयत्नों से भी कुछ भला हो जाय, पर वह ईश्वर देखेगा, उसमें हमारा-तुम्हारा कोई हाथ नहीं। यथार्थ भक्त अपने लिए कभी कोई इच्छा या कार्य नहीं करता। उसके हृदय के अन्तरतम प्रदेश से तो वस यही प्रार्थना निकलती है, “प्रभो, लोग तुम्हारे नाम पर बड़े बड़े मन्दिर बनवाते हैं, बड़े बड़े दान देते हैं, पर मैं तो निर्बल हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। अतः मैं अपने इस शरीर को ही तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। मेरा परित्याग न करना, मेरे प्रभो।” जिसने एक बार इस अवस्था का आस्वादन कर लिया है, उसके लिए प्रेमास्पद भगवान् के चरणों में यह चिर आत्मसमर्पण कुवेर के धन और इन्द्र के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है, नाम-यश और सुख-सम्पदा की महान् आकाशा से भी महत्तर है। भक्त के शान्त आत्मसमर्पण से हृदय में जो शान्ति आती है, उसकी तुलना नहीं हो सकती, वह बुद्धि के लिए अगोचर है। इस अप्रातिकूल्य अवस्था की प्राप्ति होने पर उसका किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रह जाता, और तब फिर स्वार्थ में वावा देनेवाली कोई वस्तु भी ससार में नहीं रह जाती। इस परम शरणागति की अवस्था में सब प्रकार की आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है और रह जाती है सर्वभूतों की अन्तरात्मा और आवारस्वरूप उस भगवान् के प्रति सर्वाविगाहिनी प्रेमात्मिका भक्ति। भगवान् के प्रति प्रेम की यह आसक्ति ही सचमुच ऐसी है, जो जीवात्मा को नहीं वाँधती, प्रत्युत उसके समस्त बन्धन मार्थक रूप से छिन्न कर देती है।

सच्चे मन्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति एक हैं

उपनिषदों में परा और अपरा विद्या में भेद बतलाया गया है। मन्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति दोनों एक ही हैं। मुख्यतः उपनिषद् में कहा है, 'इहं-ज्ञानी के मतानुसार परा और अपरा ये दो प्रकार की विद्यार्थे जानने योग्य हैं। अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद वषर्वेद विद्या (उच्चारणविद्या की विद्या) कल्प (मन्त्रपद्धति) व्याकरण निरुक्त (वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और अर्थ बतानेवाला शास्त्र) छन्द और ज्योतिष विद्या हैं तथा पराविद्या द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है।^१ इस प्रकार पराविद्या स्पष्टतः ब्रह्मविद्या है।

शैबीयमत में पराभक्ति की निम्नलिखित व्याख्या है—'एक वर्तन से दूसरे वर्तन में तेज डालने पर जिस प्रकार एक अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होता है उसी प्रकार जब मन भगवान् के सतत चिन्तन में डूब जाता है, तो पराभक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है।^२ भगवान् के प्रति अविच्छिन्न आसक्ति के साथ हृदय और मन का इस प्रकार अविरत और नित्य स्थिर भाव ही मनुष्य के हृदय में भगवान् के का सर्वोच्च प्रकाश है। अन्य सब प्रकार की भक्ति इस पराभक्ति अवधि रगानुभा भक्ति की प्राप्ति के लिए केवल सौभाग्यस्वरूप है। जब इस प्रकार का अपरा अनुराग मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाता है तो उसका मन निरन्तर भगवान् के स्मरण में ही लया रहता है उसे और किसीका ध्यान ही नहीं जाता। भगवान् के अतिरिक्त वह अपने मन में अन्य विचारों को स्थान तक नहीं देता और फलस्वरूप उसकी आत्मा पवित्रता के अनेक कल्प से रक्षित हो जाती है तथा मानसिक एवं भौतिक समस्याओं को छोड़कर शान्त और मुक्त भाव धारण कर लेती है। ऐसा ही व्यक्ति अपने हृदय में भगवान् की उपासना कर सकता है। उसके

१ इ विद्ये वैदित्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो बभूवुः परा विद्यापरा च । तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्ववेदः विद्या कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा-मया उच्चारणविद्यमप्यते ॥ मुख्योपनिषद् ॥ १।१।४-५॥

२ वैतसो वर्तनम्बैव तैकधारतमं सदा ॥ शैबीयमत ॥ १०।३०।११॥

लिए अनुष्ठान-पद्धति, प्रतिमा, शास्त्र और मत-मतान्तर आदि अनावश्यक हो जाते हैं, उनके द्वारा उसे और कोई लाभ नहीं होता। भगवान् की इस प्रकार उपासना करना सहज नहीं है। साधारणतया मानवी प्रेम वही लहलहाते देखा जाता है, जहाँ उसे दूसरी ओर से बदले में प्रेम मिलता है, और जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ उदासीनता आकर अपना अधिकार जमा लेती है। ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, जहाँ बदले में प्रेम न मिलते हुए भी प्रेम का प्रकाश होता हो। उदाहरणार्थ, हम दीपक के प्रति पतिंगे के प्रेम को ले सकते हैं। पतिंगा दीपक से प्रेम करता है और उसमें गिरकर अपने प्राण दे देता है। असल में इस प्रकार प्रेम करना उसका स्वभाव ही है। केवल प्रेम के लिए प्रेम करना ससार में निस्सन्देह प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है और यही पूर्ण नि स्वार्थ प्रेम है। इस प्रकार का प्रेम जब आध्यात्मिकता के क्षेत्र में कार्य करने लगता है, तो वही हमें पराभक्ति की उपलब्धि कराता है।

प्रेम का त्रिकोण

प्रेम की उपमा एक त्रिकोण से दी जा सकती है जिसका प्रत्येक कोण प्रेम के एक एक अविभाज्य गुण का सूचक है। जिस प्रकार बिना तीनों कोनों के त्रिकोण नहीं बन सकता उसी प्रकार निम्नलिखित तीन गुणों के बिना यथार्थ प्रेम का हुंसा असम्भव है। इस प्रेमस्त्री त्रिकोण का पहला कोण तो यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का कम-बिकम नहीं होता। वहाँ कहीं किसी बदल की भासा रहती है वहाँ यथार्थ प्रेम कभी नहीं हो सकता वह तो एक प्रकार की झूठानवासी सी हो जाती है। जब तक हमारे हृदय में इस प्रकार की चोड़ी सी भी भावना रहती है कि भयबानु की आराधना के बख्से में हमें उससे कुछ मिले तब तक हमारे हृदय में यथार्थ प्रेम का संचार नहीं हो सकता। जो लोग किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं उन्हें यदि वह चीज न मिले तो निश्चय ही वे उसकी आराधना करना छोड़ देंगे। मन्त मगवान् से इसलिए प्रेम करता है कि वह प्रेमास्पद है अपने मन्त के इस ही प्रेम का और कोई हेतु नहीं रहा।

एक बार एक राजा किसी जन में गया। वहाँ उसे एक साधु मिले। साधु से चोड़ी बेर बातचीत करते राजा उनकी पवित्रता और ज्ञान पर बड़ा मुग्ध हो गया। राजा ने उनसे प्रार्थना की "महाराज यदि आप मुझसे कोई भेंट ग्रहण करने की कृपा करें, तो बस्य हो जाऊँ। पर साधु ने इन्कार कर दिया और कहा "इस जगत् के फल मेरे लिए पर्याप्त है, पहाड़ों से निकले हुए शुद्ध पानी के जरने पीने को पर्याप्त जल है बेटे हैं वृक्षों की छाँव मेरे शरीर को ठण्डे के लिए काफी है और पर्वतों की कन्दराएँ सुन्दर नर का काम देती हैं। मैं तुमसे अबका बस्य किसीस कोई भेंट क्यों हूँ? राजा ने कहा महाराज केवल मुझे कृपार्थ करने के लिए हुपया कुछ अवसर स्वीकार कर लीजिए, और क्या कर मेरे साथ बसकर मेरी राजधानी तथा महल को पवित्र लीजिए। विराय आइए के बार साधु ने अन्त में राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके साथ उसके महल को गये। साथ को भेंट देने के पहले राजा नियमानुसार अपनी दैनिक प्रार्थना करने लगा। उसने कहा है ईश्वर, मुझ और अधिक सन्तान हो मेरा जन और भी बड़े मरुत राज्य अधिनाधिक पैक जाय मरु शरीर स्वस्व और मीरोग रहूँ आदि आदि। राजा अपनी प्रायना समाप्त भी न कर पाया था कि साधु उठ खड़े हुए

और चुपके से कमरे के बाहर चल दिये। यह देखकर राजा बड़े असमजस में पड़ गया और चिल्लाता हुआ साधु के पीछे भागा, “महाराज, आप कहाँ जा रहे हैं, आपने तो मुझसे कोई भी भेंट ग्रहण नहीं की।” यह सुनकर वे साधु पीछे घूमकर राजा से बोले, “अरे भिखारी, मैं भिखारियों से भिक्षा नहीं माँगता। तू तो स्वयं एक भिखारी है, मुझे किस प्रकार भिक्षा दे सकता है। मैं इतना मूर्ख नहीं कि तुझ जैसे भिखारी से कुछ लूँ। जा, भाग जा, मेरे पीछे मत आ।”

इस कथा से ईश्वर के सच्चे प्रेमियों और साधारण भिखारियों में भेद बड़े सुन्दर ढंग से प्रकट हुआ है। भिखारी की भाँति गिडगिडाना प्रेम की भाषा नहीं है। यहाँ तक कि, मुक्ति के लिए भगवान् की उपासना करना भी अधम उपासना में गिना जाता है। प्रेम कोई पुरस्कार नहीं चाहता। प्रेम सर्वदा प्रेम के लिए ही होता है। भक्त इसलिए प्रेम करता है कि बिना प्रेम किये वह रह ही नहीं सकता। जब तुम किसी मनोहर प्राकृतिक दृश्य को देखकर उस पर मोहित हो जाते हो, तो उस दृश्य से तुम किसी फल की याचना नहीं करते और न वह दृश्य ही तुमसे कुछ माँगता है। फिर भी उस दृश्य का दर्शन तुम्हारे मन को बड़ा आनन्द देता है, वह तुम्हारे मन के घर्षणों को हल्का कर तुम्हें शान्त कर देता है और उस समय तक के लिए मानो तुम्हें अपनी नखर प्रकृति से ऊपर उठाकर एक स्वर्गीय आनन्द में भर देता है। सच्चे प्रेम का यह भाव उक्त त्रिकोणात्मक प्रेम का पहला कोण है। अपने प्रेम के बदले में कुछ मत माँगो। सदैव देते ही रहो। भगवान् को अपना प्रेम दो, परन्तु बदले में उससे कुछ भी माँगो मत।

प्रेम के इस त्रिकोण का दूसरा कोण है प्रेम का भय से नितान्त रहित होना। जो लोग भयवश भगवान् से प्रेम करते हैं, वे अधम मनुष्य हैं, उनमें अभी तक मनुष्यत्व का विकास नहीं हुआ। वे दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक महान् पुरुष है, जिसके एक हाथ में दण्ड है और दूसरे में चाबुक। उन्हें इस बात का डर रहता है कि यदि वे उसकी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, तो उन्हें कोड़े लगाये जायेंगे। पर दण्ड के भय से ईश्वर की उपासना करना सबसे निम्न कोटि की उपासना है। एक तो, वह उपासना कहलाने योग्य है ही नहीं, फिर भी यदि उसे उपासना कहे, तो वह प्रेम की सबसे भद्दी उपासना है। जब तक हृदय में किसी प्रकार का भय है, तब तक प्रेम कैसे हो सकता है? प्रेम, स्वभावतः सब प्रकार के भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। उदाहरणार्थ, यदि एक युवती माँ सबक पर जा रही हो और उस पर कुत्ता भौंक पड़े, तो वह डरकर समीपस्थ घर में घुस जायगी। परन्तु मान लो, दूसरे दिन वही स्त्री अपने बच्चे के साथ जा रही है और उसके बच्चे पर शेर झपट पड़ता है। तो बताओ, वह क्या

करेगी? बच्चे की रक्षा के लिए वह स्वयं घर के मूँह में बसी बायबी। सबमुक्त प्रेम समस्त भय पर विजय प्राप्त कर लेता है। भय इस स्वार्थपर भावना से उत्पन्न होता है कि मैं दुनिया से अलग हूँ। और जितना ही मैं अपने को सुरक्षित और स्वार्थपर बनाऊँगा मेरा भय उतना ही बढ़ेगा। यदि कोई मनुष्य अपने को एक छोटा सा तुच्छ जीव समझे तो भय उसे अबस्य भेर लेगा। और तुम अपने को जितना ही कम तुच्छ समझो तो तुम्हारे लिए भय भी उतना ही कम होगा। जब तक तुममें बौद्धा सा भी भय है तब तक तुम्हारे मानस-सरोवर में प्रेम की तरंगें नहीं उठ सकतीं। प्रेम और भय दोनों एक साथ कभी नहीं रह सकते। जो मनवान् से प्रेम करते हैं, उन्हें उससे डरना नहीं चाहिए। 'ईश्वर का नाम स्मरण में न लो' इस आदेश पर ईश्वर का सच्चा प्रेमी हँसता है। प्रेम के भर्म में ईस-निश्चय किस् प्रकार सम्भव है? ईश्वर का नाम तुम जितना ही सोगे फिर वह किसी भी प्रकार से नहीं न हो तुम्हारा उतना ही संकट है। उससे प्रेम होने के कारण ही तुम उसका नाम लेते हो।

प्रेमकामी त्रिकोण का तीसरा कोण है प्रेम में किसी प्रतिद्वन्द्वी का न होना क्योंकि इस प्रेम में ही प्रेमी का सर्वोच्च आदर्श मृत रहता है। सच्चा प्रेम तब तक नहीं होता जब तक हमारे प्रेम का पात्र हमारा सर्वोच्च आदर्श नहीं बन जाता। हो सकता है कि अनेक स्तरों में मनुष्य का प्रेम अनुचित विद्या में और अपात्र बणा जाता हो पर जो प्रेमी है उसके लिए तो उसका प्रेमपात्र ही उच्चतम आदर्श है। हो सकता है, कोई व्यक्ति अपना आदर्श सबसे निकृष्ट मनुष्य में लेके और कोई दूसरा किसी देव-मानव में पर प्रत्येक ब्रह्मा में वह आदर्श ही है, जिसे सच्चे और प्रगाढ़ रूप से प्रेम किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं। जानी हो या अजानी साधु हो या पापी पुरुष हो अबदा स्वी चिन्तित हो अबदा अचिन्तित प्रत्येक ब्रह्मा में मनुष्य मात्र का परमोच्च आदर्श ही ईश्वर है। सौन्दर्य उदात्तता और शक्ति के उच्चतम आदर्शों के योग में ही हमें प्रेममय एवं प्रेमास्पद ईश्वर का पूर्णतम भाव मिलता है।

स्वाभावतः ही ये आदर्श किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति के मन में वर्तमान रहते हैं। वे मानो हमारे मन के अंग या अंगविशेष हैं। उन आदर्शों को व्यापक हार्मिक जीवन में परिपक्व करने के जो सब प्रयत्न हैं, वे ही मानवीय प्रवृत्ति की नाना विध क्रियाओं के रूप में प्रकट होते हैं। विभिन्न जीवात्माओं में जो विविध आदर्श निहित हैं वे बाहर आकर मूर्त रूप धारण करने की तत्पर बने हुए हैं, और इसके अन्तर्गम्य हम अपने चारों ओर समाज न माना प्रकार की परिधा और हस्तक देखते हैं। जो कुछ भीतर है वही बाहर जाने का प्रयत्न करता है।

आदर्श का यह नित्य प्रबल प्रभाव ही एक ऐसी कार्यकारी शक्ति है, जो मानव जीवन में सतत क्रियाशील है। हो सकता है, सैकड़ों जन्म के बाद, हजारों वर्ष संघर्ष करने के पश्चात्, मनुष्य समझे कि अपना अभ्यन्तरस्थ आदर्श बाहरी वातावरण और अवस्थाओं के साथ पूरी तरह मेल नहीं खा सकता। और जब वह यह समझ जाता है, तब बाहरी जगत् को अपने आदर्श के अनुसार गढ़ने की फिर अधिक चेष्टा नहीं करता। तब वह इस प्रकार के सारे प्रयत्न छोड़कर प्रेम की उच्चतम भूमि से, स्वयं आदर्श की आदर्श-रूप से उपासना करने लगता है। यह पूर्ण आदर्श अपने में अन्य सब छोटे छोटे आदर्शों को समा लेता है। सभी लोग इस बात की सत्यता स्वीकार करते हैं कि प्रेमी इथियोपिया की भाँहो में भी हेलेन का सौन्दर्य देखता है। तटस्थ लोग कह सकते हैं कि यहाँ प्रेम स्थान-भ्रष्ट हो गया है, पर जो प्रेमी है, वह अपनी हेलेन को ही सर्वदा देखता है, इथियोपिया को बिल्कुल नहीं देखता। हेलेन हो या इथियोपिया, वास्तव में हमारे प्रेम के आधार तो मानो कुछ केन्द्र हैं, जिनके चारों ओर हमारे आदर्श मूर्त होते हैं। ससार साधारणतः किसकी उपासना करता है?—अवश्य उच्चतम भक्त और प्रेमी के सर्वांगीण पूर्ण आदर्श की नहीं। स्त्री-पुरुष साधारणतः उसी आदर्श की उपासना करते हैं, जो उनके अपने हृदय में है। प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना आदर्श बाहर प्रक्षिप्त करके उसके सम्मुख भूमिष्ठ हो प्रणाम करता है। इसीलिए हम देखते हैं कि जो लोग निर्दयी और खूनी होते हैं, वे एक रक्तपिपासु ईश्वर की ही कल्पना करते तथा उसे भजते हैं, क्योंकि वे अपने सर्वोच्च आदर्श की ही उपासना कर सकते हैं। और इसीलिए साधुजनों का ईश्वर सम्बन्धी आदर्श बहुत ऊँचा होता है, और वास्तव में वह अन्य लोगों के आदर्श से बहुत भिन्न है।

प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय के परे हो गया है, जो फसाकांखासून्य हो गया है उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी नहीं कहेगा 'मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ मैं तुमसे कोई भीज नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के प्रेमजनित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श से परिचय हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम अनन्त और असीम प्रेम पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है, यही क्यों वह साक्षात् प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-बर्म के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती, बल्कि तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की पद्यभक्ति है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस पद्यभक्ति की प्राप्ति में केवल सोपानस्वरूप हैं।

इस प्रेम-बर्म के पथ में बहते बहते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही बटती हैं—सर्वात् प्रकाशान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचाती हैं। चाबक एक के बाद दूसरी बस्तु सेता जाता है और उस पर अपना आन्तरिक आदर्श प्रतिष्ठित करता जाता है। जमरा में सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं और इसलिये स्वभावतः एक एक करके उनका परिष्कार कर दिया जाता है। अन्त में सामक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं में आदर्श की उपलब्धि करने का प्रयत्न व्यर्थ है और ये सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की मुक्तता में बिरतुल मुच्छ हैं। कामान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्विषेय भाषात्मक मूढम आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप में अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब मनु इम अवस्था में पहुँच जाता है, तब उसमें ये सब सर्व-विनाश नहीं उठते कि मनुष्यात् को मिट्ट किया जा सकता है, भगवा नहीं भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है या नहीं। उतकें लिए तो भगवान् प्रथमय है—द्रम का सर्वोच्च आदर्श है और वस यह जानना ही उसके लिए यथेष्ट

है। भगवान् प्रेमरूप होने के कारण स्वतः सिद्ध है, वह अन्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता। प्रेमी के पास प्रेमास्पद का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए किसी बात की आवश्यकता नहीं। अन्यान्य धर्मों के न्यायकर्ता भगवान् का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए बहुत से प्रमाणों की आवश्यकता हो सकती है, पर भक्त तो ऐसे भगवान् की बात मन में भी नहीं ला सकता। उसके लिए तो भगवान् केवल प्रेम-स्वरूप है। 'हे प्रिये, कोई भी स्त्री पति से, पति के लिए प्रेम नहीं करती, वरन् पति में स्थित आत्मा के लिए ही वह पति से प्रेम करती है। हे प्रिये, कोई भी पुत्र पत्नी से, पत्नी के लिए प्रेम नहीं करता, वरन् पत्नी में स्थित आत्मा के लिए ही प्रेम करता है।'

कोई कोई कहते हैं कि स्वार्थपरता ही समस्त मानवीय कार्यों की एकमात्र प्रेरक शक्ति है। किन्तु वह भी तो प्रेम है, पर हाँ, वह प्रेम विशिष्ट होने के कारण निम्न भावापन्न हो गया है—बस, इतना ही। जब मैं अपने को ससार की सारी वस्तुओं में अवस्थित सोचता हूँ, तब निश्चय ही मुझमें किसी प्रकार की स्वार्थपरता नहीं रह सकती। किन्तु जब मैं भ्रम में पड़कर अपने आपको एक छोटा सा प्राणी सोचने लगता हूँ, तब मेरा प्रेम सकीर्ण हो जाता है—एक विशिष्ट भाव से सीमित हो जाता है। प्रेम के क्षेत्र को सकीर्ण और मर्यादित कर लेना ही हमारा भ्रम है। इस विश्व की सारी वस्तुएँ भगवान् से निकली हैं, अतएव वे सभी हमारे प्रेम के योग्य हैं। पर हम यह सर्वदा स्मरण रखें कि समष्टि को प्यार करने से ही अशो को भी प्यार करना हो जाता है। यह समष्टि ही भक्त का भगवान् है। अन्यान्य प्रकार के ईश्वर—जैसे, स्वर्ग में रहनेवाले पिता, शास्ता, स्रष्टा—तथा नानाविध मतवाद और शास्त्र-ग्रन्थ भक्त के लिए कुछ अर्थ नहीं रखते—उसके लिए इन सबका कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि वह तो पराभक्ति के प्रभाव से पूर्णतया इन सबके ऊपर उठ गया है। जब हृदय शुद्ध और पवित्र हो जाता है, तथा दैवी प्रेमामृत से आप्लावित हो जाता है, तब ईश्वर सम्बन्धी अन्य सब धारणाएँ बन्धों की बात सी प्रतीत होने लगती हैं और वे अपूर्ण एवं अनुपयुक्त समझकर त्याग दी जाती हैं। सचमुच, पराभक्ति का प्रभाव ही ऐसा है। तब वह पूर्णताप्राप्त भक्त अपने भगवान् को मन्दिरों और गिरजों में खोजने नहीं जाता, उसके लिए तो ऐसा कोई स्थान ही नहीं, जहाँ वह न हो। वह उसे मन्दिर के भीतर और बाहर सर्वत्र देखता है। साधु की साधुता में और दुष्ट की दुष्टता में भी वह उसके दर्शन करता है, क्योंकि उसने तो उस महिमामय प्रभु को पहले से ही अपने हृदय-सिंहासन पर बिठा लिया है और वह जानता है कि वह एक सर्वशक्तिमान एवं अनिर्वाण प्रेमज्योति के रूप में उसके हृदय में नित्य दीप्तिमान है और सदा से वर्तमान है।

प्रेममय ईश्वर स्वयं ही अपना प्रमाण है

जो प्रेमी स्वार्थपरता और भय क परे हो गया है, जो फटाफटासाण्य हो गया है, उसका आदर्श क्या है? वह परमेश्वर से भी नहीं कहेगा मैं तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पित करता हूँ मैं तुमसे कोई भीड़ नहीं चाहता। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मैं अपना कह सकूँ। जब मनुष्य इस प्रकार की अवस्था प्राप्त कर लेता है, तब उसका आदर्श पूर्ण प्रेम के प्रेमवर्धित पूर्ण निर्भीकता के आदर्श में परिवर्त हो जाता है। इस प्रकार के व्यक्ति के सर्वोच्च आदर्श में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं रह जाती—वह किसी विशेष भाव द्वारा सीमित नहीं रहता। वह आदर्श तो सार्वभौमिक प्रेम अनन्त और असीम प्रेम पूर्ण स्वतन्त्र प्रेम का आदर्श होता है यही क्यों वह साक्षात् प्रेमस्वरूप होता है। तब प्रेम-वर्म के इस महान् आदर्श की उपासना किसी प्रतीक या प्रतिमा के सहारे नहीं करनी पड़ती बल्कि तब तो वह आदर्श के रूप में ही उपासित होता है। इस प्रकार के एक सार्वभौमिक आदर्श की आदर्शरूप से उपासना सबसे उत्कृष्ट प्रकार की परामर्शिता है। भक्ति के अन्य सब प्रकार तो इस परामर्शिता की प्राप्ति में केवल सोपागमस्वरूप हैं।

इस प्रेम-वर्म के पथ में बढ़ते बढ़ते हमें जो सफलताएँ और असफलताएँ मिलती हैं वे सबकी सब उस आदर्श की प्राप्ति के मार्ग पर ही बटती हैं—जहाँ प्रकाशान्तर से वे उसमें सहायता ही पहुँचती हैं। सामक एक के भाव दूसरी वस्तु सेता जाता है और उस पर अपना आत्मन्तरिक आदर्श प्रक्षिप्त करता जाता है। जहाँ-य सारी बाह्य वस्तुएँ इस सतत विस्तारशील आत्मन्तरिक आदर्श को प्रकाशित करने के लिए अनुपमूक्त सिद्ध होती हैं और इसीलिए स्वभावतः एक एक करके उनका परित्याग कर दिया जाता है। अन्त में सामक समझ जाता है कि बाह्य वस्तुओं से आदर्श की उपसम्पन्न करने का प्रयत्न व्यर्थ है और वे सब बाह्य वस्तुएँ तो आदर्श की तुलना में बिस्तुक्त तुच्छ हैं। कालान्तर में वह उस सर्वोच्च और सम्पूर्ण निर्बिधेय-माबापस सूक्ष्म आदर्श को अन्तर में ही जीवन्त और सत्य रूप से अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। जब अन्त इस अवस्था में पहुँच जाता है तब उसमें वे सब तर्क-वितर्क नहीं उठते कि भयवान् को सिद्ध किया जा सकता है अथवा नहीं भयवान् सर्वज्ञ और सर्वसम्पन्नमान है या नहीं। उसके लिए तो भयवान् प्रेममय है—प्रेम का सर्वोच्च आदर्श है और वस यह जानना ही उसके लिए बखेद

इसके बाद है 'सख्य' प्रेम। इस सख्य प्रेम का साधक भगवान् से कहता है, 'तुम मेरे प्रिय सखा हो।' जिस प्रकार एक व्यक्ति अपने मित्र के सम्मुख अपना हृदय खोल देता है और यह जानता है कि उसका मित्र उसके अवगुणों पर कभी ध्यान न देगा, वरन् उसकी सदा सहायता ही करेगा—उन दोनों में जिस प्रकार समानता का एक भाव रहता है, उसी प्रकार सख्य प्रेम के साधक और उसके सखा भगवान् के बीच भी मानो एक प्रकार की समानता का भाव रहता है। इस तरह भगवान् हमारा अन्तरंग मित्र हो जाता है, जिसको हम अपने जीवन की सारी बातें दिल खोलकर बता सकते हैं, जिसके समक्ष हम अपने हृदय के गुप्त से गुप्त भावों को भी बिना किसी हिचकिचाहट के प्रकट कर सकते हैं। उस पर हम पूरा भरोसा—पूरा विश्वास रख सकते हैं कि वह वही करेगा, जिससे हमारा भगल होगा, और ऐसा सोचकर हम पूर्ण रूप से निश्चिन्त रह सकते हैं। इस अवस्था में भक्त भगवान् को अपनी बराबरी का समझता है—भगवान् मानो हमारा सगी हो, सखा हो। हम सभी इस ससार में मानो खेल रहे हैं। जिस प्रकार बच्चे अपना खेल खेलते हैं, जिस प्रकार बड़े बड़े राजा-महाराजा और सम्राट् अपना अपना खेल खेलते हैं, उसी प्रकार वह प्रेमस्वरूप भगवान् भी इस दुनिया के साथ खेल खेल रहा है। वह पूर्ण है—उसे किसी चीज का अभाव नहीं। उसे सृष्टि करने की क्या आवश्यकता है? जब हमें किसी चीज की आवश्यकता होती है, तभी हम उसकी पूर्ति के लिए क्रियाशील होते हैं, और अभाव का तात्पर्य ही है अपूर्णता। भगवान् पूर्ण है—उसे किसी बात का अभाव नहीं। तो फिर वह इस नित्य कर्ममय सृष्टि में क्यों लगा है? उसका उद्देश्य क्या है? भगवान् के सृष्टि-निर्माण के सम्बन्ध में जो सब भिन्न भिन्न कल्पनाएँ हैं, वे किंवदन्तियों के रूप में ही भली हो सकती हैं, अन्य किसी प्रकार नहीं। सचमुच, यह समस्त उसकी लीला है। यह सारा विश्व उसका ही खेल है—वह तो उसके लिए एक तमाशा है। यदि तुम निर्धन हो, तो उस निर्धनता को ही एक बड़ा तमाशा समझो, यदि धनी हो, तो उस धनीपन को ही एक तमाशा के रूप में देखो। यदि दुःख आये, तो वही एक सुन्दर तमाशा है, और यदि सुख प्राप्त हो, तो सोचो, यह भी एक सुन्दर तमाशा है। यह दुनिया बस, एक खेल का मैदान है, और हम सब यहाँ पर नाना प्रकार के खेल-खिलवाड़ कर रहे हैं—मौज कर रहे हैं। भगवान् सारे समय हमारे साथ खेल रहा है और हम भी उसके साथ खेलते रहते हैं। भगवान् तो हमारा चिरकाल का सगी है—हमारे खेल का साथी है। कैसा सुन्दर खेल रहा है वह! खेल खत्म हुआ कि कल्प का अन्त हो गया!

फिर जस्य या अधिक समय तक विधाम—उसके बाद फिर से ब्रह्म का आरम्भ—
 पुनः जगत् की सृष्टि। जब तुम मूल जाते हो कि यह सब एक ब्रह्म है और तुम
 इस ब्रह्म में सहाम्यता कर रहे हो। सभी कुछ और कष्ट तुम्हारे पास आते हैं। सब
 हृदय भारी हो जाता है और संसार अपने प्रकृत ब्रह्म से तुम्हें दूर करता है।
 पर ज्यों ही तुम इस दो पक्ष के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना
 छोड़ देते हो और इस संसार को एक श्रीशाम्भुमि तथा अपने आपको भगवान् की शीला
 में एक सच्चा-समी सोचने लगते हो त्यों ही दुःख-कष्ट चला जाता है। वह जो प्रत्येक
 जन्म-मरणात् में ब्रह्म रहा है। वह जो ब्रह्मते ब्रह्मते ही पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि का
 निर्माण कर रहा है। वह जो मानव-हृदय प्राणियों और पक्ष-पौधों के साथ श्रीशाम्भु
 कर रहा है। हम मानते उसके सत्त्व-रज के मोहरे हैं। वह मोहरो को सत्त्व-रज
 के सत्त्वों में बिठाकर इतर-उपर चला रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से
 सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनजाने उसके ब्रह्म
 में सहाम्यता कर रहे हैं। महा कर्म परमानन्द है। हम सब उसके ब्रह्म के साथी
 जो हैं!

इसके बाद है वात्सल्य प्रेम। उसमें भगवान् का चिन्तन पिता-रूप से न
 करके सन्तान-रूप से करना पड़ता है। हो सकता है यह कुछ अजीब सा मामूला
 हो पर उसका उद्देश्य है—अपनी भगवान् सम्बन्धी शारदा से ऐश्वर्य के समस्त
 भाग दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही मय आता है। पर प्रेम में मय
 का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए मक्ति और आत्म-
 पालन आवश्यक हैं पर जब एक बार चरित्र पठित हो जाता है—जब प्रेमी पालन
 प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रकृत उन्मत्तता का भी उसे बोझ
 सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और शासन-नियम आदि की
 कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् को महामहिम
 ऐश्वर्यशाही जयन्त्राय या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी इच्छा ही नहीं होती।
 भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो मयौत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको
 दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। माता
 पिता अपने बच्चे से मयमय नहीं होते उसके प्रति उनकी भद्रा नहीं होती। वे
 उस बच्चे से कुछ माचना नहीं करते। बच्चा तो सदा पामेबाजा ही होता है और
 उसके लिए वे लोभ ही बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए
 वे लोभ हठार जीवन भी त्यागकर करम को प्रस्तुत रहते हैं। बस इसी प्रकार
 भगवान् से वात्सल्य-भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भगवान् के
 अवतार में विश्वास करते हैं, ज्योंही यह वात्सल्य भाव की उपासना स्वाभाविक

रूप से आती और पनपती है। मुसलमानों के लिए भगवान् को एक सन्तान के रूप में मानना असम्भव है, वे तो डरकर इस भाव से दूर ही रहेंगे। पर ईसाई और हिन्दू इसे सहज ही समझ सकते हैं, क्योंकि उनके तो बाल ईसा और बाल कृष्ण हैं। भारतीय रमणियाँ बहुधा अपने आपको श्री कृष्ण की माता के रूप में सोचती हैं। ईसाई माताएँ भी अपने आपको ईसा की माता के रूप में सोच सकती हैं। इससे पाश्चात्य देशों में ईश्वर के मातृभाव का प्रचार होगा, और इसीकी आज उन्हें विशेष आवश्यकता है। भगवान् के प्रति भय और भक्ति के कुसस्कार हमारे हृदय में बहुत गहरे जमे हुए हैं और भगवत्सम्बन्धी इन भय और भक्ति तथा महिमा-ऐश्वर्य के भावों को प्रेम में बिल्कुल निमग्न कर देने में बहुत समय लगता है।

प्रेम का यह दिव्य रूप एक और मानवीय भाव में प्रकाशित होता है। उसे 'मधुर' कहते हैं और वही सब प्रकार के प्रेमों में श्रेष्ठ है। इस सत्ता में प्रेम की जो उच्चतम अभिव्यक्ति है, वही उसकी नींव है और मानवीय प्रेमों में वही सबसे प्रबल है। पुरुष और स्त्री के बीच जो प्रेम रहता है, उसके समान और कौन सा प्रेम है, जो मनुष्य की सारी प्रकृति को बिल्कुल उलट-पलट दे, जो उसके प्रत्येक परमाणु में सचरित होकर उसको पागल बना दे, उसकी अपनी प्रकृति को ही भुला दे, और उसे चाहे तो देवता बना दे, चाहे दैत्य ? दैवी प्रेम के इस मधुर भाव में भगवान् का चिन्तन पतिरूप में किया जाता है—ऐसा विचार कि हम सभी स्त्रियाँ हैं, इस सत्ता में और कोई पुरुष नहीं, एक ही पुरुष है और वह है हमारा प्रेमास्पद भगवान्। जो प्रेम पुरुष स्त्री के प्रति और स्त्री पुरुष के प्रति प्रदर्शित करती है, वही प्रेम भगवान् को देना होगा।

हम इस सत्ता में जितने प्रकार के प्रेम देखते हैं, जिनके साथ हम अल्प या अधिक परिमाण में क्रीडा मात्र कर रहे हैं, उन सबका एक ही लक्ष्य है और वह है भगवान्। पर दुःख की बात है कि मनुष्य उस अनन्त समुद्र को नहीं जानता, जिसकी ओर प्रेम की यह महान् सरिता सतत प्रवाहित हो रही है, और इसलिए अज्ञानवश वह इस प्रेम-सरिता को बहुधा छोटे छोटे मानवी पुतलों की ओर बहाने का प्रयत्न करता रहता है। मानवी प्रकृति में सन्तान के प्रति जो प्रबल स्नेह देखा जाता है, वह सन्तान-रूपी एक छोटे से पुतले के लिए ही नहीं है। यदि तुम आँखें बन्द कर उसे केवल सन्तान पर ही न्योछावर कर दो, तो तुम्हें उसके फलस्वरूप दुःख अवश्य भोगना पड़ेगा। पर इस प्रकार के दुःख से ही तुममें यह चेतना जाग्रत होगी कि यदि तुम अपना प्रेम किसी मनुष्य को अर्पित करो, तो उसके फलस्वरूप कभी न कभी दुःख-

फिर अस्य या अभिक समय तक विभाम—उसके बाद फिर से खेल का आरम्भ—
 पुनः जनत् की सृष्टि ! जब तुम भूस जाते हो कि यह सब एक खेल है और तुम
 इस खेल में सहायता कर रहे हो तभी कुछ और कष्ट तुम्हारे पास जाते हैं जब
 हृदय भारी हो जाता है और संसार अपने प्रचण्ड बोझ से तुम्हें पना देता है।
 पर ज्यों ही तुम इस बोझ के जीवन की परिवर्तनशील घटनाओं को सत्य समझना
 छोड़ देते हो और इस संसार को एक श्रीङ्गामूमि तथा अपने आपको भयवान् की श्रीङ्गा
 में एक सखा-संधी सोभने लगते हो त्यों ही दुःख-कष्ट चला जाता है। वह तो प्रत्येक
 अनुभव-मायु में खेल रहा है। वह तो खेळते खेळते ही पृथ्वी सूर्य चन्द्र आदि का
 निर्माण कर रहा है। वह तो मानव-हृदय प्राणियों और पेड़-पौधों के साथ श्रीङ्गा
 कर रहा है। हम मानो उसके घटवर्ण के मोहरे हैं। वह मोहरों को घटवर्ण
 के खानो में बिठकर हम-उपर चला रहा है। वह हमें कभी एक प्रकार से
 सजाता है और कभी दूसरे प्रकार से—हम भी जाने या अनुमाने उसके खेल
 में सहायता कर रहे हैं। अहा कैसा परमानन्द है ! हम सब उसके खेल के साथी
 जो हैं।

इसके बाद है 'वात्सल्य' प्रेम। उसमें भयवान् का चिन्तन पिता-स्व से न
 करके सन्तान-स्व से करना पड़ता है। हो सकता है यह कुछ अजीब सा माकूम
 हो पर उसका उद्देश्य है—अपनी भयवान् सम्बन्धी धारणा से ऐश्वर्य के समस्त
 भाव दूर कर देना। ऐश्वर्य की भावना के साथ ही मय जाता है। पर प्रेम में मय
 का कोई स्थान नहीं। यह सत्य है कि चरित्र-गठन के लिए भक्ति और आज्ञा
 पाठन आवश्यक है पर जब एक बार चरित्र गठित हो जाता है—जब प्रेमी सन्त
 प्रेम का आस्वादन कर लेता है और जब प्रेम की प्रबल सम्मत्ता का भी उसे कोई
 सा अनुभव हो जाता है, तब उसके लिए नीतिशास्त्र और साधन-नियम आदि की
 कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। प्रेमी कहता है कि भगवान् का महामहिम
 ऐश्वर्यशाही जगन्नाथ या देवदेव के रूप में सोचने की मेरी शक्ति ही नहीं होती।
 भगवान् के साथ सम्बन्धित यह जो मधोत्पादक ऐश्वर्य की भावना है, उसीको
 दूर करने के लिए वह भगवान् को अपनी सन्तान के रूप में प्यार करता है। मता
 पिता अपने बच्चे से मयमत्त नहीं होते उनके प्रति उनकी मत्ता नहीं होती। वे
 उस बच्चे से कुछ पाचना नहीं करते। बच्चा तो सदा पानेवाला ही होता है और
 उसके लिए वे लोग ही बार भी मरने को तैयार रहते हैं। अपने एक बच्चे के लिए
 वे लोग हजार जीवन भी त्यागकर देने को प्रस्तुत रहते हैं। वह इसी प्रकार
 भगवान् से वात्सल्य भाव से प्रेम किया जाता है। जो सम्प्रदाय भयवान् के
 अवतार में निरवास करते हैं, उन्हींमें यह वात्सल्य-भाव की उपासना स्वाभाविक

उपयोगी मानकर ग्रहण करते हैं। पर मूर्ख लोग इसे नहीं समझते—और वे कभी ममझेंगे भी नहीं। वे उसे केवल भौतिक दृष्टि से देखते हैं। वे इस आध्यात्मिक प्रेमोन्मत्तता को नहीं समझ पाते। और वे समझ भी कैसे सके? 'हे प्रियतम, तुम्हारे अघरो के केवल एक चुम्बन के लिए! जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढ़ती ही जाती है। उसके समस्त दुःख चले जाते हैं। वह तुम्हें छोड़ और सब कुछ भूल जाता है।' प्रियतम के उस चुम्बन के लिए—उनके अघरो के उस स्पर्श के लिए व्याकुल होओ, जो भक्त को पागल कर देता है, जो मनुष्य को देवता बना देता है। भगवान् जिसको एक बार अपना अघरामृत देकर कृतार्थ कर देते हैं, उसकी सारी प्रकृति विल्कुल बदल जाती है। उसके लिए यह जगत् उड़ जाता है, सूर्य और चन्द्र का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता और यह सारा विश्व-ब्रह्माण्ड एक बिन्दु के समान प्रेम के उस अनन्त सिन्धु में न जाने कहाँ विलीन हो जाता है। प्रेमोन्माद की यही चरम अवस्था है।

पर सच्चा भगवत्प्रेमी यहाँ पर भी नहीं रुकता, उसके लिए तो पति और पत्नी की प्रेमोन्मत्तता भी यथेष्ट नहीं। अतएव ऐसे भक्त अवध (परकीय) प्रेम का भाव ग्रहण करते हैं, क्योंकि वह अत्यन्त प्रबल होता है। पर देखो, उसकी अवैधता उनका लक्ष्य नहीं है। इस प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जितनी बाधा मिलती है, वह उतना ही उग्र रूप धारण करता है। पति-पत्नी का प्रेम अबाध रहता है—उसमें किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं आती। इसीलिए भक्त कल्पना करता है, मानो कोई स्त्री परपुरुष में आसक्त है और उसके माता, पिता या स्वामी उसके इस प्रेम का विरोध करते हैं। इस प्रेम के मार्ग में जितनी ही बाधाएँ आती हैं, वह उतना ही प्रबल रूप धारण करता जाता है। श्री कृष्ण वृन्दावन के कुजो में किस प्रकार लीला करते थे, किस प्रकार सब लोग उन्मत्त होकर उनसे प्रेम करते थे, किस प्रकार उनकी वाँसुरी की मधुर तान सुनते ही चिरधन्य गोपियाँ सब कुछ भूलकर, इस ससार और इसके समस्त बन्धनों को भूलकर, यहाँ के सारे कर्तव्य तथा सुख-दुःख को विसराकर, उन्मत्त सी उनसे मिलने के लिए छूट पड़ती थी—यह सब मानवी भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। मानव, हे मानव, तुम दैवी प्रेम की बातें तो करते हो, पर

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना मुष्टु चुम्बितम् ।

इतररागविस्मारण नृणा दितर वीर नस्तेऽघरामृतम् ॥

—श्रीमद्भागवत ॥१०।३१॥

कष्ट अवश्य प्राप्त होना। अतएव हमें अपना प्रेम उसी पुष्पोत्तम को देना होना जिसका बिलास नहीं जिसमें कमी परिवर्तन नहीं और जिसके प्रेम-समुद्र में कमी उबार-माटा नहीं। प्रेम को अपने प्रकृत सक्षय पर पहुँचना चाहिए—उस तो उसके निकट जाना चाहिए, जो वास्तव में प्रेम का अन्तः सामर है। सभी नदियाँ समुद्र में ही जाकर गिरती हैं। यही तक कि पर्वत से गिरनेवाली पानी की एक बूँद भी वह फिर किसनी भी बड़ी क्यों न हो किसी क्षरने या नदी में पहुँचकर बस वहीं नहीं रुक जाती बल्कि वह भी अन्त में किसी न किसी प्रकार समुद्र में ही पहुँच जाती है। भगवान् हमारे सब प्रकार के माबों का एकमात्र सक्षय है। यदि तुम्हें श्लेष करना है, तो भगवान् पर श्लेष करो। उलाहना देना है, तो अपने प्रेमास्पद को उलाहना दो—अपने सखा को उलाहना दो। ममा अक्षय किसे तुम बिना उर के उलाहना दे सकते हो? मर्य्य भीव तुम्हारे श्लेष को न सह सकेगा। वहाँ तो प्रतिक्रिया होगी। यदि तुम मुझ पर श्लेष करो तो निश्चित है मैं तुरन्त प्रतिक्रिया करूँगा क्योंकि मैं तुम्हारे श्लेष को सह नहीं सकता। अपने प्रेमास्पद से कहो 'प्रियतम तुम मेरे पास क्यों नहीं आते? तुमने क्यों मुझे इस प्रकार अकेला छोड़ रखा है? उसको छोड़ ममा और किसमें आनन्द है? मिट्टी के छोटे छोटे कौरा में ममा कीन सा आनन्द हो सकता है? हमें तो अन्त आनन्द के बनीमूत सार को ही श्लेषना है—और भगवान् ही आमन्त्र का वह बनीमूत सार है। आजो हम अपने समस्त माबों और समस्त प्रवृत्तियों को उसकी ओर मोड़ दें। वे सब उसीके लिये हैं। वे यदि अपना कक्ष्य बूँद जायें तो वे फिर कुत्सित रूप धारण कर लेंगे। पर यदि वे अपने ठीक कक्ष्य-स्वरूप ईश्वर में जाकर पहुँचें तो उनमें से अत्यन्त नीच वृत्ति भी पूर्वरूपेण परिवर्तित हो जायगी। भगवान् ही मनुष्य के मन और शरीर की समस्त शक्तियों का एकमात्र सक्षय है—एकामत्र है,—फिर वे शक्तियाँ किसी भी रूप से क्यों न प्रकट हो। मानव-हृदय का समस्त प्रेम—सारे माव भगवान् की ही ओर जायें। वही हमारा एकमात्र प्रेमास्पद है। यह मानव-हृदय ममा और किसे प्यार करेगा? वह परम सुन्दर है, परम महान् है—अहा! वह साक्षात् सौन्दर्यस्वरूप है दिव्यता स्वरूप है। इस ससार में ममा और कीन है जो उससे अधिक सुन्दर हो? उसे छोड़ इन दुनिया में भला और कीन पति होने के उपयुक्त है? उसके सिवा इस जगत् में भला और कीन हमारा प्रेम-पात्र हो सकता है? अतः वही हमारा पति हो, वही हमारा प्रेमास्पद हो।

बहुधा ऐसा होता है कि भगवत्प्रम में उनके भक्तगण जब इस भगवत्प्रम का वर्णन करते जाते हैं तो इसके लिये वे सब प्रकार के मानवी प्रेम की जापा को

उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम में छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नहीं चाहिए। वस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहेतुकी भक्ति बनी रहे।' भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नहीं चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम में आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम में आनन्द लेने के लिए कौन हजार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड़ और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। वह स्वयं प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा में जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष^१ को जानता हूँ, जिन्हें लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने में मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसे ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम में इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहंस ।

साथ ही इस ससार की बसारा वस्तुओं में भी मन विभे रहते ही—क्या तुम सन्ने हो? 'जहाँ राम है जहाँ काम नहीं और जहाँ काम है वहाँ राम नहीं। वे दोनों कभी एक साथ नहीं रह सकते—प्रकाश और अन्धकार क्या कभी एक साथ रहे हैं?'

१ जहाँ राम तहाँ काम नहीं जहाँ काम तहाँ राम।

तुलसी कबहूँ होल नहीं, रवि रजनी इक ठाम ॥ तुलसीदास ॥

उपसंहार

जब प्रेम का यह उच्चतम आदर्श प्राप्त हो जाता है, तो ज्ञान फिर न जाने कहाँ चला जाता है। तब भला ज्ञान की इच्छा भी कौन करे? तब तो मुक्ति, उद्धार, निर्वाण की बातें न जाने कहाँ गायब हो जाती हैं। इस दैवी प्रेम में छके रहने से फिर भला कौन मुक्त होना चाहेगा? 'प्रभो! मुझे धन, जन, सौन्दर्य, विद्या, यहाँ तक कि, मुक्ति भी नहीं चाहिए। वस, इतनी ही साध है कि जन्म जन्म में तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति बनी रहे।' भक्त कहता है, "मैं शक्कर हो जाना नहीं चाहता, मुझे तो शक्कर खाना अच्छा लगता है।" तब भला कौन मुक्त हो जाने की इच्छा करेगा? कौन भगवान् के साथ एक हो जाने की कामना करेगा? भक्त कहता है, "मैं जानता हूँ कि मैं ही वह हूँ, तो भी मैं उससे अपने को अलग रखूँगा और उससे पृथक् रहूँगा, ताकि मैं उस प्रियतम में आनन्द ले सकूँ।" प्रेम के लिए प्रेम—यही भक्त का सर्वोच्च सुख है। प्रियतम में आनन्द लेने के लिए कौन हजार बार भी बद्ध होने को तैयार न होगा? एक सच्चा भक्त प्रेम को छोड़ और किसी वस्तु की कामना नहीं करता। वह स्वयं प्रेम करना चाहता है, और चाहता है कि भगवान् भी उससे प्रेम करे। उसका निष्काम प्रेम नदी के प्रवाह की विरुद्ध दिशा में जानेवाले ज्वार के समान है। वह मानो नदी के उद्गम-स्थान की ओर, स्रोत की विपरीत दिशा में जाता है। ससार उसको पागल कहता है। मैं एक ऐसे महापुरुष^१ को जानता हूँ, जिन्हे लोग पागल कहते थे। इस पर उसका उत्तर था, "भाइयो, सारा ससार ही तो एक पागलखाना है। कोई सासारिक प्रेम के पीछे पागल है, कोई नाम के पीछे, कोई यश के लिए, तो कोई पैसे के लिए। फिर कोई ऐसे भी हैं, जो उद्धार पाने या स्वर्ग जाने के लिए पागल हैं। इस विराट् पागलखाने में मैं भी एक पागल हूँ—मैं भगवान् के लिए पागल हूँ। तुम पैसे के लिए पागल हो, और मैं भगवान् के लिए। जैसे तुम पागल हो, वैसा ही मैं भी। फिर भी मैं सोचता हूँ कि मेरा ही पागलपन सबसे उत्तम है।" यथार्थ भक्त के प्रेम में इसी प्रकार की तीव्र उन्मत्तता रहती है और

१ शिक्षाष्टक ॥४॥

२ श्री रामकृष्ण परमहंस।

इसके सामने अन्य सब कुछ उड़ जाता है। उसके लिए तो यह साठ बमत् केवल प्रेम से भरपूर है—प्रेमी को बस ऐसा ही दीखता है। जब मनुष्य में यह प्रेम प्रवेश करता है तो वह बिरकाक के लिए मुन्नी बिरकाक के लिए मुक्त हो जाता है। और इसी प्रेम की यह पवित्र उन्मत्तता ही हममें समायी हुई सत्कार-व्याधि को सबा के लिए दूर कर दे सकती है। उससे बासनाएँ नष्ट हो जाती हैं और बासनाओं के साथ ही स्वार्थपरता का भी नाश हो जाता है। तब मन्त्र भगवान् के समीप बसा जाता है क्योंकि उसने उन सब बसना-बासनाओं को फेंक दिया है, जिससे वह पहले भरपूर हुआ था।

प्रेम के बर्म में हमें ईश्वर-मात्र से आत्मन कराना पड़ता है। उस समय हमारे लिए भगवान् हमसे भिन्न रहता है और हम भी अपने को उससे भिन्न समझते हैं। फिर प्रेम बीच में आ जाता है। तब मनुष्य भगवान् की ओर अपसर होने लगता है और भगवान् भी मन्त्र मनुष्य के अधिकारिक निकट आन लगता है। मनुष्य सत्कार के सारे सम्बन्ध—जैसे माता पिता पुत्र सत्ता स्वामी प्रेमी आदि मात्र—केटा है और अपने प्रेम के आदर्श भगवान् के प्रति उन सबको आर्षे-पित्त करता जाता है। उसके लिए भगवान् इन सभी रूपों में विद्यमान है और उसकी उन्मत्ति की चरम अवस्था तो वह है, जिसमें वह अपने उपास्य देवता से सम्पूर्ण रूप से निमग्न हो जाता है। हम सबका पहले अपने प्रति प्रेम रहता है, और इस शुद्ध अहं-भाव का असंगत बाधा प्रेम को भी स्वार्थपर बना देता है। परन्तु अन्त में ज्ञान-व्योति का मरपूर प्रकाश जाता है, जिसमें वह शुद्ध अहं उस अन्त के साथ एक हो जाता है। इस प्रेम के प्रकाश में मनुष्य स्वयं सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाता है और अन्त में इस सुन्दर और प्राणी को उन्मत्त बना देने वाले सत्य का अनुभव करता है कि प्रेम प्रेमी और प्रेमास्य हीनों एक ही हैं।

व्याख्यान, प्रवचन एवं कक्षालाप-४
(राजयोग)

राजयोग पर छः पाठ^१

ससार के अन्य विज्ञानों की भाँति राजयोग भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान मन का विश्लेषण तथा अतीन्द्रिय जगत् के तथ्यों का सकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् का निर्माता है। ससार के सभी महान् उपदेष्टाओं ने कहा है, “हमने देखा और जाना है।” ईसा, पॉल और पीटर सभी ने जिन सत्यों की शिक्षा दी, उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने का दावा किया है।

यह प्रत्यक्ष अनुभव योग द्वारा प्राप्त होता है।

हमारे अस्तित्व की सीमा चेतना अथवा स्मृति नहीं हो सकती। एक अति-चेतन भूमिका भी है। इसमें और सुषुप्ति में सवेदनाएँ नहीं प्राप्त होती। किन्तु इन दोनों के बीच ज्ञान और अज्ञान जैसा आकाश-पाताल का भेद है। यह आलोच्य योगशास्त्र ठीक विज्ञान के ही समान तर्कसंगत है।

मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उत्स है।

योग हमें जड-तत्त्व को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है, और उसको हमारा दास होना ही चाहिए। योग का अर्थ जोड़ना है अर्थात् जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना, मिलाना।

मन चेतना में और उसके अधीन कार्य करता है। हम लोग जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारे स्वरूप की अनन्त श्रृंखला की एक कड़ी मात्र है।

हमारा यह ‘अहम्’ किंचित् मात्र चेतना और अचेतनता के विपुल परिणाम को आच्छादित करता है, जब कि उसके परे, और उसकी प्रायः अज्ञात, अतिचेतन की भूमिका है।

श्रद्धाभाव से योगाभ्यास करने पर मन का एक के बाद एक स्तर खुलता जाता है और प्रत्येक, नये तथ्यों को प्रकाशित करता है। हम अपने सम्मुख नये जगतों

१ इन पाठों की रचना स्वामी विवेकानन्द द्वारा अमेरिकन भक्त शिष्या श्रीमती सारा सी० वुल् के निवास-स्थान पर कुछ घनिष्ठ श्रोताओं के सम्मुख दिये गये कक्षालापों के आधार पर हुई है, जो उनके द्वारा सुरक्षित रखे गये थे और जो अन्त में सन् १९१३ में निजी मडली में वितरित करने के लिए मुद्रित किये

की सृष्टि होती सी बेचत है नयी शक्तियाँ हमारे हाथों में आ जाती हैं किन्तु हमें माय में ही नहीं रुक जाना चाहिए, और जब हमारे सामने हीरों की खान पड़ी हो तो हीरों के खानों से हमें चौबिया नहीं जाना चाहिए।

केवल ईश्वर ही हमारा उच्च है। उसकी प्राप्ति न ही पाना ही हमारी मृत्यु है।

मनस्सताकोशी साधक के लिए तीव्र बातों की आवश्यकता है।

पहली है ऐहिक और पारलौकिक इन्द्रिय मोम-शासना का स्थान और केवल भगवान् और सत्य का सन्ध बनाना। हम यही सत्य की उपलब्धि के लिए हैं, मोम के लिए नहीं। मोम पशुओं के लिए छोड़ दो जिनको हमारी अपेक्षा उसमें कहीं अधिक आनन्द मिलता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, और मृत्यु पर विजय तथा प्रकाश को प्राप्त कर देने तक उसे संघर्ष करते ही रहना चाहिए। उस क्रिष्ण की शठनीयता में अपनी शक्ति नष्ट नहीं करनी चाहिए। समाज की पूजा एवं लोभप्रिय अनमद मूर्ति-भूजा ही है। आत्मा का किम वेद स्थान या काम नहीं होता।

दूसरी है सत्य और मनवत्प्राप्ति की तीव्र माफोसा। जब मैं बुद्धता मनुष्य जैसे शायु के लिए व्याकुल होता है, जैसे ही व्याकुल हो जाओ। केवल ईश्वर की ही चाहो और कुछ भी स्वीकार न करो जो आनासी मात्र है उससे बोधा न जाओ। सबसे निमुक्त होकर केवल ईश्वर की खोज करो।

तीसरी बात में छः अभ्यास हैं

(१) मन को बहिर्मुख न होने देना।

(२) इन्द्रिय-निग्रह।

(३) मन को अन्तर्मुख बनाना।

(४) निर्विरोध सहिष्णुता या पूर्ण तितिक्षा।

(५) मन को एक भाव में स्थिर रखना। ध्येय को सम्मुख रखो और उसका चिन्तन करो। कभी व्यर्थ न करो। समय की गणना न करो।

(६) अपने स्वरूप का सतत चिन्तन करो।

अंधविश्वास का परित्याग कर दो। अपनी तुच्छता के विश्वास में अपने को सम्प्रीहित न करो। जब तक तुम ईश्वर के साथ एकात्मकता की अनुभूति (वास्तविक अनुभूति) न कर लो तब तक रह-विन अपने आपको बतलते रहो कि तुम पचार्थत क्या हो।

इन साधनाओं के बिना कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता।

इस ब्रह्म की खोज कर सकते हैं, पर उसे भाषा के द्वारा व्यक्त करना

असम्भव है। जैसे ही हम उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा करते हैं, वैसे ही हम उसे सीमित बना डालते हैं और वह ब्रह्म नहीं रह जाता।

हमें इन्द्रिय-जगत् की सीमाओं के परे जाना है और बुद्धि से भी अतीत होना है। ऐसा करने की हममें शक्ति है।

[एक सप्ताह तक प्राणायाम के प्रथम पाठ का अभ्यास करने के पश्चात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु को अपना अनुभव बताये।]

प्रथम पाठ

इस पाठ का उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास है। प्रत्येक व्यक्तित्व का विकास आवश्यक है। सभी एक केन्द्र में मिल जायेंगे। 'कल्पना प्रेरणा का द्वार और समस्त विचार का आधार है।' सभी पैगम्बर, कवि और अन्वेषक महती कल्पना-शक्ति से सम्पन्न थे। प्रकृति की व्याख्या हमारे भीतर है, पत्थर बाहर गिरता है, लेकिन गुरुत्वाकर्षण हमारे भीतर है, बाहर नहीं। जो अति आहार करते हैं, जो उपवास करते हैं, जो अत्यधिक सोते हैं, जो अत्यल्प सोते हैं, वे योगी नहीं हो सकते। अज्ञान, चञ्चलता, ईर्ष्या, आलस्य और अतिशय आसक्ति योग-सिद्धि के महान् शत्रु हैं। योगी के लिए तीन बड़ी आवश्यकताएँ हैं

प्रथम—शारीरिक और मानसिक पवित्रता, प्रत्येक प्रकार की मलिनता तथा मन को पतन की ओर ढकेलनेवाली सभी बातों का परित्याग आवश्यक है।

द्वितीय—धैर्य प्रारम्भ में आश्चर्यजनक दृश्य प्रकट होंगे, पर बाद में वे सब अन्तर्हित हो जायेंगे। यह सबसे कठिन समय है। पर दृढ़ रहो, यदि धैर्य रखोगे, तो अन्त में सिद्धि सुनिश्चित है।

तृतीय—लगन सुख-दुःख, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य सभी दशाओं में साधना में एक दिन का भी नागा न करो।

साधना का सर्वोत्तम समय दिन और रात की सधि का समय है। यह हमारे शरीर की हलचल के शान्त रहने का समय है—दो दशाओं के मध्य का शून्य-स्थल है। यदि इस समय न हो सके, तो उठने के ही बाद और सोने के पूर्व अभ्यास करो। नित्य स्नान—शरीर को अधिक से अधिक स्वच्छ रखना—आवश्यक है।

स्नान के पश्चात् बैठ जाओ। आसन दृढ़ रखो अर्थात् ऐसी भावना करो कि तुम चट्टान की भाँति दृढ़ हो, कि तुम्हें कुछ भी विचलित करने में समर्थ नहीं है। कंधे, सिर और कमर एक सीधी रेखा में रखो, पर मेरुदण्ड के ऊपर जोर न डालो,

घारी चिन्ता हमीके सहारे होती है अतः इसको शक्ति पहुँचानेवाला कोई कार्य न होना चाहिए।

अपने पैर की अँगुलियों से आरम्भ करके अपने शरीर के प्रत्येक अंग की स्थिरता की भावना करी। इस भावना अपने में चिन्तन करी और यदि चाहो तो प्रत्येक का स्पर्श करो। प्रत्येक का पूर्ण अर्थात् उसमें कोई विकार नहीं है, सोचते हुए धीरे धीरे ऊपर चढ़कर फिर तक आओ। तब समस्त शरीर के पूर्ण होने के भावना चिन्तन करी यह सोचते हुए कि मुझे सत्य का साक्षात्कार करने के हेतु यह ईश्वर द्वारा प्रदत्त साधन है। यह वह तीका है जिस पर बैठकर तुम्हें सारा समुद्र पार करके अनन्त सत्य के तट पर पहुँचना है। इस क्रिया के पश्चात् अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से एक दीर्घ श्वास लो और फिर उसे बाहर निकालो। इसके पश्चात् जितनी बेर तक सरकटापूर्वक बिना श्वास किये रह सको रहो। इस प्रकार के चार प्राणायाम करी और फिर स्वाभाविक रूप से श्वास लो और भगवान् से ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रार्थना करो।

"मैं उस सत्ता की महिमा का चिन्तन करता हूँ जिसने विश्व की रचना की है वह मेरे मन को प्रबुद्ध करे। बैठो और इस-मन्त्रह मिनट इस भावना का ध्यान करो।

अपनी अनुभूतियों को अपने मुख के अतिरिक्त और किसीको न बताओ। यथासम्भव कम से कम बात करी।

अपना चिन्तन शब्दगुणो पर ब्रजओ हम जैसा सोचते हैं वैसे ही बन जाते हैं। पवित्र चिन्तन हमें अपनी समस्त मानसिक शक्तिताओ को भस्म करने में सहायता देता है। जो ओसी नहीं है, वह बाध है। मुक्ति-राम के हेतु एक एक करके सभी बन्धन काटने होवे।

इस जगत् के परे जो सत्य है, उसको सभी लोग जान सकते हैं। यदि ईश्वर की सत्ता सत्य है तो अबस्य ही हमें उसको एक तथ्य के रूप में अनुभव करना चाहिए और यदि आत्मा जैसी कोई सत्ता है, तो हमें उसे देखने और अनुभव करने में समर्थ होना चाहिए।

यदि आत्मा है, तो उसका साक्षात्कार करने के लिए हमें कुछ ऐसा बनना पड़ेगा जो शरीर नहीं है।

ओसी इन्द्रियों को दो मुख्य बगों में विभाजित करते हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ अथवा ज्ञान और कर्म।

आन्तरिक्रिय या मन के चार स्तर हैं प्रथम—मनस् अर्थात् मनन अथवा चिन्तन-शक्ति। इसको सम्यक् न करने पर प्रायः इसकी समस्त शक्ति लपट हो

जाती है। उचित समय किये जाने पर यह अद्भुत शक्ति बन जाती है। द्वितीय— बुद्धि अर्थात् इच्छा-शक्ति (इसको बोध-शक्ति भी कहा जाता है)। तृतीय— अहंकार अर्थात् आत्मचेतन अहंबुद्धि। चतुर्थ—चित्त अर्थात् वह तत्त्व, जिसके आधार और माध्यम से समस्त शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं, मानो यह मन का घरातल है अथवा वह समुद्र है, जिसमें समस्त क्रिया-शक्तियाँ तरंगों का रूप धारण किये हुए हैं।

योग वह विज्ञान है, जिसके द्वारा हम चित्त को अनेक क्रिया-शक्तियों का रूप धारण करने अथवा उनमें रूपान्तरित होने से रोकते हैं। समुद्र में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार तरंगों के कारण अस्पष्ट अथवा विच्छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा अर्थात् सत्स्वरूप का प्रतिबिम्ब भी मन की तरंगों से विच्छिन्न हो जाता है। केवल जब समुद्र दर्पण की भाँति तरंगशून्य होकर शान्त हो जाता है, तभी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। उसी प्रकार जब चित्त अर्थात् मनस्-समय के द्वारा सम्पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तभी स्वरूप का साक्षात्कार होता है।

यद्यपि चित्त सूक्ष्मतर रूप में जड़ है, तथापि वह देह नहीं है। वह देह द्वारा चिरकाल तक आबद्ध नहीं रहता। पर इस बात से सिद्ध होता है कि हम कभी कभी देहभाव से परे हो जाते हैं। अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके हम इच्छानुसार इस बात का अभ्यास कर सकते हैं।

यदि हम ऐसा करने में पूर्ण समर्थ हो जायँ, तो समस्त विश्व हमारे वश में हो जाय, क्योंकि हमारी इन्द्रियों को लेकर ही यह जगत् है। स्वाधीनता ही उच्च जीवन की कसौटी है। आध्यात्मिक जीवन उस समय प्रारम्भ होता है, जिस समय तुम अपने को इन्द्रियों के बधन से मुक्त कर लेते हो। जो इन्द्रियों के अधीन हैं, वही ससारी हैं, वही दास हैं।

चित्त को तरंगों का रूप धारण करने से रोकने में पूर्ण समर्थ होने पर हमारी देह का नाश हो जाता है। इस देह को तैयार करने में करोड़ों वर्षों से हमें इतना कड़ा परिश्रम करना पड़ा है कि उसी चेष्टा में व्यस्त रहते रहते हम यह भूल गये कि इस देह की प्राप्ति का वास्तविक उद्देश्य पूर्णता-प्राप्ति है। हम सोचने लगे हैं कि हमारी समस्त चेष्टाओं का लक्ष्य इस देह की तैयारी है। यही मामा है। हमें इस भ्रम को मिटाना होगा और अपने मूल उद्देश्य की ओर जाकर इस बात का अनुभव करना होगा कि हम देह नहीं हैं, यह तो हमारा दास है।

मन को अलग करके उसे देह से पृथक् देखना सीखो। हम देह के ऊपर सवेदना और प्राण को आरोपित करते हैं और फिर सोचते हैं कि वह चेतन और मत्त

है। हम इतने दीर्घकाल से यह खोल पहने हुए हैं कि भूल जाते हैं कि हम और वे एक नहीं हैं। योग हमें देह को इच्छानुसार सक्रम करने तथा उसे अपने हाथ अपने सामने न कि स्वामी के रूप में देखने में सहायता करता है। योगाभ्यास का प्रथम प्रमुख उद्देश्य मानसिक शक्तियों का नियंत्रण करना है। दूसरा उन्हें पूर्ण शक्ति सजाकर किसी एक विषय पर केन्द्रित करना है।

यदि तुम बहुत बात करते हो तो तुम योगी नहीं हो सकते।

द्वितीय पाठ

इस योग का नाम अष्टांग योग है, क्योंकि इसकी प्रथमतः आठ भागों में विभक्त किया गया है। वे हैं

प्रथम—यम। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और सारा जीवन इसके द्वारा शासित होना चाहिए। इसके पाँच विभाग हैं

- (१) मन कर्म बचन से हिंसा न करना।
- (२) मन कर्म बचन से झोम न करना।
- (३) मन कर्म और बचन की पवित्रता।
- (४) मन कर्म और बचन की पूर्ण सत्यता।
- (५) अपरिग्रह (किसीसे कोई बात न लेना)।

द्वितीय—नियम। शरीर की वैद्यनाक मित्य स्नान परिमित आहार इत्यादि।

तृतीय—आसन। मेरुदण्ड के ऊपर जोर न देकर कमर, गर्दन और शिर सीधा रखना।

चतुर्थ—प्राणायाम। प्राणवायु अथवा जीवन-शक्ति को बहीभूत करने के लिए स्वास-प्रस्वास का संयम।

पंचम—मन्याहार। मन को अन्तर्मुख करना तथा उसे बहिर्मुखी होने से रोकना अङ्ग-तत्त्व की समझने के लिए उसे मन में बुझाना अर्थात् उस पर बार बार विचार करना।

षष्ठ—धारणा। एक विषय पर ध्यान केन्द्रित करना।

सप्तम—ध्यान।

अष्टम—समाधि आनाजोक हमारी समस्त साधना का उद्देश्य।

हमें यम-नियम का अभ्यास जीवनपर्यन्त करना चाहिए। जहाँ तक दूसरे अभ्यासों का सम्बन्ध है हम ठीक वैसे ही करते हैं, वैसे कि जोकि बिना दूसरे

तिनके को दृढतापूर्वक पकड़े पहलेवाले को नहीं छोड़ती है। दूसरे शब्दों में हमें अपने पहले कदम को भली भाँति समझकर अभ्यास कर लेना है और तब दूसरा उठाना है।

इस पाठ का विषय प्राणायाम अर्थात् प्राण का नियमन है। राजयोग में प्राण-वायु चित्तभूमि में प्रविष्ट होकर हमें आध्यात्मिक राज्य में ले जाती है। यह समस्त देहयंत्र का मूल चक्र है। प्राण प्रथम फुफ्फुस पर क्रिया करता है, फुफ्फुस हृदय को प्रभावित करते हैं, हृदय रक्त-प्रवाह को और वह क्रमानुसार मस्तिष्क को तथा मस्तिष्क मन पर क्रिया करता है। जिस प्रकार इच्छा-शक्ति बाह्य संवेदन उत्पन्न करती है, उसी प्रकार बाह्य संवेदन इच्छा-शक्ति जाग्रत कर देता है। हमारी इच्छा-शक्ति दुर्बल है, हम जब-तत्त्व के इतने बंधन में हैं कि हम उसकी शक्ति को नहीं जान पाते। हमारी अधिकांश क्रियाएँ बाहर से भीतर की ओर होती हैं। बाह्य प्रकृति हमारे आन्तरिक साम्य को नष्ट कर देती है, किन्तु जैसा कि हमें चाहिए, हम उसके साम्य को नष्ट नहीं कर पाते। किन्तु यह सब भूल है। वास्तव में प्रबलतर शक्ति तो भीतर की शक्ति है।

वे ही महान् सत और आचार्य हैं, जिन्होंने अपने भीतर के मनोराज्य को जीता है। और इसी कारण उनकी वाणी में शक्ति थी। एक ऊँची मीनार पर बदी किये गये एक मंत्री की कहानी है। वह अपनी पत्नी के प्रयत्न से मुक्त हुआ। पत्नी भृगु, मधु, रेशमी सूत, सुतली और रस्सी लायी थी। यह रूपक इस बात को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार हम रेशमी धागे की भाँति प्रथम प्राणवायु का नियमन करके अन्त में एकाग्रतारूपी रस्सी पकड़ सकेंगे, जो हमें देहरूपी कारागार से निकाल देगी और हम मुक्ति प्राप्त करेंगे। मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उसके हेतु प्रयुक्त साधनों का हम परित्याग कर सकते हैं।

प्राणायाम के तीन अंग हैं

- (१) पूरक—श्वास लेना।
- (२) कुम्भक—श्वास रोकना।
- (३) रेचक—श्वास छोटना।

मस्तिष्क में से होकर मेरुदण्ड के दोनों ओर बहनेवाले दो शक्ति-प्रवाह हैं, जो मूलाधार में एक दूसरे का अतिक्रमण करके मस्तिष्क में लौट आते हैं। इन दोनों में एक का नाम 'सूर्य' (पिंगला) है, जो मस्तिष्क के वाम गोलार्ध से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के दक्षिण पाठ्व में मस्तिष्क के आधार (सहस्रार) पर एक दूसरे को लाँव-

पर पुनः मूलाधार पर अंग्रेजी के आठ (8) अंक के अर्ध भाग के आकार में समान एक दूसरे का फिर अतिरिक्त करती है।

दूसरे शक्ति-प्रवाह का नाम 'चन्द्र' (इड़ा) है, जिसकी क्रिया उपर्युक्त चन्द्र के ठीक विपरीत है और जो इस आठ (8) अंक को पूर्ण बनाती है। हाँ इसका निम्न भाग ऊपरी भाग से कहीं अधिक कम्बा है। ये शक्ति प्रवाह दिन-रात सतिशील रहते हैं और विभिन्न केन्द्रों में जिन्हें हम 'बन्ध' कहते हैं बड़ी बड़ी जीवनी-शक्तियों का संभव क्रिया करते हैं। पर ध्यान ही हमें उनका ज्ञान हो। एकाग्रता द्वारा हम उनका अनुभव कर सकते हैं और शरीर के विभिन्न अंगों में उनका पता लगा सकते हैं। इस 'सूर्य' और 'चन्द्र' के शक्ति-प्रवाह स्वास-क्रिया के साथ अनिच्छित रूप से सम्बद्ध हैं और इसीके नियमन द्वारा हम शरीर को नियमित करते हैं।

कठोपनिषद्^१ में देह को रथ मन को अगाम इन्द्रियों को घोड़े विषय को पशु और बुद्धि को सारथी कहा गया है। इस रथ में बौद्धि हुई आराम रखी है। यदि रथी समझदार नहीं है और सारथी से घोड़ों को नियंत्रित नहीं कर सकता तो वह कभी भी अपने ध्येय तक नहीं पहुँच सकता। अफिर, दुष्ट अस्त्रों के समान इन्द्रियाँ उसे नहीं चाहेंगी जीव के धर्मों में। यहाँ तक कि उसकी जान भी ले सकती हैं। वे जो शक्ति-प्रवाह सारथी के हाथों में रोकबाम के हेतु अगाम हैं और अस्त्रों को अपने बल में करने के लिए उसे इनके ऊपर नियंत्रण करना आवश्यक है। नीतिपरायण होने की शक्ति हमें प्राप्त करनी ही है। जब तक हम उसे प्राप्त नहीं कर लेते हम अपने कर्मों को नियंत्रित नहीं कर सकते। नीतिशास्त्रों को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति हमें केवल योग से ही प्राप्त हो सकती है। नीतिपरायण होना योग का उद्देश्य है। जगत् के सभी बड़े बड़े आचार्य योगी थे और उन्होंने प्रत्येक शक्ति प्रवाह को बल से कर रखा था। योगी इन दोनों प्रवाहों को मेरुदण्ड के तले में संयत करके उनकी मेरुदण्ड के भीतर के केन्द्र से होकर परिचाहित करते हैं। जब ये प्रवाह ज्ञान के प्रवाह बन जाते हैं। यह स्थिति केवल योगी की ही होती है।

प्राणाबाम की द्वितीय शिखा कोई एक प्रवाही समी के लिए नहीं है। प्राणा बाम का अत्युत्पन्न कमबलता के साथ होना आवश्यक है और इसकी सबसे सहज विधि गमना है। चूँकि यह (गमना) पूर्णस्वेग संभव ही जाती है, हम इसके बजाय एक निश्चित संख्या में पवित्र मंत्रों का जप करते हैं।

प्राणायाम की क्रिया इस प्रकार है दायें नथुने को अँगूठे से दबाकर चार वार 'ॐ' का जप करके धीरे धीरे बायें नथुने से श्वास लो।

तत्पश्चात् बायें नथुने पर तर्जनी रखकर दोनो नथुनो को कसकर बन्द कर दो और 'ॐ' का मन ही मन आठ वार जप करते हुए श्वास को भीतर रोके रहो।

पश्चात्, अँगूठे को दाहिने नथुने से हटाकर चार वार 'ॐ' का जप करते हुए उसके द्वारा धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो।

जब श्वास बाहर हो जाय, तब फुफ्फुस से समस्त वायु निकालने के लिए पेट को दृढतापूर्वक सकुचित करो। फिर बायें नथुने को बंद करके चार वार 'ॐ' का जप करते हुए दाहिने नथुने से श्वास भीतर ले जाओ। इसके बाद दाहिने नथुने को अँगूठे से बंद करो और आठ वार 'ॐ' का जप करते हुए श्वास को भीतर रोको। फिर बायें नथुने को खोलकर चार वार 'ॐ' का जप करते हुए पहले की भाँति पेट को सकुचित करके धीरे धीरे श्वास को बाहर निकालो। इस सारी क्रिया को प्रत्येक बैठक में दो वार दुहराओ अर्थात् प्रत्येक नथुने के लिए दो के हिसाब से चार प्राणायाम करो। प्राणायाम के लिए बैठने के पूर्व सारी क्रिया प्रार्थना से प्रारम्भ करना अच्छा होगा।

एक सप्ताह तक इस अभ्यास को करने की आवश्यकता है। फिर धीरे धीरे श्वास-प्रश्वास की अवधि को बढ़ाओ, किन्तु अनुपात वही रहे। अर्थात् यदि तुम श्वास भीतर ले जाते समय छ वार 'ॐ' का जप करते हो, तो उतना ही श्वास बाहर निकालते समय भी करो और कुम्भक के समय बारह बार करो। इन अभ्यासों के द्वारा हम और अधिक पवित्र, निर्मल और आध्यात्मिक होते जायेंगे। किसी विषय में पडने से अथवा कोई शक्ति (सिद्धि) की चाह से बचे रहो। प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है, जो चिरकाल तक हमारे साथ रहती है और बढ़ती जाती है। राजयोग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबल होना आवश्यक है। अपना प्रत्येक कदम इन बातों को ध्यान में रखकर ही बढ़ाओ।

लाखों में कोई विरला ही कह सकता है, "मैं इस ससार के परे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करूँगा।" शायद ही कोई सत्य के सामने खड़ा हो सके। किन्तु अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए हमें मरने के लिए भी तैयार रहना पड़ेगा।

तृतीय पाठ

कुंडलिनी आत्मा का अनुभव बड़ न रूप में न करो बल्कि उसके यथार्थ स्वरूप को जानो। हम सोच आत्मा को बेह समझते हैं किन्तु हमारे लिए इसको इन्द्रिय और बुद्धि से बसल करके सोचना आवश्यक है। तभी हमें इस बात का ज्ञान होगा कि हम अमृतस्वरूप हैं। परिवर्तन से बाध्य है कार्य और कारण का द्वैत और जो कुछ भी परिवर्तित होता है, उसका नद्वैत होता अवश्यम्भावी है। इससे यह सिद्ध होता है कि न तो शरीर और न मन अविनाशी हो सकते हैं क्योंकि दोनों में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। केवल जो अपरिवर्तनशील है, वही अविनाशी हो सकता है क्योंकि उसे कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता।

हम सत्यस्वरूप हो नहीं पाते बल्कि हम सत्यस्वरूप हैं किन्तु हमें सत्य को अनुभव करनेवाके अज्ञान के पदों को हटाना होगा। बेह विचार का ही रूप है। 'सूर्य' और 'चन्द्र' शक्ति प्रवाह शरीर के सभी अंगों में शक्ति-संचार करते हैं। अचक्षिप्त अतिरिक्त शक्ति सुषुम्ना के अन्तर्गत विभिन्न अंगों अपना सामान्यतया विहित स्नायु-केन्द्र में संचित रहती है।

ये शक्ति-प्रवाह मृत बेह में वृष्टिमत नहीं होते और केवल स्वल्प शरीर में ही देखे जा सकते हैं।

मोक्षी को एक विशेष सुनिचा रहती है क्योंकि वह केवल इनका अनुभव ही नहीं करता अपितु इन्हें प्रत्यक्ष देखता भी है। वे उसके जीवन में व्योतिर्मम हो उठते हैं। ऐसे ही उसके महान् स्नायु-केन्द्र भी हैं।

कार्य ज्ञात तथा अज्ञात दोनों यज्ञाजों में होते हैं। योमियों की एक बुराई बधा भी होती है वह है ज्ञानातीत या अतिशेयत अवस्था को सभी देशों और सभी युगों में समस्त आत्मिक ज्ञान का स्रोत रही है। ज्ञानातीत बधा में कभी भूक नहीं होती किन्तु जब अस्मत्त प्रवृत्ति के द्वारा प्रेरित कार्य पूर्वस्वेष यंत्रबद्ध होता है, तब पूर्ववर्ती (ज्ञानातीत बधा) ज्ञान की बधा के परे की स्थिति होती है। इसे अन्त-प्रेरणा कहते हैं परन्तु बोधी कहता है 'यह शक्ति प्रत्यक्ष अनुभव में अन्तर्निहित है और अन्ततोगत्वा सभी लोग इसका ज्ञान प्राप्त करेगे।

हमें 'सूर्य' और 'चन्द्र' की शक्तियों को एक नये रास्ते से परिचायित करना होगा और उनके लिए सुषुम्ना का मुझ कोलकर एक मरु रास्ता बना होगा। जब हम इस सुषुम्ना से होकर शक्ति-प्रवाह को अस्तित्व तक से जाने में सफल हो जाते हैं, उस समय हम शरीर से बिल्कुल अलग हो जाते हैं।

मेरुदंड के तले त्रिकास्थि (sacrum) के निकट स्थित मूलाधार चक्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह स्थल काम-शक्ति के प्रजनन-तत्त्व का निवास है, और योगी इसको एक त्रिकोण के भीतर छोटे से कुडलीकृत सर्प के प्रतीक के रूप में मानते हैं। इस प्रसुप्त सर्प को कुडलिनी कहते हैं। इसी कुडलिनी को जाग्रत करना ही राजयोग का प्रमुख उद्देश्य है।

महती काम-शक्ति को पशुसुलभ क्रिया से उन्नत करके मनुष्य शरीर के महान् डाइनेमो मस्तिष्क में परिचालित करके वहाँ संचित करने पर वह ओजस् अर्थात् महान् आध्यात्मिक शक्ति बन जाती है। समस्त सत् चिन्तन, समस्त प्रार्थनाएँ उस पशुसुलभ शक्ति के एक अंश को ओजस् में परिणत करने में सहायता करती हैं और हमें आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करती हैं। यह ओजस् ही मनुष्य का सच्चा मनुष्यत्व है, और केवल मनुष्य के शरीर में ही इस शक्ति का संग्रह सम्भव है। जिसकी समस्त पशुसुलभ काम-शक्ति ओजस् में परिणत हो गयी है, वही देवता है। उमकी वाणी में शक्ति होती है और उसके वचन जगत् को पुनरुज्जीवित करते हैं।

योगी मन ही मन कल्पना करता है कि यह कुडलिनी क्रमशः धीरे धीरे उठकर सर्वोच्च स्तर अर्थात् सहस्रार में पहुँच रही है। जब तक मनुष्य अपनी सर्वोच्च शक्ति, काम-शक्ति को ओज में परिणत नहीं कर लेता, कोई भी स्त्री या पुरुष, वास्तविक रूप में आध्यात्मिक नहीं हो सकता।

कोई शक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती, उसे केवल एक दिशा में परिचालित किया जा सकता है। अतः हमें चाहिए कि हम अपनी महती शक्तियों को अपने वश में करना सीखें और अपनी इच्छा-शक्ति से उन्हें पशुवत् रखने के बजाय आध्यात्मिक बना दें। अतः यह स्पष्ट है कि पवित्रता ही समस्त धर्म और नीति की आधारशिला है। विशेषतः राजयोग में मन, वचन की पूर्ण पवित्रता परमावश्यक है। विवाहित और अविवाहित, सभी लोगों के लिए एक ही नियम लागू होता है। देह के इस सार अंश को वृथा नष्ट कर देने पर आध्यात्मिकता की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

इतिहास बताता है कि सभी युगों में बड़े बड़े द्रष्टा महापुरुष या तो सन्यासी और तपस्वी थे अथवा विवाहित जीवन का परित्याग कर देनेवाले थे। केवल पवित्रात्मा ही भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्राणायाम से पूर्व इस त्रिकोणमंडल को ध्यान में देखने की चेष्टा करो। आँखें बन्द करके इसके चित्र की मन ही मन स्पष्ट कल्पना करो। सोचो कि इसके चारों ओर अग्निशिखा है और उसके बीच में कुडलिनी सोयी पड़ी है। जब तुम्हें कुडलिनी

स्पष्ट रूप से बीसने लगे अपनी कल्पना में इसे मूलाधार चक्र में स्थित करो और कुम्भक में श्वास को धबकड़ा करके कुंडलिनी को जमाने के हेतु श्वास के द्वारा उसके मस्तक पर आघात करो। जिसकी ही शक्तिशाली कल्पना होगी उठनी शीघ्रता से वास्तविक फल की प्राप्ति होगी और कुंडलिनी आघ्रत हो जायगी। जब तक वह जाग्रत नहीं हुई, तब तक यही सोचो कि वह जाग्रत हो गयी है, तथा शक्ति प्रवाहों को अनुभव करने की चेष्टा करो और उन्हें सुपुष्पा पत्र में परिचाहित करने का प्रयास करो। इससे उसकी क्रिया में शीघ्रता होती है।

चतुर्थ पाठ

मन को बध में करने की शक्ति प्राप्त करने के पूर्व हमें उसका मसी प्रकार अभ्यसन करना चाहिए।

बिचक मन को समत करके हमें उसे विचारों से सीधना होगा और उसे एक विचार में केन्द्रित करना होगा। बार बार इस क्रिया को करना आवश्यक है। इच्छा शक्ति द्वारा मन को बध में करके उसकी क्रिया रोककर ईश्वर की महिमा का चिन्तन करना चाहिए।

मन को स्थिर करने का सबसे सरल उपाय है चुपचाप बैठ जाना और उसे कुछ क्षण के लिए वह जहाँ जाय जाने देना। बुद्ध्यापूर्वक इस भाव का चिन्तन करो "मैं मन को विचारण करते हुए देखनेवाला छात्री हूँ। मैं मम नहीं हूँ।" परचात् मन को ऐसा सोचता हुआ कल्पना करो कि मानो वह तुमसे विस्तुक्त भिन्न है। अपने को ईश्वर से अभिन्न मानो मन जबवा जड़ पदार्थ के साथ एक करके कदापि न सोचो।

सोचो कि मन तुम्हारे सामने एक विस्तृत चरमहीन सरोवर है और जाने जानेवाले विचार इसके तल पर चठनेवाले बुलबुले हैं। विचारों को रोकने का प्रयास न करो बरन् उनको देखो और जैसे जैसे वे विचारण करते हैं जैसे जैसे तुम भी उनके पीछे चलो। यह क्रिया बीरे बीरे मन के बृत्तों को सीमित कर देगी। कारण यह है कि मन विचार की विस्तृत परिधि में घूमता है और ये परिधियाँ विस्तृत होकर निरन्तर बढ़नेवाले बृत्तों में फैलती रहती हैं ठीक जैसे ही जैसे किसी सरोवर में देखा फेकने पर होता है। हम इस क्रिया को सफट देना चाहते हैं और बड़े बृत्तों से प्रारम्भ करके उन्हें छोटा बनाते जैसे करते हैं—यहाँ तक कि अन्त में हम मन को एक बिन्दु पर स्थिर करके उसे बड़ी रोक धरें। बुद्ध्यापूर्वक इस भाव का चिन्तन

करो, "मैं मन नहीं हूँ, मैं देखता हूँ कि मैं सोच रहा हूँ। मैं अपने मन तथा अपनी क्रिया का अवलोकन कर रहा हूँ।" प्रतिदिन मन और भावना से अपने को अभिन्न ममझने का भाव कम होता जायगा, यहाँ तक कि अन्त में तुम अपने को मन में विल्कुल अलग कर सकोगे और वास्तव में इसे अपने से भिन्न जान सकोगे।

इतनी सफलता प्राप्त करने के बाद मन तुम्हारा दास हो जायगा और उसके ऊपर इच्छानुसार शासन कर सकोगे। इन्द्रियो से परे हो जाना योगी की प्रथम स्थिति है। जब वह मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तब सर्वोच्च स्थिति प्राप्त कर लेता है।

जितना सम्भव हो सके, एकान्त सेवन करो। तुम्हारा आसन सामान्य ऊँचाई का होना चाहिए। प्रथम कुशासन विछाओ, फिर मृगचर्म और उसके ऊपर रेशमी कपड़ा। अच्छा होगा कि आसन के साथ पीठ टेकने का साधन न हो और वह दृढ़ हो।

चूँकि विचार एक प्रकार के चित्र है, अतः हमें उनकी रचना न करनी चाहिए। हमें अपने मन से सारे विचार दूर हटाकर रिक्त कर देना चाहिए। जितनी ही शीघ्रता से विचार आयें, उतनी ही तेज़ी से उन्हें दूर भगाना चाहिए। इसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए हमें जड-तत्त्व और देह के परे जाना परमावश्यक है। वस्तुतः मनुष्य का समस्त जीवन ही इसको सिद्ध करने का प्रयास है।

प्रत्येक ध्वनि का अपना अर्थ होता है। हमारी प्रकृति में इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है।

हमारा उच्चतम आदर्श ईश्वर है। उसका चिन्तन करो। यही नहीं कि हम ज्ञाता को जान सकते हैं, अपितु हम तो वही हैं।

अशुभ को देखना तो उसकी सृष्टि ही करना है। जो कुछ हम है, वही हम बाहर भी देखते हैं, क्योंकि यह जगत् हमारा दर्पण है। यह छोटा सा शरीर हमारे द्वारा रचा हुआ एक छोटा सा दर्पण है, बल्कि समस्त विश्व हमारा शरीर है। इस बात का हमें सतत चिन्तन करना चाहिए, तब हमें ज्ञान होगा कि न तो हम मर सकते हैं और न दूसरो को मार सकते हैं, क्योंकि वह तो हमारा ही स्वरूप है। हम अजन्मा और अमर हैं और प्रेम ही हमारा कर्तव्य है।

'यह समस्त विश्व हमारा शरीर है। समस्त स्वास्थ्य, समस्त सुख हमारा सुख है, क्योंकि यह सब कुछ विश्व के अन्तर्गत है।' कहो, "मैं विश्व हूँ।" अन्त में हमें ज्ञान से ————— (ही है।

तो ये वो श्लोक है। कृष्ण के उपदेश के सारस्वरूप इन श्लोकों से बड़ा भारी बक प्राप्त होता है।

सर्वं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ १३।२७॥

जीर,

सर्वं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।

न हिनस्तात्मनात्मानं हतो याति परां गतिम् ॥ १३।२८॥

—विनाश होनेवाले सब मूर्खों में जो लोग ज्विनाशी परमात्मा को स्थित देखते हैं यथावत् में उन्हींका देखना सार्थक है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखकर वे आत्मा के द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करते इसलिए वे परमगति को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार इस देश और अन्त्याय देशों में कल्याण कार्य की दृष्टि से बेबाल के प्रचार और प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र है। इस देश में और विश्वों में भी मनुष्य जाति के दुःख दूर करने के लिए तथा मानव-समाज की उत्थिति के लिए हम परमात्मा की सर्वव्यापकता और सर्वत्र समान रूप से उसकी विद्यमानता का प्रचार करना होगा। जहाँ भी बुराई फैलाई देती है, वहीं अज्ञान भी मौजूब रहता है। मैंने अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा साकूम किया है और यही साक्ष्यों में भी कहा गया है कि भेद-बुद्धि से ही संसार में सारे अशुभ और अभेद-बुद्धि से ही सारे शुभ फलते हैं। यदि सारी विभिन्नताओं के बन्दर ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाय तो सब प्रकार से संसार का कल्याण किया जा सकता है। यही बेबाल का सर्वोच्च आदर्श है। प्रत्येक विषय में आदर्श पर विश्वास करना एक बात है और प्रतिदिन के छोटे छोटे कार्यों में उसी आदर्श के अनुसार काम करना विश्वकृत दूयपी बात है। एक ऊँचा आदर्श दिना देना अच्छी बात है इसमें मन्देह नहीं पर उस आदर्श तक पहुँचने का उपाय कौन सा है ?

स्वभावतः यहाँ यही कठिन और उद्विग्न करने वाला जाति-भेद तथा समाज सुधार का सवाल आ उपस्थित होता है, जो कई सदियों से सर्वसाधारण क मन में उठता रहा है। मैं तुमसे यह बात स्पष्ट शक्तों में कह देता चाहता हूँ कि मैं केवल जाति-जाति का भेद मिटानेवाला अथवा समाज-सुधारक मात्र नहीं हूँ। सीधे धर्म में जाति भेद या समाज-सुधार से मेरा कुछ मतलब नहीं। तुम जाते जिस जाति या समाज के क्यों न हो उनमें कुछ बन्धन-बिगड़ना नहीं पर तुम किसी भी जातिधर्म को घुसा की दृष्टि से क्यों देखो ? मैं केवल प्रेम और भाव प्रेम की

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हज़ारों रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वंशों के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक अपनी वंशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राहूँ बटोहियों की ताक में रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमें से किसीसे अपनी वंशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओं के वंशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वंशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वंशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नहीं।

अतएव, हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से भेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नहीं सुना है, शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नहीं है—वे राजा के शासनाधीन नहीं हैं, और उनके लिए फौसी की सज़ा नहीं हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ़ लोगों ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो; सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने में ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषों से परिपूर्ण है, वह देश यदि विविधनिषेध के परे हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगों पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियों पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगों को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरंगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रों में देखते हैं—सत्ययुग में पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत में हम देखते हैं, पुराकाल में सारी पृथ्वी ब्राह्मणों का ही निवास था। कालान्तर में लगे लगे उनकी अवनति होने लगी,

सुमन किया है अच्छा ही किया है पर इससे भी अच्छा करने की चेष्टा करो। पुराने जमाने में इस देश में बहुतेरे अच्छे काम हुए हैं पर अब भी उससे बड़ बड़े काम करने का पर्याप्त समय और अवकाश है। मैं निश्चित हूँ कि तुम जानते हो कि हम एक जगह एक अवस्था में चुपचाप बैठे नहीं रह सकते। यदि हम एक जगह स्थिर रहे, तो हमारी मृत्यु अनिवार्य है। हमें या तो आगे बढ़ना होना या पीछे हटना होना—हमें उन्नति करते रहना होगा नहीं तो हमारी अवनति आप से आप होती जायगी। हमारे पूर्व पुरुषों ने प्राचीन काल में बहुत बड़े बड़े काम किए हैं, पर हमे उनकी अपेक्षा भी उच्चतर जीवन का विकास करना होगा और उनकी अपेक्षा और भी महान् कार्यों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। अब पीछे हटकर अवनति को प्राप्त होना यह कैसे हो सकता है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। नहीं हम कदापि वैसा होने नहीं देंगे। पीछे हटने से हमारी जाति का अवनतन और मरण होगा। अतएव 'अग्रसर होकर महत्तर कर्मों का अनुष्ठान करो'—तुम्हारे सामने यही मेरा वक्तव्य है।

मैं किसी अधिका समाज-सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं समाज के लोगों का सुधार करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम आगे बढ़ो और हमारे पूर्वपुरुष समस्त मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वज्ञ सुन्दर प्रणाली बता गये हैं उसीका अवलम्बन कर उनके उद्देश्य को सम्पूर्ण रूप से कार्य में परिणत करो। तुमसे मेरा कहना यही है कि तुम जोप मानव के एकत्व और उसके नैसर्गिक ईश्वरत्व-मानवता के अतिरिक्त सभी पक्षों को ध्यान में रखते जाओ। यदि मेरे पास समय होता तो मैं तुम लोगों को बड़ी प्रसन्नता के साथ यह सिखाता और बताता कि आज हमें जो कुछ कार्य करना है उसे हमारी बर्ष पहले हमारे स्मृतिकारों ने बता दिया है। और उनकी बातों से हम यह भी जान सकते हैं कि आज हमारी जाति और समाज के आचार-व्यवहार में जो सब परिवर्तन हुए हैं और होयें उन्हें भी उन लोगों ने आज से हजारों बर्ष पहले जान लिया था। वे भी जाति-भेद को तोड़ने वाले थे पर आजकल की तरह नहीं। जाति-भेद को तोड़ने से उनका मतलब यह नहीं था कि सड़क पर क लोग एक साथ मिश्रकर सराब कबाब उड़ावें या बितने मुर्क और पायल हूँ वे सब जाड़े जिसके साथ घाटी कर से और सारे देश को एक बहुत बड़ा पागलखाना बना दें और न उनका यही विश्वास था कि जिस देश में बितने ही अधिक विधवा-विवाह हूँ वह देश उठता ही उन्नत समझा जायगा। इस प्रकार से किसी जाति को उन्नत होते मुझे अभी देवना है।

शास्त्र ही हमारे पूर्वपुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों में ब्रह्म

का आदर्श विशिष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। यूरोप के बड़े बड़े धर्माचार्य भी यह प्रमाणित करने के लिए हजारों रुपये खर्च कर रहे हैं कि उनके पूर्वपुरुष उच्च वशी के थे और तब तक वे सन्तुष्ट नहीं होंगे जब तक अपनी वशपरम्परा किसी भयानक क्रूर शासक से स्थापित नहीं कर लेंगे, जो पहाड़ पर रहकर राही बटोहियों की ताक में रहते थे और मौका पाते ही उन पर आक्रमण कर लूट लेते थे। आभिजात्य प्रदान करने वाले इन पूर्वजों का यही पेशा था और हमारे धर्माध्यक्ष कार्डिनल इनमें से किसीसे अपनी वशपरम्परा स्थापित किये बिना सन्तुष्ट नहीं रहते थे। फिर दूसरी ओर भारत के बड़े से बड़े राजाओं के वशधर इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि हम अमुक कौपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, फल-मूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान हैं। भारतीय राजा भी अपनी वशपरम्परा स्थापित करने के लिए वही जाते हैं। अगर तुम अपनी वशपरम्परा किसी महर्षि से स्थापित कर सकते हो, तो ऊँची जाति के माने जाओगे, अन्यथा नहीं।

अतएव, हमारा उच्च वश का आदर्श अन्यान्य देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल भिन्न है। आध्यात्मिक साधनासम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श हैं। इस ब्राह्मण-आदर्श से मेरा क्या मतलब है? आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमें सासारिकता एकदम न हो और असली ज्ञान पूर्ण मात्रा में विद्यमान हो। हिन्दू जाति का यही आदर्श है। क्या तुमने नहीं सुना है, शास्त्रों में लिखा है कि ब्राह्मण के लिए कोई कानून-कायदा नहीं है—वे राजा के शासनाधीन नहीं हैं, और उनके लिए फाँसी की सजा नहीं हो सकती? यह बात बिल्कुल सच है। स्वार्थपर मूढ़ लोगों ने जिस भाव से इस तत्त्व की व्याख्या की है, उस भाव से उसको मत समझो, सच्चे वेदान्ती भाव से इस तत्त्व को समझने की चेष्टा करो। यदि ब्राह्मण कहने से ऐसे मनुष्य का बोध हो, जिसने स्वार्थपरता का एकदम नाश कर डाला है, जिसका जीवन ज्ञान और प्रेम की शक्ति को प्राप्त करने में तथा इनका विस्तार करने में ही बीतता है, जो देश ऐसे ही सच्चरित्र, नैष्ठिक तथा आध्यात्मिक ब्राह्मणों, स्त्री तथा पुरुषों से परिपूर्ण है, वह देश यदि विधिनिषेध के परे हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? ऐसे लोगों पर शासन करने के लिए सेना या पुलिस इत्यादि की क्या आवश्यकता है? ऐसे आदमियों पर शासन करने का ही क्या काम है? अथवा ऐसे लोगों को किसी शासन-तन्त्र के अधीन रहने की ही क्या जरूरत है। ये लोग साधुस्वभाव महात्मा हैं—ईश्वर के अन्तरगस्वरूप हैं, ये ही हमारे आदर्श ब्राह्मण हैं और हम शास्त्रों में देखते हैं—सत्ययुग में पृथ्वी पर केवल एक जाति थी और वह ब्राह्मण थी। महाभारत में हम देखते हैं, पुराकाल में सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमशः ज्यों ज्यों उनकी अवनति होने लगी,

बहु जाति भिन्न भिन्न जातियों में विभक्त होती गयी। फिर, जब कस्य चक्र भूमता भूमता सत्ययुग आ पहुँचेगा तब फिर स सभी ब्राह्मण ही हो जायेंगे। वर्तमान युग चक्र भविष्य में सत्ययुग के जाने की सूचना दे रहा है, इसी बात की ओर मैं तुम्हारे ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। ऊँची जातियों को नीची करने मत चाहे बाह्य विहार करने और क्षत्रिक सुक-भोग के लिए अपने अपने वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा तोड़ने से इस जातिभेद की समस्या हल नहीं होगी। इसकी मीमांसा तभी होगी जब हम लोगों में स प्रत्येक मनुष्य देवान्दी धर्म का आदेश पासन करने संवेपा जब हर कोई सच्चा धार्मिक होने की चेष्टा करेगा और प्रत्येक व्यक्ति आदर्श बन जायगा। तुम धर्म हो या अनार्य ऋषि-सन्तान हो ब्राह्मण हो या अल्पन्त नीच अन्त्यज जाति के ही क्यों न हो मातृभूमि के प्रत्येक निवासी के प्रति तुम्हारे पूर्वपुरुषों का दिया हुआ एक महान् आदेश है। तुम सबके प्रति बस एक ही आदेश है कि चुपचाप बैठे रहने से काम न होगा। निरन्तर उमस्ति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची स ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगों (पैरिया) को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी। वेदान्त का यह आदर्श केवल मारुतधर्म के लिए ही नहीं बल्कि सारे संसार के लिए उपयुक्त है। हमारे जातिभेद का लक्ष्य यही है कि बीरे धीरे सारी मानव जाति आध्यात्मिक मनुष्य के महान् आदर्श को प्राप्त करने के लिए अग्रसर हो जो वृत्ति दामा शीघ्र शान्ति उपासना और ध्यान का अभ्यास है। इस आदर्श में ईश्वर की स्थिति स्वीकृत है।

इस उद्देश्य को कार्यरूप में परिणत करने का उपाय क्या है? मैं तुम लोगों को फिर एक बार याद दिला देना चाहता हूँ कि कोसने निम्बा करने या बालियों की शोछार करने से कोई सद्गुण पुर्ण नहीं हो सकता। कपातार क्यों तक इस प्रकार की कितनी ही चेष्टाएँ की गयी हैं, पर कभी अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। केवल पारस्परिक सम्मान और प्रेम के द्वारा ही अच्छे परिणाम की प्राप्ति की जा सकती है। यह महान् विषय है और मेरी दृष्टि में जो योजनाएँ हैं उनकी व्याख्या के लिए कई मापनों की आवश्यकता होगी जिनमें मैं प्रतिबिन् उल्लेखाल अपने विचारों को व्यक्त कर सकूँ। अतएव आज मैं यहीं पर अपनी बल्लूठा का उपलहार करता हूँ। हितुओं! मैं तुम्हें केवल इतनी ही याद दिला देना चाहता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय बंध हमें सबियों से हम पार से उस पार करता आ रहा है। साथ-साथ-साथ इसमें कुछ छेद हो गये हैं साथ-साथ कुछ पुराना भी पड़ गया है। यदि यही बात है, तो हम सारे भारतवासियों को प्राणों की बाजी लगाकर इन छेदों को बन्द कर देने और इसका र्जाँर्जाँकार करने की चेष्टा करनी चाहिए। हम अपने सभी देवमाद्यों की हम सारे की भूषणा दे देनी चाहिए। वे प्राणों और

हमारी सहायता करें। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक और से चिल्लाकर लोगो को इस परिस्थिति और कर्तव्य के प्रति जागरूक करूँगा। मान लो, लोगो ने मेरी बात अनसुनी कर दी, तो भी मैं इसके लिए उन्हें न तो कोसूँगा और न भर्त्सना ही करूँगा। पुराने ज़माने में हमारी जाति ने बहुत बड़े बड़े काम किये हैं, और यदि हम उनसे भी बड़े बड़े काम न कर सकें, तो एक साथ ही शान्तिपूर्वक डूब मरने में हमें सन्तोष होगा। देशभक्त बनो—जिस जाति ने अतीत में हमारे लिए इतने बड़े बड़े काम किये हैं, उसे प्राणो से भी अधिक प्यारी समझो। हे स्वदेशवासियो ! मैं ससार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ अपने राष्ट्र की जितनी ही अधिक तुलना करता हूँ, उतना ही अधिक तुम लोगो के प्रति मेरा प्यार बढ़ता जाता है। तुम लोग शुद्ध, शान्त और सत्त्वभाव हो, और तुम्हीं लोग सदा अत्याचारो से पीडित रहते आये हो—इस मायामय जड जगत् की पहेली ही कुछ ऐसी है। जो हो, तुम इसकी परवाह मत करो। अन्त में आत्मा की ही जय अवश्य होगी। इस बीच आओ हम काम में सलग्न हो जायँ। केवल देश की निन्दा करने से काम नहीं चलने का। हमारी इस परम पवित्र मातृभूमि के काल-जर्जर कर्मजीर्ण आचारो और प्रथाओ की निन्दा मत करो। एकदम अघविश्वासपूर्ण और अतार्किक प्रथाओ के विरुद्ध भी एक शब्द मत कहो, क्योंकि उनके द्वारा भी अतीत में हमारी जाति और देश का कुछ न कुछ उपकार अवश्य हुआ है। सदा याद रखना कि हमारी सामाजिक प्रथाओ के उद्देश्य ऐसे महान् हैं, जैसे ससार के किसी और देश की प्रथाओ के नहीं हैं। मैंने ससार में प्रायः सर्वत्र जाति-पाँति का भेदभाव देखा है, पर उद्देश्य ऐसा महिमामय नहीं है। अतएव, जब जातिभेद का होना अनिवार्य है, तब उसे घन पर खडा करने की अपेक्षा पवित्रता और आत्मत्याग के ऊपर खडा करना कही अच्छा है। इसलिए निन्दा के शब्दो का उच्चारण एकदम छोड़ दो। तुम्हारा मुँह वन्द हो और हृदय खुल जाय। इस देश और सारे जगत् का उद्धार करो। तुम लोगो में से प्रत्येक को यह सोचना होगा कि सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है। वेदान्त का आलोक घर घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा में जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ। तब तुम्हारी सफलता का परिमाण जो भी हो, तुम्हें इस बात का सन्तोष होगा कि तुमने एक महान् उद्देश्य की सिद्धि में ही अपना जीवन बिताया है, कर्म किया है और प्राण उत्सर्ग किया है। जैसे भी हो, महत्-कार्य की सिद्धि होने पर मानव जाति का दोनो लोको में कल्याण होगा।

मद्रास अभिनन्दन का उत्तर

श्रीभी जी जब मद्रास लगे तो बनी मद्रास गणतन्त्र-संघों द्वारा उक्त एक
मासक पत्र लिखा गया। वह इस प्रकार का

करम बुध स्वामी जी

आज हम सब भारत-वासियों के सामने प्रचार में श्रीमते के अमर
पर भारत-समाज-निर्वाणी कार्यकर्ता की ओर में आकरा जाति-गणतन्त्र करने हैं।
आज भारतीय मता में श्री हम का मद्रास अति-कर रहे हैं उनका अर्थ का नहीं
है कि वह एक प्रकार का गौतम-अपना-कारण है, बल्कि हमने आज हम भारतीय
गण में मान आत्मिक एक जाति-प्रेम की भेंट दी है तथा आने-ई-पर की हृदय
में भाग्यवश के उच्च धार्मिक भावों का प्रचार करण के प्रतिगहन का जो
बहुत-बारी-रिखा है उनका निमित्त अपनी-हृदय-प्रकट करण है।

जब विभागो-सदर में बर्म-महासभा का आवाहन किया गया उन समय तथा
भाविष्य-हमारे देश के कुछ भागों के मन में इस बात की उल्लुखना उत्पन्न हुई
कि हमारे देश तथा प्राचीन बर्म का भी प्रतिनिधित्व बनी-योग्यतापूर्वक किया जान
तथा उनका उचित रूप में अभिव्यक्त करण में भीर-रिक्त उनके द्वारा अन्य-ममत्त
पा-चार्य देना में प्रचार हो। उन अमर-पर हमारा यह नीमास्य था कि हमारी
आगत भेंट हुई और पुनः हम-उम-बाद का अनुभव हुआ जो बहुत-विभिन्न-राष्ट्रों
के इतिहास में पाय-मिद-हुआ है अर्थात् समय आने पर एसा-स्विक-स्वर्ण-भाविभूत
हो जाना है जो समय के प्रचार में महासक-हाता है। और जब आपने उस-धर्म-
महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि रूप में जाने का बीड़ा उठाया तो हममें से अति-
काय-लोगों के मन में यह निश्चित-भाषना उत्पन्न हुई कि उस-चिरस्मरणीय-धर्म-
महासभा में हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व बड़ी-योग्यतापूर्वक-होगा-स्वीकृत-आपनी
अनेकानेक-शक्तियों को हम-लोग-बीड़ा-बहुत-जान-बुझे-थे। हिन्दू धर्म के सनातन-
सिद्धान्तों का प्रतिपादन आपने अति-स्पष्टता-सुदृढता-तथा-प्रायासिकता-से किया-
उससे केवल बर्म-महासभा पर ही एक-महत्त्वपूर्ण-प्रभाव-नहीं-पड़ा-बल्कि-उसके-
द्वारा-अन्य-पा-चार्य-देशों के स्त्री-सुखों को भी यह-अनुभव-हो-गया-कि-भारत-धर्म-
के इस-आध्यात्मिक-ओष्ठ-में-किन्तु-ही-अमर-तथा-प्रेम-का-सुख-पान-किया-
जा-सकता-है-और-उसके-फल-स्वरूप-मानव-जाति-का-इतना-सुन्दर,-पूर्ण-व्यापक

तथा शुद्ध विकास हो सकता है, जितना कि इस विश्व में पहले कभी नहीं हुआ। हम इस बात के लिए आपके विशेष कृतज्ञ हैं कि आपने ससार के महान् धर्मों के प्रतिनिधियों का ध्यान हिन्दू धर्म के उस विशेष सिद्धान्त की ओर आकर्षित किया, जिसको 'विभिन्न धर्मों में वन्वुत्व तथा सामजस्य' कहा जा सकता है। आज यह सम्भव नहीं रहा है कि कोई वास्तविक शिक्षित तथा सच्चा व्यक्ति इस बात का ही दावा करे कि सत्य तथा पवित्रता पर किसी एक विशेष स्थान, सम्प्रदाय अथवा वाद का ही स्वामित्व है या वह यह कहे कि कोई विशेष धर्म-मार्ग या दर्शन ही अन्त तक रहेगा और अन्य सब नष्ट हो जायेंगे। यहाँ पर हम आप ही के उन सुन्दर शब्दों को दुहराते हैं, जिनके द्वारा श्रीमद्भागवद्गीता का केन्द्रीय सामजस्य भाव स्पष्ट प्रकट होता है कि 'ससार के विभिन्न धर्म एक प्रकार के यात्रास्वरूप है, जहाँ तरह तरह के स्त्री-पुरुष इकट्ठे हुए हैं तथा जो भिन्न भिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में से होकर एक ही लक्ष्य की ओर जा रहे हैं।'

हम तो यह कहेंगे कि यदि आपने सिर्फ इस पुण्य एव उच्च उद्देश्य को ही, जो आपको सौंपा गया था, अपने कर्तव्य रूप में निवाहा होता, तो उतने से ही आपके हिन्दू भाई बड़ी प्रसन्नता तथा कृतज्ञतापूर्वक आपके उस अमूल्य कार्य के लिए महान् आभार मानते। परन्तु आप केवल इतना ही न करके पाश्चात्य देशों में भी गये, तथा वहाँ जाकर आपने जनता को ज्ञान तथा शान्ति का सदेश सुनाया जो भारतवर्ष के सनातन धर्म की प्राचीन शिक्षा है। वेदान्त धर्म के परम युक्तिसम्मत होने को प्रमाणित करने में आपने जो यत्न किया है उसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देते समय हमें आपके उस महान् सकल्प का उल्लेख करते हुए बड़ा हर्ष होता है, जिसके आधार पर प्राचीन हिन्दू धर्म तथा हिन्दू दर्शन के प्रचार के लिए अनेकानेक केन्द्रों वाला एक सक्रिय मिशन स्थापित होगा। आप जिन प्राचीन आचार्यों के पवित्र मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं, एव जिस महान् गुरु ने आपके जीवन और उसके उद्देश्यों को उत्प्रेरित किया है, उन्हींके योग्य अपने को सिद्ध करने के लिए आपने इस महान् कार्य में अपनी सारी शक्ति लगाने का मकल्प किया है। हम इस बात के प्रार्थी हैं कि ईश्वर हमें वह सुअवसर दे जिसमें कि हम आपके साथ इस पुण्य कार्य में सहयोग दे सकें। साथ ही हम उम सर्व-शक्तिमान दयालु परमपिता परमेश्वर से करवद्ध होकर यह भी प्रार्थना करते हैं कि वह आपको चिरजीवी करे, शक्तिशाली बनाए तथा आपके प्रयत्नों को वह गौरव तथा सफलता प्रदान करे जो सनातन मत्य के ललाट पर सदैव अंकित रहती हैं।

इसके बाद खेतड़ी के महाराजा का निम्नलिखित मानपत्र भी पढा गया

पुण्यपाद स्वामी जी

इस अवसर पर जब कि आप महास पधारे हैं, मैं यथासक्ति श्रीभ्रातिश्रीश्र आपकी सेवा में उपस्थित होकर, विरेश से आपके कुछपूर्वक वापस लौट जाने पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करता हूँ तथा पादपात्य देवों में आपके निस्वार्थ प्रयत्नों को जो सफलता प्राप्त हुई है, उस पर आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। हम जानते हैं कि ये पादपात्य देस वे ही हैं, जिनके विद्वानों का यह दावा है कि 'यदि किसी क्षेत्र में विज्ञान ने अपना अधिकार जमा किया तो फिर धर्म की मजाल भी नहीं है कि वह वहाँ अपना पैर रख सके' यद्यपि सच बात तो यह है कि विज्ञान ने स्वयं अपने को कभी भी सच्चे धर्म का विरोधी नहीं ठहराया। हमारा यह पवित्र आदीर्घ देस इस बात में विशेष भाग्यशाली है कि सिकानो की धर्म-महाधरमा में प्रतिनिधि के रूप में आने के लिए उसे आप जैसा एक महापुण्य मित्र सका और, स्वामी जी यह केवल आपकी ही विद्वता साहसिकता तथा अदम्य उत्साह का फल है कि पादपात्य देस वाले भी यह बात मन्नी भाँति जान गए कि आज भी भारत के पास व्यापारिकता की कौसी असीम निधि है। आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप आज यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध हो गई है कि संसार के अनकानेक मतमतान्तरों के विरोधा-सास का सामंजस्य वैशान्त के सार्धनीम प्रकास में हो सकता है। और संसार के कोनों की यह बात मन्नी भाँति समझ लेने तथा इस महान् सत्य को कायान्वित करने की आवश्यकता है कि विश्व के विकास में प्रकृति की सर्वैव योजना रही है 'विविधता में एकता'। साच ही विभिन्न धर्मों में समन्वय बन्धुत्व तथा पारस्परिक सहानु-मूति एवं सहायता द्वारा ही मनुष्य जाति का जीवनव्रत उचापित एवं उसका चरमोद्देश्य सिद्ध होना सम्भव है। आपके महान् तथा पवित्र उत्साहबलान में तथा आपकी श्रेष्ठ शिक्षाओं के स्फुटिदायक प्रभाव के आकार पर हम वर्तमान पीढ़ी के लोगों को इस बात का सीमाव्य प्राप्त हुआ है कि हम अपनी ही आँसों के सामने संसार के इतिहास में एक उस युग का प्राबुर्भाव देख सकेंगे जिसमें धर्मन्धता बुजा तथा संघर्ष का नाश होकर, मुझे आशा है कि शान्ति सहानुमूति तथा प्रेम का साम्राज्य होमा। और मैं अपनी प्रजा के साथ ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि उसकी कृपा आप पर तथा आपके प्रयत्नों पर शदैव बनी रहे।

जब यह मासपत्र पढ़ा जा चुका तो स्वामी जी सामंजस्य से उन मधे और एक यात्री में बढ़ गये जो उन्ही के लिए लड़ी थी। स्वामी जी ने स्वान्त के लिए कई कई अन्तर्गत ही भीड़-जन्य उदरदास की लका उदर देका प्रोग समझा का कि उस अवसर पर तो स्वामी जी केवल निम्नलिखित संक्षिप्त उत्तर ही दे सके) जाना पूर्ण उत्तर उन्हीने किसी दूसरे अवसर के लिए स्वयं रखा।

स्वामी जी का उत्तर

बन्धुओ, मनुष्य की इच्छा एक होती है परन्तु ईश्वर की दूसरी। विचार यह था कि तुम्हारे मानपत्र का पाठ तथा मेरा उत्तर ठीक अंग्रेजी शैली पर हो, परन्तु यही ईश्वरेच्छा दूसरी प्रतीत होती है—मुझे इतने बड़े जनसमूह से 'रथ' में चढ़कर गीता के ढग से बोलना पड़ रहा है। इसके लिए हम कृतज्ञ ही हैं, अच्छा ही है कि ऐसा हुआ। इससे भाषण में स्वभावतः ओज आ जायगा तथा जो कुछ मैं तुम लोगो से कहूँगा उसमें शक्ति का संचार होगा। मैं कह नहीं सकता कि मेरी आवाज़ तुम सब तक पहुँच सकेगी या नहीं, परन्तु मैं यत्न करूँगा। इसके पहले शायद खुले मैदान में व्यापक जनसमूह के सामने भाषण देने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला था।

जिस अपूर्व स्नेह तथा उत्साहपूर्वक उल्लास से मेरा कोलम्बो से लेकर मद्रास पर्यन्त स्वागत किया गया है तथा जैसा लगता है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में किये जाने की सम्भावना है, वह मेरी सर्वाधिक स्वप्नमयी रगीन आशाओं से भी अधिक है। परन्तु इससे मुझे हर्ष ही होता है। और वह इसलिए कि इसके द्वारा मुझे अपना वह कथन प्रत्येक वार सिद्ध होता दिखाई देता है जो मैं कई वार पहले भी व्यक्त कर चुका हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र का एक ध्येय उसके लिए सजीवनीस्वरूप होता है, प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारतवर्ष का विशेषत्व है धर्म। ससार के अन्य देशों में धर्म तो केवल कई बातों में से एक है, असल में वहाँ तो वह एक छोटी सी चीज़ गिना जाता है। उदाहरणार्थ, इंग्लैंड में धर्म राष्ट्रीय नीति का केवल एक अंश है, इंग्लिश चर्च शाही घराने की एक चीज़ है और इसीलिए उनकी चाहे उसमें श्रद्धा-भक्ति हो अथवा नहीं, वे उसके सहायक सदैव बने रहेंगे, क्योंकि वे तो यह समझते हैं कि वह उनका चर्च है। और प्रत्येक भद्र पुरुष तथा महिला से यही आशा की जाती है कि वह उसी चर्च का एक सदस्य बनकर रहे, और वही मानो भद्रता का चिह्न है। इसी प्रकार अन्य देशों में भी एक एक प्रबल राष्ट्रीय शक्ति होती है, यह शक्ति या तो ज़बरदस्त राजनीति के रूप में दिखाई देती है अथवा किसी बौद्धिक खोज के रूप में। इसी प्रकार कही या तो यह सैन्यवाद के रूप में दिखाई देती है अथवा वाणिज्यवाद के रूप में। कह सकते हैं कि उन्हीं क्षेत्रों में राष्ट्र का हृदय स्थित रहता है और इस प्रकार धर्म तो उस राष्ट्र की अन्य बहुत सी चीज़ों में से केवल एक ऊपरी सजावट की सी चीज़ रह जाती है।

पर भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है, इसीको राष्ट्र की रीढ़ कह लो अथवा वह नीव समझो जिसके ऊपर राष्ट्ररूपी इमारत खड़ी है। इस देश

में राजनीति पक्ष घटी तक कि बुद्धिबिनाश भी गीग गमने जाने है। भारत में धर्म को सर्वोपरि श्रद्धा जाता है। मैंने यह बात संकल्पित की थी कि भारतीय जनता साम्राज्य जानकारी की बाधा में भी अज्ञान नहीं है और यह बात सचमुच ठीक भी है। जय में कोसमों में उतरा तो मुझे यह पता लगा कि वहाँ किनी को भी इस बात का ज्ञान न था कि यूरोप में कौन राजनीतिक उन्नततुपक्ष नहीं हुई है वहाँ क्या क्या परिवर्तन हो रहे हैं मविमंडल की कौसी हार हो गयी है, यदि यदि। एक भी व्यक्ति को यह ज्ञान न था कि समाजवाद अत्यन्तवादादि धर्मों का अथवा यूरोप के राजनीतिक वातावरण में अमुक्त परिवर्तन का क्या अर्थ है। परन्तु इसी और यदि तुम सँका के ही लोगों को से सो तो वहाँ के प्रत्यक्ष स्त्री-पुरुष तथा बच्चे बच्चे को मानना था कि उनसे देश में एक भारतीय सम्पत्ति आया है जो शिक्षागो की धर्म-महासभा में भाग लेने के लिए भेजा गया था तथा जिसने वहाँ अपने धर्म में सफलता प्राप्त की। इससे निश्चय होता है कि उस देश के लोग वहाँ तक एसी सूचना से सम्बन्ध है जो उनके मतलब की है अथवा जिससे उनके वैदिक जीवन का तात्पर्य है उससे वे पक्कर अवगत हैं तथा जानने की इच्छा रखते हैं। राजनीति तथा उस प्रकार की अन्य बातें भारतीय जीवन के अत्यावश्यक विषय कभी नहीं रहे हैं। परन्तु धर्म एवं आध्यात्मिकता ही एक ऐसा मुख्य आधार रहे है जिसके ऊपर भारतीय जीवन निर्भर रहा है तथा फला-फूल है और इनका ही नहीं भविष्य में भी इसे इसीपर निर्भर रहना है।

संसार के राष्ट्रों द्वारा बड़ी समस्याओं का समाधान हो रहा है। भारत ने सर्वत्र एक का पक्ष ग्रहण किया है तथा अन्तः समस्त संसार ने वृद्धि का पक्ष। यह समस्या यह है कि भविष्य में कौन टिक सकेगा? क्या कारण है कि एक राष्ट्र जीवित रहता है तथा दूसरा नष्ट हो जाता है? जीवनसंग्राम में पूजा टिक सकती है अथवा प्रेम भोगविलास विरसवासी है अथवा त्याग भौतिकता टिक सकती है या आध्यात्मिकता। हमारी विचारवादा उसी प्रकार की है जैसी हमारे पूर्वजों की अति प्राचीन प्रागैतिहासिक काल में थी। जिस अन्धकारमय प्राचीन काल तक पौराणिक परम्पराएँ भी पहुँच नहीं सकतीं उसी समय हमारे पण्डितों पूर्वजों ने अपनी समस्या के पक्ष का ग्रहण कर लिया और संसार को चुनौती दे दी। हमारी समस्या को हल करने का रास्ता है वैराग्य त्याग निर्भीकता तथा प्रेम। यह मेरी ही सब टिकने योग्य है। जो राष्ट्र इन्द्रियों की आसक्ति का त्याग कर देता है, वही टिक सकता है। और इसका अभाव यह है कि आज हमें इतिहास इस बात की उपदेश दे रहा है कि प्रायः प्रत्येक सभ्यता में बरसती मेढकों की तरह मने राष्ट्रों का उत्थान तथा पतन हो रहा है—अंगमन शून्य से प्रारम्भ करते हैं कुछ दिनों तक सुखशांत

मचाते हैं और फिर समाप्त हो जाते हैं। परन्तु यह भारत का महान् राष्ट्र जिसको अनेकानेक ऐसे दुर्भाग्यो, खतरों तथा उथलपुथल की कठिनतम समस्याओं से उलझना पडा है, जैसा कि ससार के किसी अन्य राष्ट्र को करना नहीं पडा, आज भी कायम है, टिका हुआ है, और इसका कारण है सिर्फ वैराग्य तथा त्याग क्योंकि यह स्पष्ट ही है कि बिना त्याग के धर्म रह ही नहीं सकता। इसके विपरीत यूरोप एक दूसरी ही समस्या के सुलझाने में लगा हुआ है। उसकी समस्या यह है कि एक आदमी अधिक से अधिक कितनी सम्पत्ति इकट्ठा कर सकता है, वह कितनी शक्ति जुटा सकता है, भले ही वह ईमानदारी से हो या वैईमानी से, नेकनामी से हो या बदनामी से। क्रूर, निर्दय, हृदयहीन, प्रतिद्वन्द्विता, यही यूरोप का नियम रहा है। पर हमारा नियम रहा है वर्ण-विभाग, प्रतिस्पर्धा का नाश, प्रतिस्पर्धा के बल को रोकना, इसके अत्याचारों को रौंद डालना तथा इस रहस्यमय जीवन में मानव का पथ शुद्ध एवं सरल बना देना।

स्वामी जी का भाषण इस प्रकार हो ही रहा था कि इस अवसर पर जनता की ऐसी भीड़ उमड़ी कि उनका भाषण सुनना कठिन हो गया। इसलिए स्वामी जी ने यह कहकर ही सक्षेप में अपना भाषण समाप्त कर दिया।

मित्रो, मैं तुम्हारा जोश देखकर बहुत प्रसन्न हूँ, यह परम प्रशंसनीय है। यह मत सोचना कि मैं तुम्हारे इस भाव को देखकर नाराज़ हूँ, बल्कि मैं तो खुश हूँ, बहुत खुश हूँ—बस ऐसा ही अदम्य उत्साह चाहिए, ऐसा ही जोश हो। सिर्फ इतना ही है कि इसे चिरस्थायी रखना—इसे बनाये रखना। इस आग को बुझ मत जाने देना। हमें भारत में बहुत बड़े बड़े कार्य करने हैं। उसके लिए मुझे तुम्हारी महायत्ना की आवश्यकता है। ठीक है, ऐसा ही जोश चाहिए। अच्छा, अब इस ममा को जारी रखना असम्भव प्रतीत होता है। तुम्हारे सद्य व्यवहार तथा जोशीले स्वागत के लिए मैं तुम्हें अनेक धन्यवाद देता हूँ। किसी दूसरे मौके पर शान्ति में हम-तुम फिर कुछ और बातचीत तथा भावविनिमय करेंगे—मित्रो, अभी के लिए नमस्ते।

चूँकि तुम लोगों की भीड़ चारों ओर है और चारों ओर घूमकर व्याख्यान देना असम्भव है, इसलिए इस समय तुम लोग केवल मुझे देखकर ही सतुष्ट हो जाओ। अपना विस्तृत व्याख्यान मैं फिर किसी दूसरे अवसर पर दूँगा। तुम्हारे उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए पुन धन्यवाद।

मेरी क्रान्तिकारी योजना

[मद्रास के बिक्टोरिया हॉल में दिया गया भाषण]

उस दिन अधिक भीड़ के कारण मैं व्याख्यान समाप्त नहीं कर सका था अतएव मद्रास निवासी मेरे प्रति जो निरन्तर सख्त व्यवहार करते आये हैं उसके लिए आज मैं उन्हें अनेकानेक क्षम्यवाद देता हूँ। मैं यह नहीं जानता कि अमितन्त्र-पत्रों में मेरे लिए जो सुन्दर सुन्दर विरोध प्रयुक्त हुए हैं, उनके लिए मैं किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रकट करूँ। मैं प्रभु से इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे इन कृपापूर्ण तथा उदार प्रवृत्तियों के योग्य बना दें और इस योग्य ही कि मैं अपना सारा जीवन अपने बर्म और मातृभूमि की सेवा में अर्पण कर सकूँ प्रभु मुझे इनके योग्य बनाये।

मैं समझता हूँ कि मुझमें अनेक बोगों के होते हुए भी बौद्धा साहस है। मैं भारत से पाठ्यार्थ्य देशों में कुछ सम्बन्ध के समा था और उसे मैंने निर्भीकता से अमेरिका और इन्डो-बासियों के सामने प्रकट किया। आज का विषय आरम्भ करने के पूर्व मैं साहसपूर्वक दो सख्त तुम लोगों से कहना चाहता हूँ। कुछ दिनों से मेरे चारों ओर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हो रही हैं, जो मेरे कार्य की उन्नति में विशेष रूप से विघ्न डालने की चेष्टा कर रही हैं। यहाँ तक कि यदि सम्भव हो सके तो वे मुझे एकबारगी कुचल कर मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर दें। पर ईश्वर को धन्यवाद कि वे सारी चेष्टाएँ विफल हो गयी हैं, और इस प्रकार की चेष्टाएँ सबैव विफल ही सिद्ध होती हैं। मैं गठ तीन वर्षों से बेच रहा हूँ कुछ लोग मेरे एवं मेरे कार्यों के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त बाराएँ बनाये हुए हैं। जब तक मैं विशेष से वा मैं चुप रहा मैं एक धम्क भी नहीं बोलता। पर आज मैं अपने बेच की भूमि पर खड़ा हूँ मैं स्पष्टीकरण के रूप में कुछ सख्त कहना चाहता हूँ। इन सख्तों का क्या फल होगा अथवा वे सख्त तुम लोगों के हृदय में कितन कितन भावों का सरोक करेगी इसकी मैं परवाह नहीं करता। मुझे बहुत कम चिन्ता है क्योंकि मैं वहीं संन्यासी हूँ जिसने लगभग चार वर्ष पहले अपने बंड और कमंडल के साथ तुम्हारे नगर में प्रवेश किया था और वहीं सारी बुनियाद इस समय भी मेरे सामने पड़ी है।

बिना और अधिक भूमिका के मैं अब अपने विषय को आरम्भ करता हूँ। सबसे पहले मुझे थियोसॉफिकल सोसायटी के सम्बन्ध में कुछ कहना है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त सोसायटी से भारत का कुछ भला हुआ है और इसके लिए प्रत्येक हिन्दू उक्त सोसायटी और विशेषकर श्रीमती वेसेंट का कृतज्ञ है। यद्यपि मैं श्रीमती वेसेंट के सम्बन्ध में बहुत कम ही जानता हूँ, पर जो कुछ भी मुझे उनके बारे में मालूम है, उसके आधार पर मेरी यह धारणा है कि वे हमारी मातृभूमि की सच्ची हितचिन्तक हैं और यथाशक्ति उसकी उन्नति की चेष्टा कर रही हैं, इसलिए वे प्रत्येक सच्ची भारत-सन्तान की विशेष कृतज्ञता की अधिकारिणी हैं। प्रभु उन पर तथा उनसे सम्बन्धित सब पर आशीर्वाद की वर्षा करें! परन्तु यह एक बात है, और थियोसॉफिकल सोसायटी में सम्मिलित होना एक दूसरी बात। भक्ति, श्रद्धा और प्रेम एक बात है, और कोई मनुष्य जो कुछ कहे, उसे बिना विचारे, बिना तर्क किये, बिना उसका विश्लेषण किये निगल जाना सर्वथा दूसरी बात। एक अफवाह चारों ओर फैल रही है और वह यह कि अमेरिका और इंग्लैण्ड में जो कुछ काम मैंने किया है, उसमें थियोसॉफिस्टों ने मेरी सहायता की है। मैं तुम लोगों को स्पष्ट शब्दों में बता देना चाहता हूँ कि इसका प्रत्येक शब्द गलत है, प्रत्येक शब्द झूठ है। हम लोग इस जगत् में उदार भावों एवं मित्र मतवालों के प्रति सहानुभूति के सम्बन्ध में बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें सुना करते हैं। यह है तो बहुत अच्छी बात, पर कार्यतः हम देखते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य की सब बातों में विश्वास करता है, केवल तभी तक वह उससे सहानुभूति पाता है, पर ज्यों ही वह किसी विषय में उससे मित्र विचार रखने का साहस करता है, त्यों ही वह सहानुभूति गायब हो जाती है, वह प्रेम खत्म हो जाता है। फिर, कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका अपना अपना स्वार्थ रहता है। और यदि किसी देश में ऐसी कोई बात हो जाय, जिससे उनके स्वार्थ में कुछ घक्का लगता हो, तो उनके हृदय में इतनी ईर्ष्या और घृणा उत्पन्न हो जाती है कि वे उस समय क्या कर डालेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि हिन्दू अपने घरों को साफ करने की चेष्टा करते हों, तो इससे ईसाई मिशनरियों का क्या बिगड़ता है? यदि हिन्दू प्राणपण से अपना सुधार करने का प्रयत्न करते हों, तो इसमें ब्राह्मणसमाज और अन्यान्य सुधारसंस्थाओं का क्या जाता है? ये लोग हिन्दुओं के सुधार के विरोध में क्यों खड़े हों? ये लोग इस आन्दोलन के प्रबलतम शत्रु क्यों हों? क्यों? — यही मेरा प्रश्न है। मेरी समझ में तो उनकी घृणा और ईर्ष्या की मात्रा इतनी अधिक है कि इस विषय में उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करना भी सर्वथा निरर्थक है।

मात्र से नार बर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—साठ समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के बिना किसी ज्ञान-पहुँचान के एक घनहीन मिगहीन अज्ञात सन्ध्याधी के रूप में—जब मैंने बियोसॉफिस्ट्स सोसायटी के नेता से भेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत-भक्त हैं तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सरजन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनोगे ? मैंने उत्तर दिया “नहीं मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ ? मैं तो आपके अधिकांश सिद्धांतों पर विरोध रख नहीं करता। उन्होंने कहा “तब मुझे खेद है मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था ? जो हो मैं अपने कतिपय मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं, केवल एक ही अनुपस्थित है, स्वामीजीसु सुब्रह्मण्य अय्यर जिसके प्रति अपनी परम कृतज्ञता प्रकट करना श्रेय है। उनमें प्रतिभासाक्षी पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं वे भारत माता के सच्चे सपूत हैं। अस्तु, बर्म-महासभा के नई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास रुपये बहुत कम थे और वे खीझ ही समाप्त हो गये। इधर जाया भी जा गया और मेरे पास वे सिर्फ गरमी के कपड़े। उस बोर छीतप्रवास देव भ मैं बाहिर क्या करूँ यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भीक माँगने लगता तो परिणाम यही होता कि मैं जेक भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही शहर बचे थे। मैंने अपने महासभासी मित्रों के पास तार भेजा। वह बात बियोसॉफिस्टों को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा अब सैतान खीझ ही मर जायगा ईस्वर की कृपा से अच्छा ही हुआ। बच्चा टली ! ता क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था ? मैं वे बत्तें इस समय कहता नहीं चाहता था किन्तु येरे बेवशाही यह सब जानने के इच्छुक थे अतः कहनी पड़ी। यह तीन बपों तक इस सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। बुधवार रहता ही मेरा मूलमन रहा किन्तु आज मे बातें मुँह से निकल पड़ी। पर बात यही पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने बर्म-महासभा में नई बियोसॉफिस्टों को बोला। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की विष्टा की। उन लोगों ने जिस अज्ञान भरी दृष्टि से मेरी बोर देना वह आज भी मेरी नज़रों पर ताज रही है—मानो वह कह रही थी “यह कहाँ का धुत्र कीड़ा यहाँ बेवशाओं के बीच आ गया ? मैं पूछता हूँ क्या यहाँ मेरे लिए रास्ता बना देना था ? हाँ तो बर्म-महासभा में मेरा बहुत नाम तथा मय हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य भार आ गया। पर प्रत्येक स्वान

पर इन लोगो ने मुझे दवाने की चेष्टा की। थियोसाँफिकल सोसायटी के सदस्यों को मेरे व्याख्यान सुनने की मनाही कर दी गयी। यदि वे मेरी वक्तृता सुनने आते, तो वे सोसायटी की सहानुभूति खो देते, क्योंकि इस सोसायटी के गुप्त (एसोटेरिक) विभाग का यह नियम ही है कि जो मनुष्य उक्त विभाग का सदस्य होता है, उसे केवल कुथमी और मोरिया (वे जो भी हो) के पाम से ही शिक्षा ग्रहण करनी पडती है—अवश्य इनके दृश्य प्रतिनिधि, मिस्टर जज और मिमेज़ वेसेन्ट से। अत उक्त विभाग के सदस्य होने का अर्थ यह है कि मनुष्य अपना स्वावीन विचार बिल्कुल छोड़कर पूर्ण रूप से इन लोगो के हाथ में आत्मसमर्पण कर दे। निश्चय ही मैं ये सब बातें नहीं कर सकता था, और जो मनुष्य ऐसा करे, उसे मैं हिन्दू कह भी नहीं सकता। मेरे हृदय में स्वर्गीय मिस्टर जज के लिए बड़ी श्रद्धा है। वे गुणवान, उदार, सरल और थियोसाँफिस्टो के योग्यतम प्रतिनिधि थे। उनमें और श्रीमती वेसेन्ट में जो विरोध हुआ था, उसके सम्बन्ध में कुछ भी राय देने का मुझे अधिकार नहीं है, क्योंकि दोनों ही अपने अपने 'महात्मा' की सत्यता का दावा करते हैं। और यहाँ आश्चर्य की बात तो यह है कि दोनों एक ही 'महात्मा' का दावा करते हैं। ईश्वर जाने, सत्य क्या है—वे ही एकमात्र निर्णायक हैं। और जब दोनों पक्षों में प्रमाण की मात्रा बराबर है, तब ऐसी अवस्था में किसी भी पक्ष में अपनी राय प्रकट करने का किसी को अधिकार नहीं।

हाँ, तो इस प्रकार उन लोगो ने समस्त अमेरिका में मेरे लिए मार्ग प्रशस्त किया। पर वे यही पर नहीं रुके, वे दूसरे विरोधी पक्ष—ईसाई मिशनरियों—से जा मिले। इन ईसाई मिशनरियों ने मेरे विरुद्ध ऐसे ऐसे भयानक झूठ गढ़े, जिनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। यद्यपि मैं उस परदेश में अकेला और मित्रहीन था, तथापि उन्होंने प्रत्येक स्थान में मेरे चरित्र पर दोषारोपण किया। उन्होंने मुझे प्रत्येक मकान से बाहर निकाल देने की चेष्टा की, और जो भी मेरा मित्र बनता, उसे मेरा शत्रु बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने मुझे मूखों मार डालने की कोशिश की, और यह कहते मुझे दुःख होता है कि इस काम में मेरे एक भारतवासी भाई का भी हाथ था। वे भारत में एक सुधारक दल के नेता हैं। वे सज्जन प्रतिदिन घोषित करते हैं कि 'ईसा भारत में आये हैं।' तो क्या इसी प्रकार ईसा भारत में आयेंगे? क्या इसी प्रकार भारत का सुवार होगा? इन सज्जन को मैं अपने वचन से ही जानता था, ये मेरे परम मित्र भी थे। जब मैं उनसे मिला, तो बड़ा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैंने बहुत दिनों से अपने किसी देशभाई को नहीं देखा था। पर उन्होंने मेरे प्रति ऐसा व्यवहार किया! जिस दिन वर्म-महासभा ने मुझे सम्मानित किया, जिस दिन शिकागो में मैं लोकप्रिय हो गया, उसी दिन से

आज से चार बर्ष पहले जब मैं अमेरिका जा रहा था—घात समुद्र पार, बिना किसी परिचय-पत्र के बिना किसी ज्ञान-पहुँचान के एक अनजान मित्रहीन अज्ञात संस्थासी के रूप में—तब मैंने बियोसॉफिस्ट सोसायटी के नेता से भेंट की। स्वभावतः मैंने सोचा था कि जब ये अमेरिकावासी हैं और भारत भक्त हैं, तो सम्भवतः अमेरिका के किसी सञ्जन के नाम मुझे एक परिचय-पत्र दे देंगे। किन्तु जब मैंने उनके पास जाकर इस प्रकार के परिचय-पत्र के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने पूछा “क्या आप हमारी सोसायटी के सदस्य बनोगे? मैंने उत्तर दिया “नहीं मैं किस प्रकार आपकी सोसायटी का सदस्य हो सकता हूँ? मैं तो आपके अधिकार सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करता। उन्होंने कहा ‘तब मुझे खेद है मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? जो हो मैं अपने कतिपय मद्रासी मित्रों की सहायता से अमेरिका गया। उन मित्रों में से अनेक यहाँ पर उपस्थित हैं केवल एक ही अनुपस्थित है, श्यामाशील सुब्रह्मण्य अम्बर जिसके प्रति अपनी परम हताशता प्रकट करना खेप है। उनमें प्रतिभाशाली पुरुष की अन्तर्दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन में मेरे सच्चे मित्रों में से वे एक हैं वे भारत मत्वा क सच्चे सपूत हैं। अस्तु, बर्म-महासभा के कई मास पूर्व ही मैं अमेरिका पहुँच गया। मेरे पास अपने बहुत कम से और वे शीघ्र ही समाप्त हो गये। इतर जाड़ा भी आ गया और मेरे पास वे सिर्फ़ गरमी के कपड़े। उस घोर शीतप्रधान देश में मैं आकर क्या करूँ यह कुछ सूझता न था। यदि मैं मार्ग में भील भौकने लगता तो परिणाम यही होता कि मैं जेल भेज दिया जाता। उस समय मेरे पास केवल कुछ ही डालर बचे थे। मैंने अपने मद्रासवासी मित्रों क पास तार भेजा। यह बात बियोसॉफिस्टा को मालूम हो गयी और उनमें से एक ने लिखा अब घातान चीप ही मर जायगा ईस्टर की हफ्ता से अच्छा ही हुआ। बला टली! तो क्या यही मेरे लिए रास्ता बना देना था? मैं ये बातें इस समय कहना नहीं चाहता था किन्तु मेरे देहावासी यह सब जानने के इच्छुक थे अतः कहनी पड़ी। मत तीन बर्षों तक इन सम्बन्ध में एक शब्द भी मैंने मुँह से नहीं निकाला। चुपचाप रहना ही मेरा मूलमंत्र रहा किन्तु आज ये बात मुँह से निकल पड़ी। पर बात यही पर पूरी नहीं हो जाती। मैंने बर्म-महासभा में कई बियोसॉफिस्टा को देखा। मैंने उनसे बातचीत करने और मिलने-जुलने की अप्ना की। उन लोगों में जिस अबका भरी दृष्टि से मेरी जोर देना बहु मात्र भी मेरी गहरों पर गार रही है—मानो वह कह रही थी “यह कहाँ का दुर बँदा वहाँ देहावासी के बँद आ गया? मैं पूछता हूँ क्या यहाँ मेरे लिए रास्ता बना देना था? हाँ तो बर्म-महासभा में मेरा बहुत नाम लगा गया हो गया और तब से मेरे ऊपर अत्यधिक कार्य गार आ गया। पर प्रत्येक तबान

सबका दास बना सके। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सम्यता मेरे मन में उम मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप हैं ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इन्हींसे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी-चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाज-सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कही कही कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन सस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से धमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य विना कपड़ों के और विना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-

उमका स्वर बरक मया और छिमे छिमे मुझे हानि पहुँचाने में उन्होंने कोई कसर छत्र नहीं रखी। मैं पूछता हूँ क्या इसी तरह ईसा मारतुर्बर्ष में आये? क्या बीस वर्ष ईसा की उपासना कर उन्होंने यही धिक्का पाई है? हमारे ये बड़े बड़े सुभारकमण कहते हैं कि ईसाई धर्म और ईसाई कोम भारतवासियों को उन्नत बनायेंगे। तो क्या वह इसी प्रकार होगा? यदि उक्त सज्जन को इसका एक उदाहरण किया जाय तो निस्सन्देह स्थिति कोई आधाअधक प्रतीत नहीं होती।

एक बात और। मैंने समाज-सुधारकों के मुखपत्र में पढ़ा था कि मैं घूर हूँ और मुझसे पूछा गया था कि एक घूर को सम्पासी होने का क्या अधिकार है? तो इसपर मेरा उत्तर यह है कि मैं उन महापुरुष का बंधन हूँ जिनके चरित्रकर्मों पर प्रत्येक ब्राह्मण 'समाज धर्मराज्याय चित्रगुप्त्याय चै नमः' उच्चारण करते हुए पुष्पाब्जि प्रदान करता है और जिनके ब्रह्म विभूत अग्रिय है। यदि अपने पुत्रों पर विश्वास हो तो इन समाज-सुधारकों को जान सेना चाहिए कि मेरी जाति में पुराने जमाने में जय सेबाओं के अतिरिक्त कई सताधियों तक जाये भारतवर्ष का शासन किया जा। यदि मेरी जाति की मज्जा छोड़ दी जाय तो भारत की वर्तमान सम्यता का क्या भेद रहेगा? बड़े-बड़े ब्रह्म में ही मेरी जाति में सबसे बड़े ब्राह्मिक सबसे बड़े कवि सबसे बड़े इतिहासज्ञ सबसे बड़े पुरातत्त्ववेत्ता और सबसे बड़े धर्मप्रचारक उत्पन्न हुए हैं। मेरी ही जाति ने वर्तमान समय के सबसे बड़े वैज्ञानिकों से भारतवर्ष को विभूषित किया है। इन निन्दकों को बोझ अपने देश के इतिहास का तो ज्ञान प्राप्त करना था ब्राह्मण अग्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्गों के सम्बन्ध में ज्ञान अध्ययन तो करना था ज्ञान यह तो जानना था कि तीनों ही वर्गों को सम्पासी होने और देश के अध्ययन करने का समान अधिकार है। ये बातें मैंने यो ही प्रसंगक कह दीं। ये जो मुझे घूर कहते हैं इसकी मुझे तनिक भी पीडा नहीं। मेरे पूर्वजों ने शरीरों पर जो अत्याचार किया था इससे उसका कुछ परिपोष ही जायगा। यदि मैं पैरिया (नाच जाय्याल) होता तो मुझे और भी आत्मन्द आता क्योंकि मैं उन महापुरुष का चिप्य हूँ जिन्होंने सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए भी एक पैरिया (जाय्याल) के घर को साफ करन की अपनी इच्छा प्रकट की थी। अबस्य वह इस पर सहमत हुआ नहीं—और मरना हीना भी कैसे? एक तो ब्राह्मण फिर उस पर सम्पासी वे आकर घर साफ करके इस पर क्या वह कमी राखी हो सकता था? निदान एक दिन आधी रात को उठकर कुष्ठ रूप से उन्होंने उस पैरिया के घर में प्रवेश किया और उसका पात्राता साफ कर दिया उन्होंने अपने कान्धे सन्धे बासा से उस खान को पोंछा बासा। और यह काम वे सपाठार कई दिनों तक करते रहे, ताकि वे अपने की

सबका दास बना सके। मैं उन्हीं महापुरुष के श्री चरणों को अपने मस्तक पर धारण किये हूँ। वे ही मेरे आदर्श हैं—मैं उन्हीं आदर्श पुरुष के जीवन का अनुकरण करने की चेष्टा करूँगा। सबका सेवक बनकर ही एक हिन्दू अपने को उन्नत करने की चेष्टा करता है। उसे इसी प्रकार, न कि विदेशी प्रभाव की सहायता से, सर्वसाधारण को उन्नत करना चाहिए। बीस वर्ष की पश्चिमी सभ्यता मेरे मन में उस मनुष्य का दृष्टान्त उपस्थित कर देती है, जो विदेश में अपने मित्र को भूखा मार डालना चाहता है। क्यों?—केवल इसीलिए कि उसका मित्र लोकप्रिय हो गया है और उसके विचार में वह मित्र उसके धनोपार्जन में बाधक होता है। और असल, सनातन हिन्दू धर्म के उदाहरणस्वरूप है ये दूसरे व्यक्ति, जिनके सम्बन्ध में मैंने अभी कहा है। इससे विदित हो जायगा कि सच्चा हिन्दू धर्म किस प्रकार कार्य करता है। हमारे इन सुधारकों में से एक भी, ऐसा जीवन गठन करके दिखाये तो सही जो एक पैरिया की भी सेवा के लिए तत्पर हो। फिर तो मैं उसके चरणों के समीप बैठकर शिक्षा ग्रहण करूँ, पर हाँ, उसके पहले नहीं। लम्बी-चौड़ी बातों की अपेक्षा थोड़ा कुछ कर दिखाना लाख गुना अच्छा है।

अब मैं मद्रास की समाज-सुधारक समितियों के बारे में कुछ कहूँगा। उन्होंने मेरे साथ बड़ा सदाय व्यवहार किया है। उन्होंने मेरे लिए अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग किया है और मुझे बताया है कि मद्रास और बंगाल के समाज-सुधारकों में बड़ा अन्तर है। मैं उनसे इस बात में सहमत हूँ। मैंने अक्सर तुम लोगों से कहा है, और यह तुम लोगों में से बहुतों को याद भी होगा कि मद्रास इस समय बड़ी अच्छी अवस्था में है। बंगाल में जैसी क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है, वैसी मद्रास में नहीं है। यहाँ पर धीरे धीरे स्थायी रूप से सब विषयों में उन्नति हो रही है, यहाँ पर समाज का क्रमशः विकास हो रहा है, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं। बंगाल में कहीं कहीं कुछ कुछ पुनरुत्थान हुआ है, पर मद्रास में यह पुनरुत्थान नहीं है, यह है समाज की स्वाभाविक उन्नति। अतएव दोनों प्रदेशों के निवासियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में समाज-सुधारक जो कुछ कहते हैं, उनसे मैं सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु एक विभिन्नता और है, जिसे वे नहीं समझते। इन सस्थाओं में से कुछ मुझे डराकर अपना सदस्य बनाना चाहती हैं। ये लोग ऐसा करें, यह एक आश्चर्यजनक बात है। जो मनुष्य अपने जीवन के चौदह वर्षों तक लगातार फाकाकशी का मुकाबला करता रहा हो, जिसे यह भी न मालूम रहा हो कि दूसरे दिन का भोजन कहाँ से आयेगा, सोने के लिए स्थान कहाँ मिलेगा, वह इतनी सरलता से घमकाया नहीं जा सकता। जो मनुष्य बिना कपड़ों के और बिना यह जाने कि दूसरे समय भोजन कहाँ से मिलेगा, उस स्थान पर रहा हो, जहाँ का तापमान शून्य से भी तीस-

है कि अच्छे और बुरे का नित्य सम्बन्ध है। वे एक ही मिक्के के दो पहलू हैं। यदि तुम्हारे पाम एक है, तो दूसरा अवश्य रहेगा। जब ममुद्र में एक स्थान पर लहर उठती है तो दूसरे स्थान पर गड्ढा होना अनिवार्य है। इतना ही नहीं, सारा जीवन ही दोपयुक्त है। बिना किसी की हत्या किये एक सांस तक नहीं ली जा सकती, बिना किसी का भोजन छीने हम एक कोर भी नहीं खा सकते। यही प्रकृति का नियम है, यही दार्शनिक सिद्धान्त है।

इसलिए हमें केवल यह समझ लेना होगा कि सामाजिक दोषों के निराकरण का कार्य उतना वस्तुनिष्ठ नहीं है, जितना आत्मनिष्ठ। हम कितनी भी लम्बी चौड़ी डींग क्यों न हार्के समाज के दोषों को दूर करने का कार्य जितना स्वयं के लिए शिक्षात्मक है, उतना समाज के लिए वास्तविक नहीं। समाज के दोष दूर करने के सम्बन्ध में सबसे पहले इस तत्त्व को समझ लेना होगा, और इसे समझकर अपने मन को शान्त करना होगा, अपने खून की चढती गरमी को रोकना होगा, अपनी उत्तेजना को दूर करना होगा। ससार का इतिहास भी हमें यह बताता है कि जहाँ कहीं इस प्रकार की उत्तेजना से समाज के मुघार करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ केवल यही फल हुआ कि जिम उद्देश्य से वह किया गया था, उस उद्देश्य को ही उसने विफल कर दिया। दासत्व को नष्ट कर देने के लिए अमेरिका में जो लडाईं ठनी थी, उसकी अपेक्षा, अधिकार और स्वतंत्रता की स्थापना के लिए किसी बड़े सामाजिक आन्दोलन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। तुम सभी लोग उसे जानते हो। पर उसका फल क्या हुआ? यही कि आजकल के दास इस युद्ध के पूर्व के दासों की अपेक्षा सौगुनी अधिक बुरी दशा को पहुँच गये। इस युद्ध के पूर्व ये बेचारे नीग्रो कम से कम किसी की सम्पत्ति तो थे, और सम्पत्ति होने के नाते इनकी देखभाल की जाती थी कि ये कहीं दुर्बल और बेकाम न हो जायें। पर आज तो ये किसी की सम्पत्ति नहीं हैं, इनके जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है। मामूली बातों के लिए ये जीते जी जला दिये जाते हैं, गोली से उडा दिये जाते हैं, और इनके हत्यारों पर कोई कानून ही लागू नहीं होता। क्यों? इसीलिए कि ये 'निगर' हैं, मानो ये मनुष्य तो क्या पशु भी नहीं हैं! समाज के दोषों को प्रबल उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन द्वारा अथवा कानून के बल पर सहसा हटा देने का यही परिणाम होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है—इस प्रकार का आन्दोलन चाहे किसी मले उद्देश्य से ही क्यों न किया गया हो। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्रत्यक्ष अनुभव से ही मैंने यह सीखा है। यही कारण है कि मैं केवल दोष ही देखने-वाली इन सस्थाओं का सदस्य नहीं हो सकता। दोषारोपण अथवा निन्दा करने की भला आवश्यकता क्या? ऐसा कौन सा समाज है, जिसमें दोष न हो? सभी

समाज में तो बोध है। यह तो सभी कोई जानत है। आज का एक बच्चा भी इसे जानता है वह भी समाज पर खड़ा होकर हमारे सामने हिन्दू धर्म की मयानक बुराइयों पर एक लम्बा भाषण दे सकता है। जो भी अधिभित विदेशी पृथ्वी की प्रवृत्ति करता हुआ भारत में पहुँचता है वह रेल पर से भारत को चढ़ती नजर से देख मर भेता है और बस फिर भारत की भयानक बुराइयों पर बड़ा धारणाभित व्याख्यान देने लगता है। हम जानते है कि यहाँ बुराई है। पर बुराई तो हर कोई बिखा सकता है। मानव समाज का सच्चा हितैषी तो वह है जो इन कठिनाइयों से बाहर निकलने का उपाय बताये। यह तो इस प्रकार है कि कोई एक बाधनिक एक बूबत हुए कड़क को गर्भर भाव से उपवेश दे रहा वा तो कड़के न कहा 'पहले मुझ पानी से बाहर निकालिये फिर उपवेश दीजिये।' बस ठीक इसी तरह भारतवर्षी भी कहते है 'हम लोगों ने बहुत व्याख्यान सुन लिये बहुत सी संस्थाएँ देख ली बहुत से पत्र पढ लिये अब तो ऐसा मनुष्य चाहिए जो अपने हाथ का सहाय दे हम इन दुःखों के बाहर निकाले। कहाँ है वह मनुष्य जो हमसे वास्तविक प्रेम करता है जो हमारे प्रति सच्ची सहानुभूति रखता है? बस उसी आवसी की हमें वास्तव है। यही पर मेरा इन समाज-सुधारक आलोचना से सर्वथा मतभेद है। आज सी बर्ष हो गये ये आलोचन बस रहे है पर सिबाय निम्बा और विद्वेपपूर्ण साहित्य की रचना के इनसे और क्या लाभ हुआ है? ईश्वर करता महीं ऐसा न होता। इन्होंने पुराने समाज की कठोर आलोचना की है उस पर ठीक बोधारोपण किया है उसकी कटु निम्बा की है और अन्त में पुराने समाज ने भी इनके सामान स्वर उठाकर ईट का जबाब ईट से दिया है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक भारतीय भाषा में ऐसे साहित्य की रचना हो गयी है, जो वाति के लिए, बेध के लिए कठकस्वरूप है। क्या यही सुधार है? क्या इसी तरह बेध गौरव के पत्र पर बहसा? यह बोध है किसका?

इसके बाद एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है। भारतवर्ष में हमारा धासन सर्वत्र राजाओं द्वारा हुआ है। राजाओं ने ही हमारे सब कानून बनाये है। अब वे राजा नहीं है और इस विषय में अपसर होने के लिए हमें मार्ग विज्ञानेवाला अब कोई नहीं रहा। सरकार साहस नहीं करती। वह तो अमयत की मति देखकर ही अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करती है। अपनी समस्याओं को हल कर लेनेवाला एक कस्याभकारी और प्रबल लोकमत स्थापित करने में समय लगता है—काफी लम्बा समय लगता है और इस बीच हमें प्रतीक्षा करना होती। अतएव सामाजिक सुधार की सम्पूर्ण समस्या यह रूप लेती है कहाँ है वे लोग जो सुधार चाहते है? पहले उन्हें तैयार करो। सुधार चाहने

वाले लोग हैं कहां? कुछ थोड़े से लोग किसी बात को उचित समझते हैं और बस उसे अन्य सब पर ज़बरदस्ती लादना चाहते हैं। इन अल्पसंख्य व्यक्तियों के अत्याचार के समान दुनिया में और कोई अत्याचार नहीं। मुट्ठी भर लोग, जो सोचते हैं कि कतिपय बातें दोषपूर्ण हैं, राष्ट्र को गतिशील नहीं कर सकते। राष्ट्र में आज प्रगति क्यों नहीं है? क्यों वह जड़भावापन्न है? पहले राष्ट्र को शिक्षित करो, अपनी निजी विधायक संस्थाएँ बनाओ, फिर तो कानून आप ही आ जायेंगे। जिस शक्ति के बल से, जिसके अनुमोदन से कानून का गठन होगा, पहले उसकी सृष्टि करो। आज राजा नहीं रहे, जिस नयी शक्ति से, जिस नये दल की सम्मति से नयी व्यवस्था गठित होगी, वह लोक-शक्ति कहाँ है? पहले उसी लोक-शक्ति को संगठित करो। अतएव समाज-सुधार के लिए भी प्रथम कर्तव्य है—लोगों को शिक्षित करना। और जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं होता, तब तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।

गत शताब्दी में सुधार के लिए जो भी आन्दोलन हुए हैं, उनमें से अधिकांश केवल ऊपरी दिखावा मात्र रहे हैं। उनमें से प्रत्येक ने केवल प्रथम दो वर्गों से ही सम्बन्ध रखा है, शेष दो से नहीं। विधवा-विवाह के प्रश्न से ७० प्रतिशत भारतीय स्त्रियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। और देखो, मेरी बात पर ध्यान दो, इस प्रकार के सब आन्दोलनों का सम्बन्ध भारत के केवल उच्च वर्गों से ही रहा है, जो जनसाधारण का तिरस्कार करके स्वयं शिक्षित हुए हैं। इन लोगों ने अपने अपने घर को साफ करने एवं अंग्रेजों के सम्मुख अपने को सुन्दर दिखाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। पर यह तो सुधार नहीं कहा जा सकता। सुधार करने में हमें चीज के भीतर, उसकी जड़ तक पहुँचाना होता है। इसीको मैं आमूल सुधार कहता हूँ। आग जड़ में लगाओ और उसे क्रमशः ऊपर उठने दो एवं एक अखंड भारतीय राष्ट्र संगठित करो।

पर यह एक बड़ी भारी समस्या है, और इसका समाधान भी कोई सरल नहीं है। अतएव शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। यह समस्या तो गत कई शताब्दियों से हमारे देश के महापुरुषों को ज्ञात थी।

आजकल, विशेषतः दक्षिण में, बौद्ध धर्म और उसके अज्ञेयवाद की आलोचना करने की एक प्रथा सी चल पड़ी है। यह उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं आता कि जो विशेष दोष आजकल हमारे समाज में वर्तमान हैं, वे सब बौद्ध धर्म द्वारा ही छोड़े गये हैं। बौद्ध धर्म ने हमारे लिए यही वसीयत छोड़ी है। जिन लोगों ने बौद्ध धर्म की उन्नति और अवनति का इतिहास कभी नहीं पढ़ा, उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि बौद्ध धर्म के इतने विस्तार का कारण था—गौतम

युद्ध द्वारा प्रचारित अपूर्ण आचार-शास्त्र और उनका सोकोत्तर चरित्र। समवान् युद्धवेद के प्रति मेरी यथेष्ट श्रद्धा-अस्तित्व है। पर मेरे सधर्मों पर ध्यान वा बीड़ धर्म का विस्तार उक्त महापुरुष के मठ और अपूर्ण चरित्र के कारण चतना नहीं हुआ अथवा बीड़ों द्वारा निर्माण किये गये बड़े बड़े मन्दिरों एवं भव्य प्रतिमाओं के कारण समग्र बेस के सम्मुख किये गये झड़कीछे उत्सवों के कारण। इसी भाँति बीड़ धर्म ने उन्नति की। इन सब बड़े बड़े मन्दिरों एवं आडम्बर भर क्रियाकलापों के सामने बरों में हवन के लिए प्रतिष्ठित छोटे छोटे अग्निकुण्ड ठहर स सके। पर अन्त में इन सब क्रिया कलापों में भारी अवनति हा मयी—ऐसी अवनति कि उसका वर्णन भी योशाओं के सामने नहीं किया जा सकता। जो इस सम्बन्ध में जानने के इच्छुक हों वे इसे किञ्चित् परिमाण में दक्षिण भारत के गाला प्रकार क कलाशिल्प से युक्त बड़े बड़े मन्दिरों में देख लें और बीड़ों से उत्तराधिकार के रूप में हमने केवल यही पाया।

इसके बाद महान् सुधारक श्री शंकराचार्य और उनके अनुयायियों का अन्वेषण हुआ। उस समय से आज तक इन कई सौ वर्षों में भारतवर्ष की सर्वसाधारण जनता को बीरे बीरे उस मौलिक बिभुद्ध वेदान्त के धर्म की ओर जान की चेष्टा की गयी है। उन सुधारकों को बुराईयों का पूरा ज्ञान था पर उन्होंने समाज की निन्दा नहीं की। उन्होंने यह नहीं कहा कि 'जो कुछ तुम्हारे पास है वह सभी गलत है, उसे तुम फेंक दो। ऐसा कभी नहीं हो सकता था। आज मैंने पहा मेरे मित्र डाक्टर बैरोड कहते हैं कि ईसाई धर्म के प्रभाव से ३ वर्षों में यूनानी और रोमन धर्म के प्रभाव को उल्टा दिया। पर जिसने कभी यूरोप यूनान और रोम को देखा है वह ऐसा कभी नहीं कह सकता। रोमन और यूनानी धर्मों का प्रभाव प्रोटेस्टेण्ट देशों तक में सर्वत्र व्याप्त है। प्राचीन देवता मये बेस में वर्तमान है—केवल नाम भर बदल दिये गये हैं। बैरियाँ तो हो गयी हैं 'भिर' देवता हो गये हैं 'सन्त' (saints) और अनुष्ठानों में तथा तथा रूप कारण कर लिया है। यहाँ तक कि प्राचीन उपाधि पाटिपत्तस मैक्सिमस पूर्ववत् ही विद्यमान है। अतएव अज्ञानक परिवर्तन नहीं हो सकते। शंकराचार्य और रामानुज इस ज्ञानते थे। इसलिये उस समय प्रचलित धर्म को बीरे बीरे उच्चतम आदर्श तक पहुँचा देना ही उनके लिए एक उपाय शेष था। यदि वे दूसरी प्रभाषी का सहारा लेते तो वे पाकड़ी सिद्ध होती क्योंकि उनके धर्म का प्रधान मठ ही है कम-विकासवाद। उनके धर्म

१ रोम में पुरोहित बिबेकानन्द के प्रबलाम्पायक इसी नाम से पुकारे जाते हैं। इसका अर्थ है—प्रबल पुरोहित। जमी पोप इसी नाम से सम्बोधित किये जाते हैं।

का मूलतत्त्व यही है कि इन नव नाना प्रकार की अवस्थाओं में से होकर आत्मा उच्चतम लक्ष्य पर पहुँचती है। अतः ये सभी अवस्थाएँ आवश्यक और हमारी सहायक हैं। भला कौन इनकी निन्दा करने का साहम कर सकता है ?

आजकल मूर्ति-पूजा को गलत बताने की प्रयासों चल पड़ी हैं, और सब लोग बिना किसी आपत्ति के उसमें विश्वास भी करने लग गये हैं। मैंने भी एक समय ऐसा ही सोचा था और उसके दडस्वरूप मुझे ऐसे व्यक्ति के चरण कमलों में बैठ कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ी, जिन्होंने सब कुछ मूर्ति-पूजा के ही द्वारा प्राप्त किया था, मेरा अभिप्राय श्री रामकृष्ण परमहंस में है। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा श्री रामकृष्ण जैसे व्यक्ति उत्पन्न ही सकते हैं, तब तुम क्या पसन्द करोगे—सुधारकों का धर्म, या मूर्ति-पूजा ? मैं इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। यदि मूर्ति-पूजा के द्वारा इस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस उत्पन्न हो सकते हों, तो और हजारों मूर्तियों की पूजा करो। प्रभु तुम्हें सिद्धि दे। जिस किसी भी उपाय से हो सके, इस प्रकार के महापुरुषों की सृष्टि करो। और इतने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा की जाती है। क्यों ? यह कोई नहीं जानता। शायद इसलिए कि हजारों वर्ष पहले किसी यहूदी ने इसकी निन्दा की थी। अर्थात् उसने अपनी मूर्ति को छोड़कर और सब की मूर्तियों की निन्दा की थी। उस यहूदी ने कहा था, यदि ईश्वर का भाव किसी विशेष प्रतीक या सुन्दर प्रतिमा द्वारा प्रकट किया जाय, तो यह भयानक दोष है, एक जघन्य पाप है, परन्तु यदि उसका अकन एक सन्दूक के रूप में किया जाय, जिसके दोनों किनारों पर दो देवदूत बैठे हैं और ऊपर बादल का एक टुकड़ा लटक रहा है, तो वह बहुत ही पवित्र, पवित्रतम होगा। यदि ईश्वर पेड़की का रूप धारण करके आये, तो वह महापवित्र होगा, पर यदि वह गाय का रूप लेकर आये, तो यह मूर्ति-पूजा का कुसंस्कार होगा। —उसकी निन्दा करो। दुनिया का वम यही भाव है। इसीलिए कवि ने कहा है, 'हम मर्त्य जीव कितने निर्बोध हैं।' परस्पर एक दूसरे के दृष्टिकोण से देखना और विचार करना कितना कठिन है। और यही मनुष्य समाज की उन्नति में घोर विघ्नस्वरूप है। यही है ईर्ष्या, घृणा और लड़ाई-झगड़े की जड़। अरे बालको, अपरिपक्व बुद्धिवाले नासमझ लड़को, तुम लोग कभी मद्रास के बाहर तो गये नहीं, और खड़े होकर सहस्रो प्राचीन संस्कारों से नियन्त्रित तीस करोड़ मनुष्यों पर कानून चलाना चाहते हो। क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? दूर हो जाओ धर्मनिन्दा के इस कुकर्म से, और पहले खुद अपना सबक सीखो। श्रद्धाहीन बालको, तुम कागज़ पर कुछ पक्तियाँ घसीट सकने में और किसी मूर्ख को पकड़कर उन्हें छपवा लेने में अपने को समर्थ समझकर सोचते हो कि तुम जगत् के शिक्षक हो, तुम्हारा मत ही भारत का जनमत है। तो

क्या ऐसी बात है? इसीलिए मैं महास के समाज-सुधारकों से कहना चाहता हूँ कि मुझमें उनके प्रति बड़ी मर्यादा और प्रेम है। उनके विद्यालय रूप उनकी स्वदेश प्रीति पीड़ित और निर्धन के प्रति उनके प्रेम के कारण ही मैं उनसे प्यार करता हूँ। किन्तु माई जैसे माई से स्नेह करता है और साथ ही उसके दोष भी बिसा देता है ठीक इसी तरह मैं उनसे कहता हूँ कि उनकी कार्यप्रणाली ठीक नहीं है। यह प्रणाली भारत में छठी बर्ष तक आबमायी मयी पर बहुकामयाब न हो सकी। अब हमें किसी नयी प्रणाली का सहारा लेना होगा।

क्या भारतवर्ष में कमी सुधारकों का अभाव था? क्या तुमने भारत का इतिहास पढ़ा है? रामानुज संकर, मानक चैतन्य कबीर और बाबू कौन थे? ये सब बड़े बड़े धर्माचार्य जो भारत-मयन में अत्यन्त उज्ज्वल नमनों की तरह एक के बाद एक उदय हुए और फिर अस्त हो गये कौन थे? क्या रामानुज के रूप में नीच जातियों के लिए प्रेम नहीं था? क्या उन्होंने अपने सारे जीवन भर पैरिया (बाष्पाक) तक को अपने सम्प्रदाय में ले लेने का प्रयत्न नहीं किया? क्या उन्होंने अपने सम्प्रदाय में मुसलमान तक को मिला लेने की चेष्टा नहीं की? क्या मानक ने मुसलमान और हिन्दू दोनों को समान मान से भिक्षा देकर समाज में एक नयी बंधनता लाने का प्रयत्न नहीं किया? इन सबने प्रयत्न किया और उनका काम आज भी जारी है। भेद केवल इतना है कि वे आज के समाज-सुधारकों की तरह बन्सी नहीं थे वे इनके समान अपने मूँह से कमी अधिष्ठाप नहीं उमरते थे। उनके मूँह से केवल आशीर्वाद ही निकलता था। उन्होंने कमी भर्त्सना नहीं की। उन्होंने जोयों से कहा कि जाति को सतत उन्नतिशील होना चाहिए। उन्होंने बर्तित में बुद्धि ठाककर कहा 'हिन्दुओं तुमने अभी तक जो किया अच्छा ही किया पर माइयो तुम्हें अब इससे भी अच्छा करना होगा। उन्होंने यह नहीं कहा 'पहले तुम बुद्धि से और अब तुम्हें अच्छा होना होगा। उन्होंने यही कहा 'पहले तुम अच्छे से अब और भी अच्छे बनो। इससे जमीन-वासमान का फर्क पैदा हो जाता है। हम जोयों को अपनी प्रकृति के अनुसार उन्नति करनी होगी। बिदेसी सत्त्वामो ने बलपूर्वक जिस कृत्रिम प्रणाली को हममें प्रचलित करने की चेष्टा की है उसके अनुसार काम करना बुरा है। वह असम्भव है। जब हो प्रभु! हम लोगों को ठोड़-मरोड़कर नये सिरे से बूसरे राष्ट्रों के ढाँचे में गड़ना असम्भव है। मैं बूसरी ज़मीनों की सामाजिक प्रणालियों की निन्दा नहीं करता। वे उनके लिए अच्छी हैं पर हमारे लिए नहीं। उनके लिए जो कुछ अमृत है हमारे लिए बही विष हो सकता है। पहले यही बात सीखनी होगी। अन्य प्रकार के विज्ञान अन्य प्रकार के परम्परागत संस्कार और अन्य प्रकार के आचार्यों से उनकी वर्तमान

सामाजिक प्रथा गठित हुई है। और हम लोगो के पीछे हैं हमारे अपने परम्परागत सस्कार और हजारो वर्षों के कर्म। अतएव हमें स्वभावतः अपने सस्कारो के अनुसार ही चलना पड़ेगा, और यह हमें करना ही होगा।

तब फिर मेरी योजना क्या है? मेरी योजना है—प्राचीन महान् आचार्यों के उपदेशो का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्य का अध्ययन किया है, और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया, उनके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला। वे सब महान् समाज-संस्थापक थे। बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति के वे अद्भुत आधार थे। उन्होंने सबसे अद्भुत कार्य किया—समाज में बल, पवित्रता और जीवन-शक्ति संचारित की। हमें भी सबसे अद्भुत कार्य करना है। आज अवस्था कुछ बदल गयी है, इसलिए कार्यप्रणाली में कुछ थोड़ा सा परिवर्तन करना होगा, वस इतना ही इससे अधिक कुछ नहीं। मैं देखता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति की भाँति प्रत्येक राष्ट्र का भी एक विशेष जीवनोद्देश्य है। वहीं उसके जीवन का केन्द्र है, उसके जीवन का प्रधान स्वर है, जिसके साथ अन्य सब स्वर मिलकर समरसता उत्पन्न करते हैं। किसी देश में, जैसे इंग्लैंड में, राजनीतिक सत्ता ही उसकी जीवन-शक्ति है। कलाकौशल की उन्नति करना किसी दूसरे राष्ट्र का प्रधान लक्ष्य है। ऐसे ही और दूसरे देशों का भी समझो। किन्तु भारतवर्ष में धार्मिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र है और वहीं राष्ट्रीय जीवनरूपी सर्गात का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन-शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे—शताब्दियों से जिस दिशा की ओर उसकी विशेष गति हुई है, उससे मुड़ जाने का प्रयत्न करे—और यदि वह अपने इस कार्य में सफल हो जाय, तो वह राष्ट्र मृत हो जाता है। अतएव यदि तुम धर्म को फेंककर राजनीति, समाज-नीति अथवा अन्य किसी दूसरी नीति को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाने में सफल हो जाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम्हारा अस्तित्व तक न रह जायगा। यदि तुम इससे बचना चाहो, तो अपनी जीवन-शक्तिरूपी धर्म के भीतर से ही तुम्हें अपने सारे कार्य करने होंगे—अपनी प्रत्येक क्रिया का केन्द्र इस धर्म को ही बनाना होगा। तुम्हारे स्नायुओं का प्रत्येक स्पन्दन तुम्हारे इस धर्मरूपी मेरुदंड के भीतर से होकर गुजरे।

मैंने देखा है कि 'सामाजिक जीवन पर धर्म का क्रैमा प्रभाव पड़ेगा', यह बिना दिखाये मैं अमेरिकावासियों में धर्म का प्रचार नहीं कर सकता था। इंग्लैंड में भी, बिना यह बताया कि 'वेदान्त के द्वारा कौन कौन से आश्चर्यजनक राजनीतिक परिवर्तन हो सकेंगे,' मैं धर्म-प्रचार नहीं कर सका। इसी भाँति भारत में सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह दिखा दिया जाय कि उस नयी प्रथा से

आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन सी विधायक सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें विज्ञान होना कि उसका द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा—आध्यात्मिक उन्नति—की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी। इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति को अपना अपना माथ चुन लेना पड़ता है उसी भाँति प्रत्येक राष्ट्र को भी। हमने मुझ पूर्व अपना पथ निर्धारित कर लिया था और अब हमें उसीसे चले रहना चाहिए—उसीके अनुसार चलना चाहिए। फिर, हमारा यह चयन भी तो उठना कोई बुरा नहीं। बड़ के बड़े बौद्ध का मनुष्य के बड़े ईश्वर का चिन्तन करना क्या संसार में इतनी बुरी चीज है? परलोक में पुनः आस्था इस लोक के प्रति ठीक विरक्ति प्रकृत त्याग-सक्ति एवं ईश्वर और यमिनासी आत्मा में बूढ़ विश्वास तुम लोगों में सतत विद्यमान है। क्या तुम इसे छोड़ सकते हो? नहीं तुम इसे कभी नहीं छोड़ सकते। तुम कुछ दिन भौतिकवादी होकर और भौतिकवाद की चर्चा करके मजे ही भुझमें विश्वास जमाने की चेष्टा करो पर मैं आमतौर हूँ कि तुम क्या हो। तुमको थोड़ा बर्म अच्छी तरह समझा देने भर की बेर है कि तुम परम वास्तविक हो जाओगे। छोटी अपना स्वभाव मसा कैसे बदल सकते हो?

मरा साह्य में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले बर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्रभावित करने के पहले आवश्यक है कि उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ का बी जाय। सर्वप्रथम हमारे उपनिषदों पुराणों और अन्य सब शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं उन्हें इन सब ग्रन्थों के पत्रों से बाहर निकालकर, मठों की पहारखीदारियाँ भेदकर, ननों की शून्यता से दूर लाकर, कुछ सम्प्रदाय-विशेषों के हाथों से छीनकर बेस में सर्वत्र बिखेर देना होगा ताकि ये सत्य बाबातरु के समान सारे देश की चारों ओर से लपेटे—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जायें—हिमाचल से इन्द्राकुमारी और सिन्धु से ब्रह्मपुत्र तक सर्वत्र फैल सकें। सबसे पहले हमें यही करना होगा। सभी को इन सब शास्त्रों में निहित उपदेश सुनाने होयें क्योंकि उपनिषद् में कहा है 'पहले इसे सुनना होगा फिर मनन करना होगा और उसके बाद तिविष्यासन। पहले लोग इन शास्त्रों को सुनें। और जो भी व्यक्ति अपने शास्त्र के इन महान् सत्यों को बूझने को सुनाने में

१ अस्मा वा मरे इष्यन्म्यो मोतम्यो मत्तम्यो
 तिविष्यासितम्यो मनेव्यात्मनि धम्बरे बुद्धे मुने
 मते विज्ञात इव सर्वं विदितम् ॥ बृहदारण्यक ४.५.१६॥

सहायता पहुँचायेगा, वह आज एक ऐसा कर्म करेगा, जिसके समान कोई दूसरा कर्म ही नहीं। महर्षि व्यास ने कहा है, “इम कलियुग मे मनुष्यो के लिए एक ही कर्म शेष रह गया है। आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओ से कोई फल नहीं होता। इम ममय दान ही एकमात्र कर्म है।”^१ और दानो मे धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान का दान ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्नदान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो। इस निर्घन, अत्यन्त निर्घन देश मे लोग कितना दान करते हैं, इसकी ओर जरा नजर डालो। यहाँ के लोग इतने अतिथिसेवी हैं कि एक व्यक्ति बिना एक कीर्डी अपने पास रखे उत्तर मे दक्षिण तक यात्रा करके आ सकता है। और हर स्थान मे उसका ऐसा सत्कार होगा, मानो वह परम मित्र हो। यदि यहाँ कहीं पर रोटी का एक टुकड़ा भी है, तो कोई भिक्षुक भूख से नहीं मर सकता।

इस दानशील देश मे हमे पहले प्रकार के दान के लिए अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के लिए साहसपूर्वक अग्रसर होना होगा। और यह ज्ञान-विस्तार भारतवर्ष की सीमा मे ही आवद्ध नहीं रहेगा, इसका विस्तार तो सारे ससार भर मे करना होगा। और अभी तक यही होता भी रहा है। जो लोग कहते है कि भारत के विचार कभी भारत मे बाहर नहीं गये, जो सोचते हैं कि मैं ही पहला सन्यासी हूँ जो भारत के बाहर धर्मप्रचार करने गये, वे अपनी जाति के इतिहास को नहीं जानते। यह कई बार घटित हो चुका है। जब कभी भी ससार को इसकी आवश्यकता हुई, उसी समय इस निरन्तर बहनेवाले आध्यात्मिक ज्ञान-स्रोत ने ससार को प्लावित कर दिया। राजनीति सम्बन्धी विद्या का विस्तार रणभेरियो और सुसज्जित सेनाओ के बल पर किया जा सकता है। लौकिक एव समाज सम्बन्धी विद्या का विस्तार आग और तलवारो के बल पर हो सकता है। पर आध्यात्मिक विद्या का विस्तार तो शान्ति द्वारा ही सम्भव है। जिस प्रकार चक्षु और कर्णगोचर न होता हुआ भी मृदु ओस-विन्दु गुलाब की कलियों को विकसित कर देता है, वस वैसे ही आध्यात्मिक ज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध मे भी समझो। यही एक दान है, जो भारत दुनिया को बार बार देता आया है। जब कभी भी कोई दिग्विजयी जाति उठी, जिसने ससार के विभिन्न देशो को एक साथ ला दिया और आपस मे यातायात तथा संचार की सुविधा कर दी, त्यो ही भारत उठा और

१ इसी आशय की व्यवस्था निम्नलिखित श्लोक मे भी है
तप पर कृते युगे त्रेताया ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेक कर्त्तुं युगे ॥ मनुसंहिता १।८६॥

उसने संसार की समग्र उत्पत्ति में अपना आध्यात्मिक ज्ञान का भाग भी प्रदान कर दिया। बुद्धदेव के जन्म के बहुत पहले में ही ऐसा होता आया है और इसके बिना आज भी जिन एशिया माइनर और मध्य ईशिय मनुष्य के मौजूद हैं। अब जब महाबलघानी दिग्भ्रमयी धुनायी ने उस समय के ज्ञान संसार के सब भागों को एक साथ ला दिया था तब भी यही बात बटी है — भारत के आध्यात्मिक ज्ञान की बाढ़ ने बाहर उमड़कर संसार को प्रभावित कर लिया था। आज पारब्राह्म वेदवासी जिस सम्यता का नर्ब करते हैं वह उसी प्लावन का अचरोप भाग है। आज फिर से वही मुयोग उपस्थित हुआ है। इन्हीं की शक्ति ने सारे संसार की जातियों को एकता के मूत्र में इस प्रकार बाँध दिया है, वैसे पहले कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजों के यातायात और प्रचार के साधन संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैले हुए हैं। आज अंग्रेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व रूप से एकता की ओर में बँध गया है। इस समय संसार के मिस्र मिस्र स्थानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं वैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। अतएव इस नुयोग में भारत प्रीएन उठकर ज्ञान अथवा अज्ञान रूप से जगत् को अपने आध्यात्मिक ज्ञान का दाग दे रहा है। अब इन सब भागों के सहारे भारत की यह भाव राशि समस्त संसार में फैलती रहेगी। मैं जो अमेरिका गया वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ बल्कि भारत के साम्य-विवादा मयवान् ने मुझे अमेरिका भेजा और वे ही इसी भाँति सैकड़ों आश्रमियों को संसार के अन्ध छब देशों में भेजेंगे। इसे दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती। अतएव तुमको भारत के बाहर भी जर्म प्रचार के किए जाना होगा। इसका प्रचार जगत् की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही जर्म प्रचार आवश्यक है। जर्म-प्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्याय्य आवश्यक विद्यार्थ साथ ही ला जायेंगी। पर यदि तुम लौकिक विद्या बिना जर्म के प्रह्व करना चाहो तो मैं तुमसे साफ़ कहे देता हूँ कि भारत में तुम्हारा ऐसा प्रयास व्यर्थ सिद्ध होगा वह लोगों के हृदयों में स्थान प्राप्त न कर सकेगा। यहाँ तक कि इतना बड़ा बीज जर्म की कुछ अघों में इसी कारणवस यहाँ अपना प्रभाव न बना सके।

इसलिए मेरे मित्रो मेरा विचार है कि मैं भारत में कुछ ऐसे शिक्षात्म्य स्थापित करूँ जहाँ हमारे मनुष्यक अपने सास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने जर्म का प्रचार कर सकें। मनुष्य केवल मनुष्य भर चाहिए। बाकी सब कुछ अपने आप ही जायगा। आवश्यकता है बीरवान ऐश्वरी यज्ञ-सम्पन्न और बुद्धिवासी निष्कण मनुष्यों की। ऐसे ही मिस्र जायें तो संसार का कायाकल्प ही जाय। इच्छासक्ति संसार में सबसे अधिक बलवती है। उसके

सामने दुनिया की कोई चीज नहीं ठहर सकती, क्योंकि वह भगवान्—साक्षात् भगवान् से आती है। विशुद्ध और दृढ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके समक्ष अपने धर्म के महान् सत्यो का प्रचार करो, ससार इनकी प्रतीक्षा कर रहा है। सैकड़ों वर्षों से लोगो को मनुष्य की हीनावस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। ससार भर में सर्वत्र सर्वसाधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। गताब्दियों से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन्हें कभी आत्मतत्त्व के विषय में सुनने का मौका नहीं दिया गया। अब उनको आत्मतत्त्व सुनने दो, यह जान लेने दो कि उनमें से नीच से नीच में भी आत्मा विद्यमान है—वह आत्मा, जो न कभी मरती है, न जन्म लेती है, जिसे न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, जो अमर है, अनादि और अनन्त है, जो शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है।

उन्हे अपने में विश्वास करने दो। आखिर अग्रेजों में और तुममें किसलिए इतना अन्तर है? उन्हे अपने धर्म अपने कर्तव्य आदि के सम्बन्ध में कहने दो। पर मुझे अन्तर मालूम हो गया है। अन्तर यही है कि अग्रेज अपने ऊपर विश्वास करता है, और तुम नहीं। जब वह सोचता है कि मैं अग्रेज हूँ, तो वह उस विश्वास के बल पर जो चाहता है वही कर सकता है। इस विश्वास के आधार पर उसके अन्दर छिपा हुआ ईश्वर भाव जाग उठता है। और तब वह उसकी जो भी इच्छा होती है, वही कर सकने में समर्थ होता है। इसके विपरीत, लोग तुमसे कहते आये हैं, तुम्हें सिखाते आये हैं कि तुम कुछ भी नहीं हो, तुम कुछ भी नहीं कर सकते, और फलस्वरूप तुम आज इस प्रकार अकर्मण्य हो गये हो। अतएव आज हम जो चाहते हैं, वह है—बल, अपने में अटूट विश्वास।

हम लोग शक्तिहीन हो गये हैं। इसीलिए गुप्तविद्या और रहस्यविद्या—इन रोमांचक वस्तुओं ने धीरे धीरे हममें घर कर लिया है। भले ही उनमें अनेक सत्य हों, पर उन्होंने लगभग हमें नष्ट कर डाला है। अपने स्नायु बलवान बनाओ। आज हमें जिसकी आवश्यकता है, वह है—लोहे के पुट्टे और फौलाद के स्नायु। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरो पर खड़े हो जाओ और 'मर्द' बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है, जिससे

१ नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति भास्वत ॥ गीता २।२३॥

हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है जिससे हम मनुष्य हो सकें। हमें ऐसी सर्वांगसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके। और यह रही सत्य की कसौटी—जो भी तुमको धारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दुर्बल बनाये उसे बाहर की माँठि त्याग दो उसमें जीवन्-मक्ति नहीं है, वह कमी सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता है, वह ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो यह है जो धर्म के जो हृदय के अन्वकार को दूर कर दे जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। मझे ही इन रहस्य-विद्याओं में कुछ सत्य हो पर य तो साधारणतया मनुष्य को दुर्बल ही बनाती हैं। मेरा विश्वास करो मेरा यह जीवन मर का मनुष्य है। मैं भारत के लगभग सभी स्थानों में भूम भुका हूँ सभी मुफ्तों का अन्वेषण कर चुका हूँ और हिमाचल पर भी रह चुका हूँ। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ जो जीवन मर नहीं रहे हैं। और जन्म में मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन सब रहस्य-विद्याओं से मनुष्य दुर्बल ही होता है। मैं अपने देश से प्रेम करता हूँ मैं तुम्हें और अधिक पतिव्रत और प्यासा कमबोर नहीं देख सकता। मरण तुम्हारे कल्याण के लिए, सत्य के लिए और जिससे मेरी प्राप्ति और अधिक अवगत न हो पाय इस लिए मैं जोर से चिल्लाकर कहने के लिए बाध्य हो रहा हूँ—बस ठहरो। अवगति की ओर और न बढ़ो—यहाँ तक मये हो बस उतना ही काफी हो चुका। अब वीर्य धान होने का प्रयत्न करो कमबोर बनानेवासी इन सब रहस्यविद्याओं को ठीका जसि दे दो और अपने उपनिषदों का—उस बलप्रद आत्मोक्त्यव दिव्य दर्शन शास्त्र का—आभय ग्रहण करो। सत्य जितना ही महान् होता है उतना ही सहज बोध गम्य होता है—स्वयं अपने अस्तित्व के समान सहज। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमा-पित्य करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं होती बस बीता ही। उपनिषद् के साथ तुम्हारे सामने है। इनका अवलम्बन करो इनकी उपलब्धि कर इन्हें कार्य में परिणत करो। बस देखोमे भारत का उद्धार निश्चित है।

एक बात और बहकर मैं समाप्त करूँगा। जीव वेदात्मिक की चर्चा करते हैं। मैं भी वेदात्मिक में विश्वास करता हूँ और वेदात्मिक के सम्बन्ध में मेरा भी एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय की अनुभव-शक्ति। बुद्धि या विचार-शक्ति में क्या है? वह तो कुछ दूर जाती है भी बन नहीं रह जाती है। पर हृदय तो प्रेरणा-स्रोत है? प्रेम भयम्बर द्वारों को भी उद्घाटित कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब गन्तव्यो का द्वार है। भाग्य ये मेरे माँगी गुणारको मेरे माँगी वेदात्मिक, तुम अनुभव करो। क्या तुम अनुभव करत हो? क्या तुम हृदय से अनुभव करने ही सि देव और श्रियाँ भी करोड़ा नन्ताने आज पशुमुष्य ही मयी है? क्या तुम हृदय

से अनुभव करते हो कि लाखों आदमी आज भूखो मर रहे हैं, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखो मरते आये हैं ? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है ? क्या तुम यह सब सोचकर बेचैन हो जाते हो ? क्या इस भावना ने तुमको निद्राहीन कर दिया है ? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियों में बहती है ? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गयी है ? क्या उसने तुम्हें पागल सा बना दिया है ? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है ? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो जाने से तुम अपने नाम-यश, पुत्र-कलत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध बिसर गये हो ? क्या तुमने ऐसा किया है ? यदि 'हाँ', तो जानो कि तुमने देशभक्त होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है—हाँ, केवल पहली ही सीढ़ी पर ! तुमसे अधिकारी जानते हैं, मैं अमेरिका धर्म-महासभा के लिए नहीं गया, वरन् इस भावना का दैत्य मुझमें, मेरी आत्मा में था। मैं पूरे बारह वर्ष सारे देश भर भ्रमण करता रहा, पर अपने देशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई रास्ता ही नहीं मिला। यही कारण था कि मैं अमेरिका गया। तुमसे अधिकारी, जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धर्म-महासभा की कौन परवाह करता था ? यहाँ मेरे देशवासी, मेरे ही रक्त-मासमय देहस्वरूप मेरे देशवासी, दिन पर दिन डूबते जा रहे थे। उनकी कौन खबर ले ? वस यही मेरा पहला सोपान था।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है ? क्या लोगों की भर्त्सना न कर उनकी सहायता का कोई उपाय सोचा है ? क्या स्वदेशवासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है ? क्या उनके दुःखों को कम करने के लिए दो सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है ? यही दूसरी बात है।

किन्तु इतने ही से पूरा न होगा। क्या तुम पर्वताकार विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो ? यदि सारी दुनिया हाथ में नगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाय, तो भी क्या तुम जिसे मृत्यु समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे पुत्र-कलत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जायें, भाग्य-लक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाय, नाम की कीर्ति भी तुम्हारा नाथ छोड़ दे, तो भी क्या तुम उम सत्य में मलग्न रहोगे ? फिर भी क्या तुम उमके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे ? जैसा कि महान् राजा भर्तृ-

हरि ने कहा है 'चाहे नीतिनिपुण लोभ निम्बा करें या प्रसंसा स्मयी माय या जहाँ उसकी इच्छा हो जली जाय मृत्यु जाय हो या सौ वर्ष बाद भीर पुत्र्य तो यह है जो म्याम के पक्ष से तनिक भी विचलित नहीं होता।' क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? बस यही तीसरी बात है। यदि तुममें ये तीन बातें हैं तो तुममें से प्रत्येक अमृत कार्य कर सकता है। तब फिर तुम्हें समाचारपत्रों में छपवाने की अबका व्याख्यान देते हुए फिरते रहन की आवश्यकता न होगी स्वयं तुम्हारा मुख ही पीप हो उठेगा? फिर तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में रहो तो भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को भेदकर बाहर निकल आवेगे और सैनिकों वर्य तक सारे संसार में प्रतिष्पन्नित होते रहेंगे। और ही सकता है, तब तक ऐसे ही रहें जब तक उन्हें किसी मस्तिष्क का आचार न मिस जाय और वे उसीके माध्यम से कार्यशील हो उठें। विचार निष्कपटता और पवित्र उद्देश्य में ऐसी ही खजरबस्त उचित है।

मुझे डर है कि तुम्हें बेर हो रही है, पर एक बात और। ऐ मेरे स्वदलवासियो मेरे मित्रो मेरे बन्धो राष्ट्रीय जीवनरूपी यह जहाज सार्जों लोभों को जीवनरूपी समुद्र के पार करता रहा है। कई घटावियों से इसका यह कार्य बस रहा है और इसकी सहायता से ला बो आत्माएँ इस घायर के उस पार अमृतमाम में पहुँची है। पर आज घामद तुम्हारे ही बोध से इस पोत में कुछ सटबी हो गई है, इसमें एक बो सेव हो पडे हैं तो क्या तुम इसे कोसोगे? संसार में जिसने तुम्हारा सबसे अधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध बड़े होकर उस पर माछी बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? यदि हमारे इस समाज में इस राष्ट्रीय जीवनरूपी जहाज में सेव है, तो हम तो उसकी सन्तान हैं। आजो बलें उन सेवों को बन्द कर दें — उसके किए हँसते हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें। और यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपना मेजा निकालकर उसकी डाट बनायेंगे और जहाज के उन सेवों में मर देंगे। पर उसकी कमी भरना न करें? इस समाज के विरुद्ध एक कड़ा सव्य तक न निकालो। उसकी अतीत की वीरव-परिभा के लिए मेरा उस पर प्रेम है। मैं तुम सबको प्यार करता हूँ क्योंकि तुम वेवताओं की सन्तान ही महिमाशाली पूर्वजों के वंशज हो। तब सदा मैं तुम्हें कैसे कोस सकता हूँ? यह असम्भव है। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ऐ मेरे बन्धो मैं तुम्हारे पास आया हूँ अपनी सारी योजनाएँ तुम्हारे सामने रखने के लिए। यदि तुम उन्हें सुनो तो मैं तुम्हारे साथ काम करने को तैयार हूँ। पर यदि तुम उनको

१ निम्बस्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुयन्तु अस्मिन् समाविष्टानु पञ्चस्तु वा पक्षेभ्यम् ।
अतीव वा मरुतमस्तु पुत्रान्तरे वा स्याम्यात् पक्षः प्रविशकन्ति परं न वीर्यः ॥

न मुत्तो, और मुझे ठुकराकर अपने देश के बाहर भी निकाल दो, तो भी मैं तुम्हारे पास वापस आकर यही कहूँगा, “भाई, हम सब डूब रहे हैं।” मैं आज तुम्हारे बीच बैठने आया हूँ। और यदि हमें डूबना है, तो आओ, हम सब साथ ही डूबें, पर एक भी कटु शब्द हमारे ओठों पर न आने पाये।

भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव

[मद्रास में दिया हुआ मापण]

हमारी जाति और धर्म को व्यक्त करने के लिए एक शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। वेदान्त धर्म से मरा क्या अभिप्राय है, इसको समझाने के लिए उक्त शब्द 'हिन्दू' की कल्पित व्याख्या करने की आवश्यकता है। प्राचीन पुराण वेदनिवासी सिन्धु नदी के लिए 'हिन्दू' इस नाम का प्रयोग करते थे। संस्कृत भाषा में वहाँ 'स' जाता है प्राचीन पुराणी भाषा में वही 'ह' रूप में परिणत हो जाता है इसलिए सिन्धु का 'हिन्दू' हो गया। तुम सभी लोग जानते हो कि मुगलोंने जोस 'ह' का उच्चारण नहीं कर सकते थे इसलिए उन्होंने 'ह' को छोड़ दिया और इस प्रकार हम 'इण्डियन' नाम से जाने गये। प्राचीन काल में इस शब्द का अर्थ जो भी हो अब इस हिन्दू शब्द की जो सिन्धु नदी के दूसरे किनारे से निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था कोई सार्थकता नहीं है क्योंकि सिन्धु नदी के इस ओर रहने वाले सभी एक धर्म के माननेवाले नहीं हैं। इस समय यहाँ हिन्दू, मुसलमान पारसी ईसाई, बौद्ध और जैन भी बाँध करते हैं। 'हिन्दू' शब्द के व्यापक अर्थ के अनुसार हम सबको हिन्दू कहना होगा किन्तु धर्म के हिसाब से हम सबको हिन्दू नहीं कहा जा सकता। हमारा धर्म भिन्न भिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास मान तथा अनुष्ठान और क्रिया-कर्मों का समष्टि-स्वरूप है। सब एक साथ मिळा हुआ है किन्तु यह कोई साधारण नियम से संयोजित नहीं हुआ इसका कोई एक साधारण नाम भी नहीं है और न इसका कोई सब ही है। क्याचित् केवल एक यही विषय है जहाँ सारे सम्प्रदाय एकमत हैं कि हम सभी अपने-अपने देवों पर विश्वास करते हैं। यह भी निश्चित है कि जो व्यक्ति देवों की सर्वोच्च प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता उसे अपने को हिन्दू कहने का अधिकार नहीं है। तुम जानते हो कि ये देव दो भागों में विभक्त हैं—कर्मकांड और ज्ञानकांड। कर्मकांड में नामा प्रचार के माध्यम और अनुष्ठान-मंडितियाँ हैं जिनका अधिकार आवश्यक प्रचलित नहीं है। ज्ञानकांड में देवों के आध्यात्मिक उपदेश लिपिबद्ध हैं—वे उपनिषद् अथवा 'वेदान्त' के नाम से परिचित हैं और ईतबादी विभिन्न-ईतबादी अथवा अईतबादी समस्त धार्मिकों और आचार्यों से उनको ही उच्चतम प्रमाण कहकर स्वीकार किया है। भारत

के समस्त दर्शन और सम्प्रदायो को यह प्रमाणित करना होता है कि उसका दर्शन अथवा सम्प्रदाय उपनिषद्रूपी नीव के ऊपर प्रतिष्ठित है। यदि कोई ऐसा करने मे समर्थ न हो सके तो वह दर्शन अथवा सम्प्रदाय घर्म-विरुद्ध गिना जाता है, इसलिए वर्तमान समय मे समग्र भारत के हिन्दुओं को यदि किमी साधारण नाम से परिचित करना हो तो उनको 'वेदान्ती' अथवा 'वैदिक' कहना उचित होगा। मैं वेदान्ती घर्म और वेदान्त इन दोनो शब्दो का व्यवहार सदा इसी अभिप्राय से करता हूँ।

मैं इसको और भी स्पष्ट करके समझाना चाहता हूँ, कारण यह है कि आजकल कुछ लोग वेदान्त दर्शन की 'अद्वैत' व्याख्या को ही 'वेदान्त' शब्द के समानार्थक रूप मे प्रयोग करते हैं। हम सब जानते है कि उपनिषदो के आधार पर जिन समस्त विभिन्न दर्शनो की सृष्टि हुई है, अद्वैतवाद उनमे से एक है। अद्वैतवादियो की उपनिषदो के ऊपर जितनी श्रद्धा-भक्ति है, विशिष्टाद्वैतवादियो की भी उतनी ही है और अद्वैतवादी अपने दर्शन को वेदान्त की भित्ति पर प्रतिष्ठित कह कर जितना अपनाते हैं, विशिष्टाद्वैतवादी भी उतना ही। द्वैतवादी और भारतीय अन्यान्य समस्त सम्प्रदाय भी ऐसा ही करते है। ऐसा होने पर भी साधारण मनुष्यो के मन मे 'वेदान्ती' और 'अद्वैतवादी' समानार्थक हो गये हैं और शायद इसका कुछ कारण भी है। यद्यपि वेद ही हमारे प्रधान शास्त्र हैं, हमारे पास वेदो के सिद्धान्तो की व्याख्या दृष्टान्त रूप से करने वाले परवर्ती स्मृति और पुराण भी निश्चित रूप से वेदो के समान प्रामाणिक नहीं हैं। यह शास्त्र का नियम है कि जहाँ श्रुति एव पुराण और स्मृति मे मतभेद हो, वहाँ श्रुति के मत का ग्रहण और स्मृति के मत का परित्याग करना चाहिए। इस समय हम देखते हैं कि अद्वैत दार्शनिक शंकराचार्य और उनके मतावलम्बी आचार्यों की व्याख्या मे अविक परिमाण मे उपनिषद् प्रमाण-स्वरूप उद्धृत हुए हैं। केवल जहाँ ऐसे विषय की व्याख्या का प्रयोजन हुआ, जिसको श्रुति मे किसी रूप मे पाने की आशा न हो, ऐसे थोडे से स्थानो में ही केवल स्मृति-वाक्य उद्धृत हुए हैं। अन्यान्य मतावलम्बी स्मृति के ऊपर ही अविकाविक निर्भर रहते हैं, श्रुति का आश्रय कम ही लेते हैं और ज्यो ज्यो हम द्वैतवादियो की ओर ध्यान देते है, हमको विदित होता है कि उनके उद्धृत स्मृति-वाक्यो के अनुपात का परिणाम इतना अधिक है कि वेदान्तियो से इस अनुपात की आशा नहीं की जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके स्मृति-पुराणादि प्रमाणो के ऊपर इतना अधिक निर्भर रहने के कारण, अद्वैतवादी ही क्रमश विशुद्ध वेदान्ती कहे जाने लगे।

जो ही, हमने प्रथम ही यह दिखा दिया है कि वेदान्त शब्द से भारत के समस्त घर्म ममष्टिरूप से समझे जाते हैं, और यह वेदान्त वेदो का एक भाग होने के कारण

सभी क्षेत्रों द्वारा स्वीकृत हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। आधुनिक विद्वानों के विचार जो भी हों एक हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तैयार नहीं है कि वेदों का कुछ अथ एक समय में और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। उनका अब भी यह पक्ष विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय में उत्पन्न हुए थे अथवा यदि मैं कह सकूँ उनकी सृष्टि कभी नहीं हुई वे चिरकाल से सृष्टिकर्ता के मन में वर्तमान थे। 'वेदान्त' शब्द से मेरा यही अभिप्राय है और भारत के ईतबाद, विशिष्ट-ईतबाद और अद्वैतबाद सभी उद्यके अन्तर्गत हैं। सम्भवतः हम बीस बर्ष यहाँ तक कि जैन धर्म के भी अंधविशेषों को ग्रहण कर सकते हैं, यदि उक्त बर्माबलम्बी अनुग्रहपूर्वक हमारे मध्य में जाने को सहमत हों। हमारा हृत्प यथेष्ट प्रवृत्त है हम उनको ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हैं वही जाने को राजी नहीं है। हम उनको ग्रहण करने के लिए सदा प्रस्तुत हैं कारण यह है कि विशिष्ट रूप से विश्लेषण करने पर तुम देखोगे कि बीस बर्ष का छार भाग इन्हीं उपनिषदों से किया गया है यहाँ तक कि बीस बर्ष का तथाकथित अग्रमुत् और महान् आचार-शास्त्र किसी न किसी उपनिषद् में अविकल रूप से विद्यमान है। इसी प्रकार जैन धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धान्त भी उपनिषदों में वर्तमान है केवल अद्यत और मनमानी बातों को छोड़कर इसके परमात् भारतीय धार्मिक विचारों का जो समस्त विकास हुआ है, उसका बीस हम उपनिषदों में देखते हैं। कभी कभी इस प्रकार का निर्मूल अभियोग लगाया जाता है कि उपनिषदों में भक्ति का आदर्श नहीं है। जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन अच्छी तरह किया है, वे जानते हैं कि यह अभियोग बिल्कुल सत्य नहीं है। प्रत्येक उपनिषद् में अनुसन्धान करने से यथेष्ट भक्ति का विषय पाया जाता है किन्तु इनसे से अधिकारा भाव जो परवर्ती काल में पुराण तथा अग्याय्य स्मृतियों में इतनी पूर्णता से विकसित पाये जाते हैं उपनिषदों में बीजरूप में विद्यमान है। उपनिषदों में मानो उसका बीजा उसकी तमरेखा ही वर्तमान है। किसी किसी पुराण में यह बीजा पूर्ण किया गया है किन्तु कोई भी ऐसा पूर्ण विकसित भारतीय आदर्श नहीं है जिसका मूल ज्योत उपनिषदों में जोड़ा न जा सकता हो। बिना उपनिषद-विद्या के विशेष ज्ञान के अनेक व्यक्तियों ने भक्तिवाद को विशेषी भौत से विकसित सिद्ध करने की हास्यास्पद चेष्टा की है किन्तु तुम सब जानते हो कि उनकी सम्पूर्ण चेष्टा विफल हुई है। तुम्हें जितनी भक्ति की आवश्यकता है, सब उपनिषदों में ही कभी संहिता पर्यन्त सबसे विद्यमान है—उपासना प्रेम भक्ति और जो कुछ आवश्यक है सब विद्यमान है। केवल भक्ति का आदर्श अधिकाधिक उच्च होता रहा है। संहिता के मार्गों में सब और अनेकमुक्त धर्म के विज्ञान पाये जाते हैं। संहिता के किसी किसी स्थान पर देखा जाता है कि उपासक वरुण

अथवा अन्य किसी देवता के सम्मुख भय से काँप रहा है। और कई स्थलों पर यह भी देखा जाता है कि वे अपने को पापी समझकर अधिक यत्रणा पाते हैं, किन्तु उपनिषदों में इस प्रकार के वर्णन के लिए कोई स्थान नहीं है, उपनिषदों में भय का घर्म नहीं है, उपनिषदों में प्रेम और ज्ञान का घर्म है।

ये उपनिषद् ही हमारे शास्त्र हैं। इनकी व्याख्या भिन्न भिन्न रूप से हुई है और मैं तुमसे पहले कह चुका हूँ कि जहाँ परवर्ती पौराणिक ग्रन्थों और वेदों में मतभेद होता है, वहाँ पुराणों के मत को अग्राह्य कर वेदों का मत ग्रहण करना पड़ेगा। किन्तु कार्यरूप में हमसे ९० प्रतिशत मनुष्य पौराणिक और शेष १० प्रतिशत वैदिक हैं और इतने भी है या नहीं, इसमें भी सन्देह है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि हमारे बीच नाना प्रकार के अत्यन्त विरोधी आचार भी विद्यमान हैं—हमारे समाज में ऐसे भी धार्मिक विचार प्रचलित हैं, जिनका हिन्दू शास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं है। शास्त्रों का अध्ययन करके हमें यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारे देश में अनेक स्थानों पर ऐसे कई आचार प्रचलित हैं, जिनका प्रमाण वेद, स्मृति अथवा पुराण आदि में कहीं भी नहीं पाया जाता, वे केवल लोकाचार हैं। तथापि प्रत्येक अबोध ग्रामवासी सोचता है कि यदि उसका ग्राम्य आचार उठ जाय, तो वह हिन्दू नहीं रह सकता। उसकी धारणा यही है कि वेदान्त धर्म और इस प्रकार के समस्त क्षुद्र लोकाचार परस्पर घुलमिल कर एकरूप हो गये हैं। शास्त्रों का अध्ययन करने पर भी वे नहीं समझ सकते कि वे जो करते हैं, उसमें शास्त्रों की सम्मति नहीं है। उनके लिए यह समझना बड़ा कठिन होता है कि ऐसे समस्त आचारों का परित्याग करने से उनकी कुछ क्षति नहीं होगी, वरन् इससे वे अधिक अच्छे मनुष्य बनेंगे। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई है—हमारे शास्त्र बहुत विस्तृत हैं। पतञ्जलिप्रणीत 'महाभाष्य' नामक भाषा-विज्ञान ग्रन्थ में लिखा है कि सामवेद की सहस्र शाखाएँ थीं। वे सब कहाँ हैं? कोई नहीं जानता। प्रत्येक वेद का यही हाल है। इन समस्त ग्रन्थों के अधिकांश का लोप हो गया है, सामान्य अर्थ ही हमारे निकट वर्तमान है। एक एक ऋषि परिवार ने एक एक शाखा का भार ग्रहण किया था। इन परिवारों में से अधिकांशों का स्वाभाविक नियम के अनुसार वशलोप हो गया, अथवा विदेशी अत्याचार से मारे गये या अन्य कारणों से उनका नाश हो गया। और उन्हींके साथ साथ जिस वेद की शाखा विशेष की रक्षा का भार उन्होंने ग्रहण किया था, उसका भी लोप हो गया। यह बात हमको विशेष रूप से स्मरण रखनी चाहिए, कारण यह है कि जो कोई नये विषय का प्रचार अथवा वेदों के विरोधी भी किसी विषय का समर्थन करना चाहते हैं, उनके लिए यह यक्ति प्रधान सहायक है। जब भारत में श्रुति और लोकाचार को लेकर तर्क

होता है जबवा जब यह सिद्ध किया जाता है कि यह लोकाचार श्रुति-विषय है उस वृत्त पर यही उत्तर देता है—नहीं यह श्रुति-विषय नहीं है यह श्रुति की उस शाखा में था जिसका इस समय लोप हुआ गया है, अतः यह प्रथा भी वेद-सम्मत है। धाम्त्रों की ऐसी समस्त टीका और टिप्पणियों में किसी ऐसे सूत्र को पाना वास्तव में बड़ा कठिन है, जो सबसे समान रूप से मिलता हो। किन्तु हमको इस बात का सहज ही में विश्वास हो जाता है कि इन गाथा प्रकार के विचारों तथा उपविभागों में कहीं न कहीं अवश्य ही कोई सम्मिश्रित भूमि अन्तर्निहित है। भवनों के वे छोटे छोटे बड़ अवश्य किसी विशेष आदर्श योजना तथा सामग्र्य के आधार पर निर्मित किये गये होंगे। इस प्रतीयमान निराशाजनक विभ्रम पुत्र के जिसको हम अपना धर्म कहते हैं मूल में अवश्य कोई न कोई एक समग्र्य निहित है। अथवा यह इतने समग्र्य तक कहापि बड़ा नहीं रह सकता था यह अब तक रक्षित नहीं रह सकता था।

अपने भाष्यकारों के भाष्यों को देखने से हमें एक बुरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अद्वैतवादी भाष्यकार जब अद्वैत सम्बन्धी श्रुति की व्याख्या करता है उस समय वह उसके जैसे ही मान रहने देता है, किन्तु वही भाष्यकार जब द्वैत-भावात्मक सूत्रों की व्याख्या करने में प्रवृत्त होता है, उस समय वह उसके शब्दों की सीधे-सीधे करके अद्भुत अर्थ निकालता है। भाष्यकारों ने समय समय पर अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने के लिए अर्थात् (अन्वयार्थ) शब्द का अर्थ 'बकरी' भी किया है—कैसा अद्भुत परिवर्तन है! इसी प्रकार, यहाँ तक कि इससे भी बुरी तरह, द्वैतवादी भाष्यकारों ने भी श्रुति की व्याख्या की है। जहाँ उनको द्वैत के अनुकूल श्रुति मिली है, उसको उन्होंने सुरक्षित रखा है, किन्तु जहाँ भी अद्वैतवाद के अनुसार पाठ आया है वही उन्होंने उस श्रुति के अर्थ की मर्यादा से विच्युत करके व्याख्या की है। यह संस्कृत भाषा इतनी कठिन है, वैदिक संस्कृत इतनी प्राचीन है, संस्कृत भाषा-शास्त्र इतना पूर्ण है कि एक शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में मनु युवांतर तक तर्क चल सकता है। यदि कोई पंडित कृतकल्प हो जाय तो वह किसी व्यक्ति की बकवाद को भी सुनिश्चय से जबवा शास्त्र और व्याकरण के नियम उन्मूलन कर कुछ संस्कृत सिद्ध कर सकता है। उपनिषदों को समझने के मार्ग में इस प्रकार की कई विघ्न-आबाधें उपस्थित होती हैं। विघ्न की दृष्टि से मुझे एक ऐसे व्यक्ति के साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था जो जैसे ही उनके द्वैतवादी के जैसे ही अद्वैतवादी भी वे जैसे ही परम भक्त वे जैसे ही आत्मी भी थे। इसी व्यक्ति के साथ रह कर प्रथम बार मेरे मन में आया कि उपनिषदों और अग्याप्य शास्त्रों के पाठ की केवल अन्वयविश्वास से भाष्यकारों का अनुसरण

न करके, स्वाधीन और उत्तम रूप से समझना चाहिए। और मैं अपने मत में तथा अपने अनुसन्धान में इसी सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ कि ये समस्त शास्त्र परस्पर विरोधी नहीं हैं, इसलिए हमको शास्त्रों की विकृत व्याख्या का भय नहीं होना चाहिए। समस्त श्रुतिवाक्य अत्यन्त मनोरम हैं, अत्यन्त अद्भुत हैं और वे परस्पर विरोधी नहीं हैं, उनमें अपूर्व सामजस्य विद्यमान है, एक तत्त्व मानो दूसरे का सोपानस्वरूप है। मैंने इन समस्त उपनिषदों में एक यही भाव देखा है कि प्रथम द्वैत भाव का वर्णन उपासना आदि से आरम्भ हुआ है, अन्त में अपूर्व अद्वैत भाव के उच्छ्वास में वह समाप्त हुआ है।

इसीलिए अब मैं इसी व्यक्ति के जीवन के प्रकाश में देखता हूँ कि द्वैतवादी और अद्वैतवादियों को परस्पर विवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है, दोनों का ही राष्ट्रीय जीवन में विशेष स्थान है। द्वैतवादी का रहना आवश्यक है, अद्वैतवादी के समान द्वैतवादी का भी राष्ट्रीय धार्मिक जीवन में विशेष स्थान है। एक के बिना दूसरा नहीं रह सकता, एक दूसरे का पूरक है, एक मानो गृह है, दूसरा छत। एक मानो मूल है और दूसरा फलस्वरूप। इसलिए उपनिषदों का मनमाना विकृत अर्थ करने की चेष्टा को मैं अत्यन्त हास्यास्पद समझता हूँ। कारण, मैं देखता हूँ कि उनकी भाषा ही अपूर्व है। श्रेष्ठतम दर्शन रूप में उनके गौरव के बिना भी, मानव जाति के मुक्ति-पथ-प्रदर्शक धर्मविज्ञान रूप में उनके अद्भुत गौरव को छोड़ देने पर भी, उपनिषदों के साहित्य में उदात्त भावों का ऐसा अत्यन्त अपूर्व चित्रण है, जैसा ससार भर में और कहीं नहीं है। यही मानवीय मन के उस प्रबल विशेषत्व का, अन्तर्दृष्टिपरायण, अन्त प्रेरणीय उस हिन्दू मन का विशेष परिचय पाया जाता है। अन्यत्र अन्य जातियों के भीतर भी इस उदात्त भाव के चित्र को अंकित करने की चेष्टा देखी जाती है, किन्तु प्रायः सर्वत्र ही तुम देखोगे कि उनका आदर्श बाह्य प्रकृति के महान् भाव को ग्रहण करना है। उदाहरणस्वरूप मिल्टन, दान्ते, होमर अथवा अन्य किसी पाश्चात्य कवि को लिया जा सकता है। उनके काव्यों में स्थान स्थान पर उदात्त भावव्यजक अपूर्व स्थल हैं, किन्तु उनमें सर्वत्र ही बाह्य प्रकृति की अनन्तता को इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण करने की चेष्टा है—बाह्य प्रकृति के अनन्त विस्तार, देश की अनन्तता के आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न है। हम वेदों के संहिता भाग में भी यही चेष्टा देखते हैं। कुछ अपूर्व ऋचाओं में जहाँ सृष्टि का वर्णन है, बाह्य प्रकृति के विस्तार का उदात्त भाव, देश का अनन्तत्व, अभिव्यक्ति की उच्चतम भूमियाँ उपलब्ध कर सका है। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही जान लिया कि इन उपायों से अनन्तत्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता, उन्होंने समझ लिया कि अपने मन के जिन सकल भावों को वे भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा कर रहे थे,

उनको अनन्त वेद्य अनन्त विस्तार और अनन्त बाह्य प्रकृति प्रकाशित करने में असमर्थ है। तब उन्होंने जगत्-समस्या की व्याख्या के लिए अन्य मापों का अवलम्बन किया। उपनिषदों की मापा ने समा रूप धारण किया उपनिषदों की मापा एक प्रकार से 'मिति' बाबक है स्वान स्वान पर अस्फुट है, मानो वह तुम्हें अतीन्द्रिय राज्य में ख जाने की चेष्टा करती है। केवल तुम्हें एक ऐसी वस्तु दिखा देती है, जिसे तुम ग्रहण नहीं कर सकते जिसका तुम इन्द्रियों से बोध नहीं कर पाते फिर भी उस वस्तु के सम्बन्ध में तुमको छात्र ही यह निश्चय भी है कि उसका अस्तित्व है। संसार में ऐसा स्वप्न कहाँ है जिसके साथ इस श्लोक की तुलना हो सके?—

न तत्र सूर्यो भास्ति न चन्द्रतारकम् ।

नेमा विद्युतो भास्ति कुस्तोऽप्यमग्निः ॥^१

—'वहाँ सूर्य की किरण नहीं पहुँचती वहाँ चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते बिजली भी उस स्वान को प्रकाशित नहीं कर सकती इस सामान्य अग्नि का ठो कहना ही क्या ?

पुनश्च समस्त संसार के समग्र दार्शनिक भाव की अत्यन्त पूर्ण अभिव्यक्ति संसार में और कहाँ पाओगे हिन्दू जाति के समग्र चिन्तन का सारांश मानव जाति की मोक्षार्थासा की समस्त कल्पना जिस प्रकार बहुमूत भाषा में अंकित हुई है जिस प्रकार अपूर्ण रूपक में अंकित हुई है, ऐसी तुम और कहाँ पाओगे ? क्या

हा सुपर्णा समुद्रा सञ्जाया समाने बृक्षे परिवत्सवते ।

तपोरत्नं पिप्पलं त्वाह्वत्पनस्तमस्यो अभिधाकसीति ॥

समाने बृक्षे पुष्पो निमम्बोऽग्नीसया सोचति मुह्यमानः ।

बुधं यदा पश्यत्यम्बमीशमस्य महिमानमिति बीतशोकः ॥

एक ही बृक्ष क ऊपर सुन्दर पंखवाली दो चिड़ियाँ रहती हैं—दोनों बड़ी मित्र हैं उनमें एक उसी बृक्ष के फल खाती है, दूसरी फल न खाकर स्थिर बाध से चुपचाप बैठी है। नीचे की छाया में बैठी चिड़िया कभी मीठे कभी कड़मे फल खाती है—और इसी कारण कभी मुझी अथवा कभी दुःखी होती है किन्तु ऊपर की छाया में बैठी हुई चिड़िया स्थिर और नन्मीर है वह अच्छे-बुरे कोर फल नहीं खाती वह सुख और दुःख की परवाह नहीं करती अपनी ही महिमा में मग्न है ये दोनों पक्षी जीवात्मा और परमात्मा हैं। मनुष्य इस जीवन के मीठे और कड़मे फल खाता है, वह जन की लोभ में मग्न है, वह इन्द्रिय सुग के

१ ऋगीपनिषद् ॥२॥२॥१५॥

२ मुण्डकोपनिषद् ॥३॥१॥१३॥

पीछे दौड़ता है, सासारिक क्षणिक वृथा सुख के लिए उन्मत्त होकर पागल के समान दौड़ता है। उपनिषदों ने एक और स्थान पर सारथि और उसके असयत दुष्ट घोड़े के साथ मनुष्य के इस इन्द्रिय-सुखान्वेषण की तुलना की है। वृथा सुख के अनुसन्धान की चेष्टा में मनुष्य का जीवन ऐसा ही बीतता है। बच्चे कितने सुनहले स्वप्न देखते हैं, अन्ततः केवल यह जानने के लिए कि ये निरर्थक हैं। वृद्धावस्था में वे अपने अतीत कर्मों की पुनरावृत्ति करते हैं, और फिर भी नहीं जानते कि इस जजाल से कैसे निकला जाय। ससार यही है। किन्तु सभी मनुष्यों के जीवन में समय समय पर ऐसे स्वर्णिम क्षण आते हैं—मनुष्य के अत्यन्त शोक में, यहाँ तक कि महा आनन्द के समय ऐसे उत्तम सुअवसर आ उपस्थित होते हैं, जब सूर्य के प्रकाश को छिपानेवाला मेघखड मानो थोड़ी देर के लिए हट जाता है। उस समय इस क्षण-काल के लिए अपने इस सीमाबद्ध भाव के परे उस सर्वातीत सत्ता की एक झलक पा जाते हैं जो अत्यन्त दूर है, जो पञ्चेन्द्रियावद्ध जीवन से परे बहुत दूर है, जो इस ससार के व्यर्थ भोग और इसके सुख-दुःख से परे बहुत ही दूर है, जो प्रकृति के उस पार दूर है, जो इहलोक अथवा परलोक में हम जिस सुख-भोग की कल्पना करते हैं उससे भी बहुत दूर है, जो घन, यश और सन्तान की तृष्णा से भी परे बहुत दूर है। मनुष्य क्षण-काल के लिए दिव्य दृश्य देखकर स्थिर होता है—और देखता है कि दूसरी चिड़िया शान्त और महिमामय है, वह खट्टे या मीठे कोई भी फल नहीं खाती, वह अपनी महिमा में स्वयं आत्मतृप्त है, जैसा गीता में कहा है

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३१७॥

—'जो आत्मा में रत है, जो आत्मतृप्त है और जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है, उसके करने के लिए और कौन कार्य शेष रह गया है ?'

वह वृथा कार्य करके क्यों समय गँवाये? एक बार अचानक ब्रह्म-दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य पुनः भूल जाता है, पुनः जीवन के खट्टे और मीठे फल खाता है—और उस समय उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहता। कदाचित् कुछ दिनों के पश्चात् वह पुनः ब्रह्म के दर्शन प्राप्त करता है और जितनी चोट खाता है, उतना ही नीचे का पक्षी ऊपर बैठे हुए पक्षी के निकट आता जाता है। यदि वह सौभाग्य से ससार के तीव्र आघात पाता रहे, तो वह अपने साथी, अपने प्राण, अपने मखा उसी दूसरे पक्षी के निकट क्रमशः आता है। और वह जितना ही निकट आता है, उतना ही देखता है कि उस ऊपर बैठे हुए पक्षी की देह की ज्योति आकर उसके पखों के चारों ओर खेल रही है।

और वह जितना ही निरट जाता जाता है उतना ही अपास्तरण घटित होता है। पीरे पीरे वह जब अत्यन्त निकट पहुँच जाता है, तब देगता है कि मानों वह अन्त मिटता जा रहा है—अन्त में उसका पूर्ण रूप ध लोप हो जाता है। उस समय वह समझता है कि उसका पृथक् अस्तित्व भी न था वह उसी हिस्से हुए पत्तों के अन्तर शान्त और गम्भीर भाव से बैठे हुए दूसरे पक्षी का प्रतिबिम्ब मान था। उस समय वह जानता है कि वह स्वयं ही वही अन्तर बैठा हुआ पक्षी है, वह सदा से शान्त भाव में बैठा हुआ था—यह उसीकी महिमा है। वह निर्भय हो जाता है, उस समय वह सम्पूर्ण रूप से वृत्त होकर पीरे और शान्त भाव में निमग्न रहता है। इसी रूप में उपनिषद् ईश भाव से आरम्भ कर पूर्ण अर्द्ध भाव में हमें ले जाते हैं।

उपनिषदों के अपूर्व कथित अन्त विषय तथा उच्चतम भावसमूह दिखाने के लिए अन्त उवाहरण उद्धृत किये जा सकते हैं किन्तु इस व्याख्यान में इसके लिए समय नहीं है। तो भी एक बात और कहूँगा उपनिषदों की भाषा और भाव की गति सरल है, उनकी प्रत्येक बात उच्चतर की बार के समान हवाई की चोट के समान साक्षात् भाव से हृदय में आघात करती है। उनके वर्ण समझने में कुछ भी भ्रम होने की सम्भावना नहीं—उस संगीत के प्रत्येक सुर में शक्ति है और वह हृदय पर पूरा असर करता है। उनमें अस्पष्टता नहीं असम्बद्ध कथन नहीं किसी प्रकार की अटिक्ता नहीं जिससे विमर्श भ्रम जन्म। उनमें अव्यक्ति के बिना नहीं है अन्वयितियों द्वारा वर्णन की भी क्यादा केष्टा नहीं की गयी है। उपनिषदों में इस प्रकार के वर्णन भी नहीं मिले कि विशेषण के पश्चात् विशेषण लेकर क्रमागत भाव को अटिक्ता करने से प्रकृत विषय का पता न लगे विमर्श बचकर जाने लगे और उस साहित्यिक गोरक्षका के बाहर निकलने का उपाय ही न सूखे। यदि यह मानवप्रवीण है, तो यह एक ऐसी पाठि का साहित्य है जिसमें अभी-अपनी राष्ट्रीय तेजस्विता का ह्रास नहीं हुआ।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे शक्ति का सन्धि देता है। यह विषय विशेष रूप से स्मरण रखने योग्य है, समस्त जीवन में मैंने बड़ी महाशिक्षा प्राप्त की है—उपनिषद् कहते हैं, हे मातृ तेजस्वी बनो वीर्यवान बनो दुर्बलता को त्यागो। मनुष्य प्रकृत करता है क्या मनुष्य में दुर्बलता नहीं है? उपनिषद् कहते हैं अवस्थ है किन्तु अधिक दुर्बलता हाथ क्या यह दुर्बलता दूर होगी? क्या तुम मूल से मूल होने का प्रयत्न करोगे? पाप के द्वारा पाप अपना निर्बलता हाथ निर्बलता दूर होती है? उपनिषद् कहते हैं हे मनुष्य तेजस्वी बनो वीर्यवान बनो उठकर खड़े हो जाओ। जगद् के साहित्य में केवल इन्हीं उपनिषदों में 'अमी' (मयसूय) यह शब्द बार बार व्यवहृत हुआ है—और घसर के किसी शास्त्र में ईश्वर अपना

मानव के प्रति 'अभी'—'भयशून्य' यह विशेषण प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'अभी'—निर्भय बनो ! और मेरे मन मे अत्यन्त अतीत काल के उस पाश्चात्य सम्राट् सिकन्दर का चित्र उदित होता है और मैं देख रहा हूँ—वह महाप्रतापी सम्राट् सिन्धु नद के तट पर खड़ा होकर अरण्यवामी, शिलाखड पर बैठे हुए वृद्ध, नग्न, हमारे ही एक सन्यासी के साथ बात कर रहा है। सम्राट् सन्यासी के अपूर्व ज्ञान से विस्मित होकर उसको अर्थ और मान का प्रलोभन दिखाकर यूनान देश मे आने के लिए निमन्त्रित करता है। और वह व्यक्ति उसके स्वर्ण पर मुसकराता है, उसके प्रलोभनों पर मुसकराता है और अस्वीकार कर देता है। और तब सम्राट् ने अपने अधिकार-त्रल से कहा, "यदि आप नहीं आयेंगे तो मैं आपको मार डालूँगा।" यह सुनकर सन्यासी ने खिलखिलाकर कहा, "तुमने इस समय जैसा मिथ्या भाषण किया, जीवन मे ऐसा कभी नहीं किया। मुझको कौन मार सकता है ? जड जगत् के सम्राट्, तुम मुझको मारोगे ? कदापि नहीं ! मैं चैतन्यस्वरूप, अज और अक्षय हूँ ! मेरा कभी जन्म नहीं हुआ और न कभी मेरी मृत्यु हो सकती है ! मैं अनन्त, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हूँ। क्या तुम मुझको मारोगे ? निरे वच्चे हो तुम !" यही सच्चा तेज है, यही सच्चा वीर्य है ! हे बन्धुगण, हे स्वदेशवासियो, मैं जितना ही उपनिषदो को पढता हूँ, उतना ही मैं तुम्हारे लिए आँसू बहाता हूँ, क्योंकि उपनिषदो मे वर्णित इसी तेजस्विता को ही हमको विशेष रूप से जीवन मे चरितार्थ करना आवश्यक हो गया है। शक्ति, शक्ति—यही हमको चाहिए, हमको शक्ति की बड़ी आवश्यकता है। कौन प्रदान करेगा हमको शक्ति ? हमको दुर्बल करने के लिए सहस्रो विषय है, कहानियाँ भी बहुत हैं। हमारे प्रत्येक पुराण मे इतनी कहानियाँ हैं कि जिससे ससार मे जितने पुस्तकालय हैं, उनका तीन चौथाई भाग पूर्ण हो सकता है, जो हमारी जाति को शक्तिहीन कर सकती हैं, ऐसी दुर्बलताओ का प्रवेश हममे विगत एक हजार वर्ष से ही हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो विगत एक हजार वर्ष से हमारे जातीय जीवन का यही एकमात्र लक्ष्य था कि किस प्रकार हम अपने को दुर्बल से दुर्बलतर बना सकेंगे। अन्त मे हम वास्तव मे हर एक के पैर के पास रेंगनेवाले ऐसे केचुओ के समान हो गये हैं कि इस समय जो चाहे वही हमको कुचल सकता है। हे बन्धुगण, तुम्हारी और मेरी नसो मे एक ही रक्त का प्रवाह हो रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन-मरण है। मैं तुमसे पूर्वोक्त कारणो से कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान हैं। उपनिषदो मे ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त ससार को तेजस्वी बना सकते हैं। उनके द्वारा समस्त ससार पुनरुज्जीवित, सशक्त और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। समस्त जातियो को, सकल मतों को, भिन्न भिन्न सम्प्र-

दाय के दुर्बल बुद्धी पदबलिष्ठ लोभा को रचन अपन पैरां गड़ हाकर मुक्त होने के लिये वे उच्च स्वर म उद्घोष कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वार्थता—ईहिक स्वार्थता मानसिक स्वार्थता आप्यात्मिक स्वार्थता यही उपनिषद् के मूल मंत्र है।

ससार भर म ये ही एकमात्र शास्त्र हैं जिनमें उदार (salvation) का वर्णन नहीं किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति क बन्धन से मुक्त हो जाओ पुबलता से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते है कि यह मुक्ति तुमम पहले से ही विद्यमान है। उपनिषद् के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम ईतवारी हो—तुम चिन्ता नहीं किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वल्प है केवल किन्तु ही कायों के द्वारा यह सकुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) जिसको क्रमविकास (evolution) और क्रमसंकोच (atavism) कहते हैं रामानुज का संकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वामादिक पूर्णता से भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है, उसकी शक्ति अल्पकम भाव धारण करती है। संकर्म और अज्ञे विचारों द्वारा यह पुन विकास को प्राप्त होती है और उसी समय उसको स्वामादिक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अईतवारी के साथ ईतवारी का इतना ही मतभेद है कि अईतवारी आत्मा क विकास को नहीं किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ एक परवा है और इस परवे में एक छोटा मुरास। मैं इस परवे के भीतर से इस भारी अनसमुदाय को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल बोड़े से मनुष्यों को देख सकूँगा। मान लो खेद बढ़ने लया छिद्र जितना ही बड़ा होगा उतना ही मैं हनु एकत्र म्पकितियों में से अधिकार को देख सकूँगा। अन्त में छिद्र बढ़ते बढ़ते परवा और छिद्र एक हो जायेंगे तब इस स्थिति मे तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रह जायगा। वही तुममें और मुझमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परवे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक से वे कबक परवे मे ही परिवर्तन हुआ वा। विकास के सम्बन्ध में अईतवारीयों का यही मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आम्पन्तर अभिव्यक्ति। आत्मा किसी प्रकार भी संकोच को प्राप्त नहीं हो सकती। यह अपरिवर्तनशील और अनन्त है। यह मानो मायावपी परवे से बँकी हुई है—जितना ही यह मायावपी परवा नीम होता जाता है उतनी ही आत्मा की स्वयंसिद्ध स्वामादिक महिमा अभिव्यक्त होती है और क्रमशः यह अभिव्यक्तिक प्रकाशमान होती है। मगर इसी एक महान् तत्त्व को मारत से सीखने की अपेक्षा कर रहा है। वे जाहे जो कहें व कितना ही अहकार करने की चेष्टा करे, पर वे क्रमशः जिन प्रतिबिम्ब जान लेने

कि बिना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि समस्त पदार्थों में कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली में, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था में, पागलों की चिकित्सा में, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमें इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति से ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर में सार पदार्थों के सचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यों न हो, उसमें भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनु रूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहों की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कहो अथवा बिना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों में ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नहीं रहेंगे। इसी शताब्दी में इन भावों का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध में खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार में पाप नहीं है', इस धोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में ससार के प्रत्येक भाग में मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वशज मुझको अधर्म का प्रचारक नहीं, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नहीं। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नहीं किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हृदबन्दी और पार्थक्य इस समय तेषी से कम होते जा रहे हैं। बिजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर ससार के विभिन्न देशों का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नहीं देख रहे हैं और

दाय के दुबल वृत्ती पदबलि सौम्यो को स्वयं अपन पैरों खड़ा होकर मुक्त होने के लिए वे उच्च स्तर में उद्बोध कर रहे हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—वैदिक स्वाधीनता सामयिक स्वाधीनता आध्यात्मिक स्वाधीनता यही उपनिषदों के मूल मंत्र हैं।

संसार भर में ही एकमात्र सास्त्र है जिसमें उधार (salvation) का वर्णन नहीं किन्तु मुक्ति का वर्णन है। प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाओ मुक्ति से मुक्त हो जाओ। और उपनिषद् तुमको यह भी बतलाते हैं कि यह मुक्ति तुममें पहले से ही विद्यमान है। उपनिषदों के उपदेश की यह और भी एक विशेषता है। तुम ईश्वारी हो—कुछ चिन्ता नहीं किन्तु तुमको यह स्वीकार करना ही होगा कि आत्मा स्वभाव ही से पूर्णस्वरूप है, केवल किन्तु ही कामों के द्वारा वह सङ्कुचित हो गयी है। आधुनिक विकासवादी (evolutionist) प्रसङ्गों कमविक्रम (evolution) और कमसंकोच (atavism) कहते हैं। यमानुष का संकोच और विकास का सिद्धान्त भी ठीक ऐसा ही है। आत्मा स्वाभाविक पूर्णता में भ्रष्ट होकर मानो संकोच को प्राप्त होती है उसकी गति अभ्यन्त माव पारण करती है। सत्कर्म और अच्छे विचारों द्वारा वह पुनः विकास का प्राप्त होती है और उगी समय उसकी स्वाभाविक पूर्णता प्रकट हो जाती है। अज्ञानवादी के साथ ईश्वारी का इतना ही मतभेद है कि अज्ञानवादी आत्मा के विकास को नहीं किन्तु प्रकृति के विकास को स्वीकार करता है। उदाहरणार्थ एक पक्षी है और इन परदे में एक छोटा मूषक। मैं इस परदे के भीतर में इस भारी जनममुशय को देख रहा हूँ। मैं प्रथम केवल थोड़े से मनुष्यों को देख सकेगा। मान को छेद करने तथा छिद्र जितना ही बढ़ा होया उतना ही मैं इन एकत्र स्थितियों में स अधिकार का देख सकेगा। अन्त में छिद्र बढ़ने बढ़ने परदा और छिद्र एक हो जायेंगे तब इन स्थिति में तुम्हारे और मेरे बीच कुछ भी नहीं रहे जायगा। यही तुममें और जगतमें जिनी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह परदे में ही हुआ। तुम आरम्भ से अन्त तक एक ही थे केवल परदे में ही परिवर्तन हुआ था। विकास के सम्बन्ध में अज्ञानवादियों का नहीं मत है—प्रकृति का विकास और आत्मा की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति। आत्मा जिनी प्रकार भी मर्त्यों को प्राप्त नहीं हो सकती। यह अज्ञानवर्तमान और अज्ञान है। वह मानो मायावती परदे में बँधी हुई है—विज्ञान ही यह मायावती परदा छेद हुआ जाता है उसकी ही आत्मा की स्वयंस्वरूप स्वाभाविक महिमा अभिव्यक्त होती है और जगत् वह अधिपतित प्रहासमान जाती है। गतार हमी एक महान् तन्त्र को मान्य में रंगने की कोशा कर रहा है। वे जो भी बनें वे विज्ञान ही अज्ञान करने की कोशा करें, पर वे कसब दिन प्रतिदिन जान लेंगे

कि बिना इस तत्त्व को स्वीकार किये कोई समाज टिक नहीं सकता। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि समस्त पदार्थों में कैसा भीषण परिवर्तन हो रहा है? क्या तुम नहीं जानते कि पहले यह प्रथा थी कि जब तक कोई वस्तु अच्छी कहकर प्रमाणित न हो जाय तब तक उसे निश्चित रूप से बुरी माना जाय? शिक्षाप्रणाली में, अपराधियों की दण्ड-व्यवस्था में, पागलो की चिकित्सा में, यहाँ तक कि साधारण रोग की चिकित्सा पर्यन्त सबमें इसी प्राचीन नियम को लागू किया जाता था। आधुनिक नियम क्या है? आधुनिक नियम के अनुसार शरीर स्वभाव ही से स्वस्थ है, वह अपनी प्रकृति में ही रोगों को दूर करता है। औषधि अधिक से अधिक शरीर में सार पदार्थों के सचय में सहायता कर सकती है। अपराधियों के सम्बन्ध में यह आधुनिक नियम क्या कहता है? आधुनिक नियम यह स्वीकार करता है कि कोई अपराधी, वह कितना ही हीन क्यों न हो, उसमें भी ईश्वरत्व है, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है और इसलिए अपराधियों के प्रति हमको तदनु रूप व्यवहार करना चाहिए। अब पहले के ये सब भाव बदल रहे हैं और अब सुधारालय तथा प्रायश्चित्त-गृहों की स्थापना की जा रही है। ऐसा ही सर्वत्र है। जान कर कही अथवा बिना जाने, यह भारतीय भाव कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ईश्वरत्व वर्तमान है, नाना भावों से व्यक्त हो रहा है। और तुम्हारे शास्त्रों में ही इसकी व्याख्या है, उनको यह स्वीकार करना पड़ेगा। मनुष्य के प्रति मनुष्य के व्यवहार में महान् परिवर्तन हो जायगा और मनुष्य की दुर्बलताओं को बतलानेवाले ये प्राचीन विचार नहीं रहेंगे। इसी शताब्दी में इन भावों का लोप हो जायगा। इस समय लोग हमारे विरोध में खड़े होकर हमारी आलोचना कर सकते हैं। 'ससार में पाप नहीं है', इस घोर पैशाचिक सिद्धान्त के प्रचारक के रूप में ससार के प्रत्येक भाग में मेरी आलोचना की गयी है। बहुत अच्छा, किन्तु इस समय जिन्होंने मुझको बुरा भला कहा है, उनके ही वंशज मुझको अधर्म का प्रचारक नहीं, किन्तु धर्म का प्रचारक कहकर आशीर्वाद देंगे। मैं धर्म का प्रचारक हूँ, अधर्म का नहीं। मैंने अज्ञानान्धकार का प्रचार नहीं किया, किन्तु ज्ञान प्रकाश के विस्तार की चेष्टा की है, इसे मैं अपना गौरव समझता हूँ।

समग्र ससार का अखण्डत्व, जिसको ग्रहण करने के लिए ससार प्रतीक्षा कर रहा है, हमारे उपनिषदों का दूसरा महान् भाव है। प्राचीन काल की हृदयबन्दी और पार्थक्य इस समय तेजी से कम होते जा रहे हैं। विजली और भाप की शक्ति, यातायात तथा संचार की सुविधाएँ बढ़ाकर ससार के विभिन्न देशों का परस्पर परिचय करा रही है। इसके फलस्वरूप, हम हिन्दू इस समय अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब देशों को केवल भूत-प्रेत, राक्षस, पिशाचों से पूर्ण नहीं देख रहे हैं और

ईसाई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल गरमासमोची और असम्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही बन्धु भाग्य सहायता के लिए अपना वही सक्तिदायी हाथ बढ़ा रहा है और उसी मुख से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे यहाँ आते हैं वे भी यहाँ बँसा ही आप्रवास उत्साह और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है, अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुःखों का कारण है। सामाजिक जबना साम्यारिभक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह विस्तृत सही उतरखा है। अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जान लेंगे प्रेम का उदय होगा। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीस वर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी सीमासा केवल राष्ट्रीयता के आभार पर ही नहीं की जा सकती। सक्त समस्याएँ क्रमशः कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आभार पर उदार दृष्टि से विचार करने पर ही उनकी हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय संघ अन्तर्राष्ट्रीय विधान ये ही आवश्यक के मूलमन्त्रस्वरूप हैं। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी अज्ञान के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आधिपत्य हो रहे हैं। इस समय तुम समझ जाइ बस्तु को समस्त ससार को एक अक्षय्य बस्तुस्व मे बृहत् अज्ञ-समुद्र का वर्जन करते हो जिसमें तुम में अन्ध सूर्य और दोष सब कुछ समी विभिन्न शत्रु मेंबर मान हैं, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर वह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे भँवरों के सदृश हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समस्त जगत् एक अक्षय्य अपरिवर्तनीय सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और यह भी हमारे मनो में विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आचार-शास्त्र के मूल लोग के लिए भी ससार व्यापक है यह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेगा।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विपत्तियों की इन परापी की आशय्यकता है तो हमकी हमकी आवश्यकता बीम युवा व्यक्ति है। क्योंकि हमारे जगत्पिद् दृष्टिने ही महत्त्वपूर्ण क्या न हो, अन्त्याय आनिपा के नाथ तुम्हारा मैं हम अपने

पूर्वपुरुष त्रिपिण्डो न किन्तु ह्येव त्रयो न वने, मैं तुम लोगो में स्पष्ट भाषा में कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता हम में कम हमारे एक तिहाई दुर्बलो का कारण है। हम आलसी हैं, हम काम नहीं कर सकते, हम पारंपरिक एकता स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे में प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे में घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूण रूप में अमगठिन हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, मैकडो शताब्दियों में ईर्ष्या-प्रगटने के तिलक इस तरह प्राण करना चाहिए या उम तरह। अमुक व्यक्ति को नजर पडने में हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुस्तर नमस्याओं के ऊपर हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों में हमारा यही कारनामा रहा है। जिम जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओं और गवेषणाओं में लगी है, उसमें किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय ? और क्या हमको अपने पर शर्म भी नहीं आती ? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है ? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवको को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुष्टो से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार काम में लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमें इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

इसई धर्म-प्रधान देशों के लोग भी नहीं कहते कि भारत में केवल नरमांसभोजी और असभ्य लोग रहते हैं। अपने देश से बाहर जाकर हम देखते हैं कि वही कन्वु मानव सहायता के लिए अपना बही क्षमिदसाली हाथ बढ़ा रहा है और उसी मुक्त से उत्साहित कर रहा है। जिस देश में हमने जन्म लिया है उसकी अपेक्षा कभी कभी अन्य देशों में अधिक अच्छे लोग मिल जाते हैं। जब वे यहाँ आते हैं, वे भी यहाँ वैसा ही भातृभाव उत्साह और सहानुभूति पाते हैं। हमारे उपनिषदों ने ठीक ही कहा है अज्ञान ही सर्व प्रकार के दुर्घों का कारण है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक अपने जीवन को चाहे जिस अवस्था में देखो यह विस्फुक्त सही उतरता है। अज्ञान से ही हम परस्पर दूना करते हैं, अज्ञान से ही हम एक दूसरे को जानते नहीं और इसीलिए प्यार नहीं करते। जब हम एक दूसरे को जानें प्रेम का उदय होया। प्रेम का उदय निश्चित है क्योंकि क्या हम सब एक नहीं हैं? इसलिए हम देखते हैं कि चेष्टा न करने पर भी हम सबका एकत्वभाव स्वभाव ही से आ जाता है। यहाँ तक कि राजनीति और समाजनीति के क्षेत्रों में भी जो समस्याएँ बीच बर्ष पहले केवल राष्ट्रीय थीं इस समय उनकी भीमांसा केवल राष्ट्रीयता के आधार पर ही नहीं की जा सकती। उक्त समस्याएँ कम्ब कठिन हो रही हैं और विशाल आकार धारण कर रही हैं। केवल अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर उचार दृष्टि से विचार करने पर ही उनको हल किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय संकलन अन्तर्राष्ट्रीय सब अन्तर्राष्ट्रीय विधान ये ही आजकल के मुख्यमन्त्रत्वम् है। सब लोगों के भीतर एकत्वभाव किस प्रकार विस्तृत हो रहा है यही उसका प्रमाण है। विज्ञान में भी बड़ तत्व के सम्बन्ध में ऐसे ही सार्वभौम भाव ही इस समय आधिष्ठित हो रहे हैं। इस समय तुम समग्र बड़ वस्तु को समस्त ससार को एक अखण्ड वस्तुत्व में गृह्य बड़-समुद्र का वर्णन करते हो जिसमें तुम में चन्द्र सूर्य और शेष सब कुछ सभी विभिन्न शूद्र संघर्ष भाव है, और कुछ नहीं। मानसिक दृष्टि से देखने पर यह एक अनन्त विचार-समुद्र प्रतीत होता है तुम और मैं उस विचार-समुद्र के अत्यन्त छोटे छोटे बँदरों के समुद्र हैं। आत्मपरक दृष्टि से देखने पर समग्र जगत् एक अखण्ड अपरिभर्तनशील सत्ता अर्थात् आत्मा प्रतीत होता है। नैतिकता का स्वर भी आ रहा है और यह भी हमारे हृद्यों में विद्यमान है। नैतिकता की व्याख्या और आधार-शास्त्र के मूलकोश के लिए भी सचार व्याकुल है यह भी हमारे शास्त्रों से ही मिलेगा।

हम भारत में क्या चाहते हैं? यदि विद्वेषियों को इन पदार्थों की आवश्यकता है तो हमको इनकी आवश्यकता बीच गुना अधिक है। क्योंकि हमारे उपनिषद् विद्वाने ही महत्त्वपूर्ण कर्मों में हैं अत्यास्य जातियों के साथ लक्ष्मण में हम अपने

पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही। गर्व क्यों न करे, मैं तुम लोगो से स्पष्ट भाषा मे कहे देता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुर्बलो का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते, हम पाश्र्विक एकता स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। हमारी इस समय ऐसी अवस्था है कि हम पूर्ण रूप से अमगठिन हैं, घोर स्वार्थी हो गये हैं, सैकड़ो शताब्दियों से इसीलिए झगड़ते हैं कि तिलक इस तरह धारण करना चाहिए या उस तरह। अमुक व्यक्ति की नजर पढ़ने से हमारा भोजन दूषित होगा या नहीं, ऐसी गुस्तर समस्याओ के ऊपर हम बड़े बड़े ग्रन्थ लिखते हैं। पिछली कई शताब्दियों से हमारा यही कारनामा रहा है। जिस जाति के मस्तिष्क की समस्त शक्ति ऐसी अपूर्व सुन्दर समस्याओ और गवेषणाओ मे लगी है, उससे किसी उच्च कोटि की सफलता की क्या आशा की जाय। और क्या हमको अपने पर शर्म भी नहीं आती? हाँ, कभी कभी शर्मिन्दा होते भी हैं। यद्यपि हम उनकी निस्सारता को समझते हैं, पर उनका परित्याग नहीं कर पाते। हम अनेक बातें सोचते हैं, किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है—आचरण मे हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दौर्बल्य। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमको अपने मस्तिष्क को बलवान बनाना होगा। प्रथम तो हमारे युवको को बलवान बनना होगा। घर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु, तुम बलवान बनो—यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हे फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा। मैंने अत्यन्त साहसपूर्वक ये बातें कही हैं, और इनको कहना अत्यावश्यक है, कारण मैं तुमको प्यार करता हूँ। मैं जानता हूँ कि ककड़ कहाँ चुभता है। मैंने कुछ अनुभव प्राप्त किया है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुष्टो से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर मे ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरो के बल दृढ़ भाव से खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तब तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा भली भाँति समझोगे। इस तरह वेदान्त को अपनी आवश्यकताओ के अनुसार काम मे लगाना होगा।

लोग मेरे अद्वैतवाद के प्रचार से बहुधा विरक्त हो जाते हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद अथवा अन्य किसी वाद का प्रचार करना मेरा उद्देश्य नहीं है। हमें इस समय आवश्यकता है केवल आत्मा की—उसके अपूर्व तत्त्व, उसकी अनन्त शक्ति,

अनन्त कीर्त्य अनन्त सुखता और अनन्त पूर्णता के लक्ष्य को जानने की। यदि मेरे कोई सन्तान होती तो मैं उसे जन्म के समय से ही सुभाता 'स्वमसि निरंजन'। तुमने अवश्य ही पुराण में रानी मदाळसा की वह सुन्दर कहानी पढ़ी होगी। उसके लक्षान होते ही वह उसको अपने हाथ से झूके पर रखकर सुकाले हुए उसके निकट गाती थी 'तुम हो मेरे साठ निरंजन अतिपावन निध्याप तुम हो सर्वघणितसाधी तेष है अमित प्रताप। इस कहानी में महान् सत्य छिपा हुआ है। अपने को महान् समझो और तुम सबमुच महान् हो जाओगे। सभी लोग पूछते हैं आपने समग्र संसार में भ्रमण करके क्या अनुभव प्राप्त किया? अंग्रेज लोग पापियों की बातें करते हैं पर वास्तव में यदि सभी अंग्रेज अपने को पापी समझते तो वे अर्द्धका के मध्य भाग के रहनेवाके हथ्थी जैसे हो जाते। ईश्वर की कृपा से इस बात पर वे विस्वास नहीं करते। इसके विपरीत अंग्रेज तो यह विस्वास करता है कि संसार के अधीश्वर होकर उसने जन्म धारण किया है। वह अपनी श्रेष्ठता पर पूरा विश्वास रखता है। उसकी धारणा है कि वह सब कुछ कर सकता है, इच्छा होने पर सूर्य लोक और चन्द्रलोक की भी सैर कर सकता है। इसी इच्छा के बल से वह बड़ा हुआ है। यदि वह अपने पुरोहितों के इन वाक्यों पर कि मनुष्य शून्य है हतमास्य और पापी है अनन्तकाल तक वह नरकाग्नि में दग्ध होगा विश्वास करता तो वह आज नहीं अंग्रेज न होता बसा यह थाव है। यही बात मैं प्रत्येक जाति के भीतर देखता हूँ। उनके पुरोहित लोग चाहे जो कुछ कहें और वे कितने ही कुसंस्कारपूर्व क्यों न हों किन्तु उनके अभ्यन्तर का ब्रह्मभाव सुप्त नहीं होता उसका विकास अवश्य होता है। हम सबका जो बैठे हैं। क्या तुम मेरे इस कथन पर विश्वास करने कि हम अंग्रेजों की अपेक्षा कम आरामभया रखते हैं—सहस्रानुच कम आराम भया रखते हैं? मैं साफ-साफ कह रहा हूँ। बिना कहे दूसरा उपाय भी मैं नहीं देखता। तुम देखते नहीं?—अंग्रेज जब हमारे धर्मलक्ष्य को कुछ कुछ समझने लगते हैं तब वे मानो उसीकी लेकर उन्मत्त हो जाते हैं। अद्यपि वे साधक हैं, तथापि अपने बेलबासियों की हौसी और उपहास की अपेक्षा करके भारत में हमारे ही धर्म का प्रचार करने के सिद्ध वे आते हैं। तुम लोगों में से कितने ऐसे हैं जो ऐसा काम कर सकते हैं? तुम क्यों ऐसा नहीं कर सकते? क्या तुम जानते नहीं इससिद्ध नहीं कर सकते? उनकी अपेक्षा तुम अधिक ही जानते हो। इसीसे तो ज्ञान के अनुसार तुम काम नहीं कर सकते। जितना जानने से सम्मान होगा उतने तुम स्थापना आओगे हो सही आच्छ है। तुम्हारा रक्त शरीर मँडल ही क्या है, मस्तिष्क मुर्धार और शरीर दुर्बल! इस शरीर को बरकना होगा। साटीरिक दुर्बलता ही सब अल्पियों की बड़ है और कुछ नहीं। गत कई सदियों से तुम

नाना प्रकार के मुचार, आदर्श आदि की वाते कर रहे हो और जब काम करने का समय आता है तब तुम्हारा पता ही नहीं मिलता। अतः तुम्हारे आचरणों से सारा सभार क्रमशः हताश हो रहा है और समाज-सुधार का नाम तक समस्त सभार के उपहास की वस्तु हो गयी है। इसका कारण क्या है? क्या तुम जानते नहीं हो? तुम अच्छी तरह जानते हो। ज्ञान की कमी तो तुम में है ही नहीं। सब अनर्थों का मूल कारण यही है कि तुम दुर्बल हो, अत्यन्त दुर्बल हो, तुम्हारा शरीर दुर्बल है, मन दुर्बल है, और अपने पर आत्मश्रद्धा भी विलकुल नहीं है। सँकड़ों सदियों से ऊँची जातियों, राजाओं और विदेशियों ने तुम्हारे ऊपर अत्याचार करके, तुमको चकनाचूर कर डाला है। भाइयो! तुम्हारे ही स्वजनों ने तुम्हारा सब बल हर लिया है। तुम इस समय मेरुदण्डहीन और पददलित कौड़ों के समान हो। इस समय तुमको शक्ति कौन देगा? मैं तुमसे कहता हूँ, इसी समय हमको बल और वीर्य की आवश्यकता है। इस शक्ति को प्राप्त करने का पहला उपाय है—उपनिषदों पर विश्वास करना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ।' 'मुझे न तो तलवार काट सकती है, न वरछी छेद सकती है, न आग जला सकती है और न हवा सुखा सकती है, मैं सर्वशक्तिमान हूँ, सर्वज्ञ हूँ।' इन आशाप्रद और परित्राणपद वाक्यों का सर्वदा उच्चारण करो। मत कहो—हम दुर्बल हैं। हम सब कुछ कर सकते हैं। हम क्या नहीं कर सकते? हमसे सब कुछ हो सकता है। हम सबके भीतर एक ही महिमामय आत्मा है। हमें इस पर विश्वास करना होगा। नचिकेता के समान श्रद्धाशील बनो। नचिकेता के पिता ने जब यज्ञ किया था, उसी समय नचिकेता के भीतर श्रद्धा का प्रवेश हुआ। मेरी इच्छा है—तुम लोगों के भीतर इसी श्रद्धा का आविर्भाव हो, तुममें से हर एक आदमी खड़ा होकर इशारे से सभार को हिला देनेवाला प्रतिभासम्पन्न महापुरुष हो, हर प्रकार से अनन्त ईश्वरतुल्य हो। मैं तुम लोगों को ऐसा ही देखना चाहता हूँ। उपनिषदों से तुमको ऐसी ही शक्ति प्राप्त होगी और वहीं से तुमको ऐसा विश्वास प्राप्त होगा।

प्राचीन काल में केवल अरण्यवासी सन्यासी ही उपनिषदों की चर्चा करते थे। वे रहस्य के विषय बन गये थे। उपनिषद् सन्यासियों तक ही सीमित थे। शंकर ने कुछ सद्य ही कहा है, 'गृही मनुष्य भी उपनिषदों का अव्ययन कर सकते हैं, इससे उनका कल्याण ही होगा, कोई अनिष्ट न होगा।' परन्तु अभी तक यह सस्कार कि उपनिषदों में वन, जगल अथवा एकान्तवास का ही वर्णन है, मनुष्यों के मन से

१ नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं बहुति पावक ।

न चैनं बलेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥गीता ॥२॥२३॥

नहीं हटा। मैंने तुम लोगों से उस दिन कहा था कि जो स्वयं बेदों के प्रकाशक हैं
 उन्हीं की कृपण के द्वारा बेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका सीता एक ही बार फिर
 कास के लिए बनी है यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए
 उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए अवास्त की आवश्यकता है।
 वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है ये केवल अरण्य में अथवा
 मिरिगुहाओं में आवश्यक नहीं रहेंगे बकीलों और न्यायाधीशों में प्रार्थना-मन्दिरों
 में शिष्टों की कुटियों में मछुमों के घरों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र
 ही इन तत्त्वों की पर्चा होनी और ये काम में लाये जायेंगे। हर एक व्यक्ति हर एक
 सत्पान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उसकी पुकार सबके लिए
 है। मम का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए जाति
 साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया
 गया है। मार्ग अनन्त है, बर्म अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता।
 तुम भिष्मपट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए नहीं अच्छा है। अल्प
 छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे अमृत फल की प्राप्ति
 होती है। अतएव जो वहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि
 अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी
 यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। बकीस यदि अपने
 को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकीस होगा। औरों के विषय में भी वही समझो।
 इसका फल यह होगा कि जातिविभाग अनन्त काल तक रह जायगा क्योंकि विविध
 श्रेणियों में विभक्त होगा ही समाज का स्वरूप है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष
 अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामा-
 जिक जीवन में एक विशेष काम में कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो।
 तुम एक देश का शासन कर सकते हो तो मैं एक पुतले जूते की मरम्मत कर सकता
 हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे जूत की मरम्मत
 कर सकते हो? मैं क्या देश का शासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाय स्वाभाविक
 है। मैं जूत की सिकाई करने में अनुर हूँ तुम बेदपाठ में निपुण हो। यह कोई
 कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या
 भी करो तो तुम्हारी प्रसंगा और मुझे एक मेघ चुराने पर ही फाँसी पर सटकना
 हो ऐसा नहीं हो सकता। इनको समाप्त करना ही इत्सा। जातिविभाग अच्छा
 है। जीवन-समस्या के समाधान के लिए वही एकमात्र स्वाभाविक उपाय है।
 मनुष्य अलग अलग वर्गों में विभक्त हूँ यह अनिवार्य है। तुम जहाँ भी जाओ
 जातिविभाग से घृणकार न मिलेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन प्रकार

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड से उखाड़ फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगो को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो मे से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओ की समस्या के बारे मे और स्त्रियो के प्रश्न के विषय मे आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ— क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बारबार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओ का समाधान वे स्वयं कर लेंगी। अरे अत्याचारियो, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नहीं रहे हैं, इस लोक मे या परलोक मे इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हे केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बडा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरो को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के
 १ भगवान् को देखना चाहिए, अपनी

नहीं हटा। मैंने तुम लोगों से उम दिन कहा था कि जो स्वयं वेदों के प्रकाशक हैं उन्हीं की कृपा के द्वारा वेदों की एकमात्र प्रामाणिक टीका गीता एक ही बार फिर काम के लिए बनी है। यह सबके लिए और जीवन की सभी अवस्थाओं के लिए उपयोगी है। तुम कोई भी काम करो तुम्हारे लिए ब्रह्मन्त की आवश्यकता है। वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरब्य में बबला गिरियुवाओं में आबद्ध नहीं रहने बकीलों और स्यावापीधों में प्रार्थना-मन्त्रों में शिष्टों की कुटियों में मछुओं के पत्तों में छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—उत्सव ही इन तत्त्वों की जन्म होनी और ये काम में काम जायेंगे। हर एक व्यक्ति हर एक संस्थान चाहे जो काम करे, चाहे किस अवस्था में हो—उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धांतों को मछुए यदि साधारण जन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय धास्त्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है, पथ अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता। तुम मिच्छादत भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए नहीं अच्छा है। अल्प छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय तो उससे बहुमुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके करे। मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर विस्तृत करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होया। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होना। बकीस यदि अपने को आत्मा समझे तो वह एक अच्छा बकीस होगा। बीरों के नियम में भी यही समझो। इसका फल यह होगा कि आतिविभाग अनन्त काळ तक रह जायगा क्योंकि विविध श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। आतिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम में कर सकता हूँ तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक बेल का सासन कर सकते हो तो मैं एक पुराने बूते की मरम्मत कर सकता हूँ किन्तु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते। क्या तुम मेरे बूते की मरम्मत कर सकते हो? मैं क्या बेल का सासन कर सकता हूँ? यह कार्यविभाग स्वाभाविक है। मैं बूते की ठिकाने करने में बतुर हूँ तुम बेबयाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझ एक सेब चुपाने पर ही फाँसी पर लटकना हो ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होना। आतिविभाग अच्छा है। अविद्वान्-अनन्त के अन्तर्गत के लिए मछुए एकमात्र स्वाभाविक उपाय है। मनुष्य अल्प अल्प बनों में विभक्त होगा यह अनिवार्य है। तुम जहाँ भी जाओ आतिविभाग से अटकार न मिलेगा किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि

का विशेषाधिकार भी रहेगा। इनको जड से उखाड़ फेंकना होगा। यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ, पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसीको कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हो। सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगो में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न के विषय में आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ— क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बार-बार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़नेवाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान् हो? दूर रहो! अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेंगी। अरे अत्याचारियों, क्या तुम समझते हो कि तुम सबके लिए सब कुछ कर सकते हो? हट जाओ, दूर रहो! ईश्वर सबकी चिन्ता करेंगे। अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले तुम हो कौन? नास्तिको, तुम यह सोचने का दुस्साहस कैसे करते हो कि तुम्हारा ईश्वर पर अधिकार है? क्या तुम जानते नहीं कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर ही का स्वरूप है? तुम अपना ही कर्म करो, तुम्हारे लिए तुम्हारे सिर पर बहुत से कर्मों का भार है। नास्तिको! तुम्हारी जाति तुमको आसमान पर चढ़ा दे, तुम्हारा समाज तुम्हारी प्रशंसा के पुल बाँध दे, मूर्ख लोग तुम्हारी तारीफ करें, किन्तु ईश्वर सो नहीं रहे हैं, इस लोक में या परलोक में इसका दण्ड तुम्हें अवश्य मिलेगा।

अतएव हर एक स्त्री को, हर एक पुरुष को और सभी को ईश्वर के ही समान देखो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा करने का अधिकार है। प्रभु की सन्तान की, यदि भाग्यवान् हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी सन्तान की सेवा कर सकोगे, तो तुम धन्य हो जाओगे, अपने ही को बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुमको अधिकार मिला और दूसरों को नहीं मिला। केवल ईश्वर-पूजा के भाव से सेवा करो। दरिद्र व्यक्तियों में हमको भगवान् को देखना चाहिए, अपनी

ही मुक्ति के लिए उनके निकट जाकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और क्लेश प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी पागल कोड़ी पापी आदि स्वस्वों में बिचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उद्धार करें। मेरे सम्बन्ध बड़े गम्भीर हैं और मैं उन्हें फिर दुःखदाता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्व-श्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन भिन्न भिन्न रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकने की चारणा त्याग दो। जिस प्रकार पीने के बढ़ने के लिए बस मिट्टी बामु आदि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पीना अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण मात्र ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार दूसरों की उन्नति के साधन एकत्र करके उत्तकाहित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिद्ध प्रकाश जाओ। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा कार्य शेष नहीं हुआ है। शरीरों में ज्ञान का विस्तार करो धर्मियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो क्योंकि बच्चों की अपेक्षा धर्मियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अनेक लोगों को भी प्रकाश दिखानो। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आवश्यक शिक्षा का मिथ्याभिमान बुरा प्रचल ही रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और शेष सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मयोगाधिकारस्ते मा कर्मैषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्नृणां ते सर्वोऽस्त्यकर्मणि॥

(गीता २।४७)

—कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं। तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म त्याग करने की और न हो।

सबको युग पूर्व हमारे पूर्वपुरुषों को जिस प्रभु में ऐसे उदात्त सिद्धान्त सिद्धनाये हैं, वे हमें उन बातों को काम में आने की सक्ति दें और हमारी सहायता करें।

भारत के महापुरुष

[मद्रास में दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषों के विषय में कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नहीं मिला, जिस अतीत के अन्धकार में पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत में इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड़ हज़ारों वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अतः इन महर्षियों में से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में हमें कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदों में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियों में, याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में, पुराणों और तन्त्रों में दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योंकि स्मृति और श्रुति में यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मत यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियों और पुराणों पर छोड़ दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय में श्रुति के कहे उपदेशों से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय में जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति में है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति में है। केवल विशेष अवस्थाओं के विधान श्रुति में नहीं है। समय समय पर स्मृतियों ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियों ने श्रुति में विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमें पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

से मुक्ति के लिए उनके निकट आकर हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। अनेक दुःखी और कंठाक प्राणी हमारी मुक्ति के माध्यम हैं, ताकि हम रोगी पागल कोड़ी पापी खादि स्वर्गों में विचरते हुए प्रभु की सेवा करके अपना उधार करें। मेरे सख्य बड़े मन्मीर है और मैं उन्हें फिर ब्रह्मता हूँ कि हम लोगों के जीवन का सर्व श्रेष्ठ सौभाग्य यही है कि हम इन मित्र मित्र रूपों में विराजमान भगवान् की सेवा कर सकते हैं। प्रभुत्व से किसीका कल्याण कर सकने की धारणा त्याग दो। जिस प्रकार पीने के बदन के लिए जल मिट्टी वायु खादि पदार्थों का संग्रह कर देने पर फिर वह पीना अपनी प्रकृति के नियमानुसार आवश्यक पदार्थों का ग्रहण आप ही कर लेता है और अपने स्वभाव के अनुसार बढ़ता जाता है उसी प्रकार बूझों की उत्पत्ति के साधन एकत्र करके उनका हित करो।

संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो प्रकाश सिद्ध प्रकाश ज्ञानो। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक सब लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायें तब तक तुम्हारा कार्य सेष नहीं हुआ है। अरीशों में ज्ञान का विस्तार करो धर्मियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो क्योंकि अरिओं की अपेक्षा धर्मियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। अपङ्ग लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए, क्योंकि आजकल धिमा का मिथ्याभिमान बुरा प्रबल हो रहा है। इसी तरह सबके निकट प्रकाश का विस्तार करो। और सेष सब भगवान् पर छोड़ दो क्योंकि स्वयं भगवान् के शब्दों में—

कर्मयोग्याधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

ना कर्मफलम्येतुर्नृणां तै सर्वोत्सवकर्मणि॥

(गीता २।४७)

—‘कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में नहीं तुम इस भाव से कर्म मत करो जिससे तुम्हें फल-भोग करना पड़े। तुम्हारी प्रकृति कर्म त्याग करने की ओर न हो।

सकड़ों धुम पूर्व हमारे पूर्वपुरुषों को जिस प्रभु ने ऐसे उदारत सिद्धांत सिखाया है, वे हमें उन आदर्शों को काम में खाने की शक्ति दे और हमारी सहायता करें।

भारत के महापुरुष

[मद्रास में दिया हुआ भाषण]

भारतीय महापुरुषों के विषय में कुछ कहने के पहले मुझे उस समय का स्मरण होता है, जिस समय का पता इतिहास को नहीं मिला, जिस अतीत के अन्वकार में पैठकर भेद खोलने का पौराणिक परम्पराएँ वृथा प्रयत्न करती हैं। भारत में इतने महापुरुष पैदा हुए हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती, और महापुरुष पैदा करना छोड़ हज़ारों वर्षों से इस हिन्दू जाति ने और किया ही क्या? अतः इन महर्षियों में से युगान्तर करनेवाले कुछ सर्वश्रेष्ठ आचार्यों का वर्णन अर्थात् उनके चरित्र की आलोचना करके जो कुछ मैंने समझा है, वही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

पहले अपने शास्त्रों के सम्बन्ध में हमें कुछ जान लेना चाहिए। हमारे शास्त्रों में सत्य के दो आदर्श हैं। पहला वह है, जिसे हम सनातन सत्य कहते हैं, और दूसरा वह, जो पहले की तरह प्रामाणिक न होने पर भी, विशेष विशेष देश, काल और पात्र पर प्रयुज्य है। श्रुति अथवा वेदों में जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का पारस्परिक सम्बन्ध वर्णित है। मन्वादि स्मृतियों में, याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में, पुराणों और तन्त्रों में दूसरे प्रकार का सत्य है। ये दूसरी कोटि के ग्रन्थ और शिक्षाएँ श्रुति के अधीन हैं, क्योंकि स्मृति और श्रुति में यदि विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणस्वरूप ग्रहण करना होगा। शास्त्रसम्मत यही है। अभिप्राय यह कि श्रुति में जीवात्मा की नियति और उसके चरम लक्ष्यविषयक मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन है, और इनकी व्याख्या तथा विस्तार का काम स्मृतियों और पुराणों पर छोड़ दिया गया है—वे प्रथमोक्त सत्य के ही सविस्तर वर्णन हैं। साधारणतया मार्ग-निर्देश के लिए श्रुति ही पर्याप्त है। धार्मिक जीवन बिताने के लिए सारतत्त्व के विषय में श्रुति के कहे उपदेशों से अधिक न और कुछ कहा जा सकता है, और न कुछ जानने की आवश्यकता ही है। इस विषय में जो कुछ आवश्यक है, वह श्रुति में है, जीवात्मा की सिद्धि-प्राप्ति के लिए जो जो उपदेश चाहिए, उनका सम्पूर्ण वर्णन श्रुति में है। केवल विशेष अवस्थाओं के विधान श्रुति में नहीं है। समय समय पर स्मृतियों ने इनकी व्यवस्था दी है।

श्रुति की एक अन्य विशेषता यह है कि अनेक महर्षियों ने श्रुति में विभिन्न सत्य सकलित किये हैं, इनमें पुरुष अधिक हैं, किन्तु कुछ महिलाएँ भी हैं। उनके

व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अथवा उनके जन्म-काल आदि के विषय में हमें बहुत कम ज्ञान है, किन्तु उनके सर्वोत्कृष्ट विचार बिल्कुं स्पष्ट आविष्कार कहना ही उपयुक्त होगा हमारे देश के धर्म-साहित्य वेदों में लेखबद्ध और रचित हैं। पर स्मृतियों में श्रुतियों की जीवनी और प्रायः उनके कार्यकलाप विशेष रूप से वेदों को मिलाते हैं स्मृतियों में ही हम बहुमुक्त महाशक्तिवाली प्रमादोत्पादक और संसार को संघाकित करनेवाले व्यक्तियों का सर्वप्रथम परिचय प्राप्त करते हैं। कमी कमी उनके समुदाय और उज्ज्वल चरित्र उनके उपदेशों से भी अधिक उत्कृष्ट जान पड़ते हैं।

हमारे धर्म में निर्मूलक सगुण ईश्वर की शिक्षा है यह उसकी एक विशेषता है, बिना हमें समझना चाहिए। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धों से रहित अनन्त समाप्त सिद्धान्तों के साथ साथ असंख्य व्यक्तित्वों अर्थात् अवतारों के भी उल्लेख हैं परन्तु मुक्ति अथवा वेद ही हमारे धर्म के मूल स्रोत है जो पूर्णतः अपौरुषेय हैं। बड़े बड़े आचार्यों बड़े बड़े अवतारों और महर्षियों का उल्लेख स्मृतियों और पुराणों में है। और ध्यान देने योग्य एक बात यह भी है कि केवल हमारे धर्म को छोड़कर संसार में प्रत्येक अन्य धर्म किसी धर्म-प्रवर्तक अथवा धर्म-प्रवर्तकों के जीवन से ही अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ईसाई धर्म ईसा के, इस्लाम धर्म मुहम्मद के बौद्ध धर्म बुद्ध के जैन धर्म जिनों के और अस्याम्य धर्म अस्याम्य व्यक्तियों के जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित है। इसलिए इन महापुरुषों के जीवन के ऐतिहासिक प्रमाणों को लेकर उन धर्मों में जो स्पष्ट वाद-विवाद होता है, वह स्वाभाविक है। यदि कभी इन प्राचीन महापुरुषों के अस्तित्वविषयक ऐतिहासिक प्रमाण दुर्बल होते हैं तो उनकी धर्मस्त्री अट्टाकिन्ना गिरकर चूर चूर हो जाती है। हमारा धर्म व्यक्तिविशेष पर प्रतिष्ठित न होकर समाप्त सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है, अतः हम उस विपत्ति से मुक्त हैं। किसी महापुरुष यहाँ तक कि किसी अवतार के कथन को ही तुम अपना धर्म मानते हो ऐसा नहीं है। कृष्ण के बचनों से वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती किन्तु वे वेदों के अनुगामी हैं, इसीसे कृष्ण के वे वाक्य प्रामाणिक हैं। कृष्ण वेदों के प्रमाण नहीं हैं, किन्तु वेद ही कृष्ण के प्रमाण हैं। कृष्ण की महानता इस बात में है कि वेदों के जितने प्रचारक हुए हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ वे ही हैं। अस्याम्य अवतार और समस्त महर्षियों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही समझो। हमारा प्रथम सिद्धान्त है कि मनुष्य की पूर्णता-माप्ति के लिए, उसकी मुक्ति के लिए, जो कुछ आवश्यक है उसका वर्णन वेदों में है। कोई और नया आविष्कार नहीं हो सकता। समस्त ज्ञान के अन्त अन्तस्थ पूर्व एकरूप के जाने तुम कभी बढ़ नहीं सकते। इस पूर्व एकरूप का आविष्कार बहुत पहले ही वेदों में किया है इससे अधिक अग्रसर

होना असम्भव है। 'तत्त्वमसि' का आविष्कार हुआ कि आध्यात्मिक ज्ञान सम्पूर्ण हो गया। यह 'तत्त्वमसि' वेदो में ही है। विभिन्न देश, काल, पात्र के अनुसार समय समय की केवल लोकशिक्षा शेष रह गयी। इस प्राचीन सनातन मार्ग में मनुष्यो का चलना ही शेष रह गया, इसीलिए समय समय पर विभिन्न महापुरुषो और आचार्यों का अम्युदय होता है। गीता में श्री कृष्ण की इस प्रसिद्ध वाणी के अतिरिक्त उस तत्त्व का वर्णन ऐसे सुन्दर और स्पष्ट रूप से कही नहीं हुआ है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

(गीता ४।७)

—हे भारत, जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब मैं धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए समय समय पर अवतार ग्रहण करता हूँ। यही भारतीय धारणा है।

इससे निष्कर्ष क्या निकलता है? एक ओर ये सनातन तत्त्व हैं, जो स्वतः प्रमाण हैं, जो किसी प्रकार की युक्ति के ऊपर नहीं टिके हैं, जो बड़े से बड़े ऋषियों के अथवा तेजस्वी से तेजस्वी अवतारों के वाक्यों के ऊपर नहीं ठहरे हैं। यहाँ हमारा कहना है कि भारतीय विचारों की उक्त विशेषता के कारण हम वेदान्त को ही ससार का एकमात्र सार्वभौम धर्म कहने का दावा कर सकते हैं और यह ससार का एकमात्र वर्तमान सार्वभौम धर्म है, क्योंकि यह व्यक्तिविशेष के स्थान पर सिद्धान्त की शिक्षा देता है। व्यक्तिविशेष के चलाये हुए धर्म को ससार की समग्र मानव जाति ग्रहण नहीं कर सकती। अपने ही देश में हम देखते हैं कि यहाँ कितने महापुरुष हो गये हैं। हम एक छोटे से शहर में देखते हैं कि उस शहर के लोग अनेक व्यक्तियों को अपना आदर्श चुनते हैं। अतः समस्त ससार का एकमात्र आदर्श मुहम्मद, बुद्ध अथवा ईसा मसीह ऐसा कोई एक व्यक्ति किस प्रकार हो सकता है? अथवा समस्त नैतिकता, आचरण, आध्यात्मिकता तथा धर्म का सत्य एक व्यक्ति, केवल एक व्यक्ति की आज्ञापति पर किस प्रकार आधारित हो सकता है? वेदान्त धर्म में इस प्रकार किसी व्यक्तिविशेष के वाक्यों को प्रमाण मान लेने की आवश्यकता नहीं। मनुष्य की सनातन प्रकृति ही इसका प्रमाण है, इसका आचार-शास्त्र मानव के सनातन आध्यात्मिक एकत्व पर प्रतिष्ठित है, जो चेष्टा द्वारा प्राप्त नहीं होता, किन्तु पहले ही से लब्ध है। दूसरी ओर हमारे ऋषियों ने अत्यन्त प्राचीन काल से ही समझ लिया था कि मानव जाति का अधिकांश किसी व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। उनको किसी न किसी रूप में व्यक्तिविशेष ईश्वर अवश्य चाहिए।

जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिबिनाय ईश्वर के बिबद्ध प्रचार किया या उनके देहत्याग के पदचात् पचास वर्ष में ही उनका गिर्घ्नी में उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्तिबिधेय ईश्वर की भी भावदपकटा है और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिबिधेय ईश्वर की पूजा कल्पना से बढ़कर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं। जब कि काल्पनिक व्यक्तिबिधेय ईश्वर ही सौ में निर्यानत्र प्रतिपात उपासना ने अपोष्य ही होते हैं। किसी प्रकार के काल्पनिक ईश्वर की अपेक्षा अपनी काल्पनिक रचना की अपेक्षा अर्थात् ईश्वर सम्बन्धी जो भी धारणा हम बना सकते हैं उसकी अपेक्षा वे पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम सोच जो भी धारणा रख सकते हैं उसकी अपेक्षा की कल्प्य बहुत बढ़े हैं। हम अपने मन में जितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के काल्पनिक देवताओं को परज्युत करके वे बिबेकानन्द से मनुष्यों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए हम महापुरुषों की इन अवतारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं, उन्होंने और भी आगे बढ़कर कहा है

यद्यत् विभूतिस्तु सर्वं श्रीमद्विजितमेव वा।

तत्तदेवावबुद्धत्वं मम तेर्षोऽप्यसम्भवम्॥

(गीता १।१४१)

— मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ। मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देश के किसी भी साधु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के गिरनों और मुसलमानों की मस्जिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें? मने पहले ही कहा है हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना उदार, इतना प्रबल है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदर्शपूर्णतः ग्रहण कर सकता है। संसार में जहाँ के जितने आदर्श हैं उनको इसी समग्र ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे उनके लिए हम धर्म के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होना बेबाक धर्म ही अपनी विस्तार भुजाओं को फैलाकर सबको हृदय से जपा लेगा।

ईश्वर के अवताररूप्य महाम् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी कल्पना यही

घारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदों में ऋषि शब्द का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आर्य वाक्य विशेष प्रमाण माने जाते हैं। हमें इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिमने किमी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रश्न पूछा जाता है कि धर्म का प्रमाण क्या है? बाह्य इन्द्रियों में धर्म की सत्यता प्रमाणित नहीं होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने कहा है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। — 'मन के सहित वाणी जिमको न पाकर जहाँ से लीट आती है।' न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन। — 'जहाँ आँखों की पहुँच नहीं, जहाँ वाणी भी नहीं जा सकती और मन भी नहीं जा सकता।' युग युग में यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यों का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नों का उत्तर बाह्य प्रकृति नहीं दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह मदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखड, अविभाज्य सनातन के विषय में कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नहीं। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड पदार्थ से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने में यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियों में नहीं है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यों के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन में, हममें से प्रत्येक के जीवन में, सम्भवतः जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमें शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरों पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दों की। साधारण जनों के भी जीवन में ऐसा होता है, पर इसको अम्यास के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगों पहले ऋषियों ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियों द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नहीं, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नहीं हो सकती। हमें समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मारूपी अनन्त शृंखला का एक क्षुद्र अंश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नहीं है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अंश है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में निर्भय होकर

जिन बुद्धदेव ने व्यक्तिविशेष ईश्वर के विरुद्ध प्रचार किया था उनके देहत्याग के पश्चात् पचास वर्षों में ही उनके शिष्यों ने उनको ईश्वर मान लिया। किन्तु व्यक्ति-विशेष ईश्वर की भी आवश्यकता है और हम जानते हैं कि किसी व्यक्तिविशेष ईश्वर की पूजा कल्पना से बचकर जीवित ईश्वर इस लोक में समय समय पर उत्पन्न होकर हम लोगों के साथ रहते भी हैं जब कि कास्पनिक व्यक्तिविशेष ईश्वर तो ही में निर्यातके प्रतिष्ठित उपासना के अयोग्य ही होते हैं। किसी प्रकार के कास्पनिक ईश्वर की अपेक्षा अपनी कास्पनिक रचना की अपेक्षा यद्यत् ईश्वर सम्बन्धी जो भी चारणा हम बना सकते हैं, उसकी अपेक्षा वे पूजा के अधिक योग्य हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में हम सोम जो भी चारणा रख सकते हैं, उसकी अपेक्षा भी कृष्ण बहुत बड़े हैं। हम अपने मन में बितने उच्च आदर्श का विचार कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा बुद्धदेव अधिक उच्च आदर्श हैं, जीवित आदर्श हैं। इसीलिए सब प्रकार के कास्पनिक देवताओं को परह्युत करके वे फिर काल से मनुष्यों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

हमारे ऋषि यह जानते थे इसीलिए उन्होंने समस्त भारतवासियों के लिए इन महापुरुषों की इन भक्तारों की पूजा करने का मार्ग खोला है। इतना ही नहीं जो हमारे सर्वश्रेष्ठ अवतार है उन्होंने और भी आगे बढ़कर कहा है

यद्यत् विनूतिम्त् सत्त्वं श्रीमद्ब्रह्मदेव वा ।

तत्तदेवावाण्ड त्वं मम तेषांऽग्रसम्भबम् ॥

(गीता १ । ४१)

—‘मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है समस्त जहाँ में वर्तमान है मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

यह हिन्दुओं के लिए समस्त देशों के समस्त अवतारों की उपासना करने का द्वार खोल देता है। हिन्दू किसी भी देश के किसी भी साधु-महात्मा की पूजा कर सकते हैं। हम बहुधा ईसाइयों के निरर्थकों और मुसलमानों की मस्जिदों में जाकर उपासना भी करते हैं। यह अच्छा है। हम इस तरह उपासना क्यों न करें? मैंने पहले ही कहा है, हमारा धर्म सार्वभौम है। यह इतना जबाब, इतना प्रशस्त है कि यह सब प्रकार के आदर्शों को आदरपूर्वक ग्रहण कर सकता है। संसार में धर्मों के बितने आदर्श हैं उनको इसी समय ग्रहण किया जा सकता है और भविष्य में जो समस्त विभिन्न आदर्श होंगे उनके लिए हम धर्म के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनको भी इसी प्रकार ग्रहण करना होना बेदान्त धर्म ही अपनी विनाश मुजाबों की ईकाकर सबको हृदय से लया लेना।

ईश्वर के अवताररूपका महान् ऋषियों के सम्बन्ध में हमारी कल्पना यही

धारणा है। इनकी अपेक्षा एक प्रकार के नीचे दर्जे के महापुरुष और हैं। वेदों में ऋषि शब्द का उल्लेख बारम्बार पाया जाता है और आजकल तो यह एक प्रचलित शब्द हो गया है। आर्षं वावय विधेय प्रमाण माने जाते हैं। हमें इसका भाव समझना चाहिए। ऋषि का अर्थ है मन्त्रद्रष्टा अर्थात् जिमने किमी तत्त्व का दर्शन किया हो। अत्यन्त प्राचीन काल में ही प्रश्न पूछा जाता है कि धर्म का प्रमाण क्या है? बाह्य इन्द्रियों में धर्म की मत्प्यता प्रमाणित नहीं होती, यह अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋषियों ने कहा है यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। — 'मन के सहित वाणी जिमको न पाकर जहाँ से लौट आती है।' न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन। — 'जहाँ आँखों की पहुँच नहीं, जहाँ वाणी भी नहीं जा सकती और मन भी नहीं जा सकता।' युग युग से यही घोषणा रही है। आत्मा का अस्तित्व, ईश्वर का अस्तित्व, अनन्त जीवन, मनुष्यों का चरम लक्ष्य आदि प्रश्नों का उत्तर बाह्य प्रकृति नहीं दे सकेगी। यह मन सदा परिवर्तनशील है, मानो यह सदा बहता जा रहा है। यह परिमित है, मानो इसके छोटे छोटे टुकड़े कर दिये गये हैं। यह प्रकृति किस प्रकार उस अनन्त, अपरिवर्तनशील, अखण्ड, अविभाज्य सनातन के विषय में कुछ कह सकती है? यह कदापि सम्भव नहीं। इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्यहीन जड़ पदार्थ से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने की मनुष्य जाति ने जब कभी वृथा चेष्टा की है, परिणाम कितना भयानक हुआ है। फिर यह वेदोक्त ज्ञान कहाँ से आया? ऋषि होने में यह ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान इन्द्रियों में नहीं है। पर क्या इन्द्रियाँ ही मनुष्यों के लिए सब कुछ हैं? यह कहने का किसे साहस है कि इन्द्रियाँ ही सारसर्वस्व हैं? हमारे जीवन में, हमसे प्रत्येक के जीवन में, सम्भवतः जब हमारे सामने ही किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाती है, जब हमको कोई आघात पहुँचता है अथवा जब अत्यधिक आनन्द हमको प्राप्त होता है, उसमें शान्ति के क्षण आते हैं। अनेक दूसरे अवसरों पर ऐसा भी होता है कि मन स्थिर होकर क्षण भर के लिए अपने सच्चे स्वरूप का अनुभव करता है, उस अनन्त की झलक पा जाता है, जहाँ न मन की पहुँच है और न शब्दों की। साधारण जनो के भी जीवन में ऐसा होता है, पर इसको अम्याम के द्वारा प्रगाढ, स्थिर और पूर्ण रूप देना होगा। युगो पहले ऋषियों ने आविष्कार किया था कि आत्मा न तो इन्द्रियों द्वारा ही बद्ध है और न किसी सीमा से ही घिर सकती है, केवल इतना ही नहीं, वह इन्द्रियग्राह्य ज्ञान के द्वारा भी सीमाबद्ध नहीं हो सकती। हमें समझना होगा कि ज्ञान उस आत्मरूपी अनन्त शृङ्खला का एक क्षुद्र अंश-मात्र है। सत्ता ज्ञान से अभिन्न नहीं है, ज्ञान उसी सत्ता का एक अंश है। ऋषियों ने ज्ञान की अतीत भूमि में निर्भय होकर

आत्मा का अनुसन्धान किया था। ज्ञान पंचेन्द्रियों द्वारा सीमाबद्ध है। आध्यात्मिक ज्ञान के सत्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को ज्ञान की असीम भूमि में इन्द्रियों के परे जाना होगा। और इस समय भी ऐसे मनुष्य हैं, जो पंचेन्द्रियों की सीमा के परे जा सकते हैं। वे ही ऋषि कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक सत्यो का साक्षात्कार किया है।

जपने सामने की इस मेधा को जिस प्रकार हम प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं उसी तरह वेदोक्त सत्यों का प्रमाण भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यह हम इन्द्रियों से बच रहे हैं और आध्यात्मिक सत्यों का भी हम जीवात्मा की जानासीत अवस्था में साक्षात् करते हैं। ऐसा ऋषित्व प्राप्त करना वेद काष्ठ सिंग अथवा जातिविशेष के ऊपर निर्भर नहीं करता। वास्तव्यपन निर्मयतापूर्वक बोधना करते हैं कि यह ऋषित्व ऋषियों की सन्तानों आर्य-अनायीं यहाँ तक कि स्केच्छों की भी साधारण सम्पत्ति है।

यही वेदा का ऋषित्व है। हमको भारतीय धर्म के इस आदर्श को सर्वथा स्मरण रखना होगा और मेरी इच्छा है कि संसार की अन्य जातियाँ भी इस आदर्श को समझकर भाव रखें क्योंकि इससे धार्मिक कड़ाई-समझे कम हो जायेंगे। शास्त्र ग्रन्थों में धर्म नहीं होता अथवा सिद्धार्थ मस्तबायों धर्मियों तथा ठाकिक उचितियों में भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो स्वयं साक्षात्कार करने की वस्तु है। ऋषि होना होगा। ऐ मेरे मित्रो जब तक तुम ऋषि नहीं बनोगे जब तक आध्यात्मिक सत्य के साथ साक्षात् नहीं होगा निश्चय है कि जब तक तुम्हारा धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं हुआ। जब तक तुम्हारी यह अतिवैतन (ज्ञानमूर्ति) अवस्था आरम्भ नहीं होती जब तक धर्म केवल कहने ही की बात है, जब तक यह केवल धर्म-प्राप्ति के लिए तैयार होना ही है। तुम केवल दूसरों से तुनी सुनायी बातों को बुरहाते विहराते सर हो और यहाँ बुद्ध का कुछ ब्राह्मणों से वाद-विवाद करते समय का मुन्दर कपन सामु होता है। ब्राह्मणों ने बुद्धदेव के पास आकर ब्रह्म के स्वरूप पर प्रश्न किये। उक्त महापुरुष ने उन्हींस प्रश्न किया "आपने क्या ब्रह्म को देता है? उन्होंने कहा "नहीं हमने ब्रह्म को नहीं देगा। बुद्धदेव ने पुनः उनसे प्रश्न किया "आपके पिता ने क्या उनको देगा है? — 'नहीं उन्होंने भी नहीं देगा। "क्या आपके पितामह ने उनको देगा है? — हम समझते हैं कि उन्होंने भी उनको नहीं देगा। जब बुद्धदेव ने कहा 'मित्रो आपके पिता पितामहों ने भी उनको नहीं देगा वेद, पुरुर के विग्रह पर आप किस प्रकार विचार करते एवं बुद्धों को परामर्श करने की चेष्टा कर रहे हैं? नमस्त तगार यही कर रहा है। वेदात्म्य की भाषा में हम कहेंगे—नायनप्रजा प्रवचनेन लज्यो न दीपया न बहुना भूतेन।

—‘यह आत्मा वागाडम्बर से प्राप्त नहीं की जा सकती, प्रखर बुद्धि से भी नहीं, यहाँ तक कि बहुत वेदपाठ से भी उसकी प्राप्ति करना सम्भव नहीं।’

ससार की समस्त जातियों से वेदों की भाषा में हमको कहना होगा तुम्हारा लडना और झगडना वृथा है, तुम जिस ईश्वर का प्रचार करना चाहते हो, क्या तुमने उसको देखा है? यदि तुमने उसको नहीं देखा तो तुम्हारा प्रचार वृथा है, जो तुम कहते हो, वह स्वयं नहीं जानते, और यदि तुम ईश्वर को देख लोगे तो तुम झगडा नहीं करोगे, तुम्हारा चेहरा चमकने लगेगा। उपनिषदों के एक प्राचीन ऋषि ने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु के पास भेजा था। जब लडका वापस आया, तो पिता ने पूछा, “तुमने क्या सीखा?” पुत्र ने उत्तर दिया, “अनेक विद्याएँ सीखी हैं।” पिता ने कहा, “यह कुछ नहीं है, जाओ, फिर वापस जाओ।” पुत्र गुरु के पास गया, लडके के लौट आने पर पिता ने फिर वही प्रश्न पूछा और लडके ने फिर वही उत्तर दिया। उसको एक बार और वापस जाना पडा। इस बार जब वह लौटकर आया तो उसका चेहरा चमक रहा था। तब पिता ने कहा, “बेटा, आज तुम्हारा चेहरा ब्रह्मज्ञानी के समान चमक रहा है।” जब तुम ईश्वर को जान लोगे तो तुम्हारा मुख, स्वर, सारी आकृति बदल जायगी। तब तुम मानव जाति के लिए महाकल्याणस्वरूप ही जाओगे। ऋषि की शक्ति को कोई नहीं रोक सकेगा। यही ऋषित्व है और यही हमारे धर्म का आदर्श। और शेष जो कुछ है—ये सब वाग्विलास, युक्ति-विचार, दर्शन, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, यहाँ तक कि वेद भी—यही ऋषित्व प्राप्त करने के सोपान मात्र है, गौण हैं। ऋषित्व प्राप्त करना ही मुख्य है। वेद, व्याकरण, ज्योतिषादि सब गौण हैं। जिसके द्वारा हम उस अव्यय ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करते हैं, वही चरम ज्ञान है। जिन्होंने यह प्राप्त किया है, वे ही वैदिक ऋषि हैं। हम समझते हैं कि यह ऋषि एक कोटि, एक वर्ग का नाम है, जिस ऋषित्व को यथार्थ हिन्दू होते हुए हमें अपने जीवन की किसी न किसी अवस्था में प्राप्त करना ही होगा, और ऋषित्व प्राप्त करना ही हिन्दुओं के लिए मुक्ति है। कुछ सिद्धान्तों में ही विश्वास करने से, सहस्रों मन्दिरों के दर्शन से अथवा ससार भर की कुल नदियों में स्नान करने से, हिन्दू मत के अनुसार मुक्ति नहीं होगी। ऋषि होने पर, मन्त्रद्रष्टा होने पर ही मुक्ति प्राप्त होगी।

वाद के युगों पर विचार करने पर हम देखते हैं कि उस समय सारे ससार को आलोकित करनेवाले अनेक महापुरुषों तथा श्रेष्ठ अवतारों ने जन्म ग्रहण किया है। अवतारों की मर्यादा बहुत है। भागवत के अनुसार भी अवतारों की मर्यादा अमन्य है, इनमें से राम और कृष्ण ही भारत में विशेष भाव में पूजे जाते हैं। प्राचीन और युगों के आदर्शस्वरूप, सत्यपरायणता और नम्र नैतिकता के साकार मूर्ति-

स्वल्प आदर्श तनय आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महात् आर्यि वास्मीकि क द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस भाषा में रामचरित्र का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्रौढक मधुर अथवा सरस भाषा ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय। तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकाश कहूँ कि तुम संसार के सभी साहित्य का भी मंचन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान बूझा चरित्र नहीं निकाल सकते। सीता-चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सदा के लिए एक ही बार चित्रित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो सके ह, किन्तु सीता और नहीं हुई। भारतीय स्त्रियों को बैठा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श हैं। स्त्री-चरित्र के जितने भारतीय आदर्श हैं वे सब सीता क ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त भूमि में सहस्रा वर्षों से वे स्त्री-मुख्य-बालक की पूजा पा रही है। महामहिमावती सीता स्वर्ग सुखता से भी सुख, बँसं तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूर्ण आवेगी। जिन्होंने अधिकृत नाव से ऐसे महादुःख का जीवन व्यतीत किया वहीं नित्य माष्ठी सदा सुखस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवलोक की भी आदर्श गायी पुण्य चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र की मनी भाँति जानते हैं, इसलिए उनका विदेय वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। चाहे हमारे सब पुराण मष्ट हो चार्य यहाँ तक कि हमारे वैद भी कष्ट हो चार्य हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काळ कोट में विकृत हो जाय किन्तु मरी बात ध्यानपूर्वक सुनो अब तक भारत में अतिशय ग्राम्य भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिन्दू रहेंगे तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्ति-मन्त्रा में हो चुका है प्रत्येक हिन्दू घर-गारी क रक्त में सीता विराजमान है। हम सभी सीता की संतान हैं। हमारी नारियों को मायुनिक माओं में रंगने की जो चेष्टाएँ हो रही हैं यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी तो वे सब असफल होंगे वैसे कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियों से सीता के चरित्र-चिह्नों का अनुसरण करके अपनी सज्जति की चेष्टा करनी होगी यही एकमात्र पथ है।

उसके पश्चात् है मयकान् भीष्मक जो नाना भाव से पूजे जाते हैं और जो पुरुष के समान ही स्त्री के बन्धो से समान ही बृद्ध के परम प्रिय इष्ट देवता है। मेरा अभिप्राय उनसे है जिन्हें मागधनकार अथवा नरक के भी तृप्त नहीं होते अन्तिक कहते हैं—

“अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अग्र और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।”

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणों से हमको आश्चर्य नहीं होता। वे एक ही स्वरूप में अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमें अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन बिताते थे। विना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशों के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप में अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशों की साकार मूर्ति थे, वे अनासक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नहीं की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासनों को छोड़ देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नहीं चाहा। उन्होंने वाल्यकाल में जिस सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीड़ा की, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनका वह सरल स्वभाव नहीं छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उम्र प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोड़कर और कोई नहीं ममज्ञ सकता। कौन उन गोपियों को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के सघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्व्यापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर में विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम साकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड़ सकें, जिसके चरणों पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह

स्वल्प आदर्श जन्य आदर्श पति आदर्श पिता सर्वोपरि आदर्श राजा राम का चरित्र हमारे सम्मुख महान् ऋषि वास्वीकि के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि ने जिस भाषा में रामचरित्र का वर्णन किया है, उसकी अपेक्षा अधिक पावन प्राञ्जल मधुर वचनवा सरल भाषा ही नहीं सकती। और सीता के विषय में क्या कहा जाय। तुम संसार के समस्त प्राचीन साहित्य को छान डालो और मैं तुमसे निःसंकोच कहता हूँ कि तुम संसार के सभी साहित्य का भी मंथन कर सकते हो किन्तु उसमें से तुम सीता के समान दूसरा चरित्र नहीं निकाल सकते। सीता चरित्र अद्वितीय है। यह चरित्र सना के लिए एक ही बार विनित हुआ है। राम तो कदाचित् अनेक हो गये हैं किन्तु सीता और नहीं हुईं। भारतीय स्त्रियों को बँसा होना चाहिए, सीता उनके लिए आदर्श है। स्त्री चरित्र के बितने भारतीय आदर्श हैं वे सब सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं और समस्त आर्यावर्त भूमि में सहस्रों वर्षों से वे स्त्री-मुख्य-जातक की पूजा पा रही हैं। महामहिमासपी सीता स्वर्ण पृथ्वी से श्री शूद्रा धर्म तथा सहिष्णुता का सर्वोच्च आदर्श सीता सदा इसी भाव से पूजी जायेंगी। जिन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महाकुल का जीवन व्यतीत किया वहीं नित्य साध्वी सदा पृथ्वीस्वभाव सीता आदर्श पत्नी सीता मनुष्य लोक की आदर्श देवकोक की भी आदर्श नारी पुण्य-चरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। हम सभी उनके चरित्र को मनी भाँति जानते हैं, इसलिए उनका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। भाइँ हमारे सब पुराण मष्ट हो जायँ यहाँ तक कि हमारे देह भी लुप्त हो जायँ हमारी संस्कृत भाषा सदा के लिए काल कोट में विभुष्ट हो जाय किन्तु मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो जब तक भारत में अविधाय साम्य भाषा बोलनेवाले पाँच भी हिलू रहेंगे तब तक सीता की कथा विद्यमान रहेंगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्ति-मग्ना में हो चुका है प्रत्येक हिलू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान है हम सभी सीता की सन्तान हैं। हमारी नारियों को आधुनिक भाषा में रंगने की जो बेपटारें हो रही हैं यदि उन सब प्रयत्नों में उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट कराने की बेपटारें होगी तो वे सब अमकल होंगे जैसा कि हम प्रतिदिन देखते हैं। भारतीय नारियाँ स सीता के चरित्र-चिह्नों का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति की बेपटारें करनी होनी नहीं एकमात्र पद है।

उनके पदवात् हैं मयवान् धीशुक्ल जानाभा भाव से पूजे जाते हैं और जो वृक्ष के समान ही स्त्री के बन्धो व समान ही वृक्ष के परम प्रिय इष्ट देवता हैं। मेरा अभिप्राय उक्त है जिन्हें मापपतकार अबतार बह के भी लुप्त नहीं होते बकि रहने हैं—

“अन्यान्य अवतार उस भगवान् के अग्र और फलस्वरूप है, किन्तु कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं।”

और जब हम उनके विविध भाव-समन्वित चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब उनके प्रति प्रयुक्त ऐसे विशेषणों से हमको आश्चर्य नहीं होता। वे एक ही स्वरूप में अपूर्व सन्यासी और अद्भुत गृहस्थ थे, उनमें अत्यन्त अद्भुत रजोगुण तथा शक्ति का विकास था और साथ ही वे अत्यन्त अद्भुत त्याग का जीवन विताते थे। विना गीता का अध्ययन किये कृष्ण-चरित्र कभी समझ में नहीं आ सकता, क्योंकि अपने उपदेशों के वे आकारस्वरूप थे। प्रत्येक अवतार, जिसका प्रचार करने वे आये थे, उसके जीवित उदाहरण के रूप में अवतरित हुए। गीता के प्रचारक कृष्ण सदा भगवद्गीता के उपदेशों की माकार मूर्ति थे, वे अनासक्ति के उज्ज्वल उदाहरण थे। उन्होंने अपना सिंहासन त्याग दिया और कभी उसकी चिन्ता नहीं की। जिनके कहने ही से राजा अपने सिंहासन को छोड़ देते थे, ऐसे समग्र भारत के नेता ने स्वयं राजा होना नहीं चाहा। उन्होंने बाल्यकाल में जिस सरल भाव से गोपियों के साथ क्रीडा की, जीवन की अन्य अवस्थाओं में भी उनका वह सरल स्वभाव नहीं छूटा। उनके जीवन की उस चिरस्मरणीय घटना की याद आती है, जिसका समझना अत्यन्त कठिन है। जब तक कोई पूर्ण ब्रह्मचारी और पवित्र स्वभाव का नहीं बनता, तब तक उसे इसके समझने की चेष्टा करना उचित नहीं। उस प्रेम के अत्यन्त अद्भुत विकास को, जो उस वृन्दावन की मधुर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, प्रेमरूपी मदिरा के पान से जो उन्मत्त हुआ हो, उसको छोड़कर और कोई नहीं समझ सकता। कौन उन गोपियों को प्रेम से उत्पन्न विरह-यत्रणा के भाव को समझ सकता है, जो प्रेम आदर्शस्वरूप है, जो प्रेम प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता ? और हे मित्रो, इसी गोपी-प्रेम के माध्यम से सगुण और निर्गुण ईश्वरवाद के संघर्ष का एकमात्र समाधान मिल सका है। हम जानते हैं, सगुण ईश्वर मनुष्य की उच्चतम धारणा है। हम यह भी जानते हैं कि दार्शनिक दृष्टि से समग्र जगद्ब्रह्मापी, समस्त ससार जिसकी अभिव्यक्ति है, उस निर्गुण ईश्वर में विश्वास ही स्वाभाविक है। पर साथ ही हम माकार वस्तु की कामना करते हैं, ऐसी वस्तु चाहते हैं, जिसको हम पकड़ सकें, जिसके चरणों पर अपने हृदय को उत्सर्ग कर सकें। इसलिए सगुण ईश्वर ही मनुष्य स्वभाव की उच्चतम धारणा है। किन्तु युक्ति इस धारणा से विस्मित रह

जाती है। यह वही अति प्राचीन प्राचीनतम समस्या है जिसका ब्रह्मसूत्रों में विचार किया गया है। जनवास के समय युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी ने जिसका विचार किया है यदि एक समुद्र सम्पूर्ण समान्य सर्वसक्तिमान ईश्वर है तो इस नारकीय सत्ता का अस्तित्व क्यों है? उसने उसकी सृष्टि क्यों की? उस ईश्वर को महाशक्तिमती कहना ही उचित है। इसकी किसी प्रकार मीमांसा नहीं होती। इसकी मीमांसा गोपियों के प्रेम के सम्बन्ध में जो तुम पढ़ते हो मात्र उससे ही सक्ती है। वे कृष्ण के प्रति प्रथमतः किसी विशेषण को धूना करती हैं वे यह जानने की चिन्ता नहीं करती कि कृष्ण सृष्टिकर्ता है, वे यह जानने की चिन्ता नहीं करती कि वह सर्वसक्तिमान है, वे यह जानने की भी चिन्ता नहीं करती कि वह सर्वसमर्पमान हैं। वे केवल यही समझती हैं कि कृष्ण प्रेममय हैं यही उनके लिए श्रेष्ठ है। गोपियाँ कृष्ण को केवल भूत्वावन का कृष्ण समझती हैं। बहुत सेनाओं के नेता राजाधिराज कृष्ण उनके निकट सदा गोप ही थे।

न चर्त न चर्त न च सुन्दरी कविता वा जगदीश कामये ।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे मक्ताद्मन्तिरह्नुकी त्वमि ॥

—हे जगदीश मैं जन जन कविता अपना सुन्दरी—कृष्ण भी नहीं चाहता है ईश्वर, आपके प्रति जन्मजन्मान्तरों में मेरी अहंशुकी भक्ति हो। यह अहंशुकी भक्ति यह निष्काम कर्म यह निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा का आदर्श कर्म के इतिहास में एक नया अध्याय है। मानव-इतिहास में प्रथम बार भारतभूमि पर सर्वश्रेष्ठ अवतार श्री कृष्ण के भूंह से पहले पहले यह तत्व निकला था। मय और प्रलोभनों के कर्म सदा के लिए बिदा हो गये और मनुष्य-हृदय में नरक-जय और स्वर्न-सुख-योग के प्रलोभन होते हुए भी ऐसे सर्वोत्तम आदर्श का अनुभव हुआ जैसे प्रेम प्रेम के निमित्त कर्तव्य कर्तव्य के निमित्त कर्म कर्म के निमित्त।

और यह प्रेम कैसा है? मैंने तुम लोगों से कहा है कि मोपी-प्रेम को समझना बड़ा कठिन है। हमारे बीच भी ऐसे मूर्खों का जनाब नहीं है जो श्री कृष्ण के जीवन के ऐसे अति अपूर्व अर्थ के अद्भुत तात्पर्य को समझने में असमर्थ है। मैं पुनः कहता हूँ कि हमारे ही रक्त से उत्पन्न अनेक अपवित्र मूर्ख हैं जो मोपी-प्रेम का नाम सुनते ही मानो उसको अत्यन्त अपावन समझकर मय से दूर भाग जाते हैं। उनसे मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि पहले अपने मन को सुद्ध करो और तुमको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस इतिहासकार ने गोपियों के इस अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है, वह आत्मान पवित्र निग्य मूढ व्यासपुत्र मुकेश्वर हैं। जब तक हृदय में स्वार्थगता रहती तब तक मनचप्रेम असम्भव है। यह केवल बुद्धिमानों

है कि 'मैं आपको कुछ देता हूँ, भगवान् आप भी मुझको कुछ दीजिए।' और भगवान् कहते हैं, "यदि तुम ऐसा न भी करोगे, तो तुम्हारे मरने पर मैं तुम्हे देख लूँगा—चिरकाल तक तुम्हे जलाकर मारूँगा।" सकाम व्यक्ति की ईश्वर-धारणा ऐसी ही होती है। जब तक मस्तिष्क में ऐसे भाव रहेगे, तब तक गोपियों की प्रेमजनित विरह की उन्मत्तता मनुष्य किस प्रकार समझेंगे। 'एक बार, केवल एक ही बार यदि उन मधुर अघरो का चुम्बन प्राप्त हो। जिसका तुमने एक बार चुम्बन किया है, चिरकाल तक तुम्हारे लिए उसकी पिपासा बढ़ती जाती है, उसके सकल दुःख दूर हो जाते हैं, तब अन्यान्य विषयों की आसक्ति दूर हो जाती है, केवल तुम्ही उस समय प्रीति की वस्तु हो जाते हो।'^१

पहले काचन, नाम तथा यश और क्षुद्र मिथ्या ससार के प्रति आसक्ति को छोड़ो। तभी, केवल तभी तुम गोपी-प्रेम को समझोगे। यह इतना विशुद्ध है कि बिना सब कुछ छोड़े इसको समझने की चेष्टा करना ही अनुचित है। जब तक अन्तःकरण पूर्ण रूप से पवित्र नहीं होता, तब तक इसको समझने की चेष्टा करना वृथा है। हर समय जिनके हृदय में काम, घन, यशोलिप्सा के बुलबुले उठते हैं, ऐसे लोग गोपी-प्रेम की आलोचना करने तथा समझने का साहस करते हैं। कृष्ण-अवतार का मुख्य उद्देश्य यही गोपी-प्रेम की शिक्षा है, यहाँ तक कि गीता का महान् दर्शन भी उस प्रेमोन्मत्तता की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि गीता में साधक को धीरे धीरे उसी चरम लक्ष्य मुक्ति के साधन का उपदेश दिया गया है, किन्तु इसमें रसास्वाद की उन्मत्तता, प्रेम की मदोन्मत्तता विद्यमान है, यहाँ गुरु और शिष्य, शास्त्र और उपदेश, ईश्वर और स्वर्ग सब एकाकार हैं, भय के भाव का चिह्न-मात्र नहीं है, सब बह गया है—शेष रह गयी है केवल प्रेमोन्मत्तता। उस समय ससार का कुछ भी स्मरण नहीं रहता, भक्त उस समय ससार में उसी कृष्ण, एकमात्र उसी कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता, उस समय वह समस्त प्राणियों में कृष्ण के ही दर्शन करता है, उसका मुँह भी उस समय कृष्ण के ही समान दीखता है, उसकी आत्मा उस समय कृष्णमय हो जाती है। यह है कृष्ण की महिमा।

छोटी छोटी बातों में समय वृथा मत गँवाओ, उनके जीवन के जो मुख्य चरित्र हैं, जो तात्त्विक अश हैं, उन्हींका सहारा लेना चाहिए। कृष्ण के जीवन-चरित्र में बहुत से ऐतिहासिक अन्तर्विरोध मिल सकते हैं, कृष्ण के चरित्र में बहुत से प्रक्षेप हो सकते हैं। ये सभी सत्य हो सकते हैं, किन्तु फिर भी उस समय समाज में जो एक

१ सुरतवर्धन शोकनाशन स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।

इतररागविस्मरण नृणा वितर वीर नस्तेऽध्वरामृतम् ॥ श्रीमद्भागवत ॥

अपूर्व नये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आभास अबस्य था। अन्य किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करने पर यह ज्ञान पड़ता है कि वह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास मात्र है। हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय वैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है। यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह हो सकता है, किन्तु मैं यकीनी होता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि हृष्य के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य निष्ठा और निष्काम प्रेम-तत्त्व के ये उपदेश संसार में मौलिक आविष्कार नहीं हैं। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अबस्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से लिये गये हैं। कारण यह कि हृष्य के उत्पन्न होने के समय सर्वसाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। भगवान् भी हृष्य ही इनके प्रथम प्रचारक हैं उनके विषय वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा श्रेष्ठ आदर्श और कमी विहित नहीं हुआ। हम उनके प्रत्यक्ष में गोपीजनलक्ष्मण कृष्णान-विहारी से और कोई उच्चतर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस उच्चता का प्रवेश होमा जब तुम भगवन्मयी गोपियों के मातृ को समझोगे तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त संसार तुम्हारी दृष्टि से अत्यन्त ही हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से मुक्त हो जायेगा अन्य कोई कर्म न होया यहाँ तक कि जब तुमसे सत्त्वानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में सस प्रेमोन्मत्तता का आविर्भाव होया तभी तुम गोपियों की अनन्त अहैतुकी प्रेम-भक्ति की महिमा समझोगे। यही कर्म है। यदि तुमको वह प्रेम भिन्ना तो सब कुछ भिन्न गथा।

इस बार हम नीचे की तर्कों से प्रवेश करते हुए पीता-प्रचारक हृष्य की विशेषना करेंगे। भारत में इस समय कितने ही सौम्यों से ऐसी बेव्या विवासी पड़ती है, जो जोड़े के भारे पाड़ी पोतलेबाकों की सी होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री हृष्य का गोपियों के साथ प्रेमकीर्षा करना बड़ी ही बटकनेबाड़ी बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। जमुक पठित इस गोपी-प्रेम को अच्छा नहीं समझते बतएव अबस्य गोपियों की बहा हो। बिना यूरोप के छाहकों के जमुनीकरण के हृष्य कैसे टिक सकते हैं? क्वापि नहीं टिक सकते। महाभारत में वो-एक स्वानों को छोड़कर, वे भी वैसे उत्कण्ठनीय नहीं गोपियों का प्रसंग तो है ही नहीं। केवल त्रिपरी की प्रार्थना में और सिधुपाक-वच के समय सिधुपाक की वक्तृता से कृष्णान का वर्णन आया है। ये सब प्रक्षेप अंध हैं।

यूरोप के साहब लोग जिसको नहीं चाहते, वह सब फेंक देना चाहिए। गोपियों का वर्णन, यहाँ तक कि कृष्ण का वर्णन भी प्रक्षिप्त है ! जो लोग ऐसी घोर वाणिज्य-वृत्ति के हैं, जिनके धर्म का आदर्श भी व्यवसाय ही से उत्पन्न हुआ है, उनका विचार यही है कि वे इस ससार में कुछ करके स्वर्ग प्राप्त करेंगे। व्यवसायी सूद दर सूद चाहते हैं, वे यहाँ ऐसा कुछ पुण्य-सचय करना चाहते हैं, जिसके फल से स्वर्ग में जाकर सुख-भोग करेंगे। इनके धर्ममत में गोपियों के लिए अवश्य स्थान नहीं है। अब हम उस आदर्श-प्रेमी श्री कृष्ण का वर्णन छोड़कर और भी नीचे की तह में प्रवेश करके गीता-प्रचारक श्री कृष्ण की विवेचना करेंगे। यहाँ भी हम देखते हैं कि गीता के समान वेदों का भाष्य कभी नहीं बना है और बनेगा भी नहीं। श्रुति अथवा उपनिषदों का तात्पर्य समझना बड़ा कठिन है, क्योंकि नाना भाष्यकारों ने अपने अपने मतानुसार उनकी व्याख्या करने की चेष्टा की है। अन्त में जो स्वयं श्रुति के प्रेरक है, उन्हीं भगवान् ने आविर्भूत होकर गीता के प्रचारक रूप से श्रुति का अर्थ समझाया और आज भारत में उस व्याख्या-प्रणाली की जैसी आवश्यकता है, सारे ससार में इसकी जैसी आवश्यकता है, वैसी किसी और वस्तु की नहीं। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि परवर्ती शास्त्र-व्याख्याता गीता तक की व्याख्या करने में बहुधा भगवान् के वाक्यों का अर्थ और भाव-प्रवाह नहीं समझ सके। गीता में क्या है और आधुनिक भाष्यकारों में हम क्या देखते हैं ? एक अद्वैतवादी भाष्यकार ने किसी उपनिषद् की व्याख्या की, जिसमें बहुत से द्वैतभाव के वाक्य हैं। उसने उनको तोड़-मरोड़कर कुछ अर्थ ग्रहण किया और उन सबका अपनी व्याख्या के अनुरूप मनमाना अर्थ लगा लिया। फिर द्वैतवादी भाष्यकार ने भी व्याख्या करनी चाही, उसमें अनेक अद्वैतमूलक अर्थ हैं, जिनकी खींचतान उसने उनसे द्वैतमूलक अर्थ ग्रहण करने के लिए की। परन्तु गीता में इस प्रकार के किसी अर्थ के विगाड़ने की चेष्टा तुमको नहीं मिलेगी। भगवान् कहते हैं, ये सब सत्य हैं, जीवात्मा धीरे धीरे स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म सीढियों पर चढ़ती जाती है, इस प्रकार क्रमशः वह उस चरम लक्ष्य अनन्त पूर्णस्वरूप को प्राप्त होती है। गीता में इसी भाव को समझाया गया है, यहाँ तक कि कर्मकांड भी गीता में स्वीकृत हुआ है और यह दिखलाया गया है कि यद्यपि कर्मकांड साक्षात् मुक्ति का साधन नहीं है, किन्तु गौण भाव से मुक्ति का साधन है, तथापि वह सत्य है, मूर्ति-पूजा भी सत्य है, मन्व प्रकार के अनुष्ठान और क्रिया-कर्म भी सत्य हैं, केवल एक विषय पर ध्यान रखना होगा—वह है चित्त की शुद्धि। यदि हृदय शुद्ध और निष्कपट हो, तभी उपासना ठीक उतरती है और हमें चरम लक्ष्य तक पहुँचा देती है। ये विभिन्न

अपूर्व नये भाव का उदय हुआ था उसका कुछ आचार व्यवस्था था। अथवा किसी भी महापुरुष या पैगम्बर के जीवन पर विचार करने पर यह ज्ञान पड़ता है कि यह पैगम्बर अपने पूर्ववर्ती कितने ही भावों का विकास भाव है। हम देखते हैं कि उसने अपने देश में यहाँ तक कि उस समय जैसी शिक्षा प्रचलित थी केवल उसीका प्रचार किया है। यहाँ तक कि उस महापुरुष के अस्तित्व पर भी सन्देह ही सकता है, किन्तु मैं चुनौती देता हूँ कि कोई यह साबित कर दे कि कृष्ण के निष्काम कर्म निरपेक्ष कर्तव्य-निष्ठा और निष्काम प्रेम-व्यवस्था के ये उपवेद्य सञ्चार में मौलिक आविष्कार नहीं है। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी एक व्यक्ति ने निश्चय ही इन तत्त्वों को प्रस्तुत किया है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि ये तत्त्व किसी दूसरे मनुष्य से लिये गये हैं। कारण यह कि कृष्ण के उत्पन्न होने के समय सर्वाधारण में इन तत्त्वों का प्रचार नहीं था। मयदान् भी कृष्ण ही इनके प्रथम प्रचारक है। उनके सिष्य वेदव्यास ने पूर्वोक्त तत्त्वों का साधारण जनों में प्रचार किया। ऐसा स्पष्ट आदर्श और कभी विनित नहीं हुआ। हम उनके प्रथम में मोक्षोपलक्षण नृत्वावन-विहारी से और कोई अन्य तर आदर्श नहीं पाते। जब तुम्हारे हृदय में इस उन्मत्तता का प्रवेश होमा जब तुम माम्बन्धी मोपियों के भाव को समझोये तभी तुम जानोगे कि प्रेम क्या वस्तु है। जब समस्त सञ्चार तुम्हारी दृष्टि से अन्तर्गत हो जायेगा जब तुम्हारे हृदय में और कोई कामना नहीं रहेगी जब तुम्हारा चित्त पूर्णरूप से शुद्ध हो जायेगा अन्य कोई कथम न होपा यहाँ तक कि जब तुममें सत्यानुसन्धान की वासना भी नहीं रहेगी तभी तुम्हारे हृदय में उस प्रेमोन्मत्तता का आविर्भाव होपा तभी तुम मोपियों की अनन्त अहंशुकी प्रेम-मन्त्रि की महिमा समझोगे। यही कथम है। यदि तुमको यह प्रेम मिला तो सब कुछ मिस गया।

इस बार हम नीचे की तरफ़ें में प्रवेश करते हुए गीता-अन्वयक कृष्ण की विवेचना करेंगे। भारत में इस समय कितने ही लोगों में ऐसी भ्रष्टा दिसासी पड़ती है, जो बड़े के भावे बड़ी जीतनेवालों की ही होती है। हममें से बहुतों की यह धारणा है कि श्री कृष्ण का मोपियों के साथ प्रेमस्वीका करना बड़ी ही लटकनेवाली बात है। यूरोप के लोग भी इसे पसन्द नहीं करते। अमुक पंडित इस मोपी-धर्म को अच्छा नहीं समझते अतएव अवश्य मोपियों को बहा रो। किना यूरोप के माहवा के अनुमोदन के कृष्ण कैसे टिक सकते हैं? कदापि नहीं टिक सकते। महाभारत में श्री-गुरु स्वामी को छोड़कर, वे भी बँधे उत्सवगनीम नहीं मोपियों का प्रमग तो है ही नहीं। वैचल हीनरी की प्रार्थना से और शिषुपाल-अप के समय शिषुपाल की बन्धुता में नृत्वावन का वर्णन आया है। ये सब प्रयोग अर्थ हैं।

हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं। उनके उपदेशों और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बड़ा निर्भीक प्रचारक समार मे और उत्पन्न नहीं हुआ, कर्मयोगियों मे सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुन वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता मे शिक्षा दी थी, स्वल्पमप्यस्य घर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता २।४०) — 'इस घर्म का थोडा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्। (गीता ९।३२) — 'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके बन्धन, सबकी शृंखला तोड देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

इहैव तैजित सर्गो येषा साम्ये स्थित मनः।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

०

— 'जिनका मन साम्य भाव मे अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म मे ही अवस्थित हैं।'

सम पश्यन् हि सर्वत्र समस्थितमीश्वरम्।

न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥

(गीता १३।२८)

— 'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर ज्ञानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप मे पुन इस मर्त्य लोक मे पधारे, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप मे परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दु खियों को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड ये लोकभाषा मे उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दु खी, गरीब, पतित, भिखमगो के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य मे एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दु ख

उपासना-प्रणालियाँ सत्य हैं, क्योंकि यदि वे सत्य न होतीं तो उनकी सृष्टि ही क्यों हुई? विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय कुछ पाबन्दी एवं कुछ लोगों द्वारा नहीं बनाये गये हैं, और न उन्होंने धन के लोभ से इन धर्मों और सम्प्रदायों की सृष्टि की है, बल्कि कि कुछ आधुनिक लोगों का मत है। वास्तविकता से उनकी व्याख्या कितनी ही मुक्तियुक्त क्यों न प्रतीत हो पर यह बात सत्य नहीं है, इनकी सृष्टि इस तरह नहीं हुई। जीवात्मा की स्वाभाविक आवश्यकता के लिए हम सबका अन्मुख हुआ है। विभिन्न योनियों के मनुष्यों की धर्म-विपासा को परिष्कृत करने के लिए इनका अन्मुख हुआ है। इसलिए तुम्हें इनके विरुद्ध विज्ञान देने की आवश्यकता नहीं। जिस बिना इनकी आवश्यकता नहीं रहेगी उस बिना उस आवश्यकता के अभाव के साथ साथ इनका भी लोभ हो जायगा। पर जब तक उनकी आवश्यकता रहेगी तब तक तुम्हारी आलोचना और तुम्हारी विज्ञान के बावजूद ये अवश्य विद्यमान रहेंगे। उल्टा और बल्कि के खोर से तुम संसार को धून में बहा दे सकते हो किन्तु जब तक मूर्तियों की आवश्यकता रहेगी तब तक मूर्ति-पूजा अवश्य रहेगी। ये विभिन्न अनुष्ठान-पद्धतियाँ और धर्म के विभिन्न सोपान अवश्य रहेये और हम भगवान् श्री कृष्ण के उपदेश से समझ सकते हैं कि इनकी क्या आवश्यकता है।

इसके बाद ही भारतीय इतिहास का एक शोकजनक अध्याय शुरू होता है। हम पीठा में भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के विरोध के कोलाहल की शुरुआत पायी हुई आवाज सुन पाते हैं और देखते हैं कि सम्भव के वे अस्मृत प्रचारक भगवान् श्री कृष्ण बीच में पकड़कर विरोध को हटा रहे हैं। वे कहते हैं, 'सायं जगत् मुझमें उठी तरह भूँचा हुआ है, जिस तरह ताने में मणि गुँबी रहती है।'^१ साम्प्रदायिक झगड़ों की शुरुआत से मुनामी धिनेबासी बीमारी आवाज हम सभी से सुन रहे हैं। सम्भव है कि भगवान् के उपदेश से ये झगड़े कुछ देर के लिए दफ्नये हों तथा सम्भव और शान्ति का संसार हुआ हो किन्तु यह विरोध फिर उत्पन्न हुआ। केवल धर्ममत ही पर नहीं सम्भवतः धर्म के व्यापार पर भी यह विवाद चलता रहा—हमारे समाज के दो प्रबल अंग ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों राजाओं तथा पुरोहितों के बीच विचार आरम्भ हुआ था। और एक हजार वर्ष तक जिस विचार तरंग ने समग्र भारत को सततौर पर किया था उसके सर्वोच्च विचार पर हम एक और महान्द्वि मूर्ति को देखते हैं और वे

१ अतः वरतरं नाम्यस्मिन्निवसि धर्मजय ।

नयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे नविगया इव ॥ मीता ७।७ ॥

हमारे शाक्यमुनि गौतम हैं। उनके उपदेशों और प्रचार-कार्य से तुम सभी अवगत हो। हम उनको ईश्वरावतार समझकर उनकी पूजा करते हैं, नैतिकता का इतना बड़ा निर्भीक प्रचारक ससार में और उत्पन्न नहीं हुआ, कर्मयोगियों में सर्वश्रेष्ठ स्वयं कृष्ण ही मानो शिष्यरूप से अपने उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उत्पन्न हुए। पुनः वही वाणी सुनाई दी, जिसने गीता में शिक्षा दी थी, स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता २।४०) — 'इस धर्म का थोड़ा सा अनुष्ठान करने पर भी महाभय से रक्षा होती है।' स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परा गतिम्। (गीता १।३२) — 'स्त्री, वैश्य और शूद्र तक परमगति को प्राप्त होते हैं। गीता के वाक्य, श्री कृष्ण की वज्र के समान गम्भीर और महती वाणी, सबके वन्धन, सबकी शृंखला तोड़ देती है और सभी को उस परम पद पाने का अधिकारी कर देती है।

इहैव तैजित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

•

(गीता ५।१९)

— 'जिनका मन साम्य भाव में अवस्थित है, उन्होंने यही सारे ससार को जीत लिया है। ब्रह्म समस्वभाव और निर्दोष है, इसलिए वे ब्रह्म में ही अवस्थित हैं।'

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

(गीता १३।२८)

— 'परमेश्वर को सर्वत्र तुल्य रूप से अवस्थित देखकर जानी आत्मा से आत्मा की हिंसा नहीं करता, इसलिए वह परम गति को प्राप्त होता है।'

गीता के उपदेशों के जीते-जागते उदाहरणस्वरूप, गीता के उपदेशक दूसरे रूप में पुनः इस मर्त्य लोक में पधारे, जिससे जनता द्वारा उसका एक कण भी कार्य-रूप में परिणत हो सके। ये ही शाक्यमुनि हैं। ये दीन-दुःखियों को उपदेश देने लगे। सर्वसाधारण के हृदय तक पहुँचने के लिए देवभाषा संस्कृत को भी छोड़ ये लोकभाषा में उपदेश देने लगे। राजसिंहासन को त्यागकर ये दुःखी, गरीब, पतित, भिखमगों के साथ रहने लगे। इन्होंने दूसरे राम के समान चाडाल को भी छाती से लगा लिया।

तुम सभी उनके महान् चरित्र और अद्भुत प्रचार-कार्य को जानते हो। किन्तु इस प्रचार-कार्य में एक भारी त्रुटि थी, जिसके लिए हम आज तक दख

भोग रहे हैं। भगवान् बुद्ध का कुछ बोध नहीं है। उनका चरित्र परम विपुल और उज्ज्वल है। खैर का विषय है कि बौद्ध धर्म के प्रचार से जो विभिन्न ब्रह्मण्य और अधिमित्त जातियाँ धर्म में बुझने लगीं व बुद्धवच के उच्च भावनों का ठीक अनुसरण न कर सकीं। इन जातियों में भागा प्रकार के कुसंस्कार और बीभत्स उपासना-प्रवृत्तियाँ थीं उनके झुंड के झुंड भागों के समाज में घुसने लगे। कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि वे धर्म्य बन गये किन्तु एक ही सतार्थी व उन्होंने अपने सर्व मूल प्रेत आदि निजास करने जिनकी उपासना उनके पूर्वज क्रिया करते थे और इस प्रकार सारा भारत कुसंस्कारों का लीलाक्षेत्र बनकर और लक्ष्मण को पहुँचा। पहले बौद्ध प्राचिहिष्ठा की निन्दा करते हुए वैदिक यज्ञों के घोर विरोधी हो गये थे। उस समय घर घर इन यज्ञों का अनुष्ठान होता था। हर एक घर पर यज्ञ के लिए ब्राह्मण बल्ल्ही थी—बस उपासना के लिए और कुछ ठाट-बाट न था। बौद्ध धर्म के प्रचार से इन यज्ञों का कोप हो गया। उनकी बगल बड़े बड़े ऐश्वर्ययुक्त मन्दिर, मङ्कलीय अनुष्ठान-प्रवृत्तियाँ धानवार पुरोहित तथा वर्तमान काल में भारत में और जो कुछ बिलामी देता है सबका आधिपत्य हुआ। किन्तु ही ऐसे आधुनिक पीढ़ियों के जिनसे अधिक ज्ञान की अपेक्षा की जाता है धर्मों की पढ़ने से यह विदित होता है कि बुद्ध से ब्राह्मणों की मूर्ति-पूजा उठा ही थी। मुझे यह पडकर हँसी आ जाती है। वे नहीं जानते कि बौद्ध धर्म ही ने भारत में ब्राह्मण-धर्म और मूर्ति-पूजा की सृष्टि की थी।

एक ही दो वर्ष हुए, स्व-निर्वास एक प्रतिष्ठित पुराण व एक पुस्तक प्रकाशित की। उससे उन्होंने लिखा कि उन्हें ईसा मसीह के एक अद्भुत जीवन चरित्र का पता मिला है। उसी पुस्तक में एक खान पर उन्होंने लिखा है कि ईसा धर्म निस्सार्थ ब्राह्मणों के पास अगम्य भी के मन्दिर में गये थे किन्तु उनकी संकीर्णता और मूर्ति-पूजा से तग आकर वे वहाँ से विष्णु के कामाक्षी के पास गये और वहाँ से निष्कृष्ट हाकर स्वदेश लौटे। जिन्हें भारत के इतिहास का बोझा भा जान है व इन्हीं विवरण से जान सकते हैं कि पुस्तक में आघोपात्त कैलास-प्रवेश मरा हुआ है क्योंकि अगम्य भी का मन्दिर तो एक प्राचीन बौद्ध मन्दिर है। हमने इसका एक ब्याख्या बौद्ध मन्दिरों को हिन्दू मन्दिर बना लिया। इस प्रकार के धर्म हम इस समय भी बहुत करने पन्ने। मही अगम्य का इतिहास है और उस समय वहाँ एक ही ब्राह्मण न था फिर भी कहा जा रहा है कि ईसा मसीह वहाँ ब्राह्मणों में अवैध धर्म के लिए गये व। हमारे विचार में मूर्ति-पूजा-प्रवृत्तियों की रचना ही गाय है।

इस प्रकार प्राग्निमान के प्रति क्या न मिला अद्भुत आधुनिक धर्म और

नित्य आत्मा के अस्तित्व या अनस्तित्व सम्बन्धी बाल की खाल निकालनेवाले विचारों के होते हुए भी समग्र बौद्ध धर्मरूपी प्रासाद चूर चूर होकर गिर गया और उसका खँडहर बड़ा ही वीमत्स है। बौद्ध धर्म की अवनति से जिन घृणित आचारों का आविर्भाव हुआ, उनका वर्णन करने के लिए मेरे पास न समय है, न इच्छा ही। अति कुत्सित अनुष्ठान-पद्धतियाँ, अत्यन्त भयानक और अश्लील ग्रन्थ—जो मनुष्यों द्वारा न तो कभी लिखे गये थे, और न मनुष्य ने जिनकी कभी कल्पना तक की थी, अत्यन्त भीषण पाशव अनुष्ठान-पद्धतियाँ, जो और कभी धर्म के नाम से प्रचलित नहीं हुई थी—ये सभी गिरे हुए बौद्ध धर्म की सृष्टि हैं।

परन्तु भारत को जीवित रहना ही था, इसीलिए पुनः भगवान् का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था, “जब कभी धर्म की हानि होती है, तभी मैं आता हूँ”—वे फिर से आये। इस बार दक्षिण देश में भगवान् का आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसके बारे में कहा गया है कि उसने सोलह वर्ष की उम्र में ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की थी, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शकराचार्य का अम्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के बालक के लेखों से आधुनिक सभ्य सप्ताह विस्मित हो रहा है, वह अद्भुत बालक था। उसने सकल्प किया था कि समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग में ले जाऊँगा। पर यह कार्य कितना कठिन और विशाल था, इसका विचार भी करो। उस समय भारत की जैसी अवस्था थी, इसका भी तुम लोगों को दिग्दर्शन कराता हूँ। जिन भीषण आचारों का सुधार करने को तुम लोग अग्रसर हो रहे हो, वे उसी अघ पतन के युग के फल हैं। तातार, वलूची आदि भयानक जातियों के लोग भारत में आकर बौद्ध बने और हमारे साथ मिल गये। अपने राष्ट्रीय आचारों की भी वे साथ लाये। इस तरह हमारा राष्ट्रीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशव आचारों से भर गया। उक्त ब्राह्मण युवक को बौद्धों से विरासत में यही मिला था और उसी समय से अब तक भारत भर में इसी अवपतित बौद्ध धर्म पर वेदान्त की पुनर्विजय का कार्य सम्पन्न हो रहा है। अब भी यही काम जारी है, अब भी उसका अन्त नहीं हुआ। महा-दार्शनिक शकर ने आकर दिखलाया कि बौद्ध धर्म और वेदान्त के साराग में विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु उनके शिष्य अपने आचार्यों के उपदेशों का मर्म न समझ हीन हो गये और आत्मा तथा ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करके नास्तिक हो गये। शकर ने यही दिखलाया और तब सभी बौद्ध अपने प्राचीन धर्म का अवलम्बन करने लगे। पर वे उन अनुष्ठानों के आदी बन गये थे। इन अनुष्ठानों के लिए क्या किया जाय, यह कठिन समस्या उठ खड़ी हुई।

तब मतिमान रामानुज का सम्मुख हुआ। शंकर की प्रतिमा प्रखर थी किन्तु उनका हृदय रामानुज के समान उदार नहीं था। रामानुज का हृदय शंकर की अपेक्षा अधिक विस्तार था। उन्होंने पदवस्त्रियों की पीड़ा का अनुभव किया और उनसे सहानुभूति की। उस समय की प्रचलित अनुष्ठान-पद्धतियों में उन्होंने असाक्षित सुधार किया और नयी अनुष्ठान-पद्धतियाँ नयी उपासना-प्रणालियों की सृष्टि उन लोगों के लिए की जिनके लिए ये अत्यावश्यक थी। इसीके साथ उन्होंने ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सबके लिए सर्वोच्च आध्यात्मिक उपासना का द्वार खोल दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारों ओर फैलने लगा उत्तर भारत तक उसका प्रसार हुआ वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लगे किन्तु यह बहुत देर में मुसलमानों के शासन-काल में हुआ। उत्तर भारत के इन अपेक्षाकृत आधुनिक आचार्यों में से शैतन्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म-प्रचार की एक विशेषता की ओर ध्यान दो—तब से धर्म का द्वार सर्वसाधारण के लिए खुला रहा। शंकर के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह वैसा मूक मन्त्र था रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह वैसा ही मूक मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि छोम शंकर को अनुदार मत के पोषक क्यों कहते हैं। उनके सिद्धे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ बिगाड़ गये हैं, उसी तरह शंकराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो द्योतक व्यापक जाता है, सम्भवतः वह उनकी शिक्षा के कारण नहीं बल्कि उनके शिष्यों की जयोम्यता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सत्त शैतन्य गोपियों के प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिनिधि थे। शैतन्यदेव स्वयं एक ब्राह्मण थे उस समय के एक प्रसिद्ध नैयायिक बंध में उनका जन्म हुआ था। वे न्याय के अध्यापक थे तर्क द्वारा सबको परास्त करते थे—यही उन्होंने ब्रह्मपन से जीवन का सम्भवतः आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया। एक इन्हीसे बाद विवाद तर्क न्याय का अध्यापन सब कुछ छोड़ दिया। संसार में भक्ति के बितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं प्रेमोन्मत्त शैतन्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे ब्रह्मण्ड में फैल गयी जिससे सबके हृदय को सान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। शाशु, बसामु, हिनू, मुसलमान पवित्र अपवित्र वैस्या पतित—सभी उनके प्रेम के मापी थे वे सब पर दया रखते थे। पतपि काळ के प्रभाव से सभी ब्रह्मण्ड को प्राप्त होते हैं और उनका जलना हुआ सम्प्रदाय जोर ब्रह्मण्ड की दशा को पहुँच गया है। फिर भी आज तक वह पतित दुर्बल प्लातिष्कृत पतित किसी भी ब्रह्मण्ड में जिनका स्थान नहीं है ऐसे लोगों का

आश्रयस्थान है। परन्तु माय ही सत्य के लिए मुझे न्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायो मे ही हम अद्भुत उदार भाव देखते हैं। शंकर-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायो मे वास्तव मे कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय मे शंकर अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य मे हम जातिविषयक प्रश्नों की शिक्षा के बारे मे अद्भुत उदारता देखते हैं, जब कि उनमे धार्मिक प्रश्नों के विषय मे अत्यन्त सकीर्णता पाते हैं।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विशाल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमे ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनों एक साथ विराजमान हो, जो शंकर के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विशाल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी मे वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत मे अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वों की परिकल्पना करे, जिनसे भारत मे अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायो मे समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मैंने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षालय का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पड़ी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावों से उन्नत हो रहा था, जो भारत के सब शहरों की अपेक्षा विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नहीं जानता था।^१ किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े अत्यन्त प्रतिभावान स्नातकों ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप मे स्वीकार किया। वे अद्भुत महापुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हें उनके विषय मे कुछ भी बताने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद मे अनुसंधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—संपादक।

तब मनिमान रामानुज का अमृत्यु हुआ। तबसे ही प्रथमा प्रणव पी, विन्दु उमता हृदय रामानुज व समान उगार नहीं था। रामानुज का हृदय छार की ओरशा अधिक विनाश था। उद्दान गण्डिनियों की पीड़ा का अनुभव लिया और उमगे गहानुमति की। उम समय की प्रचलित अनुष्ठान-गण्डिनियों में उद्दाने पयायति सुधार लिया और नयी अनुष्ठान-गण्डिनियों नयी उपासना-प्रमादियों की सृष्टि उन लोगो के लिए की। उनके लिए वे अयावश्यक थी। उनके साथ गाव उद्दान बाध्यण से लेकर बाण्डाल तक गया लिए गण्डिन्य आप्यातिभू उपासना का द्वार मोफ दिया। यह था रामानुज का कार्य। उनके कार्य का प्रभाव चारो धार फैलने लगा उत्तर भारत तक उगता प्रसार हुआ वहाँ भी कई आचार्य इसी तरह कार्य करने लग। विन्दु यह बहुत देर में मुसलमानों के सामन-काम में हुआ। उत्तर भारत के इन अग्राहृत आपुनिक आचार्यों में से वैतम्य सर्वश्रेष्ठ हुए। रामानुज के समय से धर्म प्रचार की एक विद्ययता की और प्यात था—उस में धर्म का द्वार सबगामारण के लिए गुम्ना रहा। धरर के पूर्ववर्ती आचार्यों का यह जेगा मूल मन्त्र था रामानुज के परवर्ती आचार्यों का भी यह बीसा ही मूल मन्त्र रहा। मैं नहीं जानता कि लोग धरर को अनुदार मन्त्र के पोपक क्यों कहते हैं। उमने सिग प्रथा में एसा कुछ भी नहीं मिसता जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे। जिस तरह भगवान् बुद्धदेव के उपदेश उनके शिष्यों के हाथ दिये गये हैं उगी तरह धरराराचार्य के उपदेशों पर संकीर्णता का जो दोष ख्याया जाता है सम्भवत यह उनकी शिक्षा के कारण नहीं बरन् उनके शिष्यों की अपोम्यता के कारण है। उत्तर भारत के महान् सन्त वैतम्य गोपियों के प्रेमोन्मत्त भाव के प्रतिमिचि थे। वैतम्यदेव स्वय एक बाध्यण थे उस समय के एक प्रसिद्ध नैयामिक बस में उनका जन्म हुआ था। वे न्याय के अयापक थे तर्क द्वारा सबको परास्त करने थे—यही उन्होंने बचपन से जीवन का उच्चतम आदर्श समझ रखा था। किसी महापुरुष की कृपा से इनका सम्पूर्ण जीवन बदल गया तब इन्होंने धरर विचार, तर्क न्याय का अयापन सब कुछ छोड़ दिया। संसार में भक्ति के बितने बड़े बड़े आचार्य हुए हैं प्रेमोन्मत्त वैतम्य उनमें से एक श्रेष्ठ आचार्य हैं। उनकी भक्ति-तरंग सारे बंयात में फैल गयी जिससे सबके हृदय को शान्ति मिली। उनके प्रेम की सीमा न थी। रामु, असाबु, हिम्बू, मुसलमान पवित्र अपवित्र बैसा पठित—सभी उनके प्रेम के भागी थे वे सब पर पदा रखते थे। भयपि काळ के अभाव से कयी अवनति को प्राप्त होते हैं और उनका बलाया हुआ उष्यरूप धरर अवनति की रक्षा को पहुँच गया है। फिर भी आज तक यह बरिष्ठ, दुर्बल पाठिसुत पठित किसी भी समाज में धिनका खाल नहीं है, ऐसे जीवों का

आश्रयस्थान है। परन्तु साथ ही सत्य के लिए मुझे स्वीकार करना ही होगा कि दार्शनिक सम्प्रदायों में ही हम अद्भुत उदार भाव देखते हैं। गुरु-मतावलम्बी कोई भी यह बात स्वीकार नहीं करेगा कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में वास्तव में कोई भेद है, किन्तु जाति-भेद के विषय में शक अत्यन्त सकीर्णता का भाव रखते थे। इसके विपरीत, प्रत्येक वैष्णवाचार्य में हम जातिविषयक प्रश्नों की शिक्षा के बारे में अद्भुत उदारता देखते हैं, जब कि उनमें धार्मिक प्रश्नों के विषय में अत्यन्त सकीर्णता पाते हैं।

एक का था अद्भुत मस्तिष्क, दूसरे का था विद्याल हृदय। अब एक ऐसे अद्भुत पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, जिसमें ऐसा ही हृदय और मस्तिष्क दोनों एक साथ विराजमान हो, जो शक के प्रतिभा-सम्पन्न मस्तिष्क एवं चैतन्य के अद्भुत, विद्याल, अनन्त हृदय का एक ही साथ अधिकारी हो, जो देखे कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है, जिसका हृदय भारत में अथवा भारत के बाहर दरिद्र, दुर्बल, पतित सबके लिए द्रवित हो, लेकिन साथ ही जिसकी विशाल बुद्धि ऐसे महान् तत्त्वों की परिकल्पना करे, जिनसे भारत में अथवा भारत के बाहर सब विरोधी सम्प्रदायों में समन्वय साधित हो और इस अद्भुत समन्वय द्वारा वह एक हृदय और मस्तिष्क के सार्वभौम धर्म को प्रकट करे। एक ऐसे ही पुरुष ने जन्म ग्रहण किया और मने वर्षों तक उनके चरणों तले बैठकर शिक्षालाभ का सौभाग्य प्राप्त किया। ऐसे एक पुरुष के जन्म लेने का समय आ गया था, इसकी आवश्यकता पड़ी थी, और वह उत्पन्न हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह थी कि उसका समग्र जीवन एक ऐसे शहर के पास व्यतीत हुआ, जो पाश्चात्य भावों से उन्मत्त हो रहा था, जो भारत के सब शहरों की अपेक्षा विदेशी भावों से अधिक भरा हुआ था। वहाँ पुस्तकीय ज्ञान से हर प्रकार से अनभिज्ञ वह रहता था, यह महाप्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना नाम तक लिखना नहीं जानता था।^१ किन्तु हमारे विश्वविद्यालय के बड़े बड़े अत्यन्त प्रतिभावान् स्नातकों ने उसको एक महान् बौद्धिक प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया। वे अद्भुत महापुरुष थे—श्री रामकृष्ण परमहंस। यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी है, आज रात को तुम्हें उनके विषय में कुछ भी बताने का समय नहीं है। इसलिए मुझे भारतीय

१ सामान्यत यह प्रचलित है कि वे बिल्कुल निरक्षर थे, पर बाद में अनुसंधान से पता चला कि वे थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना भी जानते थे।—संपादक।

सब महापुरुषों के पूर्णप्रकाशस्वरूप सुभाषार्य भी रामकृष्ण का उल्लेख भर करके आज समाप्त करना होगा। उनके उपदेश आजकल हमारे लिए बिलकुल बरताना कारी हैं। उनके भीतर जो ईदबरीय शक्ति थी उस पर विशेष ध्यान दो। वे एक दखि ब्राह्मण के सड़के थे। उनका जन्म बंगाल के मुदुर, अज्ञात अपरिचित किसी एक गाँव में हुआ था। आज यूरोप अमेरिका के सहस्रों व्यक्ति वास्तव में उनकी पूजा कर रहे हैं। भविष्य में और भी सहस्रों मनुष्य उनकी पूजा करेंगे। ईश्वर की लीला कौन समझ सकता है ?

भाइयो तुम यदि इसमें बिधावा का हाम नहीं देखते तो जन्मे ही, सबमुच परमात्म हो। यदि समय मिला यदि दूसरा बचसर मिस सका तो इनके सम्बन्ध में बिस्तारपूर्वक कहूँगा। इस समय केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि मैंने जीवन भर में एक भी शरय वाक्य कहा है तो वह उन्हीका केवल उनका ही वाक्य है पर यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हैं जो असरय भ्रमपूर्व बचवा मानव जाति के लिए हितकररी न हों तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं और उनके लिए पूरा उत्तरवायी मैं ही हूँ।

हमारा प्रस्तुत कार्य

यह व्याख्यान ट्रिप्लिकेन, मद्रास की साहित्य-समिति में दिया गया था। अमेरिका जाने के पहले स्वामी विवेकानन्द जी का इस समिति के सदस्यों से परिचय हुआ था। इन सदस्यों के साथ स्वामी जी ने अनेक विषयों पर चर्चा की थी। इनमें वे सदस्यगण तथा मद्रास की जनता बहुत ही प्रभावित हुई थी। अन्त में इन सज्जनों के विशेष आग्रह एवं प्रयत्न में ही वे अमेरिका की शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में भेजे गये थे। अतएव इस व्याख्यान का एक विशेष महत्त्व है।

स्वामी जी का भाषण

ससार ज्यों ज्यों आगे बढ़ रहा है, त्यों त्यों जीवन-समस्या गहरी और व्यापक हो रही है। उस पुराने ज़माने में जब कि समस्त जगत् के अखंडत्वरूप वेदान्ती सत्य का प्रथम आविष्कार हुआ था, तभी से उन्नति के मूल मंत्रों और सार तत्त्वों का प्रचार होता आ रहा है। विश्वब्रह्मांड का एक परमाणु सारे ससार को अपने साथ बिना घसीटे तिल भर भी नहीं हिल सकता। जब तक सारे ससार को साथ साथ उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ाया जायगा, तब तक ससार के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं है। और दिन प्रति दिन यह और भी स्पष्ट हो रहा है कि किसी प्रश्न की मीमांसा सिर्फ जातीय, राष्ट्रीय या किन्हीं सकीर्ण भूमियों पर नहीं टिक सकती। हर एक विषय को तथा हर एक भाव को तब तक बढ़ाना चाहिए, जब तक उसमें सारा ससार न आ जाय, हर एक आकांक्षा को तब तक बढ़ाते रहना चाहिए, जब तक वह समस्त मनुष्य जाति को ही नहीं, चरन् समस्त प्राणिजगत् को आत्मसात् न कर ले। इससे विदित होगा कि क्यों हमारा देश गत कई सदियों से वैसा महान् नहीं रह गया है, जैसा वह प्राचीन काल में था। हम देखते हैं कि जिन कारणों से वह गिर गया है, उनमें से एक कारण है, दृष्टि की सकीर्णता तथा कार्यक्षेत्र का सकोच।

जगत् में ऐसे दो आश्चर्यजनक राष्ट्र हो गये हैं, जो एक ही जाति से प्रस्फुटित हुए हैं, परन्तु भिन्न परिस्थितियों और घटनाओं में स्थापित रहकर हर एक ने जीवन की समस्याओं को अपने ही निराले ढंग से हल कर लिया है—मेरा मतलब

प्राचीन हिन्दू और प्राचीन यूनानी आदियों से है। भारतीय आर्यों की उत्तरी सीमा हिमालय की उम बर्फीली चोटियों से घिरी हुई है जिनके तक से हम मूमि पर समुद्र की स्वच्छतोया सरिताएँ हिमोर्षे मार रही हैं और वहीं से अनंत अरुण्य वर्तमान है, जो आर्यों को संसार के अन्तिम छोर से प्रेरित हुए। इन सब मनोरम दृश्यों को देखकर आर्यों का मन सहज ही अतर्मुग्ध हो उठा। आर्यों का मस्तिष्क सूक्ष्म भावनाहीन था और चारों ओर बिरी हुई महान् दुस्सावनी देखने का यह स्वाभाविक फल हुआ कि आर्य मन्तस्तत्र के अनुसंधान में लग गये चित्त का विस्तेषण भारतीय आर्यों का मुख्य ध्येय हो गया। इसी ओर, यूनानी आदि संसार के एक दूसरे भाग में पहुँची जो उदात्त की अपेक्षा सुन्दर अधिक था। यूनानी टापुजो के भीतर से मुम्बर दृश्य उनके चारों ओर की वह हास्यमयी किन्तु निराभरण प्रकृति देखकर यूनानियों का मन स्वभावतः अहिर्मुक्त हुआ और उसने बाह्य संसार का विस्तेषण करना चाहा। परिणामतः हम देखते हैं कि समस्त विस्तेषात्मक विज्ञानों का विकास भारत से हुआ और सामान्यीकरण के विज्ञानों का विकास यूनान से। हिन्दुओं का मानस अपनी ही कार्य-विधा में अग्रसर हुआ और उसने अद्भुत परिणाम प्राप्त किये हैं। यहाँ तक कि वर्तमान समय में भी हिन्दुजो की वह विचार-शक्ति—वह अपूर्व शक्ति जिसे भारतीय मस्तिष्क अब तक धारण करता है बेजोड़ है। हम सभी जानते हैं कि हमारे लड़के दूसरे देश के लड़कों से प्रतियोगिता में सदा ही विजय प्राप्त करते हैं। परन्तु साम ही साम्य मुसलमानों के विजय प्राप्त करने के दो घाटाब्दी पहले ही अब हमारी अतीव शक्ति क्षीन हुई, उस समय हमारी यह जातीय प्रतिभा ऐसी अतिरञ्जित हुई कि वह रजस ही अन्न-पतन की ओर अग्रसर हुई थी और वहीं अन्न पतन अब भारतीय शिल्प शरीर विज्ञान आदि हर विषय में दिखायी दे रहा है। शिल्प में अब वह व्यापक परिष्कृतता नहीं रह गयी थी वह उदात्तता तथा रचनाकार के सौष्ठव की वह चेतना अब और नहीं रह गयी किन्तु उसकी जगह अत्यधिक अलम्करण तथा भङ्गीकरण का समावेश हो गया। आदि की घाटी मौलिकता लुप्त हो गयी। सर्गित में चित्त को मस्त कर देनेवाले के गम्भीर भाव जो प्राचीन संहित में पाये जाते हैं अब नहीं रहे—पहले की तरह उनमें से प्रत्येक स्वर अब अपने पैरा नहीं पाता हो सकता वह अपूर्व एवतामता नहीं छेड़ सकता। हर एक स्वर अपनी विशिष्टता को खो बैठा। हमारे समय आधुनिक लयील में माना प्रकार के स्वर-जालों की गिनती हो गयी है उमली बहुत ही बुरी बना हो गयी है। मर्गित की अवनति का यही चिह्न है। इसी प्रकार यदि तुम अपनी प्राकारत्मक परिष्कृतता का विस्तेषण करके दैगो तो तुमको वही अतिरञ्जना और अलम्करण की ही चेतना और मौलिकता का भाग मिलेगा। और, वहाँ तक कि

तुम्हारे विशेष क्षेत्र धर्म में भी, वही भयानक अवनति हुई है। उस जाति में तुम क्या आशा कर सकते हो, जो सैकड़ों वर्ष तक यह जटिल प्रश्न हल करती रह गयी कि पानी भरा लोटा दाहिने हाथ से पीना चाहिए या बाएँ हाथ में। इनमें और अधिक अवनति क्या हो सकती है कि देश के बड़े बड़े मेवावी मनुष्य भोजन के प्रश्न को लेकर तर्क करते हुए सैकड़ों वर्ष विता दे, इस बात पर वाद-विवाद करते हुए कि तुम हमें छूने लायक हो या हम तुम्हें, और इस छून-अछून के कारण कौन सा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा? वेदान्त के वे तत्त्व, ईश्वर और आत्मा सम्बन्धी सबसे उदात्त तथा महान् सिद्धान्त, जिनका मारे ससार में प्रचार हुआ था, प्रायः नष्ट हो गये, निविड अरण्यनिवासी कुछ सन्यासियों द्वारा रक्षित होकर वे छिपे रहे और शेष सब लोग केवल छूत-अछूत, खाद्य-अखाद्य और वेशभूषा जैसे गुरुतर प्रश्नों को हल करने में व्यस्त रहे। हमें मुमलमानों से कई अच्छे विषय मिले, इसमें कुछ सन्देह नहीं। हमारे हीनतम मनुष्य भी श्रेष्ठ मनुष्यों को कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य दे सकते हैं, किन्तु वे हमारी जाति में शक्ति-संचार नहीं कर सके।

इसके पश्चात् शुभ के लिए हो, चाहे अशुभ के लिए, भारत में अग्रेजों की विजय हुई। किसी जाति के लिए विजित होना निःसन्देह बुरी चीज है, विदेशियों का शासन कभी भी कल्याणकारी नहीं होता। किन्तु तो भी, अशुभ के माध्यम से कभी कभी शुभ का आगमन होता है। अतएव अग्रेजों की विजय का शुभ फल यह है इंग्लैण्ड तथा समग्र यूरोप को सम्यक्ता के लिए यूनान के प्रति ऋणी होना चाहिए, क्योंकि यूरोप के सभी भागों में मानो यूनान की ही प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है, यहाँ तक कि उसके हर एक मकान में, मकान के हर एक फरनीचर में यूनान की ही छाप दीख पड़ती है। यूरोप के विज्ञान, शिल्प आदि सभी यूनान ही के प्रतिबिम्ब हैं। आज वही प्राचीन यूनान तथा प्राचीन हिन्दू भारतभूमि पर मिल रहे हैं। इस प्रकार घोर और निःस्तब्ध भाव से एक परिवर्तन आ रहा है और आज हमारे चारों ओर जो उदार, जीवनप्रद पुनश्च्यवन का आन्दोलन दिखाई दे रहा है, वह सब इन दोनों विभिन्न भागों के सम्मिलन का ही फल है। अब मानव जीवन सम्बन्धी अधिक व्यापक और उदार धारणाएँ हमारे सम्मुख हैं। यद्यपि हम पहले कुछ भ्रम में पड़ गये थे और भावों को सकीर्ण करना चाहते थे, पर अब हम देखते हैं कि आजकल ये जो महान् भाव और जीवन की उँची धारणाएँ काम कर रही हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में लिखे हुए तत्त्वों की स्वाभाविक परिणति ही है। ये उन बातों का यथार्थ न्यायसगत कार्यान्वय मात्र हैं, जिनका हमारे पूर्वजों ने पहले ही प्रचार किया था। विशाल बनना, उदार बनना, क्रमशः सार्वभौम भाव में उपनीत होना—यही

हमारा स्वयं है। परन्तु हम ध्यान न देकर अपने छात्रोपदेशों के विरुद्ध बिना विनय अपने को संकीर्ण से संकीर्णतर करते जा रहे हैं।

हमारी उन्नति के मार्ग में कुछ बिन्दु हैं और उनमें प्रथम है हमारी यह भावना कि संसार में हम प्रमुख पाठि के हैं। मैं हृदय से भारत को प्यार करता हूँ स्वदेश के हितार्थ मैं सदा कमर कसे तैयार रहता हूँ पूर्वजों पर मेरी आभारिक मन्ना और भक्ति है फिर भी मैं अपना यह विचार नहीं त्याग सकता कि संसार से हमें भी बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त करनी है। शिक्षाग्रहणार्थ हमें सबके पैरों सके बैठना चाहिए, क्योंकि ध्यान इस बात पर देना आवश्यक है कि सभी हम महान् शिक्षा दे सकते हैं। हमारे महान् श्रेष्ठ स्मृतिकार मनु महाराज की उक्ति है 'भीष जातिर्मो से भी भद्रा कं साव हितकारी विद्या ग्रहण करनी चाहिए, और निम्नतम अल्पज ही क्यों न हो सदा द्वारा उससे भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।'^१

अतएव यदि हम मनु की सच्ची सन्तान हैं तो हमें उनके आदेशों का व्यवस्था ही प्रतिपादन करना चाहिए और जो कोई हमें शिक्षा देने के योग्य है, उसीसे ऐहिक या पारमार्थिक विषयों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए हमें सदा तैयार रहना चाहिए। किन्तु साव ही यह भी न भूलना चाहिए कि संसार को हम में, कोई विशेष शिक्षा दे सकते हैं। भारत का बाहर के देशों से सम्बन्ध जोड़े बिना हमारा काम नहीं चल सकता। किसी समय हम लोगों ने जो इसके विपरीत सोचा था वह हमारी मूर्खता मात्र थी और उसीकी सजा का फल है कि हजारों वर्षों से हम वास्तव के बन्धनों में बँध गये हैं। हम लोग दूसरी जातियों से अपनी तुलना करने के लिए विदेश नहीं गये और हमने संसार की गति पर ध्यान रखकर चलना नहीं सीखा। यही है भारतीय मन की अवगति का प्रथम कारण। इसे धरेष्ट सदा मिल चुकी अब हम ऐसा नहीं करना चाहिए। भारत से बाहर जाना भारतीयों के लिए अनुचित है—इस प्रकार की बाहिर्वात बातें बच्चों की ही हैं। उन्हें विभाग से विरुद्ध निकाल फेंकनी चाहिए। जितना ही तुम भारत से बाहर जम्माय देशों में जूमे उतना ही तुम्हारा और तुम्हारे देश का कस्माण होना। यदि तुम पहले ही से—कई सदियों के पहले ही से—ऐसा करते तो तुम आज उन राष्ट्रों से पराक्रम न होते जिन्होंने तुम्हें बसाने की कोशिश की। जीवन का पहला और स्पष्ट समय है विस्तार। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो, तो तुम्हें विस्तार करना ही होगा। जिस क्षण से तुम्हारे जीवन का विस्तार बन्द हो जायेगा उसी

१ महाभारतो धृमा विद्याभारतवैतापरारवि।
अन्वयादपि परं धर्म स्त्रीरत्नं दुष्कृतवदि ॥

क्षण से जान लेना कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, विपत्तियाँ तुम्हारे सामने हैं। मैं यूरोप और अमेरिका गया था, इसका तुम लोगो ने सहृदयतापूर्ण उल्लेख किया है। मुझे वहाँ जाना पडा, क्योंकि यही विस्तार या राष्ट्रीय जीवन के पुनर्जागरण का पहला चिह्न है। इस फिर से जगनेवाले राष्ट्रीय जीवन ने भीतर ही भीतर विस्तार प्राप्त करके मुझे मानो दूर फेंक दिया था और इस तरह और भी हजारो लोग फेंके जायँगे। मेरी बात ध्यान से सुनो। यदि राष्ट्र को जीवित रहना है, तो ऐसा होना आवश्यक है। अतएव यह विस्तार राष्ट्रीय जीवन के पुनरभ्युदय का सर्वप्रधान लक्षण है और मनुष्य की सारी ज्ञानसमष्टि तथा समग्र जगत् की उन्नति के लिए हमारा जो कुछ योगदान होना चाहिए, वह भी इस विस्तार के साथ भारत से बाहर दूसरे देशो को जा रहा है। परन्तु यह कोई नया काम नहीं। तुम लोगो मे से जिनकी यह धारणा है कि हिन्दू अपने देश की चहारदीवारी के भीतर ही चिर काल से पडे हैं, वे बड़ी ही भूल करते है। तुमने अपने प्राचीन शास्त्र पडे नहीं, तुमने अपने जातीय इतिहास का ठीक ठीक अध्ययन नहीं किया। हर एक जाति को अपनी प्राण-रक्षा के लिए दूसरी जातियो को कुछ देना ही पडेगा। प्राण देने पर ही प्राणो की प्राप्ति होती है, दूसरो से कुछ लेना होगा तो बदले मे मूल्य के रूप मे उन्हें कुछ देना ही होगा। हम जो हजारो वर्षों से जीवित हैं, यह हमको विस्मित करता है, और इसका समाधान यही है कि हम ससार के दूसरे देशो को सदा देते रहे हैं, अनजान लोग भले ही जो सोचें।

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे आगे मार्ग निष्कटक करती हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व को शोणित-प्रवाह पर से ढोने की आवश्यकता नहीं। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व खून से भरे जख्मी आदमियो के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शान्ति और प्रेम के पखो से उडकर शान्तिपूर्वक आया करते हैं, और सदा हुआ भी यही। अतएव ससार के लिए भारत को सदा कुछ देना पडा है। लन्दन मे किसी युवती ने मुझसे पूछा, "तुम हिन्दुओ ने क्या किया ? तुमने कभी किसी भी जाति को नहीं जीत पाया है।" अग्नेज जाति की दृष्टि मे—वीर साहसी, क्षत्रियप्रकृति अग्नेज जाति की दृष्टि मे—दूसरे व्यक्ति पर विजय प्राप्त करना ही एक व्यक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ गौरव की बात समझी जाती है। यह उनके दृष्टिविन्दु से सत्य भले ही हो, किन्तु हमारी दृष्टि इसके बिल्कुल विपरीत है। जब मैं अपने मन से यह प्रश्न करता हूँ कि भारत के श्रेष्ठत्व का क्या कारण है, तब मुझे यह उत्तर मिलता है कि हमने कभी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त नहीं की, यही हमारा महान् गौरव है। तुम लोग आजकल सदा यह निन्दा सुन रहे हो

कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे ऐसे व्यक्तियों के मूँह की होती है जिनसे हम अधिकतर ज्ञान की अपेक्षा करते हैं। मुझे यह जान पड़ता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इस तथ्य के समर्पण की प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म में कमी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की उसमें कमी धून की गिनियाँ नहीं बहानी उसने सदा आनीर्बादि और दान्ति के दाह कहे सबको उसने प्रेम और सहानुभूति की कृपा मुनापी। यही केवल यही दूसरे धर्म से द्वेष न रखने के भाव सबसे पहले प्रचारित हुए, केवल यही परधर्म-सहिष्णुता सदा सहानुभूति के ये भाव कार्यन्वय में परिणत हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धांत-वर्षा मात्र है। यही केवल यही यह देखने में आता है कि हिन्दू मुसलमानों के लिए मसजिदें और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

अतएव भाइयो तुम समझ गये होंगे कि किस तरह हमारे भाव धीरे धीरे पालत और मज्जात रूप से दूसरे देशों में गये हैं। भारत के सब विषयों में यही बात है। भारतीय विचार का सबसे बड़ा कलाप है उसका पालत स्वभाव और उसकी नीरवता। जो प्रभुत्व शक्ति इसके पीछे है, उसका प्रकाश बबरदस्ती से मही होता। भारतीय विचार सदा जाड़ू सा बसर करता है। जब कोई बिदेसी हमारे साहित्य का अध्ययन करता है तो पहले यह उस अस्मिपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें उसके मित्र के साहित्य जैसी उद्दीपना नहीं तीव्र गति नहीं जिससे उसका हृदय सहज ही उल्लस पड़े। यूरोप के दुःकांत नाटकों की हमारे कल्प नाटकों से तुलना करो पश्चिमी नाटक कार्य-प्रधान हैं वे कुछ बेर के लिए उद्दीपित तो कर देते हैं किन्तु समाप्त होते ही तुरन्त प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है और तुम्हारे मस्तिष्क से उसका सम्पूर्ण प्रभाव निकल जाता है। भारत के कल्प नाटकों में मानो सम्मोहन की शक्ति मरी हुई है। वे मन्वजति से नुपचाप अपना काम करते हैं, किन्तु तुम ज्यों ज्यों उनका अध्ययन करते हो त्यों त्यों तुम्हें मुग्ध करने समर्थ है। फिर तुम टस से मस नहीं हो सकते तुम बँब जाते हो हमारे साहित्य में जिस किसीने प्रवेश किया उसे उसका बन्धन अवश्य ही स्वीकार करना पड़ा और बिदे काल के लिए हमारे साहित्य से उसका अनुपग हो गया। अनपेक्षे और अनसुने यिरनेवाला कोमक बोस कब जिस प्रकार सुन्दरतम मूलान की कर्मियों को खिसा देता है, वैसा ही बसर भारत के ज्ञान का संचार की विचारवाच पर पड़ता रहता है। शायद ज्ञेय किन्तु महाशक्ति के अक्षय्य बस से उसने सारे जगत् की विचार-राधि में अस्मि मचा बी है—एक मया ही युग लड़ा कर दिया है किन्तु तो भी कोई नहीं जानता कब ऐसा हुआ। किसी ने प्रसंगवशात् मुझसे कहा था 'भारत के किसी

प्राचीन ग्रन्थकार का नाम ढूँढ निकालना कितना कठिन काम है।" इसपर मैंने यह उत्तर दिया कि यही भारतीयों का स्वभाव है। भारत के लेखक आजकल के लेखको जैसे नहीं थे, जो ग्रन्थों का ९० फीसदी भाव दूसरे लेखको से साफ उठा लेते हैं और जिनका अपना केवल दशमांश होता है, किन्तु तो भी जो ग्रन्थारम्भ में भूमिका लिखते हुए यह कहते नहीं चूकते कि इन मत-मतान्तरों का पूरा उत्तर-दायित्व मुझ पर है। मनुष्य जाति के हृदय में उच्च भाव भरनेवाले वे महामनीषी उन ग्रन्थों की रचना करके ही सन्तुष्ट थे, उन्होंने ग्रन्थों में अपना नाम तक नहीं दिया, और अपने ग्रन्थ भावी पीढ़ियों को सौंपकर वे शान्तिपूर्वक इस ससार से चल बसे। हमारे दर्शनकारों या पुराणकारों के नाम कौन जानता है? वे सभी व्यास, कपिल आदि उपाधियों ही से परिचित हैं, वे ही श्री कृष्ण के योग्य सपूत हैं, वे ही गीता के यथार्थ अनुयायी हैं, उन्होंने ही श्रीकृष्ण के इस महान उपदेश—'कर्म में ही तुम्हारा अधिकार है, फल में कदापि नहीं'—का पालन कर दिखाया।

मित्रों, इस प्रकार भारत ने ससार में अपना कर्म किया, परन्तु इसके लिए भी एक बात अत्यन्त आवश्यक है। वाणिज्य-द्रव्य की भाँति, विचारों का समूह भी किसीके बनाये हुए मार्ग से ही चलता है। विचार-राशि के एक देश से दूसरे देश को जाने के पहले, उसके जाने का मार्ग तैयार होना चाहिए। ससार के इतिहास में, जब कभी किसी बड़े दिग्विजयी राष्ट्र ने ससार के भिन्न भिन्न देशों को एक सूत्र में बाँधा है, तब उसके बनाये हुए मार्ग से भारत की विचारधारा वह चली है और प्रत्येक जाति की नस नस में समा गयी है। आये दिन इस प्रकार के प्रमाण जुटते जा रहे हैं कि बुद्ध के जन्म के पहले ही भारत के विचार सारे ससार में फैल चुके थे। बौद्ध धर्म के उदय के पहले ही चीन, फारस और पूर्वी द्वीप-समूहों में वेदान्त का प्रवेश हो चुका था। फिर जब यूनान की प्रबल शक्ति ने पूर्वी भूखण्डों को एक ही सूत्र में बाँधा था, तब वहाँ भारत की विचार धारा प्रवाहित हुई थी, और ईसाई धर्मावलम्बी जिस सम्यता की डींग हाँक रहे हैं, वह भी भारतीय विचारों के छोटे छोटे कणों के समग्रह के सिवा और कुछ नहीं। बौद्ध धर्म, अपनी समस्त महानता के साथ जिसकी विद्रोही सन्तान है और ईसाई धर्म जिसकी नगण्य नकल मात्र है, वही हमारा धर्म है। युगचक्र फिर घूमा है, वैसा ही समय फिर आया है, इंग्लैण्ड की प्रचंड शक्ति ने भूमंडल के भिन्न भिन्न भागों को फिर एक दूसरे से जोड़ दिया है। अग्रेजों के मार्ग रोमन जाति के मार्गों की तरह केवल स्थल भाग में ही

१. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ॥ गीता २।४७ ॥

२. सुमात्रा, जावा, चीनियों आदि।

नहीं बतल महासामरा के सब भागों में भी बीड़ रहे हैं। संसार के सभी भाग एक दूसरे से जुड़ गये हैं और बिद्युत् शक्ति सब संदिग्ध-बाहक की भाँति अपना वर्णमूत नाटक कर रही हैं। इन अनुकूल अवस्थाओं को प्राप्त कर भारत फिर जाग रहा है और संसार की उन्नति तथा सारी सम्पत्ता को अपने योगदान के लिए बह तैयार हो रहा है। इसीक फलस्वरूप प्रकृति ने मानो जबरदस्ती मुझे बर्म का प्रचार करने के लिए इन्सूज और अमेरिका भेजा। हममें से हर एक को यह अनुभव करना चाहिए कि प्रचार का समय आ गया है। चारों ओर सुभ कसम बीज रहे हैं और भारतीय साम्प्रदायिक और वास्तविक विचारों की फिर से सारे संसार पर विजय होनी। अतएव हमारे सामने समस्या दिन बृहत्तर आकार धारण कर रही है। क्या हमें केवल अपने ही देश को जमाना होगा? नहीं यह तो एक तुच्छ बात है, मैं एक कल्पनाशील मनुष्य हूँ—मेरी यह भावना है कि हिन्दू जाति सारे संसार पर विजय प्राप्त करेगी।

जयत् मे बड़ी बड़ी विजयी जातियाँ हो चुकी हैं हम भी महान् विजेता रह चुके हैं। हमारी विजय की कक्षा को भारत के महान् सम्राट् अशोक ने बर्म और साम्प्रदायिकता ही की विजय बताया है। फिर से भारत को जगत् पर विजय प्राप्त करना होगा। यही मेरे जीवन का स्वप्न है और मैं चाहता हूँ कि तुममें से प्रत्येक को कि मेरी बात सुन रहा है अपने अपने मन में उसी स्वप्न का पोषण करे, और उसे कार्य रूप में परिणत किये बिना न छोड़े। लोग हर रोज तुमसे कहेंगे कि पहले अपने घर को सँभालो बाद में विदेशों में प्रचार करना। पर मैं तुम लोगों से स्पष्ट शब्दों में कह देता हूँ कि तुम सबसे अच्छा काम तभी करते हो जब दूसरे के लिए करते हो। अपने लिए सबसे अच्छा काम तुमने तभी किया जब कि तुमने औरों के लिए काम किया। अपने विचारों का समूहों के उस पार विदेशी भाषाओं में प्रचार करने का प्रयत्न किया और यह समा ही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा जन्मान्त देशों को अपने विचारों से सिद्धित करने का प्रयत्न तुम्हारे अपने देश को भी लाभ पहुँचा रहा है। यदि मैं अपने विचारों को भारत ही में सीमाबद्ध रखता तो उस प्रभाव का एक बीजाई भी न हो पाता जो कि मेरे इन्सूज और अमेरिका जाने से इस देश में हुआ। हमारे सामने यही एक महान् आवर्ष है, और हर एक को इसके लिए तैयार रहना चाहिए—बहु आवर्ष है भारत की विजय पर विजय—उससे छोटा कोई आवर्ष न बसेगा और हम सभी को इसके लिए तैयार होना चाहिए और सरसक कोसिस करने चाहिए। अगर विदेशी आकर इस देश को अपनी सेनाओं से प्लावित कर दें तो कुछ परबाह नहीं। उठी भारत तुम अपनी साम्प्रदायिकता द्वारा जगत् पर विजय प्राप्त करो। वैसे कि इसी देश में पहले पहल

प्रचार किया गया है, प्रेम ही घृणा पर विजय प्राप्त करेगा, घृणा घृणा को नहीं जीत सकती, हमें भी वैसा ही करना पड़ेगा। भौतिकवाद और उससे उत्पन्न क्लेश भौतिकवाद से कभी दूर नहीं हो सकते। जब एक सेना दूसरी सेना पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करती है तो वह मानव जाति को पशु बना देती है और इस प्रकार वह पशुओं की संख्या बढ़ा देती है। आध्यात्मिकता पश्चात्य देशों पर अवश्य विजय प्राप्त करेगी। धीरे धीरे पश्चात्यवासी यह अनुभव कर रहे हैं कि उन्हें राष्ट्र के रूप में बने रहने के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। वे इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, चाब से इसकी बाट जोह रहे हैं। उसकी पूर्ति कहाँ से होगी ? वे आदमी कहाँ हैं, जो भारतीय महर्षियों का उपदेश जगत् के सब देशों में पहुँचाने के लिए तैयार हो ? कहाँ है वे लोग, जो इसलिए सब कुछ छोड़ने को तैयार हो कि ये कल्याणकर उपदेश ससार के कोने कोने तक फैल जायँ ? सत्य के प्रचार के लिए ऐसे ही वीर हृदय लोगों की आवश्यकता है। वेदान्त के महासत्यों को फैलाने के लिए ऐसे वीर कर्मियों को बाहर जाना चाहिए। जगत् को इसकी चाहना है, इसके बिना जगत् विनष्ट हो जायगा। सारा पश्चात्य जगत् मानो एक ज्वालामुखी पर स्थित है, जो कल ही फूटकर उसे चूर चूर कर सकता है। उन्होंने सारी दुनियाँ छान डाली, पर उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिली। उन्होंने इन्द्रिय-सुख का प्याला पीकर खाली कर डाला, पर फिर भी उससे उन्हें तृप्ति नहीं मिली। भारत के धार्मिक विचारों को पश्चात्य देशों की नस नस में भर देने का यही समय है। इसलिए मद्रासी नवयुवकों, मैं विशेषकर तुम्हीको इसे याद रखने को कहता हूँ। हमें बाहर जाना ही पड़ेगा, अपनी आध्यात्मिकता तथा दार्शनिकता से हमें जगत् को जीतना होगा। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है, अवश्यमेव इसे करो, या मरो। राष्ट्रीय जीवन, सतेज और प्रबुद्ध राष्ट्रीय जीवन के लिए बस यही एक शर्त है कि भारतीय विचार विश्व पर विजय प्राप्त करें।

साथ ही हमें न भूलना चाहिए कि आध्यात्मिक विचारों की विश्व-विजय से मेरा मतलब है उन सिद्धान्तों के प्रचार से, जिनसे जीवन-संचार हो, न कि उन सैकड़ों कुमस्कारों से, जिन्हें हम सदियों से अपनी छाती से लगाते आये हैं। इनको तो इस भारत-भूमि से भी उखाड़कर दूर फेंक देना चाहिए, जिससे वे सदा के लिए नष्ट हो जायँ। इस जाति के अग्र पतन के ये ही कारण हैं और ये दिमाग को कमजोर बना देते हैं। हमें उम दिमाग में वचना चाहिए, जो उच्च और महान् चिन्तन नहीं कर सकती, जो निम्नतेज होकर मौलिक चिन्तन की सारी शक्तियाँ खो बैठना है, और जो वर्म के नाम पर चूने आनेवाले नव प्रकार के छोटे-छोटे कुमस्कारों के विष से अपने को जजरित कर रहा है। हमारी दृष्टि में भारत के लिए कई आपदाएँ

सही है। इनमें से दो स्काइला और चैरीबाइक्स से और भीतिकवाद और इसकी प्रतिक्रिया से पैदा हुए और कुसंस्कार से अवश्य बचना चाहिए। आज हमें एक ठरछ वह मनुष्य दिखायी पड़ता है, जो पापकार्य आज कपी मदिग-पान से मत्त होकर अपने को सर्वत्र समझता है। वह प्राचीन ऋषियों की हँसी उड़ाया करता है। उसके सिद्धि हिन्दुओं के सब विचार बिस्फुट चाहियात पीड है, हिन्दू धर्म-शास्त्र बच्चों का कसरत मात्र है और हिन्दू धर्म मुत्तों का मात्र बंधविस्वास। दूसरी तरफ वह आदमी है जो विदित ता है पर जिस पर किसी एक चीज की सनक सवार है और वह उल्टी राह लेकर हर एक छोटी सी बात का अमौलिक अर्थ निकालने की कोशिश करता है। अपनी विषय जाति या बेक-बेरियों या गाँव से सम्बन्ध रखनेवाले जिसने कुसंस्कार है उनको उचित सिद्ध करने के लिए दार्शनिक माध्यात्मिक तथा बच्चों को मुहानबाक न जाने क्या क्या अर्थ उसके पास सर्वदा ही मौजूद हैं। उसके लिए प्रत्येक प्राम्य कुसंस्कार बेहों की आज्ञा है और उसकी समझ में उसे कार्य रूप में परिणत करने पर ही आधीय जीवन निर्भर है। तुम्हें इन सबसे बचना चाहिए।

तुममें से प्रत्येक मनुष्य कुसंस्कारपूर्ण मूर्त होने के बरके यदि और नास्तिक भी ही आज तो मुझे पसन्द है क्योंकि नास्तिक तो जीवन्त है तुम उसे किसी तरह परिवर्तित कर सकते हो। परन्तु यदि कुसंस्कार घुस जायें तो नास्तिक विमर्द जायगा कमजोर ही जायगा और मनुष्य विनाश की ओर अग्रसर होने लगेगा। तो इन दो सफटी न बचो। हमें निर्भीक साहसी मनुष्यों का ही प्रयोजन है। हम मून में ठेकी और स्नायुओं में बल की आवश्यकता है—सँह के पुट्टे और झोलाइ न स्नायु चाहिए, न कि दुर्बलता कानेवाले चाहियात विचार। इन सबको त्याग दो एक प्रकार के रहस्यां से बचो। धर्म में कोई कुरा छिपी नहीं है। क्या बेरागन केर नाहिना अथवा पुराक न कोई ऐसी रहस्य की बात है? प्राचीन ऋषियों में जाने धर्म प्रचार के लिए कौन की योगनीय मण्डितियां रचालिन की जी? क्या एसा कोई लेगा है कि जाने मराम् गण्यो को मानव जाति न प्रचारित करने के लिए उन्हींने एगे एग आदुमरा के मे हबराडा का उपाय किया बा? हर बात की राहस्यय बनाना और कुसंस्कार—ये मरा दुर्बलता न ही बिना हँसे हैं। ये अवर्तन और मूय के ही बिना है। इनसिग उनगे बच रहो बसवानु बनो और आज पीरो पर गये ही जाओ। गमार न अनेक अदुमन एव आरुध्वजन बसुते हैं। इहाँ के बार में आज हवारी या पाण्डारों है उनही मुरमा में हम उन्हें अति प्रार्थित कर सकते हैं परन्तु उनमें से एक भी राहस्यय नहीं है। इन आरुध्वमि नर यत कभी प्रचारित नहीं हुआ कि धर्म के एग योगनीय विषय है अथवा यह कि के दिवान्त की कौनी की बँटवो नर बननेवाली गुण नकितिया की ही विदेय समर्पित

हैं। मैं हिमालय में गया था, तुम लोग वहाँ पर नहीं गये होगे, वह स्थान तुम्हारे घरों से कई सौ मील दूर है। मैं सन्यासी हूँ और गत चौदह वर्षों से मैं पैदल घूम रहा हूँ। ये गुप्त समितियाँ कहीं भी नहीं हैं। इन अवविश्वासों के पीछे मत दौड़ो। तुम्हारे और जाति के लिए बेहतर होगा कि तुम घोर नास्तिक बन जाओ—क्योंकि कम से कम उससे तुम्हारा कुछ बल बना रहेगा, पर इस प्रकार कुसस्कारपूर्ण होना तो अवनति तथा मृत्यु है। मानव जाति को विक्कार है कि शक्तिशाली लोग इन अवविश्वासों पर अपना समय गँवा रहे हैं, दुनिया के सड़े से सड़े कुसस्कारों की व्याख्या के लिए रूपकों के आविष्कार करने में अपना सारा समय नष्ट कर रहे हैं। साहसी बनो, सब विषयों की उस तरह व्याख्या करने की कोशिश मत करो। बात यह है कि हमारे बहुतेरे कुसस्कार हैं, हमारी देह पर बहुत से घुरे घब्वे तथा घाव हैं—इनको काट और चीर-फाड़कर एकदम निकाल देना होगा—नष्ट कर देना होगा। इनके नष्ट होने से हमारा धर्म, हमारा जातीय जीवन हमारी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होगी। प्रत्येक धर्म का मूल तत्त्व सुरक्षित है और जितनी जल्दी ये घब्वे मिटाये जायेंगे, उतने ही अधिक ये मूल तत्त्व चमकेंगे। इन्हीं पर डटे रहो।

तुम लोग सुनते हो कि हर एक धर्म जगत् का सार्वभौम धर्म होने का दावा करता है। मैं तुमसे पहले ही कह देता हूँ कि शायद कभी भी ऐसी कोई चोज़ नहीं हो सकेगी, पर यदि कोई धर्म यह दावा कर सके तो वह तुम्हारा ही धर्म है—दूसरा कोई नहीं, क्योंकि दूसरा हर एक धर्म किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह पर निर्भर है। अन्यान्य सभी धर्म किन्हीं व्यक्तियों के जीवन पर अवलम्बित होकर बने हैं, जिन्हें उनके अनुयायी ऐतिहासिक पुरुष समझते हैं, और जिसको वे धर्म की शक्ति समझते हैं, वह वास्तव में उनकी निर्बलता है, क्योंकि यदि इन पुरुषों की ऐतिहासिकता का खडन किया जाय तो उनके धर्मरूपी प्रासाद गिरकर धूल में मिल जायेंगे। इन महान् धर्म-संस्थापकों के जीवन-चरित्रों में से आधा अंश तो उड़ा दिया गया है और बाकी आधे के विषय में घोर सन्देह उपस्थित किया गया है। अतएव हर एक सत्य, जिसकी प्रामाणिकता इन्हींके शब्दों पर निर्भर थी, हवा में मिला जा रहा है। पर हमारे धर्म के सत्य किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं हैं, यद्यपि हमारे धर्म में महापुरुषों की सख्या यथेष्ट है। कृष्ण की महिमा यह नहीं है कि वे कृष्ण थे, पर यह कि वे वेदान्त के महान् आचार्य थे। यदि ऐसा न होता तो उनका नाम भी भारत से उसी तरह उठ जाता जैसे कि बुद्ध का नाम उठ गया है।

अतः चिर काल से हमारी निष्ठा धर्म के तत्त्वों के प्रति ही रही है, न कि व्यक्तियों के प्रति। व्यक्ति केवल तत्त्वों के प्रकट रूप हैं—उनके उदाहरणस्वरूप हैं। यदि

तत्त्व बने रहे तो व्यक्ति एक नहीं हजारों और लाखों की संख्या में पैदा होंगे। यदि तत्त्व बचा रहा तो बुद्ध जैसे संकड़ों और हजारों पुण्य पैदा होंगे परन्तु यदि तत्त्व का नाश हुआ और वह मुक्ता दिया गया एवं सारी जाति का जीवन तबाहकित ऐतिहासिक व्यक्ति पर ही निर्भर रहने में प्रमत्तलील रहे तो उस धर्म के सामने आपदाएँ और खतरे हैं। हमारा धर्म ही एकमात्र ऐसा है, जो किसी व्यक्ति या व्यक्तियों पर निर्भर नहीं वह तत्त्वों पर प्रतिष्ठित है। पर साध ही उसमें कालों के लिए स्वाग है। नय लोगों को स्वान देन के लिए उसमें काशी गुजामन है पर उनमें से प्रत्येक को उस तत्त्वों का एक उदाहरणस्वरूप होना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए। हमारे धर्म के ये तत्त्व अब तक सुरक्षित हैं और हममें से प्रत्येक का जीवन-प्रथम यही हुला चाहिए कि हम उन्हीं की रक्षा करें, उन्हें मुन-मुमान्तर से बचा होने-वाले मैल और मर्ब से बचावें। यह एक अवमुत् बतना है कि हमारी जाति के बारंबार अवमति के र्त में मिरले पर भी वेदात्त के ये तत्त्व कभी मखिन नहीं हुए। किसीने वह किठना ही हुट्ट क्यों न हो उन्हें बूषित करने का साहस नहीं किया। समार मर से अन्य सब शास्त्रों की अपेक्षा हमारे शास्त्र सर्वाधिक सुरक्षित रहे हैं। अन्याय्य शास्त्रों की तुलना में इनमें कोई भी प्रक्षिप्त अंश नहीं बुध पाया है पाठों की ढोड़मरोड़ नहीं हुई है उनके विचारों का सारमाग मष्ट नहीं हो पाया है। वह ष्यो का र्थो बना रहा है और मानव मयना मन को आदर्श लक्ष्य की ओर परिचासित करता रहा है।

तुम देखते हो कि इन धर्मों के माप्य भिन्न भिन्न भाष्यकारों ने किये उनका प्रचार बड़े बड़े भाषायों ने किया और उन्हीं पर सम्प्रदायों की नींव डाली गयी और तुम देखते हो कि इन वेद धर्मों में ऐसे अनेक तत्त्व हैं जो आपातत परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। कुछ ऐसे पाठोंस हैं जो सम्पूर्ण ईतभाव के हैं और किठने ही बिस्तुक्त अईत भाव के। ईतवाद के माप्यकार ईतवाद छोड़कर और कुछ समझ नहीं पाते अतएव वे अईतवाद के पाठार्थों पर बुटी तरह बार करने की कोशिस करते हैं। सभी ईतवादी धर्माचार्य तथा पुरोहितमण उन्हें ईतत्मक अर्थ देना चाहते हैं। अईतवाद के माप्यकार ईतवाद के सूत्रों की बही बसा करते हैं, परन्तु यह वेदों का बोध नहीं। यह भेष्टा करना कोटी मूर्खता है कि सम्पूर्ण वेद ईत मावात्मक हैं। उसी प्रकार समग्र वेदों को अईत भाव समर्थक प्रमाणित करने की भेष्टा भी निरी मूर्खता है। वेदों में ईतवाद अईतवाद दोनों ही हैं। आरकक के नये धर्मों के प्रकास में हम उन्हें पहले से कुछ बखडी तरह समझ सकते हैं। ये विभिन्न कारणों विनकी गति ईतवाद और अईतवाद दोनों ओर है मन की क्रमोमति के लिए आवश्यक है, और इसी कारण वेद उनका प्रचार करते हैं। समग्र मनुष्य

जाति पर कृपा करके वेद उच्चतम लक्ष्य के भिन्न भिन्न सोपानो का निर्देश करते हैं। यह नहीं कि वे एक दूसरे के विरोधी हो। बच्चे जैसे अवोध मनुष्यों को मोहने के लिए वेदो ने वृथा वाक्यों का प्रयोग नहीं किया है। उनकी अस्मृति है और वह केवल बच्चों के लिए नहीं, वरन् प्रौढ बुद्धिवालों के लिए भी। जब तक शरीर है और जब तक हम इस शरीर से ही अपनी तद्रूपता स्थापित करने के विभ्रम में पड़े रहेंगे, जब तक हमारी पाँच इन्द्रियाँ हैं और जब तक हम इस स्थूल जगत् को देखते हैं, हमारे लिए व्यक्तिविशेष ईश्वर या सगुण ईश्वर आवश्यक है। यदि हमारे ये सभी भाव हैं, तो जैसा कि महामनीषी रामानुज ने प्रमाणित किया है, हमको ईश्वर, जीव और जगत् इनमें से एक को स्वीकार करने पर शेष सबको स्वीकार करना ही पड़ेगा। अतएव जब तक हम बाहरी ससार देख रहे हैं, तब तक सगुण ईश्वर और जीवात्मा को स्वीकार न करना निरा पागलपन है। परन्तु महापुरुषों के जीवन में वह समय आ सकता है, जब जीवात्मा अपने सब बंधनों से अतीत होकर, प्रकृति के परे, उस सर्वातीत प्रदेश में चला जाता है, जिसके बारे में श्रुति कहती है :

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।^१

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन ।^२

नाह मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।^३

—‘मन के साथ वाणी जिसे न पाकर लौट आती है।’ ‘वहाँ न नेत्र पहुँचते हैं, न वाक्य, न मन।’ ‘मैं उसे जानता हूँ, न यही कह सकता हूँ। और नहीं जानता, न यही।’ तभी जीवात्मा सारे बन्धनों को पार कर जाता है, तभी, केवल तभी उसके हृदय में अद्वैतवाद का यह मूल तत्त्व प्रकाशित होता है कि समस्त ससार और मैं एक हूँ, मैं और ब्रह्म एक हूँ। और तुम देखोगे कि यह सिद्धान्त न केवल शुद्ध ज्ञान और दर्शन ही से प्राप्त हुआ है, किन्तु प्रेम के द्वारा भी उसकी कुछ झलक पायी गयी है। तुमने भागवत में पढ़ा होगा कि जब श्री कृष्ण अन्तर्धान हो गये और गोपियाँ उनके वियोग से विकल हो गयी, तो अन्त तक श्री कृष्ण की भावना का गोपियों के चित्त पर इतना प्रभाव पड़ा कि हर एक गोपी अपनी देह को भूल गयी और सोचने लगी कि वही श्री कृष्ण है, और अपने को उसी तरह सज्जित करके क्रीडा करने लगी, जिस तरह श्री कृष्ण करते थे। अतएव हमने यह समझ लिया कि यह एकत्व का अनुभव प्रेम से भी होता है। फारस के एक पुराने सूफी कवि अपनी

१ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।९ ॥

२ केनोपनिषद् ॥ १।३ ॥

३ कठोपनिषद् ॥ २।२ ॥

एक कविता में कहते हैं— 'मैं अपने प्यारे के पास गया और देखा वो द्वार बन्द था मैंने दरवाजे पर धक्का मगाया वी भीतर से आवाज आयी 'कौन है? मैंने उत्तर दिया—'मैं हूँ। द्वार न खुला। मैंने दूसरी बार धक्का मगाया वो दरवाजा खटखटाना वो उसी स्वर में फिर पूछा कि कौन है, मैंने उत्तर दिया—'मैं जमुक हूँ। फिर भी द्वार न खुला। तीसरी बार मैं गया और वही ध्वनि हुई—'कौन है? मैंने कहा 'मैं तुम हूँ मरे प्यारे। द्वार खुल गया।'

अतएव हमें समझना चाहिए कि ब्रह्म प्राप्ति के अनेक सोपान हैं और यद्यपि पुराने साधकों में जिन्हें हम मठा की दृष्टि से देखना चाहिए, एक दूसरे से विवाद होता रहा हमें विवाद न करना चाहिए क्योंकि ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। क्या प्राचीन काल में क्या वर्तमान समय में सर्वज्ञत्व पर किसी एक का सर्वाधिकार नहीं है। यदि अतीत काल में अनेक ऋषि महापुरुष हो गये हैं, तो निश्चय जानो कि वर्तमान समय में भी अनेक होंगे। यदि व्यास वास्मीकि और संकराचार्य आदि पुराने जमाने में हो गये हैं तो क्या कारण है कि अब भी तुममें हर एक संकराचार्य न हो सकेगा? हमारे बर्म में एक विशेषता और है, जिसे तुम्हें याद रखना चाहिए। अश्वान्य शास्त्रों में भी ईश्वरी प्रेरणा को प्रमाणस्वरूप बतलाया जाता है। परन्तु इन प्रेरितों की संख्या उनके मठ में एक दो बचवा बहुत ही अस्य व्यक्तिवों तक सीमित है। उन्हींके माध्यम से सर्व साधारण जनता में इस सत्य का प्रचार हुआ और हम सभी को चतकी बात माननी ही पड़ेगी। साधारण के ईसा में सत्य का प्रकाश हुआ था और हम सभी को उसे मान लेना होगा। परन्तु भारत के संनद्धता ऋषियों के हृदय में उसी सत्य का आविर्भाव हुआ था। और सभी ऋषियों में उस सत्य का महिम्न में भी आविर्भाव हुआ किन्तु वह न वाचनियों में होता न पुस्तकों वाट जानेवालों में न बड़े विद्वानों में न भाषावेत्तानों में वह केवल तपस्वियों में ही संभव है।

'आत्मा प्यारा बातें बड़ने से नहीं प्राप्त होती न वह बड़ी बुद्धियता से ही सुखम है और न वह बेदों के पठन से ही मिल सकती है।' वेद स्वयं वह बात कहते हैं। क्या तुम किसी दूसरे शास्त्रों में इस प्रकार की निर्माक वाणी पाते हो कि शास्त्र पाठ द्वारा भी आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती? तुम्हारे लिए हृदय को मुक्त करना आवश्यक है। बर्म का बर्म न बिरजे में जाना है, न कलकट रेंकना है न विभिन्न अंग का भेग करना है। इन्द्रबनुव के सब रंगों से तुम अपने को बाहे बडे ही रेंव

लो, किन्तु यदि तुम्हारा हृदय उन्मुक्त नहीं हुआ है, यदि तुमने ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किया है, तब यह सब व्यर्थ है। जिसने हृदय को रँग लिया है, उसके लिए दूसरे रंग की आवश्यकता नहीं। यही धर्म का सच्चा अनुभव है। परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि रंग और ऊपर कही गयी कुल बातें अच्छी तब तक मानी जा सकती हैं, जब तक वे हमें धर्ममार्ग में सहायता दें, तभी तक उनका हम स्वागत करते हैं। परन्तु वे प्रायः अधःपतित कर देती हैं और सहायता की जगह विघ्न ही खड़ा करती हैं, क्योंकि इन्हीं बाह्योपचारों को मनुष्य धर्म समझ लेता है। फिर मन्दिर का जाना आध्यात्मिक जीवन और पुरोहित को कुछ देना ही धर्मजीवन माना जाने लगता है। ये बातें बड़ी भयानक और हानिकारक हैं, इन्हें दूर करना चाहिए। हमारे शास्त्रों में बार बार कहा गया है कि बहिरिन्द्रियों के ज्ञान के द्वारा धर्म कभी प्राप्त नहीं हो सकता। धर्म वही है, जो हमें उस अक्षर पुरुष का साक्षात्कार कराता है, और हर एक के लिए धर्म यही है। जिसने इस इन्द्रियातीत सत्ता का साक्षात्कार कर लिया, जिसने आत्मा का स्वरूप उपलब्ध कर लिया, जिसने भगवान् को प्रत्यक्ष देखा—हर वस्तु में देखा, वही ऋषि हो गया। और तब तक तुम्हारा जीवन धर्मजीवन नहीं, जब तक तुम ऋषि नहीं हो जाते। तभी तुम्हारे प्रकृत धर्म का आरम्भ होगा और अभी तो ये सब तैयारियाँ ही हैं। तभी तुम्हारे भीतर धर्म का प्रकाश फैलेगा, अभी तो तुम केवल मानसिक व्यायाम कर रहे हो और शारीरिक कष्ट झेल रहे हो।

अतएव हमें अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि हमारा धर्म स्पष्ट रूप से यह कह रहा है कि जो कोई मुक्ति-प्राप्ति की इच्छा रखे, उसे ही इस ऋषित्व का लाभ करना होगा, मन्त्रद्रष्टा होना होगा, ईश्वर-साक्षात्कार करना होगा। यही मुक्ति है और यही हमारे शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त। इसके बाद अपने शास्त्रों का अपने आप अवलोकन करना आसान हो जाता है, हम स्वयं ही अपने शास्त्रों का अर्थ समझ सकते हैं। उनमें से हमारे लिए जितना आवश्यक है, उतना ग्रहण कर सकते हैं तथा स्वयं ही सत्य को समझ सकते हैं। साथ ही हमें उन प्राचीन ऋषियों के प्रति, उनके कार्य के लिए, पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। वे प्राचीन ऋषिगण महान् थे, परन्तु हमें और भी महान् होना है। अतीत काल में उन्होंने बड़े बड़े काम किये, परन्तु हमें उनसे भी बड़ा काम कर दिखाना है। प्राचीन भारत में सैकड़ों ऋषि थे, और अब हमारे बीच लाखों होंगे—निश्चय ही होंगे। इस बात पर तुममें से हर एक जितनी जल्दी विश्वास करेगा, भारत का और समग्र ससार का उतना ही अधिक हित होगा। तुम जो कुछ विश्वास करोगे, तुम वही हो जाओगे। यदि तुम अपने को महापुरुष समझोगे तो कल ही तुम महापुरुष हो जाओगे। तुम्हें

रोक दे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातविरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मत है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान हैं। केवल रामानुज के मत में आत्मा कभी कभी संकुचित हो जाती है और कभी कभी विकसित परन्तु संकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास असंभव है। इस मतभेद पर ध्यान मत दो। सनी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाहे जिस भाव में रहे वह शक्ति है जरूर। और बितनी शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकोगे उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो, यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। आजकल हममें से अधिकांश जैसे अपने को अव्यय समझते हैं तुम अपने को बँधा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुममें सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो देवत्व छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विंगाल मंडप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था

स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नदी है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण-रज पड़ चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपञ्च तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यही उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई वाद की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुनः ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगे। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानो, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि तनी ही बार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत में ही अन्तिम का निर्माण होता है। अतः

रोक वे ऐसी कोई चीज नहीं है। आपातबिरोधी सम्प्रदायों के बीच यदि कोई साधारण मत है, तो वह यही है कि आत्मा में पहले से ही महिमा तेज और पवित्रता वर्तमान हैं। केवल यमानुज के मत में आत्मा कमी कमी संकुचित हो जाती है और कमी कमी विकसित परन्तु लंकराचार्य के मतानुसार संकोच-विकास भ्रम मात्र है। इस मतमें पर ध्यान मत दो। सभी तो यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्त या अव्यक्त चाह जिस मात्र में रहे वह शक्ति है और और शक्ति ही शीघ्रता से उस पर विश्वास कर सकते उतना ही तुम्हारा कल्याण होगा। समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो। चाहेकस हममें से अधिकांश जैसे अपने को अबपागल समझते हैं तुम अपने को वैसा मत समझो। इतना ही नहीं तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी की सहायता के ही कर सकते हो। तुमसे सब शक्ति है। तत्पर हो जाओ। तुममें जो ईश्वर छिपा हुआ है उसे प्रकट करो।

भारत का भविष्य

मद्रास का यह अन्तिम व्याख्यान एक विशाल मंडप में लगभग चार हजार श्रोताओं के सम्मुख दिया गया था

स्वामी जी का भाषण

यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशों को जाने से पहले तत्त्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी, यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहनेवाले समुद्राकार नद है, जहाँ चिरन्तन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरों द्वारा मानो स्वर्गराज्य के रहस्यों की ओर निहार रहा है। यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की चरण-रज पड़ चुकी है। यही सबसे पहले मनुष्य-प्रकृति तथा अन्तर्जगत् के रहस्योंदघाटन की जिज्ञासाओं के अकुर उगे थे। आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एवं जगत्प्रपञ्च तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादों का पहले पहल यहीं उद्भव हुआ था। और यही धर्म और दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी। यह वही भूमि है, जहाँ से उमड़ती हुई बाढ़ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्त्वों ने समग्र ससार को बार बार प्लावित कर दिया, और यही भूमि है, जहाँ से पुन ऐसी ही तरंगे उठकर निस्तेज जातियों में शक्ति और जीवन का संचार कर देंगी। यह वही भारत है जो शताब्दियों के आघात, विदेशियों के शत शत आक्रमण और सैकड़ों आचार व्यवहारों के विपर्यय सहकर भी अक्षय बना हुआ है। यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खड़ा है। आत्मा जैसे अनादि, अनन्त और अमृतस्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं।

भारत की सतानों, तुमसे आज मैं यहाँ कुछ व्यावहारिक बातें कहूँगा, और तुम्हें तुम्हारे पूर्व गौरव की याद दिलाने का उद्देश्य केवल इतना ही है कि तुम्हारी ही वार मुझसे कहा गया है कि अतीत की ओर नज़र डालने से सिर्फ मन की अवनति ही होती है और इससे कोई फल नहीं होता, अतः हमें भविष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। यह सच है। परन्तु अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। अतः

पहली तक हो उसके अतीत की ओर देखो पीछे जो चिरस्थान निर्गमर वह रहा है
 माकंठ उसका जब पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर,
 महत्तर और पहले से और भी ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले यह बात
 हमें याद करनी होगी। हमें समझना होगा कि हम किस उपादानों से बने हैं,
 कौन सा खून हमारी नसों में बह रहा है। उस खून पर हमें विश्वास करना होगा।
 और अतीत के उसके कृतित्व पर भी इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से
 हम अबस्य एक ऐसे भारत की नींव डालेंगे जो पहले से श्रेष्ठ होगा। अबस्य ही
 यहाँ बीच बीच में दुर्बला और अबनति के युग भी रहे हैं पर उनको मैं अधिक
 महत्त्व नहीं देता। हम सभी उसके विषय में जानते हैं। ऐसे युगों का होना आवश्यक
 था। किसी विश्वास बृद्ध से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ फल जमीन
 पर पिरा मुखाम्बा और सड़ा इस बिनाश से जो अङ्कुर उगा सम्भव है यह
 पहले के बृद्ध से बड़ा ही जाय। अबनति के जिस युग के भीतर से हमें गुडरना
 पड़ा वे सभी आवश्यक थे। इसी अबनति के भीतर से भविष्य का भारत आ
 रहा है यह अङ्कुरित ही चुका है, उसके मये पक्कब निकल चुके हैं और उस सक्रियतर
 विश्वाकर्माय ऊर्ध्वमूक बृद्ध का निकलना शुरू हो चुका है। और उसीके सम्बन्ध
 में मैं तुमसे कहने जा रहा हूँ।

किसी नई दूसरे देश की अपेक्षा भारत की समस्याएँ अधिक जटिल और बुद्धर
 हैं। जाति धर्म भाषा रासन-मनाकी—ये ही एक साथ मिलकर एक राष्ट्र
 की सृष्टि करते हैं। यदि एक एक जाति को छेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाय
 तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से सभार के दूसरे राष्ट्र समर्थित हुए हैं वे संख्या
 में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ धर्म हैं अधिक हैं तातार हैं तुर्क हैं गुपक
 हैं यूरोपीय हैं,—मानो सभार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना अपना खून
 मिला रही हैं। भाषा का यहाँ एक विविध बंध का समावृद्धा है आचार-मन्यहारों
 के सम्बन्ध में जो भारतीय जातियों में अतिना अन्तर है, उठना पूर्वी और
 यूरोपीय जातियों में नहीं।

हमारे पास एकमात्र सम्मिलन भूमि है हमारी पवित्र परम्परा हमारा
 धर्म। एकमात्र सामान्य आचार नहीं है और उसी पर हमें संमटन करना होगा।
 यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है। किन्तु एशिया में
 राष्ट्रीय एकता का आचार धर्म ही है अतः भारत के भविष्य संकलन की पहली शर्त
 के तौर पर उसी धार्मिक एकता की ही आवश्यकता है। जिस मर में एक ही धर्म
 सबको स्वीकार करना होगा। एक ही धर्म से येरा क्या मतलब है? यह उस तरह
 का एक ही धर्म नहीं जिसका ईसाइयों, मुसलमानों या बौद्धों में प्रचार है। हम जानते

है, हमारे विभिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा दावे चाहे कितने ही विभिन्न क्यों न हों, हमारे धर्म में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जो सभी सम्प्रदायों द्वारा मान्य हैं। इस तरह हमारे सम्प्रदायों के ऐसे कुछ सामान्य आचार अवश्य हैं, उनको स्वीकार करने पर हमारे धर्म में अद्भुत विविधता के लिए गुंजाइश हो जाती है, और साथ ही विचार और अपनी रूचि के अनुसार जीवन निर्वाह के लिए हमें सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है। हम लोग, कम से कम वे जिन्होंने इस पर विचार किया है, यह बात जानते हैं। और अपने धर्म के ये जीवनप्रद सामान्य तत्त्व हम सबके सामने लाये और देश के सभी स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, उन्हें जाने-समझें तथा जीवन में उतारें—यही हमारे लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम यही हमारा कार्य है।

अतः हम देखते हैं कि एशिया में और विशेषतः भारत में जाति, भाषा, समाज सम्बन्धी सभी बाधाएँ धर्म की इस एकीकरण शक्ति के सामने उड़ जाती हैं। हम जानते हैं कि भारतीय मन के लिए धार्मिक आदर्श से बड़ा और कुछ भी नहीं है। धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है, और हम केवल सबसे कम बाधावाले मार्ग का अनुसरण करके ही कार्य में अग्रसर हो सकते हैं। यह केवल सत्य ही नहीं कि धार्मिक आदर्श यहाँ सबसे बड़ा आदर्श है, किन्तु भारत के लिए कार्य करने का एकमात्र सम्भाव्य उपाय यही है। पहले उस पथ को सुदृढ़ किये बिना, दूसरे मार्ग से कार्य करने पर उसका फल घातक होगा। इसीलिए भविष्य के भारत निर्माण का पहला कार्य, वह पहला सोपान, जिसे युगों के उस महाचल पर खोद कर बनाना होगा, भारत की यह धार्मिक एकता ही है। यह शिक्षा हम सबको मिलनी चाहिए कि हम हिन्दू—द्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी, अथवा दूसरे सम्प्रदाय के लोग, जैसे शैव, वैष्णव, पाशुपत आदि भिन्न भिन्न मतों के होते हुए भी आपस में कुछ सामान्य भाव भी रखते हैं, और अब वह समय आ गया है कि अपने हित के लिए, अपनी जाति के हित के लिए हम इन तुच्छ भेदों और विवादों को त्याग दें। सचमुच ये झगड़े बिल्कुल वाहियात हैं, हमारे शास्त्र इनकी निन्दा करते हैं, हमारे पूर्व पुरुषों ने इनके बहिष्कार का उपदेश दिया है, और वे महापुरुष गण, जिनके वंशज हम अपने को बताते हैं और जिनका खून हमारी नसों में बह रहा है, अपनी सतानों को छोटे छोटे भेदों के लिए झगड़ते हुए देखकर उनको घोर घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

लड़ाई झगड़े छोड़ने के साथ ही अन्य विषयों की उन्नति अवश्य होगी, यदि जीवन का रक्त सशक्त एवं शुद्ध है तो शरीर में विषैले कीटाणु नहीं रह सकते। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवन-रक्त है। यदि यह साफ बहता रहे,

यदि यह श्रुत एवं ससक्त बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की एहिक भुटियाँ हों चाहे बेस की निर्बन्धता ही क्यों न हो, यदि शून्य श्रुत है तो सब सुखर जायगे। क्योंकि यदि रोमवाले कीटाणु शरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई शून्य में नहीं समा सकती। उदाहरणार्थ आधुनिक चिकित्साशास्त्र की एक उपमा को। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फैलने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कीटाणुओं का प्रवेश दूसरा शरीर की अवस्था विशेष। यदि शरीर की अवस्था ऐसी न हो ज्ञाय कि वह कीटाणुओं को नुसले दे यदि शरीर की जीवनी शक्ति इतनी जीव न हो ज्ञाय कि कीटाणु शरीर में बसकर बढते रहें तो संसार में किसी भी कीटाणु में इतनी शक्ति नहीं जो शरीर में पैठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के शरीर के भीतर सदा करोड़ों कीटाणु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमजोर हो जाता है, तभी ये विषैले कीटाणु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमजोर हो जाता है, तब हर तरह के रोग के कीटाणु उसके शरीर में झुकते जमकर उसकी राजनीति समाज धिन्ना और बुद्धि को कर्म बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हमें इस बीमारी की बड़ तक पहुँचकर रक्त से कुछ बीजों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होगा कि मनुष्य बलवान् हो शून्य श्रुत हो और शरीर तेजस्वी जिससे वह सब बाहरी विषों को बना और हटा देने कायम हो सके।

हमने देखा है कि हमारा धर्म ही हमारे तेज हमारे बल यही नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल भित्ति है। इस समय में यह तर्क फिस्तर्क करते नहीं जा रहा हूँ कि धर्म उचित है या नहीं सही है या नहीं और जन्त तक यह काम सामक है या नहीं। किन्तु मन्ना ही या मृत धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उससे निरुक्त नहीं सकते। अभी और चिर काल के लिए भी तुम्हें उमीदा अबलम्ब इत्य करना होगा और तुम्हें उसीके आधार पर लड़ा होना होगा चाहे तुम्हें इस पर उतना विद्वान हो या न हो जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँधे हुए ही और अगर तुम में छोड़ दो तो बुर बुर हो जाओगे। वही हमारी जानि का जीवन है और उसे अबलम्ब ही सफल बनाना होगा। तुम जो मुझों के पक्षे महानर भी अध्रय ही समरा बारम्ब बनस यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था उग पर तब कुछ निष्ठावर किया था। तुम्हारे पूर्वजों के धर्म-धन्ना के लिए सब कुछ माहात्पूर्वक सहन किया था मृत्यु को भी उन्ही हवन

से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाद के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही संशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हींको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पतं खाये हुए संस्कृत शब्दों से उन्हीं निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हीं सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर सबकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा संस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य संस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायें। यह कठिनाई

यदि यह सूट एवं सशक्त बना रहे तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक सामाजिक चाहे जिस किसी तरह की एहिक बुटियाँ हों चाहे वेवा की भिन्नता ही क्यों न हो यदि बून सूट है तो सब सुन्दर पायेंगे। क्योंकि यदि रोगनाके कौटानु सरीर से निकाल दिये जायें तो फिर दूसरी कोई बुराई बून में नहीं घसा सकती। उवाहरनार्थ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की एक उपमा छी। हम जानते हैं कि किसी बीमारी के फँसने के दो कारण होते हैं—एक तो बाहर से कुछ विषैले कौटानुओं का प्रवेश बुरा सरीर की अवस्था विरोध। यदि सरीर की अवस्था ऐसी न हो जाम कि वह कौटानुओं को बूसने दे यदि सरीर की बीजनी शक्ति इतनी बीज न हो जाम कि कौटानु सरीर में बूसकर बढ़ते रहें तो संसार में किसी भी कौटानु में इतनी शक्ति नहीं जो शरीर में पीठकर बीमारी पैदा कर सके। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य के सरीर के भीतर सवा करोड़ों कौटानु प्रवेश करते रहते हैं परन्तु जब तक शरीर बलवान् है हमें उनकी कोई खबर नहीं रहती। जब शरीर कमबोर हो जाता है, तभी ये विषैले कौटानु उस पर अधिकार कर लेते हैं और रोग पैदा करते हैं। राष्ट्रीय जीवन के बारे में भी यही बात है। जब राष्ट्रीय जीवन कमबोर हो जाता है तब हर तरह के रोम के कौटानु उसके शरीर में इकट्ठे जमकर उसकी राजनीति समाज शासा थीर बुद्धि को बल बना देते हैं। अतएव उसकी चिकित्सा के लिए हम इस बीमारी की बड़ तक पहुँचकर रक्त से कुछ द्रवों को निकाल देना चाहिए। तब उद्देश्य यह होना कि मनुष्य बलवान् हो बून सूट हो और शरीर ऐजर्बी। जिससे वह सब बाहरी विषों को बचा और हटा देने लायक हो सके।

हमने देना है कि हमारा धर्म ही हमारे लेज हमारे बल यही नहीं हमारे जातीय जीवन की भी मूल शक्ति है। इस समय में यह तक कितक करने नहीं जा रहा हूँ कि धर्म जिवित है या नहीं सही है या नहीं और जन्त तक यह काम कामक है या नहीं। किन्तु बल्ला ही या नुया धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है तुम उसके निकल नहीं सकते। अभी और फिर काल के लिए भी तुम्हें उतीका अवसम्ब इहण करना होगा और तुम्हें उसीके आचार पर पड़ा जाना होना चाहे तुम्हें इन पर उनका बिनाल हो या न हो जो मुझे है। तुम इसी धर्म में बँध हुए हो और अगर तुम इसे छोड दो तो बूर बूर हो जाओगे। बही हमारी जानि का जीवन है और उसे अवसम्ब ही सशक्त बनाना होगा। तुम जो मुर्षों के पत्र गहर भी अत्रय ही दमश कारण निबल यही है कि पत्र के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था उस पर अब कुछ निछावर किया जा। तुम्हारे पूर्वजों के धर्म-गता के लिए सब कुछ माहजपूर्वक सहन किया जा मृत्यु को भी जन्ति हरव

से लगाया था। विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु उस बाढ़ के बह जाने में देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये। दक्षिण के ये ही कुछ पुराने मन्दिर और गुजरात के सोमनाथ के जैसे मन्दिर तुम्हें राशि राशि ज्ञान प्रदान करेंगे। वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो डेरो पुस्तको से भी नहीं मिल सकती। देखो कि किस तरह ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार बार नष्ट हुए और बार बार ध्वसावशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए अब पहले ही की तरह अटल भाव से खड़े हैं। इसलिए इस धर्म में ही हमारा जातीय मन है, हमारा जातीय जीवन प्रवाह है। इसका अनुसरण करोगे तो यह तुम्हें गौरव की ओर ले जायगा। इसे छोड़ोगे तो मृत्यु निश्चित है। अगर तुम उस जीवन प्रवाह से बाहर निकल आये तो मृत्यु ही एकमात्र परिणाम होगा और पूर्ण नाश ही एकमात्र परिणति। मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। अतः धर्म को ही संशक्त बनाना होगा। पर यह किया किस तरह जाय ? मैं तुम्हारे सामने अपने विचार रखता हूँ। बहुत दिनों से, यहाँ तक कि अमेरिका के लिए मद्रास का समुद्री तट छोड़ने के वर्षों पहले से ये मेरे मन में थे और उन्हींको प्रचारित करने के लिए मैं अमेरिका और इंग्लैण्ड गया था। धर्म-महासभा या किसी और वस्तु की मुझे बिल्कुल परवाह नहीं थी, वह तो एक सुयोग मात्र था। वस्तुतः मेरे ये सकल्प ही थे जो सारे ससार में मुझे लिये फिरते रहे।

मेरा विचार है, पहले हमारे शास्त्र ग्रन्थों में भरे पड़े आध्यात्मिकता के रत्नों को, जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए हैं, बाहर लाना है। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल उन्हींसे इस ज्ञान का उद्धार करना नहीं, वरन् उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भाषा में ये सुरक्षित हैं, उन शताब्दियों के पर्तें खायें हुए संस्कृत शब्दों से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मैं उन्हें सबके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर नवकी, भारत के प्रत्येक मनुष्य की, सामान्य सम्पत्ति बनाना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नहीं। इस मार्ग की बहुत बड़ी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा संस्कृत ही है, यह कठिनाई तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक यदि सम्भव हो तो हमारी जाति के सभी मनुष्य संस्कृत के अच्छे विद्वान् न हो जायें। यह कठिनाई

कुछ और भी जरूरी है उसको सस्कृति का बोध दो। जब तक तुम यह नहीं कर सकते, तब तक उनकी उन्नत दशा कदापि स्थायी नहीं हो सकती। एक ऐसे नवीन वर्ण की सृष्टि होगी, जो सस्कृत भाषा सीखकर शीघ्र ही दूसरे वर्णों के रूप उठेगी और पहले की तरह उनपर अपना प्रभुत्व फैलायेगी। ऐ पिछड़ी जाति के लोगो, मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि तुम्हारे वचाव का, तुम्हारी अपनी दशा को उन्नत करने का एकमात्र उपाय सस्कृत पढना है, और यह लडना-झगडना और उच्च वर्णों के विरोध मे लेख लिखना व्यर्थ है। इससे कोई उपकार न होगा, इससे लडाई-झगडे और बढ़ेंगे, और यह जाति, दुर्भाग्यवश पहले ही से जिसके टुकडे टुकडे हो चुके हैं, और भी टुकडो मे बँटती रहेगी। जातियो मे समता लाने के लिए एक-मात्र उपाय उस सस्कार और शिक्षा का अर्जन करना है, जो उच्च वर्णों का बल और गौरव है। यदि यह तुम कर सको तो जो कुछ तुम चाहते हो, वह तुम्हें मिल जायगा।

इसके साथ मैं एक और प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, जो खासकर मद्रास से सम्बन्ध रखता है। एक मत है कि दक्षिण भारत मे द्राविड नाम की एक जाति के मनुष्य थे, जो उत्तर भारत की आर्य नामक जाति से बिल्कुल भिन्न थे और दक्षिण भारत के ब्राह्मण ही उत्तर भारत से आये हुए आर्य हैं, अन्य जातियाँ दक्षिणी ब्राह्मणो से बिल्कुल ही पृथक् जाति की हैं। भाषा-वैज्ञानिक महाशय, मुझे क्षमा कीजिएगा, यह मत बिल्कुल निराधार है। इसका एकमात्र प्रमाण यह है कि उत्तर और दक्षिण की भाषा मे भेद है। दूसरा भेद मेरी नजर मे नहीं आता। हम यहाँ उत्तर भारत के इतने लोग हैं, मैं अपने यूरोपीय मित्रो से कहता हूँ कि वे इस सभा के उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के लोगो को चुनकर अलग कर दें। भेद कहाँ है? जरा सा भेद भाषा मे है। पूर्वोक्त मतवादी कहते है कि दक्षिणी ब्राह्मण जब उत्तर से आये थे, तब वे सस्कृत बोलते थे, अभी यहाँ आकर द्राविड भाषा बोलते बोलते सस्कृत भूल गये। यदि ब्राह्मणो के सम्बन्ध मे ऐसी बात है तो फिर दूसरी जातियो के सम्बन्ध मे भी यही बात क्यों न होगी? क्यों न कहा जाय कि दूसरी जातियाँ भी एक एक करके उत्तर भारत से आयी हैं, उन्होंने द्राविड भाषा को अपनाया और सस्कृत भूल गयी? यह युक्ति तो दोनो ओर लग सकती है। ऐसी वाहियात वातो पर विश्वास न करो। यहाँ ऐसी कोई द्राविड जाति रही होगी, जो यहाँ से लुप्त हो गयी है, और उनमे से जो कुछ थोडे से रह गये थे, वे जगलो और दूसरे दूसरे स्थानो मे वस गये। यह बिल्कुल सम्भव है कि सस्कृत के बदले वह द्राविड भाषा ले ली गयी हो, परन्तु ये सब आर्य ही हैं, जो उत्तर से आये। सारे भारत के मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नहीं।

इसके बाद एक दूसरा विचार है कि ब्रह्म को कितना ही या अनार्य हैं। तब वे क्या हैं? वे ब्रह्म हैं। पिछले कालों में ही को बुझता है। अमरीकी अनेक तब और पूर्ववासी वेपारे फकर केते वे अब तक वे सीमित रहते उनसे और परिभव करते हैं मिश्रित संतामें भी वास्तव में उत्पन्न होकर फिर काक तक वास्तव में थी। इस अनुभव उदाहरण से मन हचारीं कर्ष पीछे वाकर नहीं की बटनाओं की कल्पना करता है, और हमारे पुत्रपरकमेता वाक्य के अर्थों में स्वप्न देखते हैं कि भारत काही बाँधोवाले बाधियाधियों के अर्थ और उज्ज्वल कार्य बाहर से जाये—परमात्मा वाले नहीं वे कभी-कभी के मत से वे मन्त्र तिब्बत से जाये दूसरे कहते हैं वे मन्त्र एशिया के अर्थ स्वदेशी अनेक हैं जो सोचते हैं कि कार्य काक वाक्याते वे। अन्ती अनुसार दूसरे सोचते हैं कि वे अब काके वाक्याते वे। अगर केवल ब्रह्म वाक वाका मनुष्य हुआ तो सभी कार्य काके वाक्याते वे। कुछ दिन हुए अर्थों करने का प्रयत्न किया गया वा कि कार्य सिद्धपरकमेता की हीकों के विचार-कालों वे। मुझे पता भी हुआ न होता अगर वे सबके अब इन अब विद्वानों के अर्थ नहीं ब्रह्म मरते। वाक्यक कोई कोई कहते हैं कि वे उत्तरी ब्रह्म में रहते वे। और वासों और उनके मित्रात्त्वत्वों पर कृपा दुष्टि रहे। इन विद्वानों की कल्पना के बारे में नहीं कहा है कि हमारे वात्यों में एक ही कल्प नहीं है, जो अन्त में लके कि कार्य भारत के बाहर से फिटी वेव से जाये। ही वापीय वाक्य में अफगाणिस्तान की वाक्य वा क्त इतना ही। और वह विद्वान्त भी कि ब्रह्म कल्प और अक्षय्य वे कित्पुन अताफिक और कर्षितिक है। उन किनों वा कल्प ही नहीं वा कि मुठ्ठी भर कार्य नहीं वाकर ताकों अनाओं पर कर्षितपर कल्पक क्त मने हों। अन्ती वे अनार्थ कर्ष वा वाते पाँच ही विषय में ऊपरी कर्षी कर्ष वाक्यो।

इस वाक्यवा की एकमात्र वाक्या महाभारत में मिलती है। उनमें लिखा है कि कल्पक के भारत में एक ही वासि वाद्यय की और फिर वेके के वेव के वाद विव विव वासियों में बँटती कवी। क्त नहीं एकमात्र वाक्या तब और दुष्टि-पूर्व है। वाक्य में जो कल्पक वा रहा है उससे वाद्ययैतर कर्षी वासियों फिर वाद्यय क्त में परिष्क होती।

द्वितीयक वाद्यय, वासि, वाक्य, की, वाद्यय, एकी, वाक्य, दोली, है कि कल्प कर्षी को विरता नहीं होना वाद्ययों का कर्षितत्व कीव करना नहीं होना। वाक्य के वाद्यय ही कल्पक का चरम अर्थ है। इसे कर्षितार्थ वे वाद्य के वाक्यपरक

मे वडे ही सुन्दर ढग से पेश किया है, जहाँ कि उन्होंने ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए प्रचारक के रूप में कृष्ण के आने का कारण बतलाया है। यही उनके अवतरण का महान् उद्देश्य था। इस ब्राह्मण का, इस ब्रह्मज पुरुष का, इस आदर्श और सिद्ध पुरुष का रहना परमावश्यक है, इसका लोप कदापि नहीं होना चाहिए। और इस समय इस जाति-भेद की प्रथा में जितने दोष हैं, उनके रहते हुए भी, हम जानते हैं कि हमें ब्राह्मणों को यह श्रेय देने के लिए तैयार रहना होगा कि दूसरी जातियों की अपेक्षा उन्हींमें से अधिसंख्यक मनुष्य यथार्थ ब्राह्मणत्व को लेकर आये हैं। यह सच है। दूसरी जातियों को उन्हें यह श्रेय देना ही होगा, यह उनका प्राप्य है। हमें बहुत स्पष्टवादी होकर साहस के साथ उनके दोषों की आलोचना करनी चाहिए। पर साथ ही उनका प्राप्य श्रेय भी उन्हें देना चाहिए। अंग्रेजी की पुरानी कहावत याद रखो—'हर एक मनुष्य को उसका प्राप्य दो।' अतः मित्रों, जातियों का आपस में झगडना बेकार है। इससे क्या लाभ होगा? इससे हम और भी बँट जायँगे, और भी कमजोर हो जायँगे, और भी गिर जायँगे। एकाधिकार तथा उसके दावे के दिन लड़ गये, भारतभूमि से वे चिर काल के लिए अन्तर्हित हो गये और यह भारत में ब्रिटिश शासन का एक सुफल है। यहाँ तक कि मुसलमानों के शासन से भी हमारा उपकार हुआ था, उन्होंने भी इस एकाधिकार को तोड़ा था। सब कुछ होने पर भी वह शासन सर्वांशत बुरा नहीं था, कोई भी वस्तु सर्वांशत न बुरी होती है और न अच्छी ही। मुसलमानों की भारत-विजय पददलितों और गरीबों का मानो उद्धार करने के लिए हुई थी। यही कारण है कि हमारी एक पचमाश जनता मुसलमान हो गयी। यह सारा काम तलवार से ही नहीं हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग का काम था, बेहद पागलपन होगा। अगर तुम सचेत न होगे तो मद्रास के तुम्हारे एक पचमाश—नहीं, अर्धश लोग ईसाई हो जायँगे। जैसा मैंने मलाबार प्रदेश में देखा, क्या वैसी बाह्यात बातें ससार में पहले भी कभी थीं? जिस रास्ते से उच्च वर्ण के लोग चलते हैं, गरीब पैरिया उससे नहीं चलने पाता। परन्तु ज्यों ही उसने कोई ब्रेडब अंग्रेजी नाम या कोई मुसलमानी नाम रख लिया कि बस, सारी बातें सुधर जाती हैं। यह सब देखकर इसके सिवा तुम और क्या निष्कर्ष निकाल सकते हो कि सब मलाबारी पागल हैं, और उनके घर पागलखाने हैं? और जब तक वे होश सँभाल कर अपनी प्रथाओं का सशोषण न कर लें, तब तक भारत की सभी जातियों को उनकी खिल्ली उडानी चाहिए। ऐसी बुरी और नृशंस प्रथाओं को आज भी जारी रखना क्या उनके लिए लज्जा का विषय नहीं? उनके अपने बच्चे तो भूखों मरते हैं, परन्तु ज्यों ही उन्होंने किसी दूसरे वर्ण का आश्रय लिया कि फिर उन्हें

जाति-भेद कितना भी कठोर क्यों न हो, वह इसी रूप में ही सृष्ट हुआ है। कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं, जिनमें हर एक की जन-संख्या दस हजार है। अगर ये सब इकट्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगे तो इन्हें कौन रोक सकता है? ऐसा मैंने अपने ही जीवन में देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयी, और ज्योंही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है? — क्योंकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक् है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कामों में, यहाँ तक कि एक ही जाति की भिन्न भिन्न शाखाएँ भी एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती। और शकराचार्य आदि शक्तिशाली युग-प्रवर्तक ही बड़े बड़े वर्ण-निर्माता थे। उन लोगों ने जिन अद्भुत बातों का आविष्कार किया था, वे सब मैं तुमसे नहीं कह सकता, और सम्भव है कि तुमसे भी कोई कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धांत ढूँढ निकाले, और इससे मुझे अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी कभी उन्होंने दल के दल वलूचियों को लेकर क्षण भर में उन्हें क्षत्रिय बना डाला, दल के दल धीवरों को लेकर क्षण भर में ब्राह्मण बना दिया। वे सब ऋषि-मुनि थे और हमें उनकी स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हें भी ऋषि-मुनि बनना होगा, कृतकार्य होने का यही गूढ़ रहस्य है। न्यूनाधिक सबको ही ऋषि होना होगा। ऋषि के क्या अर्थ हैं? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र बनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ', कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु निःसृत होती है, जो दूसरों को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओं की कार्यसिद्धि में सहायक होते हैं। यही ऋषित्व है।

विस्तृत कार्यप्रणाली के बारे में यही कहना है कि पीढ़ियों तक उसका अनुसरण करना होगा। मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह एक सुझाव मात्र है। जिसका उद्देश्य यह दिखाना है कि ये लडाई-झगड़े बन्द हो जाने चाहिए। मुझे विशेष दुःख इस बात पर होता है कि वर्तमान समय में भी जातियों के बीच में इतना मतभेद चलता रहता है। इसका अन्त हो जाना चाहिए। यह दोनों ही पक्षों के लिए व्यर्थ है, खासकर ब्राह्मणों के लिए, क्योंकि इस तरह के एकाधिकार और विशेष दावों के दिन लड़ गये। हर एक अभिजात वर्ग का कर्तव्य है कि अपने कुलीन तंत्र की कब्र वह आप ही खोदे, और जितना शीघ्र इसे कर सके, उतना ही अच्छा है। जितनी ही वह देर करेगा, उतनी ही वह सबेगी और उसकी मृत्यु भी

अच्छा भावनामिल जाता है। जब जातियों में अपनी अपनी किन्तु नहीं होने चाहिए।

उच्च वर्गों को नीचे उतारकर इस समस्या की सीमांका न होनी किन्तु नीचे जातियों को ऊँची जातियों के बराबर उठाना हीना। और कबि कुछ वर्गों को, जिनका अपने शास्त्रों का ज्ञान और अपने पूर्वजों के महान् उद्देश्यों के समझने की शक्ति क्षुब्ध से अधिक नहीं तुम कुछ का कुछ कहते हुए मुक्त हो, फिर भी मैं जो कुछ कहा है हमारे शास्त्रों में बर्णित कर्म-प्रणाली नहीं है। वे नहीं समझते, समझते वे हैं जिनके अस्तित्व है तथा पूर्वजों के कर्मों का समस्त प्रयोजन समझने की क्षमता रखते हैं। वे उदत्त होकर मुन-मुनान्तरों से गुजरते हुए पतौष पर्याप्त की विविध मति को लब्ध करते हैं। वे नवे और पुराने सभी शास्त्रों में समझा इसकी परम्परा देख पाते हैं। अच्छा तो यह योजना—यह प्रणाली क्या है? उच्च वर्गों का एक और शास्त्र है और दूसरा और शाब्द और सम्पूर्ण कर्म शाब्दों को उठाकर शास्त्र बनाना है। शास्त्रों में बीरे बीरे पुन रख पाते हो कि नीची जातियों को अधिकारिक अधिकार दिखे जाते हैं। कुछ शून्य भी है जिनमें तुम्हें ऐसे कठोर वाक्य पढ़ने को मिलते हैं—'अगर वृद्ध वेद तुम से तो उसके कर्मों में लीला पलाकर भर दो और अगर वह वेद की एक भी पंक्ति बाध कर ले तो उसकी पीठ काट डालो यदि वह किसी शास्त्र को 'ए शास्त्र' कह ले तो भी उसकी पीठ काट लो। यह पुराने बयानों की गुरुत्व बर्णना है, इसमें शरा भी लम्बे नहीं परन्तु स्मृतिकारों को दोष न हो क्योंकि उन्होंने समाज के किसी अंग में प्रचलित प्रणाली को ही शिर्ष लिखित किया है। ऐसे शास्त्री प्रकृति के जोग प्राचीन काल में कभी कभी पैदा हो गये थे। ऐसे अनुर लीन कर्मोन्मेष सभी युगों में होते जाये हैं। इसलिए शरा के समय में तुम देखो कि इस स्वर में बोड़ी भरती जा गयी है, जैसे 'शुद्धों को संघ न करो परन्तु उन्हें लज्ज शिखा भी न दो। फिर बीरे बीरे हम दूसरी स्मृतियों में—शास्त्रकार उन स्मृतियों में जिनका वाक्यक पूरा प्रभाव है वह किन्ना पाते हैं कि अगर वृद्ध शास्त्रों के आचार-व्यवहारों का अनुकरण करें तो वे अच्छा करते हैं उन्हें उदाहरित करना चाहिए। इस प्रकार यह सब होता जा रहा है। तुम्हारे सामने इन सब कर्म-व्यवहारों का विस्तृत वर्णन करने का मुझे समय नहीं है और न ही इसका कि इसका विस्तृत विवरण की प्रार्थना किया जा सकता है। किन्तु प्रत्यक्ष गटलानों का विचार करने से इन देखते हैं, सभी जातियाँ बीरे बीरे उठेंगी। शरा जो दूसरों जातियाँ हैं, उनमें से कुछ तो शास्त्रों में शामिल की ही रही हैं। कोई जाति अगर अपने की शास्त्रों को नहीं ले तो इस पर कोई कड़ा कर लगाया है।'

साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नहीं दिया। हम इसीलिए अवनत हो गये। और हमारा पहला कार्य यही है कि हम अपने पूर्वजों के बटोरे हुए घर्मरूपी अमोल रत्न जिन तहखानों में छिपे हुए हैं, उन्हें तोड़कर बाहर निकालें और उन्हें सबको दें। यह कार्य सबसे पहले ब्राह्मणों को ही करना होगा। बगाल में एक पुराना अघविश्वास है कि जिस गोकुले साँप ने काटा हो, यदि वह खुद अपना विष खींच ले तो रोगी जरूर बच जायगा। अतएव ब्राह्मणों को ही अपना विष खींच लेना होगा। ब्राह्मणों की जातियों से मैं कहता हूँ, ठहरो, जल्दी मत करो, ब्राह्मणों से लड़ने का मौका मिलते ही उसका उपयोग न करो, क्योंकि मैं पहले दिखा चुका हूँ कि तुम अपने ही दोष से कष्ट पा रहे हो। तुम्हें आध्यात्मिकता का उपार्जन करने और सस्कृत सीखने से किसने मना किया था? इतने दिनों तक तुम क्या करते रहे? क्यों तुम इतने दिनों तक उदासीन रहे? और दूसरों ने तुमसे बढकर मस्तिष्क, वीर्य, साहस और क्रिया-शक्ति का परिचय दिया, इस पर अब चिढ़ क्यों रहे हो? समाचार पत्रों में इन सब व्यर्थ वाद-विवादों और झगड़ों में शक्ति क्षय न करके, अपने ही घरों में इस तरह लड़ते-झगड़ते न रहकर—जो कि पाप है—ब्राह्मणों के समान ही सस्कार प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दो। बस तभी तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध होगा। तुम क्यों सस्कृत के पंडित नहीं होते? भारत की सभी जातियों में सस्कृत शिक्षा का प्रचार करने के लिए तुम क्यों नहीं करोड़ों रुपये खर्च करते? मेरा प्रश्न तो यही है। जिस समय तुम यह कार्य करोगे, उसी क्षण तुम ब्राह्मणों के बराबर हो जाओगे। भारत में शक्तिलाभ का रहस्य यही है।

सस्कृत में पांडित्य होने से ही भारत में सम्मान प्राप्त होता है। सस्कृत भाषा का ज्ञान होने से ही कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस न करेगा। यही एकमात्र रहस्य है, अतः इसे जान लो और सस्कृत पढो। अद्वैतवादी की प्राचीन उपमा दी जाय तो कहना होगा कि समस्त जगत् अपनी माया से आप ही सम्मोहित हो रहा है। इच्छाशक्ति ही जगत् में अमोघ शक्ति है। प्रबल इच्छाशक्ति का अधिकारी मनुष्य एक ऐसी ज्योतिर्मयी प्रभा अपने चारों ओर फैला देता है कि दूसरे लोग स्वतः उस प्रभा से प्रभावित होकर उसके भाव से भावित हो जाते हैं। ऐसे महापुरुष अवश्य ही प्रकट हुआ करते हैं। और इसके पीछे भावना क्या है? जब वे आविर्भूत होते हैं, तब उनके विचार हम लोगों के मस्तिष्क में प्रवेश करते हैं और हममें से कितने ही आदमी उनके विचारों तथा भावों को अपना लेते हैं और शक्तिशाली बन जाते हैं। किसी सगठन या सभ में इतनी शक्ति क्यों होती है? सगठन को केवल भौतिक या जड शक्ति मत मानो। इसका क्या कारण है, अथवा

जानी ही बनकर होनी। वह वह ब्राह्मण जाति का
 नभ जातिवों के उधार की चेष्टा करे। यदि वह ऐसा
 ऐसा करता है, तभी एक वह ब्राह्मण है,
 है तो वह ब्राह्मण नहीं है। इतर तुम्हें भी उचित है कि
 करो। इसमें तुम्हें स्वयं मिलेगा। पर यदि तुम अपना भी
 फल स्वयं न होकर उनके विपरीत होना—हमारे कर्मों का
 विषय में तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए। कर्त्तव्य ब्राह्मण
 कोई कर्म नहीं करते। सांसारिक कर्म दूसरी जातियों के लिए है,
 नहीं। ब्राह्मणों से मेरा वह निवेदन है कि वे जो कुछ जानते हैं,
 और हरिषों से उन्होंने जिस ज्ञान एवं कल्पित का संकलन किया है,
 भारतीय जनता को उन्नत करने के लिए बख्तर प्रदान करें।
 क्या है इसका स्वरूप करना भारतीय ब्राह्मणों का कर्म
 है 'ब्राह्मणों को जो इतना सम्मान और विशेष अधिकार मिले नहीं
 वह है कि उनके पास धर्म का अधिकार है।' उन्हें वह अधिकार
 बनाने न बाँट देने चाहिए। वह सब है कि ब्राह्मणों में ही
 जातियों में धर्म का अधिकार किया और उन्होंने ही कर्म नहीं, उन
 दूसरी जातियों में स्वयं के स्वयं का उन्मेष ही नहीं हुआ था, धर्म
 के लिए सब कुछ छोड़ा। वह ब्राह्मणों का दोष नहीं कि वे
 अन्य जातियों में जाने लगे। दूसरी जातियों में जो ब्राह्मणों की तरह कर्म
 करने की चेष्टा नहीं की? क्यों उन्होंने कृपा की रहकर ब्राह्मणों की
 मार केवल किया?

परन्तु दूसरी की अपेक्षा अधिक अधिकार होना एक दुर्लभाई कर्म कर्मों की
 बात है और दुर्लभाई के लिए उन्हें कर्मों रखना दूसरी बात। यदि सब धर्म
 बुरे उद्देश्य के हेतु मनायी जाती है तो वह बलुही हो जाती है, उनका उन्मेष कर्मों
 के लिए ही होना चाहिए। उन दुर्लभाई की वह अधिकार किया एक संसार, किसी
 ब्राह्मण ब्रह्मचर होने वाले है अब मायात्मक जन्म की केवल कर्मों, और यदि
 उन्होंने मायात्मक जन्म को वह कर्मों नहीं ही उन्मेषित दुर्लभाई का उन्मेष
 ब्रह्मचर हो गया था। इस की हठारी क्यों एक कर्म पर कर्म की-कर्मों के लिए
 कि-कर्मों की ही धर्म कर्मों कर्मों रहे कर्मों का कर्म नहीं है कि कर्मों में कर्मों के ही

१. कर्मों के उन्मेषित दुर्लभाई के दुर्लभाई-कर्मों के लिए।

२. कर्मों के उन्मेषित कर्मों के लिए कर्मों के लिए कर्मों के लिए कर्मों के लिए

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में ही या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे ससार में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उड़ाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठाकर ही दम लेती हैं। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त बर्ताव करता है और बीच बीच में डाँट फटकार सुना देता है, तो बस ठीक हो जाती हैं, इस प्रकार के वशीकरण की वे अम्यस्त हो गयी हैं। सारा ससार ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसीने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकड़कर पीछे खींचेंगे और उसे विठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायेंगे। हम लोग इसके अम्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है, इसलिए गुलाम बनना छोड़ो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करे? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आध मील चलने की हमें शक्ति ही नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि

बहु कौन सी वस्तु है, जिसके द्वारा कुछ बार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारत-वासियों पर शासन करते हैं? इस प्रश्न का स्तोत्रवैज्ञानिक समाधान क्या है? यही कि वे बार करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाशक्ति को समवेत कर लेते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त आहार बना लेते हैं और तुम तीस करोड़ मनुष्य अपनी अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से पूरक किये रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं। अतः यदि भारत को महान् बनाना है उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है सर्वजन की शक्ति-समूह की और बिखरी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र कर उसमें समन्वय आने की।

असर्वश्रेष्ठ संहिता की एक विस्मयमय श्रुति याद आ गयी जिसमें कहा गया है 'तुम सब लोग एक मन हो जाओ सब लोग एक ही विचार के बन जाओ क्योंकि प्राचीन काल में एक मन होने के कारण ही देवताओं में शक्ति पायी है।' देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गये कि वे एकचित्त वे एक मन हो जाओ ही समाज गठन का रहस्य है। और यदि तुम 'आर्य' और 'द्राविड़' 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू तू मैं मैं' करोगे—बागड़े और पारस्परिक विरोध भाव को बढ़ाओगे—तो समाज भी कि तुम उस शक्ति-समूह से दूर हटते जाओगे जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य सम्पूर्णतः उसी पर निर्भर करता है। बस इच्छा-शक्ति का सबब और उनका समन्वय कर उन्हें एकमुखी करना ही बहु साधन रहस्य है। प्रत्येक जीवी अपनी शक्तियों को निम्न निम्न भागों से परिचायित करता है तथा मुट्ठी मर जायगी अपनी इच्छा-शक्ति एक ही मार्ग से परिचायित करते हैं, और उसका फल क्या हुआ है यह तुम लोगों से छिपा नहीं है। इसी तरह की बात धारे सधारे में देवता में आती है। यदि तुम संसार के इतिहास पर दृष्टि डालो तो तुम देखोगे कि सर्वत्र छोटे छोटे सुगठित राष्ट्र बड़े बड़े असंगठित राष्ट्रों पर शासन कर रहे हैं। ऐसा हीना स्वाभाविक है, क्योंकि छोटे संगठित राष्ट्र अपने भागों को आसानी के साथ सैन्यीभूत कर सकते हैं। और इस प्रकार वे अपनी शक्ति को विकसित करने में समर्थ होते हैं। दूसरी ओर जितना बड़ा राष्ट्र होगा उतना ही संगठित करना कठिन होगा। वे मानो अनिर्वाचित लोगों की भीड़ मात्र हैं वे कभी परस्पर सम्बद्ध नहीं हो सकते। इसलिए ये सब सत्संग के मनड़े प्रथम बन्द ही जाने चाहिए।

१ संगठनार्थं सर्ववर्णं स भो मनसि जायते॥

इहा भागं यथा पूर्वं संजायता उपसते ॥ १।६४।१॥

इसके सिवा हमारे भीतर एक और बड़ा भारी दोष है। महिलाएँ मुझे क्षमा करेंगी, पर असल बात यह है कि सदियों से गुलामी करते करते हम औरतो के राष्ट्र के समान बन गये हैं। चाहे इस देश में हो या किसी अन्य देश में, कहीं भी तुम तीन स्त्रियों को शायद ही कभी एक साथ पाँच मिनट से अधिक देर तक झगडा किये बिना देख पाओगे। यूरोपीय देशों में स्त्रियाँ बहुत बड़ी बड़ी सभा-समितियाँ स्थापित करती हैं और अपनी शक्ति की बड़ी बड़ी घोषणाएँ करती हैं। इसके बाद वे आपस में झगडा करने लग जाती हैं। इसी बीच कोई पुरुष आता है और उन पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। सारे सप्ताह में उन पर शासन करने के लिए अब भी पुरुषों की आवश्यकता होती है। हमारी भी ठीक वही हालत है। हम भी स्त्रियों के समान हो गये हैं। यदि कोई स्त्री स्त्रियों का नेतृत्व करने चलती है, तो सब मिलकर फौरन उसकी खरी आलोचना करना शुरू कर देती हैं—उसकी खिल्लियाँ उडाने लग जाती हैं, और अन्त में उसे नेतृत्व से हटाकर, उसे बैठकर ही दम लेती हैं। यदि कोई पुरुष आता है और उनके साथ ज़रा सख्त वर्तव्य करता है और बीच बीच में डाँट फटकार सुना देता है, तो वस ठीक हो जाती है, इस प्रकार के वशीकरण को वे अम्यस्त हो गयी हैं। सारा सप्ताह ही इस प्रकार के वशीकरण एव सम्मोहन करनेवालों से भरा है। ठीक इसी तरह यदि हम लोगों में से किसीने आगे बढ़ना चाहा, हमें रास्ता दिखाने की कोशिश की, तो हम फौरन उसकी टाँग पकडकर पीछे खींचेंगे और उसे बिठा देंगे। परन्तु यदि कोई विदेशी हमारे बीच में कूद पड़े और हमें पैरों से ठोकर मारे, तो हम बड़ी खुशी से उसके पैर सहलाने लग जायेंगे। हम लोग इसके अम्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसी बात नहीं है? और कहीं गुलाम स्वामी बन सकता है, इसलिए गुलाम बनना छोड़ो।

आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाय। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव-देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं। आघ मील चलने की हमें शक्ति ही नहीं और हम हनुमान जी की तरह एक ही छलाँग में समुद्र पार करने की इच्छा करें, ऐसा नहीं हो सकता। जिसे देखो वही योगी बनने की धुन में है, जिसे देखो वही समाधि

सगाने या रहा है। ऐसा नहीं होने का। दिन भर तो दुनिया के सैकड़ों प्रपञ्चों में छिप्टे रहोगे कर्मकांड में व्यस्त रहोगे और शाम को आँख मूँदकर, नाक पकाकर साँस बड़ाओ-उतारोने। क्या योग की सिद्धि और समाधि को इतना सहज समझ रखा है कि शायि लोग तुम्हारे तीन बार नाक फड़फड़ाने और साँस बड़ाने से हवा में भिन्नकर तुम्हारे पेट में बुस चार्मेने ? क्या इसे तुमने कोई हौसी मजाक मान लिया है ? ये सब विचार बाह्योक्त हैं। जिसे ग्रहण करने या अपमान की आवश्यकता है, वह है निरनुष्ण। और उसकी प्राप्ति कैसे होती है ? इसका उत्तर यह है कि सबसे पहले उस विद्युत् की पूजा करो जिसे तुम अपने पारों ओर देख रहे हो—उसकी पूजा करो। 'बसिप' ही इस संस्कृत शब्द का ठीक समानार्थक है, मंत्रेयी के किसी अन्य शब्द से काम नहीं चलेगा। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम वास-वास और आये-पीछे बेच रहे हैं वे ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देवदासी ! परस्पर ईर्ष्या-द्वेष करने और हागड़ने के बजाय हमें उनकी पूजा करनी चाहिए। यह व्यत्यस्त मयावह कर्म है, जिसके लिए हम कसेस जेक रहे हैं। फिर भी हमारी बाँसें नहीं बुझती।

अस्तु यह विषय इतना विस्तृत है कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं कहाँ पर अपना बक्षस्य समाप्त करूँ। इसलिये मझास में मैं किस प्रकार काम करना चाहता हूँ इस विषय में सबसे मैं अपना मत व्यक्त कर व्याख्यान समाप्त करता हूँ। सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और सौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो ? तुम्हें इस विषय पर सोचना विचारना होगा इस पर तर्क वितर्क और आपस में परामर्श करना होना विमान स्नाना होना और अन्त में उसे कार्य रूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो तब तक तुम्हारी जाति का उद्धार होना असम्भव है। जो शिक्षा तुम अभी पा रहे हो, उसमें कुछ बच्छा अंग भी है और बुराइयाँ बहुत हैं। इसलिये ये बुराइयाँ उसके मले अंग को बजा देती हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि यह शिक्षा मनुष्य बनानेवाली नहीं कही जा सकती। यह शिक्षा नेबल तथा सम्पूर्णतः निवन्दात्मक है। निवेन्दात्मक शिक्षा या निवेच की दुनियाव पर आधारित शिक्षा मनुष्य में भी भ्रयात्मक है। कामक मति याकक पाठशाळा में मर्ती होना है और सबसे पहली बात जो उसे सिनायी जाती है, वह यह कि तुम्हारा बाप मूर्ख है। दूसरी बात जो बहुसीगता है वह यह है कि

१ अब मां सर्वमूलेषु भूतात्मानं हतात्म्यम् ।
 अहंविहातमात्रास्यां मीम्यान्निग्रन अरुवा ॥ श्रीमद्भागवत ३।२९।३७॥

तुम्हारा दादा पागल है। तीसरी बात है कि तुम्हारे जितने शिक्षक और आचार्य हैं, वे पाखंडी हैं। और चौथी बात है कि तुम्हारे जितने पवित्र धर्म ग्रन्थ हैं, उनमें झूठी और कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं। इस प्रकार की निपेघात्मक बातें सीखते सीखते जब बालक सोलह वर्ष की अवस्था को पहुँचता है, तब वह निपेघों की खान बन जाता है—उसमें न जान रहती है और न रीढ़। अतः इसका जैसा परिणाम होना चाहिए था, वैसा ही हुआ है। पिछले पचास वर्षों से दी जानेवाली इस शिक्षा ने तीनो प्रान्तों में एक भी स्वतंत्र विचारों का मनुष्य पैदा नहीं किया, और जो स्वतंत्र विचार के लोग हैं, उन्होंने यहाँ शिक्षा नहीं पायी है, विदेशों में पायी है, अथवा अपने भ्रममूलक कुसंस्कारों का निवारण करने के लिए पुनः अपने पुराने शिक्षालयों में जाकर अध्ययन किया है। शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूस दी जायँ कि अन्तर्द्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को पचा कर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सकें हो, तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कठस्थ कर रखा है। कहा भी है—**यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य**। अर्थात्—‘वह गधा, जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ की ही बात जान सकता है, चन्दन के मूल्य को वह नहीं समझ सकता।’ यदि बहुत तरह की खबरों का सचय करना ही शिक्षा है, तब तो ये पुस्तकालय सप्ताह में सर्वश्रेष्ठ मुनि और विश्वकोश ही ऋषि हैं। इसलिए हमारा आदर्श यह होना चाहिए कि अपने देश की समग्र आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के प्रचार का भार अपने हाथों में लें और जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रीय रीति से राष्ट्रीय सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा का विस्तार करें। हाँ, यह ठीक है कि यह एक बहुत बड़ी योजना है। मैं नहीं कह सकता कि यह कभी भी कार्य रूप में परिणत होगी या नहीं, पर इसका विचार छोड़कर हमें यह काम फौरन शुरू कर देना चाहिए। लेकिन कैसे? किस तरह से काम में हाथ लगाया जाय? उदाहरण के लिए मद्रास का ही काम लें। सबसे पहले हमें एक मन्दिर की आवश्यकता है, क्योंकि सभी कार्यों में प्रथम स्थान हिन्दू लोग धर्म को ही देते हैं। तुम कहोगे कि ऐसा होने से हिन्दुओं के विभिन्न मतावलम्बियों में परस्पर झगड़े होने लगेंगे। पर मैं तुमको किसी मत विशेष के अनुसार वह मन्दिर बनाने को नहीं कहता। वह इन साम्प्रदायिक भेद भावों के परे होगा। उसका एकमात्र प्रतीक होगा ॐ, जो कि हमारे किसी भी धर्म सम्प्रदाय के

मिष्ट महाशक्तम प्रतीक है। यदि हिन्दुओं में कोई ऐसा सम्प्रदाय हो जो इस ओंकार को न माने तो समझ लो कि वह हिन्दू कहलाने योग्य नहीं है। वहाँ सब लोग अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही हिन्दुत्व की व्याख्या कर सकेंगे पर मन्दिर हम सब के लिए एक ही इलाका चाहिए। अपने सम्प्रदाय के अनुसार जो देवी देवताओं की प्रतिमा-पूजा करना चाहें अन्यत्र जाकर करें, पर इस मन्दिर में वे भीतों न भयङ्ग न करें। इस मन्दिर में वे ही धार्मिक तत्त्व समझाये जायेंगे जो सब सम्प्रदायों में समान हैं। साथ ही हर एक सम्प्रदायवाले को अपने मत की शिक्षा देने का यहाँ पर अधिकार रहेगा पर एक प्रतिबन्ध रहेगा कि वे अन्य सम्प्रदायों से झगड़ा नहीं करने पायेंगे। सोचो तुम क्या कहते हो? ससार तुम्हारे ही राम जानना चाहता है, उसे यह सुनने का समय नहीं है कि तुम भीतों के विषय में क्या विचार प्रकट कर रहे हो। भीतों की बात छोड़ तुम अपनी ही ओर ध्यान दो।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक दूसरी बात यह है कि इसके साथ ही एक भीरु संस्था है जिससे धार्मिक शिक्षण और प्रचारक तैयार किये जायें और वे सभी धर्म-किरकर धर्म प्रचार करने को भेजे जायें। परन्तु ये केवल धर्म का ही प्रचार न करे, बल्कि उसका साथ साथ लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करें। जैसे हम धर्म का प्रचार द्वार द्वार जाकर करते हैं वैसे ही हमें लौकिक शिक्षा का भी प्रचार करना पड़ेगा। यह काम आसानी से हो सकता है। शिक्षकों तथा धर्म प्रचारकों के द्वारा हमारे कार्य का विस्तार होता जायगा और कमजोर अन्य स्थाणों में ऐसे ही मन्दिर प्रतिष्ठित होंगे और इस प्रकार समस्त भारत में यह कार्य फैल जायगा। यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मान्यता होगी पर इसकी इतना समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इन काम के लिए पत्र कहीं से जायेगा? धन की आवश्यकता नहीं। धन कुछ नहीं है। शिक्षण द्वारा करो तो मैं ऐसा जीवन स्थानीय कर रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि आज यहाँ का क्या है तो कल कहीं जाऊँगा। और मैं वैसे सभी हमारी परवाह ही नहीं। धन या किसी भी वस्तु की जब मुझे इच्छा होती है सभी को प्राप्त हो जायगी क्योंकि वे सब सब गुणवत्त हैं। कि मैं उनका गुणवत्त हूँ। जो सब वस्तुओं में उमे मिली जायगी ही है। मेरे पास जाना पड़ता है। धन उगायी कोई विचार न करे।

अब प्रश्न यह है कि काम करनेवाला नाम कौन है? प्रश्न न करने की तुलना में ही मेरी योजना है। क्या तुम भारती जाते और मैं भी तुम्हारे मुकाम? मैं तुम्हारे मुकाम विचारित है। मैं तो मैं तुम्हारे वक्तव्य का भीतम प्रश्न है। धर्म का प्रचार करना ही मेरा ही विचार है। मैं ही धर्म का प्रचार करने का प्रश्न है। और मैं ही धर्म का प्रचार करने का प्रश्न है। धर्म का प्रचार करने का प्रश्न है।

अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुले आम जायेंगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अशस्वरूप हो जायेंगे, जिनके द्वारा ससार का प्रत्येक राष्ट्र सगठित हो रहा है। हमें भारत में बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।' तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं। तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो। इस जीवन में क्या है? तुम हिन्दू हो और इसलिए तुम्हारा यह सहज विश्वास है कि तुम अनन्त काल तक रहनेवाले हो। कभी कभी मेरे पास नास्तिकता के विषय पर वार्तालाप करने के लिए कुछ युवक आया करते हैं। पर मेरा विश्वास है कि कोई हिन्दू नास्तिक नहीं हो सकता। सम्भव है कि किसीने पाश्चात्य ग्रन्थ पढ़े हो और अपने को भौतिकवादी समझने लग गया हो। पर ऐसा केवल कुछ समय के लिए होता है। यह बात तुम्हारे खून के भीतर नहीं है। जो बात तुम्हारी रंग रंग में रमी हुई है, उसे तुम निकाल नहीं सकते और न उसकी जगह और किसी धारणा पर तुम्हारा विश्वास ही हो सकता है। इसीलिए वैसी चेष्टा करना व्यर्थ होगा। मैंने भी बाल्यावस्था में ऐसी चेष्टा की थी, पर वैसा नहीं हो सकता। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें। यही हमारा निश्चय हो और वे भगवान्, जो हमारे शास्त्रों के अनुसार साधुओं के परित्राण के लिए ससार में बार बार आविर्भूत होते हैं, वे ही महान् कृष्ण हमको आशीर्वाद दें एवं हमारे उद्देश्य की मिद्धि में सहायक हो।

दान

जब स्वामी जी मद्रास में थे उस समय एक बार उनके समापत्तित्व में 'विप्रापुटी अमदान समाजम्' नामक एक दार्शनिक संस्था का वार्षिक समारोह मनाया गया। उस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण दिया जिसमें उन्होंने उसी समारोह के एक पूर्व वक्ता महोदय के विचारों पर कुछ प्रकाश डाला। इन वक्ता महोदय ने कहा था कि यह अनुचित है कि अन्य सब जातियों की अपेक्षा केवल ब्राह्मण को ही विशेष दान दिया जाता है। इसी प्रसंग में स्वामी जी ने कहा कि इस बात के जो पहलू हैं—एक अच्छा दूसरा बुरा। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रतीत होता कि राष्ट्र की समस्त शिक्षा एक सम्पन्न अधिकतर ब्राह्मणों में ही पायी जाती है साथ ही ब्राह्मण ही समाज के विचारशील तथा मननशील व्यक्ति रहे हैं। यदि बोझी वेर के सिद्ध मान लो कि तुम उनके वे शासन छील लो जिनके सहारे वे चिन्तन मनन करते हैं तो परिणाम यह होगा कि सारे राष्ट्र को मरका करेगा। इसके बाद स्वामी जी ने यह बतलाया कि यदि हम भारत के दान की सीली की जो बिना विचार अबबा मेवभाव के होती है तुम्हारा दूसरे राष्ट्रों को उस सीली से करें जिसका एक प्रकार से जानूनी कम होता है, तो हमें यह प्रतीत होता कि हमारे यहाँ एक मिलमंगा भी बस उतने से समुष्ट हो जाता है जो उसे तुल्य वे दिया जाय और उतने में ही वह अपनी सब की बिबगी बसर करता है। परन्तु इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में पहली बात तो यह है कि कानून मिलमंगों को सेवामम में जाने के लिए बाध्य करता है। परन्तु मनुष्य मोजल की अपेक्षा स्वतंत्रता अधिक पसन्द करता है, इसलिए वह सेवामम में न जाकर समाज का दुश्मन बान बन जाता है। और फिर इसी कारण हमें इस बात की बकरत पड़ती है कि हम बबालुत पुकिड जेड तथा अन्य सामनो का निर्माण कर। यह निश्चित है कि समाज के घरीर में जब तक 'सम्पत्ता' नामक बीमारी बनी रहेगी तब तक उसके साथ साथ गरीबी रहेगी और इसीलिए गरीबों को सहायता देने की आवश्यकता भी रहेगी। यही कारण है कि भारत वासियों की बिना मेवभाव की दान सीली और पाश्चात्य देशों की बिमेबमूमक दान सीली में उनको चुनना पड़ेगा। भारतीय दान सीली में जहाँ तक संन्यासियों की बात है उनका तो यह हाल है कि मजे ही उनमें से कोई सच्चे संन्यासी न हों परन्तु फिर भी उन्हें मिखाटन करने के लिए अपने सास्त्रों कि कम से कम कुछ बँसों को

आपका कार्य बढा। अनेक राज्यों के भिन्न भिन्न शहरों से आपके पास निमंत्रण पर निमंत्रण आते रहे और उन्हें भी आपको स्वीकार करना पडता था, कितने ही प्रकार की शकाओं का समाधान करना होता था, प्रश्नों का उत्तर देना पडता था, लोगों की अनेक समस्याओं को हल करना पडता था और हम जानते हैं कि यह सारा कार्य आपने बड़े उत्साह एव योग्यता तथा सच्चाई के साथ किया। इस सबका फल भी चिरस्थायी ही निकला। आपकी शिक्षाओं का अमरीकी राष्ट्रमंडल के अनेक प्रबुद्ध क्षेत्रों पर बड़ा गहरा असर पडा और उसीके कारण उन लोगों में अनेक दिशाओं में विचार विनिमय, मनन तथा अन्वेषण का भी बीजारोपण हुआ। अनेक लोगों की हिन्दू धर्म के प्रति जो प्राचीन गलत धारणाएँ थी, वे भी बदल गयीं और हिन्दू धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा एव भक्ति बढ गयी। उसके बाद शीघ्र ही धर्म सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन तथा आध्यात्मिक तत्त्वों के अन्वेषण के लिए जो अनेक नये नये क्लब तथा समितियाँ स्थापित हुईं, वे इस बात की स्पष्ट द्योतक हैं कि दूर पाश्चात्य देशों में आपके प्रयत्नों का फल क्या हुआ तथा कैसा हुआ। आप तो लन्दन में वेदान्त-दर्शन की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालय के संस्थापक कहे जा सकते हैं। आपके नियमित रूप से व्याख्यान होते रहे, जनता भी उन्हें ठीक समय पर सुनने आयी तथा उनकी व्यापक रूप से प्रशंसा हुई। निश्चय ही उनका प्रभाव व्याख्यान-भवन तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् उसके बाहर भी हुआ। आपकी शिक्षाओं द्वारा जनता में जिस प्रीति तथा श्रद्धा का उद्रेक हुआ, उसका द्योतक वह भावनापूर्ण मान-पत्र है, जो आपको लन्दन छोड़ते समय वहाँ के वेदान्त-दर्शन के विद्यार्थियों ने दिया था।

वेदान्ताचार्य के नाते आपको जो सफलता प्राप्त हुई, उसका कारण केवल यही नहीं रहा है कि आप आर्य धर्म के सत्य सिद्धान्तों से गहन रूप से परिचित हैं, और न यही कि आपके भाषण तथा लेख इतने सुन्दर तथा जोशीले होते हैं, वरन् इसका कारण मुख्यतः स्वयं आपका व्यक्तित्व ही रहा है। आपके भाषण, निबन्ध तथा पुस्तकों में आध्यात्मिकता तथा साहित्यिक दोनों प्रकार की विशेषताएँ हैं और इसलिए अपना पूरा असर किये बिना वे कभी रह ही नहीं सकते। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इनका प्रभाव यदि और भी अधिक पडा है तो उसका कारण है, आपका सादा, परोपकारी तथा निस्वार्थ जीवन, आपकी नम्रता, आपकी भक्ति तथा आपकी लगन।

यहाँ पर जब हम आपकी उन सेवाओं का उल्लेख कर रहे हैं जो आपने हिन्दू धर्म के उदात्त सत्य सिद्धान्तों के आचार्य होने के नाते की हैं, तो हम अपना यह परम कर्तव्य समझते हैं कि हम आपके पूज्य गुरुदेव तथा पथप्रदर्शक श्री रामकृष्ण परमहंस

कलकत्ता-श्रमिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी जब कलकत्ता पहुँचे तो लीनों ने उनका स्वागत बड़े जोर से रीत के साथ किया। दाहुर के अनेक सत्रे समये रास्ते से उनका बड़ा भारी जुसूम निकला और रास्ते के चारों ओर जनता की जबरदस्त भीड़ भी जो उनका दर्शन पाने के लिए उत्सुक थी। उनका भौतिकारिक स्वागत एक सप्ताह बाद सोभा बाजार के एक राजा रामकान्तदेव बहादुर के निवासस्थान पर हुआ जिसका समापतिरत राजा विनयकृष्ण देव बहादुर ने किया। समापति द्वारा कुछ संक्षिप्त परिषद के साथ स्वामी जी की सेवा में निम्नलिखित मान-मंत्र एक सुन्दर शीरी की मञ्जूषा में रत्नकर भेंट किया गया—

सेवा म

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्द जी

प्रिय बन्धु,

हम कलकत्ता तथा बंगाल के अल्प स्थानों के हिन्दू निवासी आज आपके बपनी परमभूमि में आपस जाने के अवसर पर आपके हृदय से स्वागत करते हैं। महाराज आपका स्वागत करते समय हम अत्यन्त वर्ष तथा इत्यग्रा का अनुभव करते हैं क्योंकि आपने महान् कर्म तथा आदर्श द्वारा संसार के मित्र विन्न भागों में केवल हमारे बर्म की ही नीरवामित नहीं किया है, बरन् हमारे बेस और विधेयत हमारे बवास प्रान्त का सिर ऊँचा किया है।

सन् १८९३ ई में सिकामो सहर में जो विरच-मेका हुआ था उसकी संभवत बर्म-महासभा के अवसर पर आपने आर्य बर्म के तत्त्वों का विधेय रूप से बर्नन किया। आपके मापक का सार अधिकतर भोताओं के लिए बड़ा धिमाप्रब तथा रहस्योद्घाटन करनेवाला था और जोर तथा माधुर्य के कारण वह सही प्रकार हृदयधरणी भी था। सम्भव है कि आपके उस मापक को कुछ लोगों ने सन्नेह की दृष्टि से सुना हो तथा कुछ ने उस पर तर्क बितर्क भी किया हो परन्तु इसका सामान्य प्रभाव तो बही हुआ कि उसके द्वारा अधिकांस धिभित असठीकी अन्ता के बामिक विचारों में अग्रित हो गयी। उनके मन में जो एक नया प्रकाश पड़ा उसका उन्होंने अपनी स्वामाधिक निष्पटता तथा सत्य के प्रति अनुपरा के बस हो अधिक से अधिक काम उठाने का निश्चय किया। फलतः आपको विस्तृत सुभोग प्राप्त हुआ और

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया

स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपञ्च का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सकारों को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर में सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पड़ती है, उसके कानों में सदा ही एक स्वर वज्रता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम में, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियों, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप में नहीं, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप में बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अप्रेज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि-गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियों, मेरे भाइयों, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हें धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योंकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योंकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कहीं नहीं है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरों से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावों को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हें सुना

को भी अपनी श्रद्धाभक्ति अर्पित करें। मुख्यतः उन्हींके कारण हमें आपकी प्राप्ति हुई है। अपनी अतिथीय रहस्यमयी अन्तर्दृष्टि द्वारा उन्होंने आपमें उस ईश्वरी शक्ति का अंश हीन ही पहचान लिया था और आपके लिए उस उच्च जीवन की शक्ति बानी कर दी थी जिसे आज हम हर्यपूर्वक सञ्चल होते देख रहे हैं। यह वे ही थे जिन्होंने आपकी छिपी हुई ईश्वरी शक्ति तथा दिव्य दृष्टि को आपके लिए लोकाविव्याप्त आपकी विचारों एवं जीवन के उद्देश्यों को ईश्वरी मुद्रा दे दिया तथा उस अद्भुत राज्य के तत्त्वों के अन्वेषण में आपको सहायता प्रदान की। भावी पीढ़ियों के लिए उनकी अमूर्त विरासत आप ही हैं।

हे महारामन् बुद्धा और बहादुरी के साथ उसी मार्ग पर बढ़े शक्ति, जो आपने अपने कार्य के लिए चुना है। आपके सम्मुख सारा संसार खिलने को है। आपको हिन्दू धर्म की व्याख्या करनी है और उसका सर्वत्र अमिश्रण से लेकर नास्तिक तथा मानवबुद्धि तक बने अंश तक पहुँचाना है। जिस उत्साह से आपने कार्य आरम्भ किया उससे हम मुग्ध हो बसे हैं और आपने जो सफलता प्राप्त कर ली है, वह कितने ही लोगों को आश्चर्य है। परन्तु अभी भी कार्य का बड़ा अंश शेष है और उसके लिए हमारा श्रेष्ठ बलिक हम कह सकते हैं आपका ही श्रेष्ठ आपकी ओर निहार रहा है। हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा प्रचार अभी कितने ही हिन्दुओं के लिए आपको करना है। अतएव आप इस महान् कार्य में संलग्न हों। हमें आपमें तथा अपने इस सत्कार्य के अन्वेषण में पूर्ण विश्वास है। हमारा राष्ट्रीय धर्म इस बात का इच्छुक नहीं है कि उसे कोई मौक्तिक विजय प्राप्त हो। इसका अर्थ सर्वत्र आपका शक्ति रहा है, और इसका साथ ही सर्वत्र सत्य रहा है, जो इन धर्मचक्रों से परे है तथा जो केवल ज्ञान-दृष्टि से ही देखा जा सकता है। आप समस्त संसार को और जहाँ आवश्यक हो हिन्दुओं को भी बड़ा शीघ्र, ताकि वे अपने ज्ञान वस्तुओं के शक्तियों से परे ही धार्मिक इन्धों का उचित रूप से अध्ययन करें, परम सत्य का आकाशकार करें और मनुष्य होने के नाते अपने कर्तव्य तथा स्वान का अनुभव करें। इस प्रकार की आप्रति कराने या उद्बोधन के लिए आपसे बढ़कर अधिक शक्ति कोई नहीं है। अपनी ओर से हम आपको यह सर्वत्र ही पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि आपके इस सत्कार्य में जिसका भीज्ञा आपने स्पष्टतः ईश्वरी प्रेरणा से उठाया है हमारा सर्वत्र ही हार्दिक भक्तिपूर्ण तथा सेवात्मक में बिनम सहाय्य रहेगा।

परम प्रिय वच्

हम हैं,

आपके प्रिय मित्र तथा मन्तव्य

स्वामी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया .

स्वामी जी का भाषण

मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना में लीन कर देना चाहता है, वह जगत् प्रपञ्च का कुल सम्बन्ध छोड़ देना चाहता है, वह अपने समस्त सम्बन्धों की माया काटकर ससार से दूर भाग जाना चाहता है। वह सम्पूर्ण दैहिक पुराने सस्कारों को छोड़ने की चेष्टा करता है। यहाँ तक कि वह एक देहवारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है। परन्तु अपने अन्तर के अन्तर में सदा ही एक मृदु अस्फुट ध्वनि उसे सुनायी पड़ती है, उसके कानों में सदा ही एक स्वर वज्रता रहता है, न जाने कौन दिन रात उसके कानों में मधुर स्वर से कहता रहता है, पूर्व में हो या पश्चिम में, **जन्तु जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।** भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियों, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप में नहीं, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नहीं, बल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी बालक के रूप में बातचीत करने के लिए आया हुआ हूँ। हाँ, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर बैठकर बालक की तरह सरल अन्तःकरण से तुमसे अपने मन की सब बातें खोल कर कहूँ। तुम लोगो ने मुझे अनुपम शब्द 'भाई' सम्बोधित किया है, इसके लिए तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो। पश्चिमी देशों से लौटने के कुछ ही समय पहले एक अग्रज मित्र ने मुझसे पूछा था, 'स्वामी जी, चार वर्षों तक विलास की लीलाभूमि गौरवशाली महाशक्तिमान् पश्चिमी भूमि पर भ्रमण कर चुकने पर आपकी मातृभूमि अब आपको कैसी लगेगी? मैं बस यही कह सका, 'पश्चिम में आने से पहले भारत को मैं प्यार ही करता था, अब तो भारत की धूल ही मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा अब मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए तीर्थ है।'

कलकत्तावासियों, मेरे भाइयों, तुम लोगो ने मेरे प्रति जो अनुग्रह दिखाया है, उसके लिए तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में मैं असमर्थ हूँ। अथवा तुम्हें धन्यवाद ही क्या दूँ, क्योंकि तुम मेरे भाई हो—तुमने भाई का, एक हिन्दू भाई का ही कर्तव्य निभाया है, क्योंकि ऐसा पारिवारिक बन्धन, ऐसा सम्बन्ध, ऐसा प्रेम हमारी मातृभूमि की सीमा के बाहर और कहीं नहीं है।

शिकागो की धर्म-महासभा निस्सन्देह एक विराट् समारोह थी। भारत के कितने ही नगरों से हम लोगो ने इस सभा के आयोजक महानुभावों को धन्यवाद दिया है। हम लोगो के प्रति उन्होंने जैसी अनुकम्पा प्रदर्शित की है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं, परन्तु इस धर्म-महासभा का यथार्थ इतिहास मैं तुम्हें सुना-

यना चाहता हूँ। उनकी इच्छा थी कि वे अपनी प्रभुता की प्रतिष्ठा करें। महाममा
 क कुछ व्यक्तियों की इच्छा थी कि ईसाई धर्म की प्रतिष्ठा करें और दूसरे यमों को
 हास्यास्पद सिद्ध करें। परन्तु फल कुछ और ही हुआ। विभाता के विधान में बैठा
 ही जाना था। मेरे प्रति अनेक लोगों ने सदैव व्यवहार किया था। उन्हें सपष्ट
 सम्बन्ध दिया जा चुका है।

राज्यी बात यह है कि मैं धर्म-महाममा का उद्देश्य लेकर अमरिका नहीं गया।
 वह सभा तो मेरे लिए एक गौतम बन्धु थी। उमने हमारा रास्ता बहुत कुछ सारु हो
 गया और कार्य करने की बहुत कुछ सुविधा हा गयी। हममें सन्नेह नहीं। इसके लिए
 हम महाममा क मन्स्यी क विनय रूप से कुलज हैं। परन्तु वास्तव में हमारा
 पन्थान सयुक्त राज्य अमरिका के निवासी सहस्रय आतिथय महान् बबरीरी जाति
 को मिलना चाहिए, जिसमें दूसरी जातियों की सयदा अनुमान का अधिक विधान
 हुआ है। रसगाड़ी पर पाँच मिनट किसी अमेरिकन के साथ बातचीत करने में
 का सुनारा मिनट है। जयदा दूसरे ही सग तुम्ह करने पर पर अतिथि के का में
 निमन्त्रि करेगा और आज हृदय की मारी बात गायकर रम देगा। यही बबरीरी
 जाति का चरित्र है और हम इसे सूझ समझ करते हैं। मेरे प्रति उन्होने का
 अनुसन्धा दिग्गामी उगका बर्मेन नहीं हा मरगा। मेरे साथ उन्हान कैना अगुई
 स्नेहपूर्ण व्यवहार किया उग प्रकट करने में मुझे कई कई सग जायसि। इसी तरह
 अन्धान्त्रिक मन्गगापर के दूसरे पार रहने वाली सयदा जाति को भी हम सम्बन्ध
 देना चाहिये। ब्रिटिश भूमि पर अथवा क प्रति मुसगे अधिक जूना का साथ दिखर
 कभी निर्मान पैर न गया हागा। हम सभ पर जो अर्थव बापु है के ही सग का गाय
 देगे। परन्तु विधान ही मैं उन लोगों क साथ रहने जमा दिखना ही उनका न क
 सिपन जगा दिखना ही ब्रिटिश जाति के जीवन-यत्न की गी साथ करने जमा—
 उग जाति का हृन्-सम्बन्ध जिस जगत हा रहा है सग दिखना ही समाने जगा
 उगता ही उग प्यार करने जगा। अब मेरे भाइयो यो लेगा बोई न जाना का
 सुगत जगत अथवा का प्यार जगता हा। उरद सयसस स बस्यी ज्ञान जाति
 जान के लिए सग जानता आसयस है कि कर्त का कर्त ही सग है और भाव ही
 सब उरद सय सग ही सग। हमारे जातीय धर्मसम्बन्ध के १ में दिख सग
 सगुनी सुग का अर्थव सग कर्त सिद्धय सिद्ध दिखता है। गी सग अर्थव
 और हमारे सय का ति न सय की सग अहा सयस है—बरी सयसय सयस।
 सयस सय सय सयस।

दुर्भाग्य से मैंने देखा कि वे जाति के जाति-सम्बन्ध का पता न था।
 वे जानते ही जाति-सम्बन्ध का पता न था कि वे जाति-सम्बन्ध का पता न था।

अंग्रेज या कोई दूसरे पश्चिमी महाशय भारत आते हैं और यहाँ दुःख और दारिद्र्य का अबाध राज्य देखते हैं तो वे तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस देश में धर्म नहीं टिक सकता, नैतिकता नहीं टिक सकती। उनका अपना अनुभव निस्सन्देह सत्य है। यूरोप की निष्ठुर जलवायु और दूसरे अनेक कारणों से वहाँ दारिद्र्य और पाप एक जगह रहते देखे जाते हैं, परन्तु भारत में ऐसा नहीं है। मेरा अनुभव है कि भारत में जो जितना दरिद्र है वह उतना ही अधिक साधु है। परन्तु इसको जानने के लिए समय की जरूरत है। भारत के राष्ट्रीय जीवन का यह रहस्य समझने के लिए कितने विदेशी दीर्घ काल तक भारत में रहकर प्रतीक्षा करने के लिए तैयार हैं? इस राष्ट्र के चरित्र का धर्म के साथ अध्ययन करें और समझें ऐसे मनुष्य थोड़े ही हैं। यही, केवल यही ऐसी जाति का वास है, जिसके निकट गरीबी का मतलब अपराध और पाप नहीं है। यही एक ऐसी जाति है, जहाँ न केवल गरीबी का मतलब अपराध नहीं लगाया जाता, बल्कि उसे यहाँ बड़ा ऊँचा आसन दिया जाता है। यहाँ दरिद्र सन्यासी के वेश को ही सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। इसी तरह हमें भी पश्चिमी सामाजिक रीति रिवाजों का अध्ययन बड़े धैर्य के साथ करना होगा। उनके सम्बन्ध में एकाएक कोई उन्मत्त धारणा बना लेना ठीक न होगा। उनके स्त्री-पुरुषों का आपस में हेलमेल और उनके आचार व्यवहार सब एक खास अर्थ रखते हैं, सबमें एक पहलू अच्छा भी होता है। तुम्हें केवल यत्नपूर्वक धैर्य के साथ उसका अध्ययन करना होगा। मेरे इस कथन का यह अर्थ नहीं कि हमें उनके आचार व्यवहारों का अनुकरण करना है, अथवा वे हमारे आचारों का अनुकरण करेंगे। सभी जातियों के आचार व्यवहार शताब्दियों के मन्द गति से होनेवाले क्रमविकास के फलस्वरूप हैं, और सभी में एक गम्भीर अर्थ रहता है। इसलिए न हमें उनके आचार व्यवहारों का उपहास करना चाहिए और न उन्हें हमारे आचार व्यवहारों का।

मैं इस सभा के समक्ष एक और बात कहना चाहता हूँ। अमेरिका की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा काम अधिक सतोषजनक हुआ है। निर्भीक, साहसी एवं अध्यवसायी अंग्रेज जाति के मस्तिष्क में यदि किसी तरह एक बार कोई भाव संचारित किया जा सके—यद्यपि उसकी खोपड़ी दूसरी जातियों की अपेक्षा स्थूल है, उसमें कोई भाव सहज ही नहीं समाता—तो फिर वह वही दृढ़ हो जाता है, कभी बाहर नहीं होता। उस जाति की असीम व्यावहारिकता और शक्ति के कारण बीजरूप से समायें हुए उस भाव से अकुर का उद्गम होता है और बहुत शीघ्र फल देता है। ऐसा किसी दूसरे देश में नहीं है। इस जाति की जैसी असीम व्यावहारिकता और जीवनी शक्ति है, वैसी तुम अन्य किसी जाति में न देखोगे। इस जाति में कल्पना

कम है और कर्मभ्रष्टा अधिक। और कौन जान सकता है कि इस अविश्व वाति क भावों का मूल स्रोत कहाँ है! उसके हृदय के गहन प्रवेश में कौन समझ सकता है किशमी कल्पनाएँ और भावोन्मास छिपे हुए हैं! वह बोरो की वाति है वे यथार्थ क्षणिक है भाव छिपाना—उन्हें कभी प्रकट न करना उनको सिखा है, बचपन से उन्हें यही सिखा मिली है। बहुत कम अंग्रेज देखने को मिलेगे जिन्होंने कभी अपने हृदय का मास प्रकट किया होगा। पुरुषों की तो बात ही क्या अंग्रेज स्त्रियों की कभी हृदय के उन्मास को बाहिर नहीं होने देती। मैंने अंग्रेज महिलाओं को ऐसे भी कार्य करते हुए देखा है जिन्हें करने में अत्यन्त साहसी बसाकी भी लड़खड़ी पार्येगे। किन्तु बहादुरी के इस ठाटबाग के साथ ही इस क्षमिषीबिध कबच के भीतर अंग्रेज हृदय की भावनाओं का सम्मीर प्रसन्न छिपा हुआ है। यदि एक बार भी अंग्रेजों के धाय तुम्हारी बनिष्ठता हो जाय यदि उनके साथ तुम कुछ मिल सके यदि उनसे एक बार भी अपने सम्मुख उनके हृदय की बात स्पष्ट करवा सके तो वे तुम्हारे परम मित्र हो जायेंगे सब के लिए तुम्हारे बाध हो जायेंगे। इसलिए मेरी राय में दूसरे स्मारों की अपेक्षा इंग्लैंड में मेरा प्रचार-कार्य अधिक संतोषजनक हुआ है। मेरा बुद्ध विश्वास है कि अगर कल मेरा शरीर टूट जाय तो मेरा प्रचार कार्य इन्हीं में सम्पूर्ण रहेगा और क्लमघ विस्तृत होता पायगा।

माइसी तुम कौनों में मेरे हृदय के एक दूसरे तार—सबसे अधिक कोमल तार को स्पर्श किया है—वह है मेरे गुस्सेव मेरे आचार्य मेरे जीवनदर्श मेरे हृदय मेरे प्राणों के देवता को समहृदय परमहंस का उल्लेख। यदि भगवा बाबा कर्मजा मैंने कोई उत्कार्य किया हो यदि मेरे मुँह से कोई ऐसी बात निकली हो जिससे समार के किसी भी मनुष्य का कुछ उपकार हुआ हो तो उसमें मेरा कुछ भी मोरन नहीं वह उनका है। परन्तु यदि मेरी जिह्वा ने कभी अविद्या की बर्षा की हो यदि मुझसे कभी किसीके प्रति घृणा का मास निकला हो तो वे मेरे हैं, उनके नहीं। जो कुछ पूर्वक है, वह सब मेरा है पर जो कुछ भी जीवनप्रद है, बसप्रद है, पवित्र है वह सब जन्हीकी सक्ति का पौख है, जन्हीकी बाणी है और वे स्वयं हैं। मित्रो यह माय है कि समार जर्नी तक उन महापुरुष से परिचित नहीं हुआ। हम सोम संसार के इतिहास में घट घट महापुरुषों की जीवन-पत्रों हैं। इसमें उनके सिप्यों के स्मरण एवं कार्य-संचालन का हाथ रखा है। हजारों वर्ष तक समासार उन कोमा ने उन प्राचीन महापुरुषों के जीवन-चरितों को काट-छाँटकर संवार है। परन्तु इनके पर भी जो जीवन मैंने जर्नी आर्षों देवा है जिसकी छाया में मैं रह चुका हूँ जिनके चरणों में बैठकर मैंने सब सीखा है उन भी समहृदय परमहंस का जीवन जैसा उज्ज्वल और महिमान्वित है, वैसा मेरा विचार में और किसी महापुरुष का नहीं।

भाइयो, तुम सभी गीता की वह प्रसिद्ध वाणी जानते हो —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

—‘जब जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब मैं शरीर धारण करता हूँ। साधुओं का परित्राण करने, असाधुओं का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए विभिन्न युगों में मैं आया करता हूँ।’

इसके साथ एक और बात तुम्हें समझनी होगी, वह यह कि आज ऐसी ही वस्तु हमारे सामने मौजूद है। इस तरह की एक आध्यात्मिकता की बाढ़ के प्रबल वेग से आने के पहले समाज में कुछ छोटी छोटी तरंगें उठती दीख पड़ती हैं। इन्हींमें से एक अज्ञात, अनजान, अकल्पित तरंग आती है, क्रमशः प्रबल होती जाती है, दूसरी छोटी छोटी तरंगों को मानो निगल कर वह अपने में मिला लेती है। और इस तरह अत्यन्त विपुलाकार और प्रबल होकर वह एक बहुत बड़ी बाढ़ के रूप में समाज पर वेग से गिरती है कि कोई उसकी गति को रोक नहीं सकता। इस समय भी वैसे ही हो रहा है। यदि तुम्हारे पास आंखें हैं तो तुम उसे अवश्य देखोगे। यदि तुम्हारा हृदय-द्वार खुला है तो तुम उसको अवश्य ग्रहण करोगे। यदि तुममें सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति है तो तुम उसे अवश्य प्राप्त करोगे। अवा, विल्कुल अवा है वह, जो समय के चिह्न नहीं देख रहा है, नहीं समझ रहा है। क्या तुम नहीं देखते हो, वह दरिद्र ब्राह्मण बालक जो एक दूर गाँव में—जिसके बारे में तुममें से बहुत कम ही लोगों ने सुना होगा—जन्मा था, इस समय सम्पूर्ण ससार में पूजा जा रहा है, और उसे वे पूजते हैं, जो शताब्दियों से मूर्ति-पूजा के विरोध में आवाज उठाते आये हैं? यह किसकी शक्ति है? यह तुम्हारी शक्ति है या मेरी? नहीं, यह और किसीकी शक्ति नहीं। जो शक्ति यहाँ श्री रामकृष्ण परमहंस के रूप में आविर्भूत हुई थी, यह वही शक्ति है, और मैं, तुम, सावु, महापुरुष, यहाँ तक कि अवतार और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी उसी न्यूनाधिक रूप में पुजीभूत शक्ति की लीला मात्र हैं। इस समय हम लोग उस महाशक्ति की लीला का आरम्भ मात्र देख रहे हैं। वर्तमान युग का अन्त होने के पहले ही तुम लोग इसकी अधिकाधिक आश्चर्यमयी लीलाएँ देख पाओगे। भारत के पुनरुत्थान के लिए इस शक्ति का आविर्भाव ठीक ही समय पर हुआ है। क्योंकि जो मूल जीवनी शक्ति भारत को सदा स्फूर्ति प्रदान करेगी, उसकी बात कभी कभी हम लोग भूल जाते हैं।

प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य-साधन की अलग अलग कार्यप्रणालियाँ हैं। कोई राजनीति कोई समाज-सुधार और कोई किसी दूसरे विषय को अपना प्रबल आधार बनाकर कार्य करती है। हमारे लिए बर्न की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। अंग्रेज राजनीति के माध्यम से बर्न भी संभव सकते हैं। अमरीकी साम्य समाज-सुधार के माध्यम से भी बर्न संभव सकते हैं। परन्तु हिन्दू राजनीति समाज-विज्ञान और दूसरा जो कुछ है सबको बर्न के माध्यम से ही समझ सकते हैं। जातीय जीवन-संघर्ष का मानो यही प्रबल स्वर है, दूसरे तो उसीमें कुछ परिवर्तित किये हुए माना गौण स्वर है और उसी प्रबल स्वर के गूट होने की शंका हो रही थी। ऐसा समझा या मानो हम लोग अपने जातीय जीवन के इस मूल भाव को हटाकर उसकी जगह एक दूसरा भाव स्थापित करने जा रहे थे हम लोग जिस मेरुस्थल के बल से खड़े हुए हैं, मानो उसकी जगह दूसरा कुछ स्थापित करने जा रहे थे अपने जातीय जीवन के बर्न-संघर्ष की जगह राजनीति का मेरुस्थल स्थापित करने जा रहे थे। यदि इसमें हमें सफलता मिलती तो इसका फल पूर्व विनाश होता परन्तु ऐसा होनेवाला नहीं था। यही कारण है कि इस महाकथित का अविनाश हुआ। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि तुम इस महापुरुष को किस अर्थ में ग्रहण करते हो और उसके प्रति किनासा आधार रखते हो किन्तु मैं तुम्हें यह चुनौती के रूप में अब सब बता देना चाहता हूँ कि अनेक दस्तावियों से भारत में विद्यमान अद्भुत शक्ति का यह प्रकट रूप है और एक हिन्दू के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम इस शक्ति का अध्ययन करो तथा भारत के कल्याण उसके पुनर्स्थापन और समस्त मानव जाति के हित के लिए इस शक्ति के द्वारा क्या कार्य किये गये हैं इसका पता लगाओ। मैं तुमको विनयास विनयास हूँ कि संसार के किसी भी देश में सर्वोच्च बर्न और विभिन्न सम्प्रदायों में आनुभाव के उत्थापित और पमीलोकित होने के बहुत पहले ही इस तमर के पास एक ऐसे महापुरुष थे जिनका सम्पूर्ण जीवन एक आदर्श बर्न-महासमा का स्वस्व था।

हमारे आस्था में सबसे बड़ा आदर्श निर्गुण ब्रह्म है, और ईश्वर की इच्छा से यदि सभी निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त कर सकते तब तो बात ही कुछ और भी परन्तु चूंकि ऐसा नहीं हो सकता इसलिए समुच्च आदर्श का रहना अनुभव्य जाति के बहु संभवक बर्न के लिए बहुत आवश्यक है। इस तरह के किसी महान् आदर्श पुण्य दर हार्दिक अनुष्ठान रखते हुए जनकी शताका के नीचे अध्ययन किये बिना न कोई जाति उठ सकती है न बढ़ सकती है, न कुछ कर सकती है। राजनीतिक माँग तक कि सामाजिक या व्यापारिक आदर्शों का प्रतिनिधित्व करनेवाले कोई भी

पुरुष सर्वसाधारण भारतवासियों के ऊपर कभी भी अपना प्रभाव नहीं जमा सकते। हमें चाहिए आध्यात्मिक आदर्श। आध्यात्मिक महापुरुषों के नाम पर हमें सोत्साह एक हो जाना चाहिए। हमारे आदर्श पुरुष आध्यात्मिक होने चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस हमें एक ऐसा ही आदर्श पुरुष मिला है। यदि यह जाति उठना चाहती है, तो मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि इस नाम के चारों ओर उत्साह के साथ एकत्र हो जाना चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस का प्रचार हम, तुम या चाहे जो कोई करे, इससे प्रयोजन नहीं। तुम्हारे सामने मैं इस महान् आदर्श पुरुष को रखता हूँ, और अब इस पर विचार करने का भार तुम पर है। इस महान् आदर्श पुरुष को लेकर क्या करोगे, इसका निश्चय तुम्हें अपनी जाति, अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अभी कर डालना चाहिए। एक बात हमें याद रखनी चाहिए कि तुम लोगो ने जितने महापुरुष देखे हैं और मैं स्पष्ट रूप से कहूँगा कि जितने भी महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़े हैं, उनमें इनका जीवन सबसे पवित्र था, और तुम्हारे सामने यह तो स्पष्ट ही है कि आध्यात्मिक शक्ति का ऐसा अद्भुत आविर्भाव तुम्हारे देखने की तो बात ही अलग, इसके बारे में तुमने कभी पढ़ा भी नहीं होगा। उनके तिरोभाव के दस वर्ष के भीतर ही इस शक्ति ने सम्पूर्ण ससार को घेर लिया है, यह तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। अतएव कर्तव्य की प्रेरणा से अपनी जाति और धर्म की भलाई के लिए मैं यह महान् आध्यात्मिक आदर्श तुम्हारे सामने प्रस्तुत करता हूँ। मुझे देखकर उसकी कल्पना न करना। मैं एक बहुत ही दुर्बल माध्यम मात्र हूँ। उनके चरित्र का निर्णय मुझे देखकर न करना। वे इतने बड़े थे कि मैं या उनके शिष्यों में से कोई दूसरा सैकड़ों जीवन तक चेष्टा करते रहने के बावजूद भी उनके यथार्थ स्वरूप के एक करौड़वें अंश के तुल्य भी नहीं हो सकेगा। तुम लोग स्वयं ही अनुमान करो। तुम्हारे हृदय के अन्तस्तल में वे 'सनातन साक्षी' वर्तमान हैं, और मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि हमारी जाति के कल्याण के लिए, हमारे देश की उन्नति के लिए तथा समग्र मानव जाति के हित के लिए वही श्री रामकृष्ण परमहंस तुम्हारा हृदय खोल दें, और इच्छा-अनिच्छा के बावजूद भी जो महायुगान्तर अवश्यम्भावी है, उसे कार्यान्वित करने के लिए वे तुम्हें सच्चा और दृढ़ बनावे। तुम्हें और हमें रुचे या न रुचे, इससे प्रभु का कार्य रुक नहीं सकता, अपने कार्य के लिए वे घूलि से भी सैकड़ों और हजारों कर्मों पैदा कर सकते हैं। उनकी अधीनता में कार्य करने का अवसर मिलना ही हमारे परम सौभाग्य और गौरव की बात है। इससे आदर्श का विस्तार होता है। जैसा तुम लोगो ने कहा है, हमें सम्पूर्ण ससार जीतना है। हाँ, यह हमें करना ही होगा। भारत को अवश्य ही ससार पर विजय प्राप्त करनी है। इसकी अपेक्षा किसी छोटे आदर्श से मुझे कभी

भी सन्तोष न होगा। यह आदर्श सम्भव है बहुत बड़ा हो और तुममें से अनेक को इसे सुनकर आश्चर्य होगा किन्तु हमें इसे ही अपना आदर्श बनाना है। या तो हम सम्पूर्ण सत्ता पर विजय प्राप्त करेंगे या मिट जायेंगे। इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है। जीवन का चिह्न है विस्तार। हमें सर्वांगीण सीमा के बाहर जाना होगा हृष्य का प्रसार करना होगा और यह दिखाता होगा कि हम भीमिष्ठ हैं अन्यथा हमें इसी पतन की बसा में चढ़कर मरना होगा इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। हम दोनों में एक चुन लो फिर जिओ या मरो। छोटी छोटी बातों को लेकर हमारे देश में जोड़ें और कलह हुआ करता है, वह हम सोरों में समी को मास्य है। परन्तु मेरी बात मानो ऐसा समी देशों में है। जिन सब राष्ट्रों के जीवन का मेरुबंद राजनीति है, वे सब राष्ट्र आत्मरक्षा के लिए वैदेशिक नीति का सहारा लिमा करते हैं। अब उनके अपने देश में आपस में बहुत अधिक झगड़-झगड़ा आरम्भ हो जाता है तब वे किसी विदेशी राष्ट्र से मदद मांग से लेते हैं इस तरह तत्काल बरेलू झगड़ बन्द हो जाती है, हमारे नीतर भी नृहनिवार है, परन्तु उसे रोकने के लिए कोई वैदेशिक नीति नहीं है। सत्ता के समी राष्ट्रों में अपने शासकों का सत्य प्रचार ही हमारी सनातन वैदेशिक नीति होनी चाहिए, यह हमें एक बर्बाद जाति के रूप में संमठित करेगी। तुम राजनीति में विशेष रति लेनेवालों से भेरा प्रप्त है कि क्या इसके लिए तुम कोई और प्रमाण चाहते हो? आद्य की इस समा से ही मेरी बात का मबेष्ट प्रमाण मिल रहा है।

दूसरे, इन सब स्वार्थपूर्ण विचारों को छोड़ देने पर भी हमारे पीछे नि स्वार्थ महान् और सजीव श्रुष्टान्त पाये जाते हैं। भारत के पतन और बाखिप-शुच का प्रमाण कारण यह है कि बोंबे की तरह अपना सर्वांग समेटकर सत्ते अपना कार्यसाध सन्तुचित कर लिमा या तथा आर्येतर दूसरी मानव जातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तुप्या भी अपने जीवनप्रद सत्य-रलों का मांजार नहीं लीला बा। हमारे पतन का एक और प्रमाण कारण यह भी है कि हम लोगों में बाहुर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुप्यता नहीं की और तुम लोग जानते हो जिस दिन से राजा राममोहन राय ने लकीर्णता की वह बीबार छोड़ी उसी दिन से भारत में बड़ा सा जीवन दिखानी देने लगा जिसे आज तुम शिख रहे हो। उसी दिन से भारत के इतिहास में एक नूनदा मोड़ लिमा और इस समय वह कमद्य उमति के पत्र पर अपसर ही रहा है। अनीत कास में यदि छोटी छोटी मदिया ही यहाँ बालों ने बेर्जा हों तो समानता कि अब बहुत बड़ी बाढ़ जा रही है और कोई भी उसकी गति रोक न सकेगा। अब तुम्हें विरम जाना हीमा आदान-भदान ही अम्बुदय का रहस्य है। क्या हम दूसरों से सदा लेते ही रहेंगे? क्या हम लोग सदा ही परिचमवायियों

के पद-प्रान्त में बैठकर ही सब बातें, यहाँ तक कि धर्म भी सीखेंगे? हाँ, हम उन लोगों से कल-कारखाने के काम सीख सकते हैं, और भी दूसरी बहुत सी बातें उनसे सीख सकते हैं, परन्तु हमें भी उन्हें कुछ सिखाना होगा। और वह है हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता। ससार सर्वांगीण सम्यता की अपेक्षा कर रहा है। गत शत शताब्दियों की अवनति, दुःख और दुर्भाग्य के आवर्त में पडकर भी हिन्दू जाति उत्तराधिकार में प्राप्त धर्मरूपी जिन अमूल्य रत्नों को यत्नपूर्वक अपने हृदय में लगाय हुए है, उन्हीं रत्नों की आशा से ससार उसकी ओर आग्रहभरी दृष्टि से निहार रहा है। तुम्हारे पूर्वजों के उन्हीं अपूर्व रत्नों के लिए भारत से बाहर के मनुष्य किस तरह उद्गीर्ण हो रहे हैं, यह मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ? यहाँ हम अनगणल वकवास किया करते हैं, आपस में झगड़ते रहते हैं, श्रद्धा के जितने गभीर विषय हैं उन्हें हँसकर उड़ा देते हैं, यहाँ तक कि इस समय प्रत्येक पवित्र वस्तु को हँसकर उड़ा देने की प्रवृत्ति एक जातीय दुर्गुण हो गयी है। इसी भारत में हमारे पूर्वज जो सजीवक अमृत रख गये हैं, उसका एक कण मात्र पाने के लिए भी भारत से बाहर के लाखों मनुष्य कितने आग्रह के साथ हाथ फैलाये हुए हैं, यह हमारी समझ में भला कैसे आ सकता है! इसलिए हमें भारत के बाहर जाना ही होगा। हमारी आध्यात्मिकता के बदले में वे जो कुछ दें, वही हमें लेना होगा। चैतन्यराज्य के अपूर्व तत्त्वसमूहों के बदले हम जब राज्य के अद्भुत तत्त्वों को प्राप्त करेंगे। चिर काल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमें आचार्य भी होना होगा। समभाव के न रहने पर मित्रता संभव नहीं। और जब एक पक्ष सदा ही आचार्य का आसन पाता रहता है और दूसरा पक्ष सदा ही उसके पदप्रान्त में बैठकर शिक्षा ग्रहण किया करता है, तब दोनों में कभी भी समभाव की स्थापना नहीं हो सकती। यदि अंग्रेज और अमरीकी जाति से समभाव रखने की तुम्हारी इच्छा हो, तो जिस तरह तुम्हें उनसे शिक्षा प्राप्त करनी है, उसी तरह उन्हें शिक्षा देनी भी होगी, और अब भी कितनी ही शताब्दियों तक ससार को शिक्षा देने की सामग्री तुम्हारे पास यथेष्ट है। इस समय यही करना होगा। उत्साह की आग हमारे हृदय में जलनी चाहिए। हम बंगालियों को कल्पना शक्ति के लिए प्रसिद्धि मिल चुकी है और मुझे विश्वास है कि यह शक्ति हममें है भी। कल्पनाप्रिय भावुक जाति कहकर हमारा उपहास भी किया गया है। परन्तु, मित्रों! मैं तुमसे कहना चाहूँगा कि निस्संदेह बुद्धि का आसन ऊँचा है, परन्तु यह अपनी परिमित सीमा के बाहर नहीं बढ़ सकती। हृदय—केवल हृदय के भीतर से ही दैवी प्रेरणा का स्फुरण होता है, और उसकी अनुभव शक्ति से ही उच्चतम जटिल रहस्यों की भीमासा होती है, और इसीलिए 'भावुक' बंगालियों को ही यह काम करना होगा। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरा-

मिथीमत। —उठो जागो जब तक अमीषित वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक बराबर उसकी ओर बढ़ते जाओ। 'कर्मकृता मिवासी मुबको ! उठो जागो गुम मुहूर्त आ गया है। सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने बूझती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही आश्रयों में ईश्वर के लिए 'अमी विषयन का प्रयोग किया गया है। हमें 'अमी निर्णय होना होगा तभी हम अपने कार्य में सिद्धि प्राप्त करेंगे। उठो जागो तुम्हारी मनुभूमि को इस महावसि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि मुबको से ही हो सकती है। 'मुबा अतिष्ठ इतिष्ठ वसिष्ठ, मेवासी' उन्हीके लिए यह कार्य है। और ऐसे शैक्यों—हजारों मुबक कर्मकृत में है। बसा कि तुम लोग कहते हो यदि मैंने कुछ किया है, तो याद रखना मैं बही एक नगण्य बालक हूँ जो किसी समय कसकते की सड़कों पर खेका करता था। अगर मैंने इतना किया तो इधसे कितना अधिक तुम कर सकोगे ! उठो—जागी संसार तुम्हें पुकार रहा है। भारत के अन्य भागों में बुद्धि है धन भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल हमारी ही अमभूमि में है। उसे बाहर आना ही होगा इसलिये कसकते के मुबको अपने रक्त में उत्साह भरकर जाओ। मत सोचो कि तुम सरीस हो मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। जरे, क्या कभी तुमने देखा है कि स्पया मनुष्य का निर्माण करता है ? नहीं मनुष्य ही सवा स्पये का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की सक्रिय से उत्साह की सक्रिय से विश्वास की सक्रिय से निर्मित हुआ है।

तुमसे से जिन लोगों ने उपनिषदों में सबसे अधिक सुन्दर कठोपनिषद् का अध्ययन किया है उन्हें स्मरण होगा कि किस तरह वे राजा एक महायज्ञ का अनुष्ठान करते बसे वे और दक्षिणा में अच्छी अच्छी चीजें न लेकर अनुपयोगी शायें और छोड़े दे रहे वे और कन्या के अनुष्ठान उही समय उनके पुत्र अचिन्ता क हृदय में भद्रा का आविर्भाव हुआ। मैं तुम्हारे लिए इस भद्रा' शब्द का अर्थही अनुष्ठान न करूँगा क्योंकि यह शक्य होगा। समझने के लिए अर्थ की दृष्टि से यह एक अद्भुत शब्द है और बहुत कुछ तो हमने समझने पर निर्भर करता है। हम देखते कि यह किस तरह शीघ्र ही फल देनेवाली है। भद्रा के आविर्भाव के ताव ही हम अचिन्ता को आप ही आप इस तरह बावचीत करते हुए देखते हैं 'मैं बहुत ही भयंकर हूँ कुछ लोगों से छोटा भी हूँ परन्तु नहीं भी ऐसा नहीं हूँ कि अपने छोटा

१ कठोपनिषद् १।१।१४॥

२ मुबा इमात्तामुमुबाध्यायकः। आसिष्ठो इतिष्ठो वसिष्ठः।

तायेयं वसिष्ठो तर्वा वितस्य पुर्वा इवात् ॥ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥ २।७॥

होऊँ, अत मैं भी कुछ कर सकता हूँ।' उसका यह आत्मविश्वास और साहस बढ़ता गया और जो समस्या उसके मन में थी, उस बालक ने उसे हल करना चाहा, —वह समस्या मृत्यु की समस्या थी। इसकी मीमांसा यम के घर जाने पर ही हो सकती थी, अत वह बालक वही गया। निर्भीक नचिकेता यम के घर जाकर तीन दिन तक प्रतीक्षा करता रहा, और तुम जानते हो कि किस तरह उसने अपना अभीप्सित प्राप्त किया। हमें जिस चीज की आवश्यकता है, वह यह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्राय लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। एकमात्र इस श्रद्धा के भेद से ही मनुष्य मनुष्य में अन्तर पाया जाता है? इसका और दूसरा कारण नहीं। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को कमजोर और छोटा बनाती है। हमारे गुरुदेव कहा करते थे, जो अपने को दुर्बल सोचता है, वह दुर्बल ही हो जाता है, और यह बिल्कुल ठीक ही है। इस श्रद्धा को तुम्हें पाना ही होगा। पश्चिमी जातियों द्वारा प्राप्त की हुई जो भौतिक शक्ति तुम देख रहे हो, वह इस श्रद्धा का ही फल है, क्योंकि वे अपने दैहिक बल के विश्वासी हैं, और यदि तुम अपनी आत्मा पर विश्वास करो तो वह और कितना अधिक कारगर होगा? उस अनन्त आत्मा, उस अनन्त शक्ति पर विश्वास करो, तुम्हारे शास्त्र और तुम्हारे ऋषि एक स्वर से उसका प्रचार कर रहे हैं। वह आत्मा अनन्त शक्ति का आधार है, कोई उसका नाश नहीं कर सकता, उसकी वह अनन्त शक्ति प्रकट होने के लिए केवल आह्वान की प्रतीक्षा कर रही है। यहाँ दूसरे दर्शनो और भारत के दर्शनो में महान् अन्तर पाया जाता है। द्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टद्वैतवादी या अद्वैतवादी हो, सभी को यह दृढ विश्वास है कि आत्मा में सम्पूर्ण शक्ति अवस्थित है, केवल उसे व्यक्त करना होता है। इसके लिए हमें श्रद्धा की ही जरूरत है, हमें, यहाँ जितने भी मनुष्य हैं, सभी को इसकी आवश्यकता है। इसी श्रद्धा को प्राप्त करने का महान् कार्य तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है। हमारे जातीय खून में एक प्रकार के भयानक रोग का बीज समा रहा है, और वह है प्रत्येक विषय को हँसकर उड़ा देना, गाम्भीर्य का अभाव, इस दोष का सम्पूर्ण रूप से त्याग करो। वीर बनो, श्रद्धा सम्पन्न होओ, और सब कुछ तो इसके बाद आ ही जायगा।

अब तक मैंने कुछ भी नहीं किया, यह कार्य तुम्हें करना होगा। अगर कल मैं मर जाऊँ तो इस कार्य का अन्त नहीं होगा। मुझे दृढ विश्वास है, सर्वसाधारण जनता के भीतर से हज़ारों मनुष्य आकर इस व्रत को ग्रहण करेंगे और इस कार्य की इतनी उन्नति तथा विस्तार करेंगे, जिसकी आशा मैंने कभी कल्पना में भी नहीं की होगी। मुझ अपने देश पर विश्वास है—विशेषत अपने देश के युवकों पर।

बंगाल के मुबकों पर सबसे बड़ा मार है। इतना बड़ा मार किसी दूसरे प्रांत के मुबकों पर कभी नहीं आया। पिछले दस वर्षों तक मैंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। इससे मेरी कुछ धारणा हो गयी है कि बंगाल में मुबकों के भीतर से ही उस शक्ति का प्रकाश हुआ जो भारत को उसके आध्यात्मिक अधिकार पर फिर से प्रतिष्ठित करेगी। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ इन हृदयवान् उत्साही बंगाली मुबकों के भीतर से ही सीकड़ों कीर उठेंगे जो हमारे पूर्वजों द्वारा प्रचारित सनातन आध्यात्मिक धर्मों का प्रचार करने और शिक्षा देने के लिए संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण करेंगे। और तुम्हारे सामने यही महान् कर्तव्य है। अतएव एक बार और तुम्हें उस उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरासिबोधन रूपी महान् आदर्श वाक्य का स्मरण दिलाकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। करना यही क्योंकि मनुष्य जाति के इतिहास में देखा जाता है कि अितनी शक्तियों का विकास हुआ है सभी साम्राज्य मनुष्यों के भीतर से ही हुआ है। संसार में बड़े बड़े अितने प्रतिभाशाली मनुष्य हुए हैं, सभी साम्राज्य मनुष्यों के भीतर से ही हुए हैं और इतिहास की गटनाओं की पुनरावृत्ति होगी ही। किसी बात से मत करो। तुम अश्रुत कार्य करोगे। जिस क्षण तुम डर जाओगे उसी क्षण तुम विस्तृत शक्ति हारि हो जाओगे। संसार में दुःख का मुख्य कारण मय ही है, यही सबसे बड़ा दुःखकार है, यह मय हमारे दुःखों का कारण है और यह निर्मीकृता है जिससे मय भर में स्वयं प्राप्त होता है। अतएव उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरासिबोधन।

महानुभावी मेरे प्रति आप लोगों ने जो अनुग्रह प्रकट किया है, उसके लिए आप लोगों को मैं फिर से मन्यवाद् देता हूँ। मैं आप लोगों से इतना ही कह सकता हूँ कि मेरी इच्छा मेरी प्रबल और आन्तरिक इच्छा यह है कि मैं संसार की और सर्वोपरि अपने देव और देववासियों की चोड़ी सी भी सेवा कर सकूँ।

सर्वाङ्ग वेदान्त

[स्टार थिएटर, कलकत्ता में दिया हुआ भाषण]

स्वामी जी का भाषण

बहुत दूर—जहाँ न तो लिपिबद्ध इतिहास और न परम्पराओं का मन्द प्रकाश ही प्रवेश कर पाता है, अनन्त काल से वह स्थिर उजाला हो रहा है, जो बाह्य परिस्थितिवश कभी तो कुछ धीमा पड़ जाता है और कभी अत्यन्त उज्ज्वल, किन्तु वह सदा शाश्वत और स्थिर रहकर अपना पवित्र प्रकाश केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विचार-जगत् में अपनी मौन अननुभाव्य, शान्त फिर भी सर्वसक्षम शक्ति से उसी प्रकार भरता रहा है, जिस प्रकार प्रातः काल के शिशिरकण लोगों की दृष्टि बचाकर चुपचाप गुलाब की सुन्दर कलियों को खिला देते हैं—यह प्रकाश उपनिषदों के तत्त्वों का, वेदान्त दर्शन का रहा है। कोई नहीं जानता कि इसका पहले पहल भारतभूमि में कब उद्भव हुआ। इसका निर्णय अनुमान के बल से कभी नहीं हो सका। विशेषतः, इस विषय के पश्चिमी लेखकों के अनुमान एक दूसरे के इतने विरोधी हैं कि उनकी सहायता से इन उपनिषदों के समय का निश्चय नहीं किया जा सकता। हम हिन्दू आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी उत्पत्ति नहीं स्वीकार करते। मैं बिना किसी सकोच के कहता हूँ कि यह वेदान्त, उपनिषद्-प्रतिपाद्य दर्शन अध्यात्म राज्य का प्रथम और अन्तिम विचार है, जो मनुष्य को अनुग्रह के रूप में प्राप्त हुआ है।

इस वेदान्तरूपी महासमुद्र से ज्ञान की प्रकाश-तरंगें उठ उठकर समय समय पर पश्चिम और पूर्व की ओर फैलती रही हैं। पुराकाल में वे पश्चिम में प्रवाहित हुईं और एयेन्स, सिकन्दरिया और अन्तियोक जाकर उन्होंने यूनानियों के विचारों को बल प्रदान किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन यूनानियों पर नायक दर्शन की विशेष छाप पड़ी थी। और माग्य तथा भारत के अन्यान्य मत्र दार्शनिक मत, उपनिषद् या वेदान्त पर ही प्रतिष्ठित हैं। भारत में भी प्राचीन ज्ञान में आज भी कितने ही विरोधी सम्प्रदायों के रहने पर भी सभी उपनिषद् या वेदान्त रूप एतन्न प्रमाण पर ही प्रतिष्ठित हैं। तुम द्वैतवादी हो, चाहे त्रिशिष्टा-द्वैतवादी, गुदाद्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी जयन्त चाहे और जिन प्रकार के अद्वैत-

बापी या हैतवापी हो या तुम अपने को चाहे जिस नाम से पुकारो तुम्हें अपने धारण उपनिषदों का प्रामाण्य स्वीकार करना ही होगा। यदि भारत का कोई सम्प्रदाय उपनिषदों का प्रामाण्य न माने तो वह समातन' मत का अनुयायी नहीं कहा जा सकता। और दोनों-बीड़ों के मत भी उपनिषदों का प्रामाण्य न स्वीकार करने के कारण ही भारतभूमि से हटा दिये गये थे। इसलिए चाहे हम जानें या न जाने वेदान्त भारत के सब सम्प्रदायों में प्रबिष्ट है और हम जिसे हिन्दू धर्म कहते हैं—यह अनभिन्नी धाराओंवाला महान् बट भूख के समान हिन्दू धर्म—वेदान्त के ही प्रभाव से लड़ा है। चाहे हम जानें चाहे न जानें परन्तु हम वेदान्त का ही विचार करते हैं वेदान्त ही हमारा जीवन है वेदान्त ही हमारी सौख्य है, मृत्यु तक हम वेदान्त ही के उपासक हैं और प्रत्येक हिन्दू का यही हाल है। अतः भारतभूमि में भारतीय धोलाओं के सामने वेदान्त का प्रचार करना मानो एक अतर्कित है। परन्तु यदि किसी का प्रचार करना है तो वह इसी वेदान्त का विद्योपत इस युग में इसका प्रचार अल्पन्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि हमने तुमसे अभी अभी कहा है कि भारत के सब सम्प्रदायों को उपनिषदों का प्रामाण्य मानकर चलना चाहिए, परन्तु इन सब सम्प्रदायों में हमें ऊपर ऊपर अनेक विरोध देखने को मिलते हैं। बहुत बार प्राचीन बड़े बड़े ऋषि भी उपनिषदों में निहित अपूर्व समन्वय को नहीं समझ सके। बहुधा मुनियों ने भी आपस के मतभेद के कारण विवाद किया है। यह मतविरोध किसी समय इतना बढ़ गया कि यह एक कहावत हो गयी थी कि जिसका मत दूसरे से भिन्न न हो वह मुनि ही नहीं—नालो मुनिर्वस्य नतं न निद्रम्। परन्तु अब ऐसा विरोध नहीं चल सकता। अब उपनिषदों के मंत्रों में गूढ़ रूप से जो समन्वय छिपा हुआ है, उसकी विस्तार व्याख्या और प्रचार की आवश्यकता सभी के लिए जान पड़ी है, फिर चाहे कोई हैतवापी हो बिशिष्टाईतवापी हो या अद्वैतवापी उसे सद्यः के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। और यह काम सिर्फ भारत में ही नहीं उसके बाहर भी होना चाहिए। मुझे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार के एक महापुरुष के पैरों तले बैठकर शिक्षा ग्रहण करने का महासौभाग्य मिला था जिनका सम्पूर्ण जीवन ही उपनिषदों का महासमन्वयस्वरूप था—जिनका जीवन उनके उपदेशों की अपेक्षा हजार गुना बढ़कर उपनिषदों का जीवनसाध्य स्वरूप था। उन्हें देखने पर मातूम होता था मानों उपनिषद् के मान वास्तव में मानवरूप धारण करके प्रकट हुए हों। उस समन्वय का कुछ अर्थ समझ मुझे भी मिला है। मैं नहीं जानता कि इसको प्रकट करने में मैं समर्थ हो सकूँगा या नहीं। परन्तु मेरा प्रयत्न यही है। अपने जीवन में मैं यह दिखाने की कोशिश करूँगा कि वैदिक सम्प्रदाय एक दूसरे के विरोधी नहीं वे एक दूसरे के अवलम्बनी

परिणाम हैं, एक दूसरे के पूरक हैं, वे एक से दूसरे पर चढ़ने के सोपान हैं, जब तक कि वह अद्वैत—तत्त्वमसि—लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।

भारत में एक वह समय था जब कर्मकांड का बोलबाला था। वेदों के इस अंश में अनेक ऊँचे आदर्श हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। हमारी वर्तमान नित्य पूजाओं में से कुछ यद्यपि अभी भी वैदिक कर्मकांड के अनुसार ही की जाती हैं, इतना होते हुए भी भारत में वैदिक कर्मकांड का प्रायः लोप हो गया है। अब हमारा जीवन वेदों के कर्मकांड के अनुसार बहुत ही कम नियमित और अनुशासित होता है। अपने दैनिक जीवन में हम प्रायः पौराणिक अथवा तांत्रिक हैं, यहाँ तक कि जहाँ कहीं भारत के ब्राह्मण वैदिक मंत्रों को काम में लाते हैं, वहाँ अविकाशत उनका विचार वेदों के अनुसार नहीं, किन्तु तंत्रों या पुराणों के अनुसार होता है। अतएव वेदों के कर्मकांड के विचार से अपने को वैदिक बताना हमारी समझ में युक्तिपूर्ण नहीं जँचता, परन्तु यह असदिग्ध है कि हम सभी वेदान्ती हैं। जो लोग अपने को हिन्दू कहते हैं, अच्छा होता यदि वे अपने को वेदान्ती कहते। और जैसा कि हमने तुम्हें पहले ही बतलाया है कि उसी वेदान्ती नाम के भीतर सब सम्प्रदाय—द्वैतवादी हो, चाहे अद्वैतवादी—आ जाते हैं।

वर्तमान समय में भारत में जितने सम्प्रदाय हैं, उनके मुख्यतः दो भाग किये जा सकते हैं—द्वैतवादी और अद्वैतवादी। इनमें से कुछ सम्प्रदाय जिन छोटे छोटे मतभेदों पर अधिक बल देते हैं और जिनकी सहायता से वे विशुद्धाद्वैतवादी और विशिष्टाद्वैतवादी आदि नये नये नाम लेना चाहते हैं, उनसे विशेष कुछ वनता विगडता नहीं। उन्हें या तो द्वैतवादियों की श्रेणी में शामिल किया जा सकता है अथवा अद्वैतवादियों की श्रेणी में। और जो सम्प्रदाय वर्तमान समय के हैं, उनमें से कुछ तो विल्कुल नये हैं और दूसरे पुराने सम्प्रदायों के नवीन संस्करण जान पड़ते हैं। पहली श्रेणी के प्रतिनिधि स्वरूप में रामानुजाचार्य का जीवन और दर्शन प्रस्तुत करूँगा और दूसरी के प्रतिनिधि रूप में शंकराचार्य का जीवन और दर्शन।

रामानुज उत्तरकालीन भारत के प्रथम द्वैतवादी दार्शनिक हैं। अन्य द्वैतवादियों ने प्रत्यक्षतः या परोक्षतः अपने तत्त्व-प्रचार में और अपने सम्प्रदायों के संगठन में, यहाँ तक कि अपने संगठन की छोटी छोटी बातों में भी उन्हींका अनुसरण किया है। रामानुज और उनके प्रचार-कार्य के साथ भारत के दूसरे द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदायों की तुलना करो तो आश्चर्य होगा, कि उनके आपस के उपदेशों, भावना-प्रणालियों और साम्प्रदायिक नियमों में बड़ा नादृश्य है। अन्यान्य वैष्णवाचार्यों में दक्षिणान्य आचार्य मध्व मुनि और उनके बाद हमारे वगदेन के महाप्रभु श्री चैतन्य का नाम उल्लेख योग्य है, जिन्होंने मध्वाचार्य के दर्शन का वगाल

में प्रचार किया था। ब्रह्मिण म कई सम्प्रदाय और हैं जैसे विशिष्टाद्वैतवादी शैव। शैव प्रायः मठैतवादी होते हैं। सिद्ध और ब्रह्मिण के कुछ स्वार्थों का छोड़कर भारत में सर्वत्र शैव मठैतवादी हैं। विशिष्टाद्वैतवादी शैवों ने 'विष्णु' नाम की जगह सिद्ध 'शिवा' नाम रीठामा है और आत्मा विषयक सिद्धान्त का छाड़ अन्यान्य सब विषयों में रामानुज के ही मत को ग्रहण किया है। रामानुज के अनुयायी आत्मा को जबु अर्थात् अत्यन्त छोटा कहते हैं, परन्तु संकराचार्य के मतानुयायी उसे विभु अर्थात् सर्वव्यापी स्वीकार करते हैं। प्राचीन काल में मठैत मत के कई सम्प्रदाय थे। ऐसा लगता है कि प्राचीन समय में ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिन्हें संकराचार्य के सम्प्रदाय ने पूर्वतया आत्मसात् कर अपने में मिला लिया था। वेदान्त के किसी किसी भाष्य में विशेषतः विज्ञानभिक्षु के भाष्य में संकर पर बीच बीच में कटास किया गया दिखामी देता है। विज्ञानभिक्षु मठपि मठैतवादी थे फिर भी उन्होंने संकर के मायावाद को उड़ा देने की कोशिश की थी। अतः साफ जाण पड़ता है कि ऐसे अनेक सम्प्रदाय थे जिनका मायावाद पर विश्वास न था यहाँ तक कि उन्होंने संकर को 'ग्रन्थस बौद्ध' कहने में भी संकोच नहीं किया। उनकी यह चारणा थी कि मायावाद को बौद्धों से लेकर संकर ने वेदान्त के भीतर रखा है। जो कुछ भी हो वर्तमान समय में सभी मठैतवादी संकराचार्य के अनुयायी हैं और संकराचार्य तथा उनके शिष्य उत्तर भारत और ब्रह्मिण भारत दोनों तरफों में मठैतवाद के विशेष प्रचारक रहे हैं। संकराचार्य का प्रभाव हमारे बंगाल में और पंजाब तथा काश्मीर में प्पाया नहीं फँका परन्तु ब्रह्मिण के सभी स्मार्त संकराचार्य के अनुयायी हैं और भारतपसी मठैतवाद का एक केन्द्र होने के कारण उत्तर भारत के अनेक स्वार्थों में उनका प्रभाव बहुत प्पाया है।

परन्तु मौलिक तत्त्व के आधिकार करने का बाबा न संकराचार्य ने किया है और न रामानुज ने। रामानुज ने ही साफ कहा है कि हमने बोधायन के भाष्य का अनुसरण करके तबनुसार ही वेदान्त सूत्रों की व्याख्या की है। मगधबोधायन-मनहन्ता विल्लीर्षा ब्रह्मसूत्रवृत्ति पुषीचाम्यः संविक्रितु तन्मस्तानुसारेण सूत्रान्तरादि व्याख्यास्यन्ते।—'मगवान् बोधायन ने ब्रह्मसूत्र पर विस्तारपूर्वक भाष्य लिखा था जिसे पूर्व आचार्यों ने संक्षिप्त कर दिया। उनके मतानुसार में सूत्र के शब्दों की व्याख्या कर रहा हूँ। अपने मौ भाष्य' के आरम्भ में ही रामानुज ने ये बातें लिख दी हैं। उन्होंने बोधायनमठ ब्रह्मसूत्र भाष्य को लिखा और उसे संक्षिप्त कर दिया और बही संक्षिप्त रूप आजकल हमें उपलब्ध है। बोधायन भाष्य देखने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला। उसे अभी तक देख नहीं सका हूँ। पर-

लोकगत स्वामी दयानन्द मरस्वती व्याससूत्रों के बोधायन भाष्य के सिवा अन्य सभी भाष्यों को अस्वीकार कर देना चाहते थे, और यद्यपि वे अवसर मिलने पर रामानुज के ऊपर कटाक्ष किये विना न रहते थे, वे भी कभी बोधायन भाष्य को सर्वसाधारण के सामने नहीं रख सके। परन्तु रामानुज ने स्पष्टतः कहा है कि बोधायन के विचार, और कहीं कहीं तो उसके अग्र तक, लेकर हमने अपने वेदान्त-भाष्य की रचना की है। यह अनुमान किया जा सकता है कि शकाराचार्य ने भी प्राचीन भाष्यकारों के ग्रंथों का अवलम्बन कर अपने भाष्य का प्रणयन किया होगा। उनके भाष्य में कई जगह प्राचीन भाष्यों के नाम आये हैं। और जब कि उनके गुरु और गुरु के गुरु स्वयं उन्हींके जैसे एक ही अद्वैत मत के प्रवर्तक और वेदान्ती थे—और कभी कभी किसी विषय में वे शकर को अपेक्षा अद्वैत तत्त्व के प्रकाशन में अधिक अप्रसर एव साहसी थे—तब यह साफ समझ में आ जाता है कि शकर ने भी किसी नये भाव तत्त्व का प्रचार नहीं किया। रामानुज ने जिस प्रकार बोधायन भाष्य के सहारे अपना भाष्य लिखा था, अपनी भाष्य-रचना में शकर ने भी वैसा ही किया। परन्तु अभी तक यह निर्णय नहीं किया जा सका है कि शकर ने किस भाष्य को आधार मानकर भाष्य लिखा।

जिन दर्शनो को तुमने पढा है या जिनके नाम सुने हैं, वे सब के सब उपनिषद् के प्रमाण पर आधारित हैं। जब भी उन्होंने श्रुति को दुहाई दी है, तब उपनिषदों को ही लक्ष्य किया है। जब वे श्रुति को उद्धृत करते हैं, उनका मतलब उपनिषदों से रहता है। भारत में उपनिषदों के बाद अन्य कई दर्शनों का जन्म हुआ, परन्तु व्यास द्वारा लिखे गये वेदान्त दर्शन की तरह किसी दूसरे दर्शन की प्रतिष्ठा भारत में नहीं हो सकी। पर वेदान्त दर्शन भी प्राचीन साख्य दर्शन का ही विकसित रूप है। और सारे भारत के, यहाँ तक कि सारे ससार के सभी दर्शन और सभी मत कपिल के विशेष रूप से ऋणी हैं। मनस्तात्त्विक और दार्शनिक विषयों का कपिल जैसा महान् व्याख्याता भारत के इतिहास में शायद ही दूसरा हुआ हो। ससार में सर्वत्र ही कपिल का प्रभाव दीख पड़ता है। जहाँ कोई मान्यताप्राप्त दार्शनिक मत विद्यमान है, वही उनका प्रभाव खोजा जा सकता है। वह हजार वर्ष पहले का चाहे भले ही हो, किन्तु वहाँ वे ही कपिल—वे ही तेजस्वी, गौरवयुक्त, अपूर्व प्रतिभाशाली कपिल दृष्टिगोचर होते हैं। उनके मनस्तत्त्व और दर्शन के अधिकांश को थोड़ा सा फेर-फार करके भारत के भिन्न भिन्न सभी सम्प्रदायों ने ग्रहण किया है। हमारी जन्मभूमि बंगाल के नैयायिक भारत के दार्शनिक क्षेत्र में विद्यमान प्रभाव फैलाने में समर्थ नहीं हो सके। वे सामान्य, विशेष, जाति, द्रव्य, गुण आदि बौद्धिक पारिभाषिक क्षुद्र शब्दों में उलझ गये, जिन्हें कोई अच्छी तरह समझना

चाहे तो सारी उन्नत भीत आय। वे दर्शनालोचन का भार बेबाक्तियों पर छोड़कर स्वयं 'ध्याय' लेकर बैठे। परन्तु आधुनिक काष्ठ में भारत के सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने बंग देश के नैयामिकों की तर्क सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली ग्रहण की है। जगदीश यदापर और शिरोमणि के नाम मछाबार देश में कहीं कहीं उची प्रकार प्रसिद्ध है जिस प्रकार नदिया में। किन्तु ध्याय का दर्शन बेवान्तसुत्र भारत में सब जगह दृष्टप्रतिष्ठ है, और दर्शन में बेवान्त-अतिपास ब्रह्म को (मुक्तिपूर्वक डग से) मनुष्य के लिए व्यस्त करने का उसका जो उद्देश्य रहा है उसे धारित करके उसने स्थायित्व प्राप्त किया। इस बेवान्त दर्शन में मुक्ति को पूर्णतया श्रुति के अधीन रखा गया है, संकराचार्य ने भी एक जगह द्योपित किया है कि ध्याय में मुक्ति-विचार का माल नहीं किया। उसके सूत्रप्रथम का एकमात्र उद्देश्य यह था कि बेवान्त मंत्रकपी पुत्रों को एक ही सूत्र में गूँजकर एक मासा ठीकार करें। उनके सूत्र वहीं तक साम्य हैं जहाँ तक वे उपनिषदों के अधीन हैं, इसके आगे नहीं।

इस समय भारत के सभी सम्प्रदाय ध्यायसूत्रों को प्रामाणिक ग्रन्थों में श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं। और जब यहाँ कोई नवीन सम्प्रदाय प्रारम्भ होता है तो वह ध्यायसूत्रों पर अपने ज्ञानानुकूल तथा भाष्य लिखकर अपनी बड़ बनाता है। कभी कभी इन भाष्यकारों ने मूल में बहुत ऊर्ध्व जाता बीच पड़ता है। कभी कभी तो मूल सूत्रों की अर्धविकृति देखकर भी उन्नत जाता है। अस्तु। ध्यायसूत्रों को इस समय भारत में सबसे अच्छे प्रमाण ग्रन्थ का आशय विश्व जमा है और ध्यायसूत्रों पर एक नया भाष्य बिना किन्ने भारत में कोई सम्प्रदाय संस्थापन की जाया नहीं कर सकता।

ध्यायसूत्रों के बाव ही विश्वप्रसिद्ध गीता का प्रामाण्य है। संकराचार्य का गीतक गीता के प्रचार से ही बढ़ा। इस महापुरक ने अपने महान् जीवन में जो बड़े बड़े कर्म किये गीता का प्रचार और उसकी एक सुन्दर भाष्य रचना भी उन्हीमे है। और भारत के सनातनमार्गी सम्प्रदाय-संस्थापकों ने छे हार एक ने उनका अनुगमन किया और उपनृसार गीता पर एक एक भाष्य की रचना की।

उपनिषद् अनेक हैं। कोई कोई यह कहते हैं कि उनकी संख्या एक ही आठ है और कोई कोई और भी अधिक कहते हैं। उनमें से कुछ स्पष्ट ही आधुनिक हैं यथा अस्कोपनिषद्। उसमें अस्माह की स्तुति है और मुहम्मद को स्तुतना कहा गया है। मैंने सुना है कि यह अकबर के राज्यकाल में हिन्दू और मुसलमानों में मेल कराने के लिए रचा गया था। कभी कभी संहिता विनाय में अस्मा इस्मा जैसे किसी दृष्ट को बरबस ग्रहण कर, उसके आधार पर उपनिषद् रच किया

गया है। इस प्रकार इस अल्लोपनिषद् में मुहम्मद रसूलल्ला हुए। इसका तात्पर्य चाहे जो कुछ हो, किन्तु इस प्रकार के और भी अनेक साम्प्रदायिक उपनिषद् हैं। यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि वे विल्कुल आवुनिक हैं और उपनिषदों की ऐसी रचना बहुत कठिन भी नहीं थी, क्योंकि वेदों के सहिता भाग की भाषा इतनी पुरानी है कि उसमें व्याकरण के नियम नहीं माने गये। कई साल हुए, वैदिक व्याकरण पढ़ने की मेरी इच्छा हुई और मैंने बड़े आग्रह से पाणिनि और महाभाष्य पढ़ना आरम्भ किया। परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब मैंने देखा कि वैदिक व्याकरण के प्रधान भाग केवल साधारण नियमों के अपवाद ही हैं। व्याकरण में एक साधारण विधान माना गया, परन्तु इसके बाद ही यह बतलाया गया कि वेदों में यह नियम अपवादस्वरूप होगा। अतः हम देखते हैं कि वचाव के लिए यास्क की निरुक्ति का उपयोग कर कोई भी मनुष्य चाहे जो कुछ लिखकर बड़ी आसानी से उसे वेद कहकर प्रचार कर सकता है। साथ ही इसके अधिकांश भाग में बहुसंख्यक पर्याय शब्द रखे गये हैं। जहाँ इतने सुभीते हैं, वहाँ तुम जितना चाहो उपनिषद् लिख सकते हो। यदि संस्कृत का कुछ ज्ञान हो तो प्राचीन वैदिक शब्दों की तरह कुछ शब्द गढ़ लेने ही से काम हो जायगा, व्याकरण का तो कुछ भय रहा ही नहीं। फिर तो रसूलल्ला हो, चाहे जो सुल्ला हो, उसे अपने ग्रन्थ में तुम अनायास रख सकते हो। इस प्रकार अनेक उपनिषदों की रचना हो गयी है और सुनते हैं कि अब भी होती है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि भारत के कुछ भागों में भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के लोग अब भी ऐसे उपनिषदों का प्रणयन करते हैं, परन्तु इन उपनिषदों में कुछ ऐसे हैं, जो स्पष्टतः अपनी प्रामाणिकता की गवाही देते हैं, और इन्हींको शकर, बाद में रामानुज और दूसरे बड़े बड़े भाष्यकारों ने स्वीकार किया है तथा इनका भाष्य किया है।

उपनिषदों के और भी दो एक तत्त्वों की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, क्योंकि ये उपनिषद् ज्ञानसमुद्र हैं और मुझ जैसा अयोग्य मनुष्य यदि उनके सम्पूर्ण तत्त्वों की व्याख्या करना चाहे तो वर्षों बीत जायेंगे, एक व्याख्यान में कुछ न होगा। अतएव उपनिषदों के अध्ययन के प्रसंग में मेरे मन में जो दो एक बातें आयी हैं, उनकी ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहता हूँ। पहले तो ससार में इनकी तरह अपूर्व काव्य और नहीं हैं। वेदों के सहिता भाग को पढ़ते समय उसमें भी जगह जगह अपूर्व काव्य-सौन्दर्य का परिचय मिलता है। उदाहरण के लिए ऋग्वेद सहिता के नासदीय सूक्तों को पढ़ो। उममें प्रलय के गम्भीर अन्वकार के वर्णन में है—**तम आसीत् तमसा गूढमग्रे** इत्यादि—‘जब अन्वकार से अन्यकार ढँका हुआ था।’ इसके पाठ ही से यह जान पड़ता है कि कवित्व का अपूर्व गाम्भीर्य

इसमें मरा है। तुमने क्या इस और दृष्टि डाली है कि भारत के बाहर के देशों में तथा भारत में भी सम्मीर भावों के चित्र खींचने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं? भारत के बाहरी देशों में यह प्रयत्न उदात्त बड़ प्रकृति के अनन्त भावों के वर्णन में ही हुआ है—केवल अनन्त बहिःप्रकृति अनन्त बड़ अनन्त देश का वर्णन हुआ है। जब भी मिस्टन या बरि या किसी दूसरे प्राचीन अथवा आधुनिक यूरोपीय बड़े कवि ने अनन्त के चित्र खींचने की कोशिश की है तभी उन्होंने कवित्व-पर्वों के सहारे अपने बाहर दूर आकाश में बिखरते हुए, बाह्य अनन्त प्रकृति का कुछ कुछ आभास देने की चेष्टा की है। यह चेष्टा यहाँ भी हुई है। बाह्य प्रकृति का अनन्त विस्तार जिस प्रकार वेद संहिता में चित्रित होकर पाठकों के सामने रखा गया है वैसे अन्ध भी देखने को नहीं मिलता। संहिता के इस 'तम आसीत् तमसा गूढम्' वाक्य को भाव रखकर तीन निम्न निम्न कवियों के अन्धकार वर्णन के साथ इसकी तुलना करके देखो। हमारे काकिल्लास ने कहा है—'सूचीमेघ अन्धकार' उधर मिस्टन कहते हैं 'उजाला नहीं है वृक्षमाल अन्धकार है। परन्तु आम्बेय संहिता में है—अन्धकार से अन्धकार डँका हुआ है, अन्धकार के भीतर अन्धकार छिपा हुआ है। हम उजल कटिबन्ध के रहनेवाके सहज ही में समझ सकते हैं कि जब सहजा नवीन बर्षामम होता है, तब सम्पूर्ण दिग्मंडल अन्ध कापाच्छन्न हो जाता है और उमड़ती हुई काली बटाएँ दूसरे बावलों को बेर लेती हैं। इसी प्रकार कविता बनती है, परन्तु संहिता के इस अंश में भी बाहरी प्रकृति का वर्णन किया गया है। बाहरी प्रकृति का विस्फेपक करके मातृ-जीवन की महान् समस्याएँ अन्धक जैसे हल की गयी हैं, जैसे ही यहाँ भी। जिस प्रकार प्राचीन यूनान अथवा आधुनिक यूरोप जीवन-समस्या का समाधान पाने के लिए उदात्त अन्धकारण सम्बन्धी पारमायिक तरलों की खोज के लिए बाह्य प्रकृति के अन्वेषण में संलग्न हुए, उसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने भी किमा और पादशास्त्रों के समान वे भी अक्षरकृत हुए। परन्तु पश्चिमी जातियों ने इस विषय में और कोई प्रयत्न नहीं किया जहाँ वे भी नहीं पड़ी रही। बहिर्दृश्य में जीवन और मृत्यु की महान् समस्याओं के समाधान के अन्ध प्रमास होने पर वे आने लगी बड़ी। हमारे पूर्वजों ने भी इसे असम्भव समझा था परन्तु उन्होंने इस समाधान की प्राप्ति में इन्द्रियों की पूरी अक्षमता संसार के सामने निर्भय होकर प्रोपित की। उपनिषद् से अच्छा उत्तर नहीं मिलेगा।

यती बावो निबर्तन्ते अग्रान्य धनस्ता चह।

'मन के साथ बाणी जिसे न पाकर जहाँ से लौट आयी है।

न तत्र अक्षरप्रकृति न बावप्रकृति नो मनः।

‘वहाँ न आंखों की पहुँच है, न वाणी की।’

ऐसे अनेक वाक्य हैं, जिन्होंने इन्द्रियों को इस महासमस्या के समाधान के लिए सर्वथा अक्षम बताया है, किन्तु वे पूर्वज इतना ही कहकर रुक नहीं गये। बाह्य प्रकृति से लौटकर वे मनुष्य की अन्तःप्रकृति की ओर प्रवृत्त हुए। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वे स्वयं अपनी आत्मा के निकट गये, वे अन्तर्मुख हुए। वे समझ गये थे कि प्राणहीन जड से कभी सत्य की प्राप्ति न होगी। उन्होंने देखा कि वहिःप्रकृति से प्रश्न करने पर कोई उत्तर नहीं मिलता, न उससे कोई आशा की जा सकती है, अतएव बाह्य सत्य की खोज की चेष्टा वृथा जानकर वहिःप्रकृति का त्याग करके वे उसी ज्योतिर्मय जीवात्मा की ओर मुड़े और वहाँ उन्हें उत्तर भी मिला तमेवैक जानय आत्मान अन्या वाचो विमुच्य।—‘एकमात्र उसी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो और दूसरे वृथा वाक्य छोड़ो।’ उन्होंने आत्मा में ही सारी समस्याओं का समाधान पाया। वही उन्होंने विश्वेश्वर परमात्मा को जाना और जीवात्मा के साथ उसका सम्बन्ध, उसके प्रति हमारा कर्तव्य और उसके आधार पर हमारा पारस्परिक सम्बन्ध—आदि ज्ञान प्राप्त किया। और इस आत्मतत्त्व के वर्णन के सदृश उदात्त ससार में और दूसरी कविता नहीं है। जड के वर्णन की भाषा में इस आत्मा को चित्रित करने की चेष्टा न रही, यहाँ तक कि आत्मा के वर्णन में उन्होंने गुणों का निर्देश करना विल्कुल छोड़ दिया। तब अनन्त की धारणा के लिए इन्द्रियों की सहायता की आवश्यकता नहीं रही। बाह्य इन्द्रिय-ग्राह्य, अचेतन, मृत, जड स्वभाव, अवकाशरूपी अनन्त का वर्णन लुप्त हो गया। चरन् इसके स्थान पर आत्मतत्त्व का ऐसा वर्णन मिलता है, जो इतना सूक्ष्म है, जैसा कि इस कथन में निर्दिष्ट है

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्यभासा सर्वमिदं विभाति ॥’

ससार में और कौन सी कविता इसकी अपेक्षा अधिक उदात्त होगी? ‘वहाँ न सूर्य का प्रकाश है, न चन्द्रतारकाओं का, यह विजली उसे प्रकाशित नहीं कर सकती, तो मृत्युलोक की इस अग्नि की वात ही क्या? उसीके प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है।’

ऐसी कविता तुमको कहीं नहीं मिल सकती और कहीं न पाओगे। उस अपूर्व कठोपनिषद् को लो। इस काव्य का रचना-चमत्कार कैसा सर्वांग मुन्दर है। किस

मनोहर रीति से यह आरम्भ किया गया है। उस छोटे से बास्कर नबिकेता के हृदय में अज्ञा का आधिपत्य उसकी यमदर्शन की अभिरूपा और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि यम स्वयं उसे जीवन और मृत्यु का महान् पाठ पढ़ा रहे हैं। और यह बास्कर उनसे क्या जानना चाहता है?—मृत्यु-रहस्य।

उपनिषदों के सम्बन्ध की जिस बुरी बात पर तुम्हें ध्यान देना चाहिए, वह है उनका अपौरुषेयत्व। यद्यपि उनमें हमें अनेक आचार्यों और ब्रह्मज्ञानियों के नाम मिलते हैं पर उनमें से एक भी उपनिषदों के प्रभावस्वरूप नहीं गिने जाते। उपनिषदों का एक भी मंत्र उनमें से किसीके जीवन के ऊपर निर्भर नहीं है। वे सब आचार्य और ब्रह्मा मानो छात्यामूर्ति की भाँति रंगमंच के पीछे अवस्थित हैं। उन्हें मानो कोई स्पष्टतया नहीं बेस पाता उनका उल्लास मानो साफ समझ में नहीं आती। यद्यपि दक्षिण उपनिषदों के उन अपूर्व महिमात्मक अपौरुषेय तेषोमय मंत्रों के भीतर निहित है जो बिल्कुल व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। बीसियों शतकस्य आर्य रहें और बसे आर्य इससे कोई हानि नहीं मच तो बने ही रहेंगे। किन्तु फिर भी वे किसी व्यक्तिविषय के विरोधी नहीं हैं। वे इतने विशाल और उदार हैं कि संसार में अब तक जितने महापुरुष या आचार्य पैदा हुए और भविष्य में जितने आर्यसे उन सबको समाहित कर सकते हैं। उपनिषद् अवधारणों या महापुरुषों की उपासना के विरोधी नहीं हैं बल्कि उसका समर्थन करते हैं। किन्तु साब ही के सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिनिरपेक्ष हैं। उपनिषद् का ईश्वर जिस प्रकार निर्गम अर्थात् व्यक्तिनिरपेक्ष है, उसी प्रकार समस्त उपनिषद् व्यक्तिनिरपेक्षता-रूप अपूर्व तरह के ऊपर प्रतिष्ठित है। ज्ञानी चिन्तनशील दार्शनिक यमा मुक्तिवादी उतमें इतनी व्यक्तिनिरपेक्षता पाते हैं जितना कोई आधुनिक विज्ञानवेत्ता चाह सकता है।

और वे ही हमारे धारक हैं। तुम्हें याद रखना चाहिए कि ईशानियों के लिए जैसे वास्तविक है मुसलमानों के लिए कुरान बौद्धों के लिए त्रिपिटक पारसियों के लिए जन्म-अवस्था जैसे ही हमारे लिए उपनिषद् हैं। वे ही हमारे धारक हैं इंग्लैंड की। पुराण तन्त्र और अस्याय रत्न यहाँ तक कि व्यासपुत्र भी जीवन हैं हमारे मुख्य प्रमाण हैं वेद। मन्त्रादि स्मृतियाँ और पुराणों का जितना अर्थ उपनिषदों में मेल गया है उतना ही ब्रह्मयोग्य है यदि अन्तर्दृष्टि प्रकट करें तो उन्हें निर्व्यापारपूर्वक छात्र देना चाहिए। इन सब मंत्रों पर ध्यान देना हीना परम्पु भारत के दुर्भाग्य के बर्तमान समय में हमें या विष्णु के भूत मय है। इन समय छोटे छोटे धार्मिक आचार्यों को जानी उपनिषदों के उपदेशों के स्थापन पर प्रामाण्य प्राप्त हो गया है। ब्रह्म के मुख्य देवताओं में अब जो आचार्य प्रचलित हैं वे मानो वेद-धारक ही नहीं उनमें भी नहीं बड़बड़ है। और 'गणानन्द-जगतन्मयी' इन

शब्द का प्रभाव भी कितना विचित्र है! एक देहार्ती की निगाह में वही सच्चा हिन्दू है, जो कर्मकांड की हर एक छोटी छोटी बात का पालन करता है और जो नहीं करता, उसे अहिन्दू कहकर दुत्कार दिया जाता है। दुर्भाग्य से हमारी मातृभूमि में ऐसे अनेक लोग हैं, जो किसी तत्रविशेष का अवलम्बन कर सर्वसाधारण जनता को उसी तत्र-मत का अनुसरण करने का उपदेश देते हैं। जो वैसा नहीं करते, वे उनके मत में सच्चे हिन्दू नहीं हैं। अतः हमारे लिए यह स्मरण रखना अत्यन्त आवश्यक है कि उपनिषद् ही मुख्य प्रमाण हैं। गृह्य और श्रौत सूत्र भी वेदों के प्रमाणाधीन हैं। यही उपनिषद् हमारे पूर्वपुरुष ऋषियों के वाक्य हैं और यदि तुम हिन्दू होना चाहो तो तुम्हें यह विश्वास करना ही होगा। तुम ईश्वर के बारे में जैसा चाहो विश्वास कर सकते हो, परन्तु वेदों का प्रामाण्य यदि नहीं मानते तो तुम धोर नास्तिक हो। ईसाई, बौद्ध या दूसरे शास्त्रों तथा हमारे शास्त्रों में यही अन्तर है। उन्हें शास्त्र न कहकर पुराण कहना चाहिए, क्योंकि उनमें जलप्लावन का इतिहास, राजाओं और राजवशधरों का इतिहास, महापुरुषों के जीवन-चरित आदि विषय लेखबद्ध हैं। ये सब पुराणों के लक्षण हैं, अतः इनका जितना अंश वेदों से मेल खाता हो, उतना ही ग्रहणीय है, परन्तु जो अंश नहीं मेल खाता, उसके मानने की आवश्यकता नहीं। बाइबिल और दूसरी जातियों के शास्त्र भी जहाँ तक वेदों से सहमत हैं, वही तक अच्छे हैं, लेकिन जहाँ ऐसा नहीं है, वे हमारे लिए अस्वीकार्य हैं। कुरान के सम्बन्ध में भी यही बात है। इन ग्रन्थों में अनेक नीति-उपदेश हैं, अतः वेदों के साथ उनका जहाँ तक ऐक्य हो, वही तक, पुराणों के समान, उनका प्रामाण्य है, इससे अधिक नहीं। वेदों के सम्बन्ध में मेरा यह विश्वास है कि वेद कभी लिखे नहीं गये, वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे किसी समय कहा था, हमारी बाइबिल ऐतिहासिक नींव पर स्थापित है और इसीलिए सत्य है, इस पर मैंने जवाब दिया था, “हमारे शास्त्र इसीलिए सत्य हैं कि उनकी कोई ऐतिहासिक भित्ति नहीं है, तुम्हारे शास्त्र जब कि ऐतिहासिक हैं, तब अवश्य ही वे कुछ दिन पहले किसी मनुष्य द्वारा रचे गये थे, तुम्हारे शास्त्र मनुष्यप्रणीत हैं, हमारे नहीं। हमारे शास्त्रों की अनैतिहासिकता ही उनकी सत्यता का प्रमाण है।” वेदों के साथ आजकल दूसरे शास्त्रों का यही सम्बन्ध है।

अब हम उपनिषदों की शिक्षा की पर्यालोचना करेंगे। उनमें अनेक भावों के श्लोक हैं। कोई कोई सम्पूर्ण द्वैत भावात्मक है और अन्य अद्वैत भावात्मक है। किन्तु उनमें कई बातें हैं, जिन पर भारत के सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। पहले तो सभी सम्प्रदाय ससारवाद या पुनर्जन्मवाद स्वीकार करते हैं। दूसरे, सब

सम्प्रदायों का मनोबिज्ञान भी एक ही प्रकार का है। पहले यह स्पष्ट शरीर, इसके पीछे सूक्ष्म शरीर या मन है और इसके भी परे जीवात्मा है। पश्चिमी और भारतीय मनोबिज्ञान में यह विशेष भेद है कि पश्चिमी मनोबिज्ञान में मन और आत्मा में कोई अन्तर नहीं माना गया है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसा नहीं। भारतीय मनोबिज्ञान के अनुसार मन जबका अस्त-करम मानो जीवात्मा के हाथों का यन्त्र-मात्र है। इसीकी सहायता से वह शरीर जबका बाह्यी संसार में काम करता है। इस विषय में घनी का मत एक है। और सभी सम्प्रदाय एक स्वर से यह स्वीकार करते हैं कि जीवात्मा अनादि और अनन्त है। जब तक उसे सम्पूर्ण मुक्ति नहीं मिलती तब तक उसे बार बार जन्म सेना होगा। इस विषय में सब सहमत हैं। एक और मुख्य विषय में सबकी एक राय है, और यही भारतीय और पश्चिमी विज्ञान प्रयाची में विशेष मौलिक तथा अल्पन्त जीवन्त एवं महत्त्वपूर्ण अन्तर है, यहाँबासे जीवात्मा में सब शक्तियों की अवस्थिति स्वीकार करते हैं। यहाँ शक्ति और प्रेरणा के बाह्य आवाहन के स्वाम पर उनका आन्तरिक स्फुरण स्वीकार किया गया है। हमारे धार्मिकों के अनुसार सब शक्तियाँ सब प्रकार की महता और पवित्रता आत्मा में ही विद्यमान हैं। योगी तुमसे कहेंगे कि अग्निमा अग्निमा आदि शक्तियाँ जिन्हें वे प्राप्त करना चाहते हैं, वास्तव में प्राप्त करने की नहीं वे पहले से ही आत्मा में मौजूद हैं सिर्फ उन्हें स्पष्ट करना होगा। पतञ्जलि के मत में तुम्हारे पैरों तले चरनेवाले छोटे से छोटे कीड़ों तक में योगी की अष्ट शक्तियाँ वर्तमान हैं। केवल अपने देहकी आकार की अनुपयुक्तता के कारण ही वे प्रकाशित नहीं हो पाती। जब भी उन्हें उत्कृष्टतर शरीर प्राप्त होगा वे शक्तियाँ अविच्छिन्न हो जायेंगी परन्तु होती हैं वे पहले से ही विद्यमान। उन्होंने अपने सूत्रों में एक जगह कहा है विमित्तजप्रयोजकं प्रकृतीनां वरजनेवस्तु तदा शेषिकवत्। — 'शुभाशुभ कर्म प्रकृति के परिचय (परिवर्तन) के प्रत्यक्ष कारण नहीं हैं, बल्कि वे प्रकृति के विकास की बाधाओं को दूर करनेवाले निमित्त कारण हैं। जैसे किसान को यदि अपने खेत में पानी काना है तो सिर्फ खेत की मेंड़ काटकर पाठ के भरे ताक्याब से जल का भोग कर देता है और पानी अपने स्वामाविक प्रवाह से आकर खेत को भर देता है। यहाँ पतञ्जलि ने किसी बड़े ताक्याब से किसान द्वारा अपने खेत में जल काने का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। ताक्याब अवालय भरा है और एक सख म उसका पानी किसान के पूरे खेत को भर सकता है, परन्तु ताक्याब लका गेठ के बीच में फिट्टी की एक मेंड़ है। यहाँ ही अवालय पैदा करने

वाली यह मेड तोड़ दी जाती है, त्यों ही तालाब का पानी अपनी ताकत और वेग से खेत में पहुँच जाता है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मा में सारी शक्ति, पूर्णता और पवित्रता पहले ही से भरी है, केवल माया का परदा पड़ा हुआ है, जिससे वे प्रकट नहीं होने पाती। एक बार आवरण को हटा देने से आत्मा अपनी स्वाभाविक पवित्रता प्राप्त करती है—उसकी सारी शक्ति व्यक्त हो जाती है। तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्राच्य और पाश्चात्य चिन्तन-प्रणाली में यह बड़ा भेद है। पश्चिम-वाले यह भयानक मत सिखाते हैं कि हम जन्म से ही महापापी हैं और जो लोग यह भयावह मत नहीं मानते, उन्हें वे जन्मजात दुष्ट कहते हैं। वे यह कभी नहीं सोचते कि अगर हम स्वभाव से ही बुरे हों तो हमारे भले होने की आशा नहीं, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति कभी बदल नहीं सकती। 'प्रकृति का परिवर्तन'—यह वाक्य स्व-विरोधी है। जिसका परिवर्तन होता है, उसे प्रकृति नहीं कहना चाहिए। यह विषय हमें स्मरण रखना चाहिए। इस पर भारत के द्वैतवादी, अद्वैतवादी और सभी सम्प्रदाय एकमत हैं।

भारत के सब सम्प्रदाय एक अन्य विषय पर भी एकमत हैं, वह है ईश्वर का अस्तित्व। इसमें सन्देह नहीं कि ईश्वर के बारे में सभी सम्प्रदायों की धारणा भिन्न भिन्न है। द्वैतवादी सगुण, केवल सगुण ईश्वर पर ही विश्वास करते हैं। मैं यह सगुण शब्द तुम्हें कुछ और भी अच्छी तरह समझाना चाहता हूँ। इस सगुण के अर्थ से देहधारी, सिंहासन पर बैठे हुए, ससार का शासन करनेवाले किसी पुरुष-विशेष से मतलब नहीं। सगुण अर्थ से गुणयुक्त समझना चाहिए। इस सगुण ईश्वर का वर्णन शास्त्रों में अनेक स्थलों में देखने को मिलता है, और सभी सम्प्रदाय इस ससार का शासक, स्रष्टा, पालक और सहर्ता सगुण ईश्वर मानते हैं। अद्वैतवादी इस सगुण ईश्वर के सम्बन्ध में और भी कुछ ज्यादा मानते हैं। वे इस सगुण ईश्वर की एक उच्चतर अवस्था के विश्वासी हैं, जिसे सगुण-निर्गुण नाम दिया जा सकता है। जिसके कोई गुण नहीं है, उसका किसी विशेषण द्वारा वर्णन करना असम्भव है। और अद्वैतवादी उसे 'सत्-चित्-आनन्द' के सिवा कोई और विशेषण नहीं देना चाहते। शंकर ने ईश्वर को सच्चिदानन्द विशेषण से पुकारा है, परन्तु उपनिषदों में ऋषियों ने इससे भी आगे बढ़कर कहा है, 'नेति नेति' अर्थात् 'यह नहीं, यह नहीं।' इस विषय में सभी सम्प्रदाय एकमत हैं। अब मैं द्वैतवादियों के मत के पक्ष में कुछ कहूँगा। जैसा कि मैंने कहा है, रामानुज की मैं भारत का प्रसिद्ध द्वैतवादी तथा वर्तमान समय के द्वैतवादी सम्प्रदायों का सबसे बड़ा प्रतिनिधि मानता हूँ। खेद की बात है कि हमारे बंगाल के लोग भारत के उन बड़े बड़े धर्माचार्यों के विषय में जिनका जन्म दूसरे प्रान्तों में हुआ था, बहुत ही थोड़ा ज्ञान रखते

हैं। मुसकमानों के राज्यकाल में एक वैतन्य को छोड़कर बड़े बड़े और सभी धार्मिक नेता बलिष्ण भारत में पैदा हुए थे और इस समय साक्षिचार्यों का ही अस्तित्व वास्तव में भारत भर का शासन कर रहा है। यहाँ तक कि वैतन्य भी इन्हीं सम्प्रदायों में से एक के मध्याधर्म के सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बल्कि रामानुज के मतानुसार नित्य पदार्थ तीन हैं—ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति। सभी जीवात्माएँ नित्य हैं परमात्मा के साथ उनका भेद सर्वत्र बना रहेगा और उनकी स्वतंत्र सत्ता का कभी लोप नहीं होगा। रामानुज कहते हैं, तुम्हारी आत्मा इमाटी आत्मा से अनन्त काल के लिए पूषक रहेगी और यह प्रकृति भी फिर काल तक पूषक रूप में विद्यमान रहेगी क्योंकि उसका अस्तित्व जैसे ही सत्य है, जैसे कि जीवात्मा और ईश्वर का अस्तित्व। परमात्मा सर्वत्र अन्तर्निहित और आत्मा का सार तत्व है। ईश्वर अन्तर्पामी है और इसी अर्थ को लेकर रामानुज नहीं नहीं परमात्मा को जीवात्मा से अभिन्न—जीवात्मा का सारमूत पदार्थ बताते हैं, और वे जीवात्माएँ प्रलय के समय जब कि उनके मतानुसार सारी प्रकृति संकुचित अवस्था को प्राप्त होती है, संकुचित हो जाती है और कुछ काल तक सभी संकुचित तथा नूनम अवस्था में रहती हैं। और दूसरे रूप के आरम्भ में वे अपने पिछले कर्मों के अनुसार फिर विकसित होती हैं और अपना कर्मफल भोगती हैं। रामानुज का मत है कि जिस कम से आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता और पूर्णता का संशोध हो रही अमुम है, और जिससे उसका विकास ही वह नूनम कर्म। जो कुछ मारया के विकास में सहायता पहुँचाये वह अच्छा है और जो कुछ उस संकुचित करे, वह बुरा। और उम्मी तरह आत्मा की प्रसंगि हो रही है कभी तो वह संकुचित हो रही है और कभी विरसिण। अन्त में ईश्वर ने अमुपह स उच्च मुक्ति मिलनी है। रामानुज कहते हैं जो कुछ स्वभाव है और अनुपह के लिए प्रमत्तसीक है, वे ही उसे पाने हैं।

पुत्रि में एक प्रसिद्ध वाक्य है आहारशुद्धौ सत्त्वमुद्धिः सत्त्वमुद्धौ शुभा स्मृतिः।
—जब आहार शुद्ध होता है तब सत्त्व भी शुद्ध हो जाता है और सर्व शुद्ध होने पर स्मृति अर्थात् ईश्वर-स्मरण (बहुतकारियों के लिए स्वर्गीय पूर्वता की स्मृति) शुभ अचल और स्थायी हो जाता है। इन वाक्य को लेकर भाष्यकारों में मतभेद विचार हुआ है। पहली बात तो यह है कि इस 'मत्त्व' शब्द का क्या अर्थ है? इस श्लोक जानने हैं नाग्य के अनुसार—और इन विषय की हमारे सभी धर्म-सम्प्रदायों में स्वीकार किया है कि—मत्त्व वह वा निर्माण तीन प्रकार के उपादानों में हुआ है—गुणों में बढ़ी। आपाग्न मनुष्यों की यह वाक्य है कि मत्त्व एक और तम नीची मूम है परन्तु वाक्य म वे पुत्र बढ़ी वे तमार के उपादान-वाक्य

स्वरूप है। और आहार शुद्ध होने पर यह सत्त्व-पदार्थ निर्मल हो जाता है। शुद्ध सत्त्व को प्राप्त करना ही वेदान्त का एकमात्र उपदेश है। मैंने तुमसे पहले भी कहा है कि जीवात्मा स्वभावतः पूर्ण और शुद्धस्वरूप है और वेदान्त के मत में वह रज और तम दो पदार्थों में ढँका हुआ है। सत्त्व पदार्थ अत्यन्त प्रकाशस्वभाव है और उसके भीतर में आत्मा की ज्योति जगमगाती हुई स्वच्छन्दतापूर्वक उसी प्रकार निकलती है, जिस प्रकार शीशे के भीतर से आलोक। अतएव यदि रज और तम पदार्थ दूर हो जायें तो केवल सत्त्व रह जाय, तो आत्मा की शक्ति और पवित्रता प्रकाशित हो जायगी, और वह अपने को पहले से अधिक व्यक्त कर सकेगी।

अतः यह सत्त्वप्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है और श्रुति कहती है, 'आहार शुद्ध होने पर सत्त्व शुद्ध होता है।' रामानुज ने 'आहार' शब्द को भोज्य पदार्थ के अर्थ में ग्रहण किया है और उन्होंने इसे अपने दर्शन के अंगों में से एक मुख्य अंग माना है। इतना ही नहीं, इसका प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों पर पड़ा है। अतएव हमारे लिए इसका अर्थ समझ लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि रामानुज के मत से यह आहार-शुद्धि हमारे जीवन का एक मुख्य अवलम्ब है। आहार किन कारणों से दूषित होता है? रामानुज का कथन है कि तीन प्रकार के दोषों से खाद्य पदार्थ दूषित हो जाता है। प्रथम है जाति दोष अर्थात् भोज्य पदार्थों की जाति में प्रकृतिगत दोष जैसे कि लहसुन, प्याज और इसी प्रकार के अन्यान्य पदार्थों की गन्ध। दूसरा है आश्रय दोष अर्थात् जिस पदार्थ को कोई दूसरा छू लेता है अर्थात् जो पदार्थ किसी दूसरे के हाथ से मिलता है, वह छूनेवाले के दोषों से दूषित हो जाता है, दुष्ट मनुष्य के हाथ का भोजन तुम्हें भी दुष्ट कर देगा। मैंने स्वयं भारत के बड़े बड़े अनेक महात्माओं को उनके जीवन-काल में दृढतापूर्वक इस नियम का पालन करते हुए देखा है। और हाँ, भोजन देनेवाले के—यहाँ तक कि यदि किसीने कभी भोजन छुआ हो, तो उसके भी गुण-दोषों के समझ लेने की उनमें यथेष्ट शक्ति थी, और यह मैंने अपने जीवन में एक बार नहीं, सैकड़ों बार प्रत्यक्ष अनुभव किया है। तीसरा है निमित्त दोष, भोज्य पदार्थों में बाल, कीड़े या धूल पड़ जाने से निमित्त दोष होता है। हमें इस समय इस शेषोक्त दोष से बचने की विशेष चेष्टा करनी चाहिए। भारत पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। यदि वह भोजन किया जाय, जो इन तीनों प्रकार के दोषों से मुक्त है, तो अवश्य ही सत्त्वशुद्धि होगी। अगर ऐसा ही है तो घर्म तो बायें हाथ का खेल हो गया। अगर पाक-साफ भोजन ही से घर्म होता हो तो फिर हर एक मनुष्य घर्मात्मा बन सकता है। जहाँ तक मेरा ख्याल है, इस ससार में ऐसा कमजोर या असमर्थ कोई भी न होगा, जो अपने को इन वुराइयों से न बचा सके। अस्तु। शंकराचार्य

कहते हैं आहार' शब्द का अर्थ है इन्द्रियों द्वारा मन में विचारों का समावेश, आहरण होना या आना जब मन निर्मल होता है, तब शब्द भी निर्मल हो जाता है, किन्तु इसके पहले नहीं। तुम्हें जो शब्द वही भोजन कर सकते हो। अगर केवल शब्द पदार्थ ही शब्द को मसमुक्त करता है तो बिनाभी शब्द को बिन्दवी मर दूब-भात बेसों तो वह एक बड़ा योगी होता है या नहीं। अगर ऐसा ही होता तो यामें और हिरण परम योगी हो गये होते। यह उक्ति प्रसिद्ध है

मित गहाने ते हरि मिले तो बल जन्तु होई।

फल फूस खाके हरि मिले तो बाहुइ बाँबरारै।

तिरल भजन से हरि मिले तो बहुत सुखी भजा।

परन्तु इस समस्या का समाधान क्या है? आवश्यक दोनों ही हैं। इसमें शंकेह नहीं कि आहार के सम्बन्ध में चक्रवार्थ का सिद्धान्त मुख्य है परन्तु यह भी शाय है कि कुछ भोजन से कुछ विचार होने में सहायता मिलती है। दोनों का एक दूसरे से समिष्ट सम्बन्ध है। दोनों आवश्यक हैं परन्तु वृत्ति यही है कि आजकल हम भारतवासी चक्रवार्थ का उपदेश भूल गये हैं। हम लोगों ने आहार का अर्थ कुछ भोजन मान लिया है। यही कारण है कि जब लोग मुझे यह कहते हुए सुनते हैं कि धर्म अब रसाई में भुस गया है, तब वे मुझ पर विमर्श उठते हैं परन्तु यदि मेरे साथ तुम मद्रास जाओ तो मेरे बान्धवों को स्वीकार कर लो। बंधासी उनसे अच्छे हैं। मद्रास में किसी उच्च वर्ण के मनुष्य के भोजन पर यदि किसी नीच जाति की दृष्टि पड़ गयी तो वह भोजन फेंक दिया जाता है। परन्तु इतने पर भी मैंने नहीं देखा कि वहाँ के लोग उत्तम ही मदे। यदि केवल इस प्रकार या उस प्रकार का भोजन करने ही से और उसे इसकी उसकी दृष्टि से बचाने ही से लोग सिद्ध हो जाते तो तुम देखते कि सभी मद्रासी सिद्ध-महात्मा ही गये होते परन्तु वे बैसे नहीं हैं।

इस प्रकार, यद्यपि दोनों मत्त एकत्र करने एक सम्पूर्ण सिद्धान्त बनाना है, किन्तु बीड़े ने आये गाड़ी न जोली। आजकल भोजन और वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध में बड़ा खोरनुक उठ रहा है और बंधासी तो इन्हें फेंक और भी पत्ता फाड़ रहे हैं। तुममें से हर एक से मरा प्रश्न है कि तुम वर्णाश्रम के सम्बन्ध में क्या जानते हो? इस समय इस देश में अतुर्बर्ष्य विभाग नहीं है? मेरे प्रश्नों का उत्तर भी दो। मैं तो वर्णाश्रम नहीं देखता। जित प्रचार हमारे बंधासियों की महात्मा है कि 'बिना धर के धरवर्त होता है' उसी प्रकार यहाँ तुम वर्णाश्रम विभाग की चर्चा करना चाहते हो। यहाँ अब चार जातियों का नाम नहीं है। मैं केवल

ब्राह्मण और शूद्र देखता हूँ। यदि क्षत्रिय और वैश्य हैं, तो वे कहाँ हैं? और ऐ ब्राह्मणो, क्यों तुम उन्हें हिन्दू धर्म के नियमानुसार यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा नहीं देते?—क्यों तुम उन्हें वेद नहीं पढाते, जो हर एक हिन्दू को पढना चाहिए?—और यदि वैश्य और क्षत्रिय न रहे, किन्तु केवल ब्राह्मण और शूद्र ही रहें तो शास्त्रानुसार ब्राह्मणो को उस देश में कदापि न रहना चाहिए, जहाँ केवल शूद्र हों, अतएव अपना बोरिया-बंधना लेकर यहाँ से कूच कर जाओ। क्या तुम जानते हो, जो लोग म्लेच्छ-भोजन खाते हैं और म्लेच्छों के राज्य में बसते हैं, जैसे कि तुम गत हजार वर्षों से बस रहे हो, उनके लिए शास्त्रों में क्या आज्ञा है? क्या उसका प्रायश्चित्त तुम्हें मालूम है? प्रायश्चित्त है तुषानल—अपने ही हाथों अपनी देह जला देना। तुम आचार्य के आसन पर बैठना चाहते हो, परन्तु कपटाचरण नहीं छोड़ते। यदि तुम्हें अपने शास्त्रों पर विश्वास है तो अपने को उसी प्रकार जला दो, जिस प्रकार उन एक ख्यातनामा ब्राह्मण ने, जो महावीर सिकन्दर के साथ यूनान गये थे, म्लेच्छ का भोजन खा लेने के कारण तुषानल में अपना शरीर जला दिया था। यदि तुम ऐसा कर सके तो देखोगे, सारी जाति तुम्हारा चरण चूमेगी। स्वयं तो तुम अपने शास्त्रों पर विश्वास नहीं करते और दूसरों का उन पर विश्वास कराना चाहते हो। अगर तुम समझते हो कि इस जमाने में बैसा नहीं कर सकते, तो अपनी दुर्बलता स्वीकार करके दूसरों की भी दुर्बलता क्षमा करो, दूसरी जातियों को उन्नत करो, उनकी सहायता करो, उन्हें वेद पढ़ने दो, ससार के अन्य किन्हीं भी आर्यों के समकक्ष उन्हें भी आर्य बनने दो, और ऐ बगाल के ब्राह्मणो, तुम भी वैसे ही सदाशय आर्य बनो।

यह घृण्य वामाचार छोड़ो, जो देश का नाश कर रहा है। तुमने भारत के अन्यान्य भाग नहीं देखे। जब मैं देखता हूँ कि हमारे समाज में कितना वामाचार फैला हुआ है, तब अपनी सस्कृति के समस्त अहकार के साथ यह (समाज) मेरी नज़रों में अत्यन्त गिरा हुआ स्थान मालूम होता है। इन वामाचार सम्प्रदायों ने मधुमक्खियों की तरह हमारे बगाल के समाज को छा लिया है। वे ही जो दिन में गरज कर आचार के सम्बन्ध में प्रचार करते हैं, रात को घोर पैशाचिक कृत्य करने से वाञ्छ नहीं आते, और अति भयानक ग्रन्थसमूह उनके कर्म के समर्थक हैं। घोर दुष्कर्म करने का आदेश उन्हें ये शास्त्र देते हैं। तुम बगालियों को यह विदित है। बगालियों के शास्त्र वामाचार-तंत्र हैं। ये ग्रन्थ ढेरों प्रकाशित होते हैं, जिन्हें लेकर तुम अपनी सन्तानों के मन को विपाक्त करते हो, किन्तु उन्हें श्रुतियों की शिक्षा नहीं देते। ऐ कलकत्तावासियों, क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि अनुवादसहित वामाचार-तंत्रों का यह वीभत्स सभ्रह तुम्हारे बालकों और बालिकाओं के हाथ रखा जाय, उनका चित्त



विपनिहृक हो और वे चम्म से खड़ी चारवा केकर नहीं कि सिन्धुओं के कारण वे चामाचार हन्त हैं ? यदि तुम लक्षित हो तो अपने बच्चों के उन्हें बचानेकी, और उन्हें बचाने खास वेब पीठा उपनिषद् नहमे हो।

भारत के ईतबासी सम्प्रदायों के अनुसार खड़ी बीवालाई खीन बीवाला ही रहैनी। ईस्वर जन्म का निमित्त कारण है और उनसे पहले ही के बचानेका कारण से संसार की सृष्टि की। उपर खीतपाथियों के मत के ईस्वर संसार का निमित्त और उत्पादन दोनों कारण है। यह केवल संसार का सत्य ही नहीं, किन्तु उसने अपने ही से संसार का सर्वन किया। खड़ी खीतपाथियों का विश्वास है। कुछ बचकपरे ईतबासी सम्प्रदाय हैं जिनका यह विश्वास है कि ईस्वर वे बनेही और से संसार की सृष्टि की और साथ ही यह विश्वास से वास्तव पुनर् भी है, इन हर एक वस्तु फिर काल के लिए उच बननिम्नता के वास्तव अभीन है। ईश की बचकपरे हैं, जो यह मानते हैं कि ईस्वर ने अपने को उत्पादन बनाकर इस जन्म का उत्पादन किया और पीन बन्त में सत्य भाव छोड़कर अनन्त होते हुए निर्यात प्राप्त करे, परन्तु वे सम्प्रदाय सत्य हो चुके हैं। खीतपाथियों का एक यह सम्प्रदाय किने कि कुछ वर्तमान भारत में देखते ही संकर का अनुवासी है। संकर का मत यह है कि काल के माध्यम से देखने के कारण ही ईस्वर संसार का निमित्त और उत्पादन दोनों कारण है, किन्तु वास्तव में नहीं। ईस्वर यह जन्म नहीं बना बल्कि यह जन्म है ही नहीं, केवल ईस्वर ही है—इस सर्व बचनिम्नता। खीत वेदान्त का यह मानना बचकपरे बलन्त कर्मि है। हमारे दार्शनिक विषय का यह बहुत ही कर्मि मंत्र है, इसकी पर्यालोचना करने के लिए अब समय नहीं है। तुममें जो परिचयी बर्णों के परिचित हैं वे जानते हैं, इसका कुछ कुछ अंश काल के बर्णन से मेक जाता है परन्तु किन्हीं काल पर किन्हे हुए प्रोफेसर मैक्समूलर के विश्वास पड़े हैं उन्हें में तावबाल करता है कि उनके विश्वासों में एक बड़ी भारी भूल है। प्रोफेसर महीनर के मत में जो वेक काल और निमित्त हमारे ज्ञान के प्रतिबन्धक हैं उन्हें पहले काल ने आविष्कृत किया परन्तु वास्तव में उनके प्रथम आविष्कर्ता संकर हैं। संकर ने वेक काल और निमित्त को काल के साथ अविभ रचकर उनका वर्णन किया है। तीनाम्य के संकर के बच्चों में ईश को एक स्वतन्त्र मुने निक बने। उन्हें मैंने अपने मित्र प्रोफेसर खीतव्य के पत्र देव दिया। इन काल के पहले की यह तत्व भाषा में ब्याप्त खड़ी वा। वस्तु, खीत वेदान्तियों का यह मानाचार विभिन्न विश्वास है। उनके मत में सत्ता केवल वस्तु ही की है, यह जो वेद, सृष्टिकोचर हो रहा है, यह केवल भावा के कारण। यह एकात्म यह एकैवाधिकीत्व बड़ा ही हमारा ध्यान लम्ब है और खड़ी पर चारवीन और वास्तव्य विचारों का फिर हन्त भी स्वत है। इसारों नहीं के भारत के

मायावाद की घोषणा करते हुए ससार को चुनौती दी है और ससार की विभिन्न जातियों ने यह चुनौती स्वीकार भी की, जिसका फल यह हुआ कि वे पराभूत हो गयी हैं और तुम जीवित हो। भारत की घोषणा यह है कि ससार भ्रम है, इन्द्रजाल है, माया है, अर्थात् चाहे तुम मिट्टी से एक एक दाना बीनकर भोजन करो या चाहे तुम्हारे लिए सोने की थाली में भोजन परोसा जाय, चाहे तुम महलो में रहो, चाहे कोई महाशक्तिशाली महाराजाधिराज हो अथवा चाहे द्वार-द्वार का भिक्षुक, किन्तु परिणाम सभी का एक है और वह है मृत्यु, गति सभी की एक है, सभी माया है। यही भारत की प्राचीन सूक्ति है। वारम्बार भिन्न भिन्न जातियाँ सिर उठाती और इसके खडन करने की चेष्टा करती हैं, वे बढ़ती हैं, भोगसाधन को वे अपना ध्येय बनाती हैं, उनके हाथ में शक्ति आती है, पूर्णतया शक्ति का प्रयोग करती है, भोग की चरम सीमा को पहुँचती हैं और दूसरे ही क्षण वे विलुप्त हो जाती हैं। हम चिर काल से खडे हैं, क्योंकि हम देखते हैं कि हर एक वस्तु माया है। महामाया के बच्चे सदा बचे रहते हैं, परन्तु भोग रूपी अविद्या के लाडले देखते ही देखते कूच कर जाते हैं।

यहाँ एक दूसरे विषय में भी प्राच्य और पाश्चात्य विचार-प्रणाली में भेद है। जिस तरह तुम जर्मन दर्शन में हेगेल और शॉपेनहॉवर के मत देखते हो, बिल्कुल उसी तरह के विचार प्राचीन भारत में भी मिलते हैं। परन्तु हमारे सौभाग्य से हेगेलीय मतवाद का उन्मूलन उसकी अकुर-दशा में ही हो गया था, हमारी जन्मभूमि में उसे बढ़ने और उसकी विषाक्त शाखा-प्रशाखाओं को फैलने नहीं दिया गया। हेगेल का एक मत यह है कि एकमात्र परम सत्ता अन्वकारमय और विशृङ्खल है, और साकार व्यष्टि उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ है अर्थात् अ-जगत् से (जगत् नहीं है, इस भाव में) जगत् (जगत् है यह भाव) श्रेष्ठ है, मुक्ति से ससार श्रेष्ठ है। हेगेल का यही मूल भाव है, अतएव उनके मत में तुम ससार में जितना ही अवगाहन करोगे, जितनी ही तुम्हारी आत्मा जीवन के कर्मजालों से आवृत होगी, उतना ही तुम उन्नत होगे। पश्चिमवाले कहते हैं—क्या तुम देखते नहीं, हम कौसी बड़ी बड़ी इमारतें उठाते हैं, सड़कें साफ रखते हैं, हर तरह के सुख भोगते हैं? इसके पीछे—प्रत्येक इन्द्रिय-भोग के पीछे—दुःख, वेदना, पैशाचिकता और घृणा-विद्वेष चाहे भले ही छिपे हो, किन्तु उससे कोई हानि नहीं।

दूसरी ओर हमारे देश के दार्शनिक पहले ही से यह घोषणा कर रहे हैं कि हर एक अभिव्यक्ति, जिसे तुम विकास कहते हो, उस अव्यक्त की अपने को व्यक्त करने की निरर्थक चेष्टा मात्र है। हे ससार के सर्वशक्तिशाली कारणस्वरूप, तुम छोटी छोटी गडहियों में अपना स्वरूप देखने का वृथा प्रयत्न करते हो! कुछ दिनों के लिए यह प्रयत्न करके तुम समझोगे कि यह व्यर्थ था, और जहाँ से तुम आये हो, वहीं

कीटा बल्ले की ठालोने। यही वीरत्व है, वीर यही है कर्म कर्म
 किना त्याग या वीरत्व के बर्न का नैतिकता का उल्लेख
 ही से बर्न का बारम्ब होता है वीर त्याग ही में
 'त्याग करो, त्याग करो—इसके बिना वीर बुराया नव नहीं है'
 न वेच्यता त्वात्किमेवेव कर्तव्यमवामहम् ।

'मूल्य न कल्पनों से होती है, न कर्म से न कर्म से कर्म
 से निकला है !

यही भारत के सब शास्त्रों का भाव्य है। यह सब है कि किन्हीं की
 महापुरुषों न विहासल पर बैठे हुए भी संसार के बड़े बड़े त्वात्तियों के
 निर्वाह किया है, परन्तु कर्मक बैठे बैठे त्वात्तियों को भी कुछ कर्म के बिना
 सम्बन्ध छोड़ना पड़ा था। उन्को बड़ा त्वात्तियों का वीर कोई था ? परन्तु
 हम सभी कर्मक महत्तमा पाते हैं ? हाँ ये कर्मक है—नरे, नृपे, कर्मक
 के कर्मक। कर्मक सब उनके लिए केवल इती कर्म में था कर्मक है।
 कर्मक के समाप्त जगमें ब्रह्मनिष्ठा नहीं है। ये हमारे वाचकक के कर्मक है।
 कर्मकत्व की मात्रा बरा कर्म करके सीधे एतत् पर जाती। यदि तुम
 एतत् तो तुम्हें कर्म निकल सकता है। यदि तुम त्याग नहीं कर
 से लेकर पतिव्रत एक बारे संसार में कितनी पुस्तकें हैं उन्हें कर्मक
 पुस्तकालयों को निकलकर बुराबर पतिव्रत ही कर्मक ही परन्तु यदि तुम
 कर्मकत्व में लगे रहे तो यह कुछ नहीं है इसमें वाच्यता नहीं नहीं है।
 त्याग के द्वारा ही इस कर्मकत्व की प्राप्ति होती है। त्याग ही
 किन्के बीतर इस महापुरुष का साधन ही होता है, यह वीर की ही कर्म
 का किन्के वीर कर्मक उल्लेख नहीं करता। एतत् द्वारा कर्मक
 नाव के बुर से बनाये हुए कर्म के समाप्त कर्मक जाता है—

त्याग ही भारत की कला है। इती कला को कर्म कर्म में
 हुई सभी साधनों को भारत यही एक वाच्य विचार बारम्बार
 के कलाकारों एवं कलाकारों के विषय वाच्य कर रहा है। यह कर्म
 कर्मक कर कर्मक रहा है, वाच्य त्याग के कर्म का वाच्य के कर्म का
 करो नहीं तो कर्म वाच्ये। है हिन्दुवी, इस त्याग की कला को न
 वीर की उल्लेख। चाहे तुम कर्मक कर्म ही हो वीर त्याग चाहे कर्म ही
 परन्तु कर्मक को छोटा कर्म करो। इन कर्मक है—इस संसार का
 परन्तु कर्मक के इतने में कर्म नहीं, कर्मक का कर्म कर्मक
 कर्मक कर्मों की कर्मों में कर्म का कर्म है।

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लड़ाई में लाखों गिर जायें, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें। युद्ध में जिन लाखों लोगों को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।— क्योंकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोड़कर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के बल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नहीं किया, और तुमसे अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नहीं, वहाँ अन्त में क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमें कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पड़े, भस्ममण्डित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियों को स्थान देना पड़े, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत में घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान में त्याग का आदर्श रखकर समग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाञ्छनीय हैं। अतएव हमें थोड़ी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल में भारत में त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत में इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों में अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकाण्ड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकड़ों महापुरुष हैं जिन्होंने सब विषयों का त्याग कर दिया और जीवन्मुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड़ देगी? कदापि नहीं। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हज़ारों नहीं, लाखों मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद में चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप में—इन्द्रिय-परतत्रता में—ससार के शाप में डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि में हज़ारों ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो ज़रूरत पड़ने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायेंगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायों में एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। यह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही में विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुना श्रुतेन।—'इस आत्मा को न कोई वाग्बल से प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अधिक शास्त्र-ध्ययन से।' इतना ही नहीं, ससार में केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते हैं कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वार्ता

दुर्बल हैं? कारण, यह त्याग का आदर्श अत्यन्त महान् है। क्या हानि है, यदि लडाईं मे लाखो गिर जायँ, पर दस सिपाही या केवल दो एक ही वीर विजयी होकर लौटें। युद्ध मे जिन लाखो लोगो को वीरगति मिलती है, वे सचमुच धन्य हैं।—क्योकि उनके शोणितरूपी मूल्य से विजय-लाभ होता है, एक को छोडकर सारे वैदिक सम्प्रदायो ने इस त्याग ही को अपना एकमात्र आदर्श बनाया है। केवल बम्बई प्रान्त के वल्लभाचार्य सम्प्रदाय ने वैसा नही किया, और तुममे से अनेक को विदित है कि जहाँ त्याग नही, वहाँ अन्त मे क्या दशा होती है। इस त्याग के आदर्श की रक्षा के लिए यदि हमे कट्टरता और निरी कट्टरता स्वीकार करनी पडे, भस्ममडित ऊर्ध्वबाहु जटाजूटधारियो को स्थान देना पडे, तो वह भी अच्छा है। कारण, यद्यपि वे अस्वाभाविक हो सकते हैं तथापि पुरुषत्व का लोप करनेवाली जो विलासिता भारत मे घुसकर हमारा खून पी रही है, सारी जाति को कपटाचरण की शिक्षा दे रही है, उस विलासिता के स्थान मे त्याग का आदर्श रखकर समग्र जाति को सावधान करने के लिए वे हमारे लिए वाञ्छनीय हैं। अतएव हमे थोडी त्याग-तपस्या चाहिए। प्राचीन काल मे भारत मे त्याग ही की विजय थी, अब भी भारत मे इसे विजय प्राप्त करना है। यह त्याग भारत के आदर्शों मे अब भी सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च है। यह बुद्ध की भूमि, रामानुज की भूमि, रामकृष्ण परमहंस की भूमि, त्याग की भूमि, वह भूमि, जहाँ प्राचीन काल से कर्मकांड के विरुद्ध प्रतिवाद किया गया और जहाँ आज भी ऐसे सैकडो महापुरुष हैं जिन्होने सब विषयो का त्याग कर दिया और जीवनमुक्त बने बैठे हैं, क्या वह भूमि अपने आदर्श को छोड देगी? कदापि नही। यहाँ ऐसे मनुष्य रह सकते हैं, जिनका मस्तिष्क पश्चिमी विलासिता के आदर्श से विकृत हो गया है, यहाँ ऐसे हज्जारो नही, लाखो मनुष्य रह सकते हैं, जो विलास मद मे चूर हो रहे हैं, जो पश्चिम के शाप मे—इन्द्रिय-परतत्रता मे—ससार के शाप मे डूबे हुए हैं, किन्तु इतने पर भी हमारी मातृभूमि मे हज्जारो ऐसे भी होंगे, धर्म जिनके लिए शाश्वत सत्य है और जो ज़रूरत पडने पर फलाफल का विचार किये बिना ही सब कुछ त्याग देने के लिए सदा तैयार हो जायँगे।

हमारे इन सब सम्प्रदायो मे एक और सामान्य आदर्श है। उसको भी मैं तुम्हारे सम्मुख रखना चाहता हूँ। वह भी एक व्यापक विषय है। यह अद्वितीय विचार केवल भारत ही मे विशेष रूप से पाया जाता है कि धर्म का साक्षात्कार करना चाहिए। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुना श्रुतेन।—‘इस आत्मा को न कोई वाग्बल मे प्राप्त कर सकता है, न बुद्धि-कौशल से और न अविक्त शास्त्राध्ययन से।’ इतना ही नही, समार मे केवल हमारे ही शास्त्र ऐसे हैं, जो घोषणा करते है कि आत्मा को कोई न तो शास्त्रों का पाठ करके प्राप्त कर सकता है, न वाता

पौधे से प्रतिदान नहीं मांगता, क्योंकि भलाई करना उसका स्वाभाविक धर्म है, उसी प्रकार वह आता है।

तीर्णा स्वय भीमभवाणं व जना अहेतुनान्यानपि तारयन्त ।—वे इस भीषण भवसागर के उस पार स्वय भी चले गये हैं और बिना किसी लाभ की आशा किये दूसरो को भी पार करते हैं । 'ऐसे ही मनुष्य गुरु हैं, और ध्यान रखो दूसरा कोई गुरु नहीं कहा जा सकता । क्योंकि—

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना स्वय धीरा पडितम्मन्यमाना ।

जड्वन्यमाना परिरयन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा ॥'

—'अविद्या के अन्वकार मे डूबे हुए भी अपने को अहकारवश सुधी और महापडित समझनेवाले ये मूर्ख दूसरो की सहायता करना चाहते हैं, परन्तु ये कुटिल मार्ग मे ही भ्रमण किया करते हैं। अन्धे का हाथ पकडकर चलनेवाले अन्धे की तरह ये गुरु और शिष्य दोनो ही गड्ढे मे गिरते हैं।' यही वेदो की उक्ति है। इस उक्ति को अपनी वर्तमान प्रथा से मिलाओ। तुम वेदान्ती हो, तुम सच्चे हिन्दू हो, तुम परम्परानिष्ठ धर्म के माननेवाले हो। मैं तुम्हे और भी सच्चा परम्परानिष्ठ धर्म बनाना चाहता हूँ। तुम सनातन मार्ग का जितना ही अवलम्बन करोगे, उतने ही बुद्धिमान बनोगे, और जितना ही तुम आजकल की कट्टरता के फेर मे पडोगे, उतने ही तुम मूर्ख बनोगे। तुम अपने उसी अति प्राचीन सनातन पथ से चलो, क्योंकि उस समय के शास्त्रो के हर एक शब्द मे सबल, स्थिर और निष्कपट हृदय की छाप लगी हुई है, उसका हर एक स्वर अमोघ है। इसके बाद राष्ट्र का पतन शुरू हुआ—शिल्प मे, विज्ञान मे, धर्म मे, हर एक विषय मे राष्ट्रीय अवनति का आरम्भ हो गया। उसके कारणो पर विचार-विमर्श करने का अब अवकाश नहीं है, परन्तु अवनति के काल मे जो पुस्तके लिखी गयी हैं, उन सबमे इसी व्याधि और राष्ट्रीय पतन के प्रमाण मिलते हैं—राष्ट्रीय ओज के बदले उनसे केवल रोने की आवाज सुनायी पडती है। जाओ, जाओ—उस प्राचीन समय के भाव लाओ जब राष्ट्रीय शरीर मे वीर्य और जीवन था। तुम फिर वीर्यवान बनो, उसी प्राचीन झरने का पानी पिओ—भारत को पुनर्जीवित करने का एकमात्र उपाय अब यही है।

अद्वैतवादियो के मत मे हम लोगो का व्यक्तित्व, जो इस समय विद्यमान है, भ्रम मात्र है। समग्र मसार के लिए इस बात को ग्रहण कर पाना बहुत ही कठिन रहा है। जैसे ही तुम किसी से कहो कि वह 'व्यक्ति' नहीं है, वह इतना डर जाता है

कि उतका अपना व्यक्तित्व चाहे वह कैसा ही क्यों
 नहीं बनाने कहते हैं कि व्यक्तित्व जैसी वस्तु कभी रहती ही
 पर परिवर्तित हो रहे हो। कभी तुम बाबा के ये तुम
 इस समय तुम बुद्ध हो अब दूसरी तरह के विचार कल
 बाबा के अब दूसरी ही तरह सोचने। हर एक व्यक्ति
 यह सच है तो तुम्हारा निजी व्यक्तित्व क्या रह गया ?
 व्यक्तित्व न शरीर के सम्बन्ध में रह जाता है, न मन के सम्बन्ध में
 के सम्बन्ध में। इनके परे वह आत्मा ही है। और अतीतकालीन
 स्वयं बड़ा है वो अस्त क्वापि नहीं रह सकते।

स्वयं है। सच तो यह है कि हम विचारणीय प्राणी हैं, क्या
 केना चाहते हैं। अन्त में तुम्हें या बुद्धि है क्या चीज ?
 पदार्थों को क्रमशः ऊँची से ऊँची श्रेणी में अन्तर्गुप्त कर अन्त में किसी
 पहुँचाना जिसके ऊपर फिर उसकी प्रति न हो।

तभी मिल सकता है, जब वह अतीत की श्रेणी तक पहुँचानी बाबा की। किसी-किसी
 को लेकर तुम उसका विश्लेषण करते रहो परन्तु अब तक उसे करके
 अन्त तक नहीं पहुँचते अब तक तुम्हें बाधा नहीं मिल सकती और अतीतकालीन
 कहते हैं अस्तित्व केवल इसी अन्त का है और सब माना है, किसीकी कोई-किसी
 सत्ता नहीं। कोई भी अज्ञ वस्तु क्यों न हो उसमें जो अर्थ है, वह नहीं रहता है
 हम नहीं बड़ा है और नामक्य आदि विषयों में सब माना है। मन और मन
 तो तुम और हम सब एक हो जायेंगे। तुम्हें इस 'अहम्' (मैं) कर्म को अन्त तक
 जाना चाहिए। प्रायः लोग कहते हैं 'यदि मैं बड़ा हूँ तो वो मेरे को मैं मान, मैं
 मैं क्यों नहीं कर सकता ? नहीं इस कर्म का अन्तहार हृदय ही मन में निहित
 रहा है। जब तुम अपने को अज्ञ समझ रहे हो तो तुम बाबा के अज्ञ, किन्हीं
 कोई अज्ञ नहीं जो अन्तर्गुप्त है, नहीं रहने। यह अन्तर्गुप्त है, अन्तर्गुप्त
 है, यह कुछ भी नहीं बाह्य उसमें कोई कामना नहीं है, यह अन्तर्गुप्त अन्त
 सम्पूर्ण स्वाधीन है। नहीं बड़ा है। अती बह्यत्पन्न में इन सभी एक है।

अतः अतीतकालीन और अतीतकालीन ने यह बड़ा अन्तर्गुप्त होता है। तुम
 देखो कि अन्तर्गुप्त अतीत अतीत अतीत अतीत अतीत अतीत अतीत अतीत अतीत
 अन्त अन्त पर अन्तर्गुप्त का ऐसा अर्थ किता है जो मेरी अन्त में अन्तर्गुप्त नहीं
 अन्तर्गुप्त ने ही अतीत अतीत अन्तर्गुप्त का अर्थ अन्तर्गुप्त है कि यह अन्तर्गुप्त
 ने नहीं आता। इतने बड़ो तक की यह वारणा है कि सब
 त एक ही अन्तर्गुप्त सत्य है, बाबा सब बड़े है।

एक सद्ब्रिप्रा बहुधा वदन्ति—‘सत्ता एक ही है, परन्तु मुनियो ने भिन्न भिन्न नामो से उसका वर्णन किया है।’ और इस अत्यन्त अद्भुत भाव को हमें अब भी दुनिया को देना है। हमारे जातीय जीवन का मूल मंत्र यही है, और एक सद्ब्रिप्रा बहुधा वदन्ति—इस मूल मंत्र को चरितार्थ करने में ही हमारी जाति की समग्र जीवन-समस्या का समाधान है। भारत में कुछ थोड़े से ज्ञानियो के अतिरिक्त, मेरा मतलब है, बहुत कम आध्यात्मिक व्यक्तियों को छोड़कर हम सब सर्वदा ही इस तत्त्व को भूल जाते हैं। हम इस महान् तत्त्व को सदा भूल जाते हैं और तुम देखोगे, अधिकांश पंडित, लगभग ९८ फी सदी, इस मत के पोषक हैं कि या तो द्वैतवाद सत्य है, अथवा विशिष्टाद्वैतवाद अथवा द्वैतवाद, और यदि तुम पांच मिनट के लिए वाराणसी घाम के किसी घाट पर जाकर बैठो, तो तुम्हें मेरी बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा। तुम देखोगे कि इन भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का मत लेकर लोग निरन्तर लड़-झगड़ रहे हैं।

हमारे समाज और पंडितों की ऐसी ही दशा है। इस परिस्थिति में एक ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिनका जीवन उस सामजस्य की व्याख्या था, जो भारत के सभी सम्प्रदायों का आधारस्वरूप था और जिसको उन्होंने कार्यरूप में परिणत कर दिखाया। इस महापुरुष से मेरा मतलब श्री रामकृष्ण परमहंस से है। उनके जीवन से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये दोनों मत आवश्यक हैं। ये गणितज्योतिष के भूकेन्द्रिक और सूर्यकेन्द्रिक मतों की तरह हैं। जब बालक को ज्योतिष की शिक्षा दी जाती है, तब उसे भूकेन्द्रिक मत ही पहले सिखलाया जाता है और वह ज्योतिर्विज्ञान के प्रश्नों को भूकेन्द्रिक सिद्धान्त पर घटित करता है। परन्तु जब वह ज्योतिष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों का अध्ययन करता है, तब सूर्यकेन्द्रिक मत की शिक्षा उसके लिए आवश्यक हो जाती है। एव वह पहले से और अच्छी समझता है। पंचेन्द्रियों में फँसा हुआ जीव स्वभावतः द्वैतवादी होता है। जब तक हम पंचेन्द्रियों में पड़े हैं, तब तक हम सगुण ईश्वर ही देख सकते हैं—सगुण ईश्वर के सिवा और दूसरा भाव हम नहीं देख सकते। हम ससार को ठीक इसी रूप में देखेंगे। रामानुज कहते हैं, “जब तक तुम अपने को देह, मन या जीव सोचोगे तब तक तुम्हारे ज्ञान की हर एक क्रिया में जीव, जगत् और इन दोनों के कारणस्वरूप वस्तुविशेष का ज्ञान रहेगा।” परन्तु मनुष्य के जीवन में ऐसा भी समय आता है, जब शरीर-ज्ञान विलकुल चला जाता है, जब मन भी क्रमशः सूक्ष्मानुसूक्ष्म होता हुआ प्रायः अन्तर्हित हो जाता है, जब देहबुद्धि में डाल देनेवाली भावना, भीति और दुर्बलता सभी मिट जाते हैं। तभी—केवल तभी उस प्राचीन महान् उपदेश की मृत्युता ममक्ष में आती है। वह उपदेश क्या है?

इहैव तैर्विदुः सर्वो देवां काल्ये
निर्वोक्तं हि सर्वं ब्रह्म सत्त्वान् ब्रह्मणि वै

(

—'ब्रह्मका मूल साम्यभाव में अवस्थित है, ऊर्ध्वनि नहीं
ब्रह्म को जीत किया है। चूंकि ब्रह्म निर्वोक्त और सर्वत्र सम है,
में अवस्थित है।

सर्वं परब्रह्म हि सर्वत्र समवस्थितब्रह्मण्यम् ।
न ह्यन्यत्त्वब्रह्मण्यत्त्वं ततो वापि यदा परीक्ष्यते
(गीता १५।१८)

—'सर्वत्र ईश्वर को सम भाव से सर्वत्र अवस्थित देखते हुए वे ब्रह्म
की हिंसा नहीं करते अतः परम भक्ति को प्राप्त होते हैं।

अल्मोड़ा-अभिनन्दन का उत्तर

स्वामी जी के अल्मोड़ा पहुँचने पर वहाँ की जनता ने उन्हें निम्नलिखित मान-पत्र भेंट किया

महात्मन्,

जिस समय से हम अल्मोड़ा-निवासियो ने यह सुना कि पाश्चात्य देशो मे आध्यात्मिक दिग्विजय के पश्चात् आप इंग्लैण्ड से अपनी मातृभूमि भारत फिर वापस आ रहे हैं, उस समय से हम सब आपके दर्शन करने को स्वभावत बडे लालायित थे, और सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कृपा से आखिर आज वह शुभ घडी आ गयी। भक्तशिरोमणि कविसम्राट् तुलसीदास ने कहा भी है, जापर जाकर सत्य सनेह, सो तेहि मिलहि न कछु सन्देह। और वही आज चरितार्थ भी हो गया। आज हम सब परम श्रद्धा तथा भक्ति से आपका स्वागत करने को यहाँ एकत्र हुए हैं और हमे हर्ष है कि इस नगर मे अनेक कष्ट उठाकर एक वार^१ फिर पधारकर आपने हम सब पर बडी कृपा की है। आपकी इस कृपा के लिए घन्यवाद देने को हमारे पास शब्द भी नही हैं। महाराज, आप घन्य हैं और आपके वे पूज्य गुरुदेव भी घन्य हैं, जिन्होंने आपको योगमार्ग की दीक्षा दी। यह भारत-भूमि घन्य है, जहाँ इस भयावह कलियुग मे भी आप जैसे आर्यवशियो के नेता विद्यमान हैं। आपने अति अल्पावस्था मे ही अपनी सरलता, निष्कपटता, महच्चरित्र, सर्वभूतानुकम्पा, कठोर साधना, आचरण और ज्ञानोपदेश की चेष्टा द्वारा समस्त ससार मे अक्षय यश लाम किया है और उस पर हमे गर्व है।

यदि सच पूछा जाय तो आपने वह कठिन कार्य कर दिखाया है, जिसका बीडा इस देश मे श्री शकराचार्य के समय से फिर किसीने नही उठाया। क्या हम मे से किसीने कभी यह स्वप्न मे भी आशा की थी कि प्राचीन भारतीय आर्यों की एक सन्तान केवल अपनी तपस्या के बल पर इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के विद्वान् लोगो को यह सिद्ध कर दिखायेगी कि प्राचीन हिन्दू धर्म अन्य सब धर्मों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिकागो की विश्व-धर्म-महासभा मे ससार के विभिन्न धर्म-प्रतिनिधियो के

१ पाश्चात्य देशो मे जाने से अनेक वर्ष पहले हिमालय-भ्रमणकाल मे स्वामी जी यहाँ पघारे थे।

सम्मुख तो वहाँ एक के बापके भारतीय जनतन्त्र बर्ष से सिद्ध कर दिखानी कि उन सबकी जाँचें बूझ बनीं। उन विद्वानों ने अपने अपने बर्ष की खेप्टता अपने अपने ढंग से खुद-बाप उन सबसे बापे निकल बने। बापने वह पूर्व कब से निकल बर्ष का मुकाबका संसार का कोई भी बर्ष नहीं कर सकल बरन् उपर्युक्त महाद्वीपों के निज भिन्न स्वार्थों पर वैदिक ज्ञान-बापने वहाँ के बहुत से विद्वानों का ध्यान प्राचीन ज्ञान-बर्ष उन्त आकषित कर दिया। इन्हीं में भी बापने प्राचीन हिन्दू बर्ष का कर दिया है जिसका अर्थ वहाँ से इतना अस्मय है।

आज तक यूरोप तथा अमेरिका के आधुनिक ज्ञान उन्त हकीरे स्वस्व से निरालत जगन्निष्ठ के परन्तु बापने अपनी आध्यात्मिकता से उनकी जाँचें खोज दीं और उन्हें आज यह साक्ष्य हो गया है कि वे बर्ष जिसे वे अज्ञानवास 'पाश्चिमीयों की रूढ़ियों का बर्ष बचना केवल पोषों का डेर' ही समझा करते थे अतः हीरों की जान है। अन्तु

बरनेकी कुची पुची न च मुर्खकालवधि।

एकककककककको इच्छि न च कककककककककक ॥

७

—'तीं मुर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक ही कुची पुत्र अच्छ है एक ही कककक ककककक का विनाश करता है तात्पर्य नहीं। अतः में बाप वीरे बापु तथा पार्थिवपुत्र का जीवन ही संसार के लिए कल्याणकर है और बापु तथा वीरे के लिये ही वृद्धि तथा में बाप वीरे पुत्रात्वा लक्ष्मणों से ही उत्पत्ता निकली है। वीरे की आज तक कितने ही जीवन समूह के इस पार से सब पार बटके हैं, परन्तु केवल बापने ही अपनी पूर्व मुक्ति के बल से हमारे इस प्राचीन हिन्दू बर्ष की अज्ञानता समूह के पार अन्व वैश्व में सिद्ध कर दिखानी। जगत्ता बापु कर्मका बापने मानव जाति को आध्यात्मिकता का ज्ञान कराना ही अपने जीवन का जीवन काव्य किया है और पार्थिव ज्ञान का उपदेश देने के लिए बाप वीरे ही उत्पन्न हैं।

हमें यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहाँ हिमाचल की पर्वत में बापका निकल एक मठ स्थापित करने का है और हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि बापका यह ज्ञान लक्ष्य हो। मकराचार्य ने भी अपनी आध्यात्मिक विनिश्चय के कल्यात् बापु के प्राचीन हिन्दू बर्ष के उल्लेख हिमाचल में अरिकाचल में एक मठ स्थापित किया था। इसी प्रकार यदि बापकी भी इच्छा पूर्ण हो बाप ती उन्तै तारकबर्ष का बड़ा श्रेष्ठ होता। इस मठ के स्थापित हो जाने से इस पुनर्जात विचारधारा की बड़ा

आध्यात्मिक लाभ होगा और फिर हम इम बात का पूरा यत्न करेंगे कि हमारा प्राचीन धर्म हमारे बीच में से धीरे धीरे लुप्त न हो जाय।

आदि काल से भारतवर्ष का यह प्रदेश तपस्या की भूमि रहा है। भारतवर्ष के वडे वडे ऋषियों ने अपना समय इसी स्थान पर तपस्या तथा साधना में बिताया है, परन्तु वह तो अब पुरानी बात हो गयी और हमें पूर्ण विश्वास है कि यहाँ मठ की स्थापना करके कृपया आप हमें उसका फिर अनुभव करा देंगे। यही वह पुण्य-भूमि है जो भारतवर्ष भर में पवित्र मानी जाती थी तथा यही सच्चे धर्म, कर्म, साधना तथा सत्य का क्षेत्र था, यद्यपि आज समय के प्रभाव से वे सब बातें नष्ट होती जा रही हैं। और हमें विश्वास है कि आपके शुभ प्रयत्नों द्वारा यह प्रदेश फिर प्राचीन धार्मिक क्षेत्र में परिणत हो जायगा।

महाराज, हम शब्दों द्वारा प्रकट नहीं कर सकते कि आपके यहाँ पधारने से हमको कितना हर्ष हुआ है। ईश्वर आपको चिरजीवी करे, आपको पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करे तथा आपका जीवन परोपकारी हो। आपकी आध्यात्मिक शक्तियों की उत्तरोत्तर उन्नति हो, जिससे आपके प्रयत्नों द्वारा भारतवर्ष की इस दुरवस्था का शीघ्र ही अन्त हो जाय।

लाला बदरी शा की ओर से पंडित हरिनाम पाडे ने और एक मानपत्र पढा। एक अन्य पंडित जी ने भी इस अवसर पर एक सस्कृत मानपत्र पढा। जितने दिन स्वामी जी अल्मोडे में थे, उतने दिन वे शा जी के यहाँ अतिथि के रूप में रहे थे।

स्वामी जी ने मानपत्रों का निम्नलिखित उत्तर दिया

स्वामी जी का भाषण

यह स्थान हमारे पूर्वजों के स्वप्न का देश है, जिसमें भारत जननी श्री पार्वती जी ने जन्म लिया था। यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्य-पिपासु व्यक्ति अपने जीवन-काल के अन्तिम दिन व्यतीत करना चाहता है। इसी दिव्य स्थान के पहाड़ों की चोटियों पर, इसकी गुफाओं के भीतर तथा इसके कल-कल बहनेवाले झरनों के तट पर महर्षियों ने अनेकानेक गूढ भावों तथा विचारों को सोच निकाला है, उनका मनन किया है। और आज हम देखते हैं कि उन विचारों का केवल एक अंश ही इतना महान् है कि उस पर विदेशी तक मुग्ध हैं तथा समार के घुरघुर विद्वानों एवं मनीषियों ने उसे अतुलनीय कहा है। यह वही स्थान है, जहाँ मैं वचन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ और जैसा तुम सब जानते हो मैंने कितनी ही बार इस बात की चेष्टा की है कि मैं यहाँ रह सकूँ। परन्तु उपयुक्त समय के न आने से, तथा मेरे सम्मुख बहुत सा कार्य

होने के कारण मैं इस पवित्र स्थान से चला
कि मैं अपने जीवन के बीच निरंतर इसी विचारों में
अनेक क्षण रह चुके हैं, यहाँ जीवन का कर्म कर्म
मैं यह सब उस क्षण से अब न कर

मेरी किस्ती इच्छा है कि मैं पूर्ण शक्ति में तथा निरंतर
रहूँ—लेकिन ही इतनी मात्रा करके है तथा मैं प्रतीक
भी करता हूँ कि संसार के कर्म उन स्थानों को छोड़
नहीं सकती हूँ।

इस पवित्र प्रवेश के निवासी कर्मजो, तुम लोगों के मेरे
हुए छोटे से काम के लिए कृपापूर्वक जो प्रार्थनापूर्वक कर्म
तुम्हें अनेकानेक कर्मनाश देता हूँ। परन्तु इस समय मेरा कर्म
किन्ती शेष के कर्म के सम्बन्ध में कुछ भी करना नहीं चाहता। यहाँ
की विचारों की एक बोली के बाद दूसरी बोली मेरी शक्ति के
मेरी काम करने की समस्त इच्छाएँ तथा भाव भी मेरे
हुए से बीरे बीरे शान्त से हीने कने बीरे इस निरंतर पर
कि क्या कर्म हुआ है तथा भविष्य में क्या कर्म होना मेरा कर्म
शास्त्र भाव की ओर शिष्ट तथा निरंतर शिष्टा हीने विचारों के
से देता रहा है, जो इस स्थान के वातावरण में ही प्रतिबन्धित ही रहे हैं, यहाँ
विचारों निवाश में भाव भी यहाँ की कर्मनाशालिनी परिस्थानों में कर्मजो, बीरे
यह भाव है—स्वाम।

तब कस्तु भवामिच्छा शक्ति तुम्हें बीरान्तेवाशकम्—इस संसार में अनेक
कस्तु में प्रथम भरा है यह सब कर्म बीरान्ते से ही दूर हो सकता है, इतने कस्तु
निर्मल हो सकता है। कस्तुज यह बीरान्ते का ही स्थान है। निरंतर, यह कर्म
नमन भी कम है तथा परिस्थिति भी देनी नहीं है कि मैं तुम्हारे कर्म कर्म कर्म
कर नहीं। कस्तुज में यही कहकर अपना भाव्य समाप्त करता हूँ कि निरंतर
हिमान्ते बीरान्ते एवं स्वाम के मूलक है तथा यह कर्मोत्पन्न शिष्ट, जो हम कर्मजो
को नहीं देने रहेंगे स्वाम ही है। किन्तु प्रकार हमारे पूर्वक अपने जीवन के कर्मजो
के इस हिमान्ते पर निरंतर हुए कर्म ज्ञानों के अनी प्रकार भविष्य में तुम्हें कर ही
अभिव्यक्तानी शान्ताएँ इन विचारों की ओर अन्तर्निष्ठ हीकर कर्म कर्मजो
यह उन कर्म हीना अब कि शिष्ट शिष्ट कर्मजो के कर्म के कर्मोत्पन्न
नहीं किने शान्ति अब शान्ति कर्मजो के कर्मजो का बीरान्ते
यह हमारे बीरे तुम्हारे कर्म कर्मजो कर्मोत्पन्न

मनुष्य मात्र यह समझ लेगा कि केवल एक ही चिरन्तन धर्म है और वह है स्वयं में परमेश्वर की अनुभूति, और शेष जो कुछ है वह सब व्यर्थ है। यह जानकर अनेक व्यग्र आत्माएँ यहाँ आयेंगी कि यह ससार एक महा धोखे की टट्टी है, यहाँ सब कुछ मिथ्या है और यदि कुछ सत्य है तो वह है ईश्वर की उपासना—केवल ईश्वर की उपासनाएँ।

मित्रो, यह तुम्हारी कृपा है कि तुमने मेरे एक विचार का जिक्र किया है और मेरा वह विचार इस स्थान पर एक आश्रम स्थापित करने का है। मैंने शायद तुम लोगो को यह बात काफी स्पष्ट रूप से समझा दी है कि यहाँ पर आश्रम की स्थापना क्यों की जाय तथा ससार में अन्य सब स्थानो को छोड़कर मैंने इसी स्थान को क्यों चुना है, जहाँ से इस विश्वधर्म की शिक्षा का प्रसार हो सके। कारण स्पष्ट ही है कि इन पर्वतश्रेणियों के साथ हमारी हिन्दू जाति की सर्वोत्तम स्मृतियाँ सबद्ध हैं। यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक् कर दिया जाय तो शेष बहुत कम रह जायगा। अतएव यही पर एक केन्द्र होना चाहिए—जो कर्मप्रधान न हो, वरन् शान्ति का हो, ध्यान-धारण का हो, और मुझे पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन ऐसा अवश्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि तुम लोगो से फिर और कभी मिलूंगा जब तुमसे वार्तालाप का इससे अच्छा अवसर होगा। अभी मैं इतना ही कहता हूँ कि तुमने मेरे प्रति जो प्रेमभाव दिखलाया है, उसके लिए मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ और मैं यह मानता हूँ कि तुमने यह प्रेम तथा कृपा मुझ व्यक्ति के प्रति नहीं दिखायी है, वरन् एक ऐसे के प्रति दिखायी है जो हमारे प्राचीन हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि है। हमारे इस धर्म की भावना हमारे हृदयो में सदैव बनी रहे। ईश्वर करे, हम सब सदैव ऐसे ही शुद्ध बने रहें, जैसे हम इस समय हैं तथा हमारे हृदयो में आध्यात्मिकता के लिए उत्साह भी सदैव इतना ही तीव्र रहे।

वैदिक उपदेश तार्किक और

जब स्वामी जी के मनोद्वेष में उदरने की अवधि

उनके वहाँ के मित्रों ने उनसे प्रार्थना की कि आप इतना एक स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना पर विचार कर उन्हें अपनी भाषा में व्याख्यान देने का उनका यह बहका ही बन्दर था। धीरे धीरे बातमा कुछ किया परन्तु बीज ही अपने विषय पर ही बैर में उन्होंने यह अनुभव किया कि जैसे जैसे वे बीजों पर उपनृत सब तथा वाप्य निकलते जाते थे। वहाँ पर कुछ सायब यह अनुमान करते थे कि हिन्दी भाषा में व्याख्यान देने की कठिनाई पड़ती है कहने लगे कि इस व्याख्यान में स्वामी जी की पूर्ण और सम्भवतः यह अपने हँस का बहिर्गीत था। उनके व्याख्यान में अविद्वत प्रयोग से यह भी सिद्ध हो गया कि कस्तूर-कण की विद्या में स्वामी जी स्वप्नातीत सम्माननाएँ हैं।

स्वामी जी ने और एक वाक्य इतिहास मध्य में बनेषी में भी किया था। स्वामी के अल्पस के गुरबा रेजिमेन्ट के कर्नल पुली। उस वाक्य का विषय 'वैदिक उपदेश तार्किक और व्यावहारिक विस्तार साठस इस प्रकार है: पहले स्वामी जी ने इस बात का ऐतिहासिक वर्णन किया कि किसी बंगाली वादि में उसके ईश्वर की उपासना किस प्रकार बढ़ती है तथा वह वादि जो कौन कौन जातियों को पीजती जाती है, उस ईश्वर की उपासना भी फैलती जाती है। इसके बाद उन्होंने शेषों के रूप विशेषताओं तथा उनकी किस्मों का वर्णन किया और फिर आत्मा के विषय पर कुछ प्रकाश डाला। इस किस्मिके में पाश्चात्य प्रजाकी से तुलना करते हुए उन्होंने बतलाया कि वह प्रजाकी वादिक तथा मीकिक महत्त्व के रूखों का उत्तर बाह्य जगत् में होने की चेष्टा करती है जब कि प्राच्य प्रजाकी इन सब बातों का समाधान बाह्य जगत् में न करके उसे अपनी अन्तरात्मा से ही ईद निकालने की चेष्टा करती है। उन्होंने इस बात का ठीक ही बतलाया कि हिन्दू वादि को ही इस बात का बीरव है कि केवल उसीने अंत विरोधन प्रजाकी की सोच निकाला और वह अपने वह वादि की अपनी चीज तथा विशेषता है। उनी वादि ने मल्ल

की अमूल्य निधि भी दी है जो उसी प्रणाली का फल है। स्वभावतः इस विषय के बाद, जो किसी भी हिन्दू को अत्यन्त प्रिय है, स्वामी जी आध्यात्मिक गुरु होने के नाते उस समय मानो आध्यात्मिकता के शिखर पर ही पहुँच गये, जब वे आत्मा तथा ईश्वर के सम्बन्ध की चर्चा करने लगे, जब यह दर्शाने लगे कि आत्मा ईश्वर से एकरूप हो जाने के लिए कितनी लालायित रहती है तथा अन्त में किस प्रकार ईश्वर के साथ एकरूप हो जाती है। और कुछ समय के लिए सचमुच ऐसा ही भास हुआ कि वक्ता, वे शब्द, श्रोतागण तथा सभी को अभिभूत करनेवाली भावना मानो सब एकरूप हो गये हो। ऐसा कुछ भान ही नहीं रह गया कि 'मैं' या 'तू' अथवा 'मेरा' या 'तेरा' कोई चीज़ है। छोटी छोटी टोलियाँ जो उस समय वहाँ एकत्र हुई थी, कुछ समय के लिए अपने अलग अलग अस्तित्व को भूल गयीं तथा उस महान् आचार्य के श्रीमुख से निकले हुए शब्दों द्वारा प्रचंड आध्यात्मिक तेज में एकरूप हो गयीं, वे सब मानो मन्त्रमुग्ध से रह गये।

जिन लोगों को स्वामी जी के भाषण सुनने का बहुधा अवसर प्राप्त हुआ है, उन्हें इस प्रकार के अन्य कई अवसरों का भी स्मरण ही आयेगा, जब वे वास्तव में जिज्ञासु तथा ध्यानमग्न श्रोताओं के सम्मुख भाषण देने वाले स्वयं स्वामी विवेकानन्द नहीं रह जाते थे, श्रोताओं के सब प्रकार के भेद-भाव तथा व्यक्तित्व विलुप्त हो जाते थे, नाम और रूप नष्ट हो जाते थे तथा केवल वह सर्वव्यापी आत्म-तत्त्व रह जाता था, जिसमें श्रोता, वक्ता तथा उच्चारित शब्द बस एकरूप होकर रह जाते थे।

मक्ति

(सियाल्कोट में दिया हुआ वाक्य)

पंजाब तथा काश्मीर से निर्गम्य विक्रम पर स्वामी की भाषा की। काश्मीर में वे एक ज़मीने से स्वामी कर्म कर रहे गेरेस तथा उनके भाइयों ने स्वामी की के कर्म की कड़ी उपस्थिति में कुछ दिनों तक नयी रावकपिडी और बम्बू में रहे, कहीं कहीं भी स्वामी का स्वागत किया। फिर वह सियाल्कोट बसे और कहीं कहीं भी स्वामी का एक स्वागत करनेवाले में था और एक हिन्दी में। हिन्दी स्वागत करनेवाले का 'भक्ति' विचार संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है

संसार में कितने बर्म हैं उनकी उपासना प्रथाओं में विभिन्न होते हुए भी वे बस्तुतः एक ही हैं। किसी किसी स्वाम पर जोर नभियों का निर्माण करने में उपासना करते हैं, कुछ लोग अग्नि की उपासना करते हैं किसी किसी देवता में लोभ भक्ति-भूषा करते हैं तथा कितने ही वाक्सी ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास नहीं करते। वे सब ठीक हैं। इन सबमें प्रथम विभिन्नता विद्यमान है, किन्तु सभी प्रत्येक बर्म के सार, उनके मूल तथ्य उनके वास्तविक स्वत्व के अन्तर विचार कर देखें तो वे सर्वथा अभिन्न हैं। इस प्रकार के भी बर्म हैं जो ईश्वरोपासना की आवश्यकता ही नहीं स्वीकार करते। यही वसा वे ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं मानते। किन्तु तुम देखोगे वे सभी बर्मात्मन्वी साधु-सहासियों की ईश्वर की कर्म उपासना करते हैं। यही बर्म इस बात का अस्तेवनीय उदाहरण हैं। भक्ति सभी बर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का वाक्य है। सभी कहा इस भक्ति-रूप उपासना का सर्वोपरि प्रभाव देखा जाता है। ज्ञान-काय की अपेक्षा भक्ति-साधन करता सहज है। ज्ञान-साधन करने में अतिव्यय और अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। शरीर सर्वथा स्वस्थ एवं रोजभूत न होने से तथा मन सर्वथा विषयो से अनासक्त न होने से योग का वाक्य नहीं किया जा सकता किन्तु सभी बर्मात्मन्वी के जोर कड़ी उपस्थिति से भक्ति साधना कर सकते हैं। भक्तिमार्ग के साधार्थ साधित्व शक्ति में मन्त्र है कि ईश्वर के प्रीत अतिव्यय अनुपात को मत्तव्य कहते हैं। प्रज्ञापन की 'श्री' मन्त्र 'श्री' है, यदि किसी व्यक्ति को एक दिन योग्य न मिले तो उसे अनुकूल ही नहीं, अनासक्त की मूल्य होने पर उसको कड़ी उपस्थिति होती है। जो

उनके भी प्राण भगवान् के विरह में इसी प्रकार छटपटाते हैं। भक्ति में यह बड़ा गुण है कि उसके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है और परमेश्वर के प्रति दृढ़ भक्ति होने से केवल उसीके द्वारा चित्त शुद्ध हो जाता है। नाम्नामकारि ब्रह्मवा निजसर्व-शक्ति '—'हे भगवन् तुम्हारे असख्य नाम हैं और तुम्हारे प्रत्येक नाम में तुम्हारी अनन्त शक्ति वर्तमान है।' और प्रत्येक नाम में गम्भीर अर्थ गर्भित है। तुम्हारे नाम उच्चारण करने के लिए स्थान, काल आदि किसी भी चीज का विचार करना आवश्यक नहीं। हमें सदा मन में ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए और इसके लिए स्थान, काल का विचार नहीं करना चाहिए।

ईश्वर विभिन्न साधकों के द्वारा विभिन्न नामों से उपासित होते हैं, किन्तु यह भेद केवल दृष्टिमात्र का है, वास्तव में कोई भेद नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं कि हमारी ही साधना-प्रणाली अधिक कार्यकारी है, और दूसरे अपनी साधना-प्रणाली को ही मुक्ति पाने का अधिक सक्षम उपाय बताते हैं। किन्तु यदि दोनों की ही मूल भित्ति का अनुसन्धान किया जाय तो पता चलेगा कि दोनों ही एक हैं। शैव शिव को ही मन्वापेक्षा अधिक शक्तिशाली समझते हैं। वैष्णव विष्णु को ही सर्वशक्तिमान मानते हैं, देवी के उपासकों के लिए देवी ही जगत् में सबसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। प्रत्येक उपासक अपने सिद्धान्त की अपेक्षा और किसी बात का विश्वास ही नहीं करता, किन्तु यदि मनुष्य को स्थायी भक्ति की उपलब्धि करनी है तो उसे यह द्वेष-बुद्धि छोड़नी ही होगी। द्वेष भक्ति-पथ में बड़ा बाधक है—जो मनुष्य उसे छोड़ सकेगा, वही ईश्वर को पा सकेगा। तब भी इष्ट-निष्ठा विशेष रूप से आवश्यक है। भक्तश्रेष्ठ हनुमान ने कहा है

श्रीनाथे जानकीनाथे अभेद परमात्मनि ।

तथापि मम सर्वस्व राम कमललोचन ॥

—'मैं जानता हूँ, जो परमात्मा लक्ष्मीपति हैं, वे ही जानकीपति हैं, तथापि कमललोचन राम ही मेरे सर्वस्व हैं।' प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव जन्म से ही औरों से भिन्न होता है और वह तो उसके साथ बना ही रहेगा। समस्त ससार किसी समय एक धर्मावलम्बी नहीं हो सकता, इसका मुख्य कारण यही भावों में विभिन्नता है। ईश्वर करे, ससार कभी भी एक धर्मावलम्बी न हो। यदि कभी ऐसा हो जाय तो ससार का सामजस्य नष्ट होकर विशृंखलता आ जायगी। अस्तु, मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसरण करना चाहिए। यदि मनुष्य को ऐसे गुरु मिल

जार्ज जो उसको उसीके भावानुरूप मार्ग पर बख्तर मनुष्य उन्नति करने में समर्थ होया। उसको ऊर्ध्व चार्जी करनी होनी। जो व्यक्ति जिस पत्र पर चक्रे की चक्रे देना चाहिए किन्तु यदि इन उसे दूसरे मार्ग पर वह उसके पास जो कुछ है, उसे भी छोड़ देना वह किसी जिस मति एक मनुष्य का चेहरा दूसरे के चेहरे से भिन्न होता मनुष्य की प्रकृति दूसरे की प्रकृति से भिन्न होती है। किसी प्रकृति के ही अनुसार चक्रे देने में क्या आपत्ति है? एक बच्चे है—यदि उसके बहान को ठीक कर नहीं की कभी बारा अधिक तेज हो जायमी और मेव बड़ जायना। किन्तु यदि की विद्या को बखर कर उसे दूसरी विद्या में प्रवाहित करनी न तो तुम यह परिचाम देखोये कि उसका परिमाण बीच हो जायना नी कम हो जायना। यह बीच एक बड़े महत्त्व की बीच है। उक्त ही भाव के अनुसार ही चक्रे देना चाहिए। भारत में विभिन्न बर्गों के कर्मों में नहीं वा बरन् प्रत्येक बर्ग स्वाधीन भाव से अपना काम करता है, यहाँ अभी तक प्रकृत बर्गभाव बना है। इस स्थान पर यह बात की जाननी होगी कि विभिन्न बर्गों में तब विरोध उत्पन्न होता है, जब मनुष्य यह विचार करता है कि सत्य का मूल मने ही पास है और जो मनुष्य मूल सत्य विचार करता वह भूर्त्स है और दूसरा व्यक्ति सोचता है कि मनुष्य व्यक्ति ही है, क्योंकि अगर वह ऐसा न होता तो मेरा अनुभवम करता।

यदि ईस्वर की यह इच्छा होती कि सभी लोग एक ही बर्ग का व्यवहार करें तो इतने विभिन्न बर्गों की उत्पत्ति क्यों होती? सब लोगों की एक वर्गीकरण बनाने के लिए अनेक प्रकार के कर्मों और चेष्टाएँ हुई किन्तु इसके कोई फल नहीं हुआ। तबबार के खोर से जिस स्थान पर लोगों की एक वर्गीकरण बनाने की चेष्टा की गयी वहाँ भी एक की जगह बस बर्गों की उत्पत्ति हो गयी—इसलिए इस बात का प्रमाण है। समस्त संसार में सबके अनुकूल एक बर्ग नहीं हो सकता। किन्ता तथा प्रतिक्रिया इन दो शक्तियों से मनुष्य मलमलील हुआ है। यदि इन शक्तियों का प्रयोग मन पर न होता तो मनुष्य कुछ सोच ही न सकता करता ही क्यों वह मनुष्य ही न कहा जा सकता। मनुष्य मलमलील प्राणी है, वह मनुष्य ही। मनु मनु के मनुष्य ऊपर करता है मनुष्य ऊपर का बर्ग है मलमलील। मलमलीलता की शक्ति के साथ ही धामे पर मनुष्य और एक साधारण पशु में कोई अंतर न रहे जायना। ऐसे व्यक्ति को देखकर सबके हृदय में गुना का उदक होता।

ईश्वर करे, भारतवर्ष में कभी ऐसी अवस्था न उत्पन्न हो। अतः मनुष्यत्व कायम रखने के लिए एकत्व में अनेकत्व की आवश्यकता है। सभी विषयों में इस अनेकत्व या विविधता की आवश्यकता है, कारण जितने दिन यह अनेकत्व रहेगा, उतने ही दिन जगत् का अस्तित्व भी रहेगा। अवश्य ही अनेकत्व या विविधता कहने से केवल यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि उनमें छोटे-बड़े का अन्तर है। परन्तु यदि सब जीवन के अपने-अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते रहें, तब भी विविधता वैसे ही बनी रहेगी। सभी धर्मों में अच्छे-अच्छे लोग हैं, इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अतएव किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है—जो धर्म अन्याय की पुष्टि करे, क्या उस धर्म के प्रति भी सम्मान दिखाना होगा? अवश्य ही इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है? ऐसे धर्म को जितनी जल्दी दूर किया जा सके उतना ही अच्छा है, कारण उससे लोगों का अमंगल ही होगा। नैतिकता के ऊपर ही सब धर्मों की मिति प्रतिष्ठित है, सदाचार को धर्म की अपेक्षा भी उच्च स्थान देना होगा। यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिए कि आचार का अर्थ बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि से है। जल तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त वस्तुओं के प्रयोग से शरीर-शुद्धि हो सकती है, आम्मान्तर शुद्धि के लिए मिथ्या भाषण, सुरापान एवं अन्य गंभीर कार्यों का त्याग करना होगा। साथ ही परोपकार भी करना होगा। केवल भ्रष्टपान, चोरी, जुआ, झूठ बोलना आदि असत् कार्यों के त्याग से ही काम न चलेगा। इतना तो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इतना करने से मनुष्य किसी प्रशंसा का पात्र न हो सकेगा। अपने कर्तव्य-पालन के साथ साथ दूसरों की कुछ सेवा भी करनी चाहिए। जैसे तुम आत्मकल्याण करते हो, वैसे दूसरों का भी अवश्य कल्याण करो।

अब मैं भोजन के नियम के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूँ। इस समय भोजन की समस्त प्राचीन विधियों का लोप हो गया है। लोगों में एक यही धारणा विद्यमान है कि 'इनके साथ मत खाओ, उनके साथ मत खाओ।' सैंकड़ों वर्ष पूर्व भोजन सम्बन्धी जो सुन्दर नियम थे, उनमें आज केवल छुआछूत का नियम ही बचा है। शास्त्र में भोजन के तीन प्रकार के दोष लिखे हैं—(१) जाति दोष—जो खाद्य पदार्थ स्वभाव से ही अशुद्ध हैं, जैसे प्याज, लहसुन आदि। यह जाति-दुष्ट पाद्य हुआ। जो व्यक्ति इन चीजों को अधिक मात्रा में खाता है, उनमें काम-वामना बढ़ती है और वह अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त हो सकता है, जो ईश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में बुरा प्रयत्न है। (२) अन्धे तथा कीड़े-मकोले में

रूपित बाह्य को विमित्तबोध के कृत्य कहते हैं। इस
 लिए ऐसे स्थान में शोचन करना होना भी कुछ
 दोष — दुष्ट व्यक्ति से हुआ हुआ बात पचाई भी तब
 का जब सामने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं।
 यदि वह व्यक्ति सम्पत् एवं कुकर्मी हो तो उसके हान्य का
 इस समय हम सब बातों

तो शिर्षक इसी बात का हूठ नीचूर है कि जैसी है जैसी
 हान्य का हुआ न बालेन जाहे वह व्यक्ति कितना ही अपवित्र
 आचरण का क्यों न हो। इन सब नियमों की कित्त मति उल्लेख होती है, **कर्मणो यथा**
प्रमाणं किती ह्युपाई की हुकाम पर बाकर देखने के मित्त वाचनः। किन्तु **शोच**
कि मनिखनौ सब ओर नगभनानी हुई सब चीजों पर वैखी है, उल्लेख
उड़कर मिठारी के ऊपर पड़ती है और हुकमाई के कनई कनिच वाचन
है। क्यों नहीं सब कडीबनेकाने मिककर कहते कि हुकाम में वाचन
हम शोच मिठारी न कडीबने। ऐसा करने से मनिखनौ बात कसने पर
एवं अपने साब हुआ तथा अन्त्या संक्रमक बीमारियों के बीमार
शोचन के निबनों में हमें सुचार करना चाहिए, किन्तु हम उचित न कर
के मार्ग की ही ओर क्रमशः अग्रसर हुए हैं। मनुस्मृति में लिखा है, जब
न चाहिए, किन्तु हम नरिबों में हर प्रकार का मीका पेंकते हैं। इस सब
विबेचना करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य चीज की विवेक
है। शास्त्रकार भी इस बात को जली मति चाहते थे। किन्तु हम समय का
पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य कुत्त ही नवा है इस समय
बाबन्धर मात्र वैच है। चोरों सम्पत्तों मठबाली अपपवित्रों को हम शोच कनई
पाति-बन्धु स्वीकार कर लेते किन्तु यदि एक उच्च भारतीय मनुष्य किसी शीघ्र
बातीय व्यक्ति के साथ जो उल्लेख समान सम्माननीय है, उठकर खाने,
तो वह पाति कुत्त कर दिया जानता और फिर वह सब के लिए पवित्र
मान किया जायगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए विनाशकारी किन्तु हुई
अस्तु, वह स्पष्ट समान सेना चाहिए कि पापी के उल्लेख से पाप और शत्रु के
सर्वर्ष से साबुता जाती है और अस्तु सर्वर्ष का दूर के परिहार कलन ही
शीघ्र है।

माध्यमिक बुद्धि कही अधिक पुस्तक कर्मी है। वाचनकर्मण्य बुद्धि के
 लिए सब बातन निर्बल विपन्न और अवाचकत व्यक्तियों की
 जानसकता है। किन्तु क्या हम सर्वथा उच्च शोचते हैं?
 १

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी बनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनवन्दु' आदि बड़े बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनवन्दु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्त्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किमी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय दूतों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरो-फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय कावे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

रूपित बाहार को निमित्तबोध से मुक्त करते हैं। इस

लिए ऐसे स्वान में मोक्ष करना होना जो स्व

बोध — बुद्ध व्यक्ति से हुआ हुआ बात पदार्थ

का अन्त जाने से मन में अपवित्र भाव पैदा होते हैं।

यदि वह व्यक्ति सम्पत् एवं कुकर्मी हो तो उसके हानि का

इस समय इन सब बातों

तो सिर्फ इसी बात का हठ मौजूब है कि जैसी वे जैसी जाती का न होने के कारण
हानि का हुआ न जाये। चाहे वह व्यक्ति कितना ही अधिक सम्पत्, सम्पत्
आचरण का क्यों न हो। इन सब तिकमों की कितनी शक्ति उभरा होनी है। इसका प्रमाण
प्रमाण किसी हज्जारी की दुकान पर जाकर देखने से मिल सकता है। जिसकी शक्ति
कि मकियाँ सब और भनभनाती हुई सब चीजों पर बैठी है, उनके ऊपर
उड़कर मिठाई के ऊपर पकती है और हज्जारी के अपने सबसे ऊपर उड़ती है।
हम सोच मिठाई न करीयेगे। ऐसा करने से मकियाँ बाह्य पदार्थ पर न बैठी
एवं अपने साथ हुआ तथा अस्वस्थ संश्रमक बीमारियों के बीडानु व उन संश्रमक
मोक्ष के नियमों में हम सुधार करना चाहिए, किन्तु हम उचित व कर-व्यय
के मार्ग की ही ओर अग्रसर हुए हैं। अनुस्मृति में लिखा है, जब मैं पुण्य
न चाहिए, किन्तु हम नदियों में हर प्रकार का मीठा डेकते हैं। इन सब बातों की
विश्लेषणा करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि बाह्य बोध की विशेष आवश्यकता
है। सास्वकार भी इस बात को सही भाँति जानते थे। किन्तु इस समय इन सब
पवित्र-अपवित्र विचारों का प्रकृत उद्देश्य भ्रष्ट हो गया है, इस समय उक्त
बाह्य-मोक्ष माय केव है। जोरों सम्पत्तों मठवालों अपराधियों को इन बोध अपनी
पाठि-अनु स्वीकार कर लेते किन्तु यदि एक उच्च राष्ट्रीय अनुभव किसी भी
राष्ट्रीय व्यक्ति के साथ जो उचित समान सम्माननीय है, उड़कर जाये,
तो वह शक्ति भ्रष्ट कर दिया जायगा और फिर वह तथा के लिए पवित्र
मान लिया जायगा। यह प्रथा हमारे देश के लिए फिलाडेलफी सिद्ध हुई है।
अस्तु, यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि पापी के लक्षण है पाप और पाप के
संसर्ग से शाश्वत जाती है और अल्प संसर्ग का दूर से परिहार करना ही बाह्य
बोध है।

आध्यात्मिक बुद्धि कही अधिक दुस्तर कार्य है। आध्यात्मिक बुद्धि के
लिए सब भावना निर्बल विपन्न और अवाक्यस्त व्यक्तियों की सेवा करनी ही
आवश्यकता है। किन्तु क्या हम उर्वरा उच्च बोधों हैं? अन्तर्गत बुद्धि का

कि कोई मनुष्य अपने किसी काम के लिए किसी धनी व्यक्ति के मकान पर जाता है और उसे 'गरीब परवर,' 'दीनवन्वु' आदि बड़े बड़े विशेषणों से विभूषित करता है, चाहे वह धनी व्यक्ति अपने मकान पर आये हुए किसी गरीब व्यक्ति का गला ही क्यों न काटता हो। अतः ऐसे धनी व्यक्ति को गरीब परवर, दीनवन्वु कहना स्पष्ट झूठ है और हम ऐसी बातें कहकर ही अपने मन को मलिन करते हैं। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक सत्य भाषणादि के द्वारा चित्तशुद्धि करे और बारह वर्ष तक यदि उसके मन में कोई खराब विचार न आये तो वह जो कहेगा, वही सत्य निकलेगा। सत्य में ऐसी ही अमोघ शक्ति है, और जिसने बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि की है वही भक्ति का अधिकारी है। पर भक्ति की विशेषता इस बात में है कि वह स्वयं मन को बहुत शुद्ध कर देती है। यद्यपि यहूदी, मुसलमान तथा ईसाई बाह्य शौच को हिन्दुओं की तरह इतना विशेष महत्त्व नहीं देते, तथापि वे भी किसी न किसी प्रकार से बाह्य शौच का अवलम्बन करते ही हैं—उन्हे भी मालूम हो गया है कि बाह्य शौच की किमी न किसी परिमाण में आवश्यकता है। यद्यपि यहूदियों में मूर्ति-पूजा निषिद्ध थी, पर उनका भी एक मन्दिर था। उस मन्दिर में 'आर्क' नामक एक सन्दूक रखी हुई थी और उस सन्दूक के भीतर 'मूसा के दस ईश्वरादेश' सुरक्षित रखे हुए थे। इस सन्दूक के ऊपर विस्तारित पक्षयुक्त दो स्वर्गीय द्वारों की मूर्तियाँ बनी थी, और उनके ठीक बीच में वे बादल के रूप में ईश्वर के आविर्भाव का दर्शन करते थे। बहुत दिन हुए, यहूदियों का वह प्राचीन मन्दिर नष्ट हो गया, किन्तु उनके नये मन्दिरों की रचना ठीक इसी पुराने ढंग पर हुई है, और इन मन्दिरों में सन्दूक के भीतर धर्म-पुस्तकें रखी हुई हैं। रोमन कैथोलिक और यूनानी ईसाइयों में कुछ रूपों में मूर्ति-पूजा प्रचलित है। वे ईसा की मूर्ति और उनके माता-पिता की मूर्तियों की पूजा करते हैं। प्रोटेस्टेन्टों में मूर्ति-पूजा नहीं है, किन्तु वे भी ईश्वर को व्यक्तिविशेष समझकर उपासना करते हैं। यह भी मूर्ति-पूजा का रूपान्तर मात्र है। पारसियों और ईरानियों में अग्नि-पूजा खूब प्रचलित है। मुसलमान अच्छे अच्छे पीरों-फकीरों की पूजा करते हैं और नमाज के समय कावे की ओर मुँह करते हैं। यह सब देखकर जान पड़ता है कि धर्म-साधना की प्रथमावस्था में मनुष्यों को कुछ बाह्य अवलम्बनों की आवश्यकता पड़ती है। जिस समय मन खूब शुद्ध हो जाता है, उस समय सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों में चित्त एकाग्र करना सम्भव हो सकता है।

'जब जीव ब्रह्म से एकत्व का प्रयत्न करता है, यह सर्वोत्तम है, जब ध्यान का अभ्यास किया जाता है, यह मध्यम कोटि है, जब नाम का

पाप किया जाता है, यह निम्न कोटि है और बाह्य पूजा निम्नातिनिम्न है।^१

किन्तु इस स्थान पर यह जल्दी तरह समझ लेना होगा कि बाह्य पूजा के निम्नातिनिम्न होने पर भी उसमें कोई पाप नहीं है। जो व्यक्ति जैसी उपासना कर सकता है, उसके लिए वही ठीक है। यदि उसे अपने पय से निवृत्त किया गया तो वह अपने कल्याण के लिए, अपने शरीर की शक्ति के लिए दूसरे किसी मार्ग का अवलम्बन करेगा। इसलिए जो मूर्ति-पूजा करते हैं, उनकी निन्दा करना उचित नहीं। वे उन्नति की दिश हीं तक बढ़ चुके हैं, उनके लिए वही आवश्यक है। ज्ञानी जनों को इन सब व्यक्तियों को अग्रसर होने में सहानुता करने का प्रयत्न करना चाहिए, किन्तु उपासना प्रणाली को केकर धराया करने की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग पय और कोई पुत्र की प्राप्ति के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं और अपने को बड़े सागरत समझते हैं किन्तु यह वास्तविक भक्ति नहीं है—वे कोय भी अपने भागवत नहीं हैं। अगर वे सुम हैं कि अमुक स्थान पर एक साधु आमा है और वह ठमि का सोना बनाता है तो वे बर के एक बड़ी एकत्र हो जायेंगे तिस पर भी वे अपने को भागवत कहने में झिजत नहीं होते। पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना की भक्ति नहीं कह सकते जनी होने के लिए ईश्वरोपासना की भक्ति नहीं कह सकते स्वर्ग-काय के लिए ईश्वरोपासना की भक्ति नहीं कह सकते यहाँ तक कि तरक की यंत्रणा से कूटने के लिए की जमी ईश्वरोपासना का भी भक्ति नहीं कह सकते। पय या कोय से कमी भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वे ही अपने भागवत हैं, जो कह सकते हैं— 'हे बगदीश्वर ! मैं जय जय परम सुन्दरी स्त्री जयजा पाधित्य कुछ भी नहीं चाहता। हे ईश्वर ! मैं प्रत्येक जन्म में आपकी बहेतुकी भक्ति चाहता हूँ।' तिस समय यह अवस्था प्राप्त होती है, उस समय मनुष्य सब चीजों में ईश्वर को तथा ईश्वर में सब चीजों को देखने लगता है। उसी समय उसे पूर्ण भक्ति प्राप्त होती है। उसी समय वह बड़ा से केकर कीटाधु तक सभी वस्तुओं में तित्त्व के दर्शन करता है। तभी वह पूरी तरह समझ सकता है कि ईश्वर के अतिरिक्त सत्तार में और कुछ नहीं है और केवल तभी वह अपने को हीम से हीन समझकर यथार्थ भक्त की प्राप्ति ईश्वर

१ उक्तमो ब्रह्मसूत्रमात्रो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।

स्तुतिर्ब्रह्मोऽवमो ज्ञानो बाह्यपूजाभावमात्मतः ॥ महाभारतार्थ दर्शन १७।१५२॥

२ न जने न जने न न सुन्दरी कस्तिया या जयदीय कामये ।

भव जन्मनि जन्मदीयवरे भवताम्भितरहृत्तुकी त्वधि ॥

की उपासना करता है। उस समय उसे बाह्य अनुष्ठान एव तीर्थ-यात्रा आदि की प्रवृत्ति नहीं रह जाती—वह प्रत्येक मनुष्य को ही यथार्थ देवमन्दिरस्वरूप समझता है।

शास्त्रों में भक्ति का नाना प्रकार से वर्णन किया गया है। हम ईश्वर को अपना पिता कहते हैं, इसी प्रकार हम उसे माता आदि भी कहते हैं। हम लोगों में भक्ति की दृढ़ स्थापना के लिए इन सम्बन्धों की कल्पना की गयी है, जिससे हम ईश्वर के अधिक सान्निध्य और प्रेम का अनुभव कर सकें। ये शब्द अत्यन्त प्रेमपूर्ण हैं। सच्चे धार्मिक ईश्वर को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए वे उसे माता-पिता कहे बिना नहीं रह सकते। रासलीला में राधा और कृष्ण की कथा को लो। यह कथा भक्त के यथार्थ भाव को व्यक्त करती है, क्योंकि ससार में स्त्री-पुरुष के प्रेम से अधिक प्रबल कोई दूसरा प्रेम नहीं हो सकता। जहाँ इस प्रकार का प्रबल अनुराग होगा, वहाँ कोई भय, कोई वासना या कोई आसक्ति नहीं रह सकती—केवल एक अच्छे बन्धन दोनों को तन्मय कर देता है। माता-पिता के प्रति सन्तान का जो प्रेम है वह भयमिश्रित है, कारण उनके प्रति उसका श्रद्धा-भाव रहता है। ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं, वह हमारी रक्षा करता है या नहीं, इस सबसे हमारा क्या मतलब है और इसकी हम क्यों चिन्ता करें? वह हम लोगों का प्रियतम, आराध्य देवता है, अतः भय के भाव को छोड़कर हमें उसकी उपासना करनी चाहिए। जिस समय मनुष्य की सब वासनाएँ मिट जाती हैं, जिस समय वह और किसी विषय का चिन्तन नहीं करता, जिस समय वह ईश्वर के लिए पागल हो जाता है, उसी समय मनुष्य ईश्वर से वस्तुतः प्रेम करता है। सासारिक प्रेमी जिस भाँति अपने प्रियतम से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हमें ईश्वर से भी प्रेम करना होगा। कृष्ण स्वयं ईश्वर थे, राधा उनके प्रेम में पागल थी। जिन ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की प्रेमकथाएँ वर्णित हैं, उन्हें पढ़ो तो पता चलेगा कि ईश्वर से कैसे प्रेम करना चाहिए। किन्तु इस अपूर्व प्रेम के तत्त्व को कितने लोग समझते हैं? ब्रह्म से ऐसे मनुष्य हैं जिनका हृदय पाप से परिपूर्ण है, वे नहीं जानते कि पवित्रता या नैतिकता किसे कहते हैं। वे क्या इन तत्त्वों को समझ सकते हैं? वे किसी भाँति इन तत्त्वों को समझ ही नहीं सकते। जिस समय मन से सारे सासारिक वासनापूर्ण विचार दूर हो जाते हैं और जब निर्मल नैतिक तथा आध्यात्मिक भाव-जगत् में मन की अवस्थिति हो जाती है, उस समय वे अशिक्षित होने पर भी शास्त्र की अति जटिल समस्याओं के रहस्य को समझने में समर्थ होते हैं। किन्तु इस प्रकार के मनुष्य ससार में कितने हैं या हो सकते हैं? ऐसा कोई धर्म नहीं है जिसे लोग विकृत न कर दें। उदाहरणार्थ ज्ञान की

हाई बेकर लोग बनायास ही कह सकते हैं कि आत्मा जब देह से सम्पूर्णतया वृणक्त है, तो देह चाहे जो पाप करे, आत्मा उस कार्य में सिद्ध नहीं हो सकती। यदि वे ठीक तरह से धर्म का अनुसरण करते तो हिन्दू, मुसलमान ईसाई बनना कोई भी बुरा बर्माबलम्बी क्यों न हो सभी पवित्रता के बरतारस्वरूप होते। किन्तु मनुष्य अपनी अपनी अच्छी या बुरी प्रकृति के अनुसार परिवर्तित होते हैं, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किन्तु संसार में सदा कुछ मनुष्य ऐसे भी होते हैं जो ईश्वर का नाम सुनते ही उत्पन्न हो जाते हैं। ईश्वर का मुखाग्र करत करते जिनकी आँसों से प्रेमाशु की प्रबल वारा बहने लगती है। इसी प्रकार लोग सच्चे सक्त हैं।

शक्ति की प्रथम व्यक्त्या में भक्त ईश्वर को प्रभु और अपने को दास समझता है। अपनी वैभक्ति आभयकताओं की पूर्ति के लिए वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञ अनुभव करता है। इत्यादि। इस प्रकार के भावों को एकवचन छोड़ देना चाहिए। केवल एक ही आकर्षक शक्ति है और वह है ईश्वर। उसी आकर्षक शक्ति के कारण मूर्धन्य एव अन्त्यास्य सभी चीजें प्रतिमान होती हैं। इस संसार की अच्छी या बुरी सभी चीजें ईश्वरप्रभिमुक्त एक रणी हैं। हमारे जीवन की सारी बटनाएँ, अच्छी या बुरी हमें उसीकी ओर ले जाती हैं। एक मनुष्य ने दूसरे का अपने स्वार्थ के लिए बून किया; जो बृष्ट भी हो अपने लिए हो या दूसरों के लिए हो प्रेम ही इस कार्य का मूल है। वरदा हो या अच्छा हो प्रेम ही सब चीजों का प्रेरक है। धेर जब प्रेम का मारता है, तब वह अपनी या अपने यत्नों की मूल मिटाने के लिए ऐसा करता है।

ईश्वर प्रेम का मूर्त रूप है। सदा सब अपराधों को क्षमा करने के लिए प्रस्तुत बनादि अनन्त ईश्वर प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। लोग जानें या न जानें वे उसकी ओर आह्वित हो रहे हैं। पति की परमाभूषिणी स्त्री नहीं जानती कि उसके पति में भी वही महान् दिव्य आकर्षक शक्ति है जो उसको अपने स्वामी की ओर ले जाती है। हमारा उपास्य है—वैभक्त यही प्रेम का ईश्वर। जब तक हम उसे सप्टा पावनरुतों आदि समझते हैं, तब तक उसकी बाह्य पूजा आदि की आवश्यकता है किन्तु जिस समय इन सारी भावनाओं का परिवर्तन कर उस प्रेम का बरतारस्वरूप समझते हैं, एवं सब वस्तुओं में उसे और उसमें सब वस्तुओं को देखते हैं, उसी समय हम परा शक्ति प्राप्त होती है।

हिन्दू धर्म के सामान्य आधार

लाहौर पहुँचने पर आर्य समाज और सनातन धर्मसभा दोनों के नेताओं ने स्वामी जी का भव्य स्वागत किया। स्वामी जी ने अपने अल्पकालीन लाहौर-प्रवास के दौरान में तीन भाषण दिये। पहला 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' पर, दूसरा 'भक्ति' पर और तीसरा विख्यात भाषण 'वेदान्त' पर था। उनका पहला भाषण निम्नलिखित है

स्वामी जी का भाषण

यह वही भूमि है, जो पवित्र आर्यावर्त में पवित्रतम मानी जाती है, यह वही ब्रह्मावर्त है, जिसका उल्लेख हमारे महर्षि मनु ने किया है। यह वही भूमि है, जहाँ से आत्म-तत्त्व की उच्चाकाक्षा का वह प्रबल स्रोत प्रवाहित हुआ है, जो आनेवाले युगों में, जैसा कि इतिहास से प्रकट है, ससार को अपनी वाढ से आप्लावित करनेवाला है। यह वही भूमि है, जहाँ से उसकी वेगवती नद-नदियों के समान आध्यात्मिक महत्त्वाकाक्षाएँ उत्पन्न हुईं और धीरे धीरे एक धारा में सम्मिलित होकर शक्तिसम्पन्न हुईं और अन्त में ससार की चारों दिशाओं में फैल गयी तथा वज्र-गम्भीर ध्वनि से उन्होंने अपनी महान् शक्ति की घोषणा समस्त जगत् में कर दी। यह वही वीर भूमि है, जिसे भारत पर चढाई करनेवाले शत्रुओं के सभी आक्रमणों तथा अतिक्रमणों का आघात सबसे पहले सहना पडा था। आर्यावर्त में घुसनेवाली बाहरी बर्बर जातियों के प्रत्येक हमले का सामना इसी वीर भूमि को अपनी छाती खोलकर करना पडा था। यह वही भूमि है, जिसने इतनी आपत्तियाँ झेलने के बाद भी अब तक अपने गौरव और शक्ति को एकदम नहीं खोया। यही भूमि है, जहाँ बाद में दयालु नानक ने अपने अद्भुत विश्व-प्रेम का उपदेश दिया, जहाँ उन्होंने अपना विशाल हृदय खोलकर सारे ससार को—केवल हिन्दुओं को नहीं, वरन् मुसलमानों को भी—गले लगाने के लिए अपने हाथ फैलाये। यही पर हमारी जाति के सबसे बाद के तथा महान् तेजस्वी वीरों में से एक, गुरु गोविन्द सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए अपना एव अपने प्राण-प्रिय कुटुम्बियों का रक्त बहा दिया, और जिनके लिए यह खून की नदी बहायी गयी, उन लोगों ने भी जब उनका माथ छोड

दिया तब वे मर्माहत सिंह की भाँति चुपचाप दक्षिण दिश में निर्जन-बास के लिए चले गये और अपने देश-भाइयों के प्रति खबरों पर एक भी कटु वचन न लाकर, तनिक भी बसन्तोप प्रकट न कर, शान्त भाव से इहलोक छोड़ कर चले गये।

हे पंचनख देशवासी भाइयो! यहाँ अपनी इस प्राचीन पवित्र भूमि में तुम लोगों के सामने मैं आचार्य के रूप में नहीं खड़ा हुआ हूँ कारण तुम्हें धिया देने योग्य ज्ञान मेरे पास बहुत ही थोड़ा है। मैं तो पूर्वी प्रान्त से अपने पश्चिमी प्रान्त के भाइयों के पास इरीकिए आया हूँ कि उनके साथ हृदय खोलकर बर्तावपाप करूँ, उन्हें अपने अनुभव बताऊँ और उनके अनुभव से स्वयं लाभ उठाऊँ। मैं यहाँ यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या क्या मतभेद है, बल्कि मैं तो यह खोजने आया हूँ कि हम लोगों की भिन्न-भूमि कौन सी है। यहाँ मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि वह कौन सा आधार है, जिस पर हम लोग आपस में सदा भाई बने रह सकते हैं। किस नींव पर प्रतिष्ठित होने से वह बाणी जो अनन्त काल से सुनायी दे रही है, उत्तरीतर अधिक प्रबल होती रहेगी। मैं यहाँ तुम्हारे सामने कुछ रचनात्मक कार्यक्रम रखने आया हूँ धर्मसात्मक नहीं। कारण आलोचना के दिन अब चले गये और आज हम रचनात्मक कार्य करने के लिए उत्सुह हैं। यह सत्य है कि ससार को समय समय पर आलोचना की जरूरत हुआ करती है, यहाँ तक कि कठोर आलोचना की भी पर वह केवल अल्प काल के लिए ही होती है। हमसा के लिए तो उपलिकापी और रचनात्मक कार्य ही बाँधित होते हैं आलोचनारमक या धर्मसात्मक नहीं। अगमग पिछले ही वर्ष से हमारे इस देश में सर्वत्र आलोचना की बाढ़ सी आ गयी है, उधर सभी अल्पकारमय प्रवेष्टों पर पाश्चात्य विज्ञान का तीव्र प्रकाश डाला गया है, जिससे लोगों की दृष्टि अन्य स्थानों की अपेक्षा कोनों और गली-कूचों की ओर ही अधिक खिच गयी है। स्वभावतः इस देश में सर्वत्र महान् और वैजस्वी मेधासम्पन्न पुरुषों का जन्म हुआ जिनके हृदय में सत्य और स्याय के प्रति प्रबल अनुराग या भिन्नके अन्त करण में अपने देश के लिए और सबसे बढ़कर ईदबार तथा अपने धर्म के लिए अथाप प्रेम था। क्योंकि ये महापुरुष अत्यधिक संवेदनशील थे उनमें देश के प्रति इतना गहरा प्रेम था इसलिए उन्होंने प्रत्येक धम्मु की जिसे बुरा लगता तीव्र आलोचना की। अनीतकालीन इन महापुरुषों की जय हो! उन्होंने देश का बहुत ही बस्याग किया है। पर आज हम एक महाभागी सुनायी दे रही है, 'बस बने बग करो! निम्ना दर्शात है। पूर्वी बाय-वर्तन बाँध ही चुका। अब तो पुनर्निर्माण का फिर से संयत्न करने का समय आ गया है। अब अपनी समस्त

विखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का, उन सबको एक ही केन्द्र में लाने का और उस सम्मिलित शक्ति द्वारा देश को प्रायः सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने का समय आ गया है। घर की सफाई हो चुकी है। अब आवश्यकता है उसे नये सिरे से आवाद करने की। रास्ता साफ कर दिया गया है। आर्य सन्तानों, अब आगे बढ़ो !

सज्जनो ! इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैं आपके सामने आया हूँ और आरम्भ में ही यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी दल या विशिष्ट सम्प्रदाय का नहीं हूँ। सभी दल और सभी सम्प्रदाय मेरे लिए महान् और महिमामय हैं। मैं उन सबसे प्रेम करता हूँ, और अपने जीवन भर मैं यही ढूँढने का प्रयत्न करता रहा कि उनमें कौन कौन सी बातें अच्छी और सच्ची हैं। इसीलिए आज मैंने सकल्प किया है कि तुम लोगों के सामने उन बातों को पेश करूँ, जिनमें हम एकमत हैं, जिससे कि हमें एकता की सम्मिलन-भूमि प्राप्त हो जाय, और यदि ईश्वर के अनुग्रह से यह सम्भव हो तो आओ, हम उसे ग्रहण करें और उसे सिद्धान्त की सीमाओं से बाहर निकालकर कार्यरूप में परिणत करें। हम लोग हिन्दू हैं। मैं 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ में नहीं कर रहा हूँ, और मैं उन लोगों से कदापि सहमत नहीं, जो उससे कोई बुरा अर्थ समझते हैं। प्राचीन काल में उस शब्द का अर्थ था—सिन्धु नदी के दूसरी ओर बसनेवाले लोग। हमसे घृणा करनेवाले बहुतेरे लोग आज उस शब्द का कुत्सित अर्थ भले ही लगाते हैं, पर केवल नाम में क्या घरा है ? यह तो हम पर ही पूर्णतया निर्भर है कि 'हिन्दू' नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय हो, आध्यात्मिक हो, अथवा वह ऐसी वस्तु का द्योतक रहे जो कलक का समानार्थी हो, जो एक पददलित, निकम्मी और धर्म-भ्रष्ट जाति का सूचक हो। यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ है तो उसकी परवाह मत करो। आओ, अपने कार्यों और आचरणों द्वारा यह दिखाने को तैयार हो जाओ कि समग्र ससार की कोई भी भाषा इससे ऊँचा, इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर सकी है। मेरे जीवन के सिद्धान्तों में से एक यह भी सिद्धान्त रहा है कि मैं अपने पूर्वजों की सन्तान कहलाने में लज्जित नहीं होता। मुझे जैसा गर्वोला मानव इस ससार में शायद ही हो, पर मैं यह स्पष्ट रूप से बताना चाहता हूँ कि यह गर्व मुझे अपने स्वयं के गुण या शक्ति के कारण नहीं, बल्कि अपने पूर्वजों के गौरव के कारण है। जितना ही मैंने अतीत का अध्ययन किया है, जितनी ही मैंने भूतकाल की ओर दृष्टि डाली है, उतना ही यह गर्व मुझे अधिक आता गया है। उससे मुझे श्रद्धा की उत्तनी ही दृढता और साहस प्राप्त हुआ है, जिसने मुझे धरती की धूल से ऊपर उठाया है और मैं अपने उन

महान् पूर्वजों के निरिच्छत किये हुए कार्यक्रम के अनुसार कार्य करने की प्रेरित
हुना हूँ। ऐसी ही प्राचीन आर्य की सन्तानो! ईश्वर करे, तुम लोगों के हृदय में
भी यही गर्व जागृत हो जाय अपने पूर्वजों के प्रति यही विश्वास तुम लोगों के
रक्त में भी बौझने लगे वह तुम्हारे जीवन से निस्कर एक हो जाय और संसार
के उत्थार के लिए कार्यशील हो।

भाइयो! यह पता लगाने के पहले कि हम ठीक किस बात में एकमत हैं
तथा हमारे आर्य जीवन का सामान्य आधार क्या है हमें एक बात स्मरण
रखनी होगी। जैसे प्रत्येक मनुष्य का एक व्यक्तित्व होता है, ठीक उसी तरह
प्रत्येक जाति का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति
कुछ विशिष्ट बातों में अपने विशिष्ट सक्तनों में अन्य व्यक्तियों से पृथक् होता
है उसी प्रकार एक जाति भी कुछ विशिष्ट सक्तनों में दूसरी जाति से भिन्न हुआ
करती है। और जिस प्रकार प्रकृति की व्यवस्था में किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति
करना हर एक मनुष्य का जीवनोद्देश्य होता है जिस प्रकार अपने पूर्व कर्म द्वारा
निर्धारित विशिष्ट मार्ग से उस मनुष्य को चलना पड़ता है, ठीक ऐसा ही जातियों
के विषय में भी है। प्रत्येक जाति को किसी न किसी ईशनिर्दिष्ट उद्देश्य को पूरा
करना पड़ता है प्रत्येक जाति को संसार में एक अन्वेष देना पड़ता है तथा प्रत्येक
जाति को एक अतिरिक्त का उद्घापन करना होता है। अब आर्य्य से ही हमें
यह समझ लेना चाहिए कि हमारी जाति का यह अर्थ क्या है, जिजाता न उसे
भविष्य के किस निश्चित उद्देश्य के लिए निमुक्त किया है, विभिन्न राष्ट्रों की
पृथक्-पृथक् उत्पत्ति और अधिकार में हमें कौन सा स्थान प्रदत्त करना है विभिन्न
राष्ट्रीय स्वतंत्रों की समरसता से हमें कौन सा स्वर अच्चापना है। हम अपने देश
में अन्वेषन में यह किस्सा सुना करते हैं कि कुछ सपनों के फल में मणि होती है और
जब तक मणि नहीं है तब तक तुम सपनों को मारने का कोई भी उपाय करो वह
नहीं मर सकता। हम लोगों न किस्से-कहानियों में ईश्वरों और राजकों की बातें
पढ़ी हैं। उनके प्राण 'हीरामन तोते' के कलेजे में बन्द रहते हैं और जब तक
उस 'हीरामन तोते' की जान में जान रहेगी तब तक उस जानब का बाध भी
बाँका न होया जाहे तुम उसके टुकड़े टुकड़े ही क्यों न कर डालो। यह बात राष्ट्रों
के सम्बन्ध में भी सत्य है। राष्ट्रविशेष का जीवन भी ठीक उसी प्रकार मानो किसी
विष्णु में केन्द्रित रहता है यही उस राष्ट्र की राष्ट्रियता रहती है और जब तक
उस मर्मस्थान पर जोट नहीं पड़ती तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता। इस तथ्य
के प्रकाश में हम संसार के इतिहास की एक अद्वितीय एवं सबसे अपूर्व घटना को
समझ सकते हैं। इजायत इन अज्ञात अज्ञानता पर आर्य्यार बर्बर जाति की

के आक्रमणों के दौर आते रहे हैं। 'अल्लाहो अकबर' के गगनभेदी नारों से भारत-गगन सदियों तक गूँजता रहा है और मृत्यु की अनिश्चित छाया प्रत्येक हिन्दू के सिर पर मँडराती रही है। ऐंम, कोई हिन्दू न रहा होगा, जिसे पल पल पर मृत्यु की आशंका न होती रही हो। मसार के इतिहास में इस देश में अधिक दुःख पानेवाला तथा अधिक पराधीनता भोगनेवाला और कौन देश है? पर तो भी हम जैसे पहले थे, आज भी लगभग वैसे ही बने हुए हैं, आज भी हम आवश्यकता पड़ने पर वारम्बार विपत्तियों का सामना करने को तैयार हैं, और इतना ही नहीं, हाल में ऐंम भी लक्षण दिखायी दिये हैं कि हम केवल श्विनमान ही नहीं, वरन् बाहर जाकर दूसरों को अपने विचार देने के लिए भी उत्पन्न हैं, कारण, विस्तार ही जीवन का लक्षण है।

हम आज देखते हैं कि हमारे भाव और विचार भारत की सरहदों के पिंजड़े में ही बन्द नहीं हैं, बल्कि वे तो, हम चाहे या न चाहे, भारत के बाहर बढ रहे हैं, अन्य देशों के साहित्य में प्रविष्ट हो रहे हैं, उन देशों में अपना स्थान प्राप्त कर रहे हैं और इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो वे आदेशदाता गुरु के आसन तक पहुँच गये हैं। इसका कारण यही है कि ससार की सम्पूर्ण उन्नति में भारत का दान सबसे श्रेष्ठ रहा है, क्योंकि उसने ससार को ऐसे दर्शन और धर्म का दान दिया है, जो मानव-मन को सलग्न रखनेवाला सबसे अधिक महान्, सबसे अधिक उदात्त और सबसे श्रेष्ठ विषय है। हमारे पूर्वजों ने बहुतेरे अन्य प्रयोग किये। हम सब यह जानते हैं कि अन्य जातियों के समान, वे भी पहले बहिर्जगत् के रहस्य के अन्वेषण में लग गये, और अपनी विशाल प्रतिभा से वह महान् जाति, प्रयत्न करने पर, उस दिशा में ऐंम ऐसे अद्भुत आविष्कार कर दिखाती, जिन पर समस्त ससार को सदैव अभिमान रहता। पर उन्होंने इस पथ को किसी उच्चतर ध्येय की प्राप्ति के लिए छोड़ दिया। वेद के पृष्ठों से उसी महान् ध्येय की प्रतिध्वनि सुनायी देती है—अथ परा, यथा तदक्षरमधिगम्यते—'वही परा विद्या है, जिससे हमें उस अविनाशी पुरुष की प्राप्ति होती है।' इस परिवर्तनशील, नश्वर प्रकृति सम्बन्धी विद्या—मृत्यु, दुःख और शोक से भरे इस जगत् से सम्बन्धित विद्या बहुत बड़ी भले ही हो, एव सचमुच ही वह बड़ी है, परन्तु जो अपरिणामी और आनन्दमय है, जो चिर शान्ति का निधान है, जो शाश्वत जीवन और पूर्णत्व का एकमात्र आश्रय-स्थान है, एकमात्र जहाँ ही सारे दुःखों का अवसान होता है, उस ईश्वर से सम्बन्ध रखनेवाली विद्या ही हमारे पूर्वजों की राय में सबसे श्रेष्ठ और उदात्त है। हमारे पूर्वज यदि चाहते, तो ऐसे विज्ञानों का अन्वेषण सहज ही कर सकते थे, जो हमें केवल अन्न, वस्त्र और अपने साथियों पर आविपत्य

वे सकते हैं जो हमें कबल दूसरों पर विजय प्राप्त करना और उन पर प्रभुत्व करना सिखाते हैं जो बस्ती को निर्बल पर हुकूमत करने की धिम्मा देते हैं। पर उस परमेस्वर की अपार दया से हमारे पूर्वजों ने उस बार बिल्कुल ध्यान न देकर एकदम दूसरी दिशा पकड़ी जो पूर्वोक्त मार्ग से अत्यन्त गुनी श्रेष्ठ और महान् थी जिसमें पूर्वोक्त पक्ष की अपेक्षा अत्यन्त युगा मान्य था। इस मार्ग को अपनाकर वे ऐसी अत्यन्त निष्ठ के साथ उस पर अग्रसर हुए कि आज वह हमारा राष्ट्रीय विशेषत्व बन गया। सद्भावों वर्ष से पिता-पुत्र की उत्तराधिकार-परम्परा से आता हुआ आज वह हमारे जीवन से घुस-भिर गया है। हमारी रसों में बहनेवाले रक्त की रूढ़ रूढ़ से मिश्रकर एक हो गया है। वह मातो हमारा दूसरा स्वभाव ही बन गया है। यहाँ तक कि आज 'बर्म' और 'हिन्दू' ये दो शब्द समानार्थी हो गये हैं। यही हमारी जाति का वैशिष्ट्य है और इस पर कोई आपात नहीं कर सकता। बर्बर जातियों ने यहाँ आकर सम्भारों और ठोपों के बक पर अपने बर्बर धर्मों का प्रचार किया पर उनमें से एक भी हमारे मर्मस्वयं को स्पर्श न कर सका। सर्प की तरह 'मभि' को न छू सका। राष्ट्रीय जीवन के प्राणस्वरूप उस 'हीरामन लोहे' को न मार सका। अतः यही हमारी जाति की जीवनी शक्ति है और जब तक यह अस्थाहित है, जब तक संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो इस जाति का विनाश कर सके। यदि हम अपनी इस सर्वश्रेष्ठ विरासत आध्यात्मिकता को न छोड़ें तो संसार के सारे अत्याचार-उत्पीड़न और दुःख हमें बिना थोट पहुँचाव ही निकल बायेंगे और हम लोग पुनः-कष्टात्मि की उन श्वात्सामों में से प्रह्लाद के समान बिना जले बाहर निकल आयेगे। यदि कोई हिन्दू धार्मिक नहीं है तो मैं उसे हिन्दू ही नहीं कहूँगा। दूसरे देशों में मले ही मनुष्य पहले राजनीतिक हो और फिर धर्म से बीड़ा सा झगाव रखे पर यहाँ भारत में तो हमारे जीवन का सबसे बड़ा और प्रथम कर्तव्य धर्म का अनुष्ठान है और फिर उसके बाद यदि अवकाश मिले तो दूसरे विषय मले ही जा जायें। इस लक्ष्य को ध्यान में रखने से हम यह बात अधिक जल्दी तरह समझ सकेंगे कि अपने राष्ट्रीय हित के लिए हमें आज क्यों सबसे पहले अपनी जाति की अत्यन्त आध्यात्मिक शक्तियों को बूँद निकालना होगा। जैसा कि अतीत काल में किया गया था और फिर काक तक किया जायगा। अपनी विपरीत हुई आध्यात्मिक शक्तियों का एकत्र करना ही भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का एकमात्र उपाय है। जितनी जल्दी एक ही आध्यात्मिक स्वरूप में बँधी है, उतन सबसे धम्मिसत से ही भारत में जाति का संयोजन होगा।

इस देश में पर्याप्त पन्थ या सम्प्रदाय हुए हैं। आज भी ये पन्थ पर्याप्त संख्या

मे हैं और भविष्य मे भी पर्याप्त सख्या मे रहेगे, क्योकि हमारे धर्म की यह विशेषता रही है कि उसमे व्यापक तत्त्वो की दृष्टि से इतनी उदारता है कि यद्यपि वाद मे उनमे से अनेक सम्प्रदाय फँले हैं और उनकी बहुविध शाखा-प्रशाखाएँ फूटी हैं तो भी उनके तत्त्व हमारे सिर पर फँले हुए इस अनन्त आकाश के समान विशाल हैं, स्वय प्रकृति की भाँति नित्य और सनातन हैं। अत सम्प्रदायो का होना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु जिसका होना आवश्यक नही है, वह है इन सम्प्रदायो के बीच के झगडे-झमेले। सम्प्रदाय अवश्य रहे, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाय। साम्प्रदायिकता से ससार की कोई उन्नति नही होगी, पर सम्प्रदायो के न रहने से ससार का काम नही चल सकता। एक ही साम्प्रदायिक विचार के लोग सब काम नही कर सकते। ससार की यह अनन्त शक्ति कुछ थोडे से लोगो से परिचालित नही हो सकती। यह बात समझ लेने पर हमारी समझ मे यह भी आ जायगा कि हमारे भीतर किसलिए यह सम्प्रदाय-भेदरूपी श्रमविभाग अनिवार्य रूप से आ गया है। भिन्न भिन्न आध्यात्मिक शक्ति-समूहो का परिचालन करने के लिए सम्प्रदाय कायम रहे। परन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे प्राचीनतम शास्त्र इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि यह सब भेद-भाव केवल ऊपर का है, देखने भर का है, और इन सारी विभिन्नताओ के वावजूद इनको एक साथ बाँधे रहनेवाला परम मनोहर स्वर्ण सूत्र इनके भीतर परोया हुआ है, तब इसके लिए हमे एक दूसरे के साथ लडने-झगडने की कोई आवश्यकता नही दिखायी देती। हमारे प्राचीनतम शास्त्रो ने घोषणा की है कि एक सद्भिप्रा बहुधा वदन्ति—'विश्व मे एक ही सद्दस्तु विद्यमान है, ऋषियो ने उसी एक का भिन्न भिन्न नामो से वर्णन किया है।' अत ऐसे भारत मे, जहाँ सदा से सभी सम्प्रदाय समान रूप से सम्मानित होते आये हैं, यदि अब भी सम्प्रदायो के बीच ईर्ष्या-द्वेष और लडाई-झगडे बने रहे तो धिक्कार है हमे, जो हम अपने को उन महिमान्वित पूर्वजो के वशवर वताने का दु साहस करें।

मेरा विश्वास है कि कुछ ऐसे महान् तत्त्व हैं, जिन पर हम सब सहमत हैं, जिन्हे हम सभी मानते हैं—चाहे हम वैष्णव हो या शैव, शाक्त हो या गाणपत्य, चाहे प्राचीन वेदान्ती सिद्धान्तो को मानते हो या अर्वाचीनो के ही अनुयायी हो, पुरानी लकीर के फकीर हो अथवा नवीन सुधारवादी हो—और जो भी अपने को हिन्दू कहता है, वह इन तत्त्वो मे विश्वास रखता है। सम्भव है कि इन तत्त्वो की व्याख्याओ मे भेद हो—और वैसा होना भी चाहिए, क्योकि हमारा यह मानदड रहा है कि हम सबको जबरदस्ती अपने साँचे मे न ढालें। हम जिस तरह की व्याख्या करें, सबको वही व्याख्या माननी पडेगी अथवा हमारी ही प्रणाली का अनुसरण

करना होगा—उत्तरवस्ती ऐसी बेव्टा करना पाप है। आज यहाँ पर जो लोग एकत्र हुए हैं घायब वे सभी एक स्वर से यह स्वीकार करते कि हम लोग यहाँ को अपना धर्म-रहस्यी का सनातन उपवेश मानते हैं। हम सभी यह विश्वास करते हैं कि वेद-गीता यह पवित्र ग्रन्थ राशि अनादि और अनन्त है। जिस प्रकार प्रकृति का न अन्त है न अन्त उसी प्रकार इसका भी अन्त-अन्त नहीं है। और जब सभी हम इस पवित्र ग्रन्थ के प्रकाश में आते हैं तब हमारे धर्म-सम्बन्धी सारे भेद भाव और झगड़े मिट जाते हैं। इसमें हम सभी सहमत हैं कि हमारे धर्म विषयक चिंतने में भेद हैं, उनकी अन्तिम सीमांसा करनेवाला यही भेद है। भेद नमः है, इस पर हम लोगों में मतभेद हो सकता है। कोई सम्प्रदाय भेद के किसी एक भय को दूसरे लोग से अधिक पवित्र समझ सकता है। पर इससे तब तक कुछ बनता विपड़ता नहीं जब तक हम यह विश्वास करते हैं कि वेदों के प्रति श्रद्धा होने के कारण हम सभी आपस में भाई भाई हैं तथा उन सनातन पवित्र और अपूर्व ग्रन्थों से ही ऐसी प्रत्येक पवित्र महान् और उत्तम वस्तु का उद्भव हुआ है जिसके हम आज अधिकारी हैं। अच्छा यदि हमारा ऐसा ही विश्वास है तो फिर सबसे पहले हमें तत्त्व का भारत में सर्वत्र प्रचार किया जाय। यदि नहीं सत्य है तो फिर वेद सर्वदा ही जिस प्राचाग्य के अधिकारी हैं तथा जिसमें हम सभी विश्वास करते हैं वह प्रमाणता वेदों को ही जाय। अतः हम सबको प्रथम मिलन मूमि है भेद।

दूसरी बात यह है कि हम सब ईश्वर में विश्वास करते हैं जो संसार की सृष्टि-स्मित-रुद-कारिणी शक्ति है जिसमें यह सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्माण्ड में तप होकर हमारे अन्त में पुनः अद्भुत जगत् प्रपञ्च रूप से बाहर निकल आता एक अभिप्यस्त हाता है। हमारी ईश्वर विषयक ब्रह्मणा सिद्ध मित्र प्रकार की हो सकती है—कुछ लोग ईश्वर का सम्पूर्ण समुच्च रूप में कुछ उन्हें समुच्च पर मानकर आचार्य रूप में नहीं और कुछ उन्हें सम्पूर्ण निम्न रूप में ही मान सकते हैं और सभी अपनी अपनी धारणा की शक्ति में भेद के प्रमाण भी दे सकते हैं। पर इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी हम सभी ईश्वर में विश्वास करते हैं। सभी बात को सुनने वालों में ऐसा भी बन सकते हैं कि विनायक सब गणना ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है जिसके अन्तर्गत में वह जीवित है और अन्त में विनायक का ही अन्त है। अतः उन अद्भुत अन्त शक्ति पर जो विश्वास नहीं करता वह अपने को शिष्य नहीं बन सकता। यदि ऐसी बात है तो इन सब की भी गणना धारण में करने को बड़ा बुरा होगी। तुम इन ईश्वर का जाने किन बात से प्रचार करो ईश्वर सम्बन्धी सुश्रावण मान न ही बने धारण के धर्म हूँ पर इन हमारे विश्वास में गणना नहीं करते। इन चाहते हैं ईश्वर का प्रचार दिन

वह किसी भी रूप में क्यों न हो। हो सकता है, ईश्वर सम्बन्धी इन विभिन्न धारणाओं में कोई अधिक श्रेष्ठ हो, पर याद रखना, उनमें कोई भी धारणा बुरी नहीं है। उन धारणाओं में कोई उत्कृष्ट, कोई उत्कृष्टतर और कोई उत्कृष्टतम हो सकती है, पर हमारे धर्म-तत्त्व की पारिभाषिक शब्दावली में 'बुरा' नाम का कोई शब्द नहीं है। अतः, ईश्वर के नाम का चाहे जो कोई जिस भाव से प्रचार करे, वह निश्चय ही ईश्वर के आशीर्वाद का भाजन होगा। उसके नाम का जितना ही अधिक प्रचार होगा, देश का उतना ही कल्याण होगा। हमारे वच्चे बचपन से ही इस भाव को हृदय में धारण करना सीखें—अत्यन्त दरिद्र और नीचातिनीच मनुष्य के घर से लेकर बड़े से बड़े धनी-मानी और उच्चतम मनुष्य के घर में भी ईश्वर के शुभ नाम का प्रवेश हो।

अब तीसरा तत्त्व मैं तुम लोगों के सामने प्रकट करना चाहता हूँ। हम लोग औरों की तरह यह विश्वास नहीं करते कि इस जगत् की सृष्टि केवल कई हजार वर्ष पहले हुई है और एक दिन इसका सदा के लिए ध्वंस हो जायगा। साथ ही, हम यह भी विश्वास नहीं करते कि इसी जगत् के साथ शून्य से जीवात्मा की भी सृष्टि हुई है। मैं समझता हूँ कि इस विषय में भी हम सब सहमत हो सकते हैं। हमारा विश्वास है कि प्रकृति अनादि और अनन्त है, पर हाँ, कल्पान्त में यह स्थूल बाह्य जगत् अपनी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होता है, और कुछ काल तक उस सूक्ष्मावस्था में रहने के बाद पुनः उसका प्रक्षेपण होता है तथा प्रकृति नामक इस अनन्त प्रपञ्च की अभिव्यक्ति होती है। यह तरगाकार गति अनन्त काल से—जब स्वयं काल का ही आरम्भ नहीं हुआ था तभी से—चल रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

पुनः हिन्दू मात्र का यह विश्वास है कि मनुष्य केवल यह स्थूल जड़ शरीर ही नहीं है, न ही उसके अन्तर्स्थ यह 'मन' नामक सूक्ष्म शरीर ही प्रकृत मनुष्य है, वरन् प्रकृत मनुष्य तो इन दोनों से अतीत एव श्रेष्ठ है। कारण, स्थूल शरीर परिणामी है और मन का भी वही हाल है, परन्तु इन दोनों से परे 'आत्मा' नामक अनिर्वर्चनीय वस्तु है जिसका न आदि है, न अन्त। मैं इस 'आत्मा' शब्द का अग्रजो में अनुवाद नहीं कर सकता, क्योंकि इसका कोई भी पर्याय गलत होगा। यह आत्मा 'मृत्यु' नामक अवस्था से परिचित नहीं। इसके सिवाय एक और विशिष्ट बात है, जिसने हमारे साथ अन्यान्य जातियों का विलकुल मतभेद है। वह यह है कि आत्मा एक देह का अन्त होने पर दूसरी देह धारण करती है, ऐसा करते करते वह एक ऐसी अवस्था में पहुँचती है, जब उसे फिर शरीर धारण करने की कोई इच्छा या आवश्यकता नहीं रह जाती, तब वह मुक्त हो जाती है

और फिर संकमी ब्रह्म नहीं होती। यहाँ मेरा तात्पर्य अपने शास्त्रों के संसार बाद या पुनर्जन्मबाद तथा आत्मा के नित्यत्ववाद से है। हम चाहे जिस सम्प्रदाय के हों पर इस विषय में हम सभी सहमत हैं। इस आत्मा-परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हमारे मत भिन्न हो सकते हैं। एक सम्प्रदाय आत्मा को परमात्मा से अनन्त काल तक अल्प मात्रा सकता है, दूसरे के मत से आत्मा उसी अनन्त ब्रह्म की एक चिनमायी ही सकती है और फिर अन्यों के मतानुसार वह उस अनन्त सं एकत्म और अभिन्न ही सकती है। पर जब तक हम सब कोम इस मौलिक तत्त्व की मागते हैं कि आत्मा अनन्त है उसकी सृष्टि कभी नहीं हुई और इसलिए उसका नाश भी कभी नहीं हो सकता उस को मिला भिन्न क्षीरों से क्रमशः उत्पत्ति करते करते अन्त में मनुष्य शरीर धारण कर पूर्णत्व प्राप्त करना होगा—तब तक हम आत्मा एक परमात्मा के इस सम्बन्ध के विषय में चाहे कौसी प्यात्मा क्यों न करें, उससे कुछ बगता-विमङ्गता नहीं। इसके विषय में हम सभी सहमत हैं। और इसके बाद आध्यात्मिकता के क्षेत्र में सबसे उपात्त सर्वाधिक विवेक को स्पष्ट करनेवाले और यात्र तक के सबसे अपूर्व आविष्कार की बात आती है। तुम लोगों में से बिन्होंने पारश्चात्य विन्तन प्रजाप्ती का अध्ययन किया होना उन्होंने सम्भवतः यह कल्प किया होना कि एक ऐसा मौलिक प्रमेय है, जो पारश्चात्य विचारों को एक ही आकाश में पौराणिक विचारों से पूषक कर देता है। वह यह है कि भारत में हम सभी चाहे हम शाक्त हों या शीर या वैष्णव जवदा बौद्ध या जैन ही क्यों न हों—हम सब के सब वही विश्वास करते हैं कि आत्मा स्वभावतः शुद्ध पूर्ण अनन्त सकृत्सम्पन्न और आनन्दमय है। अन्तर केवल इतना है कि ईतबादियों के मत से आत्मा का वह स्वाभाविक आनन्दस्वभाव पिछले बुरे कर्मों के कारण संकुचित हो गया है एवं ईस्वर के अनुग्रह से वह फिर विकसित हो जायगा और आत्मा पुनः अपने पूर्ण स्वभाव की प्राप्ति हो जायगी। पर ब्रह्मचारी कहते हैं कि आत्मा के संकुचित होने की यह धारणा ही अद्वैत भ्रमात्मक है—हम तो माया के आबरण के कारण ही ऐसा समझते हैं कि आत्मा अपनी शरीर संकित पैना बैठी है, जब कि वास्तव में उसकी समस्त सकृत्तव भी पूर्ण रूप से अभिम्यक्त रहती है। जो भी अन्तर हो पर हम एक ही केन्द्रीय तत्त्व पर पहुँचते हैं कि आत्मा स्वभावतः ही पूर्ण है और यही प्राण्य और पारश्चात्य भाषों के बीच एक ऐसा अन्तर डाल देता है जिसमें कहीं समझौता नहीं है। जो कुछ महान् है, जो कुछ शुभ है, पौराणिक उसका अन्वेषण अन्वयन्तर में करता है। जब हम पूजा-उपासना करते हैं तब भाँखें बन्द कर ईस्वर को अन्तर ईशने का प्रयत्न करते हैं, और पारश्चात्य अपने बाहर ही ईश्वर की ईशता फिरता है। पारश्चात्यों

के धर्मग्रन्थ प्रेरित (inspired) हैं, जब कि हमारे धर्मग्रन्थ अन्त प्रेरित (expired) हैं, निश्वास की तरह वे निकले हैं, ईश्वरनिश्चित है, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के हृदयों में निकले हैं।^१

यह एक प्रधान बात है, जिसे अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है। प्यारे भाइयो! मैं तुम लोगों को यह बताये देता हूँ कि यही बात भविष्य में हमें विशेष रूप से बार बार बतलानी और समझानी पड़ेगी। क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है और मैं तुम लोगों से भी यह बात अच्छी तरह समझ लेने को कहता हूँ कि जो व्यक्ति दिन-रात अपने को दीन-हीन या अयोग्य समझे हुए बैठा रहेगा, उसके द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता। वास्तव में अगर दिन-रात वह अपने को दीन, नीच एवं 'कुछ नहीं' समझता है तो वह 'कुछ नहीं' ही बन जाता है। यदि तुम कहो कि 'मेरे अन्दर शक्ति है' तो तुममें शक्ति जाग उठेगी। और यदि तुम सोचो कि 'मैं 'कुछ नहीं हूँ,' दिन-रात यही सोचा करो, तो तुम सचमुच ही 'कुछ नहीं' हो जाओगे। तुम्हें यह महान् तत्त्व सदा स्मरण रखना चाहिए। हम तो उसी सर्वशक्तिमान् परम पिता की सन्तान हैं, उसी अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ हैं—भला हम 'कुछ नहीं' क्योंकर हो सकते हैं? हम सब कुछ हैं, हम सब कुछ कर सकते हैं, और मनुष्य को सब कुछ करना ही होगा, हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था। इसी आत्मविश्वास रूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हें सम्यता की उच्च से उच्चतर सीढ़ी पर चढ़ाया था। और, अब यदि हमारी अवनति हुई हो, हममें दोष आया हो तो मैं तुमसे सच कहता हूँ, जिस दिन हमारे पूर्वजों ने अपना यह आत्मविश्वास गँवाया, उसी दिन से हमारी यह अवनति, यह दुरवस्था आरम्भ हो गयी। आत्मविश्वास-हीनता का मतलब है ईश्वर में अविश्वास। क्या तुम्हें विश्वास है कि वही अनन्त मंगलमय विघाता तुम्हारे भीतर से काम कर रहा है? यदि तुम ऐसा विश्वास करो कि वही सर्वव्यापी अन्तर्यामी प्रत्येक अणु-परमाणु में—तुम्हारे शरीर, मन और आत्मा में ओत-प्रोत है, तो फिर क्या तुम कभी उत्साह से वचित रह सकते हो? मैं पानी का एक छोटा सा बुलबुला हो सकता हूँ, और तुम एक पर्वताकार तरंग, तो इससे क्या? वह अनन्त समुद्र जैसा तुम्हारे लिए, वैसा ही मेरे लिए भी आश्रय है। उस जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता के असीम सागर पर जैसा तुम्हारा, वैसा ही मेरा भी अधिकार है। मेरे जन्म से ही, मुझमें जीवन होने से ही, यह प्रमाणित हो रहा है कि तुम्हारे समान, चाहे तुम पर्वताकार तरंग ही क्यों न हो, मैं भी उसी

१ Inspire का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—श्वास का बाहर से अन्दर जाना और Expire का—श्वास का भीतर से बाहर निकलना।

अनन्त जीवन अनन्त सिद्ध और अनन्त शक्ति के साथ नित्यसंयुक्त हैं। अतएव माइनों! तुम अपनी मन्ताना को उनके योग्य-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त उच्च की मिला देना शुरू कर दो। उन्हें अर्द्धतया ही ही पिला देना ही आवश्यकता नहीं। तुम चाहें अर्द्धतया की पिला हो या जिस किसी 'बाब' की जा भी तुम्हें सब। परन्तु हम पहले ही देना शुरू हैं कि यही सर्वमान्य 'बाब' भारत में सर्वत्र स्वीकृत है। आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्व सिद्धान्त को सभी सम्प्रदायवाले समान रूप से मानते हैं। हमारे महान् दार्शनिक कपिल महर्षि ने कहा है कि पवित्रता यदि आत्मा की प्रकृति न हो तो आत्मा बाह्य में कभी भी पवित्रता को प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि जो स्वभावतः पूर्ण नहीं है, वह भविः किसी प्रकार पूर्णता पा भी सके तो वह पूर्णता उसमें स्थिर भाव से नहीं रह सकती उससे पुनः लक्ष्मी जायगी। यदि अपवित्रता ही मनुष्य का स्वभाव ही तो मने ही वह कुछ समय के लिए पवित्रता प्राप्त कर सके पर वह सदा के लिए अपवित्र ही बना रहेगा। कभी न कभी ऐसा समय आयगा जब वह पवित्रता कुछ जायगी दूर हो जायगी और फिर वही पुनः स्वभाविक अपवित्रता अपना सिक्का जमा करेगी। अतएव हमारे सभी दार्शनिक कहते हैं कि पवित्रता ही हमारा स्वभाव है, अपवित्रता नहीं। पूज्यता ही हमारा स्वभाव है, अपूर्णता नहीं। इस बात को तुम सदा स्मरण रखो। जब महर्षि के मुन्धर इन्द्राण्ड को सबैब स्मरण रखी जो सरीर त्याग करते समय अपने मन से अपने किय हुए उत्कृष्ट कार्यों और उच्च विचारों का स्मरण करने के लिए कहते हैं। देखो उन्होंने अपने मन से अपने दोषों और दुर्बलताओं की माह करने के लिए नहीं कहा है। यह सब है कि मनुष्य संशय है, दुर्बलताएँ हैं पर तुम सर्वथा अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण करो। जब यही इन बातों और दुर्बलताओं के दूर करने का अमीष उपाय है।

मैं समझता हूँ कि ये कठिणय तरुण भारतवर्ष के सभी भिन्न भिन्न सम्प्रदायवाले स्वीकार करते हैं और सम्मनन प्रविष्ट में इसी सर्वस्वीकृत आधार पर समस्त सम्प्रदायों के लोग—वे उदार हों या कट्टर, पुरानी स्मृति के फटीर हों या नयी रावनीबास—सभी के सभी आपस में मिलकर रहेंगे। पर सबसं बड़कर एक वय बात भी हम बाह्य रखनी चाहिये, वह है कि इसे हम प्रायः शुरू करते हैं। वह यह है कि भारत में धर्म का तात्पर्य है 'प्रत्यभानुभूति' इससे कम कदापि नहीं। हम ऐसी बात कोई नहीं सिखा सकते कि 'यदि तुम इस मनुष्य को स्वीकार करो तो तुम्हारा उदार हो जायगा' क्योंकि हम उस बात पर विश्वास करते ही नहीं।

तुम अपने को जैसा बनाओगे, अपने को जैसे साँचे में ढालोगे, वैसे ही बनोगे। तुम जो कुछ हो, जैसे हो, वह ईश्वर की कृपा और अपने प्रयत्न से बने हो। किसी मतामत में विश्वास मात्र से तुम्हारा कोई विशेष उपकार नहीं होगा। 'अनुभूति', 'अनुभूति' की यह महती शक्तिमयी वाणी भारत के ही आध्यात्मिक गगनमंडल से आविर्भूत हुई है, और एकमात्र हमारे ही शास्त्रों ने यह बारम्बार कहा है कि 'ईश्वर के दर्शन' करने होंगे। यह बात बड़े साहस की है, इसमें सन्देह नहीं, पर इसका लेशमात्र भी मिथ्या नहीं है, यह अक्षरशः सत्य है। धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति करनी होगी, केवल सुनने से काम नहीं चलेगा, तोते की तरह कुछ थोड़े से शब्द और धर्म विषयक बातें रट लेने से काम नहीं चलेगा, केवल बुद्धि द्वारा स्वीकार कर लेने से भी काम न चलेगा—आवश्यकता है हमारे अन्दर धर्म के प्रवेश करने की। अतः ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखने का सबसे बड़ा प्रमाण यह नहीं है कि तर्क से सिद्ध है, वरन् ईश्वर के अस्तित्व का सर्वोच्च प्रमाण तो यह है कि हमारे यहाँ के प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी पढ़ेंचे हुए लोगो ने ईश्वर का साक्षात्कार किया है। आत्मा के अस्तित्व पर हम केवल इसलिए विश्वास नहीं करते कि हमारे पास उसके प्रमाण में उत्कृष्ट युक्तियाँ हैं, वरन् इसलिए कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के सहस्रो व्यक्तियों ने आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं, आज भी ऐसे बहुत से हैं, जिन्होंने आत्मोपलब्धि की है, और भविष्य में भी ऐसे हज़ारों लोग होंगे, जिन्हें आत्मा की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी। और जब तक मनुष्य ईश्वर के दर्शन न कर लेगा, आत्मा की उपलब्धि न कर लेगा, तब तक उसकी मुक्ति असम्भव है। अतएव, आओ, सबसे पहले हम इस बात को भली भाँति समझ लें, और हम इसे जितना ही अधिक समझेंगे, उतना ही भारत में साम्प्रदायिकता का ह्रास होगा, क्योंकि यथार्थ धार्मिक वही है, जिसने ईश्वर के दर्शन पाये हैं, जिसने अन्तर में उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि की है। तब तो, 'जिसने उसे देख लिया, जो हमारे निकट से भी निकट और फिर दूर से भी दूर है, उसके हृदय की गाँठें खुल जाती हैं, उसके सारे सशय दूर हो जाते हैं और वह कर्मफल के समस्त बन्वनों से छुटकारा पा जाता है।'^१

हा हन्त ! हम लोग बहुधा अर्थहीन वागाडम्बर को ही आध्यात्मिक सत्य समझ बैठते हैं, पांडित्य से भरी सुललित वाक्य-रचना को ही गम्भीर धर्मानुभूति समझ लेते हैं। इसीमें यह सारी साम्प्रदायिकता आती है, सारा विरोध-भाव उत्पन्न होता है। यदि हम एक बार इस बात को भली भाँति समझ लें कि

१ भिद्यते हृदयप्रग्नियश्छिद्यन्ते सर्वसशया ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ मुडकोपनियद् २।२।८॥

प्रत्यक्षानुभूति ही प्रकृत धर्म है तो हम अपने ही हृदय को टटोछेंगे और यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि हम धर्म-न्याय के सत्यों की उपलब्धि की ओर कहाँ तक अग्रसर हुए हैं। और तब हम यह समझ पायेंगे कि हम स्वयं अन्धकार में भटक रहे हैं और अपने साथ दूसरों को भी उसी अन्धकार में भटका रहे हैं। बस इतना समझने पर हमारी साम्प्रदायिकता और ऊढ़ाई मिट जायगी। यदि कोई तुमसे साम्प्रदायिक झगड़ा करने को तैयार हो तो उससे पूछो "तुमने क्या ईश्वर के दर्शन किये हैं? क्या तुम्हें कभी आत्म-दर्शन प्राप्त हुआ है? यदि नहीं तो तुम्हें ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है? तुम तो स्वयं अंधेरे में भटक रहे हो और मुझे भी उसी अंधेरे में बसीटने की कोशिश कर रहे हो? 'अन्ना अन्मे को राह दिखाने' के अनुसार तुम मुझे भी अंधेरे में ले विरोगे। अतएव किसी दूसरे के दोष निकालने के पहले तुमको अधिक विचार कर लेना चाहिए। सबको अपनी अपनी राह से चलने दो—'प्रत्यक्ष अनुभूति' की ओर अग्रसर होने दो। सभी अपने अपने हृदय में उस सत्यस्वरूप आत्मा के दर्शन करने का प्रयत्न करें। और जब वे उस भूमा के उस अनाकृत सत्य के दर्शन कर लेंगे तभी उससे प्राप्त होनेवाले अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। आत्मोपलब्धि से प्रसूत होनेवाला यह अपूर्व आनन्द कपील-कल्पित नहीं है। बरन् भारत के प्रत्येक ऋषि ने प्रत्येक सत्य इष्टा पुरुष ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। और तब उस आत्मदर्शी हृदय से जाप ही जाप प्रेम की बानी फूट निकलेगी। क्योंकि उसे ऐसे परम पुरुष का स्पर्श प्राप्त हुआ है जो स्वयं प्रेमस्वरूप है। बस तभी हमारे घारे साम्प्रदायिक ऊढ़ाई झगड़े दूर होंगे और तभी हम 'हिन्दू' शब्द को तथा प्रत्येक हिन्दू-नामधारी व्यक्ति को यथार्थ समझने हृदय में धारण करने तथा मन्मीर रूप से प्रेम करने व आतिथ्य करने में समर्थ होंगे। मेरी बात पर ध्यान दो केवल तभी तुम वास्तव में हिन्दू कहलाने योग्य होंगे जब 'हिन्दू' शब्द को मुनते ही तुम्हारे अन्तर बिजली कीझने लग जायगी। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे जब तुम किसी भी प्राण के कोई भी भाषा बोलनेवाले प्रत्येक हिन्दू-सन्नत व्यक्ति को एकदम अपना तथा और स्नेही समझने लगोगे। केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू माने जाओगे जब किसी भी हिन्दू कहलानेवाले का दुःख तुम्हारे हृदय में तीर की तरह आकर चुभेगा मानो तुम्हारा अपना ऊढ़का ही विपत्ति में पड़ गया हो। केवल तभी तुम यथार्थ 'हिन्दू' नाम के योग्य होंगे जब तुम उनके लिए ममस्त अत्याचार और उत्पीड़न सहने के लिए तैयार रहोगे। इसके उल्लंघन दृष्टान्त हैं—तुम्हारे ही बुध पौबिन्द सिंह बिजली चर्चा में आरम्भ म ही कर चुका है। इन महारामा ने देश के सभुओं के विरुद्ध लोहा किया हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया अपने पुत्रों को

अपनी आँखों के सामने मौत के घाट उतरते देखा—पर जिनके लिए इन्होंने अपना और अपने प्राणों से बढकर प्यारे पुत्रों का खून बहाया, उन्हीं लोगों ने, इनकी सहायता करना तो दूर रहा, उल्टे इन्हे त्याग दिया। —यहाँ तक कि उन्हे इस प्रदेश से भी हटना पडा। अन्त मे मर्मन्तिक चोट खाये हुए सिंह की भाँति यह नरकेसरी शान्तिपूर्वक अपने जन्म-स्थान को छोड दक्षिण भारत मे जाकर मृत्यु की राह देखने लगा, परन्तु अपने जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक उसने अपने उन कृतघ्न देशवासियों के प्रति कभी अभिशाप का एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। मेरी बात पर ध्यान दो। यदि तुम देश की भलाई करना चाहते हो तो तुममे से प्रत्येक को गुरु गोविन्द सिंह बनना पडेगा। तुम्हें अपने देशवासियों मे भले ही हजारो दोष दिखायी दे, पर तुम उनकी रग रग मे बहनेवाले हिन्दू रक्त की ओर ध्यान दो। तुम्हे पहले अपने इन स्वजातीय नर-रूप देवताओं की पूजा करनी होगी, भले ही वे तुम्हारी बुराई के लिए लाख चेट्टा किया करे। इनमे से प्रत्येक व्यक्ति यदि तुम पर अभिशाप और निन्दा की बौछार करे तो भी तुम इनके प्रति प्रेमपूर्ण वाणी का ही प्रयोग करो। यदि ये तुम्हे त्याग दे, पैरो से ठुकरा दें तो तुम उसी वीरकेसरी गोविन्द सिंह की भाँति समाज से दूर जाकर नीरव भाव से मौत की राह देखो। जो ऐसा कर सकता है, वही सच्चा हिन्दू कहलाने का अधिकारी है। हमे अपने सामने सदा इसी प्रकार का आदर्श उपस्थित रखना होगा। पारस्परिक विरोध-भाव को भूलकर चारों ओर प्रेम का प्रवाह बहाना होगा।

लोग भारत के पुनरुद्धार के लिए जो जी मे आये, कहे। मैं जीवन भर काम करता रहा हूँ, कम से कम काम करने का प्रयत्न करता रहा हूँ, मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों मे धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असम्भव है। केवल भारत ही क्यों, सारे ससार का कल्याण इसी पर निर्भर है। क्योंकि, मैं तुम्हें स्पष्टतया बताये देता हूँ कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता अपनी नीब तक हिल गयी है। भौतिकवाद की कच्ची रेतीली नीब पर खड़ी होनेवाली बडी से बडी इमारतें भी एक न एक दिन अवश्य ही आपद्ग्रस्त होगी, ढह जायेंगी। इस विषय मे ससार का इतिहास ही सबसे बडा साक्षी है। जाति पर जाति उठी हैं और भौतिकवाद की नीब पर उन्होंने अपने गौरव का प्रासाद खडा किया है। उन्होंने ससार के समक्ष यह घोषणा की है कि जड के सिवा मनुष्य और कुछ नहीं है। ध्यान दो, पाश्चात्य भाषा मे 'मनुष्य आत्मा छोडता है' (A man gives up the ghost), पर हमारी भाषा मे 'मनुष्य शरीर छोडता है।' पाश्चात्य मनुष्य अपने सम्बन्ध मे पहले देह को ही लक्ष्य करता है, उसके बाद उसके एक आत्मा है। पर हम लोगो के अनुसार मनुष्य पहले आत्मा ही है, और फिर उसके एक देह

भी है। इन को विभिन्न भाष्यों की छानबीन करने पर तुम देखोग कि प्रायः और पाश्चात्य विचार-प्रवाही में आकाश पाताळ का अन्तर है। इसीलिए जितनी सम्मताएँ मौरिक सुख-स्वच्छन्दता की खेती की नींव पर काम्य हुई थीं वे सभी बोधे ही समय के लिए जीवित रहकर एक एक करके ससार से लुप्त हो गयीं परन्तु भारत की सम्मता और भारत के चरणों के पास बैठकर चिन्ता ग्रहण करनेवाले चीन और जापान की सम्मता आज भी जीवित है और इतना ही नहीं बल्कि उनमें पुनरुत्थान के अक्षय भी दिखायी दे रहे हैं। 'फ़िनिस' के समान हजारों बार मरने होने पर भी वे पुनः अधिक तेजस्वी होकर प्रस्फुरित होने को तैयार हैं। पर मौरिक बार के आघार पर जो सम्मताएँ स्थापित हैं वे यदि एक बार मरने हो गयीं तो फिर उठ नहीं सकतीं—एक बार यदि महम डह पड़ा तो बस सब के लिए बुर में मिल गया। अतएव धर्म के साथ यह देखते रहो हम लोगों का भविष्य उज्ज्वल है।

उठावके मत बनो किसी दूसरे का अनुकरण करने की जेष्टा मत करो। दूसरे का अनुकरण करना सम्मता की निशानी नहीं है यह एक महान् पाठ है जो हमें याद रखना है। मैं यदि आपही राजा की सी पोशाक पहनूँ तो क्या इतने ही से मैं राजा बन जाऊँगा? घेर की खास मोड़कर क्या कभी घेर नहीं बन सकता। अनुकरण करना हीन और डरपोक की तरह अनुकरण करना कभी उन्नति के पथ पर आगे नहीं बढ़ा सकता। यह तो मनुष्य के अक्षय का अक्षय है। जब मनुष्य अपने आप पर श्रद्धा करने लग जाता है, जब समझना चाहिए कि उस पर अन्तिम थोट बैठ चुकी है। जब वह अपने पूर्वजों को मामले में रुजित होता है तो समझ लो कि उसका जितना निकट है। यद्यपि मैं हिन्दू जाति में एक नमस्कृत व्यक्ति हूँ तथापि अपनी जाति और अपने पूर्वजों के पीरब से मैं अपना पीरब धारता हूँ। अपने को हिन्दू बताते हुए, हिन्दू नहकर अपना परिचय देते हुए, मुझे एक प्रकार का गर्व सा होता है। मैं तुम लोगों का एक तुच्छ सेवक होने में अपना पीरब समझता हूँ। तुम लोग आने ज्ञानियों के बखबर हो—उन ज्ञानियों के भित्तों महता की तुम्हारा नहीं हो सकती। मुझे इसका गर्व है कि मैं तुम्हारे देश का एक नमस्कृत नागरिक हूँ। अतएव भाइयो आत्मविश्वासी बनो। पूर्वजों के नाम से अपने को रुजित नहीं गौरवान्वित समझो। माद रहे किसीका अनुकरण कदापि न करो। कदापि नहीं। जब कभी तुम औरों के विचारों का अनुकरण करते हो तुम अपनी स्वाधीनता पैदा बैठन हो। यहाँ तक कि आध्यात्मिक नियम में भी यदि दूसरों के

१ मूलम्नी दन्तचक्रों के अनुसार फ़िनिस (Phoenix) एक चिड़िया है जो बरसेली ५ वर्ष तक जीती है और पुनः अपने भस्म में से ही उठती है।

आज्ञाधीन हो कार्य करोगे, तो अपनी सारी शक्ति, यहाँ तक कि विचार की शक्ति भी खो बैठोगे। अपने स्वयं के प्रयत्नो द्वारा अपने अन्दर की शक्तियों का विकास करो। पर देखो, दूसरे का अनुकरण न करो। हाँ, दूसरो के पास जो कुछ अच्छाई हो, उसे अवश्य ग्रहण करो। हमे दूसरो से अवश्य सीखना होगा। जमीन में बीज बो दो, उसके लिए पर्याप्त मिट्टी, हवा और पानी की व्यवस्था करो, जब वह बीज अकुरित होकर कालान्तर में एक विशाल वृक्ष के रूप में फैल जाता है, तब क्या वह मिट्टी बन जाता है, या हवा या पानी? नहीं, वह तो विशाल वृक्ष ही बनता है—मिट्टी, हवा और पानी से रस खींचकर वह अपनी प्रकृति के अनुसार एक महीरूह का रूप ही धारण करता है। उसी प्रकार तुम भी करो—औरो से उत्तम बातें सीखकर उन्नत बनो। जो सीखना नहीं चाहता, वह तो पहले ही मर चुका है। महर्षि मनु ने कहा है

आददीत परा विद्या प्रयत्नादवरादपि ।
अन्यादपि पर धर्म स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि ॥

—‘स्त्री-रत्न को, भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाडाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।’ औरो के पास जो कुछ भी अच्छा पाओ, सीख लो, पर उसे अपने भाव के साँचे में ढालकर लेना होगा। दूसरे की शिक्षा ग्रहण करते समय उसके ऐसे अनुगामी न बनो कि अपनी स्वतन्त्रता गँवा बैठो। भारत के इस जातीय जीवन को भूल मत जाना। पल भर के लिए भी ऐसा न सोचना कि भारतवर्ष के सभी अधिवासी यदि अमुक जाति की वेश-भूषा धारण कर लेते या अमुक जाति के आचार-व्यवहारादि के अनुयायी बन जाते तो बड़ा अच्छा होता। यह तो तुम भली भाँति जानते हो कि कुछ ही वर्षों का अभ्यास छोड़ देना कितना कठिन होता है! फिर यह ईश्वर ही जानता है कि तुम्हारे रक्त में कितने सहस्र वर्षों का संस्कार जमा हुआ है, कितने सहस्र वर्षों से यह प्रबल जातीय जीवन-स्रोत एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा है। और क्या तुम यह समझते हो कि वह प्रबल धारा, जो प्रायः अपने समुद्र के समीप पहुँच चुकी है, पुनः उलटकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों पर वापस जा सकती है? यह असम्भव है! यदि ऐसी चेष्टा करोगे तो जाति ही नष्ट हो जायगी। अतः, इस जातीय जीवन-स्रोत को पूर्ववत् प्रवाहित होने दो। हाँ, जो बाँध इसके रास्ते में रुकावट डाल रहे हैं, उन्हें काट दो, इसका रास्ता साफ़ करके प्रवाह को मुक्त कर दो, देखोगे, यह जातीय जीवन-स्रोत अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से फूट कर आगे बढ़ निकलेगा और

यह जाति अपनी सर्वांगीण उन्नति करते करते अपने चरम सख्य की ओर अग्रसर होती जायगी।

माइयो ! यही कार्य-प्रणाली है, जो हमें भारत में वर्म के क्षेत्र में अपनाती होगी। इसके सिवा और भी कई महती समस्याएँ हैं, भिमकी चर्चा समयोभास के कारण इस पत्र में नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए जाति-भेद सम्बन्धी अद्भुत समस्या को ही के लो। मैं जीवन भर इस समस्या पर हर एक पल्लू से विचार करता रहा हूँ। भारत के प्राम-प्रत्येक प्रान्त में जाकर मैंने इस समस्या का अध्ययन किया है। इस देश के कमसे कम हर एक भाग की विभिन्न जातियों से मैं मिला-जुटा हूँ। पर जितना ही मैं इस विषय पर विचार करता हूँ मेरे सामने उठती ही कठिनाइयाँ या पड़ती हैं और मैं इसके उद्देश्य अथवा तात्पर्य के विषय में किन्तुर्लभ्यनिमुक्त सा हो जाता हूँ। अन्त में जब मेरी जीनों के सामने एक धीम आलोक-रैसा दिशापी देते लगी है, इपर कुछ ही समय से इसका मूल उद्देश्य मेरी समझ में आने लगा है।

इसके बाद फिर ध्यान-यान की समस्या भी बड़ी विषय है। वास्तव में यह एक बड़ी जटिल समस्या है। साधारणतः हम लोग इसे जितना जनावरणक समझते हैं उतना ही यह उठनी जनावरणक नहीं है। मैं तो इस सिद्धान्त पर आ पहुँच हूँ कि आन्तरिक ध्यान-यान के बारे में हम लोग जिस बात पर जोर देते हैं वह एक बड़ी विचित्र बात है—वह धास्मानुमोदित नहीं है। तात्पर्य यह कि ध्यान-यान। वास्तविक पवित्रता की अवलोकना करके ही हम लोग कष्ट पा रहे हैं। हा धास्मानुमोदित आहार प्रथा के वास्तविक समिप्राय को विस्तृत मूल लये है।

इसी प्रकार, और भी कई समस्याएँ हैं जिन्हें मैं तुम लोगों के समक्ष रखना चाहता हूँ और गाब ही यह बतलाना चाहता हूँ कि इन समस्याओं के समाधान क्या हैं तथा किस प्रकार इन समाधानों को कार्यरूप में परिणत किया जा सकता है पर दुःख है समा के व्यवस्थित रूप में आरम्भ होने में देर हो गयी और अब मैं तुम लोगों को और अधिक नहीं रोचना चाहता। अतः जाति भेद तथा अत्याय समस्याओं पर मैं फिर भविष्य में कभी कुछ नहीं गा।

अपने वैयक्तिक तब और बढ़कर मैं आध्यात्मिक तब विषयक अपना बक्तव्य गमनाय कर रहा। भारत में वर्म का जितों में गतिशील बना हुआ है। हम चाहते हैं कि उगम गति गमना हो। मैं चाहता हूँ कि प्रयोग मनुष्य के जीवन में वर्म प्रीतिगित हो। मैं चाहता हूँ कि प्राचीन वातकी तर्क गमनाय में भेदक बलि के होकर तब गमनाय गमनाय बाद में वर्म का प्रयोग हो। यह गते वर्म ही हम जाति का गमनाय उगमगमनाय तब गमनाय गमनाय है। हम वर्म को हर एक भारतीय के हस्तों में तब नि गमनाय गमनाय गमनाय है। हर एक के चरम में गमनाय

वायु सबके लिए समान रूप से प्राप्त होती है, उसी प्रकार भारतवर्ष में धर्म को सुलभ बनाना होगा। भारत में इसी प्रकार का कार्य करना होगा। पर छोटे छोटे दल बाँध आपसी मतभेदों पर विवाद करते रहने से नहीं बनेगा, हमें तो उन बातों का प्रचार करना होगा, जिनमें हम सब सहमत हैं और तब आपसी मतभेद आप ही आप दूर हो जायेंगे। मैंने भारतवासियों से बारम्बार कहा है और अब भी कह रहा हूँ कि कमरे में यदि सैकड़ों वर्षों से अन्धकार फैला हुआ है, तो क्या 'घोर अन्धकार', 'भयकर अन्धकार' कहकर चिल्लाने से अन्धकार दूर हो जायगा? नहीं, रोशनी जला दो, फिर देखो कि अँधेरा आप ही आप दूर हो जाता है या नहीं। मनुष्य के सुधार का, उसके सस्कार का यही रहस्य है। उसके समक्ष उच्चतर बातें, उच्चतर प्रेरणाएँ रखो, पहले मनुष्य में, उसकी मनुष्यता में विश्वास रखो। ऐसा विश्वास लेकर क्यों प्रारम्भ करें कि मानव हीन और पतित है? मैं आज तक मनुष्य पर, बुरे से बुरे मनुष्य पर भी, विश्वास करके कभी विफल नहीं हुआ हूँ। जहाँ कहीं भी मैंने मानव में विश्वास किया, वहाँ मुझे इच्छित फल ही प्राप्त हुआ है—सर्वत्र सफलता ही मिली है, यद्यपि प्रारम्भ में सफलता के अच्छे लक्षण नहीं दिखायी देते थे। अतः, मनुष्य में विश्वास रखो, चाहे वह पंडित ही या घोर मूर्ख, साक्षात् देवता जान पड़े या मूर्तिमान शैतान, सबसे पहले मनुष्य में विश्वास रखो, और तदुपरान्त यह विश्वास लाने का प्रयत्न करो कि यदि उसमें दोष हैं, यदि वह गलतियाँ करता है, यदि वह अत्यन्त घृणित और असार सिद्धान्तों को अपनाता है तो वह अपने यथार्थ स्वभाव के कारण ऐसा नहीं करता, वरन् उच्चतर आदर्शों के अभाव में वैसा करता है। यदि कोई व्यक्ति अमृत्य की ओर जाता है, तो उसका कारण यही समझो कि वह सत्य को ग्रहण नहीं कर पाता। अतः, मिथ्या को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि उसे सत्य का ज्ञान कराया जाय। उसे सत्य का ज्ञान दे दो और उसके साथ अपने पूर्व मन के भाव की तुलना उसे करने दो। तुमने तो उसे सत्य का असली रूप दिखा दिया, वस यही तुम्हारा काम समाप्त हो गया। अब वह स्वयं उस सत्य के साथ अपने पूर्व भाव की तुलना करके देखे। यदि तुमने वास्तव में उसे सत्य का ज्ञान करा दिया है तो निश्चय जानो, मिथ्या भाव अवश्य दूर हो जायगा। प्रकाश कभी अन्धकार का नाश किये बिना नहीं रह सकता। सत्य अवश्य ही उसके भीतर के सद्भावों को प्रकाशित करेगा। यदि सारे देश का आध्यात्मिक सस्कार करना चाहते हो, तो उसके लिए यही रास्ता है—'नान्य पन्था'। वाद-विवाद या लडाई-झगड़ों में कभी अच्छा फल नहीं हो सकता। लोगों से यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि तुम लोग जो कुछ कर रहे हो, वह ठीक नहीं है, खराब है। जो कुछ अच्छा है, उसे उनके सामने रख दो, फिर देखो, वे कितने आग्रह के साथ उसे ग्रहण करते

हैं और फिर देखोगे कि मनुष्य मात्र में जो अविनाशी ईश्वरीय शक्ति है, वह जाग्रत हो जाती है और जो कुछ उत्तम है, जो कुछ महिमामय है उसे ग्रहण करने के लिए हाथ फेंका बेटी है।

जो हमारी समझ जाति का सप्टा पाञ्चक एवं रक्षक है, हमारे पूर्वजों का ईश्वर है मछे ही वह विष्णु, शिव शक्ति या गणेश आदि नामों से पुकारा जाता हो सगुन या मिर्यन्क ब्रह्मा साकार या निराकार रूप से उसको उपासना की जाती हो जिसे जानकर हमारे पूर्वज एक सखिमा बहुधा बबन्ति कह गये हैं वह अपनी अनस्त प्रेम-शक्ति के साथ हममें प्रवेश कर, अपने सुमार्गीयियों की हम पर बर्पा करे, हमें एक दूसरे को समझने की सामर्थ्य दे जिससे हम यथार्थ प्रेम के साथ सत्य के प्रति तीव्र अनुयोग के साथ एक दूसरे के हित के लिए कार्य कर सके जिससे भारत के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण के इस महत्कार्य में हमारे अन्दर अपने व्यक्तिगत नाम यद्यपि व्यक्तिगत स्वार्थ व्यक्तिगत बड़प्पन की दासता के अङ्कुर न फूटें।

भक्ति

[लाहौर में ९ नवम्बर, १८९७ को दिया हुआ भाषण]

समस्त उपनिषदों के गम्भीर निनादी प्रवाह के अतराल से, बड़ी दूर से आने-वाली प्रतिध्वनि की तरह, एक शब्द हमारे कानों तक पहुँचता है। यद्यपि उसके आयतन और उच्चता में उसकी बहुत कुछ वृद्धि हुई है, पर समग्र वेदान्त साहित्य में, स्पष्ट होने पर भी वह उतना प्रबल नहीं है। उपनिषदों का प्रधान उद्देश्य हमारे आगे भूमा का भाव और चित्र अंकित करना ही जान पड़ता है। फिर भी इस अपूर्व उदात्त भाव के पीछे कहीं कहीं हमें कवित्व का भी आभास मिलता है, जैसे हम पढ़ते हैं

न तत्र सूर्यो भान्ति न चन्द्रतारकम् ।

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥

(कठोपनिषद् २।२।१५)

—‘वहाँ सूर्य प्रकाश नहीं करता, चन्द्र और सितारे भी वहाँ नहीं हैं, ये विजलियाँ भी वहाँ नहीं चमकती, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या है।’ इन दोनों अद्भुत पक्तियों का अपूर्व हृदयस्पर्शी कवित्व सुनते सुनते हम मानो इस इन्द्रियगम्य जगत् से—यहाँ तक कि बुद्धि-जगत् से भी दूर, बहुत दूर, ऐसे एक जगत् में जा पहुँचते हैं जिसे किसी काल में ज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता, यद्यपि वह सदा हमारे पास ही मौजूद रहता है। इसी महान् भाव की छाया की तरह उसका अनुगामी एक और महान् भाव है, जिसको मानव जाति और भी आसानी के साथ प्राप्त कर सकती है, जो मनुष्य के दैनिक जीवन में अनुसरण करने के अधिक उपयुक्त है, और जिसे मानव जीवन के प्रत्येक विभाग में प्रविष्ट कराया जा सकता है। वह क्रमशः पुष्ट होता आया है और परवर्ती युगों में पुराणों में और भी पूर्णता के साथ, और भी स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया गया है—और वह है भक्ति का आदर्श। भक्ति का बीज पहले से ही विद्यमान है, सहिताओं में भी इसका थोड़ा बहुत परिचय मिलता है, उससे कुछ अधिक विकास उपनिषदों में देखने में आता है, किन्तु पुराणों में उसका विस्तृत निरूपण दिखायी देता है।

अतः भक्ति को मली भाँति समझने के लिए हमें अपने पुराणों को समझना

होगा। इस बीच पुराणों की प्रामाणिकता को लेकर बहुत कुछ शक-विवाद हो चुका है, किन्तु ही अनिश्चित और अस्पष्ट धर्मों को लेकर आत्मोपना-प्रत्याखेपना हो चुकी है, किन्तु ही समालोचकों ने कई अंशों के विषय में यह दिखाया है कि वर्तमान विज्ञान के आलोक में बैठकर नहीं सकते जावि जावि। परन्तु इन शक-विवादों को छोड़ देने पर, पौराणिक उक्तियों के वैज्ञानिक शैमोकिज और प्मोतिपिक सत्यासत्य का निर्णय करना छोड़ देने पर, तथा प्रायः सभी पुराणों का आरम्भ से अन्त तक मकी शक्ति निरीक्षण करने पर हमें एक तत्त्व निश्चित और स्पष्ट रूप से दिखायी देता है, वह है शक्तिवाद। साधु, महात्मा और राजर्षियों के चरित का वर्णन करते हुए शक्तिवाद आरम्भार उल्लिखित उदाहरण और आलोचित हुआ है। सौन्दर्य के महान् आवर्णक—शक्ति के आवर्ण के दृष्टान्तों को समझना और वर्णना ही सब पुराणों का प्रमाण उद्देश्य जान पड़ता है। मैंने पहले ही कहा है कि यह आवर्ण साधारण मनुष्यों के लिए अधिकतर उपभोगी है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो वेदान्तालोक की पूर्ण छटा का शैमय समझ सकते हैं। अबका उक्तका शोचित आकर कर सकते हैं—उनके तत्त्वों पर शमन करना बड़ी दूर की बात है। क्योंकि वास्तविक वेदान्त का सबसे पहला काम है शमी शर्षि निर्मीक होना। यदि कोई वेदान्तो होने का शाना करता हो तो उसे अपने हृदय से मय को सदा के लिए शर्षित कर देना होना। और हम जानते हैं कि ऐसा करना किष्ना कठिन है। जिन्होंने संसार के सब प्रकार के शगम छोड़ दिये हैं और शिनके ऐसे शन्शन बहुत ही कम रहे यने हैं जो उन्हें शूर्बल हृदय कापुश्य बना सकते हैं। वे भी मग ही मग इस बात को अनुभव करते हैं कि वे समय समय पर किन्तु शूर्बल और शैरे शर्षिय हो जाते हैं। शिन शीयों के चारों ओर ऐसे शन्शन हैं जो शीतर-बाहर शर्बल हृदयों शियों में उक्तते हुए हैं। जीवन में प्रत्येक शय शियों का शालन जिन्हें शीने से शीने शिये वा रहा है। वे किन्तु शूर्बल होते हैं क्या यह शी कहला शोमा? हमारे पुराण ऐसे ही शीयों को शक्ति का शत्यत मनोहापी शरेय देते हैं।

सम शीयों के लिए ही सुकोमल और कश्चित्मय शारों का शित्शारशूर्बल वर्णन किया गया है। श्रुत श्रुद्धाद तथा शश्यान्प शैनशै हृदयों शत्यों की श्रुमुन और शनीनी जीवन-कषाई शगित की गयी है। इन दृष्टान्तों का उद्देश्य यही है कि शीय उसी शक्ति का अपने अपने जीवन में शिकास करें और उन्हें इन दृष्टान्तों द्वारा शान्त शकशिलावी दे। तुम शीम पुण्यों की शैमनिक शत्यता पर शिरबाध करो या न करो पर तुम शीयों में ऐसा कोई भी शारमी शयी है शिध पर श्रुद्धाद श्रुत या इन पौराणिक शत्यों के शार्यानों में श कित्ती एक का कुछ भी शतर न

पडा हो। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन पुराणों की उपयोगिता केवल आजकल के ज़माने में ही है, पहले नहीं थी। पुराणों के प्रति हमारे कृतज्ञ रहने का एक और कारण यह भी है कि पिछले युग में अवनत बौद्ध धर्म हमें जिस राह से ले चल रहा था, पुराणों ने उसकी अपेक्षा प्रशस्ततर, उन्नततर और सर्वसाधारण के उपयुक्त धर्म-मार्ग बताया। भक्ति का सहज और सरल भाव सुबोध भाषा में व्यक्त अवश्य किया गया है, पर उतने से ही काम नहीं चलेगा। हमें अपने दैनिक जीवन में उस भाव का व्यवहार करना होगा। ऐसा करने से हम देखेंगे कि भक्ति का वही भाव क्रमशः परिस्फुट होकर अन्त में प्रेम का सारभूत बन जाता है। जब तक व्यक्तिगत और जड़ वस्तुओं के प्रति प्रीति रहेगी, तब तक कोई पुराणों के उपदेशों से आगे न बढ़ सकेगा। जब तक दूसरों की सहायता अपेक्षित रहेगी, अथवा दूसरों पर निर्भर किया जायगा, जब तक यह मानवीय दुर्बलता बनी रहेगी, तब तक ये पुराण भी किसी न किसी रूप में मौजूद रहेंगे। तुम उन पुराणों के नाम बदल सकते हो, उनकी निन्दा कर सकते हो, पर तुमको दूसरे कुछ नये पुराण बना लेने ही पड़ेंगे। अगर हम लोगों में किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव हो जो इन पुराणों को ग्रहण करना अस्वीकार कर दे, तो तुम देखोगे कि उनके देहान्त हो जाने के बीस ही वर्ष बाद उनके शिष्यों ने उनके जीवन के आधार पर एक नया पुराण रच डाला है। वस यही अन्तर होगा।

मनुष्य की प्रकृति यही चाहती है, उसके लिए ये आवश्यक हैं। पुराणों की आवश्यकता केवल उन्हीं लोगों को नहीं है जो सारी मानवीय दुर्बलताओं के परे होकर परमहसोचित निर्भकता प्राप्त कर चुके हैं, जिन्होंने माया के सारे बन्धन काट डाले हैं, यहाँ तक कि स्वाभाविक अभावों तक को भी पार कर गये हैं जो सब कुछ जीत चुके हैं और जो इस लोक में देवता हैं, केवल ऐसे महापुरुषों को ही पुराणों की आवश्यकता नहीं है। सगुण रूप में ईश्वर की उपासना किये बिना साधारण मनुष्य का काम नहीं चल सकता। यदि वह प्रकृति के मध्य स्थित भगवान् की पूजा नहीं करता, तो उसे स्त्री, पुत्र, पिता, भाई, आचार्य या किसी न किसी व्यक्ति को भगवान् के स्थान पर प्रतिष्ठित करके उसकी पूजा करनी पड़ती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को ऐसा करने की अधिक आवश्यकता पड़ती है। प्रकाश का स्पन्दन सर्वत्र रहता है। विल्ली या उसी श्रेणी के अन्य जानवर अँधेरे में भी देख पाते हैं। इसी बात से प्रकाश का स्पन्दन अन्धकार में होना भी सिद्ध होता है। परन्तु हम यदि किसी चीज़ को देखना चाहते हैं, तो उस चीज़ में उसी स्तर के अनुकूल स्पन्दन होना चाहिए, जिस स्तर में हम लोग मौजूद हैं। मतलब यह कि हम एक निर्गुण, निराकार सत्ता के विषय में बातचीत या चर्चा भले ही करें, पर जब तक

हम सोच इस मर्त्यलोक के सामान्य मनुष्य की स्थिति में खींचें तब तक हमें मनुष्यों में ही मयमान को देखना पड़ेगा। इसीलिए हमारी मयमान विषयक धारणा एवं उपासना स्वभावतः मानवी है। सचमुच ही 'यह शरीर मयमान का सबसे ठो मन्विर है। इसीसे हम देखते हैं कि यों से मनुष्य मनुष्य की ही उपासना करती जा रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वाभाविक रूप से विकसित अभिप्राय देखने में आता है, तो उनकी निन्दा या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह दिखानी देता है कि इसकी रीढ़ काफ़ी मजबूत है। ऊपर की साक्षात्-प्रमाणों के ही लिये आलोचना के योग्य हों पर उनकी जड़ बहुत ही गहरी तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपर की आश्चर्यों के होने पर भी उसमें एक सार-तत्त्व है। मैं तुमसे यह कहना नहीं चाहता कि तुम बिना समझे कृष्ण किन्हीं पुरानी कथाओं बनना बर्हिस्तानिक अनर्थक सिद्धान्तों को पबरबस्तों गळे के नीचे उतार आओ। तुम्हारे कर्म पुराणों में बामाचारी व्याख्याएँ प्रवेश पायी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि तुम उन सब पर विश्वास करो। मैं ऐसा करने की नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुराणों के अस्तित्व की रक्षा का कारण एक सार-तत्त्व है जिसे कष्ट नहीं होने देना चाहिए। और यह सार-तत्त्व है जिनमें निहित मन्त्र सम्बन्धी उपदेश बर्म को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिणत करना बर्धनों के अन्वेषण में विचरण करनेवाले बर्म का सामान्य मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाना।

ट्रिब्यून' में प्रकाशित रिपोर्ट

इस घापन की जो रिपोर्ट 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्न लिखित है

बस्ता महोदय ने भक्ति की साधना में प्रतीक-मठिमार्यों की उपबोधिता का समर्पण किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय जित अवस्था में है, ईश्वरेच्छा से यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान तत्त्व का प्रतिपाद स्थान है। मनुष्य वैतन्य और आध्यात्मिकता आदि विषयों पर चाहे जितनी बातें क्यों न बनाये पर वास्तव में वह अभी अज्ञानावस्था ही है। ऐसे जड़ मनुष्य को हाथ पकड़कर धीरे धीरे उठाना होगा—तब तक उठाना होगा जब तक वह वैतन्यमय सम्पूर्ण आध्यात्मिक आस्थापन न हो जाय। आजकल के जमाने में ९९ की संख्या ऐसे आदमी है जिनके लिए आध्यात्मिकता की संज्ञाता कठिन है। जो प्रेरक शक्तियाँ हमें उपेक्षित करने लगी हैं, तथा हम जो रूप प्राप्त करना चाहते हैं वे मानी जा रहे हैं। हर्षी स्तर के तत्त्वों में पैदा करना है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेताओं को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य में पुराणों को विस्मयजनक और बेजोड़ सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उसका रास्ता जड़ वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नहीं है। अतः, जड़ जगत् में जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम में लाना होगा कि मानव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति में विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमें भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड़ मन्दिर बनाकर भगवान् में प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने में मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक की जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यों न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने में सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के सहायक नहीं होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम कवीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी। परन्तु भारत में ऐसे कितने ही बड़े बड़े दार्शनिक और धर्म-संस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्चकोटि की उपासना नहीं माना है, और न किसी पुराण में ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियों के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमें मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नहीं करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड़ वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति में सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता कि जड़ वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निकृष्ट श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगों को बलपूर्वक

ही प्रकाशित होते हैं, इसकिए वे सभी एक ही प्रकार या एक ही श्रेणी के हैं। जिस तरह दूर और पास से फ़ोटोग्राफ़ लेने पर एक ही सूर्य का चित्र अनेक प्रकार से बीख पड़ता है और ऐसा माकूम होता है कि प्रत्येक चित्र भिन्न भिन्न सूर्यों का है, उसी तरह सापेक्ष सत्य के विषय में भी समझना चाहिए। सभी सापेक्ष सत्य निरपेक्ष सत्य के साथ ठीक इसी रीति से सम्बद्ध हैं। अतएव प्रत्येक सापेक्ष सत्य या धर्म उसी निरपेक्ष सत्य का आभास होने के कारण सत्य है।

‘विरवास ही धर्म का मूल है’—मेरे इस कथन पर स्वामी जी ने मुसकराकर कहा “उबा होने पर फिर छाने-पीने का कष्ट नहीं रहता किन्तु उबा होना ही तो कठिन है। क्या विरवास कभी बार-बार बस्ती करके से हीता है? बिना अनुभव के ठीक ठीक विस्वास होना असम्भव है।

किसी प्रसंग में उनको ‘साधु’ कहने पर उन्होंने उत्तर दिया ‘हम सोच क्या साधु हैं? ऐसे अनेक साधु हैं, जिनके दर्शन या स्पर्श मात्र से ही विष्य ज्ञान का उदय होता है।

‘संन्यासी इस प्रकार भाङ्गी होकर क्यों समय बिताते हैं? दूसरों की सहायता के ऊपर क्यों निर्भर रहते हैं और समाज के लिए कोई हितकर काम क्यों नहीं करते? —इन सब प्रश्नों के उत्तर में स्वामी जी बोले “अच्छा बचामो तो भला तुम इतने कष्ट से अर्धोपार्जन कर रहे हो। उसका बहुत बौद्धा सा व्यय केवल अपने लिए व्यय करते हो। पेय में से कुछ अंश दूसरे लोगों के लिए, जिन्हें तुम अपना समझते हो, व्यय करते हो। वे सोच उसके लिए न तुम्हारा उपकार मानते हैं और न उनके लिए जितना व्यय करते हो उससे सन्तुष्ट ही होते हैं। एक तुम कीड़ी कीड़ी जोड़े जा रहे हो। तुम्हारे मर जाने पर कोई धूमरा उसका मोम करेगा और ही सकता है, यह कहकर वाली जी ने कि तुम अधिक धरवा नहीं रख सके। ऐसा तो गया-मुंबय तुम्हारा हाल है। और मैं तो बेगा कुछ भी नहीं करता। भूल लयन पर पैर पर हाथ रखकर, हाथ को मुँह के पास से पारकर लियला देता हूँ जो पाता हूँ या फिटा हूँ कुछ भी कष्ट नहीं उठाता कुछ भी संघट्ट नहीं करता। हम बानों में कौन बुद्धिमान है?—तुम या मैं।” मैं तो मुनकर बचाक रह गया। इसके पहले मैंने अपने सामने किमीको भी इस प्रकार स्पष्ट रूप से बीखने का साहस करते नहीं देगा था।

आहार आदि करके कुछ विधायक कर चुकने के बाद फिर उन्हीं बकील महाशय के निवास-स्थान पर गया। वहाँ अनेक प्रकार के बार्तालाप और धर्मा बतलने लगी। लजबल जी बने राज की स्वामी जी की लेकर मैं अपने निवास-स्थान की ओर

लौटा। आते आते मैंने कहा, “स्वामी जी, आपको आज तर्क-वितर्क में बहुत कष्ट हुआ।”

वे बोले, “बच्चा, तुम लोग तो ठहरे उपयोगितावादी (utilitarian)। यदि मैं चुप होकर बैठ रहूँ, तो क्या तुम लोग मुझे एक मुट्ठी भी खाने को दोगे। मैं इस प्रकार अनवरत बकता हूँ, लोगो को सुनकर आनन्द होता है, इसीलिए वे दल के दल आते हैं। किन्तु यह जान लो, जो लोग सभा में तर्क-वितर्क करते हैं, अनेक प्रश्न पूछते हैं, वे वास्तविक सत्य को समझने की इच्छा से वैसा नहीं करते। मैं भी समझ जाता हूँ, कौन किस भाव से क्या कह रहा है और उसे उसी तरह उत्तर देता हूँ।”

मैंने स्वामी जी से पूछा, “अच्छा स्वामी जी, सभी प्रश्नों के इस प्रकार उत्तम उत्तम उत्तर आप तुरन्त किस प्रकार दे लेते हैं?”

वे बोले, “ये सब प्रश्न तुम्हारे लिए नवीन हैं, किन्तु मुझसे तो कितने ही मनुष्य कितनी बार इन प्रश्नों को पूछ चुके हैं, और उनका उत्तर कितनी ही बार दे चुका हूँ।” रात में भोजन करते समय और भी अनेक बातें उन्होंने कही। पैसा न छूते हुए देश-भ्रमण करते करते कहीं कौसी कौसी घटनाएँ हुईं, यह सब वर्णन करने लगे। सुनते सुनते मेरे मन में हुआ—अहा! न जाने इन्होंने कितना कष्ट, कितनी विपत्तियाँ सही हैं। किन्तु वे तो उन सब घटनाओं को इस प्रकार हँसते हँसते सुनाने लगे, मानो वे अत्यन्त मनोरञ्जक कहानियाँ हो। कही पर उनका तीन दिन तक बिना कुछ खाये रहना, किसी स्थान में मिर्चा खाने के कारण पेट में ऐसी जलन होना, जो एक कटोरी इमली का पत्ता पीने पर भी शान्त नहीं हुई, कही पर ‘यहाँ साधु-सन्यासियों को स्थान नहीं’—इस प्रकार झिडके जाना, और कही खुफिया पुलिस की कडी नज़र में रहना—आदि सब घटनाएँ, जिन्हे सुनकर हमारे शरीर का खून पानी ही जाय, उनके लिए तो मानो एक तमाशा थी।

रात अधिक हुई देखकर उनके लिए सोने का प्रबन्ध कर मैं भी सोने के लिए चला गया, किन्तु रात में नीद नहीं आयी। सोचने लगा—कौसा आश्चर्य, इतने वर्षों का दृढ़ सन्देह और अविश्वास स्वामी जी को देखकर और उनकी दो-चार बातें सुनकर ही दूर हो गया। अब और कुछ पूछने को नहीं रहा। जैसे जैसे दिन बीतने लगे, हमारी ही क्या—हमारे नौकर-चाकरों की भी उनके प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति हो गयी कि कभी कभी स्वामी जी उन लोगों की सेवा और आग्रह के मारे परेशान हो उठते थे।

२० अक्टूबर, १८९२ ई०। सबेरे उठकर स्वामी जी को प्रणाम किया। इस समय साहस कुछ बढ़ गया है, श्रद्धा-भक्ति भी हुई है। स्वामी जी भी मुझसे

अनेक वन नदी अरुण्य आदि का विवरण सुनकर सन्तुष्ट हुए हैं। इस सहर में आज उतका चौथा दिन है। पाँचवें दिन उन्होंने कहा 'संन्यासियों को नगर में तीन दिन से और तीन में एक दिन से अधिक ठहरना उचित नहीं। मैं अब जल्दी चला जाना चाहता हूँ।' परन्तु मैं किसी प्रकार उनकी यह बात मानने को राजी न था। बिना ठरक द्वारा समझे मैं कैसे मानूँ! फिर अनेक बार-बिबाह के बाद वे बोले 'एक स्थान में अधिक दिन रहने पर माया-ममता बढ़ जाती है। हम लोगों ने घर और आत्मीय जनों का परित्याग किया है। अतः जिन बातों से उस प्रकार की माया में मुग्ध होने की सम्भावना है उनसे दूर रहना ही हम लोगों के लिए अच्छा है।

मैंने कहा 'आप कभी भी मुग्ध होनेवाले नहीं हैं। अन्त में मेरा अतिशय आप्रह्व बेसकर और भी दो-चार दिन ठहरना उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस बीच मेरे मन में हुआ यदि स्वाधीनी सर्भसाधारण के लिए व्याख्यान हों तो हम लोग भी उनका व्याख्यान सुनें और पुरस्कों का भी कल्याण होगा। मैं इसके लिए बहुत अनुरोध किया किन्तु व्याख्यान देने पर सायब नाम-भस की स्पृहा बन उठे, ऐसा कहकर उन्होंने मेरे अनुरोध को किसी भी तरह नहीं माना। पर उन्होंने यह भी बात मुझे बतायी कि उन्हें समा में प्रश्नों का उत्तर देने में कोई आपत्ति नहीं है।

एक दिन बातचीत के सिक्कसिके में स्वामी जी 'पिकनिक पेपर्स' (Pickwick Papers) के दो-तीन पृष्ठ कण्ठस्थ बोल गये। मैंने उस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। समझ गया—उन्होंने पुस्तक के किस स्थान से आबुति की है। सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। सीचने लगा—संन्यासी होकर सामाजिक ग्रन्थ में से इन्होंने इतना कैसे कण्ठस्थ किया! ही न हो इन्होंने पहले इस पुस्तक को अनेक बार पढ़ा है। पूछने पर उन्होंने कहा 'दो बार पढ़ा है। एक बार स्कूल में पढ़ने के समय और दूसरी बार आज से पाँच-छ मास पहले।

आश्चर्यचकित होकर मैंने पूछा 'फिर आपको किस प्रकार यह स्मरण रहा? और हम लोगों को क्यों नहीं रहता?

स्वामी जी ने उत्तर दिया "एकाग्र मन से पढ़ना चाहिए और शब्द के सार भाव द्वारा निमित्त शीर्ष का तादा न करके उसका अधिकाधिक परिपक्व (assimilation) कर लेना चाहिए।

और एक दिन की बात है। स्वामी जी रोपहर में जिल्लेने पर लेते हुए एक पुस्तक पढ़ रहे थे। मैं दूसरे कमरे में था। एकाएक स्वामी जी इतने धीरे से हँस पड़े कि क्या ही क्या सोचकर मैं उनके कमरे के दरवाजे के पास जाकर लड़ा

हो गया। देखा, बात कोई विशेष नहीं है। वे जैसे पुस्तक पढ़ रहे थे, वैसे ही पढ़ रहे हैं। लगभग पन्द्रह मिनट खड़ा रहा, तो भी उनका ध्यान मेरी ओर नहीं गया। पुस्तक छोड़कर उनका ध्यान किसी दूसरी ओर नहीं था। कुछ देर बाद मुझे देखकर अन्दर आने के लिए कहा, और मैं इतनी देर से खड़ा हूँ, यह सुनकर बोले, “जब जो काम करना हो, तब उसे पूरी लगन और शक्ति के साथ करना चाहिए। गाजीपुर के पवहागी बाबा ध्यान, जप, पूजा-पाठ जिस प्रकार एकचित्त से करते थे, उसी प्रकार वे अपने पीतल के लोटे को भी एकचित्त से माँजते थे। ऐसा माँजते थे कि सोने के समान चमकने लगता था।”

एक बार मैंने स्वामी जी से पूछा, “स्वामी जी, चोरी करना पाप क्यों है? सभी धर्म चोरी करने का निषेध क्यों करते हैं? मेरे विचार में तो ‘यह मेरा है’, ‘यह दूसरे का’—ये सब भावनाएँ केवल कल्पना मात्र हैं। मुझसे बिना पूछे ही जब कोई मेरा आत्मीय बन्धु मेरी किसी वस्तु का व्यवहार करता है, तो वह चोरी क्यों नहीं कहलाती? और पशु-पक्षी आदि जब हमारी कोई वस्तु नष्ट कर देते हैं, तो हम उसे चोरी क्यों नहीं कहते?”

स्वामी जी ने कहा, “हाँ, ऐसी कोई वस्तु या कार्य नहीं है, जो सभी अवस्था में और सभी समय बुरा और पाप कहा जा सके। फिर दूसरी ओर, अवस्था-भेद से प्रत्येक वस्तु ही बुरी और प्रत्येक कार्य ही पाप कहा जा सकता है। फिर भी, जिससे दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट हो एव जिसके आचरण से शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक किसी प्रकार की दुर्बलता आये, उस कर्म को नहीं करना चाहिए, वह पाप है, और उससे विपरीत कर्म ही पुण्य है। सोचो, तुम्हारी कोई वस्तु किसीने चुरा ली, तो तुम्हें दुःख होगा या नहीं? तुम्हें जैसा लगता है, वैसा ही सम्पूर्ण जगत् के बारे में भी समझो। इस दो दिन की दुनिया में जब किसी छोटी वस्तु के लिए तुम एक प्राणी को दुःख दे सकते हो, तो धीरे धीरे भविष्य में क्या बुरा काम नहीं कर सकोगे? फिर, यदि पाप-पुण्य न रहे, तो समाज ही न चले। समाज में रहने पर उसके नियम आदि पालन करने पड़ते हैं। वन में जाकर नगे होकर नाचो—कोई कुछ न कहेगा, किन्तु शहर में इस प्रकार का आचरण करने पर पुलिस द्वारा तुम्हें पकड़वाकर किसी निर्जन स्थान में बन्द रख देना ही उचित होगा।”

स्वामी जी कई बार हास-परिहास के भीतर से विशेष शिक्षा दिया करते थे। वे गुरु होते हुए भी, उनके पास बैठना मास्टर के पास बैठने के समान नहीं था। अभी खूब रग-रस चल रहा है, बालक के समान हँसते हँसते हँसी के वहाने कितनी ही बातें कहे जा रहे हैं, सभी लोगों को हँसा रहे हैं, और दूसरे

ही क्षम ऐसे सम्मीर होकर अटिष्ठ प्रसनों की व्याख्या करना आरम्भ कर देते हैं कि उपस्थित सभी लोग विस्मित होकर सोचने लगते हैं, 'इनके भीतर इतनी शक्ति! अभी तो बस रहे थे कि ये हमारे ही समान एक व्यक्ति हैं।'

छोम सभी समय उनके पास घिखा छैन के लिए आते। उनका द्वार सभी समय खुला रहता। दर्शनार्थियों में से अनेक भिन्न भिन्न उद्देश्य से भी आते—कोई उनकी परीक्षा लेने के लिए, तो कोई मजेदार बात सुनने के लिए, कोई इसलिए कि उनके पास आन से बड़े बड़े पनी लोगों से बातचीत हो सकेगी, और कोई संसार-त्याग से अर्बरित होकर उनके पास तो पड़ी शीतल होने एवं ज्ञान और धर्म का आन करने के लिए। किन्तु उनकी ऐसी अप्सुत क्षमता थी कि कोई किसी भाव से क्यों न आये उसे उसी क्षण समझ आते थे और उसके साथ उसी तरह व्यवहार करते थे। उनकी मर्मभेदी दृष्टि से किसीके लिए बचना या कुछ छिपाकर रखना सम्भव नहीं था। एक समय किसी प्रतिष्ठित मनी का एकमात्र पुत्र विश्वविद्यालय की परीक्षा से बचने के लिए स्वामी जी के निकट आरम्भ करने आया और साधु होऊँगा ऐसा भाव प्रकटित करने लगा। वह मेरे एक मित्र का पुत्र था। मैंने स्वामी जी से पूछा 'यह लड़का आपके पास किस अवसर से इतना अधिक आता-जाता है? उसे क्या आप संन्यासी होने का उपदेश देंगे? उतना आप मेरा मित्र है।'

स्वामी जी ने कहा 'वह केवल परीक्षा के मम से साधु हीना चाहता है। मैंने उससे कहा है एम ए पास कर चुकने के बाद साधु होने के लिए आना साधु होने की इच्छा एम ए पास करना कहीं सरल है।'

स्वामी जी जितने दिन मेरे यहाँ ठहरे, प्रत्येक दिन सन्ध्या समय उनका वार्तालाप सुनने के लिए इतनी अधिक संख्या में लोगों का आयमन होता था माना कोई घना लगी हो। इसी समय एक दिन मेरे निवास-रक्षाल पर, एक चप्पन के बुझ के नीचे तकिया के सहारे बैठकर उन्होंने वा बात कही थी उन्हें आश्चर्य न भूक सकेगा। उस प्रसंग की उठान में बहुत सी बातें कहनी होंगी। इसलिए उसे दूसरे समय के लिए ही रख छोड़ना युक्तवर्णन है। इस समय और एक अपनी बात कहूँगा। कुछ समय पहले से मेरी पत्नी की इच्छा किसी बुझ से मन्त्र-वीद्या करने की थी। मुझे उमर्म आपति नहीं थी। उस समय मैंने उससे कहा था 'ऐसे व्यक्ति को बुझ बनाना जिसकी भक्ति में भी कर गई। बुझ के घर में प्रवेश करते ही यदि मुझे अन्वेषा भाव आ जाय तो तुम्हें किसी प्रकार वा आनन्द वा उपहार नहीं होगा। यदि किसी सत्पुरुष को बुझ रूप में पाऊँगा तो हम दोनों साथ ही शिष्या-गुरु के अन्वेषा नहीं। इस बात को उमन भी स्वीकार किया।'

स्वामी जी के आगमन के बाद मैंने उससे पूछा, “यदि ये सन्यासी तुम्हारे गुरु हो, तो तुम उनकी शिष्या हो सकती हो ?”

वह उन्कण्ठा से बोली, “क्या वे गुरु होंगे ? हाने से तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगी !”

स्वामी जी से एक दिन डरते डरते मैंने पूछा, “स्वामी जी, मेरी एक प्रार्थना पूर्ण करेंगे ?” स्वामी जी ने पूछा, “कहो, क्या कहना है ?” तब मैंने उनसे अनुरोध-पूर्वक कहा, “आप हम दोनों को दीक्षा दें।”

वे बोले, “गृहस्थ के लिए गृहस्थ गुरु ही ठीक है। गुरु होना बहुत कठिन है। शिष्य का समस्त भार ग्रहण करना पड़ता है। दीक्षा के पहले गुरु के साथ शिष्य का कम से कम तीन बार साक्षात्कार होना आवश्यक है।” इस प्रकार स्वामी जी ने मुझे टालने की चेष्टा की। जब उन्होंने देखा कि मैं किसी भी तरह माननेवाला नहीं, तो अन्त में उन्हें स्वीकृति देनी ही पड़ी और २५ अक्टूबर, १८९२ ई० को उन्होंने हम दोनों को दीक्षा दी। इस समय मेरी प्रबल इच्छा हुई कि स्वामी जी का फोटो खिंचवाऊँ। परन्तु इसके लिए वे शीघ्र राजी नहीं हुए। अन्त में बहुत वाद-विवाद के बाद, मेरा तीव्र आग्रह देखकर २८ तारीख का फोटो खिंचवाने के लिए सम्मत हुए, फोटो खींचा गया। इसके पहले एक व्यक्ति के अतिशय आग्रह पर भी स्वामी जी ने फोटो नहीं खिंचवाया था, इसलिए फोटों की दो प्रतियाँ उस व्यक्ति को भी भेज देने के लिए उन्होंने मुझसे कहा। मैंने स्वामी जी की इस आज्ञा को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया। एक दिन वातचीत के सिलसिले में स्वामी जी ने कहा, “कुछ दिन तुम्हारे साथ जंगल में तम्बू डालकर रहने की मेरी इच्छा है। किन्तु शिकागो में धर्म-महासभा होगी, यदि वहाँ जाने की सुविधा हुई, तो वही जाऊँगा।” मैंने चन्दे की सूची तैयार कर धनसंग्रह करने का प्रस्ताव किया, परन्तु उन्होंने न जाने क्या सोचकर उसे स्वीकार नहीं किया। स्वामी जी का इस समय व्रत ही था—रूपये-पैसे का स्पर्श या ग्रहण न करना। मेरे अत्यधिक अनुरोध करने पर स्वामी जी मरहठी चप्पल के बदले एक जोड़ा जूता और वेत की एक छड़ी स्वीकार करने के लिए राजी हुए। इसके पहले कोल्हापुर की रानी ने स्वामी जी से बहुत अनुरोध किया था कि वे कुछ ग्रहण करें, पर स्वामी जी इससे महमत नहीं हुए थे। अन्त में रानी ने दो गेरुए वस्त्र स्वामी जी के लिए भेजे, स्वामी जी ने यह ग्रहण कर लिया, और पुराने वस्त्र वही छोड़ते हुए बोले, “सन्यासियों के पाम जितना कम बोझा हो, उतना ही अच्छा।”

इसके पहले मैंने भगवद्गीता पढ़ने की अनेक बार चेष्टा की थी, किन्तु समझ न सकने के कारण मैंने ऐसा सोच लिया कि उसमें समझने के लायक ऐसी कोई बड़ी बात नहीं है, और उसे पढ़ना ही छोड़ दिया। स्वामी जी एक दिन

गीता छेकर हम लोगों को समझाने लगे। तब बात हुआ कि गीता कैसा बहुत प्रबल है। गीता का मर्म समझना जिस प्रकार मैंने उनसे सीखा उसी प्रकार दूसरी ओर क्यूकिस बर्ने के वैज्ञानिक उपन्यास एवं कार्कीइस का 'सार्तोर रिबार्तस' पढ़ना भी उन्हींसे सीखा।

उस समय स्वास्थ्य के लिए मैं बीपथियों का आत्यधिक व्यवहार करता था। इस बात को जानकर वे एक दिन बोले 'जब देखो कि किसी रोग ने आत्यधिक प्रबल होकर घम्याघायी कर दिया है उठन की शक्ति नहीं रही तभी बीपथि का सेवन करना अस्पष्ट नहीं। स्नायुओं की दुर्बलता आदि रोगों में से तो ९० प्रतिशत काल्पनिक हैं। इन सब रोगों से डॉक्टर लोग जितने लोगों को बचाते हैं उससे अधिक को तो मार डालते हैं। फिर इस प्रकार सर्वथा रोग रोग करते रहने से क्या होगा? जितने दिन जियो आनन्द से रहो। पर जिस आनन्द से एक बार कष्ट हो चुका है, उसके पीछे फिर और कभी न डीङना। तुम्हारे-हमारे समान एक के मर जाने से पृथ्वी अपने केन्द्र से कोई हूट तो हूट न चायगी और न जपत् का किसी तरह का कोई नुकसान ही होगा। इस समय कुछ कारणों से अपने ऊपर के अड्डरों के साथ मेरी बमती नहीं थी। उनके सामान्य कुछ कहने से ही मेरा सिर परम हो जाता था और इस प्रकार इस जल्दी मीकरी से भी मैं एक दिन के लिए मी सुखी न हुआ। स्वामी जी से मैंने जब ये सब बातें कही तो वे बोले 'मीकरी किसलिए करते हो? बेतन के लिए ही न बेतन तो ठीक महीने के महीने नियमित रूप से पाते ही रहते हो? फिर मन में कुछ क्यों? और यदि मीकरी छोड़ देने की इच्छा हो तो कभी मी छोड़ दे सकते हो किधीने तुम्हें सोचकर तो रखा नहीं है फिर 'विषम बन्धन में पड़ा हूँ' सोचकर इस दुःखमे संसार में और भी दुःख क्यों बढ़ाते हो? और एक बात पर ध्यान दो जिसके लिए तुम बेतन पाते हो आकिस के उन सब कामों को करने के अतिरिक्त तुमने अपने ऊपरवाले साहबों को सन्तुष्ट करने के लिए कभी कुछ किया भी है? कभी तो तुमने उसके लिए श्रेष्ठ नहीं की फिर भी वे तोप तुमसे सन्तुष्ट नहीं हैं ऐसा सोचकर उनके ऊपर पीसे हुए हो! क्या यह बुद्धिमानों का काम है? यह जान लो हम लोग दूसरों के प्रति हृदय में वैसा भाव रखते हैं, वही कार्य में प्रकाशित होता है और प्रकाशित न होने पर भी उन लोगों के भी पीछर हमारे प्रति ठीक उसी भाव का उदय होता है। हम अपने मन के अनुकूल ही जपत् को देखते हैं— हमारे पीछर वैसा ही जपत् में प्रकाशित देखते हैं। 'आप भक्त तो जब भक्त'—वह उक्ति जितनी सरल है, कोई नहीं समझता। आज से किसीकी बुराई देना एकदम छोड़ देने की श्रेष्ठ कदो। देना तो तुम जितना ही बैत

कर सकोगे, उतना ही उनके भीतर का भाव और उनके कार्य तक परिवर्तित हो जायेंगे।” बस, उसी दिन से औषधि-सेवन का मेरा पागलपन दूर हो गया, और दूसरो के दोष ढूँढने की चेष्टा को त्याग देने के फलस्वरूप क्रमशः मेरे जीवन का एक नया पृष्ठ खुल गया।

एक बार स्वामी जी के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया—“अच्छा क्या है और बुरा क्या है?” इस पर वे बोले, “जो अभीष्ट कार्य का साधनभूत है, वही अच्छा है और जो उसका प्रतिरोधक है, वही बुरा। अच्छे-बुरे का विचार जगह की ऊँचाई-निचाई के विचार के समान है। तुम जितने ऊपर उठोगे, उतने ही वे दोनो एक होते जायेंगे। कहा जाता है, चन्द्रमा मे पहाड और समतल दोनो हैं, किन्तु हम लोग सब एक देखते हैं, वैसा ही अच्छे-बुरे के सम्बन्ध मे भी समझो।” स्वामी जी मे यह एक असाधारण शक्ति थी कि कोई चाहे कैसा भी प्रश्न क्यो न पूछे, तुरन्त उनके भीतर से ऐसा सुन्दर और उपयुक्त उत्तर आता था कि मन का सन्देह एकदम दूर हो जाता था।

और एक दिन की बात है—स्वामी जी ने समाचारपत्र मे पढा कि अनाहार के कारण कलकत्ते मे एक मनुष्य मर गया। यह समाचार पढकर स्वामी जी इतने दुःखी हुए कि उसका वर्णन नही हो सकता। वे बारम्बार कहने लगे, “अब तो देश गया।” कारण पूछने पर बोले, “देखते नही, दूसरे देशो मे गरीबो की सहायता के लिए ‘पूर्व-हाउस’, ‘वकं-हाउस’, ‘चैरिटी फड’ आदि सस्थाओ के रहने पर भी प्रतिवर्ष सैकडो मनुष्य अनाहार की ज्वाला मे समाप्त हो जाते हैं—समाचारपत्रो मे ऐसा देखने मे आता है। पर हमारे देश मे एक मुट्ठी भिक्षा की प्रथा होने से अनाहार के कारण लोगो का मरना कभी सुना नही गया। मैंने आज पहली बार अखबार मे यह समाचार पढा कि दुर्भिक्ष न होते हुए भी कलकत्ता जैसे शहर मे अन्न के बिना मनुष्य मरे।”

अग्नेजी शिक्षा की कृपा से मैं भिखारियो को दो-चार पैसे देना अपव्यय समझता था। सोचता था, इस प्रकार जो कुछ थोडा सा दान किया जाता है, उससे उनका कोई उपकार तो होता नही, अपितु बिना परिश्रम के पैसा पाकर, उसे शराब-नाँजा आदि मे खर्च कर वे और भी अघ पतित हो जाते हैं। लाभ इतना ही है कि दाता का व्यर्थ खर्च कुछ बढ़ जाता है। इसलिए सोचता था, बहुत लोगो को कुछ कुछ देने की अपेक्षा एक को अधिक देना अच्छा है। स्वामी जी से इस विषय मे जब मैंने पूछा, तो वे बोले, “भिखारी के आने पर यदि शक्ति हो, तो कुछ देना ही अच्छा है। दोगे तो केवल दो-एक पैसा, उसके लिए, वह किसमे खर्च करेगा सद्व्यय होगा या अपव्यय, ये सब बातें लेकर माथापच्ची

हरम को क्या आवश्यकता? और यदि गणमुच ही वह उग वैद्य का माँसा में उड़ा देता ही तो भी उसे दिन में गमात्र का काम ही है मुश्किल नहीं। क्योंकि तुम्हारे समान सोम यदि क्या करने उगे कुछ न हों तो वह तुम लोगों के पास से जोरी करके लमा। बेसा न कर वह आ दो वैद्य माँगकर माँसा पीकर मुर होकर बैठ रहा है वह क्या तुम लोगों का ही काम नहीं है? अतएव इस प्रकार कथन में भी लोगों का उपकार ही है अपकार नहीं।”

मैंने पहले से ही स्वामी जी को वास्तव विवाह क विस्तृत विवरण देना है। वे सर्व्व समी को विरोधता बालिका को हिम्मत बाँधकर समान के इन कथन के विरोध में गान हान के लिए तथा उद्योगी और गल्पुष्टिचित्त होने के लिए उपाय देने में। स्वयं के प्रति इस प्रकार अनुयाय भी मैं ही धीरे धीरे नहीं देना। स्वामी जी ने पारस्वार्य देगी ग लीने के बाद जिन लोगों में उनके प्रथम दर्शन दिये हैं वे नहीं जानते कि बड़ा जाने क पूर्व के संन्यास-आश्रम के गठोर नियमों का पालन करते हुए, काचन का स्पर्श तक न करते हुए कितने दिनों तक भारत के समस्त प्रान्तों में भ्रमण करते रहे। बिनाके एक बार ऐसा कहने पर कि उनके समान पवित्रमान पुत्र क लिए नियम आदि का इतना बर्धन आवश्यक नहीं है वे बोले, 'दोसो मन बड़ा पापक है बड़ा उग्रम है कभी भी प्राप्त नहीं रहता पीड़ा मीका पाते ही अपन रास्ते पीच से जाता है। इनकिए समी को निर्धारित नियमों क भीतर रहना आवश्यक है। संन्यासी को भी मन पर अधिकार गान के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। समी मन में सोचते हैं कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिकार है वे तो जाम-बूझकर कभी कभी मन को बाँधी छूट दे देते हैं। किन्तु मन पर किसका कितना अधिकार हुआ है, वह एक बार ध्यान करने के लिए बैठते ही माकूम हो जाता है। 'एक विषय पर विस्तार कसैया' ऐसा सोचकर बैठन पर बस मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रखना असम्भव हो जाता है। समी सोचते हैं कि वे पत्नी के बधीभूत नहीं हैं वे तो बेचल प्रेम के कारण पत्नी को अपने ऊपर अधिकार करने देते हैं। मन को बधीभूत कर लिया है—यह सोचना भी ठीक उची तरह है। मन पर विश्वास करके कभी निश्चिन्त न रहना।

एक दिन बातचीत के सिकसिले में मैंने कहा "स्वामी जी बेखता हैं धर्म को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।

वे बोले 'अपने धर्म समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं किन्तु दूसरों को समझाने के लिए उसकी विनीय आवश्यकता है। भगवान् भी रामकृष्ण बेच तो 'रामकेष्ट' नाम से इस्तेाखर करते थे किन्तु धर्म का धार-रक्षण उनसे अधिक भला किसने समझा है?

मेरा विश्वास था, मायु-मन्यासियों का स्थूलकाय और गर्वदा सन्तुष्टचित्त होना असम्भव है। एक दिन हँसते हँसते उनके ऊपर ऐसा कटाक्ष करने पर उन्होंने भी मजाक में कहा, “यही तो मेरा ‘अकाल रक्षाकोप’ (फैमिन इन्ड्योरेन्स फड) है। यदि मैं पाँच-सात दिन तक भोजन न पाऊँ, तो भी मेरी चर्बी मुझे जीवित रखेगी। तुम लोग तो एक दिन न खाने से ही चारों ओर अन्वकार देखने लगोगे। जो धर्म मनुष्य को सुखी नहीं बनाता, वह वास्तविक धर्म है ही नहीं, उसे मन्दाग्नि-प्रसूत रोगविशेष समझो।” स्वामी जी सगीत-विद्या में विशेष पारंगत थे। एक दिन एक गाना भी उन्होंने प्रारम्भ किया था, किन्तु मैं तो ‘सगीत में औरगजेव’ था, फिर मुझे सुनने का अवसर ही कहाँ? उनके वार्तालाप ने ही हम लोगों को मोहित कर लिया था।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के सभी विभाग, जैसे—रसायनशास्त्र, भौतिक-शास्त्र, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, मिश्रित गणित आदि पर उनका विशेष अधिकार था एव उन विषयों से सम्बद्ध सभी प्रश्नों को वे बड़ी सरल भाषा में दो-चार बातों में ही समझा देते थे। फिर, पाश्चात्य विज्ञान की सहायता एव दृष्टान्त से धर्मविषयक तथ्यों को विशद रूप से समझाने तथा यह दिखाने में कि धर्म और विज्ञान का एक ही लक्ष्य है, एक ही दिशा में गति है—उनकी क्षमता अद्वितीय थी।

लाल मिर्च, काली मिर्च आदि तीखे पदार्थ उन्हें बड़े प्रिय थे। इसका कारण पूछने पर उन्होंने एक दिन कहा, “पर्यटन-काल में सन्यासियों को देश-विदेश में अनेक प्रकार का दूषित जल पीना पड़ता है, यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इस दोष को दूर करने के लिए उनमें से बहुत से गाँजा, चरस आदि मादक द्रव्य पीते हैं। मैं भी इसीलिए इतनी मिर्च खाता हूँ।”

खेतड़ी के राजा, कोल्हापुर के छत्रपति एव दक्षिण के अनेक राजा उन पर विशेष भक्ति करते थे। उनका भी उन लोगों पर बड़ा प्रेम था। असाधारण त्यागी होकर, राजे-रजवाडों के साथ इतनी घनिष्ठता वे क्यों रखते हैं, यह बात बहुतों की समझ में नहीं आती थी। कोई कोई निर्वोध तो इस बात को लेकर उनके ऊपर आक्षेप करने में भी नहीं चकते थे।

इसका कारण पूछने पर एक दिन उन्होंने कहा, “जरा सोच तो देखो, हजार हजार दरिद्र लोगों को उपदेश देने और सत्कार्य के अनुष्ठान में तत्पर कराने से जो कार्य होगा, उसकी अपेक्षा एक राजा को इस दिशा में ला सकने पर कितना अधिक कार्य हो जायगा। निर्धन प्रजा की इच्छा करने पर भी सत्कार्य करने की क्षमता उसके पास कहाँ? किन्तु राजा के हाथ में सहस्रो प्रजाओं के मंगल-विधान की क्षमता पहले से ही है, केवल उसे करने की इच्छा भर नहीं है। वह इच्छा यदि

करन की क्या आवश्यकता? भीम यदि गन्धमुप ही वह उग पैंग को लीला में उड़ा देता ही तो भी उसे देन के साम्राज्य का शासन ही है मुहम्मद नहीं। बरोनि गुफ्तारे ममान लोग यदि ऐसा बन्के उग वृष्ट न दें तो वह तुम लोगों के पास में नौरी करते होगा। बीगा न बन बट न। दो पैंग मौदबन लीला वीरन बुद हातर बीडा रहता है वट क्या तुम लोगों का ही साम्र नहीं है? अतएव इस प्रकार न दान में भी लोगों का उत्तरार ही है भगवत नहीं।”

मैंने पहले से ही स्वामी जी को साम्य विचार न विस्तृत विचार देना है। वे सर्वत्र गर्भी की विशेषता बान्धों की विस्मय शोषकर ममान के दग दगा के विरोध में गान्धी के लिए तथा उद्योगी और गन्धुद्विषा लोग के लिए उत्पन्न दोगे थे। स्वयं के प्रति नम प्रहार अनुरोध भी मैंने भीतर निर्वासित नहीं देना। स्वामी जी के गारुहाय देगों ग लीटने के बाद जिन लोगों में उनसे प्रथम दर्शन विषय * बननी जानते कि बत्ती जानि के पूर्व के मन्थाम-आयम न लीडर नियमों का पालन करने हुए, वाचन का रसो उर न करन हुए विज्ञान निर्मो तरु सारत के समग्र प्रान्ता में प्रमत्त करते रहे। निर्माण एक बार एगा बन्ने पर वि उनक सामान्य गतिमान पुनर के लिए नियम जानि का इतना अपन आवश्यक नहीं है वे बान्धे, दगों मन बड़ा पापक है बड़ा उग्रता है गर्भी जी गान्त नहीं रहता बीडा मोरु पाठे ही अपन रास लीब से जाना है। इसलिए गर्भी की निर्धारित नियमों के भीतर रहना आवश्यक है। मन्थामी का भी मन पर अधिहार रगने के लिए नियम के अनुसार चलना पड़ता है। सभी मन में सोचने है कि मन के ऊपर उनका पूरा अधिहार है वे तो जान-बुझकर कभी कभी मन को थोड़ी छूट देते हैं। किन्तु मन पर कियका विराम अधिहार हुआ है, वह एक बार प्यान करने के लिए बीटने ही मानूस ही जाता है। एक विषय पर विस्तार कसेगा' ऐसा सोचकर बीटने पर बग मिनट भी उस विषय में मन स्थिर रहना अतन्मय हो जाता है। सभी सोचते हैं कि वे पत्नी के बचीभूत नहीं हैं वे तो केवल प्रेम के कारण पत्नी को अपन ऊपर आबिपत्य करने देते हैं। मन को बचीभूत कर लिया है—यह सोचना भी ठीक जसी तरह है। मन पर विस्वास करके कभी निरिबन्ध न रहना।”

एक दिन बाठबीठ के सिकसिधे में मैंने कहा “स्वामी जी देखता हूँ बर्ष को ठीक ठीक समझने के लिए बहुत अध्ययन की आवश्यकता है।”

वे बीके 'अपने बर्ष समझने के लिए अध्ययन की आवश्यकता नहीं किन्तु बुरों को समझने के लिए उसकी विशेष आवश्यकता है। अनवान् भी रामकृष्ण है वही 'रामकृष्ण' नाम से हस्ताक्षर करते थे किन्तु बर्ष का सार-रत्न उनसे अधिक मका किन्तु समझा है?

अनन्त है, यह नहीं समझा। जो भी हो, एक वस्तु अनन्त है, यह बात समझ में आती है, किन्तु दो वस्तुएं यदि अनन्त हो, तो कौन कहाँ रहेगी? कुछ और आगे बढ़ो, तो देखोगे, काल जो है, देश भी वही है, फिर और अग्रसर होने पर समझोगे, सभी वस्तुएं अनन्त हैं, और वे सभी अनन्त वस्तुएं एक है, दो या दस नहीं।”

इस प्रकार स्वामी जी के पदार्पण से २६ अक्टूबर तक मेरे निवास-स्थान पर आनन्द का स्रोत बहता रहा। २७ तारीख को वे बोले, “और नहीं ठहरेगा, रामेश्वर जाने के विचार से बहुत दिन हुए इस ओर निकला हूँ। पर यदि इसी प्रकार चला, तो इस जन्म में शायद रामेश्वर पहुँचना न हो सकेगा।” मैं बहुत अनुरोध करके भी उन्हें नहीं रोक सका। २७ अक्टूबर की ‘मेल’ से उनका मरमागोआ जाना ठहरा। इस थोड़े से समय में उन्होंने कितने लोगों को मुग्ध कर लिया था, यह कहा नहीं जा सकता। टिकट खरीदकर उन्हें गाड़ी में बिठाया और साष्टांग प्रणाम कर मैंने कहा, “स्वामी जी, मैंने जीवन में आज तक किसीको भी आन्तरिक भक्ति के साथ प्रणाम नहीं किया। आज आपको प्रणाम कर मैं कृतार्थ हो गया।”

*

*

*

स्वामी जी को मैंने केवल तीन बार देखा। प्रथम, उनके अमेरिका जाने से पूर्व। उस समय की बहुत सी बातें आप लोगों को सुना चुका हूँ। बेलगाँव में उनके साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। द्वितीय, जब उन्होंने दूसरी बार इंग्लैण्ड और अमेरिका की यात्रा की थी, उसके कुछ दिन पहले। तृतीय एव अन्तिम बार दर्शन हुआ उनके देहत्याग के छ-सात मास पहले। पर इतने ही अवसरों पर मैंने उनसे जो कुछ सीखा, उसका आद्योपान्त वर्णन करना असम्भव है। बहुत सी बातें मेरे अपने सम्बन्ध की हैं, इसलिए उन्हें कहने की आवश्यकता नहीं, और बहुत सी बातों को भूल भी गया हूँ। जो कुछ स्मरण है, उसमें से पाठकों के लिए उपयोगी विषयों को बतलाने की चेष्टा करूँगा।

इंग्लैण्ड से लौट आने के बाद उन्होंने हिन्दुओं के जाति-विचार के सम्बन्ध में और किसी किसी सम्प्रदाय के व्यवहार के ऊपर तीव्र आलोचना करते हुए मद्रास में जो व्याख्यान दिये थे, उन्हें पढ़कर मैंने सोचा, स्वामी जी की भाषा कुछ अधिक कड़ी हो गयी है। और उनके समीप मैंने अपने इस अभिप्राय को प्रकट भी किया। सुनकर वे बोले, “जो कुछ मैंने कहा है, सब सत्य कहा है। और जिनके सम्बन्ध में मैंने इस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है, उनके कार्यों की तुलना में वह विन्दु मात्र भी कड़ी नहीं है। सत्य बात में सकोच का या उसे छिपाने का तो मैं कोई कारण नहीं देखता। यह न सोचना कि जिनके कार्यों पर मैंने इस प्रकार समालोचना की है, उनके ऊपर मेरा शोध था या है, अथवा जैसा कोई कोई सोचते हैं कि कर्तव्य

उसके भीतर किसी प्रकार जागरित कर सकूँ तो ऐसा होने पर उसके साथ साथ उसके अपीन सारी प्रजा की अबस्था बचक सकती है और इन प्रकार जगत् का कितना अधिक नस्याप हो सकता है।

धर्म वाद-विवाद में नहीं है, बहती प्रत्यक्ष अनुभव का विषय है इसको समझाने के लिए वे बात बात में कहा करते थे 'गुड़ का स्वाद छाने में ही है। अनुभव करो बिना अनुभव किये कुछ भी न समझोगे। उन्हें होंगी संन्यासियों से अत्यन्त निडर थी। वे कहते थे "घर में रहकर मन पर अधिकार स्थापित करके फिर बाहर निकलना अच्छा है नहीं तो जब अनुत्पन्न क्रम होने पर ऐसे संन्यासी प्रायः यौना छोर संन्यासियों के दस में मिला जाते हैं।

मैंने कहा किन्तु घर में रहकर बैसा होता तो अत्यन्त कठिन है। सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखना राम-श्रेय का त्याग करना आदि जिन बातों को आप धर्मकाम में प्रबल सहायक कहते हैं उनका अनुष्ठान करना यदि मैं बाब से ही आरम्भ कर दूँ तो कल से ही मेरे गीकर-बाकर और अशीनस्व कर्मकारीजब यहाँ तक कि सवे-सम्बन्धी लोग भी मुझे एक क्षण भी ध्याति से न रहने देंगे।"

उत्तर में मगवान् भी रामकृष्ण देव की सर्प और संन्यासीबाकी कथा का पृष्ठान्त देकर उन्होंने कहा 'मुफकारना कभी बन्द मत करना और कर्तव्य-पावन करने की दृष्टि से सभी काम किये जाना। कोई अपराध करे, तो दण्ड देना किन्तु दण्ड देते समय कभी भी क्रुद्ध न होना। फिर पूर्वोक्त प्रसंग को छोड़ते हुए बोले 'एक समय मैं एक तीर्थस्वाम ने पुलिस इन्स्पेक्टर का भ्रतिवि हुआ। वह बड़ा धार्मिक और अत्याकु था। उसका वेतन १२५ रु था किन्तु देखा उसका घर का खर्च मासिक बी-तीन ही का रहा होता। जब अधिक परिश्रम हुआ तो मैंने पूछा आप की अपेक्षा आपका खर्च तो अधिक देख रहा हूँ—यह कैसे चलता है? वह बोड़ा हँसकर बोला 'आप ही लोग चलाते हैं। इस तीर्थस्वाम में जो छात्र-संन्यासी आते हैं वे सब आपके समान तो नहीं होते। सन्नेह होने पर उनके पास क्या है क्या नहीं इसकी लकाही करता हूँ। बहुतों के पास प्रचुर मात्रा में स्वभा-वैसा निकलता है। जिन पर मुझे चोरी का सन्नेह होता है वे स्वभा-वैसा छोड़कर भाग जाते हैं, और मैं उन पैसों को अपने कब्जे में कर लेता हूँ। पर जन्म किसी प्रकार का बूझ आदि नहीं लेता।"

स्वामी जी के साथ एक दिन अनन्त (infinity) बस्तु के सम्बन्ध में बातलाप हुआ। उन्होंने जो बात कही वह बड़ी ही सुन्दर एवं सत्य है। वे बोले 'जो अनन्त बस्तुएँ कभी नहीं रह सकतीं। पर मैंने कहा "काल तो अनन्त है और वेस भी अनन्त है। इस पर वे बोले "वेद्य अनन्त है यह तो समझा किन्तु काल

है, हमारे की नहीं, इस प्रकार का भाव क्या अन्याय नहीं है ?' मैं तो सुनकर दग रह गया ।

“नाक और पैर की लघुता लेकर ही चीन में सौन्दर्य का विचार होता है, यह सभी जानते हैं। आहार आदि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। अग्रेज हम लोगों के समान खुशबूदार चावल का भात खाना पसन्द नहीं करते। एक समय किसी जगह के एक जज साहब की अन्वयत्र बदली हो जाने पर वहाँ के बहुत से वकीलों ने उनके सम्मान के लिए वडिया अनाज आदि भेजा। उसमें कुछ सेर खुशबूदार चावल भी थे। जज साहब ने उस चावल का भात खाकर मन में सोचा—यह सडा हुआ चावल है, और वकीलों से भेट होने पर कहा, ‘तुम लोगों को भेरे लिए मडा चावल भेजना उचित न था।’

“किसी समय मैं रेलगाड़ी में जा रहा था। उसी डब्बे में चार-पाँच साहब भी बैठे थे। बातचीत के सिलसिले में तम्बाकू के बारे में मैंने कहा, ‘सुगन्धित गुडाकू का पानी से भरे हुए हुक्के में व्यवहार करना ही तम्बाकू का श्रेष्ठ उपभोग है।’ मेरे पास खूब अच्छा तम्बाकू था। मैंने उन लोगों को देखने के लिए दिया। वे सूँघकर बोले, ‘यह तो अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है।’ इसे आप सुगन्धित कहते हैं।’ इस प्रकार गन्ध, आस्वाद, सौन्दर्य आदि सभी विषयों में समाज, देश और काल के भेद से भिन्न भिन्न मत हैं।”

स्वामी जी की पूर्वोक्त कथाओं को हृदयगम करते मुझे देरी नहीं लगी। मैंने सोचा, पहले मुझे शिकार करना कितना प्रिय था, किसी पशु-पक्षी को देखने पर उसे मारने के लिए मन छटपटाने लगता था। न मार सकने पर अत्यन्त कष्ट भी मालूम होता था। पर अब उस प्रकार प्राणियों का वध करना बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता। अतएव किसी वस्तु का अच्छा या बुरा लगना केवल अभ्यास पर निर्भर है।

अपने मत को अक्षुण्ण रखने में प्रत्येक मनुष्य का एक विशेष आग्रह देखा जाता है। धर्म के क्षेत्र में तो उसका विशेष प्रकाश दिखायी देता है। स्वामी जी इस सम्बन्ध में एक कहानी बतलाया करते थे। एक समय एक छोटे राज्य को जीतने के लिए एक दूसरे राजा ने दल-बल के साथ चढाई की। शत्रुओं के हाथ से बचाव कैसे हो, इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए उस राज्य में एक बड़ी सभा बुलायी गयी। सभा में इजीनियर, बढई, चमार, लोहार, वकील, पुरोहित आदि सभी उपस्थित थे। इजीनियर ने कहा, “शहर के चारों ओर एक बहुत बड़ी खाई खुदवाइए।” बढई बोला, “काठ की एक दीवाल खड़ी कर दी जाय।” चमार बोला, “चमडे के समान मजबूत और कोई चीज नहीं है, चमडे की ही दीवाल खड़ी की जाय।” लोहार बोला, “इस सबकी कोई आवश्यकता नहीं है, लोहे की दीवाल

समझकर जो कुछ मैंने किया है उसके लिए अब मैं बुद्धि हूँ। इन सब बातों में कोई सार नहीं। मैंने क्रोध के कारण ऐसा नहीं किया है और जो मैंने किया है उसके लिए मैं बुद्धि नहीं हूँ। आज भी यदि उस प्रकार का कोई अप्रिय कार्य करना कर्तव्य मानूँ होगा तो अवश्य निःसंकोच वैसा करूँगा।

बोंगी संन्यासियों के विषय में उनका मत पहले कुछ कह चुका हूँ। किसी दूसरे दिन इस सम्बन्ध में प्रसंग उठने पर उन्होंने कहा 'हैं अबस्य बहुत से बबसास बारष्ट के डर से बबसा घोर दुष्कर्म करके छिपने के लिए संन्यासी के रूप में भूमते फिरते हैं। किन्तु तुम लोगों का भी कुछ बोध है। तुम लोग सोचते हो संन्यासी होते ही उस ईश्वर के समान विद्युत्पातीत हो जाना चाहिए। उस पैर सर अच्छी तरह जाने में बोध बिछीन पर सोने में बोध यहाँ तक कि उसे बूटा और छाटा तक व्यवहार में लाने की बुझाइस नहीं। क्यों वह भी तो मनुष्य है। तुम लोगों के मत में जब तक कोई पूर्ण परमहंस न हो जाय तब तक उसे बैसा बस्य पहनने का अधिकार नहीं। पर यह भूठ है। एक समय एक संन्यासी के साथ मेरा बार्ता-काप हुआ। अच्छी पोशाक पर उनकी लूब रधि थी। तुम लोग उन्हें बसकर बबस्य ही घोर बिकासी समझते। किन्तु वे सधमुब बबार्थ संन्यासी थे।

स्वामी जी कहा करते थे 'दिस काळ और पात्र के भेद से मानसिक भावों और अनुभवों में काफी तारतम्य हुआ करता है। बर्म के सम्बन्ध में भी ठीक वैसा ही है। प्रत्येक मनुष्य की भी एक न एक विषय में अधिक रधि पामी जाती है। जबतू न सभी अपन को अधिक बुद्धिमान समझते हैं। ठीक है वहाँ तक कोई विशेष हानि नहीं। किन्तु जब मनुष्य सोचने लफ्फता है कि केवल मैं ही समझता हूँ दूसरा कोई नहीं तभी सारे बनेड़े उपस्थित हो जाते हैं। सभी चाहते हैं कि दूसरे सब लोग भी उन्हीके समान प्रत्येक बस्तु को बर्ने और समझें। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि उसने जिस बात की सत्य समझा है वा बिसे जाता है उसे छोड़कर और कोई सत्य हो ही नहीं सकता। सांसारिक विषय के क्षेत्र में हो बबसा बर्म के क्षेत्र में इस प्रकार के भाव को मत में किसी तरह न माने देना चाहिए।

'जमन् के किसी भी विषय में सब पर एक ही नियम लागू नहीं हो सकता। बेश नाम और पात्र के भेद से नीति एवं सौन्दर्य-ज्ञान भी विभिन्न देखा जाता है। तिम्वत की स्त्रियों में बहु-वति की प्रथा प्रचलित है। हिमाचल भ्रमबकाळ में मेरी इस प्रकार के एक तिम्वती परिवार से भेंट हुई थी। इस परिवार में छ पुत्रप थे उन छ पुत्र्यों की एक ही स्त्री थी। अधिक परिचय हो जाने के बाद मैंने एक दिन उनकी इस बुप्रथा के बारे में कुछ कहा इस पर वे कुछ खीझकर बोले 'तुम सामु-संन्यासी होकर लोगों को स्वार्थपछा सिधाना चाहते हो? यह मेरी ही उपमोष्य

अपनी माँ को खाना नहीं देता, वह दूसरे की माँ का क्या पालन करेगा ?” स्वामी जी यह स्वीकार करते थे कि हमारे प्रचलित धर्म में, आचार-व्यवहार में, सामाजिक प्रथा में अनेक दोष हैं। वे कहते थे, “उन सभी का सशोधन करने की चेष्टा करना हम लोगों का मुख्य कर्तव्य है, किन्तु इसके लिए सवाद-पत्रों में अग्रजों के समीप उन दोषों को घोषित करने की क्या आवश्यकता है ? घर की गलतियों को जो बाहर दिखलाता है, उसके समान गवा और कौन है ? गन्दे कपड़े को लोगों की आँखों के सामने नहीं रखना चाहिए।”

ईसाई मिशनरियों के वारे में एक दिन चर्चा हुई। वातचीत के सिलसिले में मैंने कहा कि उन लोगों ने हमारे देश का कितना उपकार किया है और कर रहे हैं। सुनकर वे बोले, “किन्तु अपकार भी तो कोई कम नहीं किया। देशवासियों के मन की श्रद्धा को विलकुल नष्ट कर देने का अद्भुत प्रवन्ध उन्होंने कर छोड़ा है। श्रद्धा के साथ साथ मनुष्यत्व का भी नाश हो जाता है। इस बात को क्या कोई समझता है ? हमारे देव-देवियों और हमारे धर्म की निन्दा किये बिना वे अपने धर्म की श्रेष्ठता क्यों नहीं दिखा पाते ? और एक बात है जो जिस धर्म-मत का प्रचार करना चाहते हैं, उन्हें उसमें पूर्ण विश्वास होना चाहिए और तदनुसृत कार्य करना चाहिए। अधिकांश मिशनरी कहते कुछ हैं और करते कुछ। मुझे कपट से बड़ी चिढ़ है।”

एक दिन उन्होंने धर्म और योग के सम्बन्ध में अत्यन्त सुन्दर ढंग से बहुत सी बातें कही। उनका मर्म जहाँ तक स्मरण है, उद्धृत कर रहा हूँ

“समस्त प्राणी सतत सुखी होने की चेष्टा में रत रहते हैं, किन्तु बहुत ही थोड़े लोग सुखी हो पाते हैं। काम-वाम भी सभी सतत करते रहते हैं, किन्तु उसका ईप्सित फल पाना प्रायः देखा नहीं जाता। इस प्रकार विपरीत फल उपस्थित होने का कारण क्या है, वह भी समझने की कोई चेष्टा नहीं करता। इसी-लिए मनुष्य दुःख पाता है। धर्म के सम्बन्ध में कैसा भी विश्वास क्यों न हो, यदि कोई उस विश्वास के बल से अपने को यथार्थ सुखी अनुभव करता है, तो ऐसी स्थिति में उसके उस मत को परिवर्तित करने की चेष्टा करना किसीके लिए भी उचित नहीं है, और ऐसा करने से कोई अच्छा फल भी नहीं होगा। पर हाँ, मुँह से कोई कुछ भी क्यों न कहे, जब देखो कि किसीका केवल धर्म सम्बन्धी कथा-वार्ता सुनने में ही आग्रह है, पर उसके आचरण में नहीं, तो जानना कि उसे किसी भी विषय में दृढ़ विश्वास नहीं है।

“धर्म का मूल उद्देश्य है—मनुष्य को सुखी करना। किन्तु अगले जन्म में सुखी होने के लिए इस जन्म में दुःख-भोग करना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं

सबसे बच्ची होयी उसे भिड़कर पीछी या गोछा नहीं आ सकता। बकीर बोले, "कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है हमारा राज्य लेने का धनु को कोई अधिकार नहीं है—यही एक बात धनु को तर्क-मुक्ति द्वारा समझा दी जाय। पुरोहित बोले 'तुम जोय तो पागल जैसे बकते हो। होम-याग करो स्वस्वयम करो तुलसी को धनु कुछ भी नहीं कर सकता।" इस प्रकार उन्होंने राज्य बचाने का कोई उपाय निरिपत्त करने के बरफे अपने अपने मत का पक्ष लेकर पोर तर्क-वितर्क आरम्भ कर दिया। वही है मनुष्य का स्वभाव।

यह कहानी सुनकर मुझे भी मानव मन के एकतरफे झुकाव के सम्बन्ध में एक कथा याद आ गयी। स्वामी जी से मैंने कहा 'स्वामी जी मुझे कड़कपन में पागलों के साथ बातचीत करना बड़ा अच्छा लगता था। एक दिन मैंने एक पागल देखा—छासा बुद्धिमान बोड़ी-बहुत बड़ेजी भी जानता था वह केवल पानी ही चाहता था। उसके पास एक फूटा स्रोत था। पानी की कोई नदी बमह देखते ही चाहे नाका हो हीन ही बस वहीं का पानी पीने लगता था। मैंने उससे इतना पानी पीने का कारण पूछा तो वह बोला 'Nothing like water Sir! (पानी जैसी दूसरी कोई चीज ही नहीं महाशय!) मैंने उसे एक बच्चा कोटा देने की इच्छा प्रकट की पर वह किसी प्रकार राजी नहीं हुआ। कारण पूछने पर बोला 'यह कोटा फूटा हुआ है, इसीलिए इतने दिनों तक मेरे पास टिका हुआ है। अच्छा रहता तो कब का पीरी चला गया होता।"

स्वामी जी यह कथा सुनकर बोले "वह तो बड़ा मजे का पागल दिखता है! ऐसे लोगों को सक्की कहते हैं। हम सभी लोगों में इस प्रकार का कोई भाव ही या सक्कीपन हुआ करता है। हम लोगों में उसे बचा रखने की क्षमता है। पाप में वह नहीं है। हम लोगों में भीर पागलों में भेद केवल इतना ही है। रोप धीक बहकार, काम क्रोध ईर्ष्या या अन्य कोई अत्याचार अथवा अनाचार से दुर्बल होकर, मनुष्य के अपने इस संसम को जो बैठने से ही सारी यड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। मन के आवेग को वह फिर संभाल नहीं पाता। हम लोग तब कहते हैं, 'यह पागल हो गया है। बस इतना ही।

स्वामी जी का स्वयंसे के प्रति अत्यन्त अनुग्रह था यह बात पहले ही बता चुका हूँ। एक दिन इस सम्बन्ध में बातचीत के प्रसंग में उनसे कहा गया कि संघारी लोगों का अपने अपने देश के प्रति अनुग्रह रखना नित्य कर्तव्य है, परन्तु सच्चा स्थियों को अपने देश की भाषा छोड़कर, सभी देशों पर समझौटा रखकर, सभी देशों की कल्याण-चिन्ता हृदय में रखना अच्छा है। इसके उत्तर में स्वामी जी ने जो व्याख्यान शार्वे कहीं उनको जीवन में कभी नहीं सूझ सकता। वे बोले "जो

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।'"

किमी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय में लेखक को बहुत मन्देह है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साहब के किमी शहर में पदार्पण से लेकर उस शहर से जाने तक की घटना अपनी आँखों से देखने और बाद में उसीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रों में पढ़ने की सुविधा हमारे सदृश लोगों को अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगों की देखी हुई घटनाओं के साथ इन सभी विवरणों की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पड़ता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उसका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियों में से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी वाइविल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घंटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह बिल्कुल सामने घड़ी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किन्तु एक ओर conflict between religion and science (धर्म और विज्ञान में द्वन्द्व) आदि पुस्तकों में वाइविल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके ही देश के आवुनिक पण्डितों का विचार पढ़कर वाइविल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियों द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रों का अपूर्व विवरण पढ़कर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने में कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एवं इतिहास में लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्रायः बिल्कुल उड़ सी जाती है।

गीता, वाइविल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध घटनाओं की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुर्क्षेत्र में युद्ध से थोड़ी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता में लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नहीं? उत्तर में उन्होंने जो कहा, वह बड़ा ही सुन्दर है। वे बोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी धूम-बाम नहीं थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगों के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता में उक्त घटना घटी थी

है। इस जन्म में ही इसी मुहूर्त से सुखी होना होगा। जिस बर्म के द्वारा यह सम्पन्न होया वही मनुष्य के लिए उपयुक्त बर्म है। इन्द्रिय-भोगजनित सुख क्षणिक है और उसके साथ अवश्यम्भावी दुःख भी अनिवार्य है। शिशु ब्रह्मती और पाश्चातिक स्वभाववाले मनुष्य ही इस क्षणस्थायी सुखमिभित सुख को वास्तविक सुख समझते हैं। यदि इस सुख को भी कोई जीवन का एकमेव उद्देश्य बनाकर चिरकाळ तक सम्पूर्ण रूप से निरिच्छन्त और सुखी रह सके, तो वह भी कुछ कुछ नहीं है। किन्तु आज तक तो इस प्रकार का मनुष्य देखा नहीं गया। साधारणतः देना नहीं जाता है कि जो इन्द्रिय चरितार्थता को ही सुख समझते हैं, वे बतबान एवं बिक्रमसी लोगों को अपने से अधिक सुखी समझकर उनसे द्वेष करते लगते हैं और बहुत व्यय से प्राप्त होनेवाले उनके उच्च श्रेणी के इन्द्रिय-भोग पदार्थों को देखकर उन्हें पाने के लिए काकायित होकर दुःखी हो जाते हैं। उन्नाद सिकन्दर समस्त पृथ्वी को जीतकर यही सोचकर दुःखी हुए थे कि अब पृथ्वी में जीतने का और कोई देय नहीं रह गया। इसीलिए बुद्धिमान मनीषियों ने बहुत देव-मुनिकर सोच-विचारकर मृत में सिद्धान्त स्थिर किया है कि किसी एक बर्म में यदि पूर्व बिम्बास हो सभी मनुष्य निरिच्छन्त और यथार्थ सुखी हो सकता है।

“विद्या बुद्धि भादि सभी विषयों में प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पुण्य-पुण्य देना जाता है। इसी कारण उनके उपयुक्त बर्म का भी भिन्न भिन्न होना आवश्यक है। अन्यथा वह किसी भी तरह उनके लिए सन्तोषप्रद न होगा। वे किसी भी तरह उसका अनुष्ठान करके यथार्थ सुखी नहीं हो सकेंगे। अपने अपने स्वभाव के अनुक्रम बर्म-मठ को स्वयं ही देख-माककर, सोच-विचारकर चुन लेना चाहिए। इससे अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। परमेश्वर का पाठ, मुन का उपदेश साधु-दर्शन सत्पुरुषों का संग भादि उस इस मार्ग में कवल सहायता मात्र देने हैं।

कर्म के सम्बन्ध में भी यह जान लेना आवश्यक है कि किसी न किसी प्रकार का कर्म किये बिना कोई भी रह नहीं सकता और कर्म में केवल अच्छा या केवल बुरा इस प्रकार का कोई कर्म नहीं है। कर्म करने में कुछ न कुछ कुछ कर्म भी करना ही पड़ता है। और इसीलिए उस कर्म के द्वारा जैसे सुख होया जैसे ही साथ ही साथ कुछ न कुछ दुःख एवं अभाव का बोध भी होगा—यह अवश्य मानी है। अतएव यदि उग बोड़े से दुःख को भी ग्रहण करने की इच्छा न हो तो फिर इन्द्रिय-भोगजनित ऊपरी सुख की आशा भी छोड़ देनी होगी। अर्थात् स्वार्थ-मुग का अन्वयन करना छोड़कर कर्तव्य-बुद्धि से सभी कर्म करने हूँगे। एनीता नाम है निष्काम कर्म। अन्तान् गीता में अर्जुन को उगीता उपदेश देने

हुए कहते हैं—'काम करो, किन्तु फल मुझे अर्पण करो, अर्थात् मेरे लिए ही काम करो।' ”

किसी विषय का इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिखा जा सकता है, इस विषय में लेखक को बहुत मन्द्हे है। उसके अनेक कारण हैं। गवर्नर जनरल साहब के किसी शहर में पदार्पण से लेकर उस शहर में जाने तक की घटना अपनी आँखों से देखने और बाद में उन्मीका विवरण प्रसिद्ध प्रसिद्ध सवाद-पत्रों में पढ़ने की सुविधा हमारे सदृश लोगों की अधिकतर होती है। आदि से अन्त तक हम लोगों की देखी हुई घटनाओं के माय इन सभी विवरणों की इतनी विभिन्नता देखी जाती है कि विस्मित हो जाना पड़ता है। चार दिन पहले जो घटना हुई है, उसीको लिपिवद्ध करना जब इतना कठिन है, तो चार सौ, चार हजार अथवा चार लाख वर्ष पहले जो घटना हुई है, उमका इतिहास कहाँ तक ठीक ठीक लिपिवद्ध हुआ है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

और एक बात है, ईसाई मिशनरियों में से बहुत से कहा करते हैं—'उनकी वाइविल की प्रत्येक घटना जिस वर्ष, जिस महीने, जिस दिन, जिस घटे और जिस मिनट घटित हुई है, वह विल्कुल सामने घड़ी रखकर लिपिवद्ध की गयी है।' किन्तु एक ओर conflict between religion and science (धर्म और विज्ञान में द्वन्द्व) आदि पुस्तकों में वाइविल की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उनके ही देश के आधुनिक पण्डितों का विचार पढ़कर वाइविल की ऐतिहासिकता जिस प्रकार अच्छी तरह समझी जा सकती है, उसी प्रकार दूसरी ओर मिशनरियों द्वारा अनूदित हिन्दू धर्मशास्त्रों का अपूर्व विवरण पढ़कर उनका लिखित इतिहास भी कहाँ तक सत्य है, इसे समझने में कुछ अवशिष्ट नहीं रहता। यह सब देख-सुनकर मानव जाति के सत्यानुराग एव इतिहास में लिपिवद्ध घटनाओं के ऊपर श्रद्धा प्रायः विल्कुल उड़ सी जाती है।

गीता, वाइविल, कुरान, पुराण प्रभृति प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध घटनाओं की वास्तविक ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में इसीलिए पहले मुझे तनिक भी विश्वास नहीं होता था। एक दिन स्वामी जी से मैंने पूछा कि कुरुक्षेत्र में युद्ध से थोड़ी देर पहले अर्जुन के प्रति भगवान् श्री कृष्ण का जो धर्मोपदेश भगवद्गीता में लिपिवद्ध है, वह यथार्थ ऐतिहासिक घटना है या नहीं? उत्तर में उन्होंने जो कहा, वह बड़ा ही सुन्दर है। वे बोले, "गीता एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। प्राचीन काल में इतिहास लिखने अथवा पुस्तक आदि छापने की आजकल के समान इतनी घूम-वाम नहीं थी, इसलिए तुम्हारे सदृश लोगों के सामने भगवद्गीता की ऐतिहासिकता प्रमाणित करना कठिन है। किन्तु गीता में उक्त घटना घटी थी

मा नहीं इसके लिए तुम भोग जो मायापत्नी करते हो इसका कोई कारण मुझे नहीं दिखता। यदि कोई अकाट्य प्रमाण से तुम्हें यह समझा सकें कि मयबान् की कृप्य ने सारथी होकर बर्जुन की गीता का उपदेश दिया था क्या कबल तभी तुम भोग गीता में बर्जित बातों पर विश्वास करोगे? जब अपने सामने साक्षात् मयबान् के मूर्तिमान् होकर आने पर भी तुम छोड़ उनको परीक्षा करने के लिए पीड़ते हो और उनका ईश्वरत्व प्रमाणित करने के लिए कहते हो तब गीता ऐतिहासिक है या नहीं इस व्यर्थ की समस्या को लेकर क्यों परेशान होते हो? यदि हो सके तो गीता के उपदेशों की जितना बने ग्रहण करो और उसे जीवन में परिणत कर इतार्थ हो जाओ। श्री रामकृष्ण देव कहते थे—'जाम साबो पेड़ के पत्ते मिनने से क्या होगा! मेरी राय में धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध बटना के ऊपर विश्वास या अविश्वास करना वैयक्तिक अनुभव-मेख का विषय है—बर्जि मनुष्य किसी एक विशेष अवस्था में पड़कर, उससे उदार पाने की इच्छा से रास्ता झूझता और धर्मशास्त्र में लिपिबद्ध किसी बटना के साथ उसकी अवस्था का ठीक ठीक मेख होने पर वह उस बटना को ऐतिहासिक कहकर उस पर निश्चित विश्वास करता है तब धर्मशास्त्रोक्त उस अवस्था के उपयोगी उपायों को भी साग्रह ग्रहण करता है।

स्वामी जी ने एक दिन सारीरिक एवं मानसिक शक्ति को असीम कार्य के लिए सरसित रखना प्रत्येक के लिए कहाँ तक कर्तव्य है इसे बड़े सुन्दर भाव से समझाते हुए कहा था—“अतधिकार चर्चा अथवा बृथा कार्य में जो शक्ति व्यय करता है वह असीम कार्य की सिद्धि के लिए पर्याप्त शक्ति कहाँ से प्राप्त करेगा? The sum total of the energy which can be exhibited by an ego is a constant quantity—बर्जि प्रत्येक जीवात्मा के भीतर विविध भाव प्रकाशित करने की जो शक्ति रहती है वह एक निश्चित मात्रा में होती है वतएव उस शक्ति का अधिकान्त एक भाव में प्रकाशित होने पर उतना अंध और किसी बुधरे भाव में प्रकाशित नहीं हो सकता। धर्म के गम्भीर सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिए बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है इसीलिए धर्म-पथ के पबिकों के प्रति विषय-मोह आदि में शक्ति क्षय न कर ब्रह्मचर्य के द्वारा शक्ति संरक्षण का उपदेश सभी जातियों के धर्मग्रन्थों में पाया जाता है।

स्वामी जी बंगाल के घासों तथा वहाँ के छोड़ों के अनेक व्यवहारों से समुच्च नहीं थे। घास के एक ही तालाब में स्नान घीब आदि करना एवं सघीका पानी पीना यह प्रथा उन्हें विस्तुक्त पसन्द न थी। वे प्रायः कहा करते थे 'बिनका मस्तिष्क मज-मूख से भरा है, उन लोगों से आशा-भरोसा कहाँ! और यह जो

ग्रामीण लोगो का अनधिकार चर्चा करना है, वह तो बड़ी खराब चीज है। शहर के लोग अनधिकार चर्चा न करने हों, ऐसी बात नहीं, परन्तु उन्हें समय कम मिलता है, क्योंकि शहर का खर्च अधिक है, इसलिए उन्हें काम भी बहुत करना पड़ता है। इतना परिश्रम करने के बाद, खाली बैठकर हुक्का पीने और परनिन्दा करने का समय नहीं मिलता। अन्यथा ये शहरी भूत इम विषय में तो ग्रामीण भूतों की गर्दन पर चढ़कर नाचते।”

स्वामी जी की प्रत्येक दिन की कथा-वार्ता यदि मगूहीत होती, तो प्रत्येक दिन की बातें एक एक मोटी पुस्तक होती। एक ही प्रश्न का बार बार एक ही भाव से उत्तर देना एव एक ही दृष्टान्त की सहायता से उसे समझाना उनकी रीति नहीं थी। एक ही प्रश्न का उत्तर जितनी बार देते, उतनी बार नये भाव और नये दृष्टान्त के द्वारा इम प्रकार देते कि वह सुननेवालों को एकदम नया मालूम होता था, और उनकी वाणी सुनते सुनते थकावट आना तो दूर की बात रही, बल्कि और अधिक सुनने का अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ना जाता था। व्याख्यान देने की भी उनकी यही शैली थी। पहले से सोचकर व्याख्यान की रूपरेखा को लिखकर वे कभी भी व्याख्यान नहीं देते थे। व्याख्यान-प्रारम्भ से कुछ देर पहले तक वे हँसी-मजाक, साधारण भाव से बातचीत एव व्याख्यान से बिल्कुल सम्बन्ध न रखनेवाले विषयों को लेकर भी चर्चा करते रहते थे। व्याख्यान में क्या कहेंगे, यह उन्हें स्वयं नहीं मालूम रहता था। हम लोग जो कुछ दिन उनके सस्पर्श में रहकर धन्य हुए हैं, उन्हीं कुछ दिनों की कथा-वार्ता का विवरण जहाँ तक और भी सम्भव है, क्रमशः लिपिवद्ध कर रहा हूँ।

३

पहले ही कह चुका हूँ कि पाश्चात्य विज्ञान की सहायता से हिन्दू धर्म को समझाने एव विज्ञान और धर्म का सामजस्य प्रदर्शित करने में स्वामी जी के समान मैंने और कोई नहीं देखा। आज उसी प्रसंग में दो-चार बातें लिखने की इच्छा है। किन्तु यह जान लेना होगा, मुझे जहाँ तक स्मरण है, उतना ही लिख रहा हूँ। अतएव इसमें यदि कोई भूल रहे, तो वह मेरे समझने की भूल है, स्वामी जी की व्याख्या की नहीं।

स्वामी जी कहते थे—“चेतन-अचेतन, स्थूल-सूक्ष्म—सभी एकत्व की ओर दम साधकर दौड़ रहे हैं। पहले मनुष्य ने जिन भिन्न भिन्न पदार्थों को देखा, उनमें से प्रत्येक को भिन्न भिन्न समझकर उनको भिन्न भिन्न नाम दिये। बाद में

विचार करके मैं समस्त पदार्थ १३ मूल द्रव्यों से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया।

इन मूल द्रव्यों में अनेक विधाद्वय है। ऐसा इस समय बहुतों को समझ ही रहा है। और जब रसायनशास्त्र अन्तिम भौमशा पर पहुँचिगा उस समय सभी पदार्थ एक ही पदार्थ के अवस्था-भेद मात्र समझे जायेंगे। पहले ताप आर्द्रता और विद्युत् को सभी विभिन्न समझते थे। अब प्रमाणित हो गया है ये सब एक हैं, एक ही शक्ति के अवस्थान्तर मात्र हैं। लोगों ने पहले समस्त पदार्थों को चेतन अचेतन और उद्भिद इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया था। उसके बाद देखा कि उद्भिद में भी दूसरे सभी चेतन प्राणियों के समान प्राण हैं, केवल नमन-शक्ति नहीं है इत्यादि ही। तब याकी रही वो श्रेणियाँ—चेतन और अचेतन। फिर कुछ दिनों बाद देखा जायगा हम लोग जिन्हें अचेतन कहते हैं उनमें भी योद्धा-बहुत चैतन्य है।^१

“पृथ्वी में जो ऊँची-नीची बनीन देखी जाती है वह भी समस्त होकर एक रूप में परिणत होने की सद्य चोष्टा कर रही है। वर्षा के जल से पर्वत आदि ऊँची बनीन कुछ जाने पर उस मिट्टी से गड्ढे भर रहे हैं। एक उच्च पदार्थ की किसी स्थान में रहने पर वह चारों ओर के द्रव्यों के साथ समान उच्च मात्र धारण करने की चेष्टा करता है। सम्पत्ता-शक्ति इस प्रकार संवाहन संवाहन विकिरण आदि उपायों से सर्वदा सममात्र या एकत्र ही ओर ही अपसर ही रही है।

‘वृक्ष के फल फूल पत्ते और उसकी जड़ हम लोगों द्वारा विभिन्न विधियों से जाने पर भी ये सब वस्तुएँ एक ही हैं, विज्ञान इसे प्रमाणित कर चुका है। विकीर्ण काल के भीतर से देखने पर अलंब रंग इन्द्रजनुव के साथ रंग के समान पूषण पूषण विभक्त दिखायी पड़ता है। जामी आँखों से देखने पर एक ही रंग और काल या नीले बरने से देखने पर सभी कुछ काल या नीला दिखायी देता है।

इसी प्रकार, जो सत्य है, वह ही एक ही है। माया के द्वारा हम लोग उसे पूषण पूषण देखते हैं, वह इत्यादि ही। यद्यपि देख और काल से अतीत जो अनन्त अतीत सत्य है उसीके कारण मनुष्य को सब प्रकार के भिन्न भिन्न पदार्थों का ज्ञान होता है, फिर भी वह उस सत्य को नहीं पकड़ पाता उसे नहीं देख सकता।

१ स्वामी जी ने विभिन्न समय पूर्वोक्त विषयों का प्रतिपादन किया था परंतु तत्पश्चात् विद्यमान वैज्ञानिक जपरीयबन्ध अनु द्वारा प्रचारित सङ्ग्रहबाह से कई पदार्थों का चैतन्यरूप अपूर्व सत्य प्रकाशित नहीं हुआ था। ४

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा, “स्वामी जी, हम लोग आँखों से जो कुछ देखते हैं, वही क्या सब समय सत्य है? दो समानान्तर रेल की पटरियों को देखने पर प्रतीत होता है, मानो वे अन्त में एक जगह मिल गयी हैं। उसीका नाम है, ‘लुप्त विन्दु’। मृगतृष्णा, रज्जु में सर्प-भ्रम आदि (optical illusion) (दृष्टि-विभ्रम) सर्वदा ही होता रहता है। Calcspars नामक पत्थर के नीचे एक रेखा double refraction (द्वि-आवर्तन) से दो दिखायी देती है। एक पेन्सिल को आधे गिलास पानी में डुबाकर रखने पर पेन्सिल का जलमग्न भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा मोटा दिखायी देता है। फिर सभी प्राणियों के नेत्र भिन्न भिन्न क्षमतायुक्त एक एक लेन्स मात्र हैं। हम लोग किसी वस्तु को जितनी बड़ी देखते हैं, घोड़ा आदि अनेक प्राणी उसको तदपेक्षा अधिक बड़ी देखते हैं, क्योंकि उनके नेत्रों का लेन्स भिन्न शक्तिवाला है। अतएव हम जिसे अपनी आँखों से देखते हैं, वही सत्य है, इसका भी तो कोई प्रमाण नहीं। जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा है—मनुष्य सत्य सत्य करके ही पागल है, किन्तु निरपेक्ष सत्य (absolute truth) को समझने की क्षमता उसमें नहीं है, क्योंकि, घटना-क्रम से प्रकृत सत्य के आँखों के सामने आने पर भी यही वास्तविक सत्य है, यह मनुष्य कैसे समझेगा? हम लोगों का समस्त ज्ञान सापेक्ष है, निरपेक्ष को समझने की क्षमता हममें नहीं है। अतएव निरपेक्ष (निर्गुण) भगवान् या जगत्कारण को मनुष्य कभी भी नहीं समझ सकता।”

स्वामी जी ने कहा, “हो सकता है, तुम्हें या और सब लोगों को निरपेक्ष ज्ञान न हो, पर इसीलिए किसीको भी वह ज्ञान नहीं है, यह कैसे कह सकते हो? ज्ञान और अज्ञान अथवा मिथ्या ज्ञान नामक दो प्रकार के भाव या अवस्थाएँ हैं। इस समय तुम जिसे ज्ञान कहते हो, वह तो वस्तुतः मिथ्या ज्ञान है। सत्य ज्ञान के उदित होने पर वह अन्तर्हित हो जाता है, उस समय सब एक दिखायी देता है। द्वैतज्ञान अज्ञानजनित है।”

मैंने कहा, “स्वामी जी, यह तो बड़ी भयानक बात है। यदि ज्ञान और अज्ञान, ये दो ही वस्तुएँ हैं, तो ऐसा होने पर आप जिसे सत्य ज्ञान समझते हैं, वह भी तो मिथ्या ज्ञान हो सकता है, और हम लोगों के जिस द्वैत ज्ञान को आप मिथ्या ज्ञान कहते हैं, वह भी तो सत्य ज्ञान हो सकता है?”

उन्होंने कहा, “ठीक कहते हो, इसीलिए तो वेद में विश्वास करना चाहिए। हमारे पूर्वकालीन ऋषि-मुनिगण समस्त द्वैत ज्ञान को पारकर, इस अद्वैत सत्य का अनुभव कर जो कह गये हैं, उसीको वेद कहते हैं। स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओं में से कौन सी सत्य है और कौन सी असत्य, इसे विचारने की क्षमता द्रम लोगों

में नहीं है। जब तक हम लोग इन दोनों अवस्थाओं को पारकर इनकी परीक्षा नहीं कर सकेंगे तब तक कैसे कह सकते हैं कि यह सत्य है और वह असत्य ? केवल दो विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव होता है इतना ही कहा जा सकता है। जब तुम एक अवस्था में रहते हो तो दूसरी अवस्था तुम्हें भूक, मासूम पड़ती है। स्वप्न में हो सकता है कसकतों में तुमने कर्म-विक्रम किया पर दूसरे ही क्षण अपने को बिछाने पर लेटे हुए पाते हो। जब सत्य ज्ञान का उदय होता तब एक से भिन्न और कुछ नहीं देखोगे उस समय यह समझ सकोगे कि पहले का ईत ज्ञान मिथ्या था। किन्तु यह सब बहुत दूर की बात है। हाब में सड़िया केकर बसरायस्म करते ही यदि कोई रामायण महाभारत पढ़ने की इच्छा करे, तो यह कैसे होगा ? भर्म अनुभव का विषय है मुद्रि के द्वारा समझने का नहीं। अनुभव के लिए प्रयत्न करना ही होता तब उसका सत्यासत्य समझा जा सकेगा। यह बात तुम सोचों के पारचात्म विज्ञान रसायनशास्त्र नौतिकशास्त्र भूमर्मशास्त्र आदि से भी अनुमोदित है। दो मंष Hydrogen (उदुजन) और एक मंस Oxyglen (ओपजन) केकर 'पानी कहाँ' कहने से क्या कहीं पानी होगा ? नहीं जतनी एक सक्त म्बाम में रखकर उनके भीतर electric current (विद्युत्प्रवाह) बलाकर उनका combination (संयोग मिश्रण नहीं) करने पर ही पानी दिखायी देगा और ज्ञात होगा कि उदुजन और ओपजन नामक मंस से पानी उत्पन्न हुआ है। जईत ज्ञान की उपसन्धि के लिए भी ठीक उसी तरह बर्म में विश्वास चाहिए, भाग्रह चाहिए, अभ्यवसाय चाहिए और चाहिए प्राणपन सं मल। तब कहीं जईत ज्ञान होता है। एक महीने की भावत छोड़ना कितना कठिन होता है फिर एस साक की भावत की तो बात ही क्या ! प्रत्येक व्यक्ति के सैकड़ों बर्मों का कर्मफल पीठ पर बैबा हुआ है। एक मुहूर्त भर समझान बैराग्य हुआ नहीं कि बस कहने लगे कहीं मुझे तो सब एक दिखायी नहीं पड़ता ?

मैने कहा 'स्वामी जी आपकी यह बात सत्य होने पर तो Fatalism (अदृष्टबाध) भा जाता है। यदि बहुत बर्मों का कर्मफल एक जन्म में जाने का नहीं तो उसके लिए फिर प्रयत्न ही क्यों ! जब सभी को मुक्ति मिलेगी तो मुझे भी मिलेगी।

वे बोले 'वैसा नहीं है। कर्म का फल तो अवश्य भोपना होगा किन्तु जबक उपायों द्वारा वे सब कर्मफल बहुत बौड़े समय के भीतर समाप्त हो सकते हैं। मैजिक मैण्टन की पचास तस्वीरें बस मिनट के भीतर भी दिखायी जा सकती हैं और दिगाने दिगाते समस्त रात भी काटी जा सकती है। वह तो अपने जाबह क ऊपर निर्भर है।

सृष्टि-रहस्य के सम्बन्ध में भी स्वामी जी की व्याख्या अति सुन्दर है,—“सृष्टि वस्तु मात्र ही चेतन और अचेतन (सुविधा के लिए) इन दो भागों में विभक्त है। मनुष्य सृष्टि वस्तु के चेतन-भाग का श्रेष्ठ प्राणीविशेष है। किसी किसी धर्म के मतानुसार ईश्वर ने अपने ही समान रूपवाली सर्वश्रेष्ठ मानव जाति का निर्माण किया है, कोई कहते हैं—मनुष्य पुच्छरहित वानरविशेष है, कोई कहते हैं—केवल मनुष्य में ही विवेचना-शक्ति है, उसका कारण यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क में जल का अंश अधिक है। जो भी हो, मनुष्य प्राणीविशेष है और सब प्राणी सृष्टि पदार्थ के अंश मात्र है, इस विषय में मतभेद नहीं है। अब एक ओर पाश्चात्य विद्वान् ‘सृष्टि पदार्थ क्या है,’ यह समझने के लिए सश्लेषण-विश्लेषणात्मक उपायों का अवलम्बन कर ‘यह क्या,’ ‘वह क्या,’ इस प्रकार अनुसन्धान करने लगे, और दूसरी ओर हमारे पूर्वज लोग भारत की गर्म हवा और उर्वर भूमि में, शरीर-रक्षा के लिए बिल्कुल थोड़ा समय देकर, कौपीन धारण कर, टिमटिमाते दिव्य प्रकाश में बैठकर, कमर बाँधकर विचार करने लगे—कस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति, अर्थात् ‘ऐसा कौन सा पदार्थ है, जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है?’ उन लोगों में अनेक प्रकार के लोग थे। इसीलिए चार्वाक के, ‘जो कुछ दिखता है, वही सत्य है,’ इस मत (ultra-materialistic theory) से लेकर शंकराचार्य के अद्वैत मत तक सभी हमारे धर्म में पाये जाते हैं। ये दोनों ही दल धीरे धीरे एक स्थान में पहुँच रहे हैं और अब दोनों ने एक ही बात कहनी आरम्भ कर दी है। दोनों ही कहते हैं—इस ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ एक अनिर्वचनीय, अनादि, अनन्त वस्तु के प्रकाश मात्र हैं। देश एव काल भी वही हैं। काल अर्थात् युग, कल्प, वर्ष, मास, दिन और मुहूर्त आदि समयसूचक काल, जिसके अनुभव में सूर्य की गति ही हमारी प्रधान सहायक है। जरा सोचकर तो देखो, वह काल क्या मालूम होता है? सूर्य अनादि नहीं है, ऐसा समय अवश्य था, जब सूर्य की सृष्टि नहीं हुई थी। और ऐसा समय भी आयेगा, जब यह सूर्य नहीं रहेगा, यह निश्चित है। अतः अखण्ड समय एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तु विशेष के अतिरिक्त भला और क्या है? देश या आकाश कहने पर हम लोग पृथ्वी अथवा सौर जगत् सम्बन्धी सीमावद्ध स्थानविशेष समझते हैं, किन्तु वह तो समय सृष्टि का अंश मात्र छोड़ और कुछ भी नहीं है। ऐसा भी स्थान हो सकता है, जहाँ पर कोई सृष्टि वस्तु नहीं है। अतएव अनन्त देश भी काल के समान एक अनिर्वचनीय भाव या वस्तुविशेष है। अब, सौर जगत् और सृष्टि पदार्थ कहाँ से और किस तरह आये? साधारणतः हम लोग कर्ता के अभाव में क्रिया नहीं देख पाते। अतएव समझते हैं कि इस सृष्टि का अवश्य कोई कर्ता है, किन्तु ऐसा

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। अतएव यदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि अनिर्बन्धीय अनन्त माय या वस्तुविशेष है। पर अनन्त की अनेकता तो सम्भव नहीं है। अतएव ये सब अनन्त वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विधि र्णों में प्रकाशित हैं।

एक समय मैंने पूछा था "स्वामी जी मन्त्र जाति में जो सामारमयता विश्वास प्रचलित है वह क्या सत्य है ?

उम्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई मन्त्र कस्य स्वर एवं मन्त्र भाषा में कोई बात पूछे तो तुम समुत्पत् होते हो पर कठोर स्वर एवं तीक्ष्ण भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर मन्त्र प्रत्येक मूत्र के अविच्छादा देवता सुसम्पित उत्तम श्लोकों द्वारा र्णों न समुत्पत् होमि ?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की बीड़ को तो आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा 'बिना प्रकार भी हो पहले मन को मध्य में छाने की चेष्टा करो बाद में सब भाष ही हो जायगा। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मामल-जीवन का चरम उद्देश्य या लक्ष्य है, किन्तु उस समय तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आसौजन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यथार्थ वैराग्य को छोड़ उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

स्वामी जी की अस्फुट स्मृति^१

१

आज से सोलह वर्ष पहले की बात है। सन् १८९७ ईस्वी, फरवरी मास। स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य देशों को जीतकर अभी अभी भारत में पदार्पण किया है। जिस क्षण से स्वामी जी ने शिकागो धर्म-महासभा में हिन्दू धर्म की विजय-पताका फहरायी है, तब से उनके सम्बन्ध में जो भी बात सवाद-पत्रों में प्रकाशित होती है, बड़े चाव से पढ़ता हूँ। कॉलेज छोड़े अभी दो-तीन वर्ष हुए हैं, किसी प्रकार का अर्थोपार्जन आदि नहीं कर रहा हूँ। इसलिए कभी मित्रों के घर जाकर, अथवा कभी घर के समीपवर्ती धर्मतला मुहल्ले में 'इण्डियन मिरर' आफिस के बाहरी भाग में बोर्ड पर चिपकी हुई 'इण्डियन मिरर' पत्रिका में स्वामी जी से सम्बन्धित जो कोई सवाद या उनका व्याख्यान प्रकाशित होता है, उसे बड़ी उत्सुकता से पढ़ा करता हूँ। इस प्रकार, स्वामी जी के भारत में पदार्पण करने के समय से सिंहल या मद्रास में जो कुछ उन्होंने कहा है, प्रायः सभी पढ़ चुका हूँ। इसके सिवाय आलमवाज़ार मठ में जाकर उनके गुरुभाइयों के पास एव मठ में आने-जानेवाले मित्रों के पास उनके विषय में बहुत सी बातें सुन चुका हूँ और सुनता हूँ, तथा विभिन्न सम्प्रदायों के मुखपत्र, जैसे—बगवासी, अमृतवाज़ार, होप, थियोसॉफिस्ट प्रभृति, अपनी अपनी समझ के अनुसार—कोई व्यग से, कोई उपदेश देने के बहाने, तो कोई बडप्पन के ढग से—उनके बारे में जो कुछ लिखता है, वह भी लगभग सब पढ़ चुका हूँ।

आज वे ही स्वामी विवेकानन्द सियालदह स्टेशन पर अपनी जन्मभूमि कलकत्ता नगरी में पदार्पण करेंगे। अब आज उनकी श्री मूर्ति के दर्शन से आँख-कान का विवाद समाप्त हो जायगा, इस हेतु बड़े तडके ही उठकर सियालदह स्टेशन पर जा उपस्थित हुआ। इतने सवेरे से ही स्वामी जी की अम्यर्थना के लिए बहुत से लोग एकत्र हो गये हैं। अनेक परिचित व्यक्तियों से भेंट हुई। स्वामी जी

१ बगला सन् १३२० के आषाढ़ मास के बगला मासिक-पत्र 'उद्बोधन' में स्वामी शुद्धानन्द का यह लेख प्रकाशित हुआ था। स०

होने पर तो सृष्टिकर्ता का भी कोई सृष्टिकर्ता आवश्यक है। किन्तु वैसे ही नहीं सकता। अतएव यदि कारण सृष्टिकर्ता या ईश्वर भी अनादि, अनिर्बन्धीय अनन्त आद्य या वस्तुविषय है। पर अनन्त की अनेकता तो सम्भव नहीं है अतएव ये सब अनन्त वस्तुएँ एक ही हैं एवं एक ही विविध रूपों में प्रकाशित हैं।

एक समय मैंने पूछा था 'स्वामी जी मन्त्र आदि में जो साधारणतया विश्वास प्रचलित है वह क्या सत्य है ?

उन्होंने उत्तर दिया 'सत्य न होने का कोई कारण तो दिखता नहीं। तुमसे कोई यदि कश्चि स्वर एवं मन्त्र माया में कोई बात पूछे तो तुम सन्तुष्ट होते हो पर कठोर स्वर एवं तीक्ष्ण भाषा में पूछे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। तब फिर मन्त्र प्रत्येक मूत्र के अधिष्ठाता देवता सुकृष्टित उत्तम स्त्रोत्रों द्वारा क्यों न सन्तुष्ट होंगे ?

इन सब बातों को सुनकर मैंने कहा 'स्वामी जी मेरी विद्या-बुद्धि की बीड़ की तो आप अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है यह आप बतलाने की कृपा करें।

स्वामी जी ने कहा "बिना प्रकार भी हो पहले मन की बाध में छाने की चेष्टा करो बाद में सब आप ही हो जायगा। ध्यान रखो अद्वैत ज्ञान अत्यन्त कठिन है वही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य या सत्य है, किन्तु उस कर्म तक पहुँचने के पहले अनेक चेष्टा और आयोगन की आवश्यकता होती है। साधु-संग और यथार्थ ईश्वर की ओर उसके अनुभव का और कोई साधन नहीं।

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे हैं, और दूसरी गाडी में गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहब), जी० जी०, किडी और आलासिंगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज में प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी में थोड़ा बोले और लौटकर गाडी में आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नहीं गया। गाडी वागवाज़ार में पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

२

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल में चाँपातला मुहल्ले में खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टाँगे में बैठकर पशुपति बोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे में विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नहीं जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, “ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।”

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मज़िल पर एक सुसज्जित बैठकखाने में पास पास दो कुर्सियों पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप में स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसंग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

“देख योगेन, क्या देखा, बताऊँ? समस्त पृथ्वी में एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजो-गुणात्मक क्रिया के रूप में manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुतः समग्र जगत् में वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप में क्रीडा कर रही है।”

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, “इस लड़के को बहुत sickly (कमज़ोर) देखता हूँ।”

क सम्बन्ध में बातचीत होमें सगी। देखा अमेज़ी में मुद्रित दो परपे वितरित किये जा रहे हैं। पढ़कर मालूम हुआ कि ईंग्लैण्ड और अमेरिकावासी उनके छात्रवृत्त में उनके प्रस्थान के अवसर पर उनके मूर्तों का दर्शन करते हुए, उनके प्रति इतना-सूचक जो वो अभिनन्दन-पत्र अर्पित किये थे वे ही य है। धीरे धीरे स्वामी जी के दर्शनार्थी लोग मुण्ड के मुण्ड जाने लगे। प्लेटफार्म लोगों से भर गया। सभी आपस में एक दूसरे में उत्कृष्टा के साथ पूछते हैं ‘स्वामी जी के जाने में और किन्ना बिसम्ब है? तुना मया वे एक ‘स्पेशल ट्रेन’ से आयेंगे जाने में जब और बेरी नहीं है। अरे, यह तो है—गाड़ी का समय मुनामी वे रहा है। कमस वावाज के साथ गाड़ी ने प्लेटफार्म के नीतर प्रवेश किया।

स्वामी जी जिस दिग्घे में थे वह जिस जगह जाकर बसा सीमाय्य से मैं ठीक उसीके सामने खड़ा था। गाड़ी रुकते ही देखा स्वामी जी बड़े हाव जोड़कर सबको नमस्कार कर रहे हैं। इस एक ही नमस्कार से स्वामी जी ने मेरे हृदय को आकृष्ट कर लिया। उस समय गाड़ी में बैठ हुए स्वामी जी की मूर्ति को मैंने साधारणतः देखा किया। उसके बाद स्वागत-समिति के अध्यक्ष मरेन्द्रनाथ सेन जापि व्यक्तिर्षी ने जाकर स्वामी जी की गाड़ी से उतरा और कुछ दूर बढ़ी एक साड़ी में बिठाया। बहुत से छोटा स्वामी जी को प्रणाम करते और उनकी चरण रेणु डेने के लिए अपसर हुए। उस जगह बड़ी भीड़ जमा हो गयी। इतर दर्शकों के हृदय से आप ही ‘जय स्वामी विवेकानन्द जी की जय’ ‘जय श्री रामकृष्ण देव की जय की आनन्द-ध्वनि निकलने लगी। मैं भी हृदय में उस आनन्द-ध्वनि में सह योग लेकर जनता के साथ अपसर होने लगा। कमस जब स्टेसन के बाहर निकले तो देखा बहुत से मुचक स्वामी जी की साड़ी के चोड़े ओरकर खूब ही साड़ी सीपने के लिए अपसर हो रहे हैं। मैंने भी उन लोगों को सहयोग देना चाहा परन्तु मीड़ के कारण बीसा न कर सका। इसलिये उस घेप्टा को छोड़कर कुछ दूर से स्वामी जी की साड़ी के साथ चलने लगा। स्टेसन पर स्वामी जी के स्वागतार्थ आयें हुए एक हरिनाम-सकीर्तन-दल को देखा जा। रास्ते में एक बँध बजायेवाले दल को बँध बजाते हुए स्वामी जी के साथ चकते देखा। रिपन कॉलेज तक का मार्ग अनेक प्रकार की पताकामों एवं लता पत्र और पुष्पों से सुसज्जित था। साड़ी जाकर रिपन कॉलेज के सामने खड़ी हुई। इस बार स्वामी जी को देखने का अच्छा सुयोग मिला। देखा वे किसी परिचित व्यक्ति से कुछ कह रहे हैं। मुच उत्पकाचनचर्चे हैं मानो ज्योति फूटकर बाहर निकल रही है। मार्गजित भ्रम के कारण कुछ पधीना जा रहा है। वो नाड़ियाँ हैं—एक से स्वामी जी एवं श्रीमान और भीमठी सेविदर बैठे हैं जिसमें बड़े हीकर माननीय चारुचन्द्र मिश्र हाव

के इशारे से जनता को नियन्त्रित कर रहे है, और दूसरी गाडी मे गुडविन, हैरिसन (सिंहल से स्वामी जी के साथ आये हुए बौद्ध धर्मावलम्बी एक साहव), जी० जी०, किडी और आलासिंगा नामक तीन मद्रासी शिष्य एव स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी बैठे हुए हैं।

थोड़ी देर गाडी रुकने के बाद, बहुतो के अनुरोधवश स्वामी जी रिपन कॉलेज मे प्रवेश कर दो-तीन मिनट अग्रेजी मे थोडा बोले और लौटकर गाडी मे आकर बैठ गये। यहाँ से जुलूस आगे नहीं गया। गाडी वागवाजार मे पशुपति बाबू के घर की ओर चली। मैं भी मन ही मन स्वामी जी को प्रणाम कर अपने घर की ओर लौटा।

२

भोजन करने के बाद मध्याह्न काल मे चाँपातला मुहल्ले में खगेन (स्वामी विमलानन्द) के घर गया। वहाँ से खगेन और मैं उसके टांगे मे बैठकर पशुपति बोस के घर की ओर चले। स्वामी जी ऊपर के कमरे मे विश्राम कर रहे थे, अधिक लोगो को नहीं जाने दिया जा रहा था। सौभाग्यवश हमारे परिचित, स्वामी जी के अनेक गुरुभाइयो से भेंट हो गयी। स्वामी शिवानन्द जी हम लोगो को स्वामी जी के पास ले गये और हम लोगो का परिचय देते हुए कहा, “ये सब आपके खूब admirers (प्रेमी) हैं।”

स्वामी जी और स्वामी योगानन्द पशुपति बाबू के घर की दूसरी मजिल पर एक सुसज्जित बैठकखाने मे पास पास दो कुर्सियो पर बैठे थे। अन्य साधुगण उज्ज्वल गैरिक वस्त्र धारण किये हुए इधर-उधर घूम रहे थे। फर्श पर दरी बिछी हुई थी। हम लोग प्रणाम करके दरी पर बैठे। स्वामी जी उस समय स्वामी योगानन्द से बातचीत कर रहे थे। अमेरिका और यूरोप मे स्वामी जी ने क्या देखा, यह प्रसंग चल रहा था। स्वामी जी कह रहे थे—

“देख योगेन, क्या देखा, बताऊँ? समस्त पृथ्वी मे एक महाशक्ति ही क्रीडा कर रही है। हमारे पूर्वजो ने उसको religion (धर्म) की ओर manifest (प्रकाशित) किया था, और आधुनिक पाश्चात्य देशीय लोग उसीको महा रजोगुणात्मक क्रिया के रूप मे manifest (प्रकाशित) कर रहे हैं। वस्तुत ममग्र जगत् मे वही एक महाशक्ति भिन्न भिन्न रूप मे क्रीडा कर रही है।”

खगेन की ओर देखकर स्वामी जी ने कहा, “इस लडके को बहुत sickly (कमजोर) देखता हूँ।”

स्वामी त्रिपालर जी ने उत्तर दिया "यह बड़ा लिंग में chronic dyspepsia (गुमन अर्थात् रोग) में पीड़ित है।"

स्वामी जी ने कहा हमारा बहाना देव बहुत sentimental (भावुक) है न शरीरिय मर्न होना dyspepsia होता है।

हुठ देर बात हम लोग प्रणाम करके आन आन परतीर आये।

२

स्वामी जी और उनके गिण्ट भीमान और भीमजी मेदिपर बायीं गुर में स्व० गीतामन्नाक घोड के बीच में निराग कर रहे हैं। स्वामी जी के भीमगा स कपा बागी गुमन के लिए करने बहुत से मित्रों के साथ में हम स्थान पर कई बार गया था। वहाँ का प्रमाण जो कुछ स्मरण है, वह इस प्रकार है

स्वामी जी के साथ मुझे बागीचा का गीतामन्नाक सारं प्रथम उगी घोड के एक कमरे में हुआ। स्वामी जी आकर बैठे हैं मैं भी जाकर प्रणाम करके बैठा हूँ उस समय बागी और कोई नहीं है। न जाने क्यों, स्वामी जी ने एसा एक मुससे पूछा क्या तु तम्बाक पीता है ?

मिने कहा जी नहीं।

उस पर स्वामी जी बोले हूँ बहुत से लोग पान हैं—तम्बाक पीना अच्छा नहीं।

एक दूसरे दिन स्वामी जी के पास एक रोज़म आये हुए हैं। स्वामी जी उनके साथ बागीचा कर रहे हैं। मैं कुछ दूर पर बैठा हूँ और कोन नहीं है। स्वामी जी कह रहे हैं बाबा जी अमरिका के मैं भी तुम्हारे के सम्बन्ध में एक बार व्याख्यान दिया। उसको सुनकर एक परम सुन्दरी अगाध एडवर्से की अधिकारिणी मुबली सर्वस्व त्यागकर एक निर्जन द्वीप में जाकर भी तुम्हारे के स्थान में उन्मत्त हो गयी। उसके बाद स्वामी जी त्याग के सम्बन्ध में कहने लगे "जिन सम्प्रदायों में त्याग-भाव का प्रचार उतने उन्मत्त रूप में नहीं है उनके भीतर सीध ही अन्वति जा जाती है जैसे—बसुमाचार्य का सम्प्रदाय।"

और एक दिन स्वामी जी के पास गया। बेलता हूँ बहुत से सोप बैठे हैं और स्वामी जी एक मुकक को ऊँस कर बागीचा कर रहे हैं। मुकक बंसाक चिरो-साँकिकल छोसाबटी के भवन में रखा है। वह कह रहा है "मैं अनेक सम्प्रदायों में जाता हूँ किन्तु सत्य क्या है, यह निर्भय नहीं कर पा रहा हूँ।"

स्वामी जी अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर में कह रहे हैं, “देखो बच्चा, मेरी भी एक दिन तुम्हारी जैसी अवस्था थी। फिर भय क्या? अच्छा, भिन्न भिन्न लोगो ने तुमसे क्या क्या कहा था, और तुमने क्या क्या किया, बताओ तो सही?”

युवक कहने लगा, “महाराज, हमारी सोसाइटी में भवानीशकर नामक एक विद्वान् प्रचारक हैं। मूर्तिपूजा के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति में जो विशेष सहायता मिलती है, उसे उन्होंने मुझे बहुत सुन्दर ढंग से समझा दिया। मैंने भी तदनुसार कुछ दिनों तक खूब पूजा-अर्चना की, किन्तु उससे शान्ति नहीं मिली। उसी समय एक महाशय ने मुझे उपदेश दिया—‘देखो, मन को विल्कुल शून्य करने की कोशिश करो, उससे तुम्हें परम शान्ति मिलेगी।’ मैं बहुत दिनों तक उसी कोशिश में लगा रहा किन्तु उससे भी मेरा मन शान्त न हुआ। महाराज, मैं अब भी एक कोठरी में, दरवाजा बन्द कर, जब तक बन पड़ता है, बैठा रहता हूँ, किन्तु शान्ति तो कभी भी तरह नहीं मिल रही है। क्या आप दया कर यह बता सकेंगे, शान्ति किससे मिलेगी?”

स्वामी जी स्नेहभरे स्वर में कहने लगे, “बच्चा, यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें अब पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथासाध्य सेवा करनी होगी। जो पीड़ित है, उसके लिए औषधि और पथ्य का प्रबन्ध करो और शरीर के द्वारा उसकी सेवा-शुश्रूषा करो। जो भूखा है, उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो। तुमने तो इतना पढा-लिखा है, अतः जो अज्ञानी है, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके, समझाओ। यदि तुम मेरा परामर्श मानो, तो इस प्रकार लोगो की यथासाध्य सेवा करो। यदि तुम इस प्रकार कर सकोगे, तो तुम्हारे मन को अवश्य शान्ति मिलेगी।”

युवक बोला, “अच्छा, महाराज, मान लीजिए, मैं एक रोगी की सेवा करने के लिए गया, किन्तु उसके लिए रात भर जगने से, समय पर भोजन आदि न करने तथा अधिक परिश्रम से यदि मैं स्वयं ही रोगग्रस्त हो जाऊँ तो?”

स्वामी जी अब तक उस युवक के साथ स्नेहपूर्ण स्वर में सहानुभूति के साथ बातें कर रहे थे। इस अन्तिम वाक्य से ऐसा जान पड़ा कि वे कुछ विरक्त से हो गये। वे कुछ व्यग-भाव से कह उठे, “देखो जी, रोगी की सेवा करने के लिए जाने पर तुम अपने रोग की आशंका कर रहे हो, किन्तु तुम्हारी बातचीत सुनने पर और तुम्हारा मनोभाव देखने पर मुझे तो मालूम पड़ता है—और जो यहाँ उपस्थित हैं, वे भी खूब अच्छी तरह समझ सकते हैं—कि तुम ऐसे रोगी की सेवा कभी भी नहीं करोगे, जिससे तुम्हें खुद को ही रोग हो जाय।”

युवक के साथ और कोई विशेष बातचीत नहीं हुई। हम लोग समय में मह् व्यक्ति 'शैवी शैवी का है मर्णात् जैसे शैवी जो कुछ भी मिसे उसीको काट देती है उसी प्रकार एक मर्णा के मनुष्य है जो कोई सवुपवेश सुनने से ही उससे मुक्ति निकालते है जिनकी निगाह इन उपरिष्ट विषयों में दीप बेजने के लिए बड़ी पैनी रखी है। ऐसे लोगों से चाहे कितनी ही मन्धी बात क्यों न कहिए, सभी की बात वे तर्क द्वारा काट देते है।

एक दूसरे दिन मास्टर महाशय (श्री रामहृष्य बचनानुत् के प्रणेता श्री 'म') के साथ बातचीत हो रहा है। मास्टर महाशय कह रहे है 'देखो तुम जो दया परोपकार और शैव-सेवा आदि की बातें करते हो वे तो माया के राज्य की बातें है। जब देवास्त-मय में मानव का चरम सद्य मुक्ति-काम और माया-बन्धन का विच्छेद है तो फिर उन सब माया-व्यापारों में लिप्त होकर लोगों को दया परोपकार आदि विषयों का उपवेश देने में क्या काम ?'

स्वामी जी ने उत्तर देकर कहा 'मुक्ति भी क्या माया के अन्तर्गत नहीं है? आत्मा तो नित्य मुक्त है फिर उसकी मुक्ति के लिए क्या करना ?'

मास्टर महाशय चुप हो गये।

मैं समझ गया मास्टर महाशय दया सेवा परोपकार आदि सब चीजकर, सभी प्रकार के अधिकारियों के लिए केवल जप-तप ध्यान-धारणा या भक्ति का ही एकमात्र साधन के रूप में समर्पण कर रहे थे किन्तु स्वामी जी के मतानुसार, एक प्रकार के अधिकारियों के लिए इन सबका अनुष्ठान जिस तरह मुक्ति-काम के लिए आवश्यक है उसी प्रकार ऐसे भी बहुत से अधिकारी है जिनके लिए परोपकार, दान सेवा आदि आवश्यक है। एक को उड़ा देने से दूसरे को भी उड़ा देना हीमा एक को स्वीकार करने पर दूसरे को भी स्वीकार करना पड़ेगा। स्वामी जी के इस प्रत्युत्तर से यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयी कि मास्टर महाशय दया सेवा आदि की 'माया' छत्र के उड़ाकर और जप-ध्यान आदि की ही मुख्य रूपकर सङ्कीर्ण राश का परिपोषण कर रहे थे। परन्तु स्वामी जी का उधार हृदय और धुरे की चार क उमान उनकी तीक्ष्ण बुद्धि उसे सहन न कर सकी। अपनी अनुभूत मुक्ति से उन्होंने मुक्ति-काम की चेट्या को भी माया के अन्तर्गत ही निर्धारित किया एवं दया सेवा आदि के साथ उसको एक शैवी में लाकर उन्होंने वर्णपोष के पथिक की भी आभय दिया।

बौद्ध-ग-क्रैमियस के 'मिमा-अनुकरण' (Imitation of Christ) का प्रथम उपा। बहुत से लोग जानने होम कि स्वामी जी सनातन-धर्म करन से कुछ पहले इस ग्रन्थ की विशेष रूप से चर्चा किया करते थे और बराह्मण मठ में रहने

समय उनके सभी गुरुभाई उन्हींके समान इस ग्रन्थ को साधक-जीवन में विशेष सहायक समझकर सर्वदा इस पर विचार किया करते थे। स्वामी जी इस ग्रन्थ के इतने अनुरागी थे कि उस समय के 'साहित्य-कल्पद्रुम' नामक मासिक पत्र में उसकी एक प्रस्तावना लिखकर उन्होंने 'ईसा-अनुसरण' नाम से उसका सुन्दर अनुवाद करना भी आरम्भ कर दिया था। प्रस्तावना पढ़ने से ही यह मालूम हो जाता है कि स्वामी जी इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार को कितनी गम्भीर श्रद्धा से देखते थे। वास्तव में, उसमें विवेक, वैराग्य, दीनता, दास्य, भक्ति आदि के ऐसे सैकड़ों ज्वलन्त उपदेश हैं कि जो उसे पढ़ेंगे, उनके हृदय में वे भाव कुछ न कुछ अवश्य उद्दीपित होंगे। उपस्थित व्यक्तियों में से एक सज्जन यह जानने के लिए कि स्वामी जी का इस समय उस ग्रन्थ के प्रति कैसा भाव है, उस ग्रन्थ में वर्णित दीनता के उपदेश का प्रसंग उठाते हुए बोले, "अपने को इस प्रकार अत्यन्त हीन समझे बिना आध्यात्मिक उन्नति कैसे हो सकती है?" स्वामी जी यह सुनकर कहने लगे, "हम लोग हीन कैसे? हम लोगों के लिए अन्धकार कहाँ? हम लोग तो ज्योति के राज्य में वास करते हैं, हम लोग तो ज्योति के तनय हैं।"

उनका इस प्रकार प्रत्युत्तर सुनकर मैं समझ गया कि स्वामी जी उक्त ग्रन्थ-निर्दिष्ट इन प्राथमिक साधन-सोपानों को पारकर साधना-राज्य की कितनी उच्च भूमि में पहुँच गये हैं।

हम लोग यह विशेष रूप से देखते थे कि ससार की अत्यन्त सामान्य घटनाएँ भी उनकी तीक्ष्ण दृष्टि को घोखा नहीं दे सकती थी। वे उन घटनाओं की सहायता से भी उच्च धर्मभाव का प्रचार करने की चेष्टा करते थे।

श्री रामकृष्ण देव के भतीजे श्रीयुत रामलाल चट्टोपाध्याय (मठ के पुराने साधुगण, जिन्हें रामलाल दादा कहकर पुकारते हैं) दक्षिणेश्वर से एक दिन स्वामी जी से मिलने आये। स्वामी जी ने एक कुर्सी मँगवाकर उनसे बैठने के लिए अनुरोध किया और स्वयं टहलने लगे। श्रद्धाविनम्र दादा इससे कुछ सकुचित होकर कहने लगे, "आप बैठें, आप बैठें।" पर स्वामी जी उन्हें किसी तरह छोड़नेवाले नहीं थे। बहुत कह-सुनकर दादा को कुर्सी पर बिठाया और स्वयं टहलते टहलते कहने लगे, "गुरुवत् गुरुपुत्रेषु।" (गुरु के पुत्र एवं सम्बन्धियों के साथ गुरु जैसा ही व्यवहार करना चाहिए।) मैंने देखा, इतना ऐश्वर्य, इतना मान पाकर भी हमारे स्वामी जी को थोड़ा सा भी अभिमान नहीं हुआ है। यह भी समझा, गुरुभक्ति इसी तरह की जाती है।

बहुत से छात्र आये हुए हैं। स्वामी जी एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं। सभी उनके पास बैठकर उनकी दो-चार बातें सुनने के लिए उत्सुक हैं। वहाँ पर और

स्वामी जी के कथन का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विधाम-
कर में प्रवेश कर रहे थे तब भागे बढ़कर उनके पास भाकर खड़ी बात बोले
“सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे?”

स्वामी जी ने कहा “जिनकी मूर्खता इतनी सुन्दर हो ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता—
मैं तो चाहता हूँ जब स्वस्थ धीर, कर्मठ एवं सत्यकृतिपुक्त कुछ लड़के। उन्हें
train करना (शिक्षा देना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और
जगत के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।

और एक दिन जाकर देखा स्वामी जी ठहक रहे हैं भीषट् सरस्वती चन्द्रिका
(‘स्वामी-शिष्य-संवाद’ नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ जब
बलिष्ठ भाव से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें अत्यधिक
उत्कण्ठ हुई। प्रश्न यह था—अधतार और मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर
है? हमने धरतू बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विशेष
अनुरोध किया। अब उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम सोच सए
बाबू के पीछे पीछे यह मुझे के लिए मये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या
उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर दिये
कहने लगे ‘विदेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब
मैं साधनावस्था में भारत के अनेक स्थानों में भ्रमण कर रहा था उस समय
कितनी निर्जन गुफाओं में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है मुक्ति प्राप्त
नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्राचीनवेधन हाथ देह त्याग देने का भी संकल्प
किया है कितना ध्यान कितना साधन-मजम किया है! किन्तु अब मुक्ति-
साम के लिए वह ‘विजातीय’ आग्रह नहीं रहा। इस समय तो मन में केवल यही
होता है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी
मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।

मैं तो स्वामी जी की उक्त बाणी सुनकर उनके हृदय की अपार कल्याण की
बात सोचकर विस्मित हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना कष्टान्त लेकर
अवधार पुरुषों का उद्धार समझाया है? क्या वे भी एक अधतार हैं? सोचा
स्वामी जी अब मुक्त ही गये हैं इसीलिए भावमूढ होता है, उन्हें अपनी मुक्ति के
लिए अब आग्रह नहीं है।

और एक दिन सम्झा के बाद मैं और लजेन (स्वामी विवेकानन्द) स्वामी
जी के पास गये। हरमोहन बाबू (जी रामहृष्य देव के भक्त) हम लोगों की
स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले “स्वामी जी
ये दोनों आपके जब admirers (प्रसंगक) हैं और वेदान्त का अध्ययन भी

धर्म-साधन के लिए अत्यन्त प्रयोजनीय है, तथापि वे पूर्ण रूप से उसका अनुष्ठान नहीं कर पाते थे। वे सर्वदा लड़को को लेकर अध्यापन-कार्य में ही लगे रहते थे, इसलिए धर्म-साधन और सत्-शिक्षा के अभाव एव कुसंगति के कारण अत्यन्त अल्प अवस्था में ही उन लोगों का ब्रह्मचर्य किस तरह नष्ट हो जाता है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे, और किस उपाय से उसे रोका जाय, इसकी शिक्षा उन बच्चों को देने के लिए वे सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे। किन्तु स्वयमसिद्ध. कथ परान् साधयेत्—अर्थात् 'स्वयं असिद्ध होकर दूसरों को कैसे सिद्ध किया जा सकता है।' अतएव किसी भी तरह अपने या दूसरे के भीतर ब्रह्मचर्य-भाव को प्रविष्ट करने में असमर्थ हो समय समय पर वे अत्यन्त दुःखित हो जाते थे। इस समय परम ब्रह्मचारी स्वामी जी की ज्वलन्त उपदेशावली और ओजस्विनी वाणी सुनकर अकस्मात् उनके हृदय में यह भाव उदित हुआ कि ये महापुरुष एक बार इच्छा करने पर मेरे तथा बालकों के भीतर उस प्राचीन ब्रह्मचर्य भाव को निश्चित ही उद्दीप्त कर सकते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि ये एक भावुक व्यक्ति थे। वे एकाएक पूर्वोक्त रूप से उत्तेजित हो अंग्रेजी में चिल्लाकर बोल उठे, "Oh Great Teacher ! tear up the veil of hypocrisy and teach the world the one thing needful—how to conquer lust" अर्थात् "हे आचार्यवर, जिस कपटता के आवरण से अपने यथार्थ स्वभाव को छिपाकर हम लोग दूसरों के निकट अपने को शिष्ट, शान्त या सभ्य बतलाने की चेष्टा करते हैं, उसे आप अपनी दिव्य शक्ति के बल से छिन्न करके दूर कर दें एव लोगों के भीतर जो घोर काम-प्रवृत्ति विद्यमान है, उसका जिससे समूल विनाश हो, वैसी शिक्षा दें।"

स्वामी जी ने चड़ी वावू को शान्त और आश्वस्त किया।

वाद में एडवर्ड कारपेन्टर का प्रसंग उपस्थित हुआ। स्वामी जी ने कहा, "लन्दन में ये बहुधा मेरे पास आते रहते थे। और भी बहुत से समाजवादी, प्रजातन्त्रवादी आदि आया करते थे। वे सब वेदान्तोक्त धर्म में अपने अपने मत की पोषकता पाकर उसके प्रति विशेष आकृष्ट होते थे।"

स्वामी जी उक्त कारपेन्टर साहब की 'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' नामक पुस्तक पढ़ चुके थे। इसी समय उक्त पुस्तक में दी दृष्टि चड़ी वावू की तस्वीर उन्हें याद आयी, वे बोले, "आपका चेहरा तो पुस्तक में पहले ही देख चुका हूँ।" और भी कुछ देर बातचीत करने के बाद सन्ध्या हो जाने के कारण स्वामी जी विश्राम के लिए उठे। उठने के समय चड़ी वावू को मन्त्रोघित करके बोले, "चड़ी वावू, आप तो बहुत से लड़कों के ससर्ग में आते हैं। क्या आप मुझे कुछ मुन्दर मुन्दर लड़के दे सकते हैं?" शायद चड़ी वावू कुछ अन्यमनस्क थे।

कोई वासन नहीं है, जिस पर स्वामी जी लड़कों से बैठने को कह सकें इसलिए उन सोमों को भूमि पर बैठना पड़ा। ऐसा ज्ञात हुआ कि स्वामी जी मन में सीप रहे हैं यदि इनके बैठने के लिए कोई वासन होता तो अच्छा है। किन्तु ऐसा लगा कि दूसरे ही क्षण उनके हृदय में दूसरा भाव उत्पन्न हो गया। वे बोळ उठे, "सो ठीक है, तुम सोम ठीक बैठे हो। बोड़ी बोड़ी तपस्या करता भी ठीक है।"

एक दिन अपने मुहम्मद के बंड़ीचरम वर्जन को साथ लेकर मैं स्वामी जी के पास गया। बंड़ी बाबू 'हिन्दू व्यायोज' स्कूल' नामक एक संस्था के मासिक थे। वहाँ अंग्रेजी स्कूल की तृतीय श्रेणी तक पढ़ाया जाता था। वे पहले से ही ब्रह्म ईश्वरानुरानी के बाव में स्वामी जी की बकवृत्ता जाति पढ़कर उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा हो गये। पहले कभी कभी बर्न-साधना के लिए व्याकुल ही संसार परित्याग करने की भी उन्होंने चेष्टा की थी किन्तु उसमें सफल नहीं हो सके। कुछ दिन सौक के लिए बियेटर में अभिलष जाति एवं एकाम नाटक की रचना भी की थी। ये भादुक व्यक्ति थे। विख्यात प्रजातन्त्रवादी एडवर्ड कारपेस्टर जब भारत भ्रमण कर रहे थे उस समय उनके साथ बंड़ी बाबू का परिचय और बातचीत हुई थी। उन्होंने 'एडम्स पीक टू एक्लिफ्टे' नामक अपने ग्रन्थ में बंड़ी बाबू के साथ हुए वार्तालाप का सक्षिप्त विवरण और उनका एक चित्र भी रिया था।

बंड़ी बाबू जाकर मन्त्रि-भाव से स्वामी जी को प्रणाम कर पूछने लगे "स्वामी जी किस प्रकार के व्यक्ति को पुत्र बनाना चाहिए ?

स्वामी जी—'जो तुम्हें तुम्हारा मूल-मन्त्रिष्य बतला सके, वही तुम्हारा पुत्र है। ऐसो न मेरे गुण ने मेरा मूल-मन्त्रिष्य सब बतला दिया था।

बंड़ी बाबू ने पूछा "अच्छा स्वामी जी कीपीन पहनने से क्या काम-बनान में कुछ विशेष सहायता मिलती है।

स्वामी जी—"बोड़ी-बहुत सहायता मिल सकती है। किन्तु इस बुद्धि के प्रबल ही उठने पर कीपीन भी अच्छा क्या करेगा ? जब तक मन ममबान् में लम्ब नहीं हो जाता तब तक किसी भी बाह्य उपाय से काम पूर्णतया रोक नहीं जा सकता। फिर भी बात क्या है जानते ही जब तक मन्त्रिष्य उस बबत्वा को पूर्णतया काम नहीं कर देता तब तक अनेक प्रकार के बाह्य उपायों के अवलम्बन की चेष्टा स्वभाव ही किया करता है।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में बंड़ी बाबू स्वामी जी से बहुत से प्रश्न पूछने लगे। स्वामी जी भी बड़े सरल ढंग से सभी प्रश्नों का उत्तर देने लगे। बंड़ी बाबू बर्न साधना के लिए आन्तरिक भाव से प्रयत्न करते थे किन्तु पृथक् होने के कारण इच्छानुसार नहीं कर पाते थे। यद्यपि उनकी यह बड़ बाराबा थी कि ब्रह्मचर्य

खूब करते हैं।” हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण सत्य होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरजित था, क्योंकि हम लोगो ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगो ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदो का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रो की हम लोगो ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नहीं की थी और न मूल सस्कृत ग्रन्थो को भाष्य आदि की सहायता से पढा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, “उपनिषद् कुछ पढा है?”

मैंने कहा, “जी हाँ, थोडा-बहुत देखा है।”

स्वामी जी ने पूछा, “कौन सा उपनिषद् पढा है?”

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, “कठोपनिषद् पढा है।”

स्वामी जी ने कहा, “अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।”

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके सस्कृत मंत्रो को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुसन्धानपूर्वक पढने और मुखार्थ करने की चेष्टा नहीं की थी। सो बड़ी मुश्किल मे पड गया। क्या करूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोडा थोडा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकांश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोको की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, “कठ तो कण्ठस्थ नहीं है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।”

स्वामी जी बोले, “अच्छा, वही सही।”

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से स्याने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या से आरम्भ करके अर्जुनकृत सपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उरसाह देते हुए “बहुत अच्छा, बहुत अच्छा” कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, “भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बडा लज्जित हुआ। तुम्हारे पान यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब मे लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढने से ही हो जायगा।” राजेन्द्र के पास प्रमन्नकुमार शान्तीकृत ईश-वेन-कठ आदि उपनिषद् और उनके वगानुवाद का एक गुटका संस्करण था। उन्ने जेब मे रगकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

स्वामी जी के कपन का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकने के कारण वे जब विमान पर में प्रवेश कर रहे थे तब जाने बड़कर उनके पास जाकर बाड़ी बाब बोले "सुन्दर लड़कों की आप क्या बात कर रहे थे ?

स्वामी जी ने कहा बिनकी मुखाकृति सुन्दर हो ऐसे लड़के मैं नहीं चाहता— मैं तो चाहता हूँ जब स्वस्थ घरीर, कर्मठ एवं सत्प्रकृतियुक्त कुछ लड़के। उन्हें प्रशिक्षण करना (पिशा वेना) चाहता हूँ जिससे वे अपनी मुक्ति के लिए और जगत के कल्याण के लिए प्रस्तुत हो सकें।

और एक दिन जाकर देखा स्वामी जी टहल रहे हैं भीषुत घरण्णत्र चक्रवर्ती ('स्वामी-विश्व-संसार' नामक पुस्तक के रचयिता) स्वामी जी के साथ जब अनिष्ट मान से बातें कर रहे हैं। स्वामी जी से एक प्रश्न पूछने की हमें उत्पत्तिक उत्कण्ठा हुई। प्रश्न यह था—जगतार और मुक्त या सिद्ध पुरुष में क्या अन्तर है? हमने सख्त बाबू से स्वामी जी के सम्मुख इस प्रश्न को उठाने के लिए विषय अनुरोध किया। अतः उन्होंने स्वामी जी से यह प्रश्न पूछा। हम सोच सख्त बाबू के पीछे पीछे यह मुन्ते के लिए मये कि देखें स्वामी जी इस प्रश्न का क्या उत्तर देते हैं। स्वामी जी उस प्रश्न के सम्बन्ध में बिना कोई प्रकट उत्तर बिये कहने लगे "विदेह-मुक्त ही सर्वोच्च अवस्था है—यही मेरा सिद्धान्त है। जब मैं साधनावस्था में मारुत के अनेक स्वानों में भ्रमण कर रहा था उस समय कितनी निर्जन मुफाओं में अकेले बैठकर कितना समय बिताया है, मुक्ति प्राप्त नहीं हुई, यह सोचकर कितनी बार प्रायीपथेयन द्वारा देह त्याग देने का भी संकल्प किया है कितना ध्यान कितना साधन-भजन किया है। किन्तु अब मुक्ति काम के लिए वह 'विजातीय' आप्रह नहीं रहा। इस समय तो मन में कबल यही हीषा है कि जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य अमुक्त है तब तक मुझे अपनी मुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं।

मैं तो स्वामी जी की उक्त वाणी सुनकर उनके हृदय की अपार कसना की बात सोचकर विस्मित हो गया और सोचने लगा इन्होंने क्या अपना वृष्टान्त हैकर जगतार पुरुषों का कर्मण समझाया है? क्या वे भी एक जगतार है? सोचा स्वामी जी अब मुक्त हो मये हैं इसीलिए माकूम होता है उन्हें अपनी मुक्ति के लिए अब आप्रह नहीं है।

और एक दिन छाया के बाबू में और जोग (स्वामी विश्वकामन्द) स्वामी जी के पास मये। हरमोहन बाबू (भी रामकृष्ण देव के प्रकट) हम लोगों को स्वामी जी के साथ विशेष रूप से परिचित कराने के लिए बोले 'स्वामी जी, वे दोनों आपके बूब admirers (प्रशंसक) हैं और वेदान्त का अध्ययन भी

खूब करते हैं।" हरमोहन बाबू के वाक्य का प्रथम अंश सम्पूर्ण मृत्यु होने पर भी, द्वितीयांश कुछ अतिरजित था, क्योंकि हम लोगों ने उस समय केवल गीता का ही अध्ययन किया था। हम लोगों ने वेदान्त के छोटे छोटे कुछ ग्रन्थ और दो-एक उपनिषदों का अनुवाद एकाध बार देखा था, परन्तु इन सब शास्त्रों की हम लोगों ने विद्यार्थी के समान उत्तम रूप से आलोचना नहीं की थी और न मूल मसूक्त ग्रन्थों को भाष्य आदि की महत्ता ने पढ़ा था। जो हो, स्वामी जी वेदान्त की बात सुनकर बोल उठे, "उपनिषद् कुछ पढ़ा है?"

मैंने कहा, "जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा है।"

स्वामी जी ने पूछा, "कौन सा उपनिषद् पढ़ा है?"

मैंने मन के भीतर टटोलकर और कुछ न पाकर कह डाला, "कठोपनिषद् पढ़ा है।"

स्वामी जी ने कहा, "अच्छा, कठ ही सुनाओ, कठोपनिषद् खूब grand (सुन्दर) है—कवित्व से भरा है।"

क्या मुसीबत! स्वामी जी ने शायद समझा कि मुझे कठोपनिषद् कण्ठस्थ है, इसीलिए मुझसे सुनाने के लिए कहा। मैंने उसके संस्कृत मंत्रों को यद्यपि एकाध बार देखा था, किन्तु कभी भी अर्थानुमन्वानपूर्वक पढ़ने और मुखार्थ करने की चेष्टा नहीं की थी। सो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। क्या कहूँ? इसी समय एक बात स्मरण आयी। इसके कुछ वर्ष पहले से ही प्रत्यह नियमपूर्वक थोड़ा थोड़ा गीता का पाठ किया करता था। इस कारण गीता के अधिकांश श्लोक मुझे कण्ठस्थ थे। सोचा, जैसे भी हो, कुछ शास्त्रीय श्लोकों की आवृत्ति यदि न करूँ, तो फिर स्वामी जी को मुँह दिखाते न बनेगा। अतएव बोल उठा, "कठ तो कण्ठस्थ नहीं है—गीता से कुछ सुनाता हूँ।"

स्वामी जी बोले, "अच्छा, वही सही।"

तब गीता के ग्यारहवें अध्याय के अन्तिम भाग से स्थाने हृषीकेश! तव प्रकीर्त्या से आरम्भ करके अर्जुनकृत संपूर्ण स्तव स्वामी जी को सुना दिया। स्वामी जी उत्साह देते हुए "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहने लगे।

इसके दूसरे दिन मैं अपने मित्र राजेन्द्र घोष के पास गया। उससे मैंने कहा, "भाई, कल उपनिषद् के कारण स्वामी जी के सम्मुख बड़ा लज्जित हुआ। तुम्हारे पास यदि कोई उपनिषद् हो, तो जेब में लेते चलो। यदि कल की तरह उपनिषद् की बात निकालेंगे, तो पढ़ने से ही हो जायगा।" राजेन्द्र के पास प्रसन्नकुमार शास्त्रीकृत ईश-केन-कठ आदि उपनिषद् और उनके वगानुवाद का एक गुटका संस्करण था। उसे जेब में रखकर हम लोग स्वामी जी के दर्शनार्थ चले। आज

अपराह्न में स्वामी जी का कमरा सोगों से भर हुआ था। जो चीजाँ बा बड़ी हुआ। आज भी यह तो ठीक स्मरण नहीं कि कैसे पर कठोपनिषद् का ही प्रसंग उठा। मैंने झट बेच से उपनिषद् निकाला और उसे शुरू से पढ़ना आरम्भ किया। पाठ के बीच में स्वामी जी नचिकेता की यज्ञ की कथा—जिस यज्ञ के बल से वे निर्भीक चित्त से यम-सदन जाने के लिए भी चाहती हुए थे—कहने लगे। जब नचिकेता के द्वितीय बार स्वर्ग प्राप्ति की कथा का पाठ आरम्भ हुआ तब स्वामी जी ने उस स्वरु को अधिक न पढ़कर कुछ कुछ छोड़कर तृतीय बार का प्रसंग पढ़ने के लिए कहा।

नचिकेता के प्रश्न—मृत्यु के बाद सोगों का सम्बन्ध—सरीर छूट जाने पर कुछ रहता है या नहीं—उसके बाद यम का नचिकेता को प्रलोभन बिलाना और नचिकेता का बड़ भाव से उस सभी का प्रत्याख्यान—इन सब स्वर्गों का पाठ ही जाने के बाद स्वामी जी ने अपनी स्वभाव-सुखम जोरस्विनी भाषा में क्या क्या कहा—श्रीग स्मृति सोलह बयों में उसका कुछ भी चित्त न रख सकी।

किन्तु इन दो दिनों के उपनिषद्-मर्संग में स्वामी जी की उपनिषद् के प्रति भ्रष्टा और अनुराग का कुछ बंध मेरे अन्तःकरण में भी संचरित हो गया क्योंकि उसके वृत्तरे ही दिन से जब कभी सुयोग पाता परम भ्रष्टा के साथ उपनिषद् पढ़ने की चेष्टा करता था। और यह कार्य आज भी कर रहा हूँ। विभिन्न समय में उनके श्रीमुख से उच्चरित अपूर्व स्वर, लय और तेजस्विता के साथ पठित उपनिषद् के एक एक मन्त्र मानो आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। जब परबर्चा में मग्न हो आत्म-बर्चा भूक्त जाता हूँ तो सुन पाता हूँ—उनके उस सुपरिचित किमरकच्छ से उच्चरित उपनिषद्-वाणी की दिव्य गंभीर बोधना—

तमेवैवं ज्ञानं भस्मानसत्या वाचो विमुञ्चन्नामृतस्यैव सेतुः—'एकमात्र उस आत्मा को ही पहचानो अन्य सब बातें छोड़ दो—वही अमृत का सेतु है।

जब आकाश में नीर बटाएँ छा जाती हैं और शामिली बनकरने लगती हैं उस समय मानो सुन पाता हूँ—स्वामी जी उस आकाशस्व सौदामिनी की ओर इंगित करते हुए कह रहे हैं—

न तत्र सूर्यो मास्ति न चन्द्रतारकम् ।
 नेमा विद्युतो मास्ति कुतोऽथवज्जनिः ।
 तमेव भात्मसमुमास्ति सर्वं ।
 तस्य भासा सर्वंभिरं विभास्ति ॥^१

१ मुण्डकोपनिषद् ॥२॥२५॥

२ कठोपनिषद् ॥२॥२१५॥

—'वहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता—चन्द्रमा और तारे भी नहीं, ये सब विद्युत् भी वहाँ प्रकाशित नहीं होती—फिर इस सामान्य अग्नि की भला वात ही क्या ? उनके प्रकाशित होने से फिर सभी प्रकाशित होते हैं, उनका प्रकाश इन सबको प्रकाशित करता है।'

पुन, जब तत्त्वज्ञान को असाध्य जान हृदय हताश हो जाता है, तब जैसे सुन पाता हूँ—स्वामी जी आनन्दोत्फुल्ल हो उपनिषद् की आश्वासन देनेवाली इस वाणी की आवृत्ति कर रहे हैं—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
 आ ये धामानि दिव्यानि तस्यु ॥
 वेदाहमेत पुरुष महान्तम्
 आदित्यवर्णं तमसं परस्तात् ॥
 तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति
 नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ॥^१

—'हे अमृत के पुत्रो, हे दिव्यधामनिवासियो, तुम लोग सुनो। मैंने उस महान् पुरुष को जान लिया है, जो आदित्य के समान ज्योतिर्मय और अज्ञानान्वकार से अतीत है। उसको जानने से ही लोग मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं—मुक्ति का और दूसरा कोई मार्ग नहीं।'

अस्तु, और एक दिन की घटना का विषय यहाँ पर सक्षेप में कहूँगा। इस दिन की घटना का शरत् वाबू ने 'विवेकानन्द जी के सग मे' नामक अपने ग्रन्थ में विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

मैं उस दिन दोपहर में ही जा उपस्थित हुआ था। देखा, कमरे में बहुत से गुजराती पण्डित बैठे हैं, स्वामी जी उनके पास बैठकर धाराप्रवाह रूप से संस्कृत भाषा में धर्मविषयक विचार कर रहे हैं। भक्ति-ज्ञान आदि अनेक विषयों की चर्चा हो रही थी। इसी बीच हल्ला हो उठा। ध्यान देने पर समझा कि स्वामी जी संस्कृत भाषा में बोलते बोलते कोई एक व्याकरण की भूल कर गये। इस पर पण्डित-गण ज्ञान-भक्ति-विवेक-वैराग्य आदि विषय की चर्चा छोड़कर इस व्याकरण की त्रुटि को लेकर, 'हमने स्वामी जी को हरा दिया' यह कहते हुए खूब शोर-गुल मचा रहे हैं और प्रसन्न हो रहे हैं। उस समय श्री रामकृष्ण देव की वह वात याद आ गयी—'गिद्ध उडता तो खूब ऊपर है, किन्तु उसकी दृष्टि रहती है मरे पशुओं पर।'

जो ही स्वामी जी किञ्चित् भी विचलित नहीं हुए और कहा पश्चिमतानां शालोष्णं शस्तस्यमेतत्सकलम् । बीड़ी देर के बाद स्वामी जी उठ गये और पश्चिमतगम गया जी में हाथ-मुँह धोने के लिए गये । मैं भी बपीचे में धूमते धूमते बंगा जी के तट पर गया । वहाँ पश्चिमतगम स्वामी जी के सम्मुख में आलोचना कर रहे थे । मुना के कह रहे थे—“स्वामी जी उस प्रकार के पश्चिमत नहीं हैं परन्तु उनकी आँखों में एक मोहिनी छिपित है । उसी छिपित के बल से उन्होंने अनेक स्थानों में दिम्बिजय की है ।

घोषा पश्चिमतों न वो ठीक ही समझा है । आँखों में यदि मोहिनी छिपित न होती तो क्या यहाँ ही इतने विद्वान् बनी मानी प्राण्य-पारचार्य देश के विभिन्न प्रकृति के स्त्री-पुरुष इनके पीछे पीछे हाथ के समान दीड़ते । यह तो विद्या के कारण नहीं रूप के कारण नहीं एतदर्थ के भी कारण नहीं—यह सब उमकी आँखों की उस मोहिनी छिपित क ही कारण है ।

पाठकगण ! आँखों में यह मोहिनी छिपित स्वामी जी को वहाँ से किसी इस जानने का यदि कीवृत्त ही तो अपने भी पुर के साथ उनके दिव्य सम्मुख एवं उनके अपूर्व साधन-वृत्तान्त पर यदा के साथ एक बार मनन करो—इसका रहस्य सात ही जामया ।

वत् १८९७ अरैल मास का अन्तिम भाग । आसमबाजार मठ । अभी चार पाँच दिन ही हुए हैं पर छोंडकर मठ में रह रहा हूँ । पुण्डने संस्थापिण्या में केवल स्वामी प्रेमात्म स्वामी निर्मलानन्द और स्वामी सुदीभानन्द हैं । स्वामी जी कात्रिलिय मे आये—गाय में स्वामी बल्लानन्द स्वामी योषानन्द स्वामी जी क मशामी गिष्य आसागिया देकमल तिही और जी जी आदि हैं ।

स्वामी निरपामन्द कुछ दिन हुए, स्वामी जी द्वारा सप्यागठ में हीजित हुए हैं । इन्होंने स्वामी जी से कहा “इस समय बहुत से नये नये लड़क संमार छोंडकर मशामी हुए हैं उनके लिए एक निर्दिष्ट नियम से निता-दान की व्यवस्था करना अनुमत होगा ।

स्वामी जी उनका अनिवाय का अनुमोदन करने हुए बोले ही ही नियम बनाना तो अच्छा ही है । बुनायो नहीं की । यह आकर बड़े कमरे में गया हुआ । तब स्वामी जी ने कहा “कोई एक दरिद्र निगता मुक करो मैं बोलाया जाता है । उस समय तब एक दूगर की टैककर आये करने लगे—कोई अपमर ली होना बाराता का अर्थ में मुग इदेकर आने कर दिना । उस समय बड में निताई-युद्ध के प्रति साधारणतया एक प्रकार की उमेता थी । फरी चारवा बरत की दि मन्त्र बरत करे मन्त्राम् का साधारण बरता ही एकदम मार है निन्दे-युद्ध के तो मन्त्र और बरत की इच्छा हीकी है । जो मन्त्राम् के द्वारा

आदिष्ट होकर प्रचार-कार्य आदि करेंगे, उनके लिए भले वह आवश्यक हो, पर साधको के लिए तो उसका कोई प्रयोजन नहीं है, उल्टे वह हानिकारक ही है। जो हो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि स्वभाव से मैं ज़रा forward (अग्रिम) और लापरवाह हूँ—मैं अग्रसर हो गया। स्वामी जी ने एक बार आकाश की ओर देखकर पूछा, “यह क्या रहेगा ?” (अर्थात् क्या मैं ब्रह्मचारी होकर वहाँ रहूँगा, अथवा दो-एक दिन मठ में घूमने के लिए ही आया हूँ और वाद में चला जाऊँगा।) सन्यासियों में से एक ने कहा, “हाँ।” तब मैंने कागज़-कलम आदि ठीक से लेकर गणेश का आसन ग्रहण किया। नियम लिखाने से पहले स्वामी जी कहने लगे, “देखो, हम ये सब नियम बना तो रहे हैं, किन्तु पहले हमें समझ लेना होगा कि इन नियमों के पालन का मूल लक्ष्य क्या है। हम लोगो का मूल उद्देश्य है—सभी नियमों से परे होना। तो भी, नियम बनाने का अर्थ यही है कि हममें स्वभावतः बहुत से कुनियम हैं—सुनियमों के द्वारा उन कुनियमों को दूर कर देने के बाद हमें सभी नियमों से परे जाने की चेष्टा करनी होगी। जैसे काँटे से काँटा निकाल-कर अन्त में दोनों ही काँटों को फेंक दिया जाता है।”

उसके बाद स्वामी जी ने नियम लिखाने प्रारम्भ किये। प्रातःकाल और सायंकाल जप-ध्यान, मध्याह्न विश्राम के बाद स्वस्थ होकर शास्त्र-ग्रन्थों का अध्ययन और अपराह्न सबको मिलकर एक अध्यापक के निकट किसी निर्दिष्ट शास्त्र-ग्रन्थ का श्रवण करना होगा—यह व्यवस्था हुई। प्रत्येक दिन प्रातः और सायं थोड़ा थोड़ा ‘डेल्टा’ व्यायाम करना होगा, यह भी निश्चित हुआ। अन्त में लिखाना समाप्त कर स्वामी जी ने कहा, “देख, इन नियमों को ज़रा देख-भालकर अच्छी तरह प्रतिलिपि करके रख ले—देखना, यदि कोई नियम negative (निषेध-वाचक) भाव से लिखा गया हो, तो उसे positive (विधिवाचक) कर देना।”

इस अन्तिम आदेश का पालन करते समय हमें ज़रा कठिनाई मालूम हुई। स्वामी जी का उपदेश था कि किसीको खराब कहना, उसके विरुद्ध आलोचना करना, उसके दोष दिखाना, उससे ‘तुम ऐसा मत करो, वैसा मत करो’ कहकर negative (निषेधात्मक) उपदेश देना—इस सबसे उसकी उन्नति में विशेष सहायता नहीं होती, किन्तु उसको यदि एक आदर्श दिखा दिया जाय, तो फिर उसकी उन्नति सरलता से हो सकती है, उसके दोष अपने आप चले जाते हैं। यही स्वामी जी का अभिप्राय था।

अपूर्व घोषा बाराह कर बैठे हुए हैं। अनेक प्रसंग बस रहे हैं। वहाँ हम सौम्यों के मित्र विजयचन्द्र बसु (भाद्रकच्छ मलीपुर बराहत्त के विख्यात बकीक) महाशय भी उपस्थित हैं। उस समय विजय बाबू समय समय पर अनेक क्षमाओं में भीर कमी कमी कांप्रेस में खड़े होकर धरती में व्याख्यान दिया करते थे। उनकी इस व्याख्यान-शक्ति का उल्लेख किसीने स्वामी जी के समक्ष किया। इस पर स्वामी जी ने कहा 'सो बहुत अच्छा है। अच्छा यहाँ पर बहुत से लोग एकत्र हैं—उस खड़े होकर एक व्याख्यान दो दो soul (आत्मा) के सम्बन्ध में तुम्हारी जो idea (धारणा) है उसी पर कुछ कहो।' विजय बाबू अनेक प्रकार के बहाने बहाने लगे। स्वामी जी एवं भीर भी बहुत से लोग उनसे खूब आग्रह करने लगे। १५ मिनट तक अनुरोध करने पर भी जब कोई उनके संकीर्ण को दूर करने में सफल नहीं हुआ तब अन्तर्गत्य हार मानकर उन सौम्यों की वृष्टि विजय बाबू से हटकर मेरे ऊपर पड़ी। मैं मठ में सहयोग देने से पूर्व कमी कभी धर्म के सम्बन्ध में बंगला भाषा में व्याख्यान देता था और हम लोगों का एक 'डिवेलिंग क्लब' (बाप-विवाह समिति) भी था—उसमें अंग्रेजी बोलने का अभ्यास करता था। मेरे सम्बन्ध में इन सब बातों का किसीने उल्लेख किया ही था कि बस मेरे ऊपर बाजी पड़ती। पहले ही कह चुका हूँ मैं बहुत कुछ चापरबाहू सा था। *Fools rush in where angels fear to tread.* (वहाँ देवता भी जाने में सशर्मा होते हैं वहाँ मूर्ख बुझ पड़ते हैं।) मुझसे उन्हें अधिक कहना नहीं पड़ा। मैं एकदम लड़ा हो गया और बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-भेनेयी संवाद के अन्तर्गत आत्म उत्पत्त को लेकर आत्मा के सम्बन्ध में लगभग बाप बटे तक जो मुँह में जाया बोलता गया। भाषा या व्याकरण की मूर्ख हो रही है अथवा भाव का अज्ञानमय ही रहा है इस सबका मैंने विचार ही नहीं किया। क्या के सावर स्वामी जी मेरी इस अपरमत्ता पर पीड़ा भी निरस्त न ही मुझे उत्साहित करने लगे। मेरे बाप स्वामी जी द्वारा कभी कभी संन्यासाश्रम में दीक्षित स्वामी प्रकाशानन्द^१ कमलग इस मिनट तक आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में बोले। वे स्वामी जी की व्याख्यान-शैली का अनुकरण कर बड़े गम्भीर स्वर में अपना वक्तव्य देने लगे। उनके व्याख्यान की भी स्वामी जी ने खूब प्रशंसा की।

१ ये तीन द्वांसिस्की (यू एन ए) की वेदान्त-समिति के अध्यक्ष थे। अमेरिका में इनका कार्य-काल १९६ ई से १९२७ ई तक था। ८ जुलाई, सन् १८७४ की कलकत्ते में इनका जन्म हुआ था एवं १३ फरवरी, १९२७ ई की तीन द्वांसिस्की की वेदान्त-समिति में इनका देहान्त हुआ। स

अहा ! स्वामी जी सचमुच ही किसीका दोष नहीं देखते थे। वे, जिसमें जो भी कुछ गुण या शक्ति देखते, उसीके अनुसार उसे उत्साह देकर, जिससे उसके भीतर की अव्यक्त शक्तियाँ प्रकाशित हो जायँ, इसीकी चेष्टा करते थे। किन्तु, पाठक, आप लोग इससे ऐसा न समझ बैठें कि वे सबको सभी कार्यों में प्रश्रय देते थे। क्योंकि अनेक बार देख चुका हूँ, लोगों के, विशेषतः अपने अनुगामी गुरु-भ्राता और शिष्यों के, दोष दिखलाने में समय समय पर वे कठोर रूप भी धारण करते थे। किन्तु वह हम लोगों के दोषों को हटाने के लिए—हम लोगों को सावधान करने के लिए ही होता था, हमें निरुत्साह करने या हम लोगों के समान केवल परछिद्रान्वेषण वृत्ति को सार्थक करने के लिए नहीं। ऐसा उत्साह और भरोसा देनेवाला हम अब और कहाँ पायेंगे ? कहाँ पायेंगे ऐसा व्यक्ति, जो शिष्यवर्ग को लिख सके, "I want each one of my children to be a hundred times greater than I could ever be Everyone of you must be a giant—must, that is my word"—"मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों में से प्रत्येक, मैं जितना ही मकू, तदपेक्षा सौगुना बड़ा होवे। तुम लोगों में से प्रत्येक को आध्यात्मिक दिग्गज होना पड़ेगा—होना ही होगा, न होने से नहीं बनेगा।"

५

इसी समय स्वामी जी द्वारा इंग्लैण्ड में दिये गये ज्ञानयोग सम्बन्धी व्याख्यानो को लन्दन से ई० टी० स्टर्डी साहब छोटी छोटी पुस्तिकाओं के आकार में प्रकाशित करने लगे। मठ में भी उनकी एक एक दो दो प्रतियाँ आने लगी। स्वामी जी उस समय दार्जिलिंग से नहीं लौटे थे। हम लोग विशेष आग्रह के साथ अद्वैत तत्त्व के अपूर्व व्याख्यारूप, उद्दीपना से भरे उन व्याख्यानो को पढ़ने लगे। वृद्ध स्वामी अद्वैतानन्द अंग्रेजी अच्छी तरह नहीं जानते थे, किन्तु उनकी यह विशेष इच्छा थी कि नरेन्द्र ने वेदान्त के सम्बन्ध में विलायत में क्या कहकर लोगों को मुग्ध किया है, यह सुनें। अतः उनके अनुरोध से हम लोग उन्हें उन पुस्तिकाओं को पढ़कर, उनका अनुवाद करके सुनाने लगे। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द नये सन्यासियों और ब्रह्मचारियों से बोले, "तुम लोग स्वामी जी के इन व्याख्यानो का बगला अनुवाद करो न।" तब हममें से कई लोगों ने अपनी अपनी इच्छानुसार उन पुस्तिकाओं में से एक एक को चुन लिया और उनका अनुवाद करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच स्वामी जी लौट आये। एक दिन स्वामी प्रेमानन्द जी स्वामी जी से बोले, "इन लड़कों ने आपके व्याख्यानो का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।" बाद में हम लोगों को लक्ष्य करके कहा, "तुम लोगों में से कौन क्या अनुवाद कर रहा है, यह स्वामी जी

को सुनायो। तब हम सोचों में अपना अपना अनुवाद लाकर स्वामी जी को लोड़ा लोड़ा सुनाया। स्वामी जी ने भी अनुवाद के बारे में अपने कुछ विचार प्रकट किये और अमुक छन्द का अमुक अनुवाद ठीक रहेगा इस प्रकार दो-एक बातें भी बतायीं। एक दिन स्वामी जी के पास केबल में ही बैठा था उन्होंने अचानक मुझसे कहा "राजयोग का अनुवाद कर न। मेरे समान अनुपयुक्त व्यक्ति को स्वामी जी ने इस प्रकार आदेश कैसे दिया? मैं उसके बहुत दिन पहले से ही राजयोग का अभ्यास करने की चेष्टा किया करता था। इस योग के ऊपर कुछ दिन मेरा इतना अनुग्रह हुआ था कि भक्ति ध्यान और कर्मयोग को मानो एक प्रकार से अबका से ही देखने लगा था। सोचता था मठ के साधु लोग योग-योग कुछ भी नहीं जानते इसीलिए वे योग-साधना में उस्ताह नहीं देते। पर जब मैंने स्वामी जी का 'राजयोग' ग्रन्थ पढ़ा तो भासूँ हुआ कि स्वामी जी केवल राजयोग में ही पट्टे नहीं बरन् भक्ति ज्ञान प्रभृति अल्पान्य योगों के साथ उसका सम्बन्ध भी उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से दिखवाया है। राजयोग के सम्बन्ध में मेरी जो धारणा थी उसका उत्तम स्पष्टीकरण भी मुझे उनके उस 'राजयोग' ग्रन्थ में मिला। स्वामी जी के प्रति मेरी विशेष भक्ति का यह भी एक कारण हुआ। ती क्या इस उद्देश्य के कि राजयोग का अनुवाद करने से उस ग्रन्थ की चर्चा उत्तम रूप से होनी और उससे मेरी भी आध्यात्मिक उन्नति में सहायता पहुँचनी उन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया? अबका बम देश में यथार्थ राजयोग की चर्चा का अभाव देखकर, सर्वसाधारण के भीतर इस योग के यथार्थ मर्म का प्रचार करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया? उन्होंने स्व प्रमदावास मित्र को एक पत्र में लिखा था 'बंसार में राजयोग की चर्चा का बिल्कुल अभाव है। जो कुछ है वह भी नाक बजाना इत्यादि लोड़ और कुछ नहीं।

जो भी हो स्वामी जी की आज्ञा या अपनी अनुपयुक्तता आदि की बात मन में न सोचकर उसका अनुवाद करने में उसी समय रूप मया।

९

एक दिन अपराह्न काक में बहुत से लोग बैठे हुए थे। स्वामी जी के मन में जाया कि गीता-पाठ होना चाहिए। गीता कायी गयी। सभी उत्तर्जित होकर मुझसे लगे कि देखो स्वामी जी गीता के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। गीता के सम्बन्ध में उस दिन उन्होंने जो कुछ भी कहा था वह सब दो-चार दिन के बाद ही स्वामी प्रेमदानन्द जी की आज्ञा से मैंने स्मरण करके यथासाम्य लिपिवद्ध कर लिया। वह पहले 'गीता-वचन' के नाम से 'उद्बोधन' के द्वितीय बर्ष में प्रकाशित हुआ और

वाद मे 'भारत मे विवेकानन्द' पुस्तक मे अन्तर्भूत कर दिया गया। अतएव उन बातों की पुनरावृत्ति कर प्रस्तुत लेख का कलेवर बढ़ाने की इच्छा नहीं है, किन्तु उस दिन गीता की व्याख्या के सिलसिले मे स्वामी जी ने जो एक नयी ही भावधारा बहायी थी, उसीको यहाँ लिपिबद्ध करने की इच्छा है। हम लोग महापुरुषों की वचनावली को अनेक बार यथासम्भव लिपिबद्ध तो करते हैं, किन्तु जिन भावों से अनुप्राणित होकर वे वाक्य उनके श्रीमुख से निकलते हैं, वे प्रायः लिपिबद्ध नहीं रहते। फिर ऐसे महापुरुषों के साक्षात् सस्पर्श मे आये बिना हज़ार वर्णन करने पर भी लोग उनकी बातों के भीतर का गूढ मर्म नहीं समझ सकते। तो भी, जिन्हे उन लोगो के साथ साक्षात् सम्पर्क मे आने का सौभाग्य नहीं मिला है, उनके लिए उन महापुरुषों के सम्बन्ध मे लिपिबद्ध थोड़ी सी भी बातें बहुत आदर की वस्तु होती हैं, और उनकी आलोचना एव ध्यान से उनका कल्याण होता है। पाठक-वर्ग! उन महापुरुष की जिस आकृति को मैं मानो आज भी अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ, वह मेरे इस क्षुद्र प्रयास से आपके मनश्चक्षु के सामने भी उद्भासित हो। उनकी कथा का स्मरण कर मेरे मनश्चक्षु के सामने आज उन्हीं महापण्डित, महातेजस्वी, महाप्रेमी की तस्वीर आ खड़ी हुई है। आप लोग भी एक बार देश-काल के व्यवधान का उल्लघन कर मेरे साथ हमारे स्वामी जी के दर्शन करने की चेष्टा करें।

हाँ, तो जब उन्होंने व्याख्या आरम्भ की, उस समय वे एक कठोर समालोचक मालूम पड़े। कृष्ण, अर्जुन, व्यास, कुरुक्षेत्र की लड़ाई आदि को ऐतिहासिकता के बारे मे सन्देह की कारण-परम्परा का विवरण जब वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव से करने लगे, तब बीच बीच मे ऐसा बोध होने लगा कि इस व्यक्ति के सामने तो कठोर समालोचक भी हार मान जाय। यद्यपि स्वामी जी ने ऐतिहासिक तत्त्व का इस प्रकार तीव्र विश्लेषण किया, किन्तु इस विषय मे वे अपना मत विशेष रूप से प्रकाशित किये बिना ही आगे समझाने लगे कि धर्म के साथ इस ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क नहीं है। ऐतिहासिक गवेषणा मे शास्त्रोल्लिखित व्यक्ति यदि काल्पनिक भी ठहरे, तो भी उससे सनातन धर्म को कोई ठेस नहीं पहुँचती। अच्छा, यदि धर्म-साधना के साथ ऐतिहासिक गवेषणा का कोई सम्पर्क न हो, तो ऐतिहासिक गवेषणा का क्या फिर कोई मूल्य नहीं है?—इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ने समझाया कि निर्भीक भाव से इन सब ऐतिहासिक सत्यानु-सन्धानों का भी एक विशेष प्रयोजन है। उद्देश्य महान् होने पर भी उसके लिए मिथ्या इतिहास की रचना करने का कोई प्रयोजन नहीं। प्रत्युत यदि मनुष्य सभी विषयों मे सत्य का सम्पूर्ण रूप से आश्रय लेने के लिए प्राणपण से यत्न करे,

तो वह एक दिन सत्यस्वरूप भगवान् का भी साक्षात्कार कर सकता है। उसके बाद उन्होंने पीता क मूक तत्त्व सर्ववर्त्मसाम्बन्ध और मिष्काम कर्म की संक्षेप में व्याख्या करके स्वीकृत पढ़ना आरम्भ किया। द्वितीय अध्याय के श्लोकों में इस गमः पार्थ इत्यादि में युद्ध के लिए अर्जुन के प्रति श्री कृष्ण के जो उतोत्तमात्मक वचन हैं उन्हें पढ़कर वे स्वयं सर्वसाधारण को जिस भाव से उपदेश देते थे वह उन्हें स्मरण ही आया—'मत्तत्त्वमुपपद्यते—मह तो तुम्हें घोना नहीं देता'—तुम सर्वशक्तिमान हो तुम ब्रह्म हो तुममें जो अनेक प्रकार के विपरीत भाव देखे जा रहे हैं वह सब तो तुम्हें घोना नहीं देता। मसीहा के समान जीवस्वामी भावा में इन सब तत्त्वों को समझाते समझाते उनके भीतर से मानो तेज निकलने लगा। स्वामी जी कहते लगे 'जब सबको ब्रह्म-दृष्टि से देखना है तो महापापी को भी भूषा-दृष्टि से देखना उचित न होगा। महापापी से भूषा मय करी' यह कहते कहते स्वामी जी के मुख पर जो आभास्तर हुआ वह कृति आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित है—मानो उनके भीमुख से प्रेम शतवारों बग यह निकलता। श्रीमुख मानो प्रेम से शीघ्र ही उठा—उसमें कठोरता का संशयान भी नहीं।

इस एक श्लोक में ही सम्पूर्ण पीता का सार निहित देखकर स्वामी जी ने अन्त में यह कहते हुए उपसंहार किया 'इस एक श्लोक को पढ़ने से ही समग्र पीता के पाठ का फल होता है।

७

एक दिन स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्र कर्म के लिए कहा। कहते लगे 'ब्रह्मसूत्र के माध्यम को बिना पढ़े इस समय स्वतंत्र रूप से तुम सब लोग सूत्रों का अर्थ समझने की चेष्टा करो। प्रथम अध्याय के प्रथम पाठ के सूत्रों का पढ़ना आरम्भ हुआ। स्वामी जी युद्ध रूप से संस्कृत उच्चारण करने की शिक्षा देने लगे कहते लगे संस्कृत भाषा का उच्चारण हम लोग ठीक ठीक नहीं करते। इसका उच्चारण तो इतना सरल है कि बीड़ी चोपटा करने से ही सब लोग संस्कृत का शुद्ध उच्चारण कर सकते हैं। हम लोग वचन से ही दूसरे प्रकार का उच्चारण करने के जादी हो गये हैं इसीलिए इस प्रकार का उच्चारण अभी हम लोगों को इतना मया और कठिन मानून होता है। हम लोग आत्मा' शब्द का उच्चारण आत्मा' न करके 'आत्ता' क्यों करते हैं? महर्षि पतंजलि अपने महामाध्य में कहते हैं—'अपसंख्य उच्चारण करनेवाला म्लेच्छ है। अतः उनके मत से हम सब तो म्लेच्छ ही हुए। तब नवीन ब्रह्मचारी और सन्यासीगण एक एक करके जहाँ तक बन सका ठीक ठीक उच्चारण करके ब्रह्मसूत्र पढ़ने लगे। बाद में स्वामी जी यह उपाय बतलाने

लगे, जिससे सूत्र का प्रत्येक शब्द लेकर उसका अक्षरार्थ किया जा सके। उन्होंने कहा, “कौन कहता है कि ये सूत्र केवल अद्वैत मत के परिपोषक हैं? शंकर अद्वैतवादी थे, इसलिए उन्होंने सभी सूत्रों की केवल अद्वैत मतपरक व्याख्या करने की चेष्टा की है, किन्तु तुम लोग सूत्र का अक्षरार्थ करने की चेष्टा करना—व्यास का यथार्थ अभिप्राय क्या है, यह समझने की चेष्टा करना। उदाहरण के रूप में देखो—अस्मिन्नस्य च तद्योग शास्ति^१—मेरे मतानुसार इस सूत्र की ठीक ठीक व्याख्या यह है कि यहाँ अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, दोनों ही वाद भगवान् वेदव्यास द्वारा इंगित हुए हैं।

स्वामी जी एक ओर जैसे गम्भीर प्रकृतिवाले थे, उसी तरह दूसरी ओर रसिक भी थे। पढते पढते कामाच्च नानुमानापेक्षा^२ सूत्र आया। स्वामी जी इस सूत्र को लेकर स्वामी प्रेमानन्द के निकट इसका विकृत अर्थ करके हँसने लगे। सूत्र का सच्चा अर्थ यह है—जब उपनिषद् में, जगत्कारण के प्रसंग में ‘सोऽकामयत’ (उन्होंने अर्थात् उन्हीं जगत्कारण ने कामना की) इस तरह का वचन है, तब ‘अनुमानगम्य’ (अचेतन) प्रवान या प्रकृति को जगत्कारण रूप में स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं। जिन्होंने शास्त्र-ग्रन्थों का अपनी अपनी अद्भुत रचि के अनुसार कुत्सित अर्थ करके ऐसे पवित्र सनातन धर्म को घोर विकृत कर डाला है और ग्रन्थकार का जो अर्थ किसी भी काल में अभिप्रेत नहीं था, ग्रन्थकार ने जिसे स्वप्न में भी नहीं सोचा था, ऐसे सभी विषयों को जिन्होंने ग्रन्थ-प्रतिपाद्य बातें सिद्ध करते हुए धर्म को शिष्ट जनों से ‘द्वरात्परिहृतव्य’ कर डाला है, क्या स्वामी जी उन्हीं लोगों का तो उपहास नहीं कर रहे थे? अथवा, वे जैसे कभी कभी कहा करते थे, कठिन शुष्क ग्रन्थ की धारणा कराने के लिए वे बीच बीच में साधारण मन के उपयुक्त रसिकता लाकर दूसरों को अनायास ही उस ग्रन्थ की धारणा करा देते थे, तो सम्भवतः कहीं वही चेष्टा तो नहीं कर रहे थे?

जो भी हो, पाठ चलने लगा। बाद में शास्त्रदृष्ट्या तूपवेशो वामदेववत्^३ सूत्र आया। इस सूत्र की व्याख्या करके स्वामी जी स्वामी प्रेमानन्द की ओर देखकर कहने लगे, “देखो, तुम्हारे ठाकुर^४ जो अपने को भगवान् कहते थे, सो ईसी भाव से कहते थे।” पर यह कहकर ही स्वामी जी दूसरी ओर मुँह फेरकर कहने

१ ब्रह्मसूत्र ॥११११९॥

२ वही, १८

३ वही, ३०

४ भगवान् श्री रामकृष्ण देव ।

छगे "किन्तु उन्होंने मुझसे अपने अन्तिम समय में कहा था—'ओ राम जो कृष्ण नहीं अब रामकृष्ण तेरे बेदान्त की दृष्टि से नहीं।" यह कहकर दूसरा सूत्र पढ़ने के लिए कहा।

यहाँ पर इस सूत्र के सम्बन्ध में कुछ व्याख्या करनी आवश्यक है। कीर्तितकी उपनिषद् में इन्द्र प्रतर्जन संबाद नामक एक व्याख्यायिका है। उसमें लिखा है, प्रतर्जन नामक एक राजा ने देवराज इन्द्र की सन्तुष्ट किया। इन्द्र ने उसे बर देना चाहा। इस पर प्रतर्जन ने उनसे यह बर माँगा कि आप मानव के लिए जो सबसे अधिक कल्याणकारी समझते हैं वही बर मुझे दें। इस पर इन्द्र ने उसे उपदेश दिया—'सौ विजामीहि—'मुझे जानो। यहाँ पर सूत्रकार ने यह प्रश्न उठाना है कि 'मुझे' के अर्थ में इन्द्र ने किसको लक्ष्य किया है। सम्पूर्ण व्याख्यायिका का अभ्ययन करने पर पढ़ते अनेक सम्येह होते हैं—'मुझे' कहने से स्वान स्वान पर ऐसा भाव होता है कि उसका आशय 'देवता' से है, कहीं कहीं पर ऐसा मान्य होता है कि उसका आशय 'प्राण' से है कहीं पर 'जीव' से तो कहीं पर 'ब्रह्म' से। यहाँ पर अनेक प्रकार के विचार द्वारा सूत्रकार सिद्धांत करते हैं कि इस स्वस में 'मुझे' पद का आशय है 'ब्रह्म' से। 'सास्त्रबुद्ध्या' इत्यादि सूत्र के द्वारा सूत्रकार ऐसा एक उदाहरण बिचलाते हैं जिससे इन्द्र का उपदेश इती अर्थ में संगत होता है। उपनिषद् के एक स्थल में है कि वामदेव ऋषि ब्रह्मज्ञान काम कर बोके थे—'मैं मनु हुआ हूँ मैं सूर्य हुआ हूँ। इन्द्र ने भी इसी प्रकार सास्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर कहा था—'सौ विजामीहि (मुझे जानो)। यहाँ पर 'मैं' और 'ब्रह्म' एक ही बात है।

स्वामी जी भी स्वामी प्रेमानन्द से कहने छगे 'ओ रामकृष्ण देव जो कभी कभी अपने को बगवान् कहकर निर्वेश करते थे सो वह इस ब्रह्मज्ञान की अवस्था प्राप्त होने के कारण ही करते थे। वास्तव में वे तो सिद्ध पुरुष मात्र थे अवतार नहीं। पर यह बात कहकर ही उन्होंने बीरे से एक दूसरे व्यक्ति से कहा "ओ रामकृष्ण स्वयं अपने सम्बन्ध में कहते थे मैं केवल ब्रह्म पुरुष ही नहीं हूँ मैं अवतार हूँ। अतः वैसे कि हमारे एक मित्र कहा करते थे ओ रामकृष्ण की एक साधु या सिद्ध पुरुष मात्र नहीं कहा जा सकता बरि उनकी बातों पर विश्वास करना है तो उन्हें अवतार कहकर मानना होना नहीं तो ठीकी बहना होगा।

जो हो स्वामी जी की बात से मेरा एक विशेष उपकार हुआ। सामान्य धर्मवी वढ़कर जाड़े और कुछ सीना हो या न सीखा हो किन्तु सम्येह करना तो अच्छी तरह सीना था। मेरी यह धारणा थी कि महापुरुषों के विषयवचन अपने गुण की बड़ाई कर उन्हें अनेक प्रकार की कल्पना और अतिरंजना का विषय बना

देते हैं। परन्तु स्वामी जी की अद्भुत अकपटता और सत्यनिष्ठा को देखकर, वे भी किसी प्रकार की अतिरजना कर सकते हैं, यह धारणा एकदम दूर हो गयी। स्वामी जी के वचन ध्रुव सत्य है, यही धारणा हुई। इसलिए उनके वाक्य में श्री रामकृष्ण देव के सम्बन्ध में एक नवीन प्रकाश पाया। जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण—यह बात उन्होंने स्वयं कही है, अभी यही बात हम समझने की चेष्टा कर रहे हैं। स्वामी जी में अपार दया थी, वे हम लोगों से सन्देह छोड़ देने को नहीं कहते थे, चट से किसीकी बात में विश्वास कर लेने के लिए उन्होंने कभी नहीं कहा। वे तो कहते थे, “इस अद्भुत रामकृष्ण-चरित्र की तुम लोग अपनी विद्या-बुद्धि के द्वारा जहाँ तक हो सके, आलोचना करो, इसका अध्ययन करो—मैं तो इसका एक लक्षांश भी समझ न पाया। उनको समझने की जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही सुख पाओगे, उतना ही उनमें डूब जाओगे।”

८

स्वामी जी एक दिन हम सबको पूजा-गृह में ले जाकर साधन-भजन सिखलाने लगे। उन्होंने कहा, “पहले सब लोग आसन लगाकर बैठो, चिन्तन करो—मेरा आसन दृढ़ हो, यह आसन अचल-अटल हो, इसीकी सहायता से मैं ससार-समुद्र के पार होऊँगा।” सभी ने बैठकर कई मिनट तक इस प्रकार चिन्तन किया। उसके बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, “चिन्तन करो—मेरा शरीर नीरोग और स्वस्थ है, वस्त्र के समान दृढ़ है, इसी देह की सहायता से मैं ससार को पार करूँगा।” इस प्रकार कुछ देर तक चिन्तन करने के बाद स्वामी जी फिर कहने लगे, “अब इस प्रकार चिन्तन करो कि मेरे निकट से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में प्रेम का प्रवाह बह रहा है—हृदय के भीतर से सम्पूर्ण जगत् के लिए शुभकामना हो रही है—सभी का कल्याण हो, सभी स्वस्थ और नीरोग हो। इस प्रकार चिन्तन करने के बाद कुछ देर प्राणायाम करना, अधिक नहीं, तीन प्राणायाम करने से ही काफी है। इसके बाद हृदय में अपने अपने इष्टदेव की मूर्ति का चिन्तन और मन्त्र-जप लगभग आठ घंटे तक करना।” सब लोग स्वामी जी के उपदेशानुसार चिन्तन आदि की चेष्टा करने लगे।

इस प्रकार सामूहिक साधनानुष्ठान मठ में दीर्घ काल तक होता रहा है, एव स्वामी जी की आज्ञा से स्वामी तुरीयानन्द नवीन सन्यासियों और ब्रह्मचारियों को लेकर बहुत समय तक, ‘इस बार इस प्रकार चिन्तन करो, उसके बाद ऐसा करो,’ इस तरह बतला बतलाकर और स्वयं अनुष्ठान कर स्वामी जी द्वारा बतलायी गयी साधना-प्रणाली का अभ्यास कराते थे।

१

एक दिन सवेरे ९.१ बजे मैं एक कमरे में बैठकर कुछ कर रहा था उसी समय सहसा तुम्ही महाशय (स्वामी निर्मलानन्द) आकर भीछे 'स्वामी जी से योसा खोने?' मैंने कहा 'जी हाँ। इसके पहले मैंने कुछमूव या और किसीके पास किसी प्रकार मात्र-बीसा नहीं की थी। एक योमी के पास प्राणायाम आदि कुछ योम-श्रियाओं का मैंने ठीम बर्य तक साधन किया था और उससे बहुत कुछ पारीरिक उन्नति और मन की स्थिरता भी मुझे प्राप्त हुई थी किन्तु वे गृहस्थाभम का अवलम्बन करना अत्यावश्यक बढकाते थे और प्राणायाम आदि योप-श्रिया को छोड़कर ज्ञान भक्ति आदि अन्यान्य मार्गों को बिल्कुल ब्यर्थ कहते थे। इत प्रकार की कट्टरता मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी। दूसरी ओर, मठ के कोई कोई संयासी और उनके भक्तगण योम का नाम सुनते ही बात को हँसी में उड़ा देते थे। 'उससे विशेष कुछ नहीं होता थी रामकृष्ण देव उसके उतने पक्षपाती नहीं थे इत्यादि बातें मैं उन लोगों से सुना करता था। पर जब मैंने स्वामी जी का राजयोग पढ़ा तो समझा कि इस ग्रन्थ के प्रवेता जैसे योममार्ग के समर्पक हैं वैसे ही अन्याय मार्गों के प्रति भी यत्नातु है अतएव कट्टर तो हैं ही नहीं अपितु इस प्रकार के उषार भावसम्पन्न आचार्य मुझे कभी इष्टिगोचर नहीं हुए तिस पर वे संयासी भी हैं —अतएव उनके प्रति यदि मेरे हृदय में विशेष यत्ना हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या? बाद में मैंने विशेष रूप से जाना कि श्री रामकृष्ण देव साधारणतया प्राणायाम आदि योम-श्रिया का उपदेस नहीं दिया करते थे। वे जब भीर ध्यान पर ही विशेष रूप से जोर देते थे। वे कहा करते थे 'ध्यानारस्था के प्रगाढ़ होने पर अचवा भक्ति की प्रकलता आने पर प्राणायाम स्वयमेव हा जाता है इन सब वैदिक श्रियाओं का अनुष्ठान करने से बनेक बार मन देह की ओर आकृष्ट हो जाता है। किन्तु अन्तरय शिष्यों से वे योम के उषर बर्णों की साधना कराते थे उन्हें स्वर्ण करके अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल से उन लोगों की श्रुश्रिती शक्ति को आपठ कर देने से एवं पदचक्र के विभिन्न चर्यों में मन की स्थिरता की सुविधा के लिए समय समय पर शरीर के विधी विधिष्ट अंग में मुर्च चुमाकर वही मन की स्थिर करने के लिए कहते थे। स्वामी जी ने आने पाचार्य श्रिती में से बटुनी को प्राणायाम आदि श्रियाओं का जो उपदेस दिया था वह मैं समझता हूँ उनका अरता काँगारस्थित नहीं था बल्कि उनके गुरु द्वारा उपदिष्ट मार्ग था। स्वामी जी एक बात बता कराते थे कि यदि श्रितीको सचमुच समार्प में प्रयुक्त करना हो तो उमीती भाषा में उस उपदेस देना होगा। इमी भाव का अनुसरण करके वे व्यक्तिगत अथवा अनितादीविसय को विभिन्न विभिन्न साधना

प्रणाली की शिक्षा देते थे और इस तरह सभी प्रकार की प्रकृतिवाले मनुष्यों को थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक सहायता देने में सफल होते थे।

जो हो, मैं इतने दिनों से उनका उपदेश सुन रहा हूँ, किन्तु उनके पास से मुझे कभी तक किसी प्रकार की प्रत्यक्ष आध्यात्मिक सहायता नहीं मिली, और उसके लिए मैंने चेष्टा भी नहीं की। चेष्टा न करने का कारण यह था कि मुझे करने का साहस नहीं होता था, और शायद मन के भीतर यह भी भाव था कि जब मैं इनके आश्रित हुआ हूँ, तो जो जो मेरे लिए आवश्यक है, सभी पाऊँगा। किस प्रकार वे मेरी आध्यात्मिक सहायता करेंगे, यह मैं नहीं जानता था। इस समय स्वामी निर्मलानन्द के ऐसे विनमार्गी आह्वान से मन में और किसी प्रकार की दुविधा नहीं रही। 'लूंगा' ऐसा कहकर उनके साथ पूजा-गृह की ओर बढ़ा। मैं नहीं जानता था कि उस दिन श्रीयुक्त शरच्चन्द्र चक्रवर्ती भी दीक्षा ले रहे हैं। उस समय दीक्षा-दान समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए, स्मरण है, पूजा-गृह के बाहर कुछ देर तक मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। बाद में शरत् बाबू बाहर आये, तो उसी समय तुलसी महाराज मुझे ले जाकर स्वामी जी से बोले, "यह दीक्षा लेगा।" स्वामी जी ने मुझसे बैठने के लिए कहा। पहले ही उन्होंने पूछा, "तुझे साकार अच्छा लगता है या निराकार?"

मैंने कहा, "कभी साकार अच्छा लगता है, कभी निराकार।"

इसके उत्तर में वे बोले, "वैसा नहीं, गुरु समझ सकते हैं, किसका क्या भाग है, हाथ देखूँ।" ऐसा कहकर मेरा दाहिना हाथ कुछ देर तक लेकर थोड़ी देर जैसे ध्यान करने लगे। उसके बाद हाथ छोड़कर बोले, "तूने कभी घट-स्थापना करके पूजा की है?" घर छोड़ने के कुछ पहले घट-स्थापना करके मैंने बहुत देर तक कोई पूजा की थी। वह बात मैंने उनसे बताया। तब एक देवता का मन्त्र बताने पर उन्होंने उसे अच्छी तरह मुझे समझा दिया और कहा, "इस मन्त्र से तेरा कल्याण होगा। और घट-स्थापना करके पूजा करने से तेरा कल्याण होगा।" उसके बाद मेरे सम्बन्ध में एक भविष्यवाणी करके, उन्होंने सामने पड़े हुए कुछ फलों को गुरु-दक्षिणा के रूप में देने के लिए मुझसे कहा।

मैंने देखा, यदि मुझे भगवान् के शक्तिस्वरूप किन्हीं देवता की उपासना करनी हो, तो मुझे स्वामी जी ने जिन देवता के मन्त्र का उपदेश दिया है, वे ही देवता मेरी प्रकृति के साथ पूर्णरूपेण मेल खाते हैं। सुना था—सच्चे गुरु शिष्य की प्रकृति को समझकर मन्त्र देते हैं। स्वामी जी में आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला।

दीक्षा-दान के कुछ देर बाद स्वामी जी का भोजन हुआ। स्वामी जी की थाली में से मैंने और शरच्चन्द्र बाबू ने प्रसाद ग्रहण किया।

उस समय श्रीपुत्र मरेन्द्रनाथ सेन द्वारा सम्पादित 'इन्डियन मिरर' नामक अंग्रेजी दैनिक मठ में दिना मूस्य दिया जाता था किन्तु मठ के संस्थापियों की ऐसी स्थिति नहीं थी कि उसका डाक-सर्ज भी दे सकते। वह पत्र एक पत्रवाहक द्वारा बराहनपर तक बितरित होता था। बराहनपर में 'दिवालय' के प्रतिष्ठाता सेवा प्रती भी ससिपद बन्धोपाध्याय द्वारा प्रतिष्ठित एक विभवाश्रम था। वहाँ पर इस आश्रम के लिए उक्त पत्र की एक प्रति आती थी। 'इन्डियन मिरर' का पत्रवाहक वस वहाँ तक आता था इसलिए मठ का समाचारपत्र भी वही दे जाता था। वहाँ से प्रतिदिन पत्र को मठ में लाया पड़ता था। उक्त विभवाश्रम के ऊपर स्वामी जी की बनेष्ट सहायुभूति थी। अमेरिका-महादेश में इस आश्रम की सहायता के लिए स्वामी जी ने अपनी इच्छा से एक व्याख्यान दिया था और उस व्याख्यान के टिकट बेचकर जा कुछ आय हुई, उसे इस आश्रम में दे दिया था। अस्तु, उस समय मठ के लिए बाजार करना पूजा का आयोजन करना आदि सभी कार्य कन्हारी महाराज (स्वामी निर्मयानन्द) की करना पड़ता था। इस 'इन्डियन मिरर' पत्र को काम का भार भी उन्हींके ऊपर था। उस समय मठ में हम लोग बहुत से नगरीक्षित संस्थापिता ब्राह्मचारी जा जुटे थे किन्तु तब भी मठ के सब कार्यों का भार सब पर नहीं बँट गया था। इसलिए स्वामी निर्मयानन्द की बनेष्ट कार्य करना पड़ता था। अतएव उनके भी मन में आता था कि अपने कार्यों में थोड़ा थोड़ा कार्य यदि नवीन सामुर्थ्यों की दे सकें तो कुछ अवकाश मिले। इस उद्देश्य से उन्होंने मुझसे कहा 'बेसो जिस जगह 'इन्डियन मिरर' जाता है उस स्थान की तुम्हें दिखाऊँ देना—तुम वहाँ से प्रतिदिन समाचारपत्र ले आना।' मैंने उसे अत्यन्त सरल कार्य समझकर एक इससे एक व्यक्ति का कार्य-भार कुछ हलका होगा ऐसा सोचकर सहज से ही स्वीकार कर लिया। एक दिन बीपहर के भोजन के बाद कुछ देर विभाम कर केने पर निर्मयानन्द जी ने मुझसे कहा 'बसो वह विभवाश्रम तुम्हें दिखाऊँ दे। मैं उनके साथ जाने के लिए तैयार हुआ। इसी बीच स्वामी जी ने मुझे देखकर बेबाल्य पढ़ने के लिए बुलाया। मैंने कहा कि मैं जमुक कार्य से जा रहा हूँ। इस पर स्वामी जी कुछ नहीं बोले। मैं कन्हारी महाराज के साथ बाहर जाकर उस स्थान की देख आया। लौटकर जब मठ में आया तो अपने एक ब्राह्मचारी मित्र से सुना कि मेरे बड़े जाने के कुछ देर बाद स्वामी जी किसीसे कह रहे थे "यह कड़का कहीं गया है? क्या स्थियों को तो देखने नहीं गया? इस बात को सुनकर मैंने कन्हारी महाराज से कहा 'माई, मैं स्थान देख तो आया पर समाचारपत्र लाने के लिए अब वहाँ न जा सकूँगा।

शिष्यों के, विशेषतः नवीन ब्रह्मचारियों के चरित्र की जिनसे रक्षा हो, उस वेपथु में स्वामी जी विशेष सावधान थे। कलकत्ते में विशेष प्रयोजन के बिना कोई साधु-ब्रह्मचारी रहे या रात वित्तिये—यह उन्हें विलकुल पसन्द न था, और विशेषतः वह स्थान, जहाँ स्त्रियों के मस्पर्श में आना होता था। इसके सैकड़ों उदाहरण देग चुका हूँ।

स्वामी जी जिन दिन मठ से खाना होकर अलमोड़ा जाने के लिए कलकत्ता गये, उस दिन सीढ़ी के दगल के बरामदे में खड़े होकर अत्यन्त आग्रह के साथ नवीन ब्रह्मचारियों को सम्बोधन करके ब्रह्मचर्य के बारे में उन्होंने जो बातें कही थी, वे मानो अभी भी मेरे कानों में गूँज रही हैं। उन्होंने कहा—

“देवो वच्चो, ब्रह्मचर्य के बिना कुछ भी न होगा। धर्म-जीवन का लाभ करना हो, तो उसमें ब्रह्मचर्य ही एकमात्र सहायक है। तुम लोग स्त्रियों के सस्पर्श में विलकुल न आना। मैं तुम लोगों को स्त्रियों से धृणा करने के लिए नहीं कहता, वे तो माक्षात् भगवतीस्वरूपा हैं, किन्तु अपने को बचाने के लिए तुम लोगों को उनसे दूर रहने के लिए कहता हूँ। मैंने अपने व्याख्यानो में बहुत जगह जो कहा है कि ससार में रहकर भी धर्म होता है, सो वह पढकर मन में ऐमा न समझ लेना कि मेरे मत में ब्रह्मचर्य या सन्यास धर्म-जीवन के लिए अत्यावश्यक नहीं है। क्या करता, उन सब भाषणों के सुननेवाले सभी समारी थे, सभी गृही थे—उनके सामने पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात यदि एकदम कहने लगता, तो दूसरे दिन से कोई भी मेरा व्याख्यान सुनने न आता। ऐसे लोगों के लिए छूट-ढिलाई दिये जाने पर, वे क्रमशः पूर्ण ब्रह्मचर्य की ओर आकृष्ट होते हैं, इसीलिए मैंने उस प्रकार के भाषण दिये थे। किन्तु अपने मन की बात तुम लोगों से कहता हूँ—ब्रह्मचर्य के बिना तनिक भी धर्मलाभ न होगा। काया, मन और वाणी से तुम लोग ब्रह्मचर्य का पालन करना।”

१०

एक दिन विलायत से कोई पत्र आया। उसे पढकर स्वामी जी उसी प्रसंग में, धर्म-प्रचारक में कौन कौन से गुण रहने पर वह सफल हो सकेगा, यह बताने लगे। अपने शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों की ओर लक्ष्य करके कहने लगे कि धर्म-प्रचारक का अमुक अंग खुला रहना आवश्यक है और अमुक अंग बन्द। अर्थात् उसका सिर, हृदय और मुख खुला रहना चाहिए, यानी उसे प्रबल मेधावी, सहृदय और वाग्मी होना चाहिए। और उसके अधोदेश के अगो का कार्य बन्द होगा, अर्थात् वह पूर्ण ब्रह्मचारी होगा। एक प्रचारक को लक्ष्य करके कहने लगे,

“उसमें सभी गुण हैं केवल एक हृदय का जमाव है—ठीक है कमरा हृदय भी एक जमाव।

उस पत्र में यह संवाद था कि भूमिमी निवेदिता (उस समय कुमारी नोबल) ईम्पैच से भारत के लिए सीधे ही रवाना होंगी। निवेदिता की प्रार्थना करने में स्वामी जी अत्यंत ही प्रसन्न हुए। कहने लगे ‘ईम्पैच में इस प्रकार की पवित्र चरित महानुभाव नारियाँ बहुत कम हैं। मैं यदि कुछ मर जाऊँ, तो वह मेरे काम की चाल रहेगी। स्वामी जी की यह भविष्यवाणी सफल हुई थी।

११

स्वामी जी के पास पत्र आया है कि वेदान्त के श्रीभाष्य के अंग्रेजी अनुबाधक तथा स्वामी जी की सहायता द्वारा मद्रास से प्रकाशित होनेवाले विख्यात ‘ब्रह्म बाबिन्’ पत्र के प्रधान लेखक एवं मद्रास के प्रतिष्ठित अध्यापक श्रीयुक्त रंगाचार्य जीव भ्रमण के सिद्धांतों में सीधे ही कलकत्ता जायेंगे। स्वामी जी मध्याह्न समय मुससे बोले ‘पत्र लिखने के लिए कागज और कलम लाकर चला किंतु तो और देख चोड़ा पीने के लिए पानी भी लेता आ। मैंने एक गिलास पानी लाकर स्वामी जी को दिया और करते हुए बीरे बीरे बोला ‘मेरे हाथ की लिखावट उतनी अच्छी नहीं है। मैंने सोचा था घायब बिलायत या अमेरिका के लिए कोई पत्र लिखना होगा। स्वामी जी इस पर बोले ‘कोई हरेज नहीं था मिल *foreign letter* (बिधायती पत्र) नहीं है। तब मैं कागज-कलम लेकर पत्र लिखने के लिए बैठा। स्वामी जी अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्होंने अध्यापक रंगाचार्य की एक पत्र लिखाया और एक पत्र किसी दूसरे को किसे—यह ठीक स्मरण नहीं है। मुझे याद है—रंगाचार्य की बहुत सी दूसरी बातों में एक यह भी बात लिखायी थी ‘बंगाल में वेदान्त की बड़ी चर्चा नहीं है अतएव जब आप कलकत्ता आ रहे हैं तो कलकत्तावासियों को चला हिलाकर जायें। कलकत्ते में जिससे वेदान्त की चर्चा बड़े कलकत्तावासी जिससे चौड़ा छनेत हों उसके लिए स्वामी जी किन्तने सचेष्ट थे! स्वामी जी के अस्वस्थ होने के कारण चिकित्सकों के साथ अनुपरोच से कलकत्ते में कुछ दो व्याख्यान देकर फिर व्याख्यान देना बन्द कर दिया था किन्तु तो भी जब कभी सुबिया पाते कलकत्तावासियों की धर्म भावना को जाग्रत करने की चेष्टा करते रहते थे। स्वामी जी के इस पत्र के फलस्वरूप इसके कुछ दिन बाद कलकत्तावासियों ने स्टार रंगमंच पर उक्त परिष्ठित प्रबन्ध का हि प्रीट एण्ड प्रिंटेड (पुरोहित और कवि) नामक सार्वभौमिक व्याख्यान सुनने का औद्योग्य प्राप्त किया था।

१२

इसी समय, एक बंगाली युवक मठ में आया और उसने वहाँ साधु होकर रहने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी तथा वहाँ के अन्यान्य साधु उसके चरित्र से पहले ही से विशेषतया परिचित थे। उसको आश्रमवासी होने में अनुपयुक्त समझकर कोई भी उसे मठ में रखने के पक्ष में नहीं था। पर उसके पुन पुन प्रार्थना करने पर स्वामी जी ने उससे कहा, “मठ के साधुओं का यदि मत हो, तो तुम्हें रख सकता हूँ।” यह कहकर पुराने साधुओं को बुलाकर उन्होंने पूछा, “इसको मठ में रखने के बारे में तुम लोगो का क्या मत है?” उस पर सभी साधुओं ने उसे मठ में रखने में अनिच्छा प्रदर्शित की। अतः उस युवक को मठ में नहीं रखा गया। इसके कुछ दिनों बाद सुना कि वह व्यक्ति किसी तरह विलायत गया, और पास में पैसा-कौड़ी न रहने के कारण उसे ‘वर्क-हाउस’ में रहना पड़ा।

१३

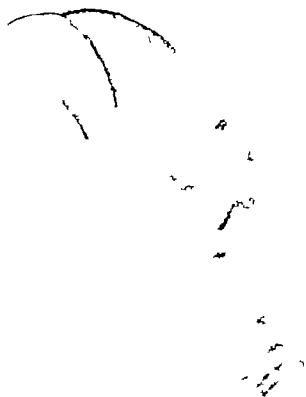
एक दिन अपराह्न काल में स्वामी जी मठ के बरामदे में हम लोगो को लेकर वेदान्त पढ़ाने बैठे। सन्ध्या होने ही वाली थी। स्वामी रामकृष्णानन्द को इससे कुछ दिन पहले स्वामी जी ने प्रचार-कार्य के लिए मद्रास भेजा था। इसीलिए उस समय मठ में पूजा-आरती आदि उनके एक दूसरे गुरुभ्राता संभालते थे। आरती आदि में जो लोग उनकी सहायता करते थे, उन्हें भी लेकर स्वामी जी वेदान्त पढ़ाने बैठे थे। उसी समय उक्त गुरुभ्राता आकर नवीन सन्यासी-ब्रह्म-चारियों से कहने लगे, “चलो जी, चलो, आरती करनी होगी, चलो।” उस समय एक ओर स्वामी जी के आदेश से सभी वेदान्त पढ़ने में लगे हुए थे, और दूसरी ओर इनके आदेश से ठाकुर जी की आरती में सहयोग देना चाहिए। अतएव नवीन साधु लोग कुछ समय असमजस में पड़ गये। तब स्वामी जी अपने गुरुभ्राता को सम्बोधित करके उत्तेजित होकर कहने लगे, “यह जो वेदान्त पढ़ा जा रहा था, यह क्या ठाकुर की पूजा नहीं है? केवल एक चित्र के सामने जलती हुई वत्ती घुमाना और झंझ पीटना—मालूम होता है, इसीको तुम भगवान् की आराधना समझते हो! तुम्हारी बुद्धि बड़ी ओछी है।” इस तरह कहते कहते, जरा और भी अधिक उत्तेजित हो इस प्रकार वेदान्त-पाठ में बाधा उपस्थित करने के कारण कुछ और भी अप्रिय कड़े वाक्य कहने लगे। फल यह हुआ कि वेदान्त-पाठ बन्द हो गया। कुछ देर बाद आरती भी समाप्त हो गयी। किन्तु आरती के बाद उक्त गुरुभ्राता चुपके से कहीं चले गये। तब तो स्वामी जी भी अत्यन्त व्याकुल होकर धारम्भार “वह कहाँ गया, क्या वह मेरी गाली खाकर गया मैं तो नहीं

बूझ गया। इस तरह कहने लगे और सभी लोगों को उन्हें बूझने के लिए पारों और भेजा। बहुत देर बाद मठ की छत पर चिन्तित भाव से उन्हें बैठे हुए देखकर एक व्यक्ति उन्हें स्वामी जी के पास ले आये। उस समय स्वामी जी का भाव एकदम परिवर्तित ही गया। उन्होंने उनका कितना दुःखार किया और कितनी मधुर वाणी में उनसे बातें करने लगे। हम लोग स्वामी जी का गुरुमार्ग के प्रति अपूर्व प्रेम देखकर मुग्ध हो गये। तब हम लोगों को मामूम हुआ कि बुद्धमार्गियों के ऊपर स्वामी जी का अगाध विश्वास और प्रेम है। उनकी आन्तरिक चेष्टा यही रहती थी कि वे लोग अपनी जिप्ठा को सुरक्षित रखकर अधिकाधिक उन्नत एवं उदार बन सकें। बाद में स्वामी जी के भीमुख से अनेक बार सुना है कि स्वामी जी जिनकी अधिक भर्त्सना करते थे वे ही उनके विशेष प्रीति-पात्र थे।

१४

एक दिन बरामदे में टहलते-टहलते उन्होंने मुझसे कहा 'देस मठ की एक डायरी रखना और प्रत्येक सप्ताह मठ की एक रिपोर्ट भेजना। स्वामी जी के इस आदेश का मैंने और बाद में अन्य व्यक्तियों ने भी पालन किया था। अभी भी मठ की वह आधिक (छोटी) डायरी मठ में सुरक्षित है। उससे अभी भी मठ के क्रम-विकास और स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत से तथ्य संपन्न किये जा सकते हैं।

प्रश्नोत्तर



प्रश्नोत्तर

१

(बेलूड मठ की डायरी से)

प्रश्न—गुरु किसे कह सकते हैं ?

उत्तर—जो तुम्हारे भूत-भविष्य को बता सकें, वे ही तुम्हारे गुरु हैं।

प्रश्न—भक्ति-लाभ किस प्रकार होता है ?

उत्तर—भक्ति तो तुम्हारे भीतर ही है—केवल उसके ऊपर काम-काचन का एक आवरण सा पडा हुआ है। उसको हटाते ही भीतर की वह भक्ति स्वयमेव प्रकट हो जायगी।

प्रश्न—हमे आत्मनिर्भर होना चाहिए—इस कथन का सच्चा अर्थ क्या है ?

उत्तर—यहाँ 'आत्म' का अर्थ है, चिरतन नित्य आत्मा। फिर भी, इस 'अनित्य अह' पर निर्भरता का अभ्यास भी हमे धीरे धीरे सच्चे लक्ष्य पर पहुँचा देगा, क्योंकि जीवात्मा भी तो वस्तुतः नित्यात्मा की मायिक अभिव्यक्ति ही तो है।

प्रश्न—यदि सचमुच एक ही वस्तु सत्य हो, तो फिर यह द्वैत-बोध, जो सदा-सर्वदा सबको हो रहा है, कहाँ से आया ?

उत्तर—किसी विषय के प्रत्यक्ष में कभी द्वैत-बोध नहीं होता। प्रत्यक्ष के पुनः उपस्थित होने में ही द्वैत का बोध होता है। यदि विषय-प्रत्यक्ष के समय द्वैत-बोध रहता, तो ज्ञेय ज्ञाता से सम्पूर्ण स्वतन्त्र रूप में तथा ज्ञाता भी ज्ञेय से स्वतन्त्र रूप में रह सकता।

प्रश्न—चरित्र का सामजस्यपूर्ण विकास करने का सर्वोत्तम उपाय कौन सा है ?

उत्तर—जिनका चरित्र उस रूप से गठित हुआ हो, उनका सग करना ही इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय है।

प्रश्न—वेद के विषय में हमारा दृष्टिकोण किस प्रकार का होना चाहिए ?

उत्तर—वेदों के केवल उन्हीं अंशों को प्रमाण मानना चाहिए, जो युक्ति-विरोधी नहीं हैं। पुराणादि अन्यान्य शास्त्र वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे वेद से अविरोधी हैं। वेद के पश्चात् इस ससार में जहाँ कहीं जो भी धर्म-भाव आविर्भूत हुआ है, उसे वेद से ही गृहीत समझना चाहिए।

प्रश्न—यह चार युगों का काक-विभाजन क्या ज्योतिषशास्त्र की प्रमत्ता के अनुसार सिद्ध है अथवा केवल रुढ़िमत ही है?

उत्तर—वेदों में तो कहीं ऐसे विभाजन का उल्लेख नहीं है। यह पीछलक युग की निरुपार कल्पना मात्र है।

प्रश्न—सम्ब और माघ के बीच क्या सप्तमूष कोई नित्य सम्बन्ध है? अथवा माघ संशोषण और रुढ़िमत?

उत्तर—इस विषय में अनेक तर्क किये जा सकते हैं, किसी स्थिर सिद्धांत पर पहुँचना बड़ा कठिन है। साम्प्रदायिकता है कि सप्त और अर्ध के बीच नित्य सम्बन्ध है पर पूर्वतया नहीं जैसा मायाजों की विविधता से सिद्ध होता है। हाँ कोई सूक्ष्म सम्बन्ध हो सकता है जिसे हम अभी नहीं पकड़ पा रहे हैं।

प्रश्न—माघ में कार्य-संपात्ती कैसे होती चाहिए?

उत्तर—यहसे तो व्यावहारिक और शारीर से सज्ज होने की शिक्षा देनी चाहिए। ऐसे केवल बारह नर-केसरी संसार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं परन्तु साल-साल भेड़ों काट यह नहीं होने का। और पुत्र, किसी व्यक्तिगत कार्यों के अनुकरण की शिक्षा नहीं देनी चाहिए, चाहे वह आदर्श कितना ही बड़ा क्यों न हो।

इसके परचात् स्वामी जी ने कुछ हिन्दू प्रतीकों की जननति का वर्णन किया। उन्होंने ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का भेद समझाया। वास्तव में ज्ञानमार्ग मार्गों का था और इसलिए उसमें अधिकारी-विचार के इतने बड़े नियम थे। भक्ति मार्ग की उत्पत्ति साक्षिमात्र से—आर्सेर जाति से हुई है इसलिए उसमें अधिकारी-विचार नहीं है।

प्रश्न—भारत के इस पुनरुत्थान में समकालीन विचार क्या कार्य करेगा?

उत्तर—इस बठ से चरित्रवान व्यक्ति निकलकर सारे संसार को आत्मात्मिकता की बाढ़ से प्लावित कर देंगे। इसका साथ साथ पुनरे दोषों में भी पुनरुत्थान होगा। इस तरह बाह्य धर्म और वैयक्तिकता का सम्मुख होगा। गुरु जाति का अस्तित्व समाप्त हो जायगा—वे काम आज भी काम कर रहे हैं वे सब पंथों की सहायता से किये जायेंगे। भारत की वर्तमान आवश्यकता है—धर्म-धर्म।

प्रश्न—क्या मनुष्य के उत्पत्ति अर्थात् पुनरुत्थान संभव है?

उत्तर—हाँ पुनरुत्थान बर्ष पर निर्भर करता है। यदि मनुष्य पशु के समान आचरण करे, तो वह पशु-प्रायः में निच जाता है।

एक समय (सन् १८९८ ई०) में इस प्रकार के प्रश्नोत्तर-काल में स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा की उत्पत्ति बौद्ध युग में मानी थी। उन्होंने कहा था—पहले बौद्ध चैत्य, फिर स्तूप, और तत्पश्चात् बुद्ध का मन्दिर निर्मित हुआ। उसके साथ ही हिन्दू देवताओं के मन्दिर खड़े हुए।

प्रश्न—क्या कुण्डलिनी नाम की कोई वास्तविक वस्तु इस स्थूल शरीर के भीतर है ?

उत्तर—श्री रामकृष्ण देव कहते थे, 'योगी जिन्हें पद्म कहते हैं, वास्तव में वे मनुष्य के शरीर में नहीं हैं। योगाभ्यास से उनकी उत्पत्ति होती है।'

प्रश्न—क्या मूर्ति-पूजा के द्वारा मुक्ति-लाभ हो सकता है ?

उत्तर—मूर्ति-पूजा से साक्षात् मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर भी वह मुक्ति-प्राप्ति में गौण कारणस्वरूप है—सहायक है। मूर्ति-पूजा की निन्दा करना उचित नहीं, क्योंकि बहुते के लिए मूर्ति-पूजा ही अद्वैत ज्ञान की उपलब्धि के लिए मन को तैयार कर देती है—और केवल इस अद्वैत-ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य मुक्त हो सकता है।

प्रश्न—हमारे चरित्र का सर्वोच्च आदर्श क्या होना चाहिए ?

उत्तर—त्याग।

प्रश्न—बौद्ध धर्म ने अपने दाय के रूप में भ्रष्टाचार कैसे छोड़ा ?

उत्तर—बौद्धों ने प्रत्येक भारतवासी को भिक्षु या भिक्षुणी बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु सब लोग तो वैसा नहीं हो सकते। इस तरह किसी भी व्यक्ति के साथ बन जाने से भिक्षु-भिक्षुणियों में क्रमशः क्षिणिलता आती गयी। और भी एक कारण था—धर्म के नाम पर तिब्बत तथा अन्यान्य देशों के बर्बर आचारों का अनुकरण करना। वे इन स्थानों में धर्म-प्रचार के हेतु गये और इस प्रकार उनके भीतर उन लोगों के दूषित आचार प्रवेश कर गये। अन्त में उन्होंने भारत में इन सब आचारों को प्रचलित कर दिया।

प्रश्न—माया क्या अनादि और अनन्त है ?

उत्तर—समष्टि रूप से अनादि-अनन्त अवश्य है, पर व्यष्टि रूप से सान्त है।

प्रश्न—ब्रह्म और माया का बोध युगपत् नहीं होता। अतः उनमें से किसी-की भी पारमार्थिक सत्ता एक दूसरे से अद्भुत कैसे सिद्ध की जा सकती है ?

उत्तर—उसको केवल साक्षात्कार द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। जब व्यक्ति को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, तो उसके लिए माया की सत्ता नहीं रह जाती, जैसे रस्सी की वास्तविकता जान लेने पर सर्प का भ्रम फिर उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्न—माया क्या है ?

उत्तर—वास्तव में वस्तु केवल एक ही है—बाहे उसको चेतन्य कही या बड़। पर उनमें से एक को दूसरे से निर्वात स्वयं मानना केवल कठिन ही नहीं असम्भव है। इसीको माया या भ्रम कहते हैं।

प्रश्न—मुक्ति क्या है ?

उत्तर—मुक्ति का अर्थ है पूर्ण स्वाधीनता—धूम और जलुम दोनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाना। लोहे की शृंखला भी शृंखला ही है और सोने की शृंखला भी शृंखला है। श्री रामकृष्ण देव कहते थे 'पीर में काटा जुमने पर उसे निकालने के लिए एक दूसरे काटे की आवश्यकता होती है। काटा निकल जाने पर दोनों काटे फेंक दिये जाते हैं। इसी तरह सत्प्रवृत्ति के द्वारा असत् प्रवृत्तियों का बन्धन करना पड़ता है, परन्तु बाद में सत्प्रवृत्तियों पर भी नियम प्राप्त करनी पड़ती है।'

प्रश्न—मगधरूपी बिना क्या मुक्ति-काम हो सकता है ?

उत्तर—मुक्ति के साथ ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति तो पहले से ही वर्तमान है।

प्रश्न—हमारे भीतर जिसे 'मैं' या 'मैं' कहा जाता है वह देह आदि से उत्पन्न नहीं है, इसका क्या प्रमाण है ?

उत्तर—अनात्मा की भाँति 'मैं' या 'मैं' भी देह-मन आदि से ही उत्पन्न होता है। वास्तविक 'मैं' के अस्तित्व का एकमात्र प्रमाण है साक्षात्कार।

प्रश्न—सच्चा ज्ञानी और सच्चा भक्त किसे कह सकते हैं ?

उत्तर—जिसके हृदय में अथाह प्रेम है और जो सभी अवस्थायों में अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार करता है, वही सच्चा ज्ञानी है। और सच्चा भक्त वह है जो परमात्मा के साथ बीबात्मा की अमिथ रूप से उपलब्धि कर यथार्थ ज्ञानसम्पन्न हो गया है, जो सबसे प्रेम करता है और जिसका हृदय सबके लिए खल करता है। ज्ञान और भक्ति में से किसी एक का पक्ष लेकर जो दूसरे की निन्दा करता है वह न तो ज्ञानी है, न भक्त—वह तो डोंपी और भूर्त्त है।

प्रश्न—ईश्वर की सेवा करने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—यदि तुम एक बार ईश्वर के अस्तित्व को मान लेते हो तो उनकी सेवा करने के अनेक कारण पाओगे। सभी शास्त्रों के मतानुसार मगधरूपी का अर्थ है 'स्मरण'। यदि तुम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हो, तो तुम्हारे जीवन में पय पय पर उनको स्मरण करने का हेतु सामने आयेगा।

प्रश्न—क्या मायावाद अद्वैतवाद से निघ है ?

उत्तर—नहीं, दोनों एक ही हैं। मायावाद को छोड़ अद्वैतवाद की और कोई भी व्याख्या सम्भव नहीं।

प्रश्न—ईश्वर तो अनन्त हैं, वे फिर मनुष्य रूप धारण कर इतने छोटे किस प्रकार हो सकते हैं ?

उत्तर—यह सत्य है कि ईश्वर अनन्त है। परन्तु तुम लोग अनन्त का जो अर्थ सोचते हो, अनन्त का वह अर्थ नहीं है। अनन्त कहने से तुम एक विराट् जड़ सत्ता समझ बैठते हो। इसी समझ के कारण तुम भ्रम में पड़ गये हो। जब तुम यह कहते हो कि भगवान् मनुष्य रूप धारण नहीं कर सकते, तो इसका अर्थ तुम ऐसा समझते हो कि एक विराट् जड़ पदार्थ को इतना छोटा नहीं किया जा सकता। परन्तु ईश्वर इस अर्थ में अनन्त नहीं है। उसका अनन्तत्व चैतन्य का अनन्तत्व है। इसलिए मानव के आकार में अपने को अभिव्यक्त करने पर भी उनके स्वरूप को कुछ भी क्षति नहीं पहुँचती।

प्रश्न—कोई कोई कहते हैं कि पहले सिद्ध बन जाओ, फिर तुम्हें कर्म करने का ठीक ठीक अधिकार होगा, परन्तु कोई कहते हैं कि शुरू से ही कर्म करना, दूसरों की सेवा करना उचित है। इन दो विभिन्न मतों का सामंजस्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—तुम तो दो अलग अलग बातों को एक में मिलाये दे रहे हो, इसलिए भ्रम में पड़ गये हो। कर्म का अर्थ है मानव जाति की सेवा अथवा धर्म-प्रचार-कार्य। यथार्थ प्रचार-कार्य में अवश्य ही सिद्ध पुरुष के अतिरिक्त और किसीका अधिकार नहीं है, परन्तु सेवा में तो सभी का अधिकार है, इतना ही नहीं, जब तक हम दूसरों से सेवा ले रहे हैं, तब तक हम दूसरों की सेवा करने को बाध्य भी हैं।

२

(सुफलिन नैतिक सभा, सुफलिन, अमेरिका)

प्रश्न—आप कहते हैं कि सब कुछ मंगल के लिए ही है, परन्तु देखने में आता है कि ससार सब ओर अमंगल और दुःख-कष्ट से घिरा है। तो फिर आपके मत के साथ इस प्रत्यक्ष दीखनेवाले व्यापार का सामंजस्य किस प्रकार हो सकता है ?

उत्तर—आप यदि पहले अमंगल के अस्तित्व को प्रमाणित कर सकें, तभी मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकूंगा। परन्तु वैदान्तिक धर्म तो अमंगल का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता। सुख से रहित अनन्त दुःख कहीं हो, तो उसे अवश्य प्रकृत अमंगल कहा जा सकता है। पर यदि सामयिक दुःख-कष्ट हृदय की कोमलता

और महत्ता में वृद्धि कर मनुष्य को अनन्त सुख की ओर अप्रसर कर दे, तो फिर उसे अमरगुरु नहीं कहा जा सकता बल्कि उसे तो परम मंगल कहा जा सकता है। जब तक हम यह अनुसन्धान नहीं कर लेते कि किसी वस्तु का अनन्त के राज्य में क्या परिणाम होता है, तब तक हम उसे बुरा नहीं कह सकते।

चैतन्य की उपासना हिन्दू धर्म का धर्म नहीं है। मानव जाति क्रमोन्नति के मार्ग पर चर रही है, परन्तु सब लोग एक ही प्रकार की स्थिति में नहीं पहुँच सके हैं। इसीलिए पाश्चिमी जीवन में कोई कोई लोग अस्यान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक महान् और पवित्र बने जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके अपने वर्तमान उन्नति-क्षेत्र के भीतर स्वयं को उन्नत बनाने के लिए अवसर विद्यमान है। हम अपना नाश नहीं कर सकते, हम अपने भीतर की बीबनी शक्ति को नष्ट या दुर्बल नहीं कर सकते, परन्तु उस शक्ति को विभिन्न दिशा में परिष्कृत करने के लिए हम स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न—पाश्चिमी जड़ वस्तु की सत्यता क्या हमारे मन की केवल कल्पना नहीं है?

उत्तर—मेरे मन में बाह्य जगत् की अवश्य एक सत्ता है—हमारे मन के विचार के बाहर भी उमका एक अस्तित्व है। चैतन्य के क्रमविकास-रूप महान् विज्ञान का अनुवर्ती होकर यह समस्त विश्व उद्यति के पथ पर अप्रसर हो रहा है। चैतन्य का यह क्रमविकास जड़ के क्रमविकास से पूर्वक है। जड़ का क्रमविकास चैतन्य की विकास-मयामी का सूचक या प्रतीकस्वरूप है किन्तु उसके द्वारा इस मयामी की व्याख्या नहीं हो सकती। वर्तमान पाश्चिमी परिस्थिति में बड़ा रहने के कारण हम अभी तक व्यक्तित्व नहीं प्राप्त कर सके हैं। जब तक हम उस उच्चतर भूमि में नहीं पहुँच जाते जहाँ हम अपनी अन्तःशरणा के परम लक्ष्यों को प्रकट करने के उपयुक्त यन्त्र बन जाते हैं तब तक हम प्रकृत व्यक्तित्व की प्राप्ति नहीं कर सकते।

प्रश्न—मैं मर्माह के पास एक जन्माद्य शिशु को ले आकर उनसे पूछा गया कि शिशु अपने दिलों हुए पाप के फल से भ्रमा हुआ है, अथवा अपने माता पिता के पाप के फल से—इस समस्या की मीमांसा आप किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—इस समस्या में पाप की बात की ले जाने का कोई भी प्रयोजन नहीं होना पड़ता। तो भी मरु बड़ विरहाम है कि शिशु की यह अज्ञता उसके पूर्व जन्म हुए किसी धर्म का ही फल हीमी। मेरे मन में पूर्व जन्म को स्वीकार करने पर ही ऐसी समस्याओं की मीमांसा हो सकती है।

प्रश्न—मृत्यु के पश्चात् हमारी आत्मा क्या आनन्द की अवस्था को प्राप्त करती है?

उत्तर—मृत्यु तो केवल अवस्था का परिवर्तन मात्र है। देश-काल आपके ही भीतर वर्तमान है, आप देश-काल के अन्तर्गत नहीं है। वस इतना जानने से ही यथेष्ट होगा कि हम, इहलोक में या परलोक में, अपने जीवन को जितना पवित्र और महान् बनायेंगे, उतना ही हम उन भगवान् के निकट होते जायेंगे, जो सारे आध्यात्मिक सौन्दर्य और अनन्त आनन्द के केन्द्रस्वरूप हैं।

३

(द्वेन्टिएय सेन्चुरी क्लब, बोस्टन, अमेरिका)

प्रश्न—क्या वेदान्त का प्रभाव इस्लाम धर्म पर कुछ पड़ा है ?

उत्तर—वेदान्त मत की आध्यात्मिक उदारता ने इस्लाम धर्म पर अपना विशेष प्रभाव डाला था। भारत का इस्लाम धर्म ससार के अन्यान्य देशों के इस्लाम धर्म की अपेक्षा पूर्ण रूप से भिन्न है। जब दूसरे देशों के मुसलमान यहाँ आकर भारतीय मुसलमानों को फुसलाते हैं कि तुम विधियों के साथ मिल-जुलकर कैसे रहते हो, तभी अशिक्षित कट्टर मुसलमान उत्तेजित होकर दगा-फसाद मचाते हैं।

प्रश्न—क्या वेदान्त जाति-भेद मानता है ?

उत्तर—जाति-भेद वेदान्त धर्म का विरोधी है। जाति-भेद एक सामाजिक प्रथा मात्र है और हमारे बड़े बड़े आचार्यों ने उसे तोड़ने के प्रयत्न किये हैं। बौद्ध धर्म से लेकर सभी सम्प्रदायों ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार किया है, परन्तु ऐसा प्रचार जितना ही बढ़ता गया, जाति-भेद की शृंखला उतनी ही दृढ़ होती गयी। जाति-भेद की उत्पत्ति भारत की राजनीतिक सस्थाओं से हुई है। वह तो वंश-परम्परागत व्यवसायों का समवाय (trade guild) मात्र है। किसी प्रकार के उपदेश की अपेक्षा यूरोप के साथ व्यापार-वाणिज्य की प्रतियोगिता ने जाति-भेद को अधिक मात्रा में तोड़ा है।

प्रश्न—वेदों की विशेषता किस बात में है ?

उत्तर—वेदों की एक विशेषता यह है कि सारे शास्त्र-ग्रन्थों में एकमात्र वेद ही बारम्बार कहते हैं कि वेदों के भी अतीत हो जाना चाहिए। वेद कहते हैं कि वे केवल बाल-बुद्धि व्यक्तियों के लिए लिखे गये हैं। इसलिए विकाम कर चुकने पर वेदों के परे जाना पड़ेगा।

प्रश्न—आपके मत में प्रत्येक जीवात्मा क्या नित्य सत्य है ?

उत्तर—जीवात्मा मनुष्य की वृत्तियों की समष्टिस्वरूप है, और इन वृत्तियों का प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इसलिए यह जीवात्मा अनन्त काल के

लिए कभी सत्य नहीं हो सकती। इस भौतिक जगत्-मर्षक के भीतर ही उसकी सत्यता है। जीवात्मा तो बिचार और स्मृति की समष्टि है—वह नित्य सत्य कैसे हो सकती है ?

प्रश्न—भारत में बीड़ बर्म का पतन क्यों हुआ ?

उत्तर—वास्तव में भारत में बीड़ बर्म का लोप नहीं हुआ। वह एक बिराट्ट सामाजिक आन्दोलन मात्र था। बीड़ के पहले मन्न के नाम से तथा अन्य विभिन्न कारणों से बहुत प्रापिहिंसा हीवी भी और लोम बहुत मद्यपान एवं आमिष-आहार करते थे। बीड़ के उपदेश के फल से मद्यपान और लोम-हत्या का भारत से प्रायः लोप सा हो गया है।

५

(अमेरिका के हार्बर्गोर्ड में 'आत्मा, ईश्वर और बर्म' विषय पर स्वामी जी का एक भाषण समाप्त होने पर वहाँ के श्रोताओं ने कुछ प्रश्न पूछे थे। वे प्रश्न तथा उनके उत्तर नीचे दिये गये हैं।)

श्रोतकों में से एक ने कहा—बनर पुरोहित छोप नरक की ज्वाला के बारे में बातें करना छोड़ दें तो लोगों पर से उनका प्रभाव ही उठ जाय।

उत्तर—उठ जाय तो अच्छा ही हो। अगर बातक से कोई किसी बर्मको मानता है, तो वस्तुतः उसका कोई भी बर्म नहीं। इससे तो मनुष्य को उसकी प्राकृतिक प्रकृति के बजाय उसकी ईवी प्रकृति के बारे में उपदेश देना कही अच्छा है।

प्रश्न—जब प्रभु (ईसा) ने यह कहा कि स्वर्ग का राज्य इस संसार में नहीं है तो इससे उनका क्या तात्पर्य था ?

उत्तर—यह कि स्वर्ग का राज्य हमारे अन्दर है। मनुषी लोभों का विस्वास था कि स्वर्ग का राज्य इसी पृथ्वी पर है। पर ईसा मसीह ऐसा नहीं मानते थे।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि मनुष्य का विकास पशु से हुआ है ?

उत्तर—मैं मानता हूँ कि विकास के नियम के अनुसार ऊँचे स्तर के प्राणी अपेक्षाकृत निम्न स्तर से विकसित हुए हैं।

प्रश्न—क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को मानते हैं, जो अपने पूर्व जन्म की बातें जानता हो ?

उत्तर—हाँ कुछ ऐसे लोगों से भेरी घट हुई है, जो कहते हैं कि उन्हें अपने पिछले जीवन की बातें याद हैं। वे इतना ऊपर उठ चुके हैं कि अपने पूर्व जन्म की बातें याद कर सकते हैं।

प्रश्न—ईसा मसीह के क्रूस पर चढ़ने की बात में क्या आपको विश्वास है ?

उत्तर—ईसा मसीह ईश्वर के अवतार थे। कोई उन्हें मार नहीं सकता था। देह, जिसको क्रूस पर चढ़ाया गया, एक छाया मात्र थी, एक मृगतृष्णा थी।

प्रश्न—अगर वे ऐसे छाया-शरीर का निर्माण कर सकें, तो क्या यह सबसे बड़ा चमत्कारपूर्ण कार्य नहीं है ?

उत्तर—चमत्कारपूर्ण कार्यों को मैं आध्यात्मिक मार्ग का सबसे बड़ा रोड़ा मानता हूँ। एक बार बुद्ध के शिष्यों ने उनसे एक ऐसे व्यक्ति की चर्चा की, जो तथाकथित चमत्कार दिखाता था—वह एक कटोरे को बिना छुए ही काफ़ी ऊँचाई पर रोके रखता था। उन लोगो ने बुद्ध को वह कटोरा दिखाया, तो उन्होंने उसे अपने पैरो से कुचल दिया और कहा—कभी तुम इन चमत्कारों पर अपनी आस्था मत आधारित करो, बल्कि शाश्वत सिद्धान्तों में सत्य की खोज करो। बुद्ध ने उन्हें सच्चे आन्तरिक प्रकाश की शिक्षा दी—वह प्रकाश, जो आत्मा की देन है और जो एकमात्र ऐसा विश्वसनीय प्रकाश है, जिसके सहारे चला जा सकता है। चमत्कार तो केवल मार्ग के रोड़े हैं। उन्हें हमें रास्ते से अलग हटा देना चाहिए।

प्रश्न—क्या आप मानते हैं कि 'शैलोपदेश' सचमुच ईसा मसीह के हैं ?

उत्तर—हाँ, मैं ऐसा मानता हूँ। और इस सम्बन्ध में मैं अन्य विचारकों की तरह पुस्तकों पर ही भरोसा करता हूँ, यद्यपि मैं यह भी समझता हूँ कि पुस्तकों को प्रमाण बनाना बहुत ठोस आधार नहीं है। पर इन सारी बातों के बावजूद हम सभी 'शैलोपदेश' को निःसंकोच अपना पथप्रदर्शक मान सकते हैं। जो हमारी अन्तरात्मा को जेंचे, उसे हमें स्वीकार करना है। ईसा के पाँच सौ साल पहले बुद्ध ने उपदेश दिया था और सदा उनके उपदेश आशीषों से भरे रहते थे। कभी उन्होंने अपने जीवन में अपने कार्यों अथवा अपने शब्दों से किसीकी हानि नहीं की, और न ज़रथुष्ट्र अथवा कन्फ्यूशस ने ही।

५

(निम्नलिखित प्रश्नोत्तर अमेरिका में दिये हुए विभिन्न भाषणों के अन्त में हुए थे। वहाँ से इनका संग्रह किया गया है। इनमें से यह अमेरिका के एक सवाद-पत्र से संगृहीत है।)

प्रश्न—आत्मा के आवागमन का हिंदू सिद्धान्त क्या है ?

उत्तर—वैज्ञानिकों का ऊर्जा या जड़-संभारण (conservation of energy or matter) का सिद्धान्त, जिस भित्ति पर प्रतिष्ठित है, आवागमन का सिद्धान्त भी उसी भित्ति पर स्थापित है। इस सिद्धान्त (conservation of energy or

matter) का प्रार्थन गवैययव हमारे देश क एक दार्शनिक ने ही किया था। प्रार्थन 'द्विवे मूर्ति' पर विरहाग मर्ती करो ये। 'मूर्ति' कर्म में सागर निगमना है—दुःख मर्ती म दुःख का होना अभाव में 'भार' की उत्पत्ति। यह अममभव है। जिस प्रकार नाम का भाविक नहीं है उमी प्रार मूर्ति का भी भाविक नहीं है। ईश्वर और मूर्ति मानी की गमानाउर वेगामी क नमान है—उनका क भाविक है म अमम—वे निगम पूषक है। मूर्ति क बारे में हमारा मत यह है—'बहु भी है और रहेगी। पापपाप केगामिनी की भावण में एक पाप मीगनी है—यह है परपम-सहितुता। को भी एम कुर मर्ती है क्रांति सब घमों का मार एक ही है।

प्रश्न—भारत की स्त्रियाँ उठनी उभरत क्यों मर्ती है ?

उत्तर—विभिन्न गमवीं म अनिक अमम्य जातिवीं में भारत पर भावण किया था प्रपावत उनीके कारण भारतीय महिलाएँ उठनी अनुभव है। कि हमम कुर शेष ली भारतवागियों के मर्ती भी है।

किमी समय अमेरिका में स्वामी जी से कहा गया था कि हिन्दू धर्म में कभी किमी अन्य पर्यायसम्भ की अपन धर्म म नहीं मिलाया है। हमक उत्तर में उन्होंने कहा "यैस पूर्व के लिए बुद्धेव के पास एक बिलेय मन्देय का उठी प्रकार पदिचम के लिए मेरे पास भी एक सन्देय है।

प्रश्न—आप क्या यहाँ (अमरिका में) हिन्दू धर्म क प्रियाकलाप अनुष्ठान भाविक को बलाना चाहते हैं ?

उत्तर—मैं तो केवल दार्शनिक तरवीं का ही प्रचार कर रहा हूँ।

प्रश्न—क्या आपको ऐसा नहीं मालूम होता कि यदि भारी मरक का डर मनुष्य के सामने से हटा दिया जाय तो किमी भी रूप से उसे क्राडू में रचना मसम्मभ की जायगा ?

उत्तर—नहीं बल्कि मैं तो यह समझता हूँ कि मय की अपेला हृदय में प्रेम और भाषा का संचार होने से वह अधिक मच्छा हो सकेगा।

१

(स्वामी जी ने २५ मार्च सन् १८९६ ई की संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हार्बर्ड विश्वविद्यालय की 'जेजुएट दार्शनिक समा' में बेबान्त बर्धन के बारे में एक व्याख्यान किया था। व्याख्यान समाप्त होने पर बोलसमीं के सरक निम्नलिखित प्रश्नोत्तर हुए।)

प्रश्न—मैं यह जानना चाहता हूँ कि भारत में दार्शनिक चिन्तन की वर्तमान अवस्था कैसी है ? इन सब बातों की वहाँ आवश्यक कहीं तक आलोचना होती है ?

उत्तर—मैंने पहले ही कहा है कि भारत में अधिकांश लोग द्वैतवादी हैं। अद्वैतवादियों की संख्या बहुत अल्प है। उस देश में (भारत में) आलोचना का प्रधान विषय है मायावाद और जीव-तत्त्व। मैंने इस देश में आकर देखा कि यहाँ के श्रमिक संसार की वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति से भली भाँति परिचित है, परन्तु जब मैंने उनसे पूछा, 'धर्म कहने से तुम क्या समझते हो, अमुक अमुक सम्प्रदाय का धर्म-मत किस प्रकार का है', तो उन्होंने कहा, 'ये सब बातें हम नहीं जानते—हम तो बस चर्च में जाते भर हैं।' परन्तु भारत में किसी किसान के पास जाकर यदि मैं पूछूँ कि तुम्हारा शासनकर्ता कौन है, तो वह उत्तर देगा, 'यह बात मैं नहीं जानता, मैं तो केवल टैक्स (कर) दे देता हूँ।' पर यदि मैं उससे धर्म के विषय में पूछूँ, तो वह तत्काल बतला देगा कि वह द्वैतवादी है, और माया तथा जीव-तत्त्व के सम्बन्ध में वह अपनी धारणा को विस्तृत रूप से कहने के लिए भी तैयार हो जायगा। वे लिखना-पढ़ना नहीं जानते, परन्तु इन बातों को उन्होंने साधु-सन्यासियों से सीखा है, और इन विषयों पर विचार करना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। दिन भर काम करने के पश्चात् पेट के नीचे बैठकर किसान लोग इन सब तत्त्वों पर विचार किया करते हैं।

प्रश्न—कट्टर या असल हिन्दू किसे कह सकते हैं? हिन्दू धर्म में कट्टरता (orthodoxy) का क्या अर्थ है?

उत्तर—वर्तमान काल में तो खान-पान अथवा विवाह के विषय में जातिगत विधि-निषेध का पालन करने से ही कट्टर या असल हिन्दू हो जाता है। फिर वह चाहे जिस किसी धर्म-मत में विश्वास क्यों न करे, कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। भारत में कभी भी कोई नियमित धर्मसंघ या चर्च नहीं था, इसलिए कट्टर या असल हिन्दूपन गठित तथा नियमित करने के लिए सघन रूप से कभी चेष्टा नहीं हुई। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जो वेदों में विश्वास रखते हैं, वे ही असल या कट्टर हिन्दू हैं। पर वास्तव में, देखने में यह आता है कि द्वैतवादी सम्प्रदायों में से अनेक केवल वेद-विश्वासी न होकर पुराणों में ही अधिक विश्वास रखते हैं।

प्रश्न—आपके हिन्दू दर्शन ने यूनानियों के स्टोइक दर्शन^१ पर किस प्रकार प्रभाव डाला था?

१ सम्भवतः ईसा से ३०८ वर्ष पूर्व ग्रीस के दार्शनिक जीनो (Zeno) ने इस दर्शन का प्रचार किया था। इनके मत से, सुख-दुःख, भला-बुरा, सब विषयों में समभावसम्पन्न रहना और अविचलित रहकर सबको सहना ही मनुष्य जीवित्ने का परम पुरुषार्थ है। स०

उत्तर—यह प्रश्न है कि उसने विकल्पित विचारों द्वारा उस पर कुछ प्रभाव डाला था। ऐसा समझा जाता है कि पाश्चात्यों के उपदेशों में साक्ष्य दर्शन का प्रभाव किंचित् है। जो है। हमारे यह धारणा है कि साक्ष्य दर्शन ही बेटी में निहित वैज्ञानिक तर्कों का पुनित-विचार द्वारा समझने करने का सबसे प्रथम प्रयत्न है। हम बेटी तक में कपिल के नाम का उल्लेख पाते हैं—**अपि प्रसूतं कपिलं यस्तमपे।**

— जिन्होंने उन कपिल अपि को पहले प्रसव किया था।

प्रश्न—पाश्चात्य विज्ञान व साध इस मठ का विरोध कहीं पर है ?

उत्तर—विरोध कुछ भी नहीं है। बल्कि हमारे इस मठ के साथ पाश्चात्य विज्ञान का साहचर्य ही है। हमारा परिष्कारवाद तथा आकाश और प्राण तत्त्व ठीक आपका आपुनिक दर्शनों के सिद्धांत के समान है। आपका परिष्कारवाद या कमविकास हमारे यज्ञ और साक्ष्य दर्शन में पाया जाता है। बुद्ध्यास्तस्वस्य शक्ति—पतञ्जलि न वतलाया है कि प्रकृति के आपूर्ण के द्वारा एक जाति अन्य जाति में परिवर्तित होती है—**जात्यन्तरपरिणाम-प्रकृत्यन्तुरात्।** केवल इसकी व्याख्या के विषय में पतञ्जलि के साथ पाश्चात्य विज्ञान का मतभेद है। पतञ्जलि की परिष्कार की व्याख्या आध्यात्मिक है। वे कहते हैं—जब एक किसान अपने खेत में पानी देने के लिए पास के ही जलाशय से पानी लेता चाहता है तो वह बस पानी की टोक रखनेवाले द्वार को खोल कर देता है—निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरचमेवसु सतः शोभिकवत्। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य पहले से ही मनुष्य है केवल इन सब विभिन्न अवस्था-वक्रणों द्वारा या प्रतिबन्धों में उसे बद्ध कर रखा है। इन प्रतिबन्धों को हटाने मात्र से ही उसकी वह मनुष्य शक्ति बड़े पैमाने के साथ अभिव्यक्त होनी लगती है। तिमिर योनि में मनुष्यत्व कुछ मात्र से निहित है मनुष्य परिस्थिति उपस्थित होने पर वह तत्क्षण ही मानव रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। उसी प्रकार उपयुक्त सुयोग तथा बचकर उपस्थित होने पर मनुष्य के भीतर जो ईश्वरत्व विद्यमान है वह अपने को अभिव्यक्त कर देता है। इसीलिए वैज्ञानिक नूतन मतभावधारकों के साथ विवाद करने को विशेष कुछ नहीं है। उदाहरणार्थ विषय-मत्पक्ष के सिद्धांत के सम्बन्ध में साक्ष्य मठ के साथ आधुनिक शरीर विज्ञान (Physiology) का बहुत ही गीका मतभेद है।

प्रश्न—परन्तु आप जोनों की प्रकृति भिन्न है।

उत्तर—हाँ, हमारे मतानुसार मन की समस्त शक्तियों को एकमुखी करना ही ज्ञान-लाभ का एकमात्र उपाय है। वहिर्विज्ञान में बाह्य विषयों पर मन को एकाग्र करना होता है और अन्तर्विज्ञान में मन की गति को आत्माभिमुखी करना पड़ता है। मन की इस एकाग्रता को ही हम योग कहते हैं।

प्रश्न—एकाग्रता की दशा में क्या इन सब तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान आप ही आप प्रकट होता है ?

उत्तर—योगी कहते हैं कि इस एकाग्रता शक्ति का फल अत्यन्त महान् है। उनका कहना है कि मन की एकाग्रता के बल से ससार के सारे सत्य—बाह्य और अन्तर दोनों जगत् के सत्य—करामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

प्रश्न—अद्वैतवादी सृष्टि-तत्त्व के विषय में क्या कहते हैं ?

उत्तर—अद्वैतवादी कहते हैं कि यह सारा सृष्टि-तत्त्व तथा इस ससार में जो कुछ भी है, सब माया के, इस आपातप्रतीयमान प्रपञ्च के अन्तर्गत है। वास्तव में इस सबका कोई अस्तित्व नहीं है। परन्तु जब तक हम बद्ध हैं, तब तक हमें यह दृश्य जगत् देखना पड़ेगा। इस दृश्य जगत् में घटनाएँ कुछ निर्दिष्ट क्रम के अनुसार घटती रहती हैं। परन्तु उनके परे न कोई नियम है, न क्रम। वहाँ सम्पूर्ण मुक्ति—सम्पूर्ण स्वाधीनता है।

प्रश्न—अद्वैतवाद क्या द्वैतवाद का विरोधी है ?

उत्तर—उपनिषद् प्रणालीबद्ध रूप से लिखित न होने के कारण जब कभी दार्शनिकों ने किसी प्रणालीबद्ध दर्शनशास्त्र की रचना करनी चाही, तब उन्होंने इन उपनिषदों में से अपने अभिप्राय के अनुकूल प्रामाणिक वाक्यों को चुन लिया है। इसी कारण सभी दर्शनकारों ने उपनिषदों को प्रमाण रूप से ग्रहण किया है,—अन्यथा उनके दर्शन को किसी प्रकार का आधार ही नहीं रह जाता। तो भी हम देखते हैं कि उपनिषदों में सब प्रकार की विभिन्न चिन्तन-प्रणालियाँ विद्यमान हैं। हमारा यह सिद्धान्त है कि अद्वैतवाद द्वैतवाद का विरोधी नहीं है। हम तो कहते हैं कि चरम ज्ञान में पहुँचने के लिए जो तीन सोपान हैं, उनमें से द्वैतवाद एक है। धर्म में सर्वदा तीन सोपान देखने में आते हैं। प्रथम—द्वैतवाद। उसके बाद मनुष्य अपेक्षाकृत उच्चतर अवस्था में उपस्थित होता है—वह है विशिष्टा-द्वैतवाद। और अन्त में उसे यह अनुभव होता है कि वह समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ अभिन्न है। यही चरम दशा अद्वैतवाद है। इसलिए इन तीनों में परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि वे आपस में एक दूसरे के सहायक या पूरक हैं।

प्रश्न—माया या अज्ञान के अस्तित्व का क्या कारण है ?

उत्तर—कार्य-कारण संघात की सीमा के बाहर 'क्यों' का प्रश्न नहीं पूछा जा सकता। माया-राज्य के भीतर ही 'क्यों' का प्रश्न पूछा जा सकता है। हम कहते हैं कि यदि ध्यायघासन के अनुसार यह प्रश्न पूछ सका जाय तभी हम उसका उत्तर देंगे। उसके पहले उसका उत्तर देने का हमें अधिकार नहीं है।

प्रश्न—समुच्च ईश्वर क्या माया के अन्तर्गत है ?

उत्तर—हाँ पर यह समुच्च ईश्वर मायाकी आवरण के भीतर से परिदृश्यमय उस निर्बुन ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। माया या प्रकृति के अन्तर्गत होने पर वही निर्बुन ब्रह्म जीवार्त्मा कहलाता है और मायापीस या प्रकृति के नियन्त्रा के रूप में वही ईश्वर या समुच्च ब्रह्म कहलाता है। यदि कोई व्यक्ति सूर्य को देखने के लिए यहाँ से ऊपर की ओर जाना करे, तो जब तक वह असल सूर्य के निकट नहीं पहुँचता तब तक वह सूर्य को कमजोर अधिकाधिक बड़ा ही देखता जायगा। वह जितना ही आगे बढ़ेगा उसे ऐसा मानस होगा कि वह मिला मिला सूर्यों को देख रहा है परन्तु वास्तव में वह उसी एक सूर्य को देख रहा है इसमें सन्देह नहीं। इसी प्रकार, हम जो कुछ देख रहे हैं सभी उसी निर्बुन ब्रह्मसत्ता के विभिन्न रूप मात्र हैं इसलिए उस दृष्टि से ये सब सत्य है। इनमें से कोई भी मिथ्या नहीं है परन्तु यह कहा जा सकता है कि ये निम्नतर सौपान मात्र हैं।

प्रश्न—उस पूर्ण निरपेक्ष सत्ता को जानने की विशेष प्रणाली कौन सी है ?

उत्तर—हमारे मत में दो प्रणालियाँ हैं। उनमें से एक तो अस्तिभावचोसक या प्रवृत्ति मार्ग है और दूसरी नास्तिभावचोसक या निवृत्ति मार्ग है। प्रवृत्ति मार्ग से सद्य विश्व बनता है—वही पक्ष से हम प्रेम के द्वारा उस पूर्ण वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। यदि प्रेम की परिधि अनन्त मुनी बड़ा ही जाय तो हम उसी विश्व-मेम में पहुँच जायेंगे। दूसरे पक्ष में निवृत्ति 'मिति' यथात् 'यह नहीं' 'यह नहीं' इस प्रकार की साधना करनी पड़ती है। इस साधना में चित्त की जो कोई तरंग मन को बहिर्मुखी बनाने की चेष्टा करती है उसका निवारण करना पड़ता है। अन्त में मन ही मानो भर जाता है तब सत्य स्वयं प्रकाशित हो जाता है। हम इसीको समाधि या ज्ञानार्त्वा अवस्था या पूर्ण ज्ञानावस्था कहते हैं।

प्रश्न—तब तो यह विषयी (ज्ञाता या द्रष्टा) को विषय (ज्ञेय या दृश्य) में डबा देने की अवस्था हुई ?

उत्तर—विषयी को विषय में नहीं बरन् विषय को विषयी में डबा देने की। वास्तव में यह जगत् विच्छिन्न ही जाता है केवल में रह जाता है—एकमात्र में ही वर्तमान रहता है।

प्रश्न—हमारे कुछ जर्मन दार्शनिकों का मत है कि भारतीय भक्तिवाद सम्भवतः पाश्चात्य प्रभाव का ही फल है।

उत्तर—इस विषय में मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। इस प्रकार का अनुमान एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता। भारतीय भक्ति पाश्चात्य देशों की भक्ति के समान नहीं है। भक्ति के सम्बन्ध में हमारी मुख्य धारणा यह है कि उसमें भय का भाव बिल्कुल ही नहीं रहता—रहता है केवल भगवान् के प्रति प्रेम। दूसरी बात यह है कि ऐसा अनुमान बिल्कुल अनावश्यक है। भक्ति की बातें हमारी प्राचीनतम उपनिषदों तक में विद्यमान हैं और ये उपनिषद् ईसाइयों की बाइबिल से बहुत प्राचीन हैं। संहिता में भी भक्ति का बीज देखने में आता है। फिर 'भक्ति' शब्द भी कोई पाश्चात्य शब्द नहीं है। वेद-मन्त्र में 'श्रद्धा' शब्द का जो उल्लेख है, उसीसे क्रमशः भक्तिवाद का उद्भव हुआ था।

प्रश्न—ईसाई धर्म के सम्बन्ध में भारतवासियों की क्या धारणा है ?

उत्तर—बड़ी अच्छी धारणा है। वेदान्त सभी को ग्रहण करता है। दूसरे देशों की तुलना में भारत में हमारी धर्म-शिक्षा का एक विशेषत्व है। मान लीजिए, मेरे एक लड़का है। मैं उसे किसी धर्म-मत की शिक्षा नहीं दूँगा, मैं उसे प्राणायाम सिखाऊँगा, मन को एकाग्र करना सिखाऊँगा और थोड़ी-बहुत सामान्य प्रार्थना की शिक्षा दूँगा, परन्तु वैसी प्रार्थना नहीं, जैसी आप समझते हैं, वरन् इस प्रकार की कुछ प्रार्थना—'जिन्होंने इस विश्व-ब्रह्माण्ड की सृष्टि की है, मैं उनका ध्यान करता हूँ—वे मेरे मन को ज्ञानालोक से आलोकित करें।' इस प्रकार उसकी धर्म-शिक्षा चलती रहेगी। इसके बाद वह विभिन्न मतावलम्बी दार्शनिकों एवं आचार्यों के मत सुनता रहेगा। उनमें से जिनका मत वह अपने लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझेगा, उन्हींको वह गुरु रूप से ग्रहण करेगा और वह स्वयं उनका शिष्य बन जायगा। वह उनसे प्रार्थना करेगा, 'आप जिस दर्शन का प्रचार कर रहे हैं, वही सर्वोत्कृष्ट है, अतएव आप कृपा करके मुझे उसकी शिक्षा दीजिए।'।

हमारी मूल बात यह है कि आपका मत मेरे लिए तथा मेरा मत आपके लिए उपयोगी नहीं हो सकता। प्रत्येक का साधन-पथ भिन्न भिन्न होता है। यह भी हो सकता है कि मेरी लड़की का साधन-मार्ग एक प्रकार का हो, मेरे लड़के का दूसरे प्रकार का, और मेरा इन दोनों से बिल्कुल भिन्न प्रकार का। अतः प्रत्येक व्यक्ति का इष्ट या निर्वाचित पथ भिन्न भिन्न हो सकता है,—और सब लोग अपने अपने साधन-मार्ग की बातें गुप्त रखते हैं। अपने साधन-पथ के विषय में केवल

में जानता हूँ और मेरे गुह—किसी तीसरे व्यक्ति को यह नहीं बताया जाता क्योंकि हम दूसरों से गुना दिबाद करना नहीं चाहते। फिर, इस वृत्तों के पास प्रकट करने से उनका कोई काम नहीं होता क्योंकि प्रत्येक को ही अपना अपना मार्ग चुन लेना पड़ता है। इसीलिए सर्वसाधारण को केवल सर्वसाधारणोपयोगी धर्मन और साधना प्रणाली का ही उपवेश दिया जा सकता है। एक वृत्तस्त भीष्टि—अवश्य उसे सुनकर माप हँसने। माग भीष्टि, एक पैर पर चढ़े रहने से धामर मेरी उन्नति में कुछ सहायता होती ही परन्तु इसी कारण यदि मैं सभी को एक पैर पर चढ़े होने का उपवेश देने कर्णुं तो क्या यह हँसी की बात न होगी ? हो सकता है कि मैं हीतकारी होऊँ और मेरी स्त्री महीतकारी। मेरा कोई कर्क का इच्छा करे तो ईसा बुद्ध या मुहम्मद का उपासक बन सकता है वे उसके इष्ट हैं। हाँ यह अवश्य है कि उस अपने आतिथ्य सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ेगा।

प्रश्न—क्या सब हिन्दुओं का आति-विभाग में विश्वास है ?

उत्तर—उन्हें बाध्य होकर आतिथ्य निमम मानने पड़ते हैं। उनका तब ही उनमें विश्वास न हो पर तो भी वे सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते।

प्रश्न—इस प्राणायाम और एकाग्रता का अन्वेष क्या सब लोग करते हैं ?

उत्तर—हाँ पर कोई कोई लोग बहुत पढ़ा करते हैं—वर्मशास्त्र के बारेस का उल्लंघन न करने के लिए जितना करना पड़ता है, बस उतना ही करते हैं। भारत के मन्दिर यहाँ के गिरजाघरों के समान नहीं हैं। जाहे तो कल ही सारे मन्दिर धायर हो जायें तो भी लोगों को उनका अभाव महसूस नहीं होया। स्वर्ण की इच्छा से पुन की इच्छा से बचना इसी प्रकार की और किसी कामना से लोग मन्दिर बनवाते हैं। ही सकता है किसीने एक बड़े भारी मन्दिर की प्रतिष्ठा कर उसमें पूजा के लिए बी-बार पुरोहितों को भी नियुक्त कर दिया पर मुझे नहीं जाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि मेरा जो कुछ पूजा-याठ है वह मेरे घर में ही होता है। प्रत्येक घर में एक बरतण कमरा होता है, जिसे 'ठाकुर-घर' या 'पूजा-गृह' कहते हैं। बीसा-ग्रहण के बाद प्रत्येक बाळक या बालिका का यह कर्तव्य ही जाता है कि वह पहले स्नान करे, फिर पूजा सम्प्या बन्दनादि। उसकी इस पूजा या उपासना का धर्म है—प्राणायाम ध्यान तथा किसी मन्त्र विधिप का जप। और एक बात की और विधेय ध्यान देना पड़ता है वह है—धायना के समय शरीर को हुमेसा सीबा रचना। हुमाप विश्वास है कि मन के बल से शरीर को स्वस्थ और उन्नत रना जा सकता है। एक व्यक्ति इस प्रकार पूजा

आदि करके चला जाता है, फिर दूसरा जाकर वहाँ बैठकर अपना पूजा-पाठ आदि करने लगता है। सभी निस्तब्ध भाव से अपनी अपनी पूजा करके चले जाते हैं। कभी कभी एक ही कमरे में तीन-चार व्यक्ति बैठकर उपासना करते हैं, परन्तु उनमें से हर एक की उपासना-प्रणाली भिन्न भिन्न हो सकती है। इस प्रकार की पूजा प्रतिदिन कम से कम दो बार करनी पड़ती है।

प्रश्न—आपने जिस अद्वैत-अवस्था के बारे में कहा है, वह क्या केवल एक आदर्श है, अथवा उसे लोग प्राप्त भी करते हैं ?

उत्तर—हम कहते हैं कि वह यथार्थ है—हम कहते हैं कि वह अवस्था उपलब्ध होती है। यदि वह केवल थोड़ी बात हो, तब तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं। उस तत्त्व की उपलब्धि करने के लिए वेदों में तीन उपाय बतलाये गये हैं—श्रवण, मनन और निदिध्यासन। इस आत्म-तत्त्व के विषय में पहले श्रवण करना होगा। श्रवण करने के बाद इस विषय पर विचार करना होगा—आँखें मूँदकर विश्वास न कर, अच्छी तरह विचार करके समझ-बूझकर उस पर विश्वास करना होगा। इस प्रकार अपने सत्यस्वरूप पर विचार करके उसके निरन्तर ध्यान में नियुक्त होना होगा, तब उसका साक्षात्कार होगा। यह प्रत्यक्षानुभूति ही यथार्थ धर्म है। केवल किसी मतवाद को स्वीकार कर लेना धर्म का अंग नहीं है। हम तो कहते हैं कि यह समाधि या ज्ञानातीत अवस्था ही धर्म है।

प्रश्न—यदि आप कभी इस समाधि अवस्था को प्राप्त कर लें, तो क्या आप उसका वर्णन भी कर सकेंगे ?

उत्तर—नहीं, परन्तु समाधि अवस्था या पूर्ण ज्ञान की अवस्था प्राप्त हुई है या नहीं, इस बात को हम जीवन के ऊपर उसके फलाफल को देखकर जान सकते हैं। एक मूर्ख व्यक्ति जब सोकर उठता है, तो वह पहले जैसा मूर्ख था, अब भी वैसा ही मूर्ख रहता है, शायद पहले से और भी खराब हो सकता है। परन्तु जब कोई व्यक्ति समाधि में स्थित होता है, तो वहाँ से व्युत्थान के बाद वह एक तत्त्वज्ञ, साधु, महापुरुष हो जाता है। इसीसे स्पष्ट है कि ये दोनों अवस्थाएँ कितनी भिन्न भिन्न हैं।

प्रश्न—मैं प्राध्यापक—के प्रश्न का सूत्र पकड़ते हुए यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आप ऐसे लोगों के विषय में जानते हैं, जिन्होंने आत्म-सम्मोहन विद्या (self-hypnotism) का कुछ अध्ययन किया है? अवश्य ही प्राचीन भारत में इस विद्या की बहुत चर्चा होती थी—पर अब उतनी दिखायी नहीं देती। मैं जानना चाहता हूँ कि जो लोग आजकल उसकी चर्चा और साधना करते हैं, उनका इस विद्या के विषय में क्या कहना है, और वे इसका अम्यास या साधना किस तरह करते हैं।

उत्तर—आप पाठशास्त्र देश में जिसे सम्मोहन-विद्या कहते हैं, वह तो असली स्यापार का एक सामान्य अंग मात्र है। हिन्दू लोग उसे भारमापसम्मोहन (self de-hypnotisation) कहते हैं। वे कहते हैं आप तो पहले से ही सम्मोहित (hypnotised) हैं—इस सम्मोहित-भाव को दूर करना हीगा अपसम्मोहित (de-hypnotised) होना होगा—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतरकम्
नेमा विद्युत्तो भाति कुलीप्यमग्निः।
तमेव भास्वतनुभाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

—‘वहाँ सूर्य प्रकाशित नहीं होता चन्द्र तारक विद्युत् भी नहीं—तो फिर इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या। उन्हींके प्रकाश से समस्त प्रकाशित हो रहा है।’

यह तो सम्मोहन (hypnotism) नहीं है—यह तो अपसम्मोहन (de-hypnotisation) है। हम कहते हैं कि वह प्रत्येक बर्ष जो इस प्रयोग की उत्पत्ता की सिखा देता है एक प्रकार से सम्मोहन का प्रयोग कर रहा है। केवल अद्वैतवादी ही ऐसे हैं जो सम्मोहित होना नहीं चाहते। एकमात्र अद्वैतवादी ही समझते हैं कि सभी प्रकार के द्वैतवाद से सम्मोहन या मोह उत्पन्न होता है। इन्हींलिए अद्वैतवादी कहते हैं बर्षों की भी अपरा विद्या समझकर उनके अतीत ही जात्रों समुक्त ईश्वर के भी परे चले जाओ सारे विश्वब्रह्माण्ड को भी दूर फेंक दो इतना ही नहीं अपने शरीर-मन आदि को भी पार कर जाओ—कुछ भी वेग न रहन पाय सभी तुम सम्पूर्ण रूप से मोह से मुक्त होओगे।

यन्तो बाधो निर्वर्तते अप्राप्य मनसा सह।
मानसं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति क्वाचन ॥

—मन के सहित बाधो जिस न पाकर जहाँ से लौट जाती है उस ब्रह्म के आनन्द को जानने पर फिर किसी प्रकार का भय नहीं रह जाता।’ यही आगम्भीरु है।

१ षटोपनिषद् ॥२।२।१५॥

२ तैत्तिरीयोपनिषद् ॥२।४।१॥

न पुण्य न पाप न सौख्य न दुःखम्
 न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा ।
 अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
 चिदानन्दरूपं शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

—‘मेरे न कोई पुण्य है, न पाप, न सुख है, न दुःख, मेरे लिए मन्त्र, तीर्थ वेद या यज्ञ कुछ भी नहीं है। मैं भोजन, भोज्य या भोक्ता कुछ भी नहीं हूँ—मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ, मैं ही शिव (मगलस्वरूप) हूँ।’

हम लोग सम्मोहन-विद्या के सारे तत्त्व जानते हैं। हमारी जो मनस्तत्त्व-विद्या है, उसके विषय में पश्चात् देशवालो ने हाल ही में थोड़ा थोड़ा जानना प्रारम्भ किया है, परन्तु दुःख की बात है कि अभी तक वे उसे पूर्ण रूप से नहीं जान सके हैं।

प्रश्न—आप लोग ‘ऐस्ट्रल बॉडी’ (astral body) किसे कहते हैं ?

उत्तर—हम उसे लिंग-शरीर कहते हैं। जब इस देह का नाश होता है, तब दूसरे शरीर का ग्रहण किस प्रकार होता है ? जड़-भूत को छोड़कर शक्ति नहीं रह सकती। इसलिए सिद्धान्त यह है कि देहत्याग होने के पश्चात् भी सूक्ष्म-भूत का कुछ अंश हमारे साथ रह जाता है। भीतर की इन्द्रियाँ इस सूक्ष्म-भूत की सहायता से और एक नूतन देह तैयार कर लेती हैं, क्योंकि प्रत्येक ही अपनी अपनी देह बना रहा है—मन ही शरीर को तैयार करता है। यदि मैं साधु बनूँ, तो मेरा मस्तिष्क साधु के मस्तिष्क में परिणत हो जायगा। योगी कहते हैं कि वे इसी जीवन में अपने शरीर को देव-शरीर में परिणत कर सकते हैं।

योगी अनेक चमत्कार दिखाते हैं। कोरे मतवादो की राशि की अपेक्षा अल्प अभ्यास का मूल्य अधिक है। अतएव मुझे यह कहने का अधिकार नहीं है कि अमुक अमुक बातें घटती मैंने नहीं देखी, इसलिए वे मिथ्या हैं। योगियों के ग्रन्थों में लिखा है कि अभ्यास के द्वारा सब प्रकार के अति अद्भुत फलों की प्राप्ति हो सकती है। नियमित रूप से अभ्यास करने पर अल्प काल में ही थोड़े-बहुत फल की प्राप्ति हो जाती है, जिससे यह जाना जा सकता है कि इसमें कुछ कपट या धोखेबाजी नहीं है। और इन सब शास्त्रों में जिन अलौकिक बातों का उल्लेख है, योगी वैज्ञानिक रीति से उनकी व्याख्या करते हैं। अब प्रश्न यह है कि ससार की सभी जातियों में इस प्रकार के अलौकिक कार्यों का विवरण कैसे लिपिबद्ध किया गया ? जो व्यक्ति कहता है कि ये सब मिथ्या हैं, अतः इनकी व्याख्या करने

की कोई आवश्यकता नहीं उसे युक्तिवादी विचारक नहीं कहा जा सकता। जब तक आप उन भावों को अमान्यक प्रमाणित नहीं कर सकते तब तक उन्हें अस्वीकार करने का अधिकार आपको नहीं है। आपको यह प्रमाणित करना हीमा कि इन सबका कोई आपार नहीं है, तभी उनको अस्वीकार करने का अधिकार आपको होगा। परन्तु आप सौधों में तो ऐसा किया नहीं। दूसरी ओर, योगी कहते हैं कि ये सब व्यापार वास्तव में अशुभ नहीं हैं और वे इस बात का ध्यान करते हैं कि ऐसी क्रियाएँ वे अभी भी कर सकते हैं। भारत में आज भी अनेक अशुभ घटनाएँ होती रहती हैं परन्तु उनमें से कोई भी किसी चमत्कार द्वारा नहीं बटवी। इस विषय पर अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। जो हो यदि वैज्ञानिक रूप से मनस्त्व की मासोचना करने के प्रयत्न को छोड़कर इस दिशा में अधिक और कुछ न हुमा हो तो भी इसका साथ श्रेय योगियों को ही देना चाहिए।

प्रश्न—योगी क्या क्या चमत्कार दिखा सकते हैं इसके उदाहरण क्या आप दे सकते हैं ?

उत्तर—योगियों का कथन है कि अन्य किसी विज्ञान की चर्चा करने के लिए जितने विश्वास की आवश्यकता होती है, योग विद्या के निमित्त उससे अधिक विश्वास की जरूरत नहीं। किसी विषय को स्वीकार करने के बाद एक मात्र व्यक्ति उसकी सत्यता की परीक्षा के लिए जितना विश्वास करता है उससे अधिक विश्वास करने की योगी लोग नहीं कहते। योगी का आदर्श अतिशय उच्च है। मन की शक्ति से जो सब कार्य हो सकते हैं उनमें से निम्नतर कुछ कार्यों को मने प्रयत्न देखा है। बत में इस पर अविश्वास नहीं कर सकता कि उच्चतर कार्य भी मन की शक्ति द्वारा ही सकते हैं। योगी का आदर्श है—सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता की प्राप्ति कर उनकी सहायता से घातक शान्ति और प्रेम का अधिकारी हो जाना। मैं एक योगी को जानता हूँ जिन्हें एक बड़े कियेसे सर्प ने काट लिया था। सर्पघ्न होते ही वे बेहोश हो जमीन पर गिर पड़े। सम्प्रा के समय वे हीस में जाये। उनसे जब पूछा गया कि क्या हुआ था तो वे बोले 'मिरे प्रियतम के पाठ से एक बूट भाया था। इन महारमा की सारी गुना शोध और हिसा का मात्र पूर्व रूप से दग्ध हो चुका है। कोई भी पाठ उन्हें बरसा केने के लिए प्रकृत नहीं कर सकती। वे सर्वदा अत्यन्त प्रेमबन्धु हैं और प्रेम की शक्ति से सर्वशक्तिमान हो गये हैं। बत ऐसा व्यक्ति ही यथार्थ योगी है, और यह सब शक्तियों का विकास—अनेक प्रकार के चमत्कार दिगन्ताना—गौर मान है। यह सब प्राप्त कर लेना योगी का लक्ष्य नहीं है। योगी बटते हैं कि योगी के अतिरिक्त अन्य सब मानो मुक्तान्त हैं—पाने-बने के मुक्तान्त आनी तनी के मुक्तान्त आने लड़के-बच्चों के मुक्तान्त शय-मिसे क

गुलाम, स्वदेशवासियो के गुलाम, नाम-यश के गुलाम, जलवायु के गुलाम, इस ससार के हज़ारो विषयो के गुलाम । जो मनुष्य इन बन्वनों मे से किसीमे भी नही फँसें, वे ही यथार्थ मनुष्य हैं—यथार्थ योगी है ।

इहैव तैजित सर्गो येषा साम्ये स्थित मनः ।

निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥^१

—‘जिनका मन साम्यभाव मे अवस्थित है, उन्होंने यही ससार पर जय प्राप्त कर ली है। ब्रह्म निर्दोष और समभावापन्न है, इसलिए वे ब्रह्म मे अवस्थित हैं।’

प्रश्न—क्या योगी जाति-भेद को विशेष आवश्यक समझते हैं ?

उत्तर—नही, जाति-विभाग तो उन लोगो को, जिनका मन अभी अपरिपक्व है, शिक्षा प्रदान करने का एक विद्यालय मात्र है।

प्रश्न—इस समाधि-तत्त्व के साथ भारत की गर्म जलवायु का तो कुछ सम्बन्ध नही है ?

उत्तर—मैं तो ऐसा नही समझता । कारण, समुद्र-धरातल से पन्द्रह हज़ार फीट की ऊँचाई पर, सुमेरु के समान जलवायुवाले हिमालय मे ही तो योगविद्या का उद्भव हुआ था ।

प्रश्न—ठण्डी जलवायु मे क्या योग मे सिद्धि प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर—हाँ, अवश्य हो सकती है। और ससार मे इसकी प्राप्ति जितनी सम्भव है, उतनी सम्भव और कुछ भी नही है। हम कहते है, आप लोग—आपमें से प्रत्येक, जन्म से ही वेदान्ती है। आप अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त मे ससार की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने एकत्व की घोषणा कर रहे हैं। जब कभी आपका हृदय ससार के कल्याण के लिए उन्मुख होता है, तभी आप अनजान मे सच्चे वेदान्तवादी हो जाते हैं। आप नीतिपरायण है, पर यह नही जानते कि आप क्यो नीतिपरायण हो रहे हैं। एकमात्र वेदान्त दर्शन ही नीति-तत्त्व का विश्लेषण कर मनुष्य को ज्ञानपूर्वक नीतिपरायण होने की शिक्षा देता है। वह सब घर्मों का सारस्वरूप है।

प्रश्न—आपके मत मे क्या हम पाश्चात्यो मे ऐसा कुछ असामाजिक भाव है, जिसके कारण हम इस तरह बहुवादी और भेदपरायण बन रहे हैं, और जिसके अभाव के कारण प्राच्य देश के लोग हमसे अधिक सहानुभूतिसम्पन्न हैं ?

उत्तर—मेरे मत में पाश्चात्य जाति अधिक निर्दय स्वभाव की है और प्राण्य देश के लोग सब मूर्तों के प्रति अधिक दयासम्पन्न हैं। परन्तु इसका कारण यही है कि आपकी सम्पत्ता बहुत ही आधुनिक है। किसीके स्वभाव को दयासे बनाने के लिए समय की आवश्यकता होती है। आपमें शक्ति काफ़ी है परन्तु जिस मात्रा में शक्ति का संभ्रम हो रहा है, उस मात्रा में हृदय का विकास नहीं हो पा रहा है। विशेषकर मन संयम का अभ्यास बहुत ही अल्प परिमाण में हुआ है। आपको साधु और सान्त्व प्रकृति बनने में बहुत समय लगेगा। पर भारतवासियों के प्रत्येक एक-बिन्दु में यह भाव प्रकाशित हो रहा है। यदि मैं भारत के किसी गाँव में जाकर वहाँ के लोगों की राजनीति की शिक्षा देनी चाहूँ तो वे उसे नहीं समझेंगे। परन्तु यदि मैं उन्हें वेदान्त का उपदेश दूँ तो वे कहेंगे 'हाँ स्वामी जी अब हम आपकी बात समझ रहे हैं—आप ठीक ही कह रहे हैं। आज भी भारत में सर्वत्र यह वैराग्य या अनासक्ति का भाव देखने में आता है। आज हमारा बहुत पतन ही गया है परन्तु अभी भी वैराग्य का प्रमाण इतना अधिक है कि राजा भी अपने राज्य को त्यागकर, साधु में कुछ भी न लेता हुआ देश में सर्वत्र पर्यटन करेगा।

वहीं कहीं पर गाँव की एक साधारण लड़की भी अपने घरके से दूर काठले समय कहती है—मुझे वैराग्य का उपदेश मत सुनाओ मेरा घरला ठक 'सोझू' 'सोझू' कह रहा है। इन लोगों के पास जाकर उनसे मार्तण्डास कीजिए और उनसे पूछिए कि जब तुम इस प्रकार 'सोझू' कहते हो तो फिर उस पत्थर को प्रणाम क्यों करते हो? इसके उत्तर में वे कहेंगे आपकी दृष्टि में तो धर्म एक मतवादा नाम है पर हम तो धर्म का अर्थ प्रत्यक्षानुभूति ही समझते हैं। उनमें से कोई धामर नहीगा 'मैं तो तभी यथार्थ वेदान्तवादी होऊँगा जब सारा संसार मेरे सामने से अन्तर्हित हो जायगा जब मैं धर्म के दर्शन कर लूँगा। जब तक मैं उस स्थिति में नहीं पहुँचता तब तक मुझमें और एक साधारण जन व्यक्ति में कोई अन्तर नहीं है। यही कारण है कि मैं प्रस्तर-मूर्ति की उपासना कर रहा हूँ मन्दिर में जाता हूँ जिससे मुझे प्रत्यक्षानुभूति ही प्राप्त। मैंने वेदान्त का धर्म्य किया तो है, पर मैं अब उस वेदान्त प्रतिपादक आत्म-वत्स को देखना चाहता हूँ—उसका प्रणय अनुभव कर सना चाहता हूँ।

वाम्बेवरी शम्भरी छात्रव्याख्याकीसलम्।

बहुष्यं विदुषो तद्विमुक्तये न तु मुक्तये॥^१

—‘धाराप्रवाह रूप से मनोरम सद्वाक्यों की योजना, शास्त्रों की व्याख्या करने के नाना प्रकार के कौशल—ये केवल पण्डितों के आमोद के लिए ही हैं, इनके द्वारा मुक्ति-लाभ की कोई सम्भावना नहीं है।’ ब्रह्म के साक्षात्कार से ही हमें उस मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—आध्यात्मिक विषय में जब सर्वमाधारण के लिए इस प्रकार की स्वाधीनता है, तो क्या इस स्वाधीनता के साथ जाति-भेद का मानना मेल खाता है ?

उत्तर—कदापि नहीं। लोग कहते हैं कि जाति-भेद नहीं रहना चाहिए, इतना ही नहीं, बल्कि जो लोग भिन्न भिन्न जातियों के अन्तर्गत हैं, वे भी कहते हैं कि जाति-विभाग कोई बहुत उच्च स्तर की चीज नहीं है। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यदि तुम इससे अच्छी कोई अन्य वस्तु हमें दो, तो हम इसे छोड़ देंगे। वे पूछते हैं कि तुम इसके बदले हमें क्या दोगे ? जाति-भेद कहाँ नहीं है, बोलो ? आप भी तो अपने देश में इसी प्रकार के एक जाति-विभाग की सृष्टि करने का प्रयत्न सर्वदा कर रहे हैं। जब कोई व्यक्ति कुछ अर्थ संग्रह कर लेता है, तो वह कहने लगता है कि ‘मैं भी तुम्हारे चार सौ घनिकों में से एक हूँ।’ केवल हमी लोग एक स्थायी जाति-विभाग का निर्माण करने में सफल हुए हैं। अन्य देशवाले इस प्रकार के स्थायी जाति-विभाग की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु वे सफल नहीं हो पा रहे हैं। यह सच है कि हमारे समाज में काफी कुसंस्कार और बुरी बातें हैं, पर क्या आपके देश के कुसंस्कारों तथा बुरी बातों को हमारे देश में प्रचलित कर देने से ही सब ठीक हो जायगा ? जाति-भेद के कारण ही तो आज भी हमारे देश के तीस करोड़ लोगों को खाने के लिए रोटी का एक टुकड़ा मिल रहा है। हाँ, यह सच है कि रीति-नीति की दृष्टि से इसमें अपूर्णता है। पर यदि यह जाति-विभाग न होता, तो आज आपको एक भी सस्कृत ग्रन्थ पढ़ने के लिए न मिलता। इसी जाति-विभाग के द्वारा ऐसी मजबूत दीवाली की सृष्टि हुई थी, जो शत शत बाहरी चढाइयों के बावजूद भी नहीं गिरी। आज भी वह प्रयोजन मिटा नहीं है, इसीलिए अभी तक जाति-विभाग बना हुआ है। सात सौ वर्ष पहले जाति-विभाग जैसा था, आज वह वैसा नहीं है। उस पर जितने ही आघात होते गये, वह उतना ही दृढ़ होता गया। क्या आप यह नहीं जानते कि केवल भारत ही एक ऐसा राष्ट्र है, जो दूसरे राष्ट्रों पर विजय प्राप्त करने अपनी सीमा से बाहर कभी नहीं गया ? महान् सम्राट् अशोक यह विशेष रूप से कह गये थे कि उनके कोई भी उत्तराधिकारी परराष्ट्र विजय के लिए प्रयत्न न करें। यदि कोई अन्य जाति हमारे यहाँ प्रचारक भेजना चाहती है, तो भेजे, पर वह हमारी वास्तविक सहायता ही करे, जातीय सम्पत्ति-

स्वरूप हमारा जो परम-भाव है उसे क्षति न पहुँचाये। ये सब विभिन्न जातियों हिन्दू जाति पर विजय प्राप्त करने के लिए क्यों आयीं? क्या हिन्दुओं ने अन्य जातियों का कुछ अनिष्ट किया था? बस्कि जहाँ तक गम्भय था उन्होंने संसार का उपकार ही किया था। उन्होंने संसार को विज्ञान दर्शन और परम की शिक्षा दी तथा संसार की अनेक असम्य जातियों को सम्य बनाया। परन्तु उसके बदले में उनको क्या मिला?—रक्तपात! अत्याचार!! और दुष्ट 'काफिर' यह धूम नाम!!! वर्तमान काल में भी पाश्चात्य व्यक्तियों द्वारा लिखित भारत सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़कर देखिए तथा वहाँ (भारत में) भ्रमण करके देखिए जो शोक गये थे उनके द्वारा लिखित आख्यायिकाओं को पढ़िए। आप देखेंगे उन्होंने भी हिन्दुओं को 'हिन्दन' कहकर गाधियाँ दी हैं। मैं पूछता हूँ, भारतवासियों ने ऐसा कौन सा अनिष्ट किया है जिसके प्रतिशोध में उनके प्रति इस प्रकार की संछन्नपूर्ण बातें कही जाती हैं?

प्रश्न—सम्यता के विषय में वेदास्त की क्या पारना है?

उत्तर—आप दार्शनिक लोग हैं—आप यह नहीं मानते कि हमारे की बौद्धि पास रहने से ही मनुष्य मनुष्य में कुछ भेद उत्पन्न ही जाता है। इन सब कल-कारखानों और पढ़-बिखानों का मुख्य क्या है? उनका तो बस एक ही फल देखने में आता है—वे सर्वत्र ज्ञान का विस्तार करते हैं। आप जमाव अथवा दारिद्र्य की समस्या को हल नहीं कर सके बस्कि आपने तो जमाव की मात्रा और भी बढ़ा दी है। ग्रन्थों की सहायता से 'दारिद्र्य-समस्या' का कभी समाधान नहीं हो सकता। उनके द्वारा जीवन-संग्राम और भी तीव्र हो जाता है। प्रतिपे-दिता और भी बढ़ जाती है। पढ़-मकृति का क्या कोई स्वतन्त्र मूल्य है? कोई व्यक्ति यदि तार के माध्यम से बिजली का प्रवाह भेज सकता है तो आप उसी समय उसका स्मारक बनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। क्यों! क्या प्रकृति स्वयं यह कार्य आठों बार नित्य नहीं करती? प्रकृति में सब कुछ क्या पहले से ही विद्यमान नहीं है? आपको उसकी प्राप्ति हुई भी तो उससे क्या काम? वह तो पहले से ही वहाँ वर्तमान है। उसका एकमात्र मूल्य यही है कि वह हमें नीतर से उन्नत बनाता है। यह जगत् मानो एक व्यायामशाला के सपूत्र है—इसमें जीवात्माएँ अपने अपने कर्म के द्वारा अपनी अपनी उन्नति कर रही हैं और इसी उन्नति के फलस्वरूप हम देवस्वरूप या ब्रह्मस्वरूप ही जाते हैं। बत किंच नियम में ईश्वर की कितनी अभिव्यक्ति है यह जानकर ही उस विषय का मूल्य या सार निर्धारित करना चाहिए। सम्यता का अर्थ है, मनुष्य में इसी ईश्वरत्व की अभिव्यक्ति।

प्रश्न—क्या बौद्धों में भी किसी प्रकार का जाति-विभाग है ?

उत्तर—बौद्धों में कभी कोई विशेष जाति-विभाग नहीं था, और भारत में बौद्धों की संख्या भी बहुत थोड़ी है। बुद्ध एक समाज-सुधारक थे। फिर भी मैंने बौद्ध देशों में देखा है, वहाँ जाति-विभाग की सृष्टि करने के बहुत प्रयत्न होते रहे हैं, पर उसमें सफलता नहीं मिली। बौद्धों का जाति-विभाग वास्तव में नहीं जैसा ही है, परन्तु मन ही मन वे स्वयं को उच्च जाति मानकर गर्व करते हैं।

बुद्ध एक वेदान्तवादी सन्यासी थे। उन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की थी, जैसे कि आजकल नये नये सम्प्रदाय स्थापित होते हैं। जो सब भाव आजकल बौद्ध धर्म के नाम से प्रचलित हैं, वे वास्तव में बुद्ध के अपने नहीं थे। वे तो उनसे भी बहुत प्राचीन थे। बुद्ध एक महापुरुष थे—उन्होंने इन भावों में शक्ति का संचार कर दिया था। बौद्ध धर्म का सामाजिक भाव ही उसकी नवीनता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय ही सदा से हमारे आचार्य रहे हैं। उपनिषदों में से अधिकांश तो क्षत्रियों द्वारा रचे गये हैं, और वेदों का कर्मकाण्ड भाग ब्राह्मणों द्वारा। समग्र भारत में हमारे जो बड़े बड़े आचार्य हो गये हैं, उनमें से अधिकांश क्षत्रिय थे, और उनके उपदेश भी बड़े उदार और सार्वजनीन हैं, परन्तु केवल दो ब्राह्मण आचार्यों को छोड़कर शेष सब ब्राह्मण आचार्य अनुदार भावसम्पन्न थे। भगवान् के अवतार के रूप में पूजे जानेवाले राम, कृष्ण, बुद्ध—ये सभी क्षत्रिय थे।

प्रश्न—सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र—ये सब क्या तत्त्व की उपलब्धि में सहायक हैं ?

उत्तर—तत्त्व-साक्षात्कार ही जाने पर मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है। विभिन्न सम्प्रदाय, अनुष्ठान, शास्त्र आदि की वही तक उपयोगिता है, जहाँ तक वे उस पूर्णत्व की अवस्था में पहुँचने के लिए सहायक हैं। परन्तु जब उनसे कोई सहायता नहीं मिल पाती, तब अवश्य उनमें परिवर्तन करना चाहिए।

सक्ता. कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।

कुर्याद्विद्वास्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसप्रहम् ॥

न बुद्धिमेदं जनयेदज्ञाना कर्मसगिनाम्।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्त समाचरन् ॥^१

—अर्थात् 'ज्ञानी व्यक्ति को कभी भी अज्ञानी की अवस्था के प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए और न उनकी अपनी अपनी साधन-प्रणाली में उनके विश्वास

को नष्ट ही करना चाहिए बल्कि ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि वह समझी ठीक ठीक मार्ग प्रदर्शित करे, जिससे वे उस अवस्था में पहुँच जायें जहाँ वह स्वयं पहुँचा हुआ है।

प्रश्न—वेदान्त व्यक्तित्व (individuality) और नीतिशास्त्र की व्याख्या किस प्रकार करता है ?

उत्तर—वह पूर्ण ब्रह्म यथार्थ अविभाज्य व्यक्तित्व ही है—माया द्वारा उसने पृथक् पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। कर्मल ऊपर से ही इस प्रकार का बोध हो रहा है पर वास्तव में वह सर्वत्र वही पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है। वास्तव में सत्ता एक है पर माया के कारण वह विभिन्न स्मृतियों में प्रतीत हो रही है। यह समस्त भेद-बोध माया में है। पर इस माया के भीतर भी सर्वत्रा सची एक ही और लौट जान की प्रवृत्ति बनी हुई है। प्रत्येक छन्द के समस्त नीतिशास्त्र और समस्त आचरणशास्त्र में यही प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है क्योंकि यह ही जीवात्मा का स्वभावगत प्रयोजन है। यह सची एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रही है—और एकत्व नाम के इस संघर्ष को हम नीतिशास्त्र और आचरणशास्त्र कहते हैं। इसीलिए हमें सर्वत्रा उन्हें अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न—नीतिशास्त्र का अधिकतम भाग क्या विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को ही लेकर नहीं है ?

उत्तर—नीतिशास्त्र एकदम यही है। पूर्ण ब्रह्म कभी माया की सीमा के भीतर नहीं आ सकता।

प्रश्न—आपने कहा कि 'मैं' ही वह पूर्ण ब्रह्म है—मैं आपसे पूछनीवाला था कि इस 'मैं' या 'अहं' का कोई ज्ञान रहता है या नहीं ?

उत्तर—यह 'अहं' या 'मैं' सची पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, और इस अभिव्यक्ति द्वारा मैं उसमें जो प्रकाश-सक्ति कार्य कर रही है उसीको हम 'ज्ञान' कहते हैं। इसीलिए उस पूर्ण ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप में 'ज्ञान' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है क्योंकि वह पुनर्विस्था जो इस सापेक्ष ज्ञान के परे है।

प्रश्न—वह सापेक्ष ज्ञान क्या पूर्ण ज्ञान के अन्तर्गत है ?

१ अंग्रेजी के individual शब्द में 'अ-विभाज्य' और 'व्यक्ति' दोनों भाव निहित हैं। स्वामी जी जब उत्तर में कहते हैं कि 'ब्रह्म ही यथार्थ individual है' तब प्रथमोक्त भाव को अर्थात् अपचय-अपचय-हीन अविभाज्यता को वे व्यक्त करते हैं। फिर वे कहते हैं कि उस सत्ता में माया के कारण पृथक् पृथक् व्यक्ति के आकार धारण किये हैं। य

उत्तर—सुकृत द्वारा। सुकृत दो प्रकार के हैं सकारात्मक और नकारात्मक। 'चोरी मत करो'—यह नकारात्मक निर्देश है, 'परोपकार करो'—यह सकारात्मक है।

प्रश्न—परोपकार उच्च अवस्था में क्यों न किया जाय, क्योंकि निम्न अवस्था में वैसा करने से साधक भवबन्धन में पड़ सकता है ?

उत्तर—प्रथम अवस्था में ही इसे करना चाहिए। आरम्भ में जिसे कोई कामना रहती है, वह भ्रान्त होता है और बन्धन में पड़ता है, अन्य लोग नहीं। धीरे धीरे यह विलकुल स्वाभाविक बन जायगा।

प्रश्न—स्वामी जी ! कल रात आपने कहा था, 'तुममें सब कुछ है।' तब यदि मैं विष्णु जैसा बनना चाहूँ, तो क्या मुझे केवल इस मनोरथ का ही चिन्तन करना चाहिए अथवा विष्णु रूप का ध्यान करना चाहिए ?

उत्तर—सामर्थ्य के अनुसार इनमें से किसी मार्ग का अनुसरण किया जा सकता है।

प्रश्न—आत्मानुभूति का साधन क्या है ?

उत्तर—गुरु ही आत्मानुभूति का साधन है। 'गुरु बिनु होइ कि ज्ञान।'।

प्रश्न—कुछ लोगों का कहना है कि ध्यान लगाने के लिए किसी पूजा-गृह में बैठने की आवश्यकता नहीं है। यह कहाँ तक ठीक है ?

उत्तर—जिन्होंने प्रभु की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उनके लिए इसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन औरों के लिए है। किन्तु साधक को सगुण ब्रह्म की उपासना से ऊपर उठकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर अग्रसर होना चाहिए, क्योंकि सगुण या साकार उपासना से मोक्ष नहीं मिल सकता। साकार के दर्शन से आपको सासारिक समृद्धि प्राप्त हो सकती है। जो माता की भक्ति करता है, वह इस दुनिया में सफल होता है, जो पिता की पूजा करता है, वह स्वर्ग जाता है, किन्तु जो साधु की पूजा करता है, वह ज्ञान तथा भक्ति लाभ करता है।

प्रश्न—इसका क्या अर्थ है क्षणमिह संज्जन सगतिरेका आदि—'सत्सग का एक क्षण भी मनुष्य को इस भवलोक के परे ले जाता है' ?

उत्तर—सच्चे साधु के सम्पर्क में आने पर सत्पात्र मुक्तावस्था प्राप्त कर लेता है। सच्चे साधु विरले होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव इतना होता है कि एक महान् लेखक ने लिखा है, 'पाखंड वह कर है, जो दुष्टता सज्जनता को देती है।' दुष्ट जन सज्जन होने का ढोंग करते हैं। किन्तु अवतार कपाल-मोचन होते हैं, अर्थात् वे लोगों का दुर्भाग्य पलट सकते हैं। वे मारे विश्व को हिला सकते

प्रश्न—क्या गीता में श्री कृष्ण के विश्व रूप में जिस विश्व ऐश्वर्य का वर्णन कराया गया है वह श्री कृष्ण के रूप में निहित अम्य सद्गुण उपाधियों के बिना गोपियों से उनके सम्बन्ध में व्यक्त प्रेम मात्र के प्रकाश से स्पष्टतर है ?

उत्तर—विश्व ऐश्वर्य के प्रकाश की अपेक्षा निरन्तर ही वह प्रेम हीनतर है जो प्रिय के प्रति भगवत्प्रभावना से रहित हो। यदि ऐसा न होता तो हाङ्-मांस के शरीर से प्रेम करनेवासे सभी भोग मोक्ष प्राप्त कर लेते।

८

(गुरु, अवतार, योग, अथ सेवा)

प्रश्न—वेदान्त के अन्त तक कैसे पहुँचा जा सकता है ?

उत्तर—अवधान मन और निश्चिन्तासेन द्वारा। किसी सद्गुरु से ही अवधान करना चाहिए। चाहे कोई नियमित रूप से शिष्य न हुआ हो पर अमर जिज्ञासु सुपात्र है और वह सद्गुरु के शिष्यों का अवधान करता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

प्रश्न—सद्गुरु कौन है ?

उत्तर—सद्गुरु वह है, जिसे गुरु-परम्परा से आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त हुई है। अध्यात्म गुरु का कार्य बड़ा कठिन है। शिष्यों के पापों को स्वयं अपने ऊपर लेना पड़ता है। कम अनुसृत स्वस्थियों के पतन की पूरी आसंका रहती है। यदि धार्मिक पीड़ा मात्र हो तो उसे अपने को आत्मज्ञान समझना चाहिए।

प्रश्न—क्या अध्यात्म गुरु जिज्ञासु की सुपात्र नहीं बना सकता ?

उत्तर—कोई अवतार बना सकता है। साधारण गुरु नहीं।

प्रश्न—क्या मोक्ष का कोई सरल मार्ग नहीं है ?

उत्तर—'प्रेम को सब सुपात्र की शार'—केवल उन लोगों के लिए आसान है, जिन्हें किसी अवतार के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो। परसहस्र कह कहा करते थे जिसका यह आविष्टी जन्म है वह किसी न किसी प्रकार से मृत वर्णन कर लेता।

प्रश्न—क्या उसके लिए योग सुषम मार्ग नहीं है ?

उत्तर—(मन्त्रादि में) आपने सब कहा समझा !—योग सुषम मार्ग ! यदि आपका मन निर्मल न होया और आप योगमार्ग पर आसक्त हों तो आपको कुछ अनौचित्य क्रियाएँ मिल जायेंगी परन्तु वे फलदायक होंगी। इसलिये मन की निर्मलता प्रथम आवश्यकता है।

प्रश्न—इसका उपाय क्या है ?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ में खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का होना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म में हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक कर्णा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—कर्णाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती है, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस में से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अतः वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपधारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यों के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यों न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नहीं कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमें कभी कभी इसकी धुँधली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हें भगवान् के रूप में जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने में सगति नहीं है।

९

(भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नों के उत्तर)

प्रश्न—पृथ्वीराज एव चंद्र जिस समय कन्नौज में स्वयंवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नहीं आ रहा है ?

उत्तर—दोनों ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र में लिखे थे। स०

हैं। सबसे कम खतरनाक भीर पूजा का सर्वोत्तम तरीका किसी मनुष्य को पूजा करना है जिसने मानव में ब्रह्म के होने का विचार प्रतिष्ठित कर लिया उसने विषम स्थायी ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया। विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार संन्यस्त जीवन तथा गृहस्थ जीवन दोनों ही शक्य हैं। केवल ज्ञान आवश्यक वस्तु है।

प्रश्न—ध्यान कहाँ करना चाहिए—शरीर के भीतर या बाहर? मन को भीतर समेटना चाहिए जबका बाह्य प्रदेश में स्थापित करना चाहिए?

उत्तर—हमें भीतर ध्यान लगाने का यत्न करना चाहिए। बाह्य तक मन के इधर-उधर भागने का सवाल है। मनीष्य कोष में पहुँचने में कम्मा समय लयेगा। अभी तो हमारा संबंध शरीर से है। जब आसन सिद्ध हो जाता है तभी मन से संबंध आरम्भ होता है। आसन सिद्ध हो जाने पर अन्तःप्रत्यक्ष निश्चय हो जाता है—और साबक चाहे जितने समय तक बैठा रह सकता है।

प्रश्न—कमी कमी अप से पकान माकूम होने लगती है। तब क्या उसकी अगह स्वाध्याय करना चाहिए, या उसी पर आरम्भ रहना चाहिए?

उत्तर—दो कारणों से अप में बकान माकूम होती है। कमी कमी मस्तिष्क थक जाता है और कमी कमी आरम्भ के परिणामस्वरूप ऐसा होता है। यदि प्रथम कारण है तो उस समय कुछ क्षण तक अप छोड़ देना चाहिए, क्योंकि हठपूर्वक अप में बने रहने से विभ्रम या विक्षिप्तावस्था आवि भा जाती है। परन्तु यदि द्वितीय कारण है तो मन को बलात् अप में लपाना चाहिए।

प्रश्न—कमी कमी अप करते समय पहले आनन्द की अनुभूति होती है लेकिन तब आनन्द के कारण अप में मन नहीं लगता। ऐसी स्थिति में क्या अप जारी रखना चाहिए?

उत्तर—हाँ वह आनन्द आध्यात्मिक साधना में साबक है। उसे रसास्वादन कहते हैं। उससे ऊपर चटना चाहिए।

प्रश्न—यदि मन इधर-उधर भागता रहे तब भी क्या देर तक अप करते रहना ठीक है?

उत्तर—हाँ उसी प्रकार जैसे मयूर किसी बबसास बोड़े की पीठ पर कोई अपना आसन जमाये रहे तो वह उस बब में कर लेता है।

प्रश्न—आपने अपने 'भक्तिपीठ' में लिखा है कि यदि कोई कमबोर आरामी योगाभ्यास का यत्न करता है तो भीर प्रतिक्रिया होती है। तब क्या किया जाय?

उत्तर—यदि आत्मज्ञान के प्रयास में मर जाना पड़े तो भय किस बात का। ज्ञानार्जन तथा भय बहुत ही वस्तुओं के लिए मरने में मनुष्य को भय नहीं होता और धर्म के लिए मरने में आप भयभीत क्यों हों?

प्रश्न—क्या जीव-सेवा मात्र से मुक्ति मिल सकती है ?

उत्तर—जीव-सेवा प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं, परोक्ष रूप से आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति प्रदान कर सकती है। किन्तु यदि आप समुचित रूप से किसी कार्य के करने की इच्छा रखते हैं, तो सम्प्रति उसे ही पूर्ण पर्याप्त समझिए। किसी भी पथ में खतरा है मुमुक्षा के अभाव का। निष्ठा का हीना आवश्यक है, अन्यथा विकास न होगा। इस समय कर्म पर जोर देना आवश्यक हो गया है।

प्रश्न—कर्म में हमारी भावना क्या होनी चाहिए—परोपकारमूलक करुणा या अन्य कोई भावना ?

उत्तर—करुणाजन्य परोपकार उत्तम है, परन्तु शिव ज्ञान से सर्व जीव की सेवा उससे श्रेष्ठ है।

प्रश्न—प्रार्थना की उपादेयता क्या है ?

उत्तर—सोयी हुई शक्ति प्रार्थना से आसानी से जाग उठती है और यदि सच्चे दिल से की जाय, तो सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं, किन्तु अगर सच्चे दिल से न की जाय, तो दस में से एक की पूर्ति होती है। परन्तु इस तरह की प्रार्थना स्वार्थपूर्ण होती है, अतः वह त्याज्य है।

प्रश्न—नर-रूपवारी अवतार की पहचान क्या है ?

उत्तर—जो मनुष्यो के विनाश के दुर्भाग्य को बदल सके, वह भगवान् है। कोई भी साधु, चाहे वह कितना भी पहुँचा हुआ क्यों न हो, इस अनुपम पद के लिए दावा नहीं कर सकता। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी पड़ता, जो रामकृष्ण को भगवान् समझता हो। हमें कभी कभी इसकी घुँघली प्रतीति मात्र हो जाती है, बस। उन्हें भगवान् के रूप में जान लेने और साथ ही ससार से आसक्ति रखने में सक्ति नहीं है।

९

(भगिनी निवेदिता के कुछ प्रश्नों के उत्तर^१)

प्रश्न—मृथ्वीराज एव चंद्र जिस समय कलौज में स्वयंवर के लिए जाने को प्रस्तुत हुए, उस समय उन्होंने किनका छद्मवेश धारण किया था—मुझे याद नहीं आ रहा है ?

उत्तर—दोनों ही भाट का वेष धारण कर गये थे।

१ ये उत्तर स्वामी जी ने सैन फ्रांसिस्को से मई २४, १९०० ई० को एक पत्र में लिखे थे। स०

प्रश्न—क्या पूम्बीराज ने संयुक्ता के साथ इसलिए विवाह करना चाहा था कि वह अश्लील स्वभाव की तथा उसके प्रतिहृदी की पुत्री थी? संयुक्ता की परिचारिका होने के लिए क्या उन्होंने अपनी एक बाली को सिखा-पड़ाकर वहाँ भेजा था? और क्या इसी बूढ़ा बाबा ने राजकुमारी के हृदय में पूम्बीराज के प्रति प्रेम का बीज अंकुरित किया था?

उत्तर—दोनों ही परस्पर के स्व-गुणों का वर्णन सुनकर तथा विनम्र बर्तन कर एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हुए थे। विनम्र-वर्धन के द्वारा नायक-नायिका के हृदय में प्रेम का संचार भारत की एक प्राचीन रीति है।

प्रश्न—गोप बाबाओं के बीच में कृष्ण का प्रतिपादन कैसे हुआ?

उत्तर—ऐसी मन्दिप्यबाबी हुई थी कि कृष्ण कंस को सिंहासन से विध्वस्त करेंगे। इस भय से कि ब्रह्म सेने के बाब कृष्ण कहीं गुप्त रूप से प्रतिपादित हों दुराचारी कंस ने कृष्ण के माता-पिता को (यद्यपि वे कंस की बहिन और बहनोई थे) कंस में डाल रखा था तथा इस प्रकार का आदेश दिया कि उस बर्य से राज में बितने बाधक पैदा होंगे उन सबको हत्या की आज्ञा दी। अत्याचारी कंस के हाथ से रक्षा करने के लिए ही कृष्ण के पिता ने उन्हें गुप्त रूप से यमुना पार पहुँचाया था।

प्रश्न—उनके जीवन के इस अध्याय की परिसमाप्ति किस प्रकार हुई थी?

उत्तर—अत्याचारी कंस के द्वारा आमन्त्रित होकर वे अपने माई बहनेव तथा अपने पाठक पिता मन्त्र के साथ राजसभा में पधारे। (अत्याचारी ने उनकी हत्या करने का वदयन रखा था।) उन्होंने अत्याचारी का बध किया। किन्तु स्वयं राजा न बनकर कंस के निकटतम छत्तारबिकारी को उन्होंने राजसिंहासन पर बैठाया। उन्होंने कनी कर्म के फल को स्वयं नहीं सोया।

प्रश्न—इस समय की किसी नाटकीय घटना का उल्लेख क्या आप कर सकते हैं?

उत्तर—इस समय का जीवन अश्लील घटनाओं से परिपूर्ण था। वास्तव वास्तव में वे अत्यन्त ही बचक थे। बचकता के कारण उनकी गोपिका माता ने एक दिन उन्हें बधिमन्थन की रस्मी से बाँधना चाहा था। किन्तु अनेक उन्मिषों को छोड़कर भी वे उन्हें बाँधने में समर्थ न हुई। तब उनकी दृष्टि तुली और उन्होंने देखा कि जिनकी वे बाँधने जा रही हैं उनके शरीर में समस्त ब्रह्माण्ड अविच्छिन्न है। डरकर काँपती हुई वे उनकी स्तुति करने लगीं। तब भगवान् ने उन्हें पुनः माया से आबुद्ध किया और एकमात्र बही बाधक उन्हें दृष्टिपोचर हुआ।

देवश्रेष्ठ ब्रह्मा को यह विश्वास न हुआ कि परब्रह्म ने ही गोप बालक का रूप धारण किया है। इसलिए परीक्षा के निमित्त एक दिन उन्होंने समस्त गायों को तथा गोप बालकों को चुराकर एक गुफा में निद्रित कर रखा। किन्तु वहाँ से लौटकर उन्होंने देखा कि वे ही गायें तथा गोप बालक कृष्ण के चारों ओर विद्यमान हैं। वे फिर उनको भी चुरा कर ले गये एवं उन्हें भी छिपाकर रखा। किन्तु लौटने पर फिर उन्हें वे ही ज्यों के त्यों दिखायी देने लगे। तब उनके ज्ञान-नेत्र खुले, उन्होंने देखा कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड तथा सहस्र सहस्र ब्रह्मा कृष्ण की देह में विराजमान हैं।

कालिय नाग ने यमुना के जल को विषाक्त कर डाला था, इसलिए उन्होंने उसके फन पर नृत्य किया था। उनके द्वारा इन्द्र की पूजा वन्द किये जाने के फल-स्वरूप कुपित होकर इन्द्र ने जब इस प्रकार प्रबल वेग से जल वरसाना प्रारम्भ किया कि समस्त ब्रजवासी मानो उसमें डूबकर मर जायेंगे, तब कृष्ण ने गोवर्धन-धारण किया। कृष्ण ने एक अगुली से छत्र की तरह गोवर्धन पर्वत को ऊपर उठाकर धारण किया, और उसके नीचे सभी ने आश्रय लिया।

बाल्यकाल से ही वे नाग-पूजा तथा इन्द्र-पूजा के विरोधी थे। इन्द्र-पूजा एक वैदिक अनुष्ठान है। गीता में सर्वत्र यह स्पष्ट है कि वे वैदिक अनुष्ठानों के पक्षपाती नहीं थे।

अपने जीवन में इसी समय उन्होंने गोपियों के साथ लीला की थी। उस समय उनकी आयु ग्यारह वर्ष की थी।

अनुक्रमणिका

- अक्षर-प्रकृति २८४
 अक्षर १५-५ उनका भोजन ८३
 उनका सुदृढ़ सिंहासन ५९ उनकी मूल विशेषता ५९ उनकी व्यवसाय बुद्धि ५९ और अमेरिकन ८८ ९
 ९६ और फ्रांसीसी ९ प्राप्ति ७९,
 १५५ तथा मुसलमान २८९ पुरुष
 ६७ सज्जन १९ सिंघिया १९
 अक्षरी अनुवाद ३६६ जीवार ११४
 दैनिक ३६४ पड़नेवाले १५५
 बोलनेवाली प्राप्ति २७६ भाषा
 ९ (पा टि) १४९, २९१
 मित्र १९ सम्प्रकाश १२४
 नाक्य २७४ सासन १२५ शिक्षा
 ३२१ सम्प्रदाय का निर्माण २८९
 सरकारी कर्मचारी ४८
 अक्षर आत्म-विनाश २८६
 अक्षरविज्ञान ५, २४२, २५४ २८७
 २९५ और अक्षर विधि-विधान
 २४२ बौद्धिक २९३ विश्ववासी
 देश २५६ (बेसिए कुर्वंस्कार)
 अक्षर ९३
 'अक्षर एकाग्रता' ३२३
 अक्षर ब्रह्म २१५
 अक्षर २१३ ३५१ कुम्भ ३
 भारतीय २६ परीक्षा २५७
 पुरुष ५१
 अक्षर स्मृति ७२
 'अक्षर' ५३ (बेसिए धूम)
 अक्षर ४१ ३७४ उसका कारण
 ४१ उसका विरोध २१८
 अक्षर ३४३
 अक्षर ३७ २७४
 अक्षर २७ महासागर २८५
 अक्षर २१५
 अक्षर और भविष्य २९५
 अक्षर ४३ सक्ति १३९
 अक्षर १६२
 अक्षर ३३६
 अक्षर १८१ आत्म ९ (पा
 टि), उसकी उपस्थिति २१८
 और अक्षर ३४ और विधि-विधान
 ३५९ मात्र ३३६, ३३८, ३७१
 तत्त्व ३३७ ३७४ मत ३३७
 ३५९ सुख सारक्य में ३४
 सत्य ३३४ ३५
 अक्षर ३७४-७५, १५ अक्षर
 का विरोधी नहीं ३८३
 अक्षर १ २५३ २८१ ३८३,
 ३८६ और उनका कथन २८२
 कष्ट १ ८
 अक्षर स्वामी ३५५
 अक्षर और अक्षर १
 सुख ३९८ तत्त्व १५१ बर्तन
 १२ भाषी ३१ २५९ विद्या
 १३५, १४२ विद्य १६५
 अक्षर-कार्य १२६, ३४७
 अक्षर ३२४ स्वप्न १६२
 अक्षर ३२९
 अक्षर ३७४
 अक्षर ३९२
 'अक्षर' ३५९
 अक्षर १८४
 अक्षर १५९
 अक्षर भाषा २२ -विद्य ३६,
 १२ १५१ १८६, २१७

अन्नदान ६१
 अपरा १५९, एव परा विद्या मे भेद
 १५९, विद्या ३८८
 अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य २८३
 अपसम्मोहन ३८८
 'अपील एवलाश' २७, ३५, २४८
 अपोलो क्लव २३६
 अफगानिस्तान ६३, १२३
 अफ्रीका ४९, ६७, ९१, १११
 अफ्रीदी ६५
 'अभाव' से 'भाव' की उत्पत्ति ३८०
 अभिव्यक्ति ३९६
 अभीष्ट लक्ष्य, मानवीय वधुता ३८
 अमगल ३७५-७६
 अमरावती ९३
 अमरीकी जनता २२७, प्रेस २४१
 (पा० टि०)
 अमृत का सेतु ३५०
 अमृत पुत्र ३५१
 अमृतवाञ्छार ३३९
 अमेरिकन २७, ७५, ८१, ८९, २७८,
 और पैसा २७०, कन्याएँ ९०,
 जाति २४६, ढग २२९, परिवार
 ९०, पुरुष २६५, भक्त २२०,
 मित्र १९३ (पा० टि०), लडकी
 २६३, शिष्य २०३ (पा० टि०),
 सवाददाता २२९ (पा० टि०),
 समाचारपत्र २७ (पा० टि०),
 स्वातन्त्र्य घोषणा-दिवस २०३
 (पा० टि०)
 अमेरिका ६, १४, ४९, ६३, ६९,
 ७८-९, ८१, ८५-६, ९१, २२२,
 २३८, २४८, २६०, २६५, २७०,
 २८०, २८५, २८९, ३२५, ३४१-
 ४२, ३५४, ३६६, ३७५, ३७८-
 ८०, उसका अहकार २१७, उसके
 आदिवासी २४१, और भारत
 २१७, महाद्वीप १०१, वहाँ
 स्त्री-पूजा का दावा २६५, वाले
 ९५, २३८, वासी २४९, ३४०,

विरोधी २७५, सयुक्त राज्य २२७
 (पा० टि०)
 अमेरिकी, उनकी नारी के प्रति सम्मान-
 भावना २७७, जाति २७७,
 वैज्ञानिकी २८३, व्याख्यान-मंच
 २७६, स्त्रियाँ १९
 अम्बापाली १५४
 अरब ९२, १०७, १३४, २८५,
 जाति ९१, निवासी २७, मरु-
 भूमि १०५-६, वाले २८५
 अरबी १०७, खलीफा १०७
 अर्जुन ५०, ५४, १४३, ३३०-३२,
 ३४९, ३५७-५८
 अलीपुर ३५४
 अलौकिक ज्ञान-प्राप्ति १३९, तथा
 लौकिक १६०, सिद्धियाँ ३९८
 अल्मोडा १८९ (पा० टि०), १९३
 (पा० टि०), ३६५
 अवतार ३४८, उसकी पहचान ४०१,
 पुरुष ३४८
 अवतारत्व १६०
 अवस्था-भेद ३१७
 अवस्था, सात्त्विक ५४
 'अविद्या' १३५, अज्ञान १००
 अशुभ, अहिर्मन २८१, उसका इलाज
 २९२, उसका कारण २९२-९३,
 उसका फल १७३ (देखिए असत्)
 अशोक, धर्मसम्राट् ८६, महान् सम्राट्
 ३९३, महाराज ६४, सम्राट्
 ७४, २८४
 अश्वमेध १३५
 अष्टाग योग १५८
 असत् १९६-९७, २४२, ३७४, उससे
 सत् का आविर्भाव नहीं ११६,
 प्रवृत्ति ३७४ (देखिए अशुभ)
 असीरियन जाति ३००
 असुर कन्या १०७, जाति १०६, वश
 १०७, विजयी १०४, सेना १०६
 'अह' २५८-५९, ३७४, ३९६, क्षुद्र
 २६०

अहंकार ३४ २२ ३२८
 अहिंसा ५१
 अहिंसा परमो धर्मः २८२
 आकाश और प्राण-तत्त्व ३८२
 आगरा २२४
 आचरण-तत्त्व ११७ ३९६
 आचार ५८ और वास्तव्य शासन
 शक्ति १३७ और रीति १४९
 नैतिक २७५ विचार ६ व्यक्त
 हार ३२९ शास्त्र २८३-८४
 संहिता २७४ स्त्री सम्बन्धी और
 विभिन्न देश ९६
 आचार ही पहला धर्म ७२
 आत्म उसका अर्थ ३७१ -वर्षा ३५
 -चिन्तन २८ -जमी १७३ ज्ञान
 ११९ ४ -सत्य २१५ ३५४
 ३८७ ३९२ त्याग २३४ निर्भर
 ३७१ रक्षा और धर्म रक्षा १ ९
 रक्षा और राज्य की सृष्टि १ ३
 विद् १ ९ -सृष्टि ४ १ -संयम
 २३३ -सम्मान की भावना २२३
 -सम्प्राप्त विद्या ३८७ -साक्षात्कार
 ११९ स्वल्प २१३
 आत्मा १६ २५ ६ ३२, ३६ ४
 ६३ ६८, १२६ १२८ २९ १४४
 १७३ १७९ १९९ २ २ २ ५
 २२ २४ २४७ २५३ २५८,
 २६६, २६९ २७८ २९२, ३५
 ३५८ अनात्म ३१ अपरिवर्तित
 ३१ अमृत का सेतु ३५ अवि
 नश्वर १२ अविभाग्य २५८
 इन्द्रियातीत ४ ईश्वर का शरीर
 २२ उसका अन्तर्निहित विषयत्व
 २४२ उसका एक से दूसरे शरीर
 में प्रवेश २७ उसका देहात्तर
 मनन २७२ उसका प्रकाश ४
 २२२ उसका प्रभाव २५८
 उसकी उपलब्धि ३ उसकी रक्षा
 ३७ उसकी रोग ३७९ उसकी

देहात्तर प्राप्ति २६८ उसकी
 प्रकृति १५७ उसकी मुक्ति २६८
 उसकी व्यक्तिगत सत्ता २६८
 उसके अस्तित्व २९६ उसके आवा-
 मदन का सिद्धांत २८ ३७९-८
 उसके अन्तर्गत में विश्वास २९
 एक मुख्य सत्ता २५७ एकात्मक
 तत्त्व २४ और अर्थ में अन्तर ३१
 और मन ४ कार्य-कारण से परे
 ३६ श्रियाहीन ३१ चिरन्तन
 नित्य ३७१ द्वारा प्रकृति-परि-
 वाह्य ३१ शरीर मन का प्रयोग
 २६७ धर्म का मूलमूल आचार
 २६७ न मन है, न शरीर २३
 नित्यमुक्त १७४ ३४४ निश्चिन्त
 २५७ परम अस्तित्व ३१ पूर्व
 २४२ प्रतिबिम्ब की भाँति अल्प
 २५७ मन तथा अर्थ से परे २६७
 मनुष्य का वास्तविक स्वरूप २६७
 महिमा मयी १९१ मानवीय २३
 किन्तुमुक्त १४४ शून्य ३१ समस्त
 ३१ सर्वगत १७४ स्वतन्त्र तत्त्व
 २९९
 आत्माओं की आत्मा २ ७
 आत्मा के पुनर्जन्म २७ २४९
 आत्मानुभूति उसका साधन ३९९
 आत्मत्वसम्प्राप्त ३८८
 आत्म १५७
 आदर्श उसकी अपेक्षित ४६
 राष्ट्रीय ६ भाव १८ बानी
 २४५ व्यक्तिगत ३७२
 आदिम अवस्था में स्वियों की स्थिति
 १ २ निवासी ६३ मनुष्य
 सत्ता च्छन-सहज १ १
 आविवाही ३६ और परमेश्वर की
 कल्पना ३५
 आधुनिक पश्चित ६३ ४ २४
 बगाड़ी १३९ विद्यालय ३५
 आध्यात्मिक असमानता १२५ उन्नति
 २४३ ३५६ उपदेशक १२

खोज २५३, चक्र १३६, जीवन २१, ज्ञान १६०, तरंग १३४, द्विगज ६, ११, ३५५, पहलू २९४, प्रतिभा २३०, प्रभाव ४१, प्रभुता १२०, प्रयोजन १५७, वाढ ३७२, भूमिका १७, मार्ग ३७९, मृत्यु २९०, यथार्थ ४३, लहर ४०, विषय ३९३, व्यक्ति ३०, शक्ति २१९, ३९८, समता ११९, समानता १२३, सहायता १६, ३६३, साक्षात्कार १२३, साधना १२४, ४००, सौन्दर्य ३७७, स्वाधीनता ५९

अनुवशिक पुरोहित वर्ग १२१

'आप भले तो जग भला' ३२०

आपद्नाता—क्षत्रिय ११०

'आपेरा हाउस' २४१

आप्त वेद ग्रन्थ ११८

आभ्यान्तरिक शुद्धि ६८

आयरिश ११४

आरती ३६७

आर० बी० स्नोडेन, कर्नल २४५

आर्ट पैलेस २३२

आर्थर स्मिथ, श्रीमती २७८

आर्य १०९-१०, ११८, २५०,

उनका उद्देश्य ११२, उनका गठन

और वर्ण ६४, उनका पारिवारिक

जीवन ११७, उनका योगदान

११६, उनकी काव्य-कल्पना

११७, उनकी दयालुता १११,

उनकी विद्या का बीज १६४,

उनकी विशेषता २६४, उनके

वस्त्र ८६, उनके सत्रघ्न में भ्रमपूर्ण

इतिहास ११०, ऋषि ११६,

एव म्लेच्छ १४०, और अमेरिका

२४२, और जगली जाति १११,

और यूनानी १३४, और-वर्णश्रम

की सृष्टि ११२, चारित्रिक विशेषता

११७, जाति ६३-४, ११६,

१३९, ३००, ३०२, जाति का

इतिहास ३६, ज्योति २६४, द्वारा आविष्कृत वेद १४०, धर्म १२२, नाटक और ग्रीक नाटक १६५, परिवार का संगठन १२२, प्रवास ३६४, महान् जाति २४६, लोग ८२, वर्ग ११८, वेदिका १९५, शान्तिप्रिय १०९, शिल्पकला १६५, सन्तान १४०, सम्प्रदाय १११-१२, १२२, समाज १४१, १४९ (पा० टि०)

आर्यसमाजी और खाद्य सबधी वाद-विवाद ७५

आर्यतर जाति १२२

आलमबाजार मठ ३३९, ३५२

आलार्सिगा ३४१, पेरुमल ३५२

आलोचना, उसके अभाव से हानि १५९

आल्प्स २५८, २६०

आवागमन १७३, उसका सिद्धान्त ३७९

आश्रम २३३, -विभाग १५३

आश्रय-दोष ७३

आसन ३६१

आसुरी शक्ति ३६

आस्ट्रिया ९९, वहाँ का बादशाह ९८

आस्ट्रेलिया ४९, ६७, १११, ११३, निवासी १५९

आहार ३१४, उसकी शुद्धता से मन शुद्ध ७२, उसके अभाव से शक्ति-ह्रास ७२, और आत्मा का सबध ७२, और उसकी तुलना ७६, और जाति ८४, और जातिगत स्वभाव ३२७, और मुसलमान ८३, और यहूदी ८३, जन्म-कर्म के भेद से भिन्नता ७५, प्राच्य में ८२, रामानुजाचार्य के अनुसार ७२, शंकराचार्य के अनुसार ७२, शब्द का अर्थ ७२, सम्बन्धी विधि-निषेध ८३, सम्बन्धी विचार ७८

आह्निक कृत्य ३१२

हार्मोन्स ६ १४ १९, ८५, ८९, ९४
 १ ८, १२४ १३३ १४९-५०
 १५३ २३५, २५१ ३६६ और
 अमेरिका ८९
 इच्छा-संभालन १९९
 इटली ६९, ८१ ९३ १ ६ १ ८
 २२४ गिवासी ९३ वहाँ के पोप
 १ ६
 इट्सकन १ ६
 'इम्बियन मिरर' ३३९ ३६४
 'इम्बिया हाउस' १४९
 इतिहास उसका अर्थ १३२
 'इती मय्दस्तो भ्रष्ट' १३७
 इन्द्र ४ ३ देवराज ३६ पृष्ठी
 ९२ पूजा ४ ३ प्रदर्शन ३६
 इन्द्रबनुय ३३४
 'इन्द्रियज्ञान' ७२
 इन्द्रिय २ ७ पाँच २९८ भोज
 अनित्य सुख ३३ स्वाद की २१८
 इमामबादा १४५
 इकाहामाद ८४
 इमनिग लुब २५४
 इष्टदेव ५५, ३६१
 इसलाम उसकी समीक्षा २८१ अर्थ
 ३७७ मठ २१८
 इस्लामी आदि ६२, ८२
 इस्लाम अर्थ १ ७ ११३-१४ १२३
 इस्लामी सम्प्रदाय १४५
 'इहोको' और 'परलोको' २१७

 ई टी स्टर्डी ३५५
 ईरान ८७ १५९
 ईरानी १३४ ३ उनके कर्म
 ८७
 ईस-केन-कठ (उपनिषद्) ३४९
 ईस-गिवा २२ प्रेम २६१ ६२
 ईस्वर २२ २८, ३३ ३८, ४१ २, १२७
 १५८, १७५, २१४ १५, २३
 २३५, २४४ २५१ २५८, २६६,
 २६४ २७९-८ ३७४-७५, ३७९

अनादि अनिश्चनीय अनन्त भाव
 ३३८ आत्मा की आत्मा २२
 आनन्द २२ उनका सार्वभौम
 पिता-भाव ३८ उनके केन्द्रीय मुख
 २४७ उपासना के लिए उपासना
 २९९ उसका अस्तित्व (सत्) २२
 उसका ज्ञाता बाह्य ३ ४ उसका
 ज्ञान (चित्) २२ उसका प्रेम ४८,
 २६२ उसका वास्तविक मंदिर
 २९७ उसका सच्चा प्रेमी २६२
 उसकी कल्पना २१ उसकी प्रथम
 अभिव्यक्ति ३ २ उसकी सत्ता
 २८२ उसके कर्म के लिए कर्म २९९
 उसके तीन रूप २६१ उसके प्रतीक
 २४८ उसके प्रेम के लिए प्रेम २९९
 उससे भिन्न व्यक्तित्व नहीं ४२
 और निकृष्ट कीट १९३ और परलोको
 ३८ और मनुष्य का उपादान ४
 और मुपित २४ और विश्व-मोक्षना
 ३३ और सृष्टि ३८ कृपा १३
 अमृत का रक्षयिता २७३ तत्व
 २२ तथा काक २७१ निरुपा
 यिक २२ निर्गुण ३ २ परम
 २२ परिभाषा २१३ पवित्र
 २५३ पाकक और संहारक २७२
 पावनता और उपासना २६९
 पूजा २१ पूर्व २४३ प्रत्येक
 वस्तु का सर्वनिष्ठ कारण २४
 प्रेम २३४ प्रेम प्रेम के लिए २६९,
 २९७ विश्वासों का ज्ञाता २४७
 वैयक्तिक ४ २९९ समुच्च २१
 २६८, २९९, ३ २, ३ ५, ३८४
 ३८८ समुच्च और निर्गुण २९७
 समुच्च रूप में तापी ३ २ सर्व-
 सत्त्वमान २४३-साक्षात्कार २८२
 सप्या २६९
 'ईस्वर का सित्तल और मनुष्य का
 भावत्व' २७८
 ईस्वरत्व उसका ज्ञान २१९ उसकी
 अभिव्यक्ति ३९४

- ईश्वरीय शक्ति १५२
 ईर्ष्या-द्वेष, जातिसुलभ १४२, प्रति-
 द्वन्दिता १६८
 ईसप की कहानियाँ २८५
 'ईसा-अनुसरण' ३४४-४५
 ईसाई, अमेरिका के २४८, आदर्श ३०२,
 उनका अत्याचार २८०, उनका ईश्वर
 २५८, उनकी आलोचना २७४,
 उनकी क्रियाशीलता ९, उनके अव-
 गुण २७३, उनके नैतिक स्वलन
 २७५, और उनका धर्म २७३,
 और मुसलमान की लड़ाई १०७,
 और मुसलमान धर्म ११२, और
 हिन्दू २९८, कैथोलिक २७१, जगत्
 १६१, डाइन २६५, देश २३५,
 २५२, २५४, देहात्मवादी १५०, धर्म
 ९२, १०६, ११२-१४, १६१, २३५-
 ३६, २४२, २४९, २५२, २५९,
 २६१, २७४, २७७, २८३-८४,
 २८६, ३०९-१०, ३८५, धर्म और
 इस्लाम ११३, धर्म और भारतवासी
 की धारणा २८५, धर्म और
 वर्तमान यूरोप ११३, धर्म की
 त्रुटि ११३, धर्म की नींव २८४,
 धर्मग्रथ ११३, धर्म-प्रचारक २७२,
 धर्म, बुद्ध धर्म से प्रभावित २८४,
 पादरी ३७, ८८, १५१, ३०२,
 पुरातनवादी २४९, प्रेम में स्वार्थी
 २६२, बनने के लिए धर्मों का
 अगीकार २४३, मत २१८,
 २५९, २७३, २८४, मिशनरी
 ३०९, ३१३, ३३१, मिशनरी,
 उनके अतिरिजित विवरण २५६,
 राष्ट्र २७३, शिक्षक २४८, शिक्षा
 २९५, सघ २७, २६५, सच्चा, एक
 सच्चा हिन्दू २१९
 ईसा मसीह ४९, २८१, ३७६,
 ३७८-७९
 ईस्ट इण्डिया १४८
 'ईस्ट चर्च' २३०
- उक्ति-संग्रह १५५
 उडवर्ड एवेन्यू २६१
 उडिया ८२
 उडीसा ८०
 उत्तराखण्ड ८६
 उत्तरी घुव १३२
 उत्तरोत्तर सत्य से सत्य पर २९७
 उद्जन ३३६, और ओषजन ३३६
 'उद्धार' २५७
 उद्धारवाद २७२
 'उद्बोधन' (पत्र) १३२, १३७, १६१
 (पा० टि०), १६७ (पा० टि०), ३३९,
 ३५६, उसका उद्देश्य १३६
 उन्नति, मानसिक १०९
 उपनिषद् १२०, १२३, १५७, ३८३,
 ३९५, कठ २४९, ३५० (पा० टि०),
 ३८८ (पा० टि०), कौषीतकी ३६०,
 तैत्तिरीय ३८८ (पा० टि०), प्रसंग
 ३५०, प्राचीनतम ३८५, बृहदारण्यक
 ३५४, मुण्डक २२२, ३५०, वाणी
 ३५०, श्वेताश्वतर ३५१ (पा० टि०),
 ३८२ (पा० टि०)
 उपयोगितावादी ३१५
 उपासक, उनका वर्गीकरण २१५
 उपासना, उसका अर्थ ३८६, प्रणाली
 ३८७, साकार ३९९
 ऊर्जा या जड़-सधारण का सिद्धान्त
 ३७९
 ऋग्वेद १९६ (पा० टि०), -प्रकाशन
 १४८, -सहिता १४८
 ऋतुपर्ण, राजा ८६
 ऋषि ६, १२०, १५०, १८६, १९७,
 २२२, २८२, उनकी परिभाषा
 १३९, ज्ञानदीप्त १९९, प्राचीन
 ३८०, मुनि १०९, १२६, मुनि,
 पूर्वकालीन ३३५, वामदेव ३६०;
 -हृदय १४१
 ऋषित्व १६०, और वेद-दृष्टि १३९

एकत्र उषका ज्ञान ३९७ उषकी
 मोर ३३३-३४ उषकी प्राप्ति
 ३९६
 एकाग्रता उषका महत्त्व ३८३ औरयोग
 ३८३
 'एडम्स पीक टु एलिफेन्टा' ३४६ ४७
 एडवर्ड कारपेन्टर ३४६ ४७
 एडा रेकार्ड २६७
 एकेस्वरवार ३६
 एथिकल एसोसियेशन ३ ३ ३
 एगिस्त्राम २३१
 एनी बिस्मल कुमारी २७९
 एनेसबेक २४५
 एगिस्कोपक बर्ब २३१
 एथियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९
 एथिया १७ ११ ३ १०८, ११२ २६
 मध्य १४ १२१ माहनर १ ५
 १ ७-८ ३०२ वाळे २३५
 एसोटेरिक बीज मठ १५१
 'एसोसियेशन हाक' २७९ २८१
 ऐन्को इण्डियन कर्मचारी १४९ समाज
 १४९
 ऐन्को सैक्सम प्राप्ति ३ २
 ऐतिहासिक पत्रेणया ३५७ सत्यानुराग
 ३५७
 'ऐस्ट्रक बोडी' ३८९
 जोकर्ड २३
 'जोकर्ड डिप्लोम' (पत्रिका) २३
 जोपर्ट (जर्मन पत्रिका) १६२
 जोकार, उषका महत्त्व ५२
 जो क्व सत् ११६, २ ७
 जोम् वत्सत् जोम् १७३-७५
 जोपनन ३३६
 जोक्षियो तद् २३५
 जोधोसिक कार्य २३ बधा २२९
 चिका २२८, २३०-३१
 जोधोसिक हाप्रान्न-स्वयंपना ९४

जोरसबेज ५९
 जंस आत्माचारी ४ २
 जस्टर बर्तवारी १ ८
 जठोनिपद् ३४९-५ (पा० टि)
 ३८८ (पा टि०)
 जथा करवका की १४५ बालक
 जोपाक की १२६ जेंड और घेर
 की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव
 की ३२७-२८ सर्व और संख्याती
 की ३२४
 जनाडा ६३
 जपौज ४ १
 जन्मसूचस ८८, १७९
 जन्माकुमारी १२
 जन्हाई महाराज ३६४
 जपिक ज्यपि ३८२
 जबीर १२३
 जमबोरी और छक्ति २२
 जस्मा और प्रेम १९१
 जर्म ५
 जर्म आत्मा का नहीं २६९ उषका
 जर्म ३७५ उषका फल अवस्थावाची
 ३३६ उषके नियम १७ उसमें
 भावना ४ १ उसे करने का बनि-
 क्षर १३८ काण्ड १२३ ३९५
 काण्ड प्राचीन १२ काण्ड विपरी
 ११८ नति १७४ निष्काम ३३
 ३५८ प्रकृति में ३१ फल ५३
 मार्ग ५६ योग १५३ वेद का
 मता १४ सक्ति १७५
 जसकता १३ १९, ७८-८ ८३ ८९
 ११४ १४९, १६८ १८५ २२४
 २६९-७ २९५, ३२१, ३३५, ३३९,
 ३६५ ३६ बायी ३६६
 जसा और प्रकृति ४३ और वस्तु ४३
 नाटक कठिनगत ४३ नाट्यीय
 युवाती में जन्त ४३ प्रकृति और
 जपार्थ बाष्पात्मिक ४३ शीतल्य की
 बनिष्पति ४३

- कलियुग ९१
 कल्पना, अन्धविश्वासभरी ३६, एव
 परिकल्पना २८, मुक्ति की २५,
 स्वतंत्रता की २५
 कवि ककण ४२
 कांग्रेस ऑफ ओरियण्टलिस्ट १६१
 कास्टाटिनोपूल १०७, शहर १०६
 कास्टेटाइन ११२
 'कांफ्रे दे लिस्तोयार दि रिलिजिओ' १६१
 'कांग्रेसनल चर्च' २३९, २४१
 कौक (Cock) ११३
 कादम्बरी ४२
 कानन्द २७, २४३, २४८-४९, २५४,
 २६२-६७, २७०, २७४-७५ (देखिए
 विवेकानन्द, स्वामी)
 'काफिर' ३९४
 काबुल १०७
 काम, उसका मापदण्ड २१३, और मोक्ष
 २०८, -काचन ३७१, -क्रोध १३२,
 -दमन ३४६, -प्रवृत्ति ३४७, -यज्ञ-
 लिप्ता १७३
 कामिनी-काचन २१७
 कारण, उसका अस्तित्व २८, -धारा
 २०८, -कार्य-विधान १७३
 कारपेन्टर, एडवर्ड ३४६-४७, साहब
 ३४७
 कार्लाइल ३२०
 कार्ल वॉन बरगेन, डॉ० २३९
 कार्य, अभीष्ट ३२१, व्यापार १९१,
 व्यावहारिक २९०
 कार्य-कारण २६, १८०, २१३, ३८४,
 उसका नियम २५, परम्परा २३-४,
 सिद्धान्त २८, वाद ११६
 काल और देश १९६
 कालिदास १६४-६५
 कालिय नाग ४०३
 कालीघाट ९१
 कालीमाई ४९
 काव्य, उसकी भाषा २२२, सिन्धु १३२
 काव्यात्मक भाव ११७
- काशी ९१, ९७, १६३
 काशीपुर ३४२
 काश्मीर ६३, ८४
 काश्य १२०
 किडी ३५२
 कीर्तन ३९
 कीर्ति २१७
 कुण्डलिनी ३७३, शक्ति ३६२
 कुतुबुद्दीन १०७
 कुमाऊं ८४
 कुमारिल ५६, १२२
 कुमारी एनी विल्सन २७९, एम० वी०
 एच० १८१, नोबल ३६६, सारा
 हम्बर्ट २७९
 कुम्भकर्ण २१८
 कुरान २१, २०४, २०७, २८१, ३३१,
 शरीफ ११३
 कुरुक्षेत्र ३३१, ३५७, रोग-शोक का ४७
 कुलगुरु ३६२
 कुसस्कार १८, ४७, ७३, ३९३ (देखिए
 अन्धविश्वास)
 'कूरियर हेरल्ड' २७५
 कृति और सघर्ष १८९
 कृषिजीवी देवता तथा मृगयाजीवी असुर
 १०३
 कृष्ण ३९, ११९, १२३, १२६-२७, १६३,
 १६५, २६८, ३३१-३२, ३४२,
 ३५७-५८, ३६०-६१, ३९५, ३९८,
 ४०२-३, उनकी शिक्षा २४८, और
 बुद्ध २४८
 कृष्णव्याल भट्टाचार्य १४६-४७
 केन्द्रगामी (centripetal) ३१३
 केन्द्रापसारी (centrifugal) ३१३
 केशवचन्द्र सेन, आचार्य १४९, १५३
 कैंट, डॉ० २९४
 कैथोलिक चर्च, उसकी सेवा-पद्धति २८४,
 जगत् १६१
 'कैम्पस एलिसिस' ९७
 कैलास ४९
 क्रोध और हिंसा ३९०

एकत्रय उसका ज्ञान ३९७ उसकी
 और ३३३ ३४ उसकी प्राप्ति
 ३९६
 एकाग्रता उसका महत्त्व ३८३ और योग
 ३८३
 'एडम्स पीक टु एडिफ्रेंटा' ३४६ ४७
 एडवर्ड कार्लोव्हर ३४६ ४७
 एडा रेकार्ड २१७
 एकेस्वरबाब ३६
 एथिकस एसोसियेशन ३ ३ ३
 एमिस्वाम २३१
 एनी बिस्सग कुमायी २७९
 एनेसडेन २४५
 एपिस्कोपल चर्च २३१
 एशियाटिक क्वार्टर्ली रिव्यू १४९
 एशिया ६७ ९१ ३ १०८, १३२ २६
 मध्य ६४ १२१ माहनर १ ५,
 १ ७-८ ३०२ बाके २३५
 एसोसिएटिव बीय मठ १५१
 'एसोसियेशन हॉल' २७९, २८१
 ऐम्बो इन्डियन कर्मचारी १४९ समाज
 १४९
 ऐम्बो सैन्सन जाति ३ २
 ऐतिहासिक संवेचना ३५७ सत्यागुरुसंभान
 ३५७
 'ऐस्ट्रल बोडी' ३८९
 ओकमेड २३
 'ओकमेड ट्रिग्यून' (पत्रिका) २३
 ओपर्ट (जर्मन पत्रिका) १६९
 ओकाट, उसका महत्त्व ५२
 ओं हत् सत् ११६, २ ७
 ओम् तत्सत् ओम् १७३-७५
 ओपनग ३३३
 ओक्षियो तद् २३५
 ओद्योगिक कार्य २३ शब्दा २२९
 पिप्पा २२८, २३०-३१
 ओपनिवेशिक साम्राज्य-स्थापना ९४

औरंगजेब ५९
 कंस अत्याचारी ४ २
 कप्टर अडैतवापी १ ८
 कठोपनिषद् ३४९-५ (पा टि)
 ३८८ (पा टि)
 कथा करबठा की १४५ बाक्य
 गोपाक की १२६ पैर और घेर
 की २५७ राजा और मनुष्य-स्वभाव
 की ३२७-२८ छर्प और सम्पायी
 की ३२४
 कनाडा ६३
 कन्नौज ४ १
 कम्प्यूटर ८८, १७९
 कन्याकुमायी १२
 कन्याई महाराज ३६४
 कपिक ज्ञानि ३८२
 कजीर १२३
 कमबोटी और धर्म २२
 कबगा और डेम १९१
 कर्न ५
 कर्म आत्मा का नहीं २६९ उसका
 कर्म ३७५ उसका फल जनसंभायी
 ३३६ उसके नियम १७ उसमें
 मानना ४ १ उसे करने का बहि-
 कर ११८ काण्ड १२३ ३९५
 काण्ड प्राचीन १२ काण्ड विद्यार
 ११८ गति १७४ निष्काम ३३
 ३५८ प्रकृति में ३१ फल ५३
 मार्ग ५३ बीज ३५६ वेद का
 भाग १४ कर्म १७५
 कसकटा १३ १९, ७८-८ ८३ ८९,
 ११४ १४९, १६८, १८५, २२४
 २६९-७ २९५, ३२१, ३३६, ३३८,
 ३६५ ६६ भाषी ३३३
 कथा और प्रकृति ४३ और वस्तु ४३
 नाटक कठिनतम ४३ भारतीय
 युवागी में अन्तर ४३ अक्षि और
 बर्षाई आध्यात्मिक ४३ सौन्दर्य की
 अभिव्यक्ति ४३

घृणा ४०, ३९०, दृष्टि ३५८

चडीचरण ३४६, वावू ३४६, ३४८,
उनका चरित्र ३४७

चद ४०१

चक्रवर्ती, शरच्चन्द्र ३४८, ३६३

चट्टोपाध्याय, रामलाल ३४५

चन्द्र २०९, ३८८

चन्द्रमा ३२१, ३५१

चरित्र, उसका सर्वोच्च आदर्श ३७३,

उसके विकास का उपाय ३७१

चाडाल ३०५

चाँपातला (महल्ला) ३४१

चारण १०७

चारुचन्द्र मित्र ३४०

चार्वाक, उनका मत ३३७

चाल-चलन ६०, प्राच्य, पाश्चात्य मे

अन्तर ८८

चिकित्सा विज्ञान, आधुनिक २८४

चिटगाँव १६८

चित्तौड-विजय ३०१

चित्रकार ११५

चित्र-दर्शन ४०२

चिरन्तन सत्य १५९

चिर ब्रह्मचारिणी १५४

चीन ४९, ६३, ८८, १५९, २७३,

३२७, जाति ६३, जापान ४९,

निवासी ६३, ६९, ८८, साम्राज्य

१०७

चीनी, उनका भोजन ८२, भाषा

८८, भोग-विलास के आदिगुह

८७

चेतन-अचेतन ३३३-३४, ३३७, ३९७,

उसकी परिभाषा २९८

चेतना, उसके लिए आधार की कल्पना

२७९

'चैट' (chant) २८४

चैतन्य १२३, १६७, बुद्धि ७५

चैतन्यदेव ७३

'चैरिटी फंड' ३२१

छठी इन्द्रिय २५३

छाया-शरीर ३७९

छुआछूत ७३, ८३, १३५

जगली जाति १११, वर्वर १०६

जगत् एक व्यायामशाला ३९४, कल्पना

१६५, दृश्य ३७, वाह्य ३७६,

बौद्धिक ३०४, भाव ४८, भौतिक

और सीमित चेतना का परिणाम

३३, मानसिक २१४, मायाधिकृत

१४०

जगदम्बा ५४, १५६

जगदीशचन्द्र वसु, ३३४ (पा० टि०)

जगन्नाक २५६ (देखिए जगन्नाथ)

जगन्नाथ ११५, २५६, २८६, २८८,

उसकी किवदन्ती २५६, -रथ २२८,

२३०

जड तत्त्व २६९, द्रव्य ३१, ३३, पदार्थ

२४०, २७१, ३०३ ३१३, ३७५,

बुद्धि ७५, वस्तु और विचार २१३,

वादी ४८, ३०३, विज्ञान और

कारखाना ३९४

जनक १४८, राजा १०९

जनता और धर्म २२८, और सन्यासी

२६६

जन-धर्म १२१, -समाज, उसका विश्वास

२६८

जन्म, पूर्व के प्रभाव का सिद्धान्त ३०२,

-मरण १७५, १७७, -मृत्यु १७३

जप, उसमे थकान का कारण ४००, और

ध्यान ३६२, -तप ३४४, हरिनाम

का ५२

जफर्सन एवेन्यू २६१

जम्बूद्वीप १०५-६, १६२

जयपुर ११५

जयस्तभ, विजय-तोरण ९८

जरथुष्ट्र ३७९

जर्मन और अंग्रेज ९४, और रूसी ९०,

वार्शनिक २८४-८५, पण्डित १६२,

लोग ८८-९, वहाँ के महानतम

कम्पिकास ३८२ और वैतन्य ३७६
 क्रिटिक २३७
 क्रिया-कर्म ८६
 क्रिश्चन मथिनी १९२ (पा टि)
 क्लिफ्टन एवेन्स २८७
 क्लिफ्टन स्ट्रीट २८३
 कनिम ६३ ६५ ३ ४ आपकृताता
 ११ और वैतन्य ३७२ कालि २५१
 रत्नक ३ ४ शक्ति ३७२
 मुद्र अर्ह २६

कामेज ३४१ ३४८ (बेसिए विश्वकालम्
 स्वामी)
 कोटाही १८८ ३२३
 कोटी-बायी सम्मता की भावि मिति १ ५
 कथा ६३ कालि ६४

गंगा ७८, १ ५, २ ५, २ ९, ३५२,
 ३६७ कल ७९ -वट १८२
 'गत्यात्मक कर्म' २९०-९१ २९३
 घमासीर्य पर्वत ५१ (पा टि)
 गमासुर ५१ और बुद्धदेव ५१ (पा टि)
 गबडास्व १ ३
 'गर्म बर्क' २२१
 गाडीपुर ३१७
 गान्वायी १ ७
 गार्पी १४८
 गार्डन एण्ड ए डॉ २२८ २९
 गौता ५३ ५, ५७ ९७ (पा टि)
 ११९, १२३ १२७ (पा टि)
 १२८ (पा टि) १६५ ३६, २२३
 २३७ ३२ ३३०-३२, ३४९
 ३५९ ३९५ (पा टि) ३९८
 ४ ३ उस्ता उपदेश ५५, ३३२
 उमका पहका र्थबाद २२ एर्ष महा
 भारत की भावा १६५ और महा
 भारत १६६ परममन्मथ प्रणव १६५
 'भीमा-वृत्त' ३६६
 गुजरान ८२
 गुजरानी पण्डित ३५१

गुडविन ३४१ ओ ओ १९५ (पा टि)
 गुण राम १३६, १२९ रत्न ५४ १३५
 ३६, २१८ १९ सत्त्व ५४ १३५
 ३६ सत्त्व का अस्तित्व १३६
 गुरु, उस्ता उपदेश ३३ उस्ता महात्म
 १९ उस्ता विद्योप प्रयोगन १५९
 उस्ता की कृपा २१८ उस्ता की परिभाषा
 ३७१ और विष्णु-संबंध ८ गुरुत्व
 ३१९ वसिष्ठा ३६३ -परम्परा
 ३९८ परम्परागत ज्ञान १५९
 भाई ३६८ बाद, शक्ति २२१
 सन्धा ३६३
 गुरु गौविन्दसिंह पैगम्बर १२४
 गुरुदेव १३ २ ४२, २३४ ३९७
 (बेसिए रामहृदय)
 'गुरु विन ज्ञान नहीं' १५७
 'गुरु विन ही है कि ज्ञान' ३९९
 'गुरुत्व गुणगुनेषु' ३४५
 गुरु शम्भु १११
 गुरुत्व गुरु ३१९
 गुरुत्वोपम ३६२
 गुरुत्व, तामस एण्ड २४५
 गीत १२८ वास्तव ४ २-३
 गीता १३१ उस्ता काम १२९ उस्ता की
 तामस्या १३ और कृष्ण से भेंट
 १२९ ३ काङ्कन वास्तव १२८
 २९ हृदयवाच्य १२७-२८
 गीताकालक शील (स्व) ३४२
 गीतेज १३५
 गीताकी ६५
 गीतार्थम-आरम्भ ४ ३
 गीतम बुद्ध ७
 गीत (Ganlob) कालि ९२
 गीत ८५, १ ५ ६, १३३ उस्ता काले का
 कृष्ण ८२ और १६५ ज्योतिष
 १६४ भाद्रक १६५ प्राचीन ८६
 भावा १६५ ६६ मन्विक १६५
 गीत १५९, ३८१ और रोम ५६
 प्राचीन १६४
 'दिगुण दार्शनिक कथा' ३८

जीवात्मा २१८-१९, २६९, २९६-९८,
३०३-४, ३३२, ३७१, ३७४, ३७७,
३९४, ३९६, अनन्त काल के
लिए सत्य नहीं ३७८, उसका
स्वभावगत प्रयोजन ३९३, मनुष्य-
वृत्ति की समष्टिस्वरूप ३७७,
विचार और स्मृति की समष्टि ३७८

'जुपिटर' २५०

जुलू १५९

जुद-अवेस्ता २८१

जे० एच० राइट, प्रो० २०४ (पा० टि०)

जे० जे० गुडविन १९५ (पा० टि०)

जे० पी० न्यूमैन बिशप २३५

जेम्स, डॉ० ३००, ३०३, श्रीमती २८६

जेरुसलम १०७-८, २४७, और रोमन
२५४

जेसुइट २३८, तत्त्व २३८

जैकब ग्रीन २३२

'जैण्टिलमैन' ८५

जैन ५१, ५४, ५९, ७४, ११९, २५३,

धर्मावलम्बी और नैतिक विधान
२८२, नास्तिक ३०३

जैमिनी सूत्र ५२

जोसेफिन, रानी ९९

ज्ञान ३५, ४०, अतिचेतन २१५,

अधिभौतिक १५९, अलौकिक

१३४, आत्म ४००, आत्मा की

प्रकृति १५७, आध्यात्मिक १५९,

आवश्यक वस्तु ४००, उपासना

२५१, उसका अर्थ १००,

उसका आदि स्रोत १५७, उसका

दावा १५९, उसका लोप १५९,

उसकी उत्पत्ति ३९७, उसकी स्फूर्ति,

देश-काल पात्रानुसार १५८, उसके

लाभ का उपाय १५९, उससे

प्रेम २९६, एकत्व का ३९७, और

अज्ञान ३३५, और धर्म ३१८, और

भक्ति ३७४, और भाव २२२, और

सुधार १८, काण्ड १४०, गुरु-परंपरा-
गत १५९, चर्चा १५८, तथा भक्ति-

लाभ ३९९, द्वैत ३३५-३६, निरपेक्ष

३३५, -नेत्र ४०३, पुस्तकीय १८,

२१८, -प्राप्ति १३९, -भक्ति १५५,

३५१, भक्ति, योग और कर्म २१८,

मनुष्य की स्वभावसिद्ध सम्पत्ति

१५७, -मार्ग और भक्तिमार्ग

३७२, -मार्गी और भक्तिमार्गी का

लक्ष्य २६१, मिथ्या ३३५, योग

३५५, -लाभ ३८३, विहीन वर्ग

और ईश्वर २३९, सबधी सिद्धान्त

१५९, -सस्था २२१, सत्य ३३५,

सम्यक् ३९७, सापेक्ष ३९७, स्वत-

सिद्ध १५८

ज्ञानातीत अवस्था ३८४, ३८७

ज्ञानी, उसकी निरकुशता ६

ज्यामिति २१४, २८४, शास्त्र का

विकास ११६

ज्यूलिस वर्ने ३२०

ज्योतिष २८४, आर्य १६४, उसकी

उत्पत्ति ११६, ग्रीक १६४, शास्त्र

३२३, ३७२

झंगलूराम ५७

'टाइम्स' (समाचारपत्र) ३१३

टाइलर स्ट्रीट डे नर्सरी २७९

टांणी महोदय १४९

टामस एफ० गेलर २४५

टिटस २४७

टिन्डल ३०९

टेनेसी क्लब २४५

ट्रिब्यून २५९, २६३, उसके सवाददाता

२५२

'ठाकुर-घर' ३८६

ठाकुर जी १४३-४५, ३५९, ३६७

ठाकुर साहब १४५-४६

डॉ० एफ० ए० गार्डनर २२८-२९, कार्ल

वाँन वरगेन २३९, कंट २९४, जार्ज

कवि २८५ सागर २१ स्त्री
 ६७
 जर्मनी ८५ ९८ ९ बाले ६९, ८१ ८९
 पहली पीर ५९, ९३
 पाठ १५
 जाति अंग्रेज ७९ अमेरिकन २४९
 मरुत १ जमीनियन १ भूमुर
 १ ६ आर्य ३६ ६३ ४ ११६
 २४९ ३ आयर १२२, ३७२
 इस्कीमो ३३ ८२ उसका एक
 अपना उद्देश्य ५८ उसका रहस्य
 (मारतीय) ३ ३ उसकी व्युत्पत्ति
 ३९३ उसकी उत्पत्ति ३७७ उसकी
 उत्पत्ति का सक्षय और उपाय १६८
 उसकी बौद्धिक सामाजिक परिस्थिति
 का पता २२२ उसकी विविधता
 २८ उसके चार प्रकार २५१
 उसके विभिन्न उद्देश्य ४८ एक
 सामाजिक प्रथा २३३ ३७७ एक
 स्थिति ३ ४ ऐम्को संकलन
 ३ २ और रूप ५७ और व्यक्ति
 ५१ और शास्त्र ५७ और स्वबर्मे
 ५६ सभिय २५१ बस ६४
 गुण और धर्म के आधार पर २८
 बुननत ५७ गौक ९२ चीन ६३
 जगदी १११ जगमयत ५७ तुर्क
 १ ७ यमासुवर २८५ दरद ६३
 शीप ७३ धर्म ५७ नाटी २७९
 निराश्रितमोषी ७५ -पति १२३
 पारसी ९२ प्रत्येक का एक जीव
 मोक्षस्य ६ प्रथा १२ २४१
 फ्रांक ९२ ३ फ्रांसीसी ९९ बंगाली
 १५३ बर्बर ९२ १ ६ १५८
 २५१ मेघ ११९ ३७७ ३९१
 मेघ उसका कारण २८९ ३९३
 मेघ उसकी उपमोषिता ३९३ मेघ
 और स्वाधीनता ३९३ मेघ
 गुणानुसार १३५ मेघ का कारण
 २८९, ३९३ सांसमोषी ७५
 मुगल १४ मुसलमान १ ८

यहूदी १ ६ मृतानी ६४ रोमन
 ९२ सेन्सि २९१ बतमानुप ७५
 वर्षसंक्राती की मृष्टि १ ७
 विभाग ३८९ व्यक्ति की समष्टि
 ४९ व्यवस्था २२७ व्यवस्था और
 पुराहित बर्मे ३ ५ व्यवस्था के
 दोष २८८, ३ ४ व्यवस्था सच्ची
 ३ ४ सबसे शरीर सबसे बनीर
 २८ समस्या का समाधान ११९
 हिन्दू ११७-१८ २४६ ३९४ रूप
 ६३

जातिगत विधि-नियम ३८१
 जातिय और व्यक्तिगत ?
 'जाति-धर्म और 'स्वधर्म' ५७ मुक्ति
 का सोचान ५७ सामाजिक उत्पत्ति
 का कारण ५७
 जातीय चरित्र ६२ चरित्र का मेसर्स
 ५८ चरित्र हिन्दू का ६ जीवन
 और माया १६९ जीवन की मूल
 मिति ५८ भाव आभयवर्ता
 ४८९ मृत्यु ५८ धिस्य संपीत
 १६९
 जॉन स्टुअर्ट मिल ३ २
 जापान ४९, ९३ २७३
 जापानी जनता ज्ञान-पान ७५ जाने
 का शरीर ८२ पच्छिम १६२
 जार्ज पैन्सन डॉ २४५
 जिहोवा ४९, ९ दिव १५७
 जीनो शार्बनिक ३८१
 जीव १४२ २१३ ३६ शक्ति
 प्रकास का क्षेत्र ५३-सेवा द्वारा
 मुक्ति ४ १-रूप ७४
 जीवन आत्मा का २२ इन्द्रिय का
 २२ उसमें मोक्ष २२४ और
 मृत्यु का सम्बन्ध २५ और मृत्यु के
 नियम २३ गृहस्थ ४ चरम
 कल्प २ २ -तृष्णा १७३-७४
 -वन्दन १७३ -मरण २३ व्याप
 द्वारिक ९ -संश्राम ३९४ सम्बन्ध
 ४ सामर १८७

- दादू १२३
दान-प्रणाली ११३
दानशीलता १७
दामोदर (नदी) ८०
दाराशिकोह ५९
'दारिद्र्य-समस्या' ३९४
दार्जिलिंग ३५२, ३५५
दार्शनिक चिन्तन, उसका सूत्रपात ११८,
तत्त्व ३८०
दाह-संस्कार २५१
दि प्रीस्ट ऐण्ड दि प्रॉफेट' ३६६
दिल्ली ९८, साम्राज्य १२४
दीक्षा-ग्रहण ३८६, -दान ३६३
दुःख और सुख ५३, २२२
दुःख भी शुभ १८७
दुर्गा ११५, पूजा ७८, १४७
दुर्भिक्ष-पीडित ६०-१
दुर्योधन ५०
'द्वरात्परिहर्तव्य' ३५९
देव और असुर ६८, १०७, -कन्या १०७,
गृहद्वार १७४, दर्शन १४३, मडल
११८, -शरीर ३८९, श्रेष्ठ ब्रह्मा
४०३, स्वरूप ३९४
देवता ३६०, आस्तिक ६८
देवराज ३६०
देवालय ८५, ३६४
देवेन्द्रनाथ ठाकुर १४९, १५३
देश, उसकी अवनति और भाषा १६८-
६९, और काल १९६, ३३४, ३३७,
और धर्म के प्रतिनिधि २४३
देश-काल २५, और नीति, सौन्दर्य-ज्ञान
३२६, और पात्र तथा मानसिक भाव
३२६, -पात्र-भेद १४०, व्यक्ति
के भीतर ३७७
देश-भेद, उसके कारण अनिवार्य कार्य
७०, उससे समाज-सृष्टि १०३,
भक्ष्याभक्ष्य-विचार १३५
'देशीय परिवार-रहस्य' १४९
देह-मन ३७४
देहात्मवादी ४८, ईसाई १५०
- दैहिक क्रिया ३६२
दोष, आश्रय, जाति, निमित्त ७३
द्रविड ११८
द्रव्य ३३४
द्वि-आवर्तन ३३५
द्वेषभाव ६२
द्वैत ५९, ज्ञान ३३५, प्रकृति मे ३४,
प्रत्यक्ष मे ३७१, -बोध ३७१, वाद
२१, ३८३, ३९२, वादी ३४, ३८१,
३८६, वादी के अनुसार जीव तथा
ब्रह्म २८२
घन और ईसाई २८०, विश्वयुद्ध का
कारण २८०
घनूषीय यत्र ११७
धर्म ४, ६-७, १६, ६१, ११०, १२४,
२०८, २४९, २५३-५४, ३१०,
अनुभव का विषय ३३६, -अनुभूति
१३९, आधुनिक फैशन रूप मे २६२,
इतिहास १६१, इसलाम ३७७,
ईश्वर की प्राप्ति २२१, ईसाई १६१,
२३५-३६, २४२, २५२, २५९,
२६१, २७१-७२, २७४, २७७,
२८३, २८६, ३०९, ३८५, उच्चतर
वस्तु की वृद्धि और विकास २९८,
उपदेश २८३, ३३१, उपदेशक
२४९, २७४-७५, २८४, उसका
अर्थ ३९२, उसका गभीर सत्य
और शक्ति ३३२, उसका मूल
उद्देश्य ३२९, उसका मूलभूत आधार
२६७, उसका मूल विश्वास ३१४,
उसका लोप और भारत-अवनति
५०, उसका समन्वय २७२, २७५,
उसकी महिमा २१३, उसके प्रति
सहिष्णु-भाव २९७, एक की दूसरे धर्म
मे सम्पूर्ति २४३, और अनुयायियों
मे दोष २७५, और आतक ३७८,
और ऐतिहासिक गवेषणा ३५७, और
घडे का प्रतीक २४७, और देश ३०२,
और धर्मान्व २६०, और योग ३२९,
और विज्ञान मे द्वन्द्व ३३१, और

पैटर्सन २४५ वेम्स ३ ३ ३
 सी टी म्युकर २७१
 कार्विन ११३
 कार्विन ३ ९
 'काकर-उपासक जाति' २७७
 काकर-मूजा और पुरोहित २७२
 किर्लोएट २६२ ६३ २७ २७४
 किर्लोएट इवनिंग म्यूज २६३
 किर्लोएट जर्नल २६२
 किर्लोएट ट्रिब्यून २५ २५२-५३
 २५९, २६१
 किर्लोएट फ्री प्रेस २५५, २६१ (पा
 टि) २६३
 डिबेटिंग क्लब ३५४
 डमस्थेनीज २६५
 डेजी ईगल २८६ बबट २६१ सैर-
 टॉनियल २३२
 'डिस्टर्ट' व्यायाम ३५३
 डेविड हेयर २८९
 डेस मोहस म्यूज २६३
 ड्यूक जलिया ६४
 ड्यूनक माइना टाइम्स २६४

बाका ८

वक्रित्प्रवाह ३३४ (पा टि)
 वल्लभान १४ ३५१ दर्शन २३७
 शास्त्रकार ३९५
 'वल्लभसि' १७४-७५
 वल्लभान विविध ३९७
 वल्लभान ५४ ५७ १३६ १५९ २१९
 और रज वला वल्लभ ५४
 वर्कसास्त्र २८
 वल्लभ २२४
 वाठार ११८ उनका प्रमुत्त्व १ ७
 मांशु १ ७
 वाठारी १ ७ रज १ ७
 वाग्नि ९
 वाग्नि ५४
 वाठार १२६

तिप्पल ४९ ६४ ६९ और वाठार
 ३ ५ वहाँ की स्त्रिया ३२६
 तिप्पली ६३-४ परिवार ३२६
 तीर्थ २ ८ स्वान ९१ १६३ ३२४
 तुकाराम १२३
 तुटीयानन्द स्वामी ३६१
 तुर्क १ ७ जाति १ ७
 तुळसी ६२ बल ३२८ महाराज ३६३
 (बेसिए निर्मलानन्द स्वामी)
 तुळसी ८२
 त्याग १३४ उसका महत्त्व १३५
 उसकी शक्ति २३ और बेतय्य
 ३४-साब ३४२
 त्रिगुणातीतानन्द स्वामी ३४१
 त्रिवेण और ईस्वर २८४
 त्रिमुखात्मक संग्राम ११९

वर्ड स्ट्रीट २७
 वॉमस-ए-कॉम्पिस ३४४
 पाउडर-वाइलेट-पार्क १७३ (पा टि)
 वियोसॉफिस्ट २३४
 वियोसॉफी सम्प्रदाय १४९

'वशिष्ठा' १४७
 वशिष्ठी ब्राह्मण ८३
 वशिष्ठीवत ३४५
 वल्ल ईस्वर द्वारा २७१ प्रतिक्रिया मात्र
 २७१ माहृत्तिक २७९
 वल्ल माहृत्तिक मनुसूत्र ४२
 वला और व्याय ३१३ और प्रेम ३ ३
 वल्लानन्द सगुणती १४९ १५३
 वल्ल ६३
 वर्सन और वल्ल ज्ञान २५३ तथा बड़वा
 ११९ शास्त्र ३६, १ ८ १३२
 ३८३ शास्त्र और भारत का वर्म
 १५ शास्त्र और विधि २५१
 वल्लभक सम्पत्ता की आचारसिका २८४
 वल्लु और बेरवा की उत्पत्ति १ ४-५
 वल्लेज २६४
 वल्लिचाल्य भाई ७

विचारक २४५, विचारधारा २८१,
विश्वास २६९, २८२, विषय २७५,
व्यक्ति २५८, व्यक्ति का लक्षण
५२, व्यक्ति की प्रार्थना-मुद्रा २६०,
शिक्षा २२८-२९, सस्था २८८,
सच्चा २८२, समन्वय २७२,
सिद्धान्त २९०, सिद्धान्त, प्राचीन-
तम २७
'धुनो' का युग २४९
ध्यान ३१७, उसकी आवश्यक बातें
४००
ध्रुपद और ख्याल ३९
ध्रुवप्रदेश, उत्तरी ६३
नचिकेता ३५०
नन्द ४०२
नन्दन वन ४७
नरक १०, १२, २९, ५२, १८०, २६६,
३०१, ३०३, ३७८, कुण्ड ७०
नरभक्षी २६४, -रक्षेत्र १३७
नरेन्द्र ३५५ (देखिए विवेकानन्द)
नरेन्द्रनाथ सेन ३४०, ३६४
नर्मदा १६३
नर्मदेश्वर १६३
नव व्यवस्थान ३६, ११३, २८१
'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी' १४९, १५१-५२
'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी क्लब' २४६
नागपुर १५५ (पा० टि०)
नागादल १०८
नाटक, आर्य १६५, कठिनतम कला ४३,
ग्रीक १६५, -रचना-प्रणाली १६५
नानक १२३
नाम-कीर्तन १३६, -जप १२६, -यज्ञ
३१६, ३९१, -रूप १७४, १७७
नायक १४३
नारकीय अग्नि २६०
नारद १४३
नारायण १२६
नारी, उस पर दोषारोपण ३०१, उसकी
कल्पना का उदय ३०२, उसके प्रति

हिन्दु भावना २७७, उसके प्रति
अनौचित्य २०, ऋषि ३०२, और
पुरुष १९, २०४, नारीत्व, उसका
आदर्श ३००
नार्थम्प्टन डेली हेरल्ड २७६
नार्थ स्ट्रीट २२८
नार्वे ८१
नासदीय सूक्त १९६
नित्यानन्द, स्वामी ३५२
निमित्त दोष ७३
नियम, उसकी परिभाषा ३१, और कीर्ति
६२, और जगत् के विषय ३२६,
और प्रकृति ३१, और रूपया ६२,
जातिगत ३८६, तथा मनुष्य ६२,
सामाजिक ३८६
निरपेक्ष ज्ञान ३३५, सत्ता ३८४,
सत्य ३३५
निरामिषभोजी ६५, जाति ७५
निरिश्वरवादी, पश्चिम २८९
निर्गुण ब्रह्म १४६, सत्ता ३८४
निर्मयानन्द, स्वामी ३६४
निर्मलानन्द, स्वामी ३५२, ३६२-६३
(देखिए तुलसी महाराज)
निर्वाण, उसका अधिकारी ३०१
निर्वाणषट्कम् २०७, ३८९ (पा० टि०)
निवृत्ति मार्ग ३८४
निवेदिता, भगिनी १९५ (पा० टि०),
३६६, ४०१
निष्काम कर्म १४०, १५८, ३३०, ३५८,
ज्ञान १४०, भक्ति १४०, योग १४०
नीग्रो लोग २७५
नीति-तत्त्व ३९१, -शास्त्र २४८, ३९६,
-शास्त्र और व्यक्ति का पारस्परिक
सम्बन्ध ३९६, -सहिता २८१
नीति, दह, दाम, साम ५२
नीलकण्ठ १६२
'नूह' (Noah) १५७
'नेटिव' ४८
'नेटिव स्लेव' ४८
'नेति' ३८४

विज्ञान में समागता ३२३ कर्म
 ३१२ कल्पना की बीज नहीं २१८
 कार्य २८ क्रियात्मक २७७ क्षुधा
 १५२ प्रत्य १२७ १३२, १३९
 ४ २१५, २२३ २८१ २९६,
 २९८ ३३ प्रत्य बौद्ध २७४
 जीवन ३३५ बीजित के लिए विभिन्न
 बर्म की मानस्यकता २७३ तथा
 अन्वविस्था २७४ तरंग १५
 तीन मिथ्या २७३ सीसा २५२
 भाषिक और सामाजिक सुधार प्रयत्न
 की सम्पत्ति ३ ४ मकारात्मक नहीं
 २९८ मकमुग १४२ पत्र ३३२
 पत्र तथा पुष्प और पाप २९३
 परायण २८२ परिवर्तन २६
 २७३-७५, २९५ परोपकार ही
 २९२ पवित्रता की अन्तःप्रेरणा
 के प्रतीक २४७ पाश्चात्य २६८
 पिपासा १५२ पैतृक २४५ प्रकृत
 २४१ प्रचलित ३२९ प्रकार २३७
 २४१ ३७३ प्रकार-कार्य ३७५
 प्रकारक १६१ २४३ २६४ १५,
 २७५, ३९७ प्रकारक-सम्बन्धी
 १६१ प्रत्यक्ष अनुभव का विषय
 ३२४ २१८ प्रत्येक की निजी विधि
 पदा २९४ प्रथम मिथ्या ७
 २७३ प्रवर्तक १५४ ३ ५ बुद्ध
 २९३ बौद्ध १६२ ६३ २५२, २७२
 ३ १ ३७८ ३९५ ब्राह्म १४९
 १५३ ब्राह्मण २४२ भारतीय
 २३१ भारतीय मठ २६७ भाव
 ३७१ ३९४ भावना ३६६ मठ
 ३२९ ३ ३८१ ३८५ महासमा
 २३९, ३१९, ३३९ मिथ्या २५२
 २९४ रसक २२२ रास्य १३९
 १५ ३ ९ काम ३२४ ३६५
 बार-बार में नहीं ३२४ वास्तविक
 और मनुष्य ३२३ विभिन्न उसकी
 उत्पत्ति बर्म १६३ विरवास २४७
 ३१३ और ६१ वैशालीका ३४७

वैशालीक ३७५ वैदिक १६२
 -व्यवस्था २७४ -शाका २२४
 शास्त्र २३६ २७३ ३३१ ३२,
 ३८३ शिवा १४१ ३८५ -संन्यास
 २८३ सत्कार का प्राचीनतम १५२
 सकारात्मक २९८ सन्ने २१८
 समा १६१ सम्बन्ध में दो अतिर्मा
 २६ सम्बन्धी कथा-वर्ता ३२९
 -सम्मोहन २४३ ४४ २७८ साधन
 ३४७ साधन और सह-शिवा ३४७
 साधना ३४६ सिद्धान्त २३६, २३९
 हिन्दू १४१ ४३ २४५, २५४
 २६९, २७७ ३३३ ३३९ ३७६,
 ३८ हिन्दू, उसका सर्वसापी
 विचार तथा प्रमुख सिद्धान्त २४२
 हिन्दू उसकी शिक्षा २६८
 'बर्म और 'पत्र' २४४
 बर्मपाक २३५
 'बर्म-सम्मोहन' २३२
 बर्मसंभ्राट् अष्टौक ८६
 बर्मन्व और नास्तिक २६
 बर्मन्विता उसकी अमिष्यकित २६
 बर्मन्व चिकित्सात्म्य ११३
 बाहुयर्ग १६३ (देखिए बौद्ध स्तूप)
 बारना और जम्पास १४२ और म्यान
 ३४४
 भाषिक ५६ अमिष्यकित २५८ बायो-
 कन १२४ २१८ आमम २६६
 उन्नत-पुस्तक २१४ -एकता-सम्मोहन
 ३८ और पैतेवालों की पूजा २१८
 और मन्त्राल ३२४ कल्प ७ १३
 क्षेत्र १२५ जाना-पीना हिन्दू का ४
 प्रत्य ११३ चाल-काल हिन्दू की ४
 जीवन ७६ २३३ २७९ हमन
 १५ दोष २९२ बुटिकीण १२४
 प्रकार २६९ प्रतिनिधित्व २८९
 मठ २७४ मनुष्य २२१ मनीभाव
 २७८ महत्वाचांदा १२४ मामला
 २८१ टीठि २७६ वाद्यबुद्ध २७४
 विवास-जम २८१ विचार २९२

- पाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७
 'पातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३
 'पाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-
 १८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास
 १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी,
 और कायरता २२२, घृणा २२२,
 परपीडन २२२, पराधीनता २२२,
 -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२
 'पापी और महात्मा १९३
 'पारमार्थिक सत्ता २७३
 पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास
 २८१, जाति ९२, सम्यता ९२
 पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६
 पाली और अरबी १६१, भाषा ४२
 पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार
 ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी
 दृष्टि में प्राच्य ४७, उनमें धर्म की
 प्रधानता ५०, उनसे सीखने का
 उपाय ६२, उसमें असामाजिक भाव
 ३९१, जगत् १४९, जगत् और
 भारत १३६, जाति ३९२, जाति
 द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५,
 देश ५०, ६८, ८०, ८७-८,
 ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और
 उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य
 सबंधी वाद-विवाद ७५, देश का
 आहार ८०-१, देश में राजनीति
 ६१, देश में सत्त्वगुण का अभाव
 १३६, देशवाले ३८९, देशवासी
 ६५, ८०, ३८०, देशवासी असुर
 की सतान ६८, देशीय पोशाक
 ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव
 ३८५, मत से समाज का विकास
 १०१, विज्ञान ३३६, ३८२,
 विज्ञान, आधुनिक ३२३, विद्या
 ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-
 शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या
 १९ (पा० टि०), सस्कृतज्ञ विद्वान्
 १४८, सम्यता ९१, मन्यता का
 आदि केन्द्र ९२
- पास्टचूर ११३
 'पिक्विक् पेपर्स' ३१६
 'पिता' ८
 पियरेपोट २८३
 पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना
 २२२, शक्ति और पौरुष २२२,
 स्वतन्त्रता २२२
 पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त
 २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म
 पर निर्भर ३७२, वाद १५,
 २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और
 नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त
 के बीजाणु २४०
 पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६,
 और वेदान्त १४०, और शास्त्र
 ५७, कथा २४७, विष्णु १६३
 पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)
 पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२,
 शक्तिमान ही समाज का परिचालक
 ६१, सिद्ध ३६०
 पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि
 ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ
 १२०, प्रपच १८, ११९, वर्ग
 ३००, वर्ग, आनुवंशिक १२१
 पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७
 पुर्तगाल ८१
 पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७,
 मानचित्र मात्र २९९
 पुस्तकीय ज्ञान २१८
 पूजन एव अर्घ्य दान ११६
 पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७,
 गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और
 ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य
 २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-
 ८७
 पूर्णता और जन्म २१५
 पूर्णांगि ११७
 पूना १२४
 पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-म्मरण १६०,
 और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

निति-नेति २२, २ ८
 नेपाळ ८४ १३५ और तिब्बत १६३
 वहाँ बौद्ध प्रभाव १६३
 नेपोलिमन तृतीय ६८, ९७ ९९ बाद
 १९९ बोगापार्ट ९९ महावीर
 ९८ ९
 नैतिकता और आध्यात्मिकता २१६
 २३६
 नैतिक साधन २५३
 नोबल कुमारी ३६६
 'न्याय-दिवस' २७९
 न्यूकॉर्ट सी टी डॉ २६९
 २७१
 'न्यूज' २५४
 न्यूबीरीष १११
 न्युयार्क ८९, ९५ १७३ (पा टि)
 १७६(पा टि) १९७(पा टि)
 २ १ २१६ २२१ २५६, २७
 वहाँ का स्त्री-समाज २१६
 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' २७८
 'न्यूयार्क वर्ल्ड' २३७

 पंचकोश २ ७
 पंचवामु २ ७
 पंचेन्द्रिय २५५
 पंचांग ८ ८२ १३५
 पद्यन ५९
 पदमलि जनका महाभाष्य ४२, १६८
 महावि ३५८
 पर-निन्दा ३३३
 परब्रह्म ४ ३
 परम अस्तित्व ३५, २१३ मानन्दस्व-
 रूप २ ७-८ चित् २ ७-८ ज्ञानी
 २ २ -तत्त्व का ज्ञान २१५ धर्म
 ३८ ध्यानावस्था ५४ प्रभु १९४
 संगल ३७६ मानदतावादी और
 पतन २२२ श्रेय बौद्धिकता नहीं
 २१६ मनु १७ २ ७-८
 परमहंस १३६ ३२६ देव ३९८
 रामायण २३४ (केविल रामायण)

परमात्मा ७ १३, १७ ५५ २१२
 २१७-१९ २२२ २३३ २७४
 परमपिता २७८ सगुण ३८ हमारा
 व्यक्तित्व ४२ हर एक में २२
 परमानन्द १९६ २ ५
 'परमानन्द के द्वीप' २४०
 परमेश्वर ३३-४ ३६-७ २ २, २२
 वनन्त १२७ और जादियासी ३५
 निर्गुण १२७ वेदवर्षित १२७
 परमोक्त-विद्या २२१
 परहित १३
 परा विद्या १३६, १५९
 परिकल्पना ३३
 परिणामवाद ३३ १ ३८२
 परिणामवादी १ १
 परिपचन (assimilation) ३१६
 परिप्रायक २८३
 परोपकार ३९९ कश्मीर ४ १
 मूलक कश्मीर ४ १
 परों की कठोर प्रथा २६५
 परकी-पुरोहित २३१
 पत्राचार की भाषा १५३ ३१७
 पवित्र आत्मा २२ चरित्र २१६, ३६९
 पशुपति बामु ३४१ शीम ३४१
 पशु-बलि १२०-२१
 पश्चिम और माछ में स्त्री संबंधी
 भावना ३ २ वेद्य २१७
 पश्चिमी वेद्य २४५ शिष्टाचार और
 रीति-रिवाज २४५
 पैंसाडेना ३
 पहलक ६३
 पहलकी भाषा ६४
 पहाड़ी ८३
 पाँच इन्द्रिय २४
 पांचाल १२
 पाइपागोस २८२
 पाउच पैसरी २८७ २९६
 पार्थिव और नास्तिकता २८
 पाटलिपुत्र १२ साम्राज्य १२१
 पाणिग्रहण (वंशवार) १५४

- पाण्डित्य, उसका प्रदर्शन १६७
 पातिव्रत्य, उसका सम्मान २६३
 पाप ४१, ५१-२, २०८, २१३, २१७-
 १८, २६९, ३१३, और अन्धविश्वास
 १५१, और पुण्य ४०, कमजोरी,
 और कायरता २२२, घृणा २२२,
 परपीडन २२२, पराधीनता २२२,
 -पुण्य २२३, ३१७, सदेह २२२
 पापी और महात्मा १९३
 पारमार्थिक सत्ता २७३
 पारसी १०७, २५४, उनका विश्वास
 २८१, जाति ९२, सम्यता ९२
 पार्थिव जड वस्तु और मन ३७६
 पाली और अरबी १६१, भाषा ४२
 पाश्चात्य अर्थ २१५, असुर ४८, आहार
 ८९, उनका स्वास्थ्य ६५, उनकी
 दृष्टि में प्राच्य ४७, उनमें धर्म की
 प्रधानता ५०, उनसे सीखने का
 उपाय ६२, उसमें असामाजिक भाव
 ३९१, जगत् १४९, जगत् और
 भारत १३६, जाति ३९२, जाति
 द्वारा कृष्ण-उपदेश-अनुसरण ५५,
 देश ५०, ६८, ८०, ८७-८,
 ९६, ३२२, ३८५, ३८८, देश और
 उनके वस्त्र ८५, देश और खाद्य
 सबंधी वाद-विवाद ७५, देश का
 आहार ८०-१, देश में राजनीति
 ६१, देश में सत्त्वगुण का अभाव
 १३६, देशवाले ३८९, देशवासी
 ६५, ८०, ३८०, देशवामी असुर
 की सतान ६८, देशीय पोशाक
 ६६, धर्म ९०, २६८, प्रभाव
 ३८५, मत से समाज का विकास
 १०१, विज्ञान ३३६, ३८२,
 विज्ञान, आधुनिक ३२३, विद्या
 ३०९-१०, ३३६-३७, शासन-
 शक्ति १३७, शिष्य ३६२, शिष्या
 १९ (पा० टि०), नमस्कृतज्ञ विद्वान्
 १८८, नम्यता ९१, नम्यता का
 आदि केन्द्र ९२
 पास्टचूर ११३
 'पिक्विक पेपर्स' ३१६
 'पिता' ८
 पियरेपोट २८३
 पुण्य २०८, और पाप २५३, प्रेम करना
 २२२, शक्ति और पौरुष २२२,
 स्वतन्त्रता २२२
 पुनर्जन्म ७९, २३९, उसका सिद्धान्त
 २४, २८, २३९, २४७, २९५, कर्म
 पर निर्भर ३७२, वाद १५,
 २९४, वादी २७९, सिद्धान्त और
 नैतिक प्रेरणा २९, सिद्धान्त
 के बीजाणु २४०
 पुराण, अग्नि ५१, एव तन्त्र १४६,
 और वेदान्त १४०, और शास्त्र
 ५७, कथा २४७, विष्णु १६३
 पुरी जी १४४ (देखिए भोलापुरी)
 पुरुष, ब्रह्मज्ञ ३६, शक्तिमान ६२,
 शक्तिमान ही समाज का परिचालक
 ६१, सिद्ध ३६०
 पुरोहित ३७, ३०४, ३७८, और ऋषि
 ३६६, और सन्यासी २५३, पन्थ
 १२०, प्रपञ्च १८, ११९, वर्ग
 ३००, वर्ग, आनुवंशिक १२१
 पुरोहिती, पैतृक व्यवसाय ७
 पुर्तगाल ८१
 पुस्तक, अनश्वर ३७, और सत्य ३७,
 मानचित्र मात्र २९९
 पुस्तकीय ज्ञान २१८
 पूजन एव अर्घ्य दान ११६
 पूजा-अर्चना ३४३, -आरती ३६७,
 गृह ३६१, ३६३, ३८६, -गृह और
 ध्यान ३९९, पद्धति और मनुष्य
 २२१, -पाठ ११४, ३१७, ३८६-
 ८७
 पूर्णता और जन्म २१५
 पूर्णांग ११७
 पूना १२४
 पूर्वज, उनका ऐश्वर्य-स्मरण १६०,
 और पूर्वज की गौरव-गाथा १६०,

और सक्रियपूर्ण हृदय ११ तथा
 सक्रियहीन संचित हृदय १६
 पूर्वजन्म ३७६
 पूर्विय विचार २९५
 'पुनर-जाउस' ३२१
 'पिरिपेटिक्स' २४२
 पेरिस ६६, ७७ ८५, ९१ ९६ ९८
 ११ १९२ (पा टि) उसकी
 विकासप्रियता ९५ उसकी श्रेष्ठता
 ९१ और सन्धन ८६ बर्सेन
 विज्ञान और विज्ञान की ज्ञान ९४
 धर्मतिहास-सभा १६२ नगरी
 ९१२ ९४-५ पृथ्वी का केन्द्र
 ९४ प्रवर्तनी १६१ प्राचीन
 ९७ यूरोपीय सम्प्रदाय की
 गंगोत्री ९३ वहाँ की नर्तकी ६६
 विद्या विज्ञान का केन्द्र ६९ विश्व
 विद्यालय ९४
 'पेरिस-मेड' ८५
 पेरु १ १
 पैरिमारक १ १
 पैतृक धर्म २४५
 पीप १ ७
 पीगाफ जन्में अन्तर ६६-८ उसका
 प्रमाण ६७ उसकी सृष्टि एक
 बका ६६ तथा व्यवसाय ६७
 पारबाल्य बेटीव ६६ सामाजिक
 ६६
 'पोस्ट' २९४
 पीपा तथा बन्धा २१४
 पीराजिम् अवगार १५७ मृत ३७२
 पीरन और निस्कार्य २२३
 प्यार पुत्रा २ १९
 प्युकम बर्ष २ ४
 प्रजाग १८८, १ २ १९८ ईश्वर
 १८६ जगता पुत्र १८७ उसकी
 आत्मा १ ३ विज्ञान १८६ १९७
 प्रजागता उगता जन्में २५३ लकी
 गत्य २५३
 प्रजागानन्द स्वामी २५४

प्रकृत तत्त्ववित् १५१ ब्रह्मविद्
 १५१ भक्त १५१ योगी १५१
 'प्रकृत महात्मा' १५१ १५१
 प्रकृति २५, २७ ३ ४२ ३ १८
 २२३ २५८-५९ ३५९, ३८४
 भक्त बाह्य २१३ उसका अस्तित्व
 २८ उसका नियम २७४ उसकी
 अभिव्यक्ति २६९ उसके मध्य
 सत्य आत्मा ३१ उसमें प्रत्येक वस्तु
 की प्रकृति २९१ और भीवारमा
 २१ और परमेश्वर ३३ और
 मुक्ति ३१ बेनी ३७८ नियम
 सर्वोपी ३१ नैतिक २५९ पर
 लजता और स्वतन्त्रता का नियम
 २९८ परमेश्वर की सक्रिय
 ३३ बंधनमुक्त २६ नैतिक
 २९६ यथार्थ और आदर्श का
 नियम २९८
 प्रजातन्त्र ९९ १ बाबी ३४६ ४७
 प्रजावैतन्त्रिकी ६४
 प्रतापबन्ध मजूमदार १४९ १५९
 प्रतिभा-पूजा १२
 प्रत्यक्ष बीज २८ बाबी १५८
 प्रत्यक्षानुभूति ३९२
 प्रत्यक्षवादी उनका बाधा २९८
 प्रथा १ ४
 'प्रकृत मार्ग' १९ १४९, १८९
 प्रभु ११ १३ १७ ४ ५२ १९७-
 २९ १३८ १४२ १४४ २ ४
 २ ७ ३७८ ३९७ ३९९ अस्त
 यामी १४१ उनका भय धर्म का
 प्रारम्भ २४८ ठेकरवरूप १३८
 परम १ ४ वास्तवरूप १३८
 मुक्त १२८
 प्रमदागम मित्र ३५६
 प्रकृति मार्ग ३८४
 प्रमाण महाभाग्य १११ २७ २८५
 प्रमाणन विद्यालय २०८ २९
 प्रमदप्रमाण ३४९
 प्रगार २ ७

- प्राचीन, कर्मकाण्ड १२०, मिस्र १०५,
रोमन के खाने का तरीका ८२
- प्राचीन व्यवस्थान ३६, २८१
- प्राच्य, उसका उद्देश्य और पाश्चात्य
धर्म ५०, और पाश्चात्य ४७-८,
५५, ११४, ३५२, और पाश्चात्य
आचार की तुलना ७१, और
पाश्चात्य का अर्थ ६८, और पाश्चात्य
का धर्म ५०, और पाश्चात्य सम्यता
की मित्तियाँ १०५, जाति और
ईसा-उपदेश ५५, -पाश्चात्य की
साधारण भिन्नता ६५, -पाश्चात्य
में अन्तर ६६, ७०, -पाश्चात्य में
स्वभावगत भेद ३९२
- 'प्राण' ३६०
- प्राणायाम ३६१-६२, और एकाग्रता
३८६
- प्रायोपवेशन ३४८
- प्रार्थना, उसकी उपादेयता ४०१, उसके
विभिन्न प्रकार २९१
- प्रेम ३५, ४०, १५४, ईश्वर का २६२,
उसका बन्धन १९, उसकी परिभाषा
२६२, उसकी महिमा १२८,
उसकी व्याख्या २६१, और अगाध
विश्वास ३६८, और आशा ३८०,
और निष्काम कर्म १८३, और
भाव २६१, और विज्ञान ३७,
और श्रद्धा २६२, -पात्र २६२, -
भाव ३९८, शाश्वत १८३, १९२,
सन्धा २२०
- 'प्रेम को पथ कृपाण की धारा' ३९८
- प्रेमानन्द स्वामी ३५२, ३५५, ३५९-६०
- प्रेरणा, उच्च १४
- प्रेसविटेरियन २८, २२२, चर्च का
धर्मोत्साह और असहिष्णुता २७२
- प्रो० राइट २३१
- प्लाकी ९२
- प्लास द लॉ कॉन्कार्ड ९७
- फस्ट यूनिटेरियन चर्च २४२-४३
- फादर पोप १८१, रिबिंगटन ३१०
- फारस १०७
- फिलिप्पा ९२
- फैमिन इन्ड्योरेन्स फन्ड ३२३
- फैरिसी (यहूदी कर्मकाण्डी) २७
- फ्राक, जाति ९२-३
- फ्रास ६७, ६९, ८५, ८९, ९१, ९३,
९८, १०८, उसका इतिहास
९९, उसका राष्ट्रीय गीत ९९,
उसकी क्रांति ९८, उसकी विजय
९९, औपनिवेशिक साम्राज्य-
स्थापना की शिक्षा ९४, कैथोलिक
प्रधान देश १६१, जातियों की
सघर्ष-भूमि ९२, देश ६८, ३१३,
निवासी ९४, पाश्चात्य महानता
तथा गौरव का केन्द्र ९१, यूरोप
का कर्मक्षेत्र ९२, स्वाधीनता का
उद्गम-स्थान ९४
- फ्रासीसी, अग्नेज और हिन्दू ५८,
उनका रीति-रिवाज ८१, उनकी
विशेषता ९५, और अग्नेज ६०,
१२४, कन्या ९०, क्रांतिकारी
दार्शनिक ३०२, चरित्र ५८,
९४, जल सबधी विचार ८९,
जाति ९९, दार्शनिक और उपन्यास-
कार २५८ (देखिए बालजक),
पद्धति ८१, परिवार ९५, पोशाक
८५, प्रजा ५८, ९९, रसोइया
८१, विप्लव ९४, सब विषय में
आगे ८५, सम्य ९५
- फिरगी ९२
- 'फ्री प्रेस' २५२
- फ्रेंच भाषा १६६
- फ्रेजर हाउस २७०
- फलामारीयन ११३
- फलोरेन्स नगरी ९३
- वग देश १३५, १६८, ३५६
- वगला देश ३४२, पाक्षिक पत्र १३२,
भाषा ४२, १६७-६९, ३५४,

मासिक पत्र ३३९ (पा टि)
 समासोचना १४८
 बंगवासी (मुखपत्र) ३३९
 बंगाल ५३ (पा टि) ८ ८३,
 ११४ १६८ ३३२, ३५३, ३३३
 और पंजाब ८३ और यूरोप
 १ २ विद्योत्सोहिकस घोसायटी
 ३४२ देस ७६ ७९ परिचय
 ७९ पूर्व का भोजन ७९
 बंगाली आधुनिक १३३ कवि प्राचीन
 ७७ जाति १५३ टोसा ९७
 भोजन का तरीका ८९ मुखक
 ३६७
 बंगोपाध्याय साक्षिपत्र ३६४
 बंसीचारी ४९ (देबिए कृष्ण)
 'ब्रह्मपत्र' ८२
 ब्रह्मिकापत्र ७८
 बनारस १२
 बन्धन ६, ८, १९, ३१ १७४ २८८
 ३२ ३२२, ३७४ ३९९ और
 मोह १ भौतिक १८५ मुक्त
 १७५
 बरमी उनके जाने का तरीका ८२
 बराहगढ़ मठ ३४४
 बर्बर जाति ९२, १५८
 बर्लिन ९५
 बसरेन ४ २
 'बलवान की जय' ७१
 बल्लभाचार्य ३४२
 बसु, जगदीशचन्द्र ३३४ (पा टि)
 पद्मपति ३४१ विजयकृष्ण ३५४
 बहुजन हिंसाय बहुजन मुक्ताय १३७
 १५५
 बहुपति की मजा ३२६
 बहुभाषी और मेरुपयम ३९१
 बाइबिल २ ४ २ ७ २५३ २९२
 २६८, २८९, २९६, २९८ ३१
 ३३१ ३८५
 बाबकाबाद ३४१
 बाबरूपा १२७

बाबरूपा २५८
 बाबी राजा १११
 बाब्टीमोर १९१ अमेरिकन २९०
 २९२
 बास्तिरु क्रिका ९८
 बाबाचार और अत्याचार ७ और
 मनाचार ७
 'बिनेटासिस्म' २३२
 बिस्व जे पी स्मूनिन २३५
 'बी बी' (Throo BS) २८९
 बीजगणित २८४
 बीन स्टारस २८५
 बुकनर ११३
 'बुत्परस्त के बर्मे-परिवर्तन' १६
 बुद्ध २१ ३६, ३९, ५१ ५५ ६, ११९
 १५७ १६२ ३३ १६५, १६७
 २३३ २३८ ३९ २४८, २५२,
 २७८-७९ २९२, ३८३ बनारस
 जप में स्वीकार ३ ३ उनका
 आदिर्मात्र २९३ उनका बर्मे २८३
 २९१ २९३-९४ ३ ४ उनका
 मन्दिर ३७३ उनका सिद्धान्त
 ३ ४ उनका महात्मता ३ ५ उनकी
 शिक्षा २९४ ३ ५ उनकी शिक्षा
 और महत्त्व २९४ ३ ४ उनकी
 शिक्षा २७५ उनके आगमन के पूर्व
 ३ ४ उनके पुत्र ३ ५ उनके
 सवाचार का नियम २७४ उसके
 प्रति हिन्दू ३ ३ एक महापुरुष
 ३९५ एक समाज-सुधारक ३९५
 और ईसा ४१ २८३ और बीज
 बर्मे ३९५ और सच्ची जाति
 व्यवस्था ३ ४ राष्ट्रीय बुद्धि
 से २१ द्वारा आन्तरिक प्रकाश
 की शिक्षा ३७९ हाथ माण्ड
 के बर्मे की स्थापना २९२ पहला
 मिशनरी बर्मे २९४ मत २ २,
 ३ ३ ५ महान् मुक्त ३ ३
 बाद २५३ बैजान्तवादी गण्पानी
 ३९५

बुद्धदेव ५०, १६३, ३८०, भगवान्
 १ १५४ (देखिए बुद्ध)
 बुद्धि, जड चैतन्य ७५, सत्य की ज्ञाता
 २२२
 बृहदारण्यक उपनिषद् ३५४
 'बेनीडिक्शन' २८४
 बेबिलोन १०१, १५९
 बेबिलोनिया ३००, निवासी ६४
 बेलगांव ३११, ३२५
 बेलुड मठ १९२ (पा० टि०)
 बे सिटी टाइम्स प्रेस २६९
 बे सिटी डेली ट्रिब्यून २७०
 'बोयोगे पायोगे' १७३
 बोर्नियो ४९, ६३
 बोस्टन इवनिंग ट्रांसक्रिप्ट २३२
 बोस्टन २७०, वहाँ की स्त्रियाँ २१७,
 हेरल्ड २७९, २८१
 बौद्ध ३७, ५४, ५९, ७४, ११९, २३७,
 २६८, २७५, २७९, आधुनिक
 २९८, उनका विश्वास १५७,
 उनकी जीवदया ९, उनके दुर्गुण
 ५६, उनमें जाति-विभाग ३९५,
 और ईश्वर ३६, और वैष्णव
 ११९, और वैदिक धर्म का उद्देश्य
 ५६, काल १३५, कालीन
 मूर्तियाँ ८६, ग्रन्थ २७४, चैत्य
 ३७३, तत्र १६३, दर्शन २३५,
 देश ३९५, धर्म ३६, ५६,
 १०७, १२०-२२, १६१-६३, २५२,
 २५४, २७२-७३, ३७८, ३९५,
 धर्म का कथन ३०१, धर्म का
 सामाजिक भाव ३९५, धर्म की
 जनप्रियता १२०, धर्म के
 सुधार १२०, धर्मावलम्बी ३४१,
 प्रचारक १२१, प्रथम मिशनरी
 धर्म २५२, भारत में उनकी
 सख्या २३९, भिक्षु १६३, भिक्षु
 धर्मपाल २३६, मत १५१, २७५,
 मतावलम्बी ८८, मित्र ५६, राज्य
 ५१, विद्वान् २३५, सगठन १२१,

सम्प्रदाय १६३, साम्राज्य, पतनो-
 न्मुख १२१, स्तूप १६३
 बौद्धिक पाण्डित्य ८, विकास १०९,
 २४१, शिक्षा १४
 ब्रजवासी ४०३
 ब्रह्म १००, २२३, ३५८, ३६०, ३८८,
 ४००, अखण्ड १८३, अविनश्वर
 १८३, ईश्वर तथा मनुष्य का उपा-
 दान ४०, उसका धर्म २४२, २४७,
 उसका साक्षात्कार ३७३, ३९३,
 ज्ञान ३६०, ज्ञानरूपी मुद्रिका
 ३१९, तथा जगत् २८२, तथा
 जीव २८२, दृष्टि ३५८, निर्गुण
 १४६, ३९९, निर्दोष और समभावा-
 पन्न ३९१, पूर्ण, यथार्थ ३९६,
 -वध ५२, वाद १२०, शाश्वत
 १८३, सगुण २८२, ३८४, ३९९,
 सत्ता, निर्गुण ३८४, सत्य १८३-
 ८४, सूत्र ३५, ३५९ (पा० टि०),
 स्वरूप ३९४
 ब्रह्मचर्य ९७, ३३२, ३४६, ३६५;
 -भाव ३४७
 ब्रह्मचारी १५४, ३५३, और सन्यासी
 ३५८, नवीन ३६५, मित्र ३६४,
 विद्यार्थी ९७
 ब्रह्मज्ञ पुरुष ३६०
 ब्रह्मत्व, उसकी महिमा १६२, -ज्ञान
 १४४
 ब्रह्मपुत्र १२
 ब्रह्मराक्षसी १६९
 'ब्रह्मवादिन्' पत्र ३६६
 ब्रह्मा १४६, १५७, देवश्रेष्ठ ४०३;
 सृष्टिकर्ता २४८
 ब्रह्माण्ड १३, १५९, २८२, ३०२,
 ३०४, ३३७, ३८३, ४०२-३,
 अनन्त कोटि ४०३
 ब्रह्मानन्द, स्वामी ३५२
 ब्रह्मास्त्र १०३
 ब्राह्मण ६३, ६५, १४७, २५१, २६१,
 ३७२, ईश्वर का ज्ञाता ३०४,

मासिक पत्र ३३९ (पा० टि०)
 समासोचना १४८
 बंगवासी (मुक्तपत्र) ३३९
 बंगाल ५३ (पा टि) ८ ८३
 ११४ ११८ ३३२, ३५६, ३५९
 और पत्राव ८३ और यूरोप
 १ २ विधोत्सोक्रिकल सोसामटी
 ३४२ रूस ७६ ७९ परिषद
 ७९ पूर्व का भोजन ७९
 बंगाली भाषानिष्ठ १३३ कवि प्राचीन
 ७७ बाति १५३ टोला ९७
 भोजन का तरीका ८२ मुक्त
 ३६७
 बंघोपाख्याय समापद ३१४
 बंसीबाटी ४९ (वेबिप्ट कृष्ण)
 'बङ्गपत्र' ८२
 ब्रह्मिकामत्र ७८
 बनारस १२
 ब्रह्म ९ ८ १९ ३१ १७४ २८८,
 ३२ ३२२, ३७४ ३९९ और
 मोह १ मौक्तिक १८५ मुक्त
 १७५
 बरली उनके ज्ञान का तरीका ८२
 बराहमन्तर मठ ३४४
 बर्बर जाति ९२, १५८
 बलिज ९५
 बङ्गदेश ४ २
 'बलुवात की धर्म' ७६
 बल्लभाचार्य ३४२
 बसु, जगदीशचन्द्र ३३४ (पा टि)
 पशुपति ३४१ विजयकृष्ण ३५४
 बहुजन हिताय बहुजन मुखाय २३७
 १५५
 बहुपति की प्रथा ३२६
 बहुवासी और भेषपरामय ३९१
 बाह्यिक २ ४ २ ७ २५३ २३२,
 २६८ २८९, २९६, २९८ ३१
 ३३१ ३८५
 बाबदावार ३४१
 बालकृष्ण १९७

बालक २५८
 बाली राजा १११
 बास्टीमोर १९१ अमेरिकन ९९
 २९३
 बास्तिव किला ९८
 बाह्याचार और अत्याचार ७ और
 अनाचार ७०
 'बिनेटाकिनम २३२
 बिद्यप वे पी भूमिन २३५
 'बी बी' (Three B'S) २८९
 बीजगणित २८४
 बीज स्टावस २८५
 बुक्कर ११३
 'बुतपरस्त के धर्म-परिवर्तन' १६
 बुद्ध २१ ३६ ३९ ५१ ५५ ६, ११७
 १५७, १६२-६३ १६५ १९७
 २३३ २३८ ३९ २४८ २५७
 २७८-७९, २९२ ३८६ अन्तार
 रूप में स्वीकार ३ ३ अन्त
 आभिमानि २९३ अन्तका धर्म २८३
 २९१ २९३-९४ ३ ४ अन्तका
 मन्दिर ३७३ अन्तका सिद्धान्त
 ३ ४ अन्तकी महागता ३ ५ अन्तकी
 धिमा २९४ ३ ५ अन्तकी धिमा
 और महत्त्व २९४ ३ ४ अन्तकी
 सीमा २७५ अन्तके आगमन से पूर्व
 ३ ४ अन्तके युग ३ ५ अन्तके
 अन्तकार का मिमम २७४ अन्तके
 प्रति हिन्दू ३ ३ एक महापुरुष
 ३९५ एक समाज-सुधारक ३९५
 और ईसा ४१ २८३ और ईसा
 धर्म ३९५ और अन्तकी जाति-
 व्यवस्था ३ ४ धार्मिक दृष्टि
 से २१ द्वारा आन्तरिक प्रकाश
 की सिमा ३७९ द्वारा मारण
 के धर्म की स्थापना २९२ पहला
 मिथ्यापदी धर्म २९४ मठ २९२
 ३ ३ ५ महान् गुण ३ ३
 बाद २५३ बैबान्तवादी संभाषी
 ३९५

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का संगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमें कर्मकाण्ड ११९, उसमें दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमें नियमित धर्म-संघ नहीं ३८१, उसमें वल एव सार ४९, उसमें बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमें मुसलमान-जन-संख्या २८१, उसमें मोक्ष-मार्ग ५०, उसमें रजोगुण का अभाव १३६, उसमें 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अधविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहारसम्बन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पार्श्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की बोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण

६४, दासता में बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला में प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तन-शील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतंत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३
'भारतवर्ष में ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९
भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवास' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्नेय २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

उसका जन्म ईस्वीरोपासना हेतु
 २८ श्रीरत्नमिम ३९५ -कुमार
 १५५ पश्चिमी ८३ बेवता ७१
 धर्म १२१ २४२ बाळक गोपाळ
 १२९ बकीळ ३१२ बाब २३४
 २७८ संन्यासी २५३ २७९
 २८१ २९१ सन्धा १२६ ३ ४
 साधु २४२

ब्राह्मणत्व १४२
 ब्राह्म धर्म १४९, १५३ मन्थर ३१
 समाज १४९, १५३ २५
 बिक्रमे हु क ३५, २४५
 मुकसिन २८६, ३७५
 मुकसिन एषिकस एषोसियेशन ३८३
 ३८६ ३९६ एषिकस सोसायटी
 २८७ टासम्ब २९६ डेली ईगळ
 २९७ मैसिक समा ३७५ स्टैडर्ड
 यूनियन २८३ २८७ ३ ३ ३

भक्त उसका कर्म २६१ मिछनटी
 ३१
 भक्ति १२७-२८, १४४ ३ ९, ३११
 ३१८, ३४४ आन्तरिक ३२५
 आत्मामयी २७७ उसके संबंध में
 मुख्य कारण ३८५ और ज्ञान
 १४ ३५१ और पाश्चात्य
 ३८५ ज्ञान और कर्मयोग ३५६
 निष्ठा एक प्रेम १२७ मनुष्य के
 भीतर ही ३७१ मार्ग ३७२ मार्गी
 २६१ -ज्ञान ३७१ बाब ३८५
 वैराग्य ३५१

‘अभिव्यक्ति’ ४
 अक्षरश्रीस्वरूपा ३६५
 भयवत्कथा ३७४
 भयवत्-सेवा १५४ ३७४
 भयवद्गीता ३१९ ३३१
 भगवान् ७ ५३-५, १ १ ४
 १३६ १४३ १४७, १६६
 २६८, २७३ ३२२, ३३ ३३५,
 ३४६, ३५२ ३६३ ३७५, ३७७

३९५ उनके प्रति प्रेम ३८५ कृष्ण
 ३३१ ३२ निरपेक्ष ३३५ बुद्धि
 १५४ रामकृष्ण ४३ १४१ (वे
 रामकृष्ण बेब) सत्त्वकर्म ३५८
 स्वर्गोत्थ २८
 भूमिगी क्रिश्चियन १९२ (पा टि)
 निवेदिता १९५ (पा टि)
 ३६६ ४ १

भट्टाचार्य कृष्ण व्यास १४६ ४७
 भय ४
 भय १४३
 भयवत् १७४-७५
 भवानी संकर ३४३
 भाम्बवादी २५९
 भारत ३ ९, ९ १४ १६-७ १९,
 २३ २८ ३९, ४८ ५, ५६, ६०-१
 ६३ ७३ ७५, ८४-५, ८९, ९२ ३
 १ ७ ११ १२ १२३ १३३,
 १३५ ३६ १४७-४८, १५
 १५४-५५, १५७ १६२ ३४ २१६
 १७ २३१ ३२ २४१ २४९-५१,
 २५६-५७ २६ ३१ २६६ ६७
 २७ २७४ २८ २८४ २८६
 ८८ २९ २९३ २९५, ३३७
 ३४६, ३७२, ३७७ ३८६, ३९०-
 ९१ ४ २ आधुनिक १४९
 अक्षयतम आदर्श ३ ९ अतीव्रिय
 का कारणबताता २७७ अंतर १२१
 १२३-२४ २७३ अर्थ २५
 उसका अतीव और १३२ उसका
 अवतार ११९ उसका आविष्कार
 और ज्ञान २८४-८५, २९४ उसका
 इतिहास १३२, २२४ उसका ऐति
 हासिक कर्म-विक्रम ११६ उसका
 धर्म १५, २२७ २९२, २९४
 उसका ध्येय ४ उसका ज्ञान ६
 उसका चतु-सहस्र २७९ उसका
 राष्ट्रीय धर्म १२२ उसका श्रेष्ठत्व
 ४ उसका उदय २८५। उनकी
 कथा १६३ १६६ उसकी जनककथा

२२७, २७०, उसकी जलवायु १३४, उसकी जातीय सम्पत्ति ३९३, उसकी दक्षिणी भाषा १०५, उसकी भावी सन्तान १९५, उसकी मुक्ति २१९, उसकी राष्ट्रीय आत्मा १८, उसकी लघु रूपरेखा ३, उसकी वर्तमान आवश्यकता ३७२, उसकी विशेषता १११, उसकी सजीवता ५, उसके अन्य धार्मिक सम्प्रदाय २९७, उसके उपकारकर्ता २८९, उसके जातीय जीवन ६०-१, उसके भगवान् १४१, उसके राष्ट्र का संगीत ५, उसके रीति-रिवाज २९, २४८, २८१, उसके सम्प्रदाय और मत-मतान्तर २८२, उसमें कर्मकाण्ड ११९, उसमें दार्शनिक चिन्तन ३८०, उसमें नियमित धर्म-संघ नहीं ३८१, उसमें बल एव सार ४९, उसमें बौद्ध धर्म का पतन ३७८, उसमें मुसलमान-जन-संख्या २८१, उसमें मोक्ष-मार्ग ५०, उसमें रजोगुण का अभाव १३६, उसमें 'व्यावहारिकता' २२७, उस पर मुसलमान-विजय १०६, उससे सीखने का पाठ २७२, और अधविश्वास ५, और अन्य जाति २८५, और अफगानिस्तान ६३, और अमेरिका २१७, और आत्मा सबधी देहान्तर-प्राप्ति २७१, और आहार सम्बन्धी पवित्रता ७३, और ईश्वर ४, और कला २८३, और धर्म ७, १४२, और पाश्चात्य देश ३८१, और प्राचीन ग्रीक १०६, और यवन १३५, और राजनीति ३९२, और सामाजिक नियम ११२, और सामाजिक भेद ११९, २९३, और सिद्धान्त की वोरियाँ २९१, किसान १४, तत्कालीन ३०३, तथा आर्य जाति २७२, तथा विदेश ५, तीर्थ भूमि १३२, दक्षिण

६४, दासता में बँधी जाति ३, द्वारा खेल का आविष्कार २८५, नव जाग्रत १२२, पवित्र १३२, प्राचीन ७, १२०, ३८७, भूमि १४१, मूर्तिपूजक २४८, ललित कला में प्रधान गुरु २२४, वर्तमान ४७, वहाँ का भोजन ८०, वहाँ की जाति-प्रथा २७२, वहाँ की नारी २२८, २३०, २६३, ३८०, वहाँ की विधवा २५९, वहाँ की स्थिति २२७, वहाँ के आदिवासी २६४, वहाँ के चिन्तन-शील मनीषी १००, वहाँ के गरीब १५, २३८, वहाँ के पुजारी २९३, वहाँ के विभिन्न धर्म २७१, वहाँ के शिक्षित २८०, वहाँ जाति-व्यवस्था २६९, वहाँ धर्म सबधी स्वतंत्रता २७१, वहाँ बौद्ध धर्म २९३, वहाँ सन्यासी का महत्त्व १८, वहाँ सम्प्रदाय की मूल भित्ति १००, विषयक योजना १४, सीमा १३२ (देखिए भारतवर्ष)

'भारत और हिन्दुत्व' २७८

भारतवर्ष ९३, १०७, १४७, २४३
'भारतवर्ष में ४१ वर्ष' (पुस्तक) ५९
भारतवासी ४९, ६६, १५१, ३७३, ३८५, ३९२, आधुनिक १३४, उसकी औसत आय ४, उसकी दृष्टि ४८, प्राचीन और प्रकृति १३२, वर्तमान १३३

'भारताधिवास' (पुस्तक) १४९

भारतीय अध्यात्म विद्या और यूनानी १३४, अनुक्रम १२३, आचार-विचार २७९, इतिहास १२४, १६६, उत्पादन २८५, उद्देश्य, मोक्ष ९७, और अग्नेज २९५, और यूनानी कला ४३, कहावत २८९, चिन्तन १३३, जनता १२४-२५, जलवायु ११८, जाति, आदिम ११०, १३३, ज्योतिष शास्त्र

१६४ विद्योत्सोकी १५१ वसिष्ठ
 २७३ धर्म १२३ १६३ २३१
 २४२ २४६ ४७ २६१ २६९
 धर्म वर्धन साहित्य १५१ नारी
 २६२ ६३ प्रवेश ४९ प्रकृति
 ४३ बन्धा २२८ २३१ शोध
 धर्म उसका लोप १२१ मक्ति
 ३८५ मक्ति और पाश्चात्य देश
 २८५ भाष्य स्त्री पर निर्भर
 २६७ महिला ३८ मुसलमान
 ३७७ राष्ट्र ५ रीति-नीति
 १४८ रीति-रिवाज २५ २८६
 सङ्गीत २६ विद्या १६४ विद्यार्थी
 १५८ विज्ञान ११ घटीर ४८
 समाज ११८ २८ समाज अशोक
 २८४ साहित्य १६५ स्त्री १९,
 ८६ २६३

भाव और माया १६८ बी प्रकार के
 ३३५

माया ४२ अश्वेजी १४९ २९१ आदर्श
 ४२ आत्मकारिक २४५ उसका
 रहस्य ४२ और भारतीय जीवन
 १६९ और देश-अव्ययि १६९
 और प्रकृति १६८ और भाव
 १६८ और मनोभाव १६७ और
 केवली १६७ और समाज ३६२
 कलकत्ते की १६८ काश्मिरी की
 ४२ पीक १९५ ६९ बीनी
 ८८ पहलवी ६४ पाकी ४२
 फेंक १६६ बगला १६७ ३५४
 बोलचाल की १६७ मृत उसके
 समय १६८ म्येन्क ३१२
 यूरोपीय १३३ २८४ विचारों
 की बाहक १६८ विज्ञान २८४
 संस्कृत १३३ १६४ २५३ २८४
 ३५१ ३५८ हितोपदेश की
 ४२

निर्मावृत्ति और प्रवचनयोग्यता २४१

भीष्म ५

भूमिजात ३ ९, ३२३

भूमिभसागर १३३
 भूमिपति और शान्ति २५१
 भोग १३४ उसके हाथ भोग २२३
 और पीड़ा २९ तथा त्याग ५१
 -विकास ८
 भोजन असाध्य और क्षाय ७७ बर्त
 सघासी ७९ और भाव विचार ७६
 और सर्वसम्मत सिद्धान्त ७९
 निरामिष ७६ निरामिष-सामिष
 ७३ पूर्व ब्याज का ७९ मांस ७४
 भोग्य प्रभ्य ७२
 भोलाशिव १४३ उनका चरित्र १४४
 भोलापुरी उनका चरित्र १४४
 भौतिकतावाद उच्चतर २१४
 भौतिकवाद २८ शास्त्र ३०९, ३२३
 ३३६

भय साभ्याम्य १२१

भजमपार २३४ प्रस्तापबन्ध १४९, १५३

भठ-भयवस्था उसके विकास का धर्म
 ३ २

भयुरा ७७

भयान्त ८ १३५, १८९ २३२, ३२५,
 ३६६ ६७ ३३९

भयानी सिष्य ३५२

भय्य एशिया ३४

भन अपने धर्म की प्रक्रिया ३२ असंख्य
 धर्म ४ उसकी एकाग्रता और
 जीव ३८३ ३९७ उसकी क्रिया
 का धर्म ३२ उसकी निर्मलता
 ३९८ ९९ उसके अनुपम धर्म
 ३२ उसके धर्म की ज्येष्ठा
 ३३८ और आत्मा २४ ७२
 और आसन ४ और धर्म-नियम
 २५ और बहिर्बिज्ञान ३८३ और
 बाह्य प्रकृति २५ और घटीर १२७
 ३८६ धर्म और मृत्यु का पाप
 ४ तथा जड़ २६७ प्रकृत और
 नियम ३१ मरणशील २६७
 भन संयम ३९२

मनस्तत्त्व विद्या ३८९
 मनु ८४, उनका शासन १३५, और
 वेद ५४, स्मृति ५२
 मनु० ५२ (पा० टि०), ७२
 मनुष्य ५४, अजन्मा २१५, अमरण-
 शील २१५, आदिम ३६, १०१,
 आरम्भ में शिकारी १०१,
 उसका कर्तव्य ३२९, उसका
 क्रमविकास १०१, उसका गुरु
 २१४, उसका यथार्थ सुख ३३०,
 उसका विकास २४७, ३७८,
 उसका सगठन ६३, उसका
 स्वभाव ३२८, उसकी आत्मा
 और ज्ञान २९६, उसकी
 आध्यात्मिक समता ११९, उसकी
 ईश्वर-प्राप्ति २४७, उसकी उन्नति
 के अवसर ३७६, उसकी पूर्णावस्था
 २६९, उसकी प्रकृति २६७, उसकी
 मुक्ति, अद्वैत ज्ञान से ३७६, उसकी
 स्वतंत्र सत्ता का भ्रम २९८, उसके
 पास तीन चीजें ४०, उसके मार्ग में
 सहायक ३३०, उसके लिए उपयुक्त
 धर्म ३३०, एक आत्मा २४, २९७,
 एक पूर्ण सत्ता २९८, और असत्य,
 सत्य की परीक्षा ३३६, और आत्मा
 तथा भलाई २९२, और ईश्वर
 २१४, और ईश्वरत्व का अभि-
 व्यक्तीकरण ३८२, और ईसा में
 अन्तर ४०, और उसकी सहायता
 २९२, और कीर्ति ६२, और गुण
 ५४, और जड पदार्थ २३५, और
 धर्म २४२, और परीक्षा ३३६, और
 पागल में भेद ३२८, और प्रकृति
 ५०, १०२, २१३, और बन्धन
 ३९१, और भौतिक वस्तु २१४,
 और शक्तिमान व्यक्ति ३६, कर्मठ,
 उसकी सेवा २२१, चेतन भाग का
 श्रेष्ठ प्राणी ३३७, जगली और सम्य
 १०८, द्वारा प्रथा-सृष्टि १०४,
 धार्मिक और नास्तिक २२१, निम्न-

तम भी ईश्वर २१३, पशुता, मनु-
 प्यता और देवत्व का मिश्रण २२१,
 पुच्छरहित वानरविशेष ३३७,
 पूजा का सर्वोत्तम तरीका ४००,
 प्राणीविशेष ३३७, बुद्धिवादी
 और दार्शनिक पूजा २२१, भावुक
 २२१, मस्तिष्क में जल का अंश
 ३३७, यथार्थ ३९१, समाज की
 सृष्टि १०५, साधारणतया चार
 प्रकार २२१, स्वार्थ का पुत्र २६
 'मनुष्य का दिव्यत्व' २५५ (पा० टि०),
 २६७
 'मनुष्य' बनो ६२
 मनोमय कोष ४००
 मन्त्र-जप ३६१
 मन्त्र-तन्त्र १५१, -वाक्षा ३१८, ३६२
 'ममी' २४
 मरण और जीवन १९६
 मरसिया १४५
 मराठा १२४
 मलाबार ८०, ८७
 मलेरिया ४७, ७२
 महाकाव्य तथा कविता २८५
 'महात्मा' १५३
 महादेव १६२
 महापुरुष, प्राचीन, उनके ज्ञान का उद्धार
 १६०
 महाभारत १६५-६६, ३३६, आदि
 पर्व ७४ (पा० टि०), महाकाव्य
 १२०
 महामना स्पितामा १५७
 महामाया १०६, उसका अप्रतिहत
 नियम १५६
 महामारी ४७, ७२
 महारजोगुणात्मक क्रिया ३४१
 महारजोगुणी ५५
 महाराष्ट्र ८२
 महालामा १०७
 महावीर प्रथम नेपोलियन ९८
 मासभोजी ६५, जाति ७५

मांसाहारी ७५
 'मार्' १०-१ १७७ ब्याममयी १७८
 माइकेस मधुसूदन बस ४२
 माकाल १४६
 माता वट्टी ८५
 मातृत्व उसका आर्वा २७७-७८
 उसका सिद्धान्त और हित् २६६
 मातृ धर्म ३ ३ मूमि २९
 माइक वेम १५
 मानव उसका परम सख्य ३४४
 प्रकृति की दो ज्योति ४१ -शरीर
 १२८ (वेसिए मनुष्य)
 मानसिक बन्ध २१४
 'मामुकी मूच्छा' ११२
 माया २६ १ ०-१ १७४ १७८
 २२३ ३१६ ३३४ ३४४ ३८३
 ३९७ ४ २ उसका डार १७५
 उसकी सत्ता ३७३ उसके अस्तित्व
 का कारण ३८१-८४ और जीव
 तत्व ३८१ पाश १७५ -ममता
 ३१६ -राम्य ३८४ बाब ३७४
 ७५ समस्त भेद-बोध ३९६
 समष्टि और व्यष्टि रूप ३७३
 मामाधिकृत बन्ध १४
 मायिक जगत प्रपञ्च ३७८
 मारमायोबा ३२५
 मार्म भिक्षुति ३८४ प्रकृति ३८४
 मानव हेरल्ड २९१
 माइकन-बरवार १२२ साम्राज्य १२३
 माइबा १२४
 'मास (masses) २८४
 मास्टर महासम ३४४
 मित्र वाचन ३४ प्रसवावास
 (स्व) ३५६ हरिपत्र ३ ९
 मिथिला १२२
 मिनिवापोलिस नगर २८ स्टार २४२
 मिक ३ ९ जौन स्टुअर्ट ३ २
 स्टुअर्ट ३३५
 मिसनरी उत्तका कर्तव्य २३१ उनकी
 हकबल १५३ उसका भारतीय धर्म

के प्रति स्व २६९ धर्म २५२
 प्रभु ३१ लोप और हिन्दू देवी-
 देवता १५२ स्कुल ३ ९
 मिश्रगणित २८४ ३२३
 मिथिसिपी २६
 मिस्र २४ ९१ १५९ निवासी ६४
 १ १ प्राचीन १ ५
 मीमांसक ५ उत्तका मठ ५२
 मीमांसा-वर्तन १२३ भाष्य १६८
 मुक्ति ८ २१ २४ ३ ५ ५९,
 १९४ १९९ २ ३ ३५१ ४ १
 उसका अर्थ ३७४ उसकी श्रेष्ठा
 ५ उसकी प्राप्ति २५७
 उसकी सखी कल्पना २५ उसके
 चार मार्ग २१८ उसके साथ ईश्वर
 का संबंध नहीं ३७४ और धर्म ५
 और व्यक्ति २५८ ज्योति २ ३
 -बुध मृत्यु १२६ साम ६ ३४४
 ३४८ ३७४ ३८३ ३९३
 मुख्य जाति ६४ बरवार १२४
 बाबबाह १ ७ राम्य ५९ सम्राट्
 ९३ २६१ साम्राज्य १२४
 मुनि १ ९ १२६ पूर्वकासीन ३३५
 मुमुक्षु और धर्मोच्छ ५३
 मुसलमान ३६-७ ५१ ८३ १ ८ ९,
 ११२, १४५, १६१ २६७ २९७
 उनका शक्ति-प्रयोग २७३ उनकी
 भारत पर विजय १ ६ उनके सामे
 का तरीका ८२ और ईसाई २६४
 कस्टर ३७७ जाति १ ८ धर्म
 ९२ नारी ३ २ भारतीय ३७७
 विवेता १ ७
 मुसलमानी अभ्युदय १ ७ काल मे
 आन्दोलन की प्रकृति १२३ धर्म
 १ ६ प्रभाव २६४
 मुस्लिम संसका बन्धुत्व ९ सरकार
 १५
 मुहम्मद १७ २१ ३६ ४१ १५७
 ३६८ ३८६
 मुहम्मद १४५

- 'मूर' ९१, जाति २४२
 मूर्तिपूजक देश २४९, देश और ईसाई
 धर्म २५२, भारत २४८
 मूर्तिपूजा २२८, २३०, २३८, २४३,
 उसकी उत्पत्ति ३७३, मुक्ति-प्राप्ति
 में सहायक ३७३
 मूर्तिविग्रह १२७
 मूसा ३०
 मृत्यु ६२, ३७६-७७
 मेक्सिको १०१, २३६
 मेयाडिस्ट २२२
 मेमफिस २४५, २४९
 मेम्फिस २७, ३५
 मेरी ४९, ९१, १८४, हेल १८३
 'मै' ३७४, ३८४
 मैक्स मूलर, प्रोफेसर ९, १६४, आदर-
 णीय गृहस्थ १५०, उनका ज्ञान
 १४९, उनका भारत-प्रेम १५०,
 उनकी सचेतनता १४८, प्रोफेसर
 महोदय १५३-५४, भारत-हितैषी
 १५०
 मैजिक लैन्टर्न ३३६
 मैत्रेयी १४८
 मैथिल एव मागधी १२०
 मैनिकीयन अपघर्म २८४
 मैसूर ८२
 मोक्ष १२, ५२, २३९, ३९८, उसका
 अभिलाषी १३४, धर्म ५१, परा-
 यण योगी ४७, प्राप्ति ५०, मार्ग
 ५०, ५५-६
 'मोहमुद्गार' ५५
 मौत और जिन्दगी २०४
 मौर्य राजा १२०, वशी नरेश
 १२०, सम्राट् और बौद्ध धर्म
 १२१
 'मौलिक पाप' २४७
 मौलिकता, उसके अभाव में अवनति
 ६८
 म्लेच्छ ४८, अपशब्द, उच्चारणकर्ता
 ३५८, भाषा ३१२
 यग मैनस हिब्रू एसोसिएशन ३५
 यक्ष्मा ६६
 यज्ञ, उसका धुआँ १०९, उसकी अग्नि
 १६२, -काष्ठ १६२, -वेदी ११६
 यथार्थ और आदर्श २९८
 यम ४७, ५५, ३५०, उसका घर ७६,
 -सदन ३५०, स्वरूप ४७
 यमराज ८५
 यमुना ४०२-३
 यवन ६३, १०५, १३३, उस पर वाद-
 विवाद ६४, गुरु १३३
 'यवनिका' १६४
 यहूदी १८, ३६, उनका विश्वास ३७८,
 और अरब २७३, और ईसाई
 धर्म-संघ २७, और पैगम्बर १८,
 कट्टर और आहार ८३, जाति
 १०६, पंडित २५५, संघ ३५
 यागटिसीक्याग १०५
 याज्ञवल्क्य १४८, -मैत्रेयी सवाद ३५४
 यादृशी भावना यस्य १५४
 युग-कल्प-मन्वन्तर १९५
 युगधर्म और भारत १४२
 युजेनी (Eugenie) सम्राज्ञी ६८
 युधिष्ठिर ५०
 युफेटीज १०५,
 यूनान १३३, ३००, उसकी प्रेरणा
 ४, देश १६४, पाश्चात्य सभ्यता
 का आदि केन्द्र ९२, वाले १३३
 यूनानी १०१, २८५, आधिपत्य १६४,
 कला का रहस्य ४३, चित्रकार
 ४३, जाति ६४, नरेश २८४,
 प्राचीन ९३, विद्याकाक्षी २६७,
 व्युत्पत्ति १६४ (देखिए ग्रीक)
 यूनिटी क्लव २५०
 यूनिटेरियन २२२, २६२-६३, चर्च
 २५३, २५५, २५९, फर्स्ट २६१
 'यूपस्तम्भ' १६२
 यूरोप ६८, ७१, ८५, ९२-४, ९८-९,
 १०२, १०५, ११३, १३३, १५१-

५२ ११२ २३५ २७ २८०
 २८४-८५, १४१ ३७७ उत्तर
 १३२ उसकी महान् सेवा-कर्म
 में परिणति १ ८ उसकी सम्पत्ता
 की मिति १ ५ उसमें सम्यक्ता का
 आगमन १ ८ सण्ड १ ५६
 तथा अमेरिका १३४ त्रिभाषी
 ४८ वर्तमान और इसाई धर्म
 ११३ बासी ४९ ५५ ६८
 यूरोपियन ४८-५ ५५ ६२ उनके
 उपनिवेश ६७ क्रोम ७
 यूरोपीय ६४-५ कति बर्बर जाति की
 उत्पत्ति १ ६ अलगुय १११
 इसाई ११३ उत्तराधिकारी २५८
 उनके उपनिवेश ६७ जाति १ ६
 तथा हिन्दू जाति २४६ बेट ६१
 २५६ पश्चिम ११ ११३
 पर्यटक ४७ पुस्तक ९६ कति
 विज्ञान १ माया १३३ २८४
 मनीषी १५१ राजा १ ८
 विद्युत्वायु (आइसोप) १३५
 विज्ञान ६४ वैज्ञानिक २८३
 सम्पत्ता ९१ १ ९ ११७ १३४
 सम्पत्ता का सभन ११२ सम्पत्ता
 की ममीषी ९३ सम्पत्ताक्षपी वस्त्र
 के उपादान १ ९ साहित्य १३३
 येशु उसकी मूर्त १४५ राजा
 १४६
 येशुका २१
 योन १५३ और शरीर की स्वस्वता
 ३१७ और साक्ष्य दर्शन ३८२
 कर्म ३५६ क्रिया ३६२ क्रिया
 उससे लाय ३६२ ज्ञान ३५५ मार्ग
 ३६२ ३९८ राज ३५६ -विद्या
 ३९०-९१ सक्ति १५
 ज्ञानानन्द, स्वामी ३४१ ३५२
 योमास्मास ३७३ ४
 योपी ९ ३७३ उनका धन्य और
 अस्मास ३८९ उनका बाबा ३९
 उसका बाधर्ष ३९ उसका सभो-

राम आहार ३९७ और सिद्ध
 २९५ मोक्षपरायण ४७ यवार्थ
 ३९०-९१
 'योनिया' (Ionia) ६४
 रणायार्थ ३६६
 रणोन्मुख ५४ १३५ ३६ २१८ १९
 उसका धर्म २१९ उसका भारत
 में वसाव १३६ उसकी वस्तिरता
 १३६ उसकी जाति धीमेधीधी
 नहीं १३६ उसकी प्राप्ति क्रममात्र
 १३६ और उत्पत्तियुग १३६ प्रवाल
 ५७
 रन्तिबेज १३५
 रवि १७८-७९
 रजिनी ११५
 रसायनशास्त्र ११७ ३ ९ ३२३
 ३३४ ३३६
 राइट जे एच प्रो २ ४
 (पा टि) २३१
 'राई' ८१
 राम-धैर्य ३२४
 राजतरुमिणी ३३
 राजनीतिक स्वाधीनता ५८, ६
 राजस्यधर्म और पुरोहित ११९
 राजपूत ८४ मद्र १४५ और १२२
 राजपूताना ८ ८२, १ ७-८ और
 हिमाक्ष्य ८७
 राजयोग ३५६ ३६२
 राज-सामंत ८६
 राजसी प्रेम और पीड़ा २२४
 राजा और प्रजा ३२३ ऋतुधर्म ८६
 रिचर्ड १ ८
 राजेन्द्र शीप ३४९
 राजेन्द्रलाल डॉक्टर ५१ (पा टि)
 राजी जीसेप्रिय ९९ ।
 राजास्वामी सम्प्रदाय १५३
 राजगौळ विशिष्ट २४६
 रामकृष्ण १४९, १५२-५९ १६७
 २१८, ४ १ उनका धर्म १५९

- उनका शक्ति-सम्प्रसारण १५२,
उनकी उक्तियाँ १४८, उनकी
जीवनी १५०, उनके धर्म की विशेषता
१५२, एकता के अवतार २१८,
और युगधर्म १४२, चरित १५१,
-जीवनी १५३, -धर्मावलम्बी १५२,
नरदेव १५१, परमहंस २३४,
भगवान् १४१, १५१, ३६० (देखिए
रामकृष्ण देव)
- 'रामकृष्णचरित' १४९, ३६१
- रामकृष्ण देव ४३, १४९, १५१, १५५,
३२२, ३३२, ३४०, ३४५, ३५१,
३५९ (पा० टि०), ३६१-६२,
३७३-७४, उनमें कला-शक्ति का
विकास ४३, यथार्थ आध्यात्मिक ४३
- रामकृष्ण मठ १६७ (पा० टि०),
मिशन १३२ (पा० टि०), मिशन
का कार्य ३७२
- रामकृष्ण वचनमृत ३४४
- 'रामकृष्ण हिज़ लाइफ एण्ड सेंडिंग्स'
९, १४८ (पा० टि०), १५१
(पा० टि०)
- 'रामकेष्ट' ३२२
- रामचरण, उनका चरित्र १४४-४५
- रामदास १२३
- रामनाथ २१८
- राम २९, ७६, ३६०-६१, ३९५, और
कृष्ण ७४, सुसम्य आर्य १११
- रामप्रसाद ५३
- रामलाल चट्टोपाध्याय ३४५, दादा
३४५
- रामानन्द १२३
- रामानुज ५६, १०२, उनका व्यावहा-
रिक दर्शन १०३
- रामानुजाचार्य ७२, और साद्य मन्त्रधी
विचार ७३
- रामानुज नरैण २८६
- रामायण ११, १८३, ३३६, जयोध्या
८८ (पा० टि०), आय जाति
द्वारा अनार्य-विजय उपायान नहीं
- ११०, उत्तर ७४ (पा० टि०),
और महाभारत ७४
- रामेश्वर ३२५
- राबर्ट्स, लार्ड ५९
- राय शालिग्राम साहब बहादुर १५३
- रायल सोसायटी ९४
- रावण ४९, २१८
- राष्ट्र, उसका धर्म २५८, उसका मूल्या-
कन ३००, उसकी मुक्ति का मार्ग
२८९,
- राष्ट्रीय आदर्श ६०, उसके दो-तिहाई
लोग २७५, चरित्र ११७, जीवन
१२०, दुर्गुण २७७, सम्यक्ता १६
- रिचर्ड, राजा १०८
- रिजले मॅनर १९७ (पा० टि०)
- रिपन कॉलेज ३४०
- रीति-नीति ४९, ५७, ९६, १४९,
३९३, -रिवाज १६, ११८, १३७,
२३१
- 'रेड इन्डियन्स' २५६
- रेनेसाँ (नवजन्म) ९३
- रेल तथा यातायात १६८
- रेवरेण्ड २४५, एच० ओ० ब्रीड
२४३, एम० एफ० नॉक्स २२८-
२९, जोसेफ कुक २३५, लेट्वार्ड
३१०
- रेव० वाल्टर ब्रूमन २९१
- रेव० हिरम ब्रूमन २९१
- रूढि और नियम २१९
- रूम ८१, ९९, २८९, वाले ६९
- रूमी और तिव्वती ८८, और फ़ामीमी
पर्यटक का मत ६४
- रोग-शोक का कुरुक्षेत्र ४७
- रोम ४, ९२-३, १०६, १५९, २७१,
उसका ध्येय ४, प्राचीन ३००
- रोमन १०६, १३४, कैथोलिक १६१,
२७२, कैथोलिक चर्च २७४,
जाति ९२, प्राचीन ८२, वाले
२८५, नामाज्य १०६
- रोडेंट नोडोर २७०, २८५

संका २१८ २३६ २७३ डीप २१८
 घटीरक्ष्मी २१९
 कदमी और सरस्वती ११४
 कदय उसकी प्राप्ति १५९
 कदमऊ १४६ सहूर १४५ शिया
 लोमों की राजधानी १४५
 कदम ९ (पा टि) ६६-७ ८५ ६
 ९३ ९५ १४७ नयरी ११२
 'सन्दन-मेड' ८५
 कस्तुरि कला और भारत २२४
 काम माहर्षि हिस्टोरिक घोषामटी
 २८३
 काँ मर्सी ९९
 कामा २९६
 काई एक्टर्स ५९
 का सलेट एकेडमी २४८
 'काँ सैकेट अकादमी' २० २९
 काहीर १२४
 क्रासियन विपटर २९ ९१ २९१
 'कदकते पत्थर पर काई कहाँ?' ९
 कुसी मौलरी २३७ २३९
 'कैटर ब क्यासे' ९८
 केनिम जाति २९१
 कोकसेबा ३९७
 कोकाचार ७३ १४६
 कोम और वासना २१९
 कौकिक विद्या १६
 स्प्रीम १८२
 कमानुसुत गुण और अधिकार १५८
 कनमानुष जाति ७६
 कनस्पतिशास्त्र ३ ९
 कदाहुनगर ३६४
 'कर्म-हाउस' ३२१ ३६७
 'कर्म' (virtue) ९६
 कर्म कर्म ३८ मेह का कारण ६३
 विभाग और कार्य ११२-स्यबस्था
 उससे काम २८ संकल्पना ६३
 संकरी जाति १ ७

कर्णामम और कार्य ११२
 कर्णाममाचार १११
 कसिष्ट १४८
 कस्तु, अस्तित्वाहीन २९८ उनमें परि
 कर्तन २२१ केवल एक ३७४
 काताबरन और शिवा २६
 काय अमेय २७४ जवूट ३३६
 कर्त १५ आदर्श १८ एकेवर
 ३६ कर् ११९ ईत २१ पुनर्ब
 म १५ बहुदेवता ३६ भौतिक
 २८ भौतिकता २१४ विरता ७४
 कामदेव कृपि ३६
 कामाचार शक्ति-पूजा ९
 कामाचारी ९
 कायसेट १९४
 वाराणसी ५१ (पा टि) २८
 'काई सिक्सटीन डे मर्सी' २८१
 कार्कडोर्क २७८
 कास्पोर ११३
 कासिगटन पोस्ट २९४
 विकास और आत्मा २६८ सर्व
 क्रमिक २१९
 क्विटर ह्युगो ११३
 किकम्पुर ८
 विचार और आवर्ष १२ और जगह
 ३२१ और शब्द ३२ मन की
 पति ३७ शक्ति १५९, १६८
 'विचार और कार्य-समा' २२७ २२९
 विजयकृष्ण कसु ३५४ कानू ३५४
 विजयनगर १२४
 विमान १ १३९ आधुनिक ३५
 उसका अटक निबन्ध २५८ और
 कर्म ३ २ ३३३ और साहित्य
 २८१ सामाजिक २३२
 विपत्तिकाव ७४
 विरोधी विमान २३७ विपत्ती २९५
 विरोह-मुक्त ३४८
 विद्या अपरा ३८८ उसकी संज्ञा
 १६४ और कर्म १ ८-वर्षा
 १६ -बुद्धि ३१६ ३३८, ३६१

भारतीय १६४, मनस्तत्त्व ३८९,
यूनानी १६४, लौकिक १६०,
सम्मोहन ३८९

विद्यार्थी और कामजित् ९७

विद्वत्ता और वृद्धि २२२

विधवा आश्रम ३६४

विधि-विधान ११८

विभीषण २१८

विमलानन्द, स्वामी ३४१, ३४८

वियना ९५

'विरक्त' ७ (देखिए सन्यासी)

विलायत ६९, ८७, ११४, ३५५,
३६५-६७

विलायती पत्र ३६६, भोजन-पद्धति
७१, रसोइया ७१

विव कानन्द स्वामी २७, २९, २०३

(पा० टि०), २१६, २२७, २३२,

२४२, २४४-४६, २४८-५०,

२५२, २५४, २५६-५७, २५९,

२६१, २६३, २६९-७१, २७६,

२७८, उनका अविश्वास २७१,

उनका काव्यालंकार प्रयोग २५६,

उनका रोचक व्याख्यान २६९,

उनका सृष्टि के बारे में सिद्धान्त

२७१, उनके तार्किक निष्कर्ष

२५६, द्वारा अपने धर्म का

समर्थन २७२, पूर्वीय बन्धु २५५,

ब्राह्मण सन्यासी २५३, महान् पूर्वीय

२५३, मूढभाषी हिन्दू सन्यासी

२७६, रहस्यमय सज्जन २५६,

सज्जन भारतीय २६९, हिन्दू दार्श-

निक २५५, हिन्दू सत २५८,

हिन्दू सन्यासी २४८, २५२,

२६७, २७०, २७२, २७८

(देखिए विवेकानन्द)

विव कानोन्द २२८ (देखिए विवेकानन्द)

विव कथोनन्द २२७ (देखिए विवेकानन्द)

विवा कानन्द २३०-३१ (देखिए विवे-

कानन्द)

विवाह, उसका आदि तत्त्व १०३,

तथा खान-पान २८८, निम्न
संस्कारहीन अवस्था २८०, -पद्धति
का सूत्रपात १०२, प्रणाली में
परिवर्तन और कारण ३०१, बाल्य
२५१, ३२२, संस्कार २५१

विवि रानान्ड, २२९ (देखिए विवेकानन्द)

विवी रानान्ड, स्वामी २३१ (देखिए
विवेकानन्द)

विवेकचूडामणि ३९२ (पा० टि०)

विवेकानन्द, स्वामी २३, २७ (पा०-

टि०), ३५-६, ३८, १५३, १६२,

१८१, १८३, २३३-३५, २७०,

२७८, २८८, २९३-९४, २९६,

३००, ३०३, ३०५, ३०९,

अंग्रेजी व्यवहारपूर्ण २४६, अत्य-

धिक आनन्ददायक २४५, अन्यतम

विद्यार्थी २४५, अप्रतिम वक्ता

२४४, आकर्षक व्यक्तित्व २३८,

आहार सबधी विचार ७८-९०,

उच्चतर ब्राह्मणवाद की देन २३४,

उच्च शिक्षा-प्राप्त २७०, उनका

आश्चर्यजनक भाषण २४५, उनका

उच्चारण २४६, उनका धर्म विश्व

की तरह व्यापक २४२, उनका बाह्य

व्यक्तित्व २४६, २७४, २९१,

उनका भाषण २९१, २९६, उनका

शब्दचयन २९१, उनका सामान्य

व्यवहार १४५, उनका व्यक्तित्व

२३२-३३, २३८, उनका स्वदेश

के प्रति अनुराग ३२२, ३२८,

उनकी अंग्रेजी और भाषण-शैली

२९०, ३३३, उनकी निरपेक्ष दृष्टि

३५, उनकी वाग्मिता २३८,

उनकी विशेषता ३१८, उनकी

सगीतमयी वाणी २७७, उनकी

संस्कृति २३८, उनकी सत्यवादिता

३२५, उनके ईसाई सबधी विचार

२६६, उनके जल सबधी विचार

७९, कुशल वस्तुता २३९,

गभीर, अन्तर्दृष्टि २४४, गभीर,

सन्ने श्रीर सुसंस्कृत व्यवहार
 २७९ चरित्र-गुण ३४५
 बुद्धकीय व्यक्तित्व २३९ चर्क-
 कुसमता २४४ ईवी अधिकार
 द्वारा सिद्ध कृता २३७ निस्पृह
 संन्यासी ३११ पूज्य ब्राह्मण
 संन्यासी २९१ पूतात्मा २३४
 प्रतिमादाकी विद्वान् २४३ प्रसिद्ध
 संन्यासी २५ बंगाली संन्यासी
 ३११ ब्राह्मण संन्यासी २३२
 २७९ ब्राह्मणों में ब्राह्मण २३८
 भद्र पुरुष २३३ भारतीय संन्यासी
 २९ माव जीर आहृति २३४
 २४५ मन्त्र पर नाटककार २४५
 महान् मिष्टा २४४ मोहिनी
 घमिन् ३५२ मुवा संन्यासी
 ३११ बिहार में कलाकार २४५
 विश्वास में आदर्शवादी २४५
 संगीतमय स्वर २३८ संन्यासी
 २८९ सर्वश्रेष्ठ कृता २४४
 सुंदर कृता २३१ ३२ मुबिख्यात
 हिन्दू २४१ सुसंस्कृत सज्जन २७
 'त्रिवेदानन्द जी के संघ में' (पुस्तक)
 ३४८ (पा टि) ३५१
 'त्रिवेदानन्द साहित्य' २५१ (पा
 टि) २६१ (पा टि) ३०८
 विमिष्टाईत ३५९ जीर अईत ५९
 बाह ३८३ बाबी २८१
 विशेष उत्तराधिकार ३ ४
 विदेषाधिकार ११९, २२३
 विश्व-धर्म ११६ श्रेय २२३ ३८४
 -ब्राह्मण १४६ ३८८ भ्रम १८४
 -मेला २४४ -मेला सम्मेलन २४५
 -भोजना और ईस्वर ३३ -स्वप्न
 १८३-८४
 विद्वान्बन्धुता सन्धी २१४
 विद्वान्मित्र १४८
 विपरी और विपय ३८४
 विपुवन रत्ना ६३
 विष्णु १४६ ३९९ पालनकर्ता २४८

पुराण १६३
 विस्क्रोन्सिन स्टेट बर्नर २४१
 वीणापाणि १६९
 'वीरत्व' ९६
 वीरभोग्या बसुन्धरा ५२
 वीर संन्यासी १७३ १७५
 बुद्धस श्रीमती २२८
 बुद्धावन-कृत्र १२८
 वेद ७ ५२, १२३ १२७ १३९ १४६,
 १५२ २ ४ २ ७ २२२, २२७
 ३ ७-४ ३१२ ३०१-७२, ३८७
 ३८९ खजवा सुक्त ११ ज्ञान
 वाक्य २९७ उनका कर्मकाण्ड
 ३९५ उसका व्यापक प्रमाण
 १३९ उसका शासन १३९ उसकी
 शोषणा २१५ उसके विमान
 १४ उसमें कार्यविद्या के बीज
 १६४ उसमें विभिन्न धर्म का बीज
 १६३ लूक १९६ धर्म के दो
 शब्द ३ ३-४ -नामवारी १३९
 परम तत्व का ज्ञान २१५ परिमाण
 १३९ प्रकृत धर्म ११४ प्रचारक
 १६६ संघ १ ९ ३८५ -मूर्ति
 'मयवान्' १४१ बापी १३७
 विद्वान्सी ३८१ सर्वश्री मनु का
 विचार २१५ सार्वजनिक धर्म
 की व्याख्या करनेवाला १३९
 हिन्दू का प्रामाणिक धर्मग्रन्थ २८१
 वैदव्यास भववान् ३५९
 वेदान्त १४६ ३ ५, ३४८ ४९ ३५५,
 ३६ ३६४ ३६६ ३७ ३९२
 उसका प्रभाव ३७७ उसकी चारणा
 सम्मता के नियम में ३९४ उसके
 कथम तक पहुँचने का उपाय ३९८
 जाति भेद का विरोधी ३७७ दर्शन
 ३ ३८ ३९१ द्वारा व्यक्तित्व
 ३९६ -गाठ ३६७ नाम १४
 तामिनि ३५४ (पा टि)
 वेदान्तवादी धर्माध्य ३९१ ९२
 वेदान्तवादी धर्म ३४७

वेमली चर्च २२९, प्राथनागृह २२७
 वैदिक अनुष्ठान ४०३, आचार ५७,
 उपाय उचित ५६, और बौद्ध धर्म
 का एक उद्देश्य ५६, देव १२०,
 धर्म ५६, धर्म का पुनरुद्भव १२१,
 धर्म की उत्पत्ति १६२, धर्म तथा
 बौद्ध धर्म १२०-२२, धर्म
 तथा समाज की भित्ति ५६, पक्ष
 १२१, यज्ञधूम १३५, स्तर २२२,
 हठकारिता १६६
 वेदान्तिक धर्म ३७५
 वैद्यनाथ १६८
 वैयक्तिक अनुभव ३३२, ईश्वर २९९,
 पवित्रता ३०१, सम्पत्ति ३०२
 वैराग्य, उमका प्रथम सोपान ३९७,
 उसका भाव ३९२, और आनन्द-
 लाभ ३९७, और त्याग १३६,
 यथार्थ ३३८
 वैवाहिक जीवन, उसमें नारी का
 समानाधिकार ३००, और तलाक
 २५०
 वैश्य ६३, ६५, १०३, और वाणिज्य
 ३०४
 वैष्णव ७४, आधुनिक ७४
 वैष्णवास्त्र १०३
 व्यजनाशक्ति ११७
 व्यक्ति अज्ञ ३९२, अपना निर्माता
 २९९, उसका अनुसोचन ३२६,
 उसका निर्माण २२४, उसकी
 शक्ति २१९, उसके उत्थान से
 देश का उत्थान २१९, उसके
 सन्यासी बनने की प्रतिज्ञा २८३,
 और ईश्वरत्व का ज्ञान २१९,
 और क्रियाशील विशेषता २२४,
 और गुरु की जानकारी ३०, और
 नियम ३१, और मुक्ति की साधना
 २१९, और विचार का दमन
 ३१, और व्यक्तित्व २७४, कम
 शिक्षित २८१, चरित्रवान ३७२,
 ज्ञानी ३९५, देश-काल के भीतर

नही ३७७, धर्म के लिए २१५,
 धार्मिक का लक्षण ५२, पूजा ३६,
 वास्तविक ४२, शिक्षित आचार्य
 २८०

व्यक्तिगत विशेषता २३७
 व्यक्तित्व और उच्चतर भूमि ३७६,
 प्रकृत ३७६
 'व्यष्टि' ३९६ (पा० टि०)
 व्यापारी और कारीगर २५१
 व्यायामशाला २१४
 व्यावहारिक कार्य २९०, जीवन ९,
 दर्शन और रामानुज १२३
 व्यास ५०, २३७, ३५७, ३५९
 ब्रूमन बन्धु २९०-९१, २९३, रेव०
 वाल्टर २९१, रेव० हिरम २९१
 शकर ५६, १२२, १६२, अद्वैतवादी
 ३५९, उनका आन्दोलन १२३,
 उनका महाभाष्य १६८ (देखिए
 शकराचार्य)
 शकराचार्य ५५ (पा० टि०), १२२,
 १६२, २०७ (पा० टि०), और
 आहार ७२
 शक्ति १४६, आसुरी ३६, उद्भावना
 १५९, उसकी अभिव्यक्ति २१४,
 उसकी पूजा २६१, उसके अवस्था-
 न्तर ३३४, और अभीष्ट कार्य
 ३३२, पूजा, उसका आविर्भाव
 ९१, -पूजा और यूरोप ९१, -पूजा,
 कामवासनामय नहीं ९१, -पूजा,
 कुमारी सधवा ९१, विचार १५९,
 शारीरिक एवं मानसिक ३३२
 शक्ति 'शिव-ता' २१५
 शबरस्वामी १६८
 शब्द और भाव ३७२, और रूप ३२
 शरच्चन्द्र चक्रवर्ती ३४८, ३६३, दाबू
 ३४८, ३५१, ३६३
 शरीर ८, १३, ४०, ५५, ६६, ७०,
 १०३, १३६, १३८, १४१, १४३,
 १६९, २०७, २१३, २१५, २१७-

१८, २२३ २५७ २८२-८३ ३६१
 ३९८ आत्मा का ब्रह्मावस्था २२
 उसकी गति २९८ उसकी सिद्धा
 ३७२ और मन २९९ ३८८
 भौतिक ३७ मन और आत्मा
 ६३ मन द्वारा निर्मित ३८९
 मन द्वारा प्राप्त २९८ मरणशील
 २१५ योग द्वारा स्वस्व ३९७
 रसा ३३७ विज्ञान ३८२ -सुवि
 तथा पाश्चात्य और प्राच्य ६८९
 -सम्बन्ध १५४

शास्त्रमूर्ति ११९
 शापेनहोमर जर्मन दार्शनिक २८४
 शालग्राम १६२ सिद्धा १६२ ६३
 शालग्राम साहब बहादुर, राय १५३
 शास्त्रि १८३ १८८ और प्रेम ३९
 शास्त्र और धर्म १४२ व्योतिप
 ३२३ मूर्धन ३ ९, ३२३ भौतिक
 ३ ९ ३२३ ३३९ सत्य से
 शास्त्र १३९ मत ५२ रसामन
 ११७ ३ ९ ३२३ ३३४ ३३६
 शनस्पति ३ ९

शाहजहाँ ५९, ९३
 शिकामो २३१ ३२ २३५, २३७-३९,
 २५ २७ २७९, ३१९ जर्म
 महासभा १६१ ३३९ महासभा
 १६१ जहाँ का विद्व-मेका २४३
 'निकायो सडे हेराक' ३८
 शिक्षा औद्योगिक २२८ और अधि
 कार ११२ शान ३५२ बौद्धिक
 १४ व्यवहार ५१

शिवो मुमुक्षुमान १४५
 शिवशक्ति १६९
 शिव ४९-५ १२६ १४६ २ ७-८
 शिवानन्दस्वयं ३८९ शान ४ १
 शिवानन्दजी २४८ शरीर २ ९
 शिवानन्द १६३ पुत्रा १६२
 शिवानन्द स्वामी ३४१ ४२
 शिवानन्द २ ७-८

सुक ५
 सुकनीति ५२ (पा टि)
 'सुक' ७८
 सुज्ञानन्द स्वामी ३३९ (पा टि)
 सुम १९४ बहर्मन्त्र २८१ और सुम
 २५, १८५, २ २ ३७४ जर्म
 २८१ प्रत्येक धर्म की नींव से
 २९४ बचन २८१ संकल्प
 २८१ सर्वोत्तम ३१

सुभाषुम १७३ २
 सुम्यवाही ३ ५ जनका उदय ३ ४
 सुकस्यियर १६५ कसब ३
 सुपाई एस थार श्रीमती २४५
 सुतान १२ ३७९
 सुकवाला उमा १९
 सुलोपदेश ३७९
 सुवात्स १ ३

सुमधान-वैराग्य ३३६
 सुदा ३८५ अमीष्ट की जाणसकता
 २५ एवं मक्ति १४३ ३१५
 और कलिदान २ ३
 सुदिक और सेवक २५१
 सुबन मनन और निदिध्यासन ३८७
 ३९८

सुई इप्प ४९, ५५
 सुमाप्य ३३६
 सुी राम २१८ १९
 सुी रामइप्प बचनानुत् १५५ (पा
 टि)
 सुति १३९ -वाक्य १४४
 सुोन एवं सुस सुम १४८
 सुवेतावतरीनिपद् ३५१ (पा टि)
 ३८२ (पा टि)

सुदृक् ३६३
 सुटी (रेवी) १४६
 सुमीन १९ कता १४३ भाद्रपतामा
 २६७ २६७ २७१ निपाति
 ३ मन्था ३९

‘सगीत मे औरगजोव’ ३२३

सग्रहणी ८०

सथाल १५९, उनके वशज १५८

सन्यास ५५, १२०, १३५, २१७,

२४१, आश्रम २६६ ३२२, ३५४,

ग्रहण १५४, धर्म, जीवन के लिए

आवश्यक नहीं ३६५, व्रत १५४,

३५२

सन्यासिनी २४९

सन्यासी ७, ११, १४, १७, १५३,

१७३-७४, २३०, २४९, २६३,

३१४, ३१६, ३१८-१९, ३५३,

३६१-६२, ३६४, उनका मूल उद्दे-

श्य ३५३, उसका अर्थ ७, और

गृहस्थ १८, और ब्रह्मचारी ३५५,

३६७, और शिक्षा-रीति १९,

गैरिक वस्त्रधारी १८, जातिगत

बधन मुक्त २६६, ढोगी ३२४,

३२६, तथा धर्म और नियम

३२२, धर्म २८३, नवदीक्षित ब्रह्म-

चारी ३६४, निम्नजातीय २६६,

बगाली ३११, ब्राह्मण २३४,

भाई १८५, यथार्थ ३२६, विद्वान्

२३०, विवाह का अनधिकारी

२८३, शिष्य ३९७, सपत्तिवि-

हीन ८, सम्प्रदाय १८, सुधार और

ज्ञान के केन्द्र १८

सयुक्त राज्य २६७, राष्ट्र २३५

सयुक्ता ४०२

सवेग, पशु कोटि की चीज २२०

सस्कृत कुल २९४, पुरातत्त्व १६६,

पुस्तक २८५, भाषा १३३, २८४,

३५८, मत्र ३१२, ३४९, शब्द

४२, साहित्य १४८

सस्था, उसकी अपूर्णता तथा कल्याण

२१९

सहिता, अथर्ववेद १६२, उनमे भक्ति

का बीज ३८५, ऋग्वेद १४८,

-नीति २८१

सतीत्व ९७, ३०३

सत् १९६-९७, २४२, वास्तविक ३६

सत्य ८, अद्वैत ३३५, उच्चतर ३७,

उसका अन्वेषण २१४, उसका

प्रकाश २३६, उसकी खोज २३६,

२५५, उसके कहने का ढग २१४,

उसके दो भेद १३९, उससे सत्य

की ओर २५४, औरत्याग २१४,

और मिथ्या २२१, और राष्ट्र

३७, चिरन्तन १५९, ज्ञान

३३५-३६, निरपेक्ष ३३१, ३३५,

परम १७, रूपी जल २४७, वादी

५०, वास्तविक ३१५, सापेक्ष

३१३, सारभूत २७३

सत्त्वगुण ५४, १३५-३६, उसका

अस्तित्व १३६, उसकी जाति

चिरजीवी १३६, उसकी विद्या

१३५, और तमोगुण १३६, प्रधान

ब्राह्मण ५४

सत्सग, उसकी महिमा ३९९, एव

वार्तालाप ३०९

सद्गुरु ३९८

सनक ५०

सनातन धर्म ३५९, उसका महत्त्व

१४१, शास्त्र और धर्म १४२

सन्त कवि ५३ (पा० टि०)

सन्मार्ग और भाषा ३६२

सप्तघातु २०७

सम्यता, अग्नेयी का निर्माण २८९,

आधुनिक यूरोपीय १३४, आध्या-

त्मिक या सासारिक ११३,

इस्लामी १४५, उसका अर्थ

३९४, उसकी आदि मिति १०५,

उसके भय से अनाचार ७०,

एव सस्कृति १५९, पारसी ९२,

राष्ट्रीय १६

समभाव ३३४

समाज, उसके अनुसार विभिन्न मत

३२७, और गुरु का उदय १६०,

और सिद्धान्त ३१, देश और

काल ३२७, वादी ३४७

समाधि २१५, ३८४ अवस्था ३८७
 -सत्य ३९१
 समानता और भास्वभाव २८८
 सम्पत्ति और वैभव १८७
 सम्प्रदाय आधुनिक संस्कृत १६६
 बियोनोवी १४९ बैठवासी ३८१
 बीड १६६ रोमन कॅथोलिक
 २७२ बीजवा १६३
 सम्मोहन-विद्या ३८८-८९
 घर बिस्मियम हंटर २८४
 घरस्वामी ११४
 सर्वनात्मक सिद्धान्त १८
 सर्प भ्रम ३३५
 सर्वधर्मसमन्वय ३५८
 'सर्वेश्वरबाब का युग' ३६
 सहस्ररजनी परित्र' २८५
 सहिष्णुता २३७ उसके लिए मुक्ति
 २४६ और प्रेम २४६
 सांख्य दर्शन ३८२ मत ३८२
 साइबेरिया ४९
 सांख्यिक व्यवस्था ५४
 साधन-यत्र ३८५ प्रयागी ३९५
 मञ्ज ३४८ ३५२, ३६१
 -मार्ग ३८५ -सोपान ३४५
 साधना प्रयागी ३६१ ३८१ अनुष्ठान
 ३६१ राज्य ३४५
 साधु-दर्शन ३३ -संय ३३८ -सम्पासी
 १५ ३१५ ३२३ ३२६ ३८१
 घानेट १८१
 घाण्ड्य ज्ञान ३९६ ९७
 घामरीबा गारी और बीसा १५४
 'सामाजिक प्रगति' २२१
 'सामाजिक विज्ञान संघ' २३१
 सामाजिक विभाजन २२७ स्वाधीनता
 ५८
 सामिप और निरुमिप भोजन ७३
 साम्यवाद ३९१
 साम्राज्यवादी ४
 सारा हर्मट २७९
 'सार्तोर रिबार्स' ३२

सामेय इवनिम म्यूज २२७ २३
 'सामोमन के गीत २६२
 'साहित्य-कल्पद्रुम' ३४५
 सिद्धम ३३९, ३४१
 सिद्धमी गीत २३५
 सिक्न्दर ८७ सम्राट् ३३
 सिक्न्दरपाह १३४
 सिक्न्दरियानिवासी ३८२
 सिक्क साम्राज्य १२४
 सिदियन (scythian) १२१
 सिद्ध ३७५ 'जिर्नो' १५७
 सिद्धि-काम १५२
 सिङ्गुका २८५
 सिन्धु १२, १५ बेघ १७
 सियाम्बह ३३९
 सीता २१८ १९ देवी ७४ राम १८३
 सुख अनन्त ३७६ और श्रेयस् २८
 -सुख ३१ १७७ २०२ २९
 -सोम ५
 सुभार-आन्वोहन २९२ और सुधि
 का आचार २४७ बाबी १२४
 सुभोधान्त्य स्वामी ३५२
 सुभावा ४९
 सूर्य १४१ १४६ १८ २ ३४
 २ ९, २५७ २६५, ३३७ ३५१
 ३८४ ३८८
 सृष्टि २ ८ ३८ अमाधि और
 अनन्त २९७ उसका अर्थ २९८
 उसका आविर् नहीं ३८ और
 मनुष्य ३३ -नाम १९६ मनुष्य
 समाज की १५ रचना २७१
 रचनावाद का सिद्धान्त ३३-४
 रक्ष्य ३३७ व्यक्त ३९७ समाज
 की बेघ-मेघ से १ ३
 सन कैशवपन्त्र १४९, १५३ मरेकनाथ
 ३४ ३६४
 सेनेटर पामर २७
 सेन्ट हेजेना ९९
 सेन्ट्रल चर्च २४३ वैपिस्ट चर्च
 २२८ २९

सेमेटिक ३००
 'सेल मूल तातार' १०६
 सेलिविस ४९
 सेलेवीज ६३
 सेवर हाल २८२
 सेवा, निष्काम १९२
 सेवियर ३४२, श्रीमती ३४०, ३४२
 सैगिना २७०-७१, इवनिंग न्यूज
 २७२, करियर हेरल्ड २७४
 सैन फ्रांसिस्को ३५४ (पा० टि०),
 ४०१ (पा० टि०)
 सैरागोटा २३१
 सोमलता १६२
 'सोज्ह' २९२
 सौरजगत् ३३७
 स्कम्भ १६२-६३
 स्कॉटलैण्ड ९४
 स्टर्डी, ई० टी० ३५५
 स्टार-रगमच ३६६
 स्टुअर्ट खानदान ९४, मिल ३३५
 स्टैडर्ड यूनिशन २८६
 स्टैसबर्ग जिला ९७
 स्टोइक दर्शन ३८१
 'स्ट्रियेटर डेली फ्री प्रेस' २४०
 स्त्री और पुरुष २५७, और बौद्धिकता
 २१६, -पूजा ९०, सबधी आचार
 और विभिन्न देश ९६,
 स्थिरा माता २०३ (पा० टि०)
 स्नान और दाक्षिणात्य ७०, और
 पाश्चात्य, प्राच्य मे अतर ६९-७०
 स्नोडेन, आर० वी० कर्नल २४५
 स्पेन ४, ६९, ८१, ९१, २३५, उसकी
 समृद्धि २३६, देश १०८, ११३,
 वाले १०१, २७३
 स्पेनी लोग २७३
 स्पेन्सर ३०९
 स्मिथ कॉलेज २७८, पत्रिका २७८
 'स्रष्टा एव सर्वाधिनायक' १२०
 'स्टैटन लिमेयम व्यूरो' २५०
 स्वतंत्रता, उच्चतम ३१, सच्ची ०२२

स्वधर्म, उसका अनुसरण ५२, उसकी
 रक्षा ५६
 स्वयंवर ४०१, उसकी प्रथा १०२,
 स्वर्ग १२, २३, ६९, १३४, १७४,
 १८०, २१४, २५८, २६५, २८५,
 ३७८, ३८६, उसकी कल्पना २५,
 और देवदूत २५, और सुख की
 कल्पना २५
 स्वर्णिम नियम २५८-५९
 स्वाधीनता ९९, आध्यात्मिक ५९,
 राजनीतिक ५८, ६०, समानता
 और बहुत्व ९४, सामाजिक ५८-९
 स्वेडन ८१, २३९
 स्वेडनबर्ग २५८

हुटर, सर विलियम २८४, २८६
 हुक और अधिकार २२४
 हुक्सले ३०९, ३१२
 हुजरत ईसा १५४, मूसा १५७
 हुटेन्टॉट १५९
 हुठधर्मी और जडता २९४
 हदीस ११३
 हनुमान १४३, २१९
 हुब्बी १५९
 हरमोहन बाबू ३४८-४९
 हरिद्वार ७८
 हरिनाम ५४, उसका जप ५२,
 -सकीर्तन-दल ३४०
 हरिपद मित्र ३०९ (पा० टि०)
 हसन-हुसैन १४५
 हार्टफोर्ड २३२
 हार्डफोर्ड ३७८
 हार्वर्ड क्रिमसन २८२, विश्वविद्यालय
 ३८०
 'हार्वर्ड रिलिजस यूनिशन' २८२
 'हॉल ऑफ कोलम्बस' २३२
 हॉलैण्ड ८५
 'हिदन' ३९४
 हिन्दुस्तान २३२, और देशवामी
 ब्राह्मण २५०

विद्यमानि २ ४ २९१
 विश्वेश्वर १५१
 विषय भीरविषयी २३ भोग १३४
 विष्णुस्वामी ३६६ (पा टि)
 वीभाषानि ३२७
 वृत्तान्त ३६३
 बहूट हाल १५
 बंध राजा २१७
 बंध २५, ४१ ६३४ ११३ ११७
 १३२ २ १ (पा टि) २२५,
 २४१ २८४ २८९ ३६ ३३४
 ३६९ ३७२ ३७९ अर्धपूर्व ३७
 बनावि वनस्त १५१ ३६९
 बर्ष ३६१ (पा टि) आध्या
 रिमक बीकन के नियम ३६९
 ईस्वर का प्रामाणिक बचन १६
 उसका अर्थ ८९ उसका प्रताप
 १६ उसकी माय्यता ४३ चक्र
 ११४ २२१ ३३१ (पा टि) और
 आत्मा संबंधी विचार १४९ और
 कट्टर वैदिक मार्गी १६ और
 कर्मकाण्ड का आधार २८९ और
 बंधबासी ३६५ और भारत ९२
 और मज २८९ और हिन्दू धर्म
 १४९ दो संघ में विभक्त
 ६३ -याही ९ प्राचीनतम ग्रन्थ
 १६ मंत्र ३६१ महान् ग्रन्थ ९
 माध्यम से सत्य का उपबोध १५१
 यजुर् ६३ ३६१ (पा टि) ३६९
 वेदान्त ३६३ (पा टि) साक्षात्
 १६ हिन्दू का भावि धर्मग्रन्थ ६३
 'वेद का अर्थ' ६३
 वेदान्त ६४ ७२ ८१ ८९, ९१ २
 १ ४-५, ११७ १५९, २५४
 अधिमत् ८ आस्थावादी ७३
 उद्यम का इतिहास १५-५१
 उद्योग १७ उसका अस्वादिग्न
 ८ उसका ईस्वर ८७ १८८
 उसका पुत्र ७६ उसका राजा
 ११९ उसका ध्येय ८ उसका

निर्मीक सिद्धान्त ९९ उसका
 प्रतिपादन ११८ उसका प्रतिपाद्य
 ८३ उसका रूप ७८-८० उसका
 विचार ८१ उसका समाधान
 १९८ उसकी अपेक्षा १५ उसकी
 ईस्वर-कल्पना ९७ (पा टि)
 उसकी प्रत्य पर अनास्था ७९
 ऐतिहासिक व्यावहारिक परिणाम
 ११७-२१ और आस्तिक दर्शन
 ६४-५ और उसका प्रचार ७३
 ४ और प्रथम ७९ और प्रथम संबंधी
 विचार ७९ और बन्धन ९७
 और भारत ८ और मुक्ति-वापदा
 ११६ और व्यक्ति-विशेष की
 पारणा ७९ और समस्त धर्म २५
 और साक्ष्य ६७ (पा टि)
 और सामाजिक आकांक्षा ३ १
 कठिनाई ८ कथन १९८ केसरी
 ३८ जाति-भेद-हीन ८९ दर्शन
 ६३ ७१ ७७ ११४ ११७-१८
 १५ १७ ३६४ (पा टि)
 ३६७ ३७२ दर्शन और निराशा
 वाद ७२ दर्शन और मयार्थ जोसा
 वाद ७२ राजा आपुनिक संसार
 पर १५ दृष्टि १ द्वारा
 उठामा प्रश्न ८५ द्वारा अनर्थ
 शीघ्र ईस्वर का उपदेश ७९ द्वारा
 पाप पापी की स्थापना ८१
 धर्म ३६५ पारणा ८ निराशा
 वादी ७३ प्रतिपादित ईस्वर ८९
 प्राचीनतम दर्शन ९३ १२ मत्
 ६५, ७१ १ ३ महता ११८
 राष्ट्रका धर्म ८ सद्य ८४
 विष्णुवाच सूत्र ११९ विशिष्ट
 सिद्धान्त ११९ विशेषता ८९,
 ११७ १५२ व्यावहारिक पक्ष
 १ २ व्याख्याकार का उद्यम
 १५१ शास्त्रिक अर्थ ६३ सिद्धा
 ७४ ८२ ९३ संघर्ष के लिए
 स्थान १६५ सम्प्रदायपरिहित ८९

सागर ७६, सिद्धान्त ९७, २९६, ३६७, सिद्धि ९२, सूत्र का भाष्य ३७० (पा० टि०), हिन्दू का धर्म-ग्रन्थ ६४

वेदान्त एण्ड दि वेस्ट १३७ (पा० टि०)

वेदान्ती, अद्वैत ६७, आधुनिक १७१, उत्साही २५४, उनका उपदेश ९७, उनका कथन १०८, उनका मत ६७, ७१, उनकी सहिष्णुता २९५, और आध्यात्मिक विशेषाधिकार १००, और उनकी नीति १२७, और सन्यासी २८७, और साख्य मत ६६-७, नैतिकता १०१-२, मस्तिष्क १०९, विचार ६८, सच्चा ७५, सत् ६८

वेनिस, अर्वाचीन २०८

वैज्ञानिक शिक्षा ३५८

वैतरणी २४१ (पा० टि०) (देखिए लेयी नदी)

वैदिक ऋषि ३७१, कर्मकाण्ड ६३ (पा० टि०), ३६४, काल २०५-६, क्रियाकाण्ड ३६२ (पा० टि०), ज्यामिति का उद्भव १३०, धर्म १६०, २७२, ३७२, नाम २८६, पशुवलि ३५४, पुरोहित २०१, भाषा १६०, मन्त्र २०१ (पा० टि०), मार्गी १६०, यज्ञ १८९, यज्ञ-वेदी १३०, विचार ६४, विद्या ३६०, सत्य ८९, साहित्य ६३ (पा० टि०), ३५५, साहित्यरूपी अरण्य २५६

वैधी भक्ति ३६

वैभव-विलास २९८

वैरागी २६३, ३६७ (पा० टि०)

वैशेषिक ३६२ (पा० टि०), दर्शन ६५

वैश्य २०२, २०९-१०, ३६४, उनका उत्थान २१८, उनका प्रभुत्व-काल २१८, उसका सूदरूपी कोडा २१८, उसकी विशेषता २१८, और

इग्लैण्ड २०९, और प्रजा २२२, और ब्राह्मण शक्ति २०९; और राजशक्ति २१८, कुल २२१, शक्ति २०९, २१७

वैष्णव साधक ३६७ (पा० टि०)

व्यवित, अज्ञ ३७०, -उपासना ४६, उसका मूल्यांकन १८५, उसका सत्य और उद्देश्य ३५१, उसकी असफलता १९५, उसकी असहायता १२३, उसकी प्रतीक्षा ३००, और अनासक्ति १९३, और आप्त विषय ३६९, और उच्च सदेश ३००, और जीवन सबधी दृष्टि १८४, और प्रतिक्रिया १६८, और भाव १८५, कल्पना और शून्य ३११, विकास-प्रक्रिया १६१, व्यवहारकुशल १८४

व्यक्तित्व, अपरिणामी, अपरिवर्तनीय ७६, (देखिए परमात्मा), उसका अर्थ ७५, १४१, उसका पुनर्विकास १९३, -चारी १४१, भाव ८३, यथार्थ ७६, -वाद ८४, सुरक्षा के लिए सघर्ष १४१

व्याकुलता और प्रेम २१

व्याख्या, उसके चार प्रकार ६४ (पा० टि०)

व्यापारी, जीवन, धर्म, प्यार, शील के १७८

व्यायामशाला, ससाररूपी १८७

व्यावहारिक जीवन, उसका महत्त्व २६२, उसकी विशेषता २६१, उसमें आदर्श का अस्तित्व २६१, और आदर्श का फल २६१, और आदर्श की शक्ति २६१, और मतवाद २६२

व्यावहारिक ज्ञान क्षेत्र ३७९, योग २६५

व्यास ६४-५, वीवर २२१, सूत्र ६४, ३६२-६३, ३७० (देखिए व्यास देव)

व्यास देव ३६४ (पा० टि०)

फिर भी मैं आने की मरसक बेचटा कर रहा हूँ हास्यार्किक तुम सो जानती हो कि एक महीना आने में और एक महीना वापस आने में ही कम बाटे है और वह भी केवल बंद दिलों के आवास के लिए। और पिस्ता न करो मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ। मेरे अत्यधिक गिरे हुए स्वास्थ्य और कुछ कामूनी मामलों आदि के कारण थोड़ी देर अवस्य हो सकती है।

बिरलेहाबद
दिवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्सवॉड को लिखित)

मठ, बंसूड़ हाबडा
बंबाल भारत

प्रिय 'बो'

तुम्हारे जिस महान् ज्ञान से मैं अभी हूँ उसे बुकामे की कल्पना तक मैं नहीं कर सकता। तुम कहीं भी क्यों न रहो मेरी मंगलकामना करना तुम कभी भी नहीं भूलती हो। और तुम्ही एकमात्र ऐसी ही जो इन तमाम सुमेच्छाओं से ऊँची उठकर मेरा समस्त बोझ अपने ऊपर लेती हो तथा मेरे सब प्रकार के अनुचित आचरणों को सहन करती हो।

तुम्हारे आपानी मित्र ने बहुत ही श्यामूतापूर्ण व्यवहार किया है किन्तु मेरा स्वास्थ्य इतना खराब है कि मुझे यह डर है कि आपान आने का समय मैं नहीं निकाल सकूँगा। कम से कम केवल अपने गुणग्राही मित्रों के समाचार आने के लिए मुझे एक बार बम्बई प्रेसीडेन्सी हीकर मुजरना पड़ेगा।

इसके अलावा आपान यात्रायात्र में भी दो महीने की अवधि केवल एक महीना वहाँ पर रह सकूँगा कार्य करने के लिए इतना सीमित समय पर्यप्त नहीं है— तुम्हारा क्या मत है? अतः तुम्हारे आपानी मित्र ने मेरे सार्वभ्यम के लिए जो बत भेजा है उसे तुम वापस कर देना। नवम्बर में जब तुम भारत छोड़ोपी उस समय मैं उसे बुका बूँगा।

आसाम में मूस पर पुनः मेरे रोग का मयातिक आक्रमण हुआ था कमस मैं स्वल्प हो रहा हूँ। नवम्बर के लोग मेरी प्रतीक्षा कर हीएन हो चुके हैं अब की बार उनसे मिलने जाना है।

इन सब कारणों के होते हुए भी यदि तुम्हारा यह अभिप्राय हो कि मेरे लिए जाना उचित है, तो तुम्हारा पत्र मिलते ही मैं जाना हो जाऊँगा।

लन्दन से श्रीमती लेगेट ने एक पत्र लिखकर यह जानना चाहा है कि उनके भेजे हुए ३०० पौण्ड मुझे प्राप्त हुए है अथवा नहीं। उनका भेजा हुआ धन यथा-समय मुझे प्राप्त हुआ है तथा पूर्व निर्देश के अनुसार एक सप्ताह अथवा उससे भी पहले 'मीनरो एण्ड कम्पनी, पेरिस'— इस पते पर मैंने उनको सूचित कर दिया है।

उनका जो अन्तिम पत्र मुझे प्राप्त हुआ है, उस लिफाफे को न जाने किसने अत्यन्त भद्दे तरीके से फाड़ दिया है। भारतीय डाक विभाग मेरे पत्रों को थोड़ी शिष्टता के साथ खोलने का प्रयास भी नहीं करता।

तुम्हारा चिरस्नेहशील,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

मठ,

५ जुलाई, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं तुम्हारे लम्बे प्यारे पत्र के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, क्योंकि इस समय मुझे किसी ऐसे ही पत्र की जरूरत थी, जो मेरे मन को थोड़ा प्रोत्साहन दे सके। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब रहा है और अभी है भी। मैं केवल कुछ दिनों के लिए सँभल जाता हूँ, इसके बाद फिर ढह पडना जैसे अनिवार्य हो जाता है। खैर, इस रोग की प्रकृति ही ऐसी है।

काफी पहले मैं पूर्वी बंगाल और आसाम में भ्रमण करता रहा हूँ। आसाम काश्मीर के बाद भारत का सबसे सुन्दर प्रदेश है, लेकिन साथ ही बहुत अस्वास्थ्यकर भी है। पर्वतों और गिरि शृंखलाओं में चक्कर काटती हुई विशाल ब्रह्मपुत्र— जिसके बीच बीच में अनेक द्वीप हैं, बस देखने ही लायक है।

तुम तो जानती ही हो कि मेरा देश नद-नदियों का देश है। किन्तु इसके पूर्व इसका वास्तविक अर्थ मैं नहीं जानता था। पूर्वी बंगाल की नदियाँ नदियाँ नहीं, मीठे पानी के घुमडते हुए सागर हैं, और वे इतनी लम्बी हैं कि स्टीमर उनमें हफ्तों तक लगातार चलते रहते हैं। कुमारी मैकिलऑड जापान में हैं। वे उस देश पर मुग्ध हैं और मुझसे वहाँ आने को कहा है, लेकिन मेरा स्वास्थ्य इतनी लम्बी समुद्र-यात्रा गवारा नहीं कर सकता, अतः मैंने इकार कर दिया है। इसके पहले मैं जापान देख भी चुका हूँ।

तो तुम बेनिस का आनन्द से रही हो! यह बूढ़ पुत्र्य (मगर) अबस्य ही मञ्जेश्वर होमा — क्योंकि साइलोक केवल बेनिस में ही हो सकता था है न?

मुझ अत्यंत खुशी है कि सैम इस वर्ष तुम्हारे साथ ही है। उत्तर के अपने नीरस अनुभव के बावजूद यूरोप में उसे आनन्द आ रहा होगा। इधर मैंने कोई रोपक मित्र नहीं बनाया और जिन पुराने मित्रों को तुम जानती हो वे प्रायः सबके सब मर चुके हैं—सेतड़ी के राजा भी। उनकी मृत्यु सिक्किम में सम्राट् अकबर की समाधि के एक ऊँचे मीनार से गिर पड़ने से हुई। वे अपने वर्षों से आगरे में इस महान् प्राचीन वास्तु-शिल्प के समूह की मरम्मत करवा रहे थे कि एक दिन उसका निरीक्षण करते समय उनका पैर फिससा और वे सैकड़ों फुट नीचे गिर गये। इस प्रकार तुम देखती हो न कि प्राचीन के प्रति हमारा उत्साह ही कमी कमी हमारे दुःख का कारण बनता है। इसलिए मेरी ध्यान रहे कहीं तुम अपनी भारतीय प्राचीन वास्तुओं के प्रति अत्यधिक उत्साहशील न हो जाना।

मिशन के प्रतीक-चिह्न में सर्प रहस्यबाह (योग) का प्रतीक है सूर्य ज्ञान का उल्लेखित सागर कर्म का कर्मक भक्ति का और हंस परमार्थ का जो इन सबके मध्य में स्थित है।

सैम और माँ को प्यार कहना।

सस्नेह,
विश्वकामन्द

पुनश्च—हर समय खरीर से अस्वस्थ रहने के कारण ही यह छोटा पत्र लिखना पड़ रहा है।

(मिनिमी क्रिश्चन को लिखित)

प्रिय क्रिश्चन

बेकूङ मठ,
६ जुलाई, १९११

कमी कमी किसी कार्य के आवेग से मैं विवश हो उठता हूँ। आज मैं लिखने के लक्ष्य में मस्त हूँ। इसलिए मैं सबसे पहले तुमको कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। मेरे स्नायु दुर्बल हैं—ऐसी मेरी बदनामी है। अत्यन्त सामान्य कारण से ही मैं व्याकुल हो उठता हूँ। किन्तु प्रिय क्रिश्चन मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस विषय में तुम भी मुझसे कम नहीं हो। हमारे यहाँ के एक कवि ने लिखा है जो सकता है कि पर्वत भी चढ़ने लगे जिन में भी पीठबटा उत्पन्न हो जाय किन्तु महान् व्यक्ति के हृदय में स्थित महान् भाव कभी दूर नहीं होता। मैं सामान्य

व्यक्ति हूँ, अत्यन्त ही नामान्य, किन्तु मैं यह जानता हूँ कि तुम महान् हो, तुम्हारी महत्ता पर मदा भोग विश्वास है। अन्यान्य विषयों में भले ही मुझे चिन्तित होना पड़े, किन्तु तुम्हारे बारे में मुझे तनिक भी दुश्चिन्ता नहीं है।

जगज्जननी के चरणों में मैं तुम्हें माँप चुका हूँ। वे ही तुम्हारी मदा रक्षा करेगी एवं माग दिग्गती रहेगी। मैं यह निश्चित रूप में जानता हूँ कि कोई भी अनिष्ट तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकती—किन्ती प्रकार की विघ्न-त्रावाएँ क्षण भर के लिए भी तुम्हें दवा नहीं सकती। इति।

भगवदाश्रित,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैबिलअँड को लिखित)

१४ जुलाई, १९०१

प्रिय 'जो',

यह जानकर कि बोया कलकत्ता आ रहे हैं, मैं सतत प्रसन्न हूँ। उन्हें शीघ्र मठ भेज दो। मैं यहाँ रहूँगा। यदि सम्भव हुआ, तो मैं उन्हें यहाँ कुछ दिन रखूँगा और तब उन्हें फिर नेपाल जाने दूँगा।

आपका,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को लिखित)

बेलूड मठ,
हावडा, बगाल,
२७ अगस्त, १९०१

प्रिय मेरी,

मैं मनाता हूँ कि मेरा स्वास्थ्य तुम्हारी आशा के अनुरूप हो जाय, कम से कम इतना अच्छा कि तुम्हें एक लम्बा पत्र ही लिख सकूँ। पर यथार्थ यह है कि वह दिन-प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है, इसके अतिरिक्त भी अनेक परेशानियाँ और उलझनें साथ लगी हैं। मैंने तो अब उन पर ध्यान देना ही छोड़ दिया है।

स्विट्ज़रलैण्ड के अपने सुन्दर काष्ठगृह में सुख-स्वास्थ्य से परिपूर्ण रहो, यही मेरी कामना है। यदाकदा स्विट्ज़रलैण्ड अथवा अन्य स्थानों की प्राचीन वस्तुओं का हल्का अध्ययन—निरीक्षण करते रहने से चीजों का आनन्द थोड़ा और भी बढ़ जायगा। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुम पहाड़ों की मुक्त-वायु में साँस

स रही हो। लेकिन बुद्ध है कि सैम पूर्णतः स्वस्थ नहीं है। और, इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं उसकी काठी जैसे ही बढ़ी अच्छी है।

स्त्रियों का चरित्र और पुरुषों का माध्य इन्हें स्वयं ईश्वर भी नहीं जानता मनुष्य की तो बात ही क्या! जाहे यह मेरा स्त्रियोचित स्वभाव ही मान लिया जाय पर इस क्षण तो मेरे मन में यही आता है कि काग तुम्हारे भीतर पुरुषत्व का बोझ खण्डित हो। ओह मेरी! तुम्हारी बुद्धि स्वास्थ्य सुन्दरता सब उस एक आश्चर्यकर तत्त्व के बिना व्यर्थ जा रहे हैं और वह है—स्वयित्त की प्रतिष्ठा! तुम्हारा धर्म तुम्हारी तेजी सब बचवास है केवल मजाक। अधिक से अधिक तुम एक बोद्धिमत्कूल की छोखरी हो—रीढ़हीन! बिस्तुत ही रीढ़हीन!

आह! यह जीवनपर्यन्त दूसरों को रास्ता सुभाते रहने का व्यापार! यह अत्यन्त कठोर है अत्यन्त कूर! पर मैं असहाय हूँ इसके आश्रय। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ मेरी ईमानदारी से सम्प्राई से मैं तुम्हें प्रिय समनेवासी बातों से छस नहीं सकता। न ही यह मेरे बधा का रोग है।

फिर मैं एक मरणोन्मुख व्यक्ति हूँ मेरे पास छस करने के लिए समय नहीं। अत एव छसकी आग! अब मैं तुमसे ऐसे पत्रों की आशा करता हूँ जिनमें खड़ी भार जैसी तेजी हो उसकी तेजी बनाये रखो मुझे पर्याप्त रूप से आपत्ति की आश्चर्यकरता है।

मुझे मैकबीग परिवार के विषय में अब ब महीं वे कोई समाचार नहीं मिला। श्रीमती कुछ या निवेदिता से कोई भीबा पत्र-व्यवहार न होने पर श्री श्रीमती सेविपर से मुझ बराबर उनके विषय में सूचना मिलती रही है और अब सुनता हूँ कि वे सब नाबों में श्रीमती कुछ के बतिति हैं।

मुझे नहीं माझूम कि निवेदिता मारत कब वापस आयेगी या कभी आयेगी भी या नहीं।

एक तरह से मैं एक अवकाशप्राप्त व्यक्ति हूँ आन्धोलन कैसा बल रहा है इसकी कोई बहुत जानकारी मैं नहीं रखता। दूसरे आन्धोलन का स्वप्न भी बका होता वा रहा है और एक आशमी के लिए उसके विषय में सूक्ष्मतम जानकारी रखना बर्तमन है।

जाने-पीने सोने और रोप समय में सपौर की शुभ्रपा करने के सिवा मैं और कुछ नहीं करता। बिदा मेरी। आशा है इस जीवन में कहीं न कहीं हम तुम अवश्य मिलेंगे। और न ही भिठें ही भी तुम्हारे इस चाई का प्यार तो सदा तुम पर रहेगा ही।

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेल्लूड, हावडा,
२९ अगस्त, १९०१

स्नेहाशी,

मेरा शरीर क्रमशः स्वस्थ होता जा रहा है, यद्यपि अभी तक मैं अत्यन्त ही दुर्बल हूँ। 'शुगर' अथवा 'अलबुमिन' की कोई शिकायत नहीं है, यह देखकर सब कोई चकित हैं। वर्तमान गडवडी का एकमात्र कारण स्नायु सम्बन्धी दुर्बलता है। अस्तु, धीरे धीरे मैं ठीक होता जा रहा हूँ।

पूजनीया माता जी ने कृपापूर्वक जो प्रस्ताव किया है, उससे मैं विशेष कृतार्थ हूँ। किन्तु मठ के लोगो का कहना है कि नीलाम्बर बाबू के मकान, यहाँ तक कि समूचे वेल्लूड गाँव में भी अभी तथा आगामी महीने में 'मलेरिया' छा जाता है। इसके अलावा किराया भी अत्यधिक है। अतः पूजनीया माता जी यदि आना चाहे, तो मेरी राय यही है कि कलकत्ते में एक छोटे से मकान की व्यवस्था की जाय। यदि हो सका, तो मैं भी कलकत्ते में जाकर ही रहूँगा, क्योंकि वर्तमान शारीरिक दुर्बलता में पुनः मलेरिया का आक्रमण होना कतई वाछनीय नहीं है। मैंने अभी इस बारे में सारदानन्द या ब्रह्मानन्द की राय नहीं ली है। वे दोनों ही कलकत्ते में हैं। ये दो मास कलकत्ता अपेक्षाकृत स्वास्थ्यप्रद है और कम खर्चीला भी है।

मूल बात यह है कि प्रभु उन्हें जैसे चलाये, वैसे ही चलना उचित है। हमलोग केवल सलाह दे सकते हैं और वह सलाह भी एकदम निरर्थक ही है। यदि रहने के लिए उन्हें नीलाम्बर बाबू का मकान ही पसन्द हो, तो किराया आदि पहले से ही ठीक कर रखना। माता जी की इच्छा पूर्ण हो—मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना जानना।

सदा प्रभुचरणाश्रित,
विवेकानन्द

(श्री एम० एन० वनर्जी को लिखित)

मठ, वेल्लूड, हावडा,
७ सितम्बर, १९०१

स्नेहाशी,

ब्रह्मानन्द तथा अन्यान्य सभी की राय जानना आवश्यक प्रतीक होने के कारण एव उन लोगो के कलकत्ते में रहने के कारण तुम्हारे अन्तिम पत्र के जवाब देने में देरी हुई।

पूरे एक वर्ष के लिए मकान सेने का विषय सोच-समझकर निश्चित करना होगा। हमर जैसे इस महीने वेल्स में 'मसेरिया' होने का बर है उसी प्रकार कम्कत्ते में भी 'प्लेग' का भय है। फिर भी यदि कोई गाँव के भीगरी माम में न जाने के प्रति सचत रहे तो वह 'मसेरिया' से बच सकता है क्योंकि नदी के किनारे पर 'मसेरिया' बिल्कुल नहीं है। अभी तक नदी के किनारे पर 'प्लेग' नहीं फेला है और 'प्लेग' के आक्रमण के समय इस गाँव में उपलब्ध सभी स्वान मारवाकियों से भर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक तुम कितना किराया दे सकते हो उसका उल्लेख करना आवश्यक है। तब कही हम तबनुसार मकान की तलाश कर सकते हैं। और दूसरा उपाय यह है कि कम्कत्ते का मकान से लिया जाय।

मैं स्वयं ही मानो कम्कत्ते में विशेषी बन चुका हूँ। किन्तु और लोग तुम्हारी पसन्द के अनुसार मकान की तलाश कर देंगे। चितना सीध हो सके निम्नलिखित दोनों विषयों में तुम्हारा विचार बात होते ही हम लोग तुम्हारे लिए मकान तलाश कर देंगे। (१) पूजनीया माता जी वेल्स रहना चाहती हैं बचना कम्कत्ते में? (२) यदि कम्कत्ता रहना पसन्द हो तो कहीं तक किराया देना अभीष्ट है एवं किस मुहत्ते में रहना उचित है, उपयुक्त होगा? तुम्हारा जवाब लिखते ही सीध यह कार्य सम्पन्न हो जायगा।

मेरा हार्दिक स्नेह तथा शुभकामना पानना।

भवशील
विश्वकामन्द

पुनरुच—हम लोग यहाँ पर कुससपूर्वक हैं। मोठी एक सप्ताह तक कम्कत्ते में रहकर वापस आ चुका है। बत तीन दिनों से यहाँ पर दिन रात बर्षा हो रही है। हमारी दो गावों के बछड़े हुए हैं।

वि

(प्रगिनी निवेदिता को लिखित)

मठ, वेल्स
७ सितम्बर, १९११

प्रिय निवेदिता

हम सभी तात्कालिक आशय में मन्न रहते हैं—शासक इस कार्य में हम उठी रूप से संलग्न हैं। मैं कार्य के आशय की बधाये पानना चाहता हूँ किन्तु कोई ऐसी बटना बट जाती है जिसके फलस्वरूप वह स्वयं ही उठन उठता है और

इसीलिए तुम यह देख रही हो कि चिन्तन, स्मरण, लेखन—और भी न जाने कितना सब किया जा रहा है।

वर्षा के वारे मे कहना पड़ेगा कि अब पूरे जोर से आक्रमण गुरु हो गया है, दिन-रात प्रबल वेग से जल बरस रहा है, जहाँ देखो वहाँ वर्षा ही वर्षा है। नदियाँ बढ़कर अपने दोनो तटो को प्लावित कर रही है, तालाब, सरोवर सभी जल से परिपूर्ण हो उठे है।

वर्षा होने पर मठ के अन्दर जो जल रुक जाता है, उसे निकालने के लिए एक गहरी नाली खोदी जा रही है। इस कार्य मे कुछ हाथ बँटाकर अभी अभी मैं लौट रहा हूँ। किसी किसी स्थल पर कई फुट तक जल भर जाता है। मेरा विशालकाय सारस तथा हंस-हसिनी सभी पूर्ण आनन्द मे विभोर हैं। मेरा पाला हुआ 'कृष्ण-सार' मृग मठ से भाग गया था और उसे ढूँढ निकालने मे कई दिन तक हम लोगो को बहुत ही परेशानी उठानी पडी थी। एक हसी दुर्भाग्यवश कल मर गयी। प्राय एक सप्ताह से उसे श्वास लेने मे कष्ट का अनुभव हो रहा था। इन स्थितियो को देखकर हमारे एक वृद्ध रसिक साधु कह रहे थे, महाशय जी, इस कलिकाल मे जब सर्दी तथा वर्षा से हंस को जुकाम हो जाता है, और मेढक को भी छीक आने लगती है, तो फिर इस युग मे जीवित रहना निरर्थक ही है।

एक राजहसी के पख झड रहे थे। उसका कोई प्रतिकार मालूम न होने के कारण एक पात्र मे कुछ जल के साथ थोडा सा 'कार्बोलिक एसिड' मिलाकर उसमे कुछ मितट के लिए उसे इसलिए छोड दिया गया था कि या तो वह पूर्णरूप से स्वस्थ हो उठेगी अथवा समाप्त हो जायगी, परन्तु वह अब ठीक है।

त्वदीय,
विवेकानन्द

बेलूड,
८ अक्तूबर, १९०१

प्रिय—

जीवन-प्रवाह मे उत्थान-पतन के अन्दर होकर मैं अग्रसर हो रहा हूँ। आज मानो मैं कुछ नीचे की ओर हूँ।

भवदीय,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैकिन्मॉड को लिखित)

मठ, पोस्ट-बेरुङ्ग हावड़ा

८ नवम्बर, १९११

प्रिय 'जो'

Abatement (कमी) भस्म की व्याख्या के साथ जो पत्र भेजा था चुका है वह निश्चय ही अब तक तुम्हें मिल गया होगा। मैंने न तो स्वयं वह पत्र ही लिखा है और न 'छात्र' ही भेजा है। मैं उस समय इतना जबिक अस्वस्थ था कि उन दोनों में से किसी भी कार्य को करना मेरे लिए सम्भव नहीं था। पूर्वी बंगाल का भ्रमण करके लौटने के बाद से ही मैं निरन्तर बीमार भैसा हूँ। इसके अलावा दृष्टि बट जाने के कारण मेरी हाकत पहले से भी खराब है। इन बातों को मैं लिखता नहीं चाहता किन्तु मैं यह बेशक रहा हूँ कि कुछ सोम पूरा विवरण जानना चाहते हैं।

अस्तु, तुम अपने जापानी मित्रों को केकर आ रही हो—इस समाचार से मुझे खुशी हुई। मैं अपने सामर्थ्यानुसार उन लोगों का आदर-आतिथ्य करूँगा। उस समय मद्रास में रहने की मेरी विशेष सम्भावना है। आगामी सप्ताह में कलकत्ता छोड़ देने का मेरा विचार है एवं कम्बोड बकिन की ओर अप्रसर होना चाहता हूँ।

तुम्हारे जापानी मित्रों के साथ उड़ीसा के मंदिरों को देखना मेरे लिए सम्भव होना या नहीं यह मैं नहीं जानता हूँ। मैंने म्हेच्छों का भोजन किया है अतः वे सोम मुझे मन्दिर से जाने देंगे अथवा नहीं—यह मैं नहीं जानता। लॉर्ड कर्जन को मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया गया था।

अस्तु, फिर भी तुम्हारे मित्रों के लिए जहाँ तक मुझसे सहायता हो सकती है मैं करने को सर्व्व प्रस्तुत हूँ। कुमारी मूलर कलकत्ता में हैं यद्यपि वे हम लोगों से नहीं मिली हैं।

सतत स्नेहात्मक स्वकीय
विश्वकालम्

(स्वामी स्वरूपानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,
वाराणसी छावनी,
९ फरवरी, १९०२

प्रिय स्वरूप,

चारु के पत्र के उत्तर में उससे कहना कि ब्रह्मसूत्र का वह स्वयं अध्ययन करे। उसका यह कहने से क्या अभिप्राय है कि ब्रह्मसूत्रों में बौद्ध मत का संकेत है? निश्चय ही उसका मतलब भाष्य से होगा—होना चाहिए, और शंकराचार्य केवल अन्तिम भाष्यकार थे, हाँ, बौद्ध साहित्य में भी वेदान्त का कहीं कहीं उल्लेख है और बौद्धों का महायान मत अद्वैतवादी भी है। अमरसिंह नाम के एक बौद्ध ने बुद्ध के नामों में अद्वयवादी का नाम क्यों दिया था? चारु लिखता है कि ब्रह्म शब्द उपनिषद् में नहीं आता है। वाह !!

बौद्ध धर्म के दोनों मतों में मैं महायान को अधिक प्राचीन मानता हूँ। माया का सिद्धान्त ऋक् संहिता के समान प्राचीन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'माया' शब्द का प्रयोग है, जो प्रकृति से विकसित हुआ है। इस उपनिषद् को कम से कम मैं बौद्ध धर्म से प्राचीन मानता हूँ।

बौद्ध धर्म के विषय में मुझे कुछ दिनों से बहुत सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ कि—

(१) शिव-उपासना अनेक रूपों में बौद्धमत से पहले स्थापित थी, और बौद्धों ने गैवों के तीर्थस्थानों को लेने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल होने पर उन्होंने उन्हींके निकट नये स्थान बनाये, जैसे कि वोधगया और सारनाथ में पाये जाते हैं।

(२) अग्निपुराण में गयासुर की कथा का बुद्ध से सम्बन्ध नहीं है—जैसा कि टा० राजेन्द्रलाल मानते हैं—परन्तु उमका सम्बन्ध केवल पहले से ही वर्तमान एक कथा से है।

(३) बुद्ध देव गयाशीर्ष पर्वत पर रहने गये, इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह स्थान पहले से ही था।

(४) गया पहले से ही पूर्वजों की उपासना का स्थान बन चुका था, और बौद्धों ने अपनी चरण-चिह्न उपासना में हिन्दुओं का अनुकरण किया है।

(५) प्राचीन से प्राचीन पुस्तकों में यह प्रमाणित करती हैं कि वाराणसी शिव-पूजा का बड़ा स्थान था, आदि आदि।

वोधगया से और बौद्ध साहित्य में मैंने बहुत सी नयी बातें जानी हैं। चारु ने कहना कि वह स्वयं पढ़ें तथा भूर्खतापूर्ण मतों से प्रभावित न हों।

मैं यहाँ बाराबसी में अच्छा हूँ और यदि मेरा इसी प्रकार स्वास्थ्य सुमरता बामगा तो मुझे बड़ा काम होगा।

बौद्ध धर्म और नव-हिन्दू धर्म के सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में अन्तिम काफी परिवर्तन हुआ है। उन विचारों को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित् मैं जीवित न रहूँ परन्तु उसकी कार्यप्रणाली का संकेत मैं छोड़ जाऊँगा और तुम्हें तथा तुम्हारे भ्रातृमणों को उस पर काम करना होगा।

आशीर्वाद और प्रेमपूर्वक तुम्हारा
बिबेकानन्द

(श्रीमती ओमि बुध को लिखित)

नोपसि लाल बिरा
बाराबसी काबरी
१ फरवरी १९२

प्रिय श्रीमती बुध

आपका और पुत्री का एक बार पुनः भारतमूमि पर स्वागत है। मद्रास जर्नल की एक प्रति जो मुझे 'ओ' की रूपा से प्राप्त हुई, उससे मैं अत्यंत हर्षित हूँ। जो स्वागत निवेदिता का मद्रास में हुआ वह निवेदिता और मद्रास दोनों ही के लिए हितकर था। उसका भावना निरूप्य ही बड़ा सुन्दर रहा।

मैं आशा करता हूँ कि आप और निवेदिता भी इतनी जल्दी यात्रा के पश्चात् पूरी तरह विभ्राम कर रही होगी। मेरी बड़ी इच्छा है कि आप कुछ बंटों के लिए पश्चिमी ककनडा के कुछ गाँवों में जायें और वहाँ लम्बी रात में अन्नक तथा चास-मूत आदि से निर्मित पुराने क्रिस्म के बगाली मकानों को देखें। वास्तव में वे ही 'बंगला' कहलाये जाने के अधिकारी हैं जो अत्यंत कष्टपूर्ण होते हैं। किन्तु आह! आजकल तो वह नाम 'बंगला' हर किसी वैसे-सबे भूमित मकान को देकर उस नाम का मजाक बना दिया गया है। पुराने बंगाल में जो कोई भी महक बनवाया तो अतिवि-सत्कार के लिए इस प्रकार का एक 'बंगला' अवश्य बनवाया था। इसकी निर्माण-कला अब विलुप्त होती जा रही है। प्रायः मैं निवेदिता की सारी पाठशाला ही इस बीबी में बनवा सकता हूँ। फिर भी इस तरह के जो दो-एक मयूने खोज बने हैं उन्हें देखकर सुख होता है।

ब्रह्मानन्द सब प्रबन्ध कर देगा आपको केवल कुछ बंटों की यात्रा भर करनी पड़ेगी।

श्री ओकाकुरा अपने अल्पकालीन दौरे पर निकल पड़े हैं। वे आगरा, ग्वालियर, अजन्ता, एलोरा, चित्तौड़, उदयपुर, जयपुर और दिल्ली आदि जगहें जाना चाहते हैं।

बनारस का एक अत्यंत सुशिक्षित घनाढ्य युवक, जिसके पिता से हमारी पुरानी मित्रता थी, कल इस नगर में वापस आ गये हैं। उनकी कला में विशेष रचि है और नष्टप्राय भारतीय कला के पुनरुत्थान के सदुद्देश्य से बहुत सा धन व्यय कर रहे हैं। वे श्री ओकाकुरा के जाने के पश्चात् ही मुझसे मिलने आये। भारत की कला जो कुछ भी शेष रह गयी है, उसका श्री ओकाकुरा को दर्शन कराने के लिए ये ही उपयुक्त व्यक्ति हैं, और मुझे विश्वास है, इनके सुझावों से श्री ओकाकुरा लाभान्वित होंगे। अभी ही श्री ओकाकुरा ने टेराकोटा की एक सुराही यहाँ से प्राप्त की है, जिसे नौकर इस्तेमाल कर रहे थे। उसकी गठन और उसकी मुद्राकित डिजाइन पर वे मुग्ध रह गये। किन्तु चूँकि वह सुराही मिट्टी की थी और यात्रा में उसके टूट जाने का भय था, अतः उन्होंने मुझसे उसे पीतल में ढलवा लेने को कहा। मैं तो किकर्तव्यविमूढ सा था कि क्या करूँ। कुछ घंटे बाद तभी यह युवक आये और न केवल उन्होंने इस कार्य के करने का जिम्मा ले लिया, वरन् मुझे ऐसे सैंकड़ों मुद्राकित टेराकोटा भी दिखाये, जो श्री ओकाकुरावाले से असस्यगुना श्रेष्ठ हैं।

उन्होंने उस अद्भुत प्राचीन शैली के पुराने चित्रों को सिखाने का भी प्रस्ताव रखा। वाराणसी में केवल एक परिवार ऐसा बचा है, जो अब भी उम प्राचीन शैली में चित्र बना सकता है। उनमें से एक ने तो मटर के एक दाने पर आखेट का संपूर्ण दृश्य ही चित्रित कर डाला है, जो वारीकी और क्रियाकान में पूर्णतः निर्दोष है। मुझे आशा है कि लौटते समय ओकाकुरा इस नगर में आयेंगे और इन भद्रपुरुष के अतिथि बनकर भारत के कलावशेषों का दर्शन करेंगे।

निरञ्जन भी श्री ओकाकुरा के साथ गया है और एक जापानी होने से किसी मंदिर में आने-जाने से उसे कोई मना नहीं करता। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तिव्वती और दूसरे उत्तर प्रान्तीय बौद्ध शिव की उपासना के लिए यहाँ बराबर आते रहे हैं। यहाँ वालों ने उसे शिवालय का स्पर्श करने तथा पूजा आदि करने की अनुमति दे दी थी। श्रीमती एनी बेसेंट ने भी ऐसी ही चेष्टा एक बार की थी, पर बेचारी! उन्हें मंदिर के प्रागण तक में प्रवेश नहीं करने दिया गया, यद्यपि उन्होंने जूते उतार दिये थे और साड़ी पहनकर पुरोहितों के चरणों की धूल भी माये लगा चुकी थी। बौद्ध हमारे यहाँ के किसी भी बड़े मंदिर में अहिन्दू नहीं ममलें जाते।

मेरा कार्यक्रम कोई निरिबल नहीं है मैं बहुत दौध ही यह स्वान बनस सकता हूँ।

बिबेकानन्द और लड़के भाप सबको अपना स्नेह-आदर प्रेषित करते हैं।

बिबेकानन्द

बिबेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल बिस्वा

बाद्यनसी छावनी

१२ फरवरी १९०९

कम्पानीय

तुम्हारे पत्र से सबिसेय समाचार जानकर खुशी हुई। बिबेकानन्द क स्वप्न क बारे में मुझे जो कुछ कहना था मैंने उनको लिख दिया है। इतना ही कहना है कि उनकी दृष्टि में जो अच्छा प्रतीत हो तदनुसार वे कार्य करें।

और किसी विषय में मेरी राय न पूछना। उससे मेरा बिमारा खराब हो जाता है। तुम मेरे लिए कबक यह कार्य कर देना—बस इतना ही। रुपये धेज देना क्योंकि इस समय मेरे समीप जो-कार रुपये ही धेज हैं।

कन्हाई ममुकरी के सहारे जीवित है। बाट पर जप-तप करता रहता है तथा रात में यहाँ आकर सोता है। नैदा गरीब आधमियों का कार्य करता है। रात में आकर सोता है। बाबा (Okakura) तथा निरंजन आ मये हैं। आज उनका पत्र मिलने की सम्भावना है।

प्रभु के निर्देशानुसार कार्य करते रहना। दूसरों के अधिमत्त जानने के लिए भटकने की क्या आवश्यकता है? सबसे मेरा स्नेह कहना तथा बच्चों से भी। इति।

सनेह त्वरीय

बिबेकानन्द

(ममिनी बिबेकानन्द को लिखित)

बाद्यनसी

१२ फरवरी १९०९

प्रिय बिबेकानन्द

सब प्रकार की धकितियाँ तुममें उद्बुद्ध हों महामाया स्वयं तुम्हारे हृदय तथा

१ ओकाकुरा (Okakura) को प्रेमपूर्वक ऐसा सम्बोधित किया गया है। 'कुरा' शब्द का उच्चारण बंभला 'कुड़ा' (मन्दि बाबा) के निकट है इसीलिए स्वामी जी मन्दि में उनको बाबा कहते थे। स

भुजाओं में अचिन्तित हो। अप्रतिहत महाशक्ति तुम्हारे अन्दर जाग्रत हो तथा यदि सम्भव हो, तो उसके साथ ही साथ तुम शान्ति भी प्राप्त करो—यही मेरी प्रार्थना है।

यदि श्री रामकृष्ण देव मृत्यु हो, तो उन्होंने जिम प्रकार मेरे जीवन में मार्ग प्रदशन किया है, ठीक उन्ही प्रकार अथवा उन्में भी हजार गुना स्पष्ट रूप से तुम्हें भी वे मार्ग दिखाकर अग्रसर करते रहे।

विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

गोपाल लाल विला,
वाराणसी छावनी,
१८ फरवरी, १९०२

अभिन्नहृदय,

रुपये प्राप्ति के समाचार के साथ कल मैंने जो तुमको पत्र लिखा है, अब तक वह निश्चय ही तुमको मिल गया होगा। आज यह पत्र लिखने का मुख्य कारण है कि इस पत्र के देखते ही तुम उनसे मिल आना। तदनन्तर क्या बीमारी है, कफ आदि किस प्रकार का है, यह देखना है, किसी अत्यन्त सुयोग्य चिकित्सक के द्वारा रोग का अच्छी तरह से निदान करा लेना। राम बाबू की बड़ी लडकी विष्णु-मोहिनी कहाँ है?—वह हाल ही में विधवा हुई है।

रोग से चिन्ता कही अधिक है। दस-बीस रुपये जो कुछ आवश्यक हो दे देना। यदि इस ससाररूपी नरककुण्ड में एक दिन के लिए भी किसी व्यक्ति के चित्त में थोड़ा सा आनन्द एवं शान्ति प्रदान की जा सके, तो उतना ही सत्य है, आजन्म मैं तो यही देख रहा हूँ—बाकी सब कुछ व्यर्थ की कल्पनाएँ हैं।

अत्यन्त शीघ्र इस पत्र का जवाब देना। चाचा (Okakura या अकूर चाचा) तथा निरजन ने ग्वालियर से पत्र लिखा है। अब यहाँ पर दिनो दिन गर्मी बढ़ रही है। बोधगया से यहाँ पर ठण्ड अधिक थी। निवेदिता के श्री सरस्वती पूजन सम्बन्धी वूम घाम के समाचार से बहुत ही खुशी हुई। शीघ्र ही वह स्कूल खोलने की व्यवस्था करे। जिससे सब कोई पाठ, पूजन तथा अध्ययन कर सकें, इसका प्रयास करना। तुम लोग मेरा स्नेह ग्रहण करना।

सस्नेह,
विवेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द की लिखित)

मोपाक काक बिका

बारणसी छावनी

२१ फरवरी १९२

प्रिय राजाराम

जमी जमी मुझे तुम्हारा एक पत्र मिला। अगर मैं और शही यहाँ जाने को इच्छुक हूँ, तो उन्हें भेज दो। जब कलकत्ते में राज्ज फैला हुआ है तो वहाँ से दूर रहना ही अच्छा है। इसाहाबाद में भी व्यापक रूप से राज्ज का प्रकोप है नहीं जानता कि इस बार बारणसी में भी फैलगा या नहीं।

मेरी ओर से श्रीमती बुरु से कहो कि एलोरा तथा अन्य स्वामियों का भ्रमण करने के लिए एक बठिन यात्रा करनी होती है जब कि इस समय मौसम बहुत गर्म हो गया है। उनका शरीर इतना कमजोर है कि इस समय यात्रा करना उनके लिए उचित नहीं। कई दिन हुए मुझे 'बाबा' का एक पत्र मिला था। उनकी अंतिम सूचना के अनुसार वे अर्जन्ता पये हुए थे। महन्त ने भी उत्तर नहीं दिया समय के राजा प्यारीमोहन को पत्रोत्तर देते समय मुझे लिखें।

नेपाल के मंत्री के मामले के बारे में मुझे विस्तार से लिखो। श्रीमती बुरु कुमारी मैक्सवेल तथा अन्य लोगों से मेरा विशेष प्यार तथा आशीर्वाद रहता। तुम्हें बाबूराम और अन्य लोगों को मेरा प्यार तथा आशीर्वाद। क्या मोपाक बाबा को पत्र मिला गया? कृपया उनकी बकरी को थोड़ी देखभाल करते रहना।

सस्नेह,

त्रिबेकानन्द

पुनरुक्त—यहाँ के सब लड़के तुम्हें अभिवादन करते हैं।

(स्वामी ब्रह्मानन्द की लिखित)

मोपाक काक बिका

बारणसी छावनी

२४ फरवरी १९२

प्रिय राजाराम

आज प्रसन्नकाल तुम्हारा भेजा अमेरिका से आया हुआ एक छोटा सा पत्र मिला। पर मुझे न कोई पत्र मिला न तो वह रजिस्ट्री ही जिसकी तुमने पर्चा की है और न ही कोई बूझती। मैं नेपाली संस्कृत भाषे से बचता नहीं या क्या कुछ बरिष्ठ

हुआ, यह मैं बिल्कुल भी नहीं जान सका हूँ। एक मामूली सी चिट्ठी लिखने में इतना कष्ट और विलम्ब ! अब मुझे यदि हिसाब-किताब भी मिल जाय, तो मैं चैन की सांस लूंगा। पर कौन जानता है, उसके मिलने में भी कितने महीने लगते हैं।

सस्नेह,
विवेकानन्द

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिअॉड को लिखित)

मठ,

२१ अप्रैल, १९०२

प्रिय 'जो',

ऐसा लगता है जैसे मेरे जापान जाने की योजना निष्फल हो गयी है। श्रीमती चुल जा चुकी हैं, और तुम जा रही हो। मैं जापानी सज्जन से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हूँ।

सारदानद जापानी सज्जन और कन्हाई के साथ नेपाल गया है। क्रिश्चन शीघ्र नहीं जा सकी, क्योंकि मार्गट इस महीने के अन्त से पूर्व नहीं जा सकती थी।

मैं भली भाँति हूँ—ऐसा ही लोग कहते हैं, पर अभी बहुत दुर्बल हूँ और पानी पीने की मनाही है। खैर रासायनिक विश्लेषण के अनुसार तो काफी सुधार परिलक्षित हुआ है। पैरों की सूजन और अन्य शिकायतें सन दूर हो गयी हैं।

श्रीमती बेटी तथा श्री लेगेट, अल्बर्ट और हॉली को मेरा अनन्त प्यार कहना—शिशु हॉली को तो जन्म-पूर्व से ही मेरा आशीर्वाद प्राप्त है और वह सदा मिलता भी रहेगा।

तुम्हें मायावती कैसा लगी ? उसके बारे में मुझे लिखना।

चिर स्नेहावद्ध,
विवेकानन्द

(दुमारी चागीम पैरिअर व। निगित)

३४

देवर हावा

१२ मार्च १९०२

प्रिय 'बा

आपके नाम के नाम निगित वन में मुझे भय नहीं है।

मैं बहुत कुछ स्वयं हैं हिन्दू जिन्की धृति मान्य थी उस दृष्टि में यह नहीं ब
 बतलाना है। एकांत में रहने की मेरी प्रवृत्ति भावना उत्पन्न है। यही है—मैं गंगा
 के लिए विधायक बनना चाहता हूँ। मेरे लिए श्रीग बाई बाई का नाम होगा। यदि सम्भव
 हो सके तो मैं अपनी पुगनी भिजावति को पुनः प्राप्त करना चाहूँगा।

'बा मुगलत गव'गीम मंगल हो—मुझे देखना की तरह मेरी देखावान बन
 गी हो।

वि. विवेकानन्द

विवेकानन्द

(धीमी आति बुल को निगित)

बमुक्त मठ,

१४ जून १९०२

प्रिय धीरा माता

मेरे विचार से पूर्व ज्ञानार्थ के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी
 आति को मान्य के प्रति परम आदर की भावना रख करनी चाहिए और यह
 विवाह को अछेय एवं पवित्र बर्न-संस्कार मानते हैं ही सक्ती है। रोमन कैथोलिक
 ईसाई और हिन्दू विवाह को अछेय और पवित्र बर्न-संस्कार मानते हैं, इसलिए
 दोनों आतियों में परमपवित्र मान महान् ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न
 किया है। अरबों के लिए विवाह एक दकतरलामा है या बल से प्रथम की हुई
 सम्पत्ति जिसका अपनी इच्छा से अलग किया जा सकता है इसलिए उनमें ब्रह्मचर्य
 भाव का विकास नहीं हुआ है। जिन आतियों में अभी तक विवाह का विकास नहीं
 हुआ है। उनमें आधुनिक बौद्ध धर्म का प्रकाश होने के कारण पण्डित, मठवासी को एक
 उपहास बना डाला है। इसलिए आपण में अब तक विवाह के पवित्र और महान्
 आदर्श का निर्माण नहीं हुआ (परस्पर प्रेम और आदर्श को छोड़कर) अब तक

मेरी समझ में नहीं आता कि वहाँ बड़े बड़े सन्यासी और सन्यासिनियाँ कैसे हो सकते हैं। जैसा कि आप अब समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, उसी तरह जनता के लिए इस बड़े धर्म-संस्कार की आवश्यकता—जिससे कुछ शक्तिसम्पन्न आजीवन ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति हो—मेरी भी समझ में आने लगी है।

मैं बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ, परन्तु शरीर दुर्बल है 'जो मेरी जिम मनोकामना से पूजा करता है, मैं उसको उसी रूप में मिलता हूँ।'

विवेकानन्द

१ ये यया मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।

मम धर्मानुयतन्ते मनुष्याः पार्यं सर्वथा ॥ गीता ॥ ४।११।

अनुक्रमणिका

- अग्नेज २५, १३२, १३९, १५४, १६४, १६८, १७६, १७८-८० १८९-९२, १९४, २०५, २०७-८, २२८, २३०, २४४, २८६, २८८, और भारतीय २५४, पुरातत्त्वविद् १९३, मित्र १६६, यात्री १६४, राज १६२, राजा १६२, सरकार १६१-६२, २६९, २८९
- अग्नेजी अनुवाद १९३, ३६० (पा० टि०), कम्पनी १६८, ढग १६४, भाषा २०४, २३१, राज्य १६७
- अघविश्वास १४, ६३, २५३, ३४३, और जनता १३२, और सत्य १०३
- अकबर, सम्राट् ३८०
- अक्रूर चाचा ३९१ (देखिए ओकाकुरा)
- अग्नि २०-३, उपासना ३५६, और सत्यकाम २१, पुराण ३८७, वैदिक १३९, होम २०
- 'अग्नि देवता' ३५६
- 'अग्नि-यज्ञ' ३५६
- अघोर चक्रवर्ती २४८
- 'अचू' ३२०
- अजता ३८९, ३९२
- अज्ञेयवाद (दार्शनिक) २९४, वादी (आधुनिक) ४०, ५८-९, २९२
- अटलांतिक १६३, १८९
- अतुल बाबू २५७-५८
- अद्वैत ५०, १७०, उसका सार घर्म ११४, और आत्मा सबधी विचार १४१, और ईश्वर ६८, और ज्ञान २७२, और वेदान्त ५२, ६०, नीतिशास्त्र का आधार ८२, भाव २७३, मत ४४, मार्गी २७३
- अद्वैतवाद ४०, ४६-७, ५०-३, ५५, ७५, ८१, १७५, २०३, ३४०, ३८७, उसकी प्रार्थना ६३, उसके विचार ५२, १४१, और उसका कथन ४२
- अद्वैतवादी ४१, ५१ ६३, ३४३, ३५५, ३८७, उनका चरम सिद्धान्त ७५, और आत्मा ७०
- अद्वैताश्रम ३४७
- अध्यात्मवाद १२२
- अनादि पुरुष ८८
- 'अनुभूति' २९२
- अनुराधा १७३
- अनुराधापुरम् १७४
- अन्तर्जातीय विवाह २७१
- अन्तर्विवाह २७५
- अन्दमान १९४
- अन्दमानी भील १९४
- अन्वकूप (Black Hole) १५४
- अपनेल, श्रीमती ३२२
- अपरिणामी सत्ता ५०
- अपेरा गायिका २०१
- अफगान २१६
- अफगानी १८९
- अफ्रीकी १०४, १५८, १८०, १८२, १८९, १९१, १९४, २१०, उत्तर १८०, दक्षिणी-पश्चिमी १३४ (पा० टि०)
- अबीसीनियावासी २८९
- अभेद बुद्धि ५८
- अभेदानन्द ३२७-२८, ३४६ (देखिए काली)
- अमरनाथ ३७३

अमरसिंह ३८७
 अमरावती १५
 अमरक मुसलमान सेनापति १९
 अमेरिकन १७७ २ १ २ ५ २ ७
 २२१ और उतका बाहर २९१
 काठेज २१९ थियोसाफ्रिस्ट
 सोसामटी २९२ प्रमु १६२ मित्र
 ३२६
 अमेरिका ५७ (पा टि) १ ५
 १५९ १६२ १६३ २ १ २ ५
 २ ७ २४७ २५ २५२-५४
 २८१ २९८ ३५५ २६१ ६२
 ३७१ ३९२ महाद्वीप १८९
 यात्रा २३७ बाले २४२ संयुक्त
 राज्य १५९
 अरब ५८ १५७ १७९ १८१-८२
 १९४ ९५ जाति १८२ मासिक
 १७९ मियाँ १८५ बासी २५
 अरब की महनुमि ८२ १८ और
 १८१ २१७
 अराकान १६८
 अरुणाचलम् १७६
 अर्धन ४ ८ २३८
 अर्जुन-कुल सबाब २३७
 अरुणामियन २२
 अरुणोबा ३३०-३१ ३३४
 अस्वर्ती ३५७ ३५९ ३६५ ३९३
 (वेमिए स्टारगीब अस्वर्ती)
 अस्वर्ती स्टारगीब कुमारी ३५७ ३५९
 मल्मोका १२८ ३९५
 अस्काए १९७
 'अस्काह' २ ९ १ ३ १९७
 अस्काही अकबर बीन बीन' १७
 अणुताएबाब ९२
 अणुतोकिसेस्वर १७६
 अणुम ६२ उसका कारण ६१
 असोक महाराज १७४ १९६ सभाद
 १८१
 अष्ट सिद्धि ११४
 'असिरिम १९६

'असीम' ११४
 असीरिया प्राचीन १९४
 असीरी १९५
 असुर गुप्त १ ५
 अस्तित्व ८१
 असुसिनी १८१
 अह' ११३ ११६, २४१
 अह' ब्रह्मास्मि ८३
 अह' साहस्य' ४९-५ उसका अर्थ
 ४८
 अहि' (घड़प का कारण) १९७
 अहिष्ठा परमो धर्म १७४
 अहिर्मन (अधिष) १ ४
 अहुर्मन्व (धिष) १ ४
 आट मेरी ३३६
 आइफेक-मीनार २९१
 'आइवगी वेस्ट' १६४
 आइधिस १८१
 आकाश प्राणरूप ३८
 आक्रीपोक्सि होटक २२१
 आयरा ८९, ३६८ ३८
 आत्म त्याग और समय २४४ वर्षान
 ११३ बखिवाल १२९ रक्षा
 १२९ विकास ५३ विश्वास का
 आदर्श १२ संगीत ३४ सिद्धि
 और साक्षात्कार २४१ स्वल्प
 ५१ ६२
 आत्मा ६-७ १०-१ १३-५ २२, ३१
 ३४ ४ ४७ ४९-५ ५३ ५८
 ९, ७९ ८१ २ ८५ ९, ८९ ९२
 ९५ ७ १ ६, १२३ १२७
 १३३ १९८ २३४ २३९, २६९,
 २८३ २८६, २९३ २९९ अष्ट
 १ ५ अनन्त ७ अनन्त अनन्ति
 ८९ अनन्त बहुस्वरूप ६८
 अनुमति ५१ अपरिणामी ५
 अविभ पदार्थ ६७ अविनाशी ६७
 उसका महत्व १६-८ उसका मुक्त
 स्वभाव ६७ उसका रूप ९७

उसका विकास ५९, उसका श्रेष्ठत्व
 ३१७, उसका समाधान १००,
 उसका स्वरूप ९६, १००, उसकी
 अभिव्यक्ति का सिद्धान्त ९८,
 उसकी असीमता का प्रश्न ९९,
 उसकी परिभाषा ११८, उसकी
 पूर्णता की स्थिति ९८, उसकी
 प्राचीनतम कल्पना १०६, उसकी
 यथार्थ स्वाधीनता ७५, उसकी
 सर्वज्ञता २७, उसकी सर्वोपरिता
 ७२, और अद्वैतवादी ७०, और
 ईश्वर ७९, ११६, और जीवन
 १२४, और प्रकृति ९७, और
 भारतीय धारणा १०७, और मन
 ९८, और विश्व ८०, और साख्य
 मत ६७, देश से परे ११६, नाम-
 रूपात्मक १०७, निराकार, अत
 अनाम १०८, निराकार चेतन
 वस्तु ९६, बघनरहित ११३,
 मंगलमय ९९, मन का साक्षी
 (साख्य मतानुसार) ९५, मनुष्य-
 मन का आधार ९१, विषयक
 आदर्श १०६, विषयक धारणा ९३,
 शरीर के माध्यम से स्थित ९०,
 शाश्वत ८८, सबधी विचार ९५,
 सबधी विभिन्न मत ९६, सगुणीकृत
 निर्गुण ११८, सर्वव्यापी ६७, ससीम
 और पूर्ण ५४, स्वयं सत्य १०१,
 स्वयं स्वरूप १००, स्वरूप ६३
 आत्मिक देह ९४
 आदम ७३ (पा० टि०)
 आदर्श अवस्था १०, प्रत्यात्मक १२८,
 व्यावहारिक ९
 'आदान-प्रदान' की नीति २५०
 आदि मानव और ईश्वर १०२
 'आदुनिम' १९७ (देखिए आदुनोई)
 'आदुनोई' १८९, १९७
 आधुनिक अज्ञेयवादी ४०, प्रत्यक्षवादी
 ४९, बौद्ध धर्म ३९४, विज्ञान
 ८७, वैज्ञानिक उनका कथन ६२

आध्यात्मिक जीवन २९१, दशा २९०,
 पक्ष २९०, प्रगति २४९, भाव
 ७९, विकास १११, व्यक्तिवाद
 १३४, साधना २७४
 आपेनी राज्य २२२
 आफ्रीदी १६०
 आरती-स्तुति १०५
 आरियन् १९५
 'आरिया' १६६
 आरुणि ३७
 आर्क-डचेस २०८, ड्यूक २०८
 'आर्कडिक' ग्रीक कला २२२
 आर्टिक २२३, सप्रदाय और उसकी
 दो भावधारा २२३
 आर्टिका २२२, विजयकाल २२३
 आर्य १३५, १६१-६२, १६७, १७०,
 २१३, २१६, २३६, उनकी प्रकृति
 १०५, कुल १०४, जाति ९४,
 १९६, विचारधारा ९३
 आलासिंगा ३६५
 आलेकजेन्द्रिया नगर १८१
 आशावाद ३१६, ३४१, वादी ९४
 आसक्ति और अनासक्ति ३१५
 आसाम ३७४-७६, ३७८-७९
 आसीर १९१
 आस्ट्रियन जाति २०९, राजकुमारी
 २१०, राजवंश २०९
 आस्ट्रिया २०८, २१०-१२, सम्राट्
 २१३, साम्राज्य २१५, २१८,
 लॉयड १६१
 आस्ट्रेलिया १६३, १८४, १९४
 इंग्लैण्ड १३२, १६४, २०१, २०५,
 २०९-१०, २१४, २३४, २६९,
 २८२, ३०३, ३०६, ३१४-१५,
 ३२१, ३३४, ३४७-४८, ३५५,
 ३५८, ३६५-६७, ३७०, ३७२
 इंग्लैण्ड का इतिहास (Green's
 History of England) २६६-
 ६७

इच्छा उत्पत्ति का कारण १२१ शक्ति
 ७८ १३१
 इच्छा ११९ १७९-८ २१ ३७४
 इष्टस्थिति बेनिष्ठ १८९
 इच्छो-बुरोपियम २१५
 'इच्छा' १८९
 'इच्छु' १८९
 इन्द्र ३३
 इन्द्रदेव १४८
 इन्द्रिय-निग्रह १३३ मन-वेह ७९
 इफेम १९८
 'इबाहीम' १९८
 इक्विट १५ (पा टि)
 इसलाम ४३ १९२
 'इसिस' (मोमस्ता के रूप में) १९३
 इस्तम्बोस २ ५
 'इस्तीमान आसिएन बोरी जाँघाक' १९३
 इसाइक १९८

 ई टी स्टडी ३६७
 ईजिप्ट २
 ईजिन ७३ (पा टि)
 ईजि ७३ (पा टि)
 ईरान १ ३ १८२, १८९ ९ दूरान
 १९५
 ईरानी १ ४ १५१ १९१ १९८
 ईसा १८९ पोषाक १८२ बाद
 साही १८१ माया १ ४ विचार
 धारा १ ५
 ईजि २९७
 ईस्वर ८१ १९-७ ३०-१ ३४-५,
 ४१-२, ४५-६, ५५, ५७ ६३
 ६९-७ ७३ ७७ ८१ ८३
 ८९-८, ९०-१ १ १ १ ३-५,
 ११ ११९, १२७ १३० १३६,
 १८ २४०-४१, २७४ २८
 २८२, २८७-८८, २९३ २४ अनु
 मति १३३ उपादान कारण ६८
 उपासना २३ उपाका गुणवान २८१
 उपाका नाम-महत्त्व १३५ उपाकी

अनुकम्पा का आकार १ ९
 उत्तमी कल्पना १०३ एक भूत
 ११८ और आत्मा ७९ और आदि
 मानव १ २ और जीव ११
 और ब्रह्मा ८३ और भिन्न भिन्न
 अनुभव-परिणाम ११९ और
 वेदान्त का सिद्धान्त ६८ और सूर्य
 ११९ कृपा १३ चिन्तन २४९
 धर्म २९ देहपाटी २८ धारणा
 २८, ७९ निर्गुण बीजात् २८
 निर्गुण-समुच्च ३१ ११८ प्रकृति
 का कारण-स्वरूप ६८ प्राप्ति
 २४२ प्रेम २७२ मन की उपज
 ११५ बाध २८ बाधो (सपथ)
 धर्म ३९ विश्व सृष्टि स्थिति
 प्रकृत्य का कारण ८९ व्यष्टि की
 समाप्ति ८३ कृष्ण-कर्म में भी
 २७१ सर्वोप उपसर्गि १ ४
 सर्वोप धारणा ४४ ११९ सगुण
 ३८, ४१ ४५ ६ ५७ सगुण समी
 आत्माओं का योग १३२ सर्वसुख
 ८३ साम्राज्यकार १३३ स्वयं की
 परछाई १११
 ईश्वरकर्म विद्यासाधन २३२
 ईश्वरत्व की धारणा ९२
 ईसा ४३ १ ४ १२८, १९८ ९९
 'ईसा अनुसरण' १७
 ईसाई २५, ४२, ५९, २५२ चिकित्सक
 ३२३ धर्म ५८, १३७ १८१ २५३
 २८७ २८९ ९ मठ ८८, २९४
 'ईसाई बीमारी' ३
 'ईसाई-विज्ञान' २९४
 ईसायेल ३७४
 ईसा मधीह ५८, ६९, १९८ २८२
 ईसाय १९७

 उज्ज्वलिनी १८२
 उकीसा १५५-६६, २८ ३८९
 उत्तरकामी १४९
 उत्तरात्मन २४

उदयपुर ३८९
 'उद्बोधन' (पत्रिका) १४७ (पा० टि०), १५३, १७७, २८५
 उपकोशल २१-२
 उपनिषद् ४, १६, २७, ३७, २३३,
 उसका उपदेश २२, उसकी शिक्षा
 १३२, कठ ११२ (पा० टि०),
 काल २३, केन ७६ (पा० टि०);
 छान्दोग्य १९, ३७, ७२ (पा०
 टि०), बृहदारण्यक ६९, ७२ (पा०
 टि०), मण्डक ६८ (पा० टि०),
 ११२-१३, श्वेताश्वतर ३४२ (पा०
 टि०), ३८७
 उपयोगितावाद और कला २३५
 उपहृद (Lagoons) १९०
 उपासना विधि २९२
 ऋषि १३५, २५५, २८८-८९, प्राचीन
 २६, प्राचीन भारतीय २८२
 'एग्लिसाइज्ड' ३४०
 एकत्व का आदर्श १७
 एकमेवाद्वितीयम् ३१७
 एकेश्वरवाद ४०, वादी ३९
 एगलॉ (गरुड शावक) २११
 एत्रेलाँदस २२१
 एडम्स, श्रीमती ३११, ३३७, ३४१
 एडविन अर्नल्ड २९४
 एडेन १४९, १७८-७९
 एथेस २०५, २२१-२२, छोटा ३६४
 एन० एन० घाप २५३
 एनिसक्वाम २८६
 एनी वेयेण्ट, श्रीमती २९२, ३८९
 एफ० एच० लेगेट ३११-१२, ३३१
 एम० एन० वनर्जी ३८३
 एम० सी० एडम्स, श्रीमती ३३८
 एमा एमम, मादाम २०२
 एलनविवनन ३७६
 एलोरा ३८९, ३९२
 एलनविवनन ३७६

एशिया १३६, १७९, १९१, २०५,
 २१४-१५, २२१-२२, २२७, २३५,
 खण्ड १९५, मध्य २०९, २१५-१६,
 माइनर १९१, १९७, २१३, २१७
 एशियायी कला २२२
 एस० पानेल, श्रीमती ३४८
 एस्तर स्ट्रीट ३३१
 एम्पीनल, श्रीमती ३५५
 ओआइस ३५९
 ओकलैंड ३०३, ३०५, ३१२, ३२१
 ओकाकुरा, श्री ३७७, ३८९, ३९०
 (पा० टि०) (देखिए अक्रूर चाचा)
 ॐ तत् सत् ११४, ३३३
 ॐ नमो नारायणाय १४७
 'ॐ ह्री क्ली' १७६
 ओरियेण्ट एक्सप्रेस ट्रेन २१३
 'ओरी आँताल एक्सप्रेस ट्रेन' २०५
 ओलम्पियन खेल २२१, जूषिटर २२१
 ओलि बुल, श्रीमती ३०३, ३०५,
 ३१०, ३२२, ३२७, ३५५, ३६३,
 ३६७-६८, ३७० ७१, ३८८, ३९४
 ओलिया ३२४
 ओसमान (मुसलमान नेता) १९२
 कज्जाक २२०
 'कट्टमारण' १५६
 कठापनिषद ११२ (पा० टि०)
 कथा, नाई की १३८, प्राचीन फारसी
 ३५, मिश्र देवता १९७, मुसलमान
 और लोमडी ७७, मेढक २९६,
 गिवू देवता, नुई देवी १९६, श्वेत-
 केतु २२-३, सत्यकाम १९, २३१,
 सेव, माँप और नारी ७३
 कनिष्क (तुरस्क मन्नाट) २१६
 कन्फुसी मत २०५
 कन्हाई ३६५, ३९३
 कवीर १६९

कर्मन साईं २२९ ३
 कर्मक अस्मिन् २९२
 कर्म मसन् ५४ और प्रकृति २७४
 और समाधि २५ काण्ड २३,
 ३५ भाग ६१ जीवन ७९
 निष्काम योग २३९ फल २४
 ५४ ७८, ३४ योग २३९
 योगी ३१ २३९ निजान ५४
 सुमाधुम २४ सकाम २५
 साधना ११ ११४
 कर्मयोग ३१९
 कलकता १४ (पा टि) १४८
 ४९, १५४-५५, १६३, १६६, १६८
 १७३-७४ २३२, २३७ २४७
 २५०-५१ २६ २७१ २८२,
 ३२४ ३२७-२८, ३४७ ३५४
 ३७०-७१ ३७४ ३८१ ३८३-८४
 ३८६ ३९२
 कसा और उपयोपिठा २२७ शास्त्र
 २२२
 कम्पाकी २६
 काशी ३२
 कति उमका विचार ४९ और हर्बर्ट
 स्पेन्सर ४९
 काकेसस पर्वत २१७
 कानस्टान्टिनोपल १९२, २ ९ ३
 २ ५, २ ८, २१३ २१५ १७
 २१९ २२१ ३५८ ३६ ३६४
 कानस्टान्तिनोपल (रोमन बाइसाइ)
 १७९
 काशी (पारस्य शहर) १७५ उसका
 इत मन्दिर १७६
 'कान्तिष्कान्त' (अनिवार्य मण्डी)
 २१४ २२
 काण्ट अक्षर १९६
 काठरी १८२
 काकेला २११
 काशी १९४
 काबा १८२
 काबुल २१६

कामदेवी १९७
 कामिनी काचन २७९
 कायस्थ-कुल १६१
 कार्तिक (अक्षर का अक्षर) १७७
 कार्नेलिया सीरान जी कुमारी ३७१
 कार्य-कारण नियम ८१ भाग ४५
 निजान ११ वृत्त ८१ सम्बन्ध
 ५१ १११ १२२ सम्बन्ध और
 उसका अर्थ ५१
 कार्य-कारणवाद २६
 काश्मिर महाकवि १५२ (पा टि)
 २३३
 काममे मावामोबायेक २ १२
 काशी ३७७-४८ ३५ ३५४ ३५८
 (देखिए अमेदान्त)
 काशी माँ १३ १३२ १३९ ३६७
 पूजा ३३९४ माता ३७
 काशी १४८ उत्तर १४९
 काशीपुर २५ ७५७
 काश्मीर १४८, १५१ १५२ (पा
 टि) २१६ १७ ३७९ अण्ड
 १५२ वेस १५२ अमय १५२
 काहिरा ३६४
 किरासिम स्वयम् २९७-९९
 किरासिम १९५
 किशनगढ़ ३५८
 कीडी १७१
 कीर्तन उसका अर्थ २८१ और म्पुष
 २४६
 कुमारस्वामी १७६-७७
 कुमारी अस्फटी स्टारलीन ३५७ ३५९
 कार्नेलिया सीरान जी ३७१ केट
 ३११ बर्सेवी ३ ३ ३२१ नोबल
 ३१३ ३३७ कुक ३४५, ३५५
 मूलर ३३ ३४४ ३८६ मेरी
 हेन ३ ८, ३१३ ३१६ ३३६
 ३७ ३३९, ३४२ ३४४ ३७३
 ३७९, ३८१ मैनिस्कोव ३१३
 ३२३ ३२८ ३६ (देखिए
 पोसेफिम मैनिस्कोव) बाइयो

- ३१८-१९, ३४५, ३५४, वेक्हम
३५५, वेल ३५५, सूटर ३१०,
३१५, स्पेन्सर ३११, ३३७
- कुरान ४३, ५८
कुरुक्षेत्र ८, २३७
कुर्द पाशा और आरमेनियन हत्या २२०
कुलगुरु की दशा २४९
कूना १९४
कृष्ण १३३, २३८, २६२, और
बुद्ध १३६, गीता के मूर्त स्वरूप
२३८, गीतागायक २३७, २३९
'कृष्णसार मृग' ३८५
केट, कुमारी ३११, ३३७
केनोपनिषद् ७६ (पा० टि०)
केम्ब्रिज ३०५, ३१०
कैथोलिक २०४, क्रिश्चियन १६५,
ग्रीक पादरी २०३, बादशाह २१०,
मत २९४, रोमन ४३, सघ २१०,
सन्त १२७, समाज २०३, सम्प्र-
दाय २०३, २०९
'कैलिओपी' (ब्रिटिश जहाज) ५७
(पा० टि०)
कैलिफोर्निया २९२, ३०६, ३२०, ३३०-
३१, ३३४, ३३६, ३४८, ३६४
कैस्पियन ह्रद २१३, २१७
कोकण ब्राह्मण १६९
कोन्नगर १५७
कोरियन १७६
कोल ब्रुक, कप्तान १५४
कोलम्बस (क्रिस्टोफोर कोलम्बस)
१८९
कोलम्बो १५६, १६५, १७३, १७५,
१७८, ३७१
कौण्टी ऑफ स्टार्लिंग, जहाज १५५
कौन्टेस १७६
'क्रम-विकास' ४६
क्रिमिया की लडाईं ३२९
क्रिश्चन १७५, ३९३, भगिनी ३६०,
३८०
क्रिस्तान धर्म १९२-९४, धर्मग्रथ
- १९२, पादरी २०५, २२०, राजा
२०८, रियाया १८२
क्रीट द्वीप २८३
क्लावे, मादाम ३६०
'क्लासिक' ग्रीक कला २२२-२३, उसके
सप्रदाय २२३
क्लेरोइ ३५९
'क्वोरनटीन' २२१
क्षत्रिय २४८, रुधिर ३३९
क्षेत्रभाव २४४, २४९
खगेन ३४७
खगोल विद्या ८७
खिलजी २१६
खुरासान १४८
खेतडी ३७४, ३८०, महाराज ३६८
खेदिब इस्माइल १९०
ख्याल (गाना) २६०
गगा १०४, १५२-५५, १६८, १८७,
२५०-५१, २९८, और गीता
१४९, का किनारा १५१, जल
७९, १४९, २३३, ३०६, ३४८,
तीर ७९, पार १६९, महिमा
१४९, सागर १५७, १६८, १७१,
सागरी डोंगी १५७, सुरतरगिनी
१५०, स्नान २७१
गगाघर ३५०
गगोत्री १४९
गणेश जी १४९
गया ३८७
गयाशीर्ष पर्वत ३८७
गयासुर ३८७
'गाघाडा' १८४
गावार २१६
गावारी २१६
गिरीशचन्द्र घोष २४५ (देखिए गिरीश
बाबू)
गिरीश बाबू २४५, २५७
गीता ४, १०६ (पा० टि०), १०९,

१२९, १५२ ३ ८ (पा० टि)
 ३५३ ३९५ (पा० टि) उसका
 मूल तत्त्व २३९ और मगा बस
 १४९ और विद्वान्त २४ कर्म का
 कर्म २३७-३८ तथा विद्वान्त १४४
 गुजरत १४८ १६४ ३७५
 गुजरती बाह्य १६९, २२
 गुण तम २४८ २५५ रज १५
 २४८, २५६ सत्त्व २४८
 गुण महोद्गमात् २७१ सुरेन्द्रनाथ २८३
 गुनीश्वी १४९
 गुह्येय ७९, २६२, ३ ६ ३१३
 ३५ महाराज ३५ (देखिए
 रामकृष्ण)
 गुह्य गृह-वास २२९
 गुह्य नागक और रामकृष्ण १२९
 गुसाई जी १४८ (देखिए तुलसीदास)
 गेहूँ की ३६२
 गे २ २
 गेडिस अम्प्याक ३१५
 'गे' ४४
 'गोबालेज' १६८
 गोपाल बाबा ३९२
 गोपाल साक विद्या ३८७-८८ ३९०-९२
 गोकुल्या बहाज १६३-६४
 गोविन्ददास १४९
 'गोसाई' १७३
 गोस्वामी तुलसीदास १४८ (पा टि)
 गौतम २२ बुद्ध ५७
 गौठ कला २२३ और उसका इति
 हास २२२-२३ और उसकी तीन
 अवस्थाएँ २२२ और विकास
 २२३ कलासिक २२२ २३ जाति
 १९१ कर्म २२१ पामा २२
 पेट्रियाक २२ प्राचीन १९२
 प्राया १९२, १९६ मापी २१२
 विद्या २१२ सभाद् २१९
 द्योमेकर ३४३ ६६
 ग्रीस १८९९ ९ १ ५ विजय
 २२३

ग्वास्मियर ३८९ ९१
 गोप एन एन २५३
 गुरुवर्ती अघोर २४८
 गृहपामी मौसी १५७
 गृहोपाध्याय हरिदास २६ २६२
 ६३ २६७
 गम्बन नगर १५४
 गन्ध २०-२, ३४ ३७ ७ मण्डल
 १४१ लोक २४
 गन्धगिरि १६८
 गन्धपुष्ट १९२, १९५
 गन्धदेव १९७ ३५६-५७
 गन्धनाथ ३७२
 गन्धमा २३ १ ४ ११२, १४१ २ ७
 गन्ध-सूर्य २६
 गांडाक २७९
 गायत्री २१५ तुर्क २१७
 गाड ३८७
 गाविक का बेट २५४
 गित सुखि २४१
 गितार्क ३८९
 गित-कला १४ २४३ बार २ ६
 गृह २१२ सिमि १९६ शाका
 १९७
 गिराकाश (त्रिगुण बुद्धि) २१
 गिरापट्टम् १६८
 गिरितिया साम् सीयर पहर १५
 (पा टि)
 गीत १६३ १७४ १७७ २ ८९
 भक्त २ ६
 गीती १६३ १७६ १ ४-९५, २ ९,
 २८७-८८ जेपी बहाज १८३
 गुम्बकीय रीग-निवारक (magnetic
 healer) ३ ९, ३२१
 गुणदा १५४
 'गुह्य' १७२
 गुण्य वेन १३३ १७५
 गुण्य महामनु २७९, २८१

- चैतन्यवान पुरुष ६८
 चैतन्य सम्प्रदाय १६९, २७९
 चोरवागान २६६-६७
 'छठवी इन्द्रिय' २९२
 छान्दोग्य उपनिषद् १९, ३७, ७२
 (पा० टि०)
 छुआछत १७१, १८३, १८५
 जगज्जननी ३८१
 जगदम्बा १९९, ३०८
 जगदीशचन्द्र बसु (डॉ०) २०५ (देखिए
 जगदीश बसु)
 जगदीश बसु २०६
 जगन्नाथ का मन्दिर ३००, घाट १६८
 जगन्नाथपुरी १५५
 जगन्माता ३१२, ३२६, ३३५, ३४३,
 ३४५, ३६१, ३७०, आदि शक्ति
 २४२
 जड पदार्थ और मन १२१, और
 मन का प्रश्न १२२
 जड विज्ञान २५७
 जनक १४३
 जनरल असेम्बली २६३, कॉलेज २५८
 जनरल स्ट्राग (अग्नेज मित्र) १६६
 जप-ध्यान २५८
 जवाला १९
 जयपुर ३८९
 जर्सलेम १९८, २००, २०५
 जर्मन, आस्टेन्ड कम्पनी १५४, कम्पनी
 १६३, डॉक्टर ३२३, पंडित वर्गस
 १९४, भाषी २१२, मनुष्या २०८-
 ९, लॉयड १६१, सम्यत २०७,
 सेनापति २०८
 जर्मनी १६३-६४, २०७-८, २१०
 जलनोया, मोशियो ३६०
 जलागी नदी १५४
 जहाज १६०-६१
 जहाजी गोलें १६०
 जाजीवार १४९
 जाति, आसुरी और दैवी सपदावाली
 १०६, आस्ट्रिय २०९, और देश
 १९५, तमिल १७५, तुर्स्क २१६,
 तुर्क २१६, दोरियन २२२, वालिव
 १९७, यहूदी १९७, विद्या १९४,
 हिन्दू २१७
 जॉन फाक्स ३४८
 जान्स्टन, श्री ३६६, श्रीमती ३३५,
 ३६८
 जापान १७४, २२७, २३४, २३६,
 २४७, ३७२-७३, ३७५-७६, ३७९,
 ३९३, ९४
 जापानी १७६, १९४, चित्रकला २३४,
 मित्र ३७८, ३८६, ललित कला
 ३७५, सज्जन ३९३
 जाफना १७५
 जार्ज, श्री ३५५
 जावा १४९, १६८
 जिनेवा १८९-९०
 जिहोवा की उत्पत्ति ३४९
 जीव और ईश्वर ८३, ११०
 जीवन और मन का नियमन १२१
 जीवन्मुक्त और उसका अर्थ ७१
 जीवाणु-कोष ४७
 जीवाणु विज्ञान शास्त्री २९६
 जीवात्मा ५२, ५४-५, ९१, १००,
 १०६, ११०, ११३, और शरीर
 का सबब ११०, कोष ४७, निर्गुण,
 सगुण ४१
 'जीवित ईश्वर' २९
 जीविसार (protoplasm) ८०
 जीसस ३१७
 जुल बोआ २०१-२, २१९, ३६६, ३७६
 (देखिए बोया)
 जूडास इस्केरियट ३१७
 जे० एच० राइट २८६
 जेम्स और मेरी (चोर वालू) १४९,
 १५५
 जेम्स, डॉ० ३५५-५६
 जेहोवा १०३

वीन पर्म १३३

बो ३ ५, ११२ ११५, ११८ १२०-
२३ १२८ २९ ३३२ ३४ ३४५
३५५-५७ ३६२ ३६५ ३६ ३६८
३७ ७२, ३७५-७८, ३८१ ३८६
३९३ ९४ (बेसिए जॉसेफिन मैनि-
मॉड)

जोभ स्ट्रीट ३ ३ ३ ५

जोसिफुस १९८ ९९

जोसिफिन मैनिमॉड ३ ५, ३१८
३२८, ३३१ ३३४ ३४५ ४६
३५५, ३६२ ६३ ३६५, ३७०-
७१ ३७५, ३७७-७८ ३८१
३८६ ३९३-९४

जोसिफिन रानी २१

जान ७१ ७५ ९५, १३५, ३४३
इन्ड्रिय जनिठ ३३३ उसकी
निष्पत्ति ८४ उसके मूल सूत्र
३८ और मन्त्र २७२ और
सत्य बर्षन २७४ काण्ड २३
पुस्तकीय २३२ प्राप्ति २७४
मनुष्य के भित्तर ४७ योम ११४
२७२ योमी ७८ वृत्त ७३

जाता ८५

जाँसी की रानी २७७

ज्या २४६ ४७ २६

जर्क स्ट्रीट ३ ८ ३१ ३११ १५
३१८ ३२ ३२९, ३२५, ३२७-
२८

जलेमी बाबशाह १८१

जाटा श्री ३७१

जॉमस-मा केमिस १७

'जोरपिडी १५९ ६

'जालिस नाका' १५३

जुटक १७८

जैरा कोटा ३८९

जेहरी १४९

'द्यूटानिक' बहाव ३१५

जार्ज श्री ३१

जाम्बवाक ३२

जिम ३३७

जानुर २५५, २५८ (बेसिए राम
बृष्ण) देवता १७०

जब १७५, १९४ निमकार २१२
सम्प्रदाय २१२

जॉ. जेम्स ३५५-५६ बोस ३६७
जॉयन ३५५ हीम्बर ३११ १३,
३२२ २३

जयमन्थ हारबर १४५, १५१

जयानिसिमस २२१

जस्टिन २९०

जिट्राएट ३२७ ३४४

जिट्राएट 'ट्रिप्यून' २९७

जिट्राएट, फ्री प्रेस' २९३

'जेलबर' ३२८

जेविल (गोत्रान) १ ४

'जोल' १६६

जव २६

जाका २७१-७२

जॉय और आत्म प्रवर्धना २४१

'जैव' २५९ ६

जलमान १ ५ बर्षी १ ९ बाव
१ ९

'जलमसि' १ ४६ ७८, १ १

जमिक १६९ मालपाङ १७ मुक्त
१७५ वासि १७५ रेस १३९

जापा १७५

जमोयुज २४८, २५५-५६

जर्कवास्त ७३ ४

जात्रिक पत्रिका २४१ पूजाप्रवाही २४१

बाव २३७ छावना २४२

जाममह २९

जास्तार-बुन २१३ मंटी २१२

जातापी १९५

तारादेवी १७६
 तिब्बती १७६, २१३
 तीर्थयात्रा ३६९
 तु-भाई साहब १४८, १५०, १५३,
 १७२, १७७ (देखिए तुरीयानन्द
 स्वामी)
 'तुम' ६८-९
 तुर्स्क २०८, मन्नाट् २१६
 तुरीयानन्द, स्वामी २७१, ३०४, ३१२,
 ३१८-१९, ३२५, ३४४, ३४६,
 ३४८-४९, ३५३, ३५८
 तुर्क १८९, १९५, २१३, २१९, २२१,
 और मुगल २१६, जाति २१५-
 १६, वंश २१५
 तुर्किस्तान २१५, २८३
 तुर्किस्तानी १५१
 तुर्की १७९, २००, २०८-९, २१२-
 १४, जाति २१६, सुल्तान १९०
 तूरान १९५
 तूरानी १९५
 तेलुगु (बोली) १६९
 तोडादार 'जजल' १६०
 त्रिगुणातीत, स्वामी १४७ (पा० टि०)
 त्रिवेणी १५३, घाट १५३
 'त्रैजासिएन, त्रैसविलिजे' २०१
 'त्व' ११३
 थर्संबी, कुमारी ३०३, ३२१
 थियोसॉफी ३२३
 थेरापिउट १८१
 थेरापुलस २८२
 दक्षिण देश १७०, मुल्क १६९
 दक्षिणी ब्राह्मण १६९
 दक्षिणेश्वर २३२, २६२, ३३०
 दरुम ९४
 'दमूजी' १९७
 दरियाई जग १६०
 दर्शनशास्त्र २०२, २७५, २८३
 दाँत (बुद्ध भगवान का) १७६

दादू १६९
 दामोदर नद १५५
 दामोदर-रूपनारायण (नद) १५५
 दार्जिलिंग ३२०, ३७२, ३७५
 दार्शनिक सिद्धान्त ४४
 दाशरथि, सान्याल २६०-६१, ३६७
 दाह पद्धति, उसके कारण ९४
 दिनेमार १८९-९०
 दिल्ली २१५, ३८९
 'दी अपील-अभालास' २८९
 दीनु ३४७
 दुर्गा प्रसन्न ३०९
 'देव' १०४
 देव-दूत ३९४, पूजा १३९
 देवयान ४, २४
 देव वर्ग १३०
 देश, काल ९६, ११९, और निमित्त
 ६९, ७४-६, २७५
 देशी सिपाही १६६
 'देवी सारा' २०१
 द्वैत ९०, १७०, २७३, और ईश्वर
 ६८, की भावना २४१, की भाषा
 ११३, भाव ५१, ५८, २४१,
 २७२, ३१७, भावात्मक धारणा
 ५२, मत ५३, वाद ३१, ५३-
 ४, ५८, ६०, ८९-९०, वादी ४८,
 ५२-५५, वादी और उनके विभिन्न
 मत ५६
 धर्म ३, १४, २१, ४०, ४२-३, ८९-
 ९०, १०८, १६१-६२, १७६, १८०,
 १९१, १९६, १९९, २०५, २१३,
 २३०, २५२, २९०, २९४-९५,
 ३३९, आधुनिक बौद्ध ३९४,
 ईसाई ५८, १३७, १८१, २५३,
 २८७, २८९-९०, उसका अग्र २९३,
 उसका निम्नतम रूप १०३, उसका
 प्रयोग २९१, उसका लक्ष्य २९१,
 उसका व्यावहारिक रूप २३,
 उसकी हानिकारक प्रवृत्ति ५३,

बीर आवर्ध १ बीर उपमोदिता
का प्रसन्न १२ बीर वैज्ञानिक
पद्यति ३८ और संप्रदाय २९३
बीर सान्त्वना ४५ कबार्ण १७
किस्तान १९२ ९४ १९८ गुड
२४९ २५३ २७७ ग्रंथ १०७
२४१ ३४ ग्रीक २२१ जीवम
२५५ जिन १३३ बीया ३
मन हिन्दू ३८८ विपासा २५४
पुस्तक १०३ पौराणिक २५३
प्रचार १७४-७५ १८१ २९४
प्रचारक २९४ ३ प्रोटेस्टन्ट
१७८ बीड ४ १३ २१६
२४१ ३८७-८८ बीड और हिन्दू
में भेद १३८ भारतीय १३३
मार्ग १३ मुसलमान १७९
२१६ मुसलमानी १८९ २१८
पहूरी १९८ विधि १३९ विभक्त
सम्मत (व्यावहारिक) १ ५
विवाह ५८ बेम्बन १३ १७
व्यावहारिक विज्ञान २६ वास्तु
२२१ शिखा २९१ संबंधी
विचार ४३ संस्कार ३९४ ९५
सगुन ईस्वरवादी ३९ सनातन
२५४ सनातनी हिन्दू १२७
साधन २४९ साधना २४९
हिन्दू १३३ १६९, २९१ ९९
२९४ हिन्दू बीड सर्वेधी विचार
१३
बर्मोपरेष्ठा २५५
व्याजयोग २४२
धूप २६
धुपपत्र २४७
मजतदाब डॉ १७१
मजरा १ ४
नबी (Prophet) १ ८ सम्प्रदाय
१९८
'नमी नारायणाय १५
'नमी शंकराय' १५

नरक २६-८ ५९ १११ १७४ ३४३
कुण्ड ३३
नरसिंहाचार्य १७१
नरेन २६ २६७ (बेसिए नरेन्द्र)
नरेन्द्र २५८ ६२ ६६३-६८ ३५
(बेसिए नरेन्द्रनाथ)
नरेन्द्रनाथ २५८ २६५, २६७ (बेसिए
विश्वकानन्द, स्वामी)
नवद्वीप १५४ (पा टि)
नवनिधि ११४
नव न्यूनस्थान (New Testament)
१ ६ १९३ १९८ ९९
नाथ-भूजा २१८
'नाथ-ग्रन्थ' ३५८
नामक १६९
नाम-कीर्तन २७९ रूप २५ १२३
रूप माया १४२
नारद वेदवि ३७
नारदीय सूक्त' ३६७
नारायण उसका इतिहास १५५
नारी शिक्षा का रूप २७७-७८
नार्वे ३७६
'निमम' ३८
नियार्कस (सेनापति) १८९
निरंजन ३८९ ३९१
निराशावादी ९४
निर्गुन पुरुष ४२ भाव २८ मत ३१
बाह २९ ४५
निर्गुन २९६
निर्गुनपद ७२ (पा टि)
निर्गुनत्व समाधि २६१
निवेदिता ३ ३४ ३१ ३१४ ३१९,
३२४ ३३ ३३८ ३९ ३४२
४४ ३५ ३५२, ३५५, ३५८
३६४ ३८४ ३८८ ३९ ९१
निष्काम कर्मयोग २३२
नीधो १९४
नीतिकार २ ६
नीतिशास्त्र १२ १६, १८ ४३ ६
८९

- 'नील' नद १९६
 नीलाम्बर बाबू २४५, ३८३
 नुई देवी १९६
 नृत्य-कीर्तन १७५
 नेग्रिटो (छोटा नीग्रो) १९४
 'नेटिव' १६१-६२, १८९
 नेटिवी पैरपोशी १६६
 नेपल्स १८३, १९९
 नेपाल ३७०, ३७६, ३८१, ३९२
 नेपाली १७६, १९४, सज्जन ३९२
 नेपोलियन २१०-१२
 नेप्चून का मंदिर २२१
 नैदा ३९०
 नैनीताल ३७३
 नौबल, कुमारी ३१३, ३३७
 न्यायशास्त्र ७४
 न्यास-सलेख ३४९, ३५४
 न्यूयार्क १५०, ३०५-७, ३१८-१९,
 ३२१, ३२७-२९, ३३४-३६, ३३८,
 ३४२-४३, ३४५-४८, ३५४, ३६६
 पचवटी ३३२
 पजाब १९५ (पा० टि०)
 पजाबी जाट १७५
 पद्म-पत्र ७१
 पद्मा १५३
 'पन्ट' १९६
 परम तत्त्व ११३
 परम सिद्धावस्था २७३
 परमात्मा १०६, ११०, ११३, १५१,
 २४१, शाश्वत १०८
 परमानन्द १४२
 परमेश्वर ११२, २४१, २७२-७३,
 'प्रेममय' २७२
 परशुराम २४९
 परामक्ति २७३
 परिणामशील ४९
 परिणामी जगत् ५०
 'पवित्र गऊ' ३४५
 पाचाल ३
 पाचाल राज २२
 पाइरिउसटि वन्दर २२१
 पाइलट फिश १८५-८६
 पार्डेन स्ट्रीट ३१२
 पाचियाप्पा कॉलेज २२१
 पाटलिपुत्र १८२
 पाप १८, ३१, ६१, १०४, १०९,
 १७३, २३२, २६९, २७३-७४,
 ३०४, और उसका रूप या अर्थ
 ११, और पुण्य १०, और भ्रम
 ७, और वेदान्त ११
 पारथेनन २२१
 पारमार्थिक सत्ता ४१, ४६, ५०
 पारसी ९४, हुकानदार १७९, मत
 १९७, बादशाह १९७
 पार्वती १७५
 पाल-जहाज १५८
 पॉलीक्लेट २२३
 पॉलीक्लेटस २२१
 पाश्चात्य आदर्श ७९, २३६, और
 प्राच्य संगीत २४५, और भारतीय
 कला (स्थिति और अंतर) २३५,
 केन्द्र १८९, जनस्रोत १५०, जाति
 २३७-३८, ज्ञान २५४, दर्शन
 २७५, देश ७९, १४७, (पा०
 टि०) २०१, २२८, २३५-३६,
 २३८, २४९, २५२, २५८, पद्धति
 २७५, प्रणाली २३९, बुध मण्डली
 १९९, लोग ११०, विजेता २३९,
 विज्ञान २२७, २३०, वेदान्तयुक्त
 विज्ञान २२९, शिक्षा २३५,
 संगीत २४६-४७, सम्यता २२९,
 ३५४
 पितृयान ४
 पिरामिड ९३-४, १८१
 पिलोपनेश २२२
 पिलोपेनेसियन २२३
 पी० एण्ड ओ० कम्पनी १६१, १६५
 पुराण-समग्र १७०
 पुरी १७३

पुरोहित-सम्प्रदाय ४३
 पुस्तक शेष १८
 पूजा-मूह १३९
 पूजा-पाठ १ २
 पूजा ३७१ ३७५
 पेंडर हियासाय्ने २ ३४ २१९ २
 पिरा २१९
 पेरिस १५ २ २ ३-५, २ ७
 २१३ ३ ५ ३१६ ३२१ ३२३
 २५, ३२४ ३४८-५ ३५२-५५
 ३५९ ६८, ३६४ ३६६ ६८, ३७९
 नगरी २११ प्रवर्धनी २ ६, २१७
 काठे २ ६
 पेरिस गहरी ३५९
 'पोस्ट' २१९
 पोप २१
 पोर्ट टिब्रिक २६२
 पोर्ट सर्विस बन्धरगाह ३६२
 पोर्तुगाल १८९ ९
 पोर्तुगीज १५४ १७५ डाकू १६८
 सेनापति १७९
 पोस्ट ऑफिस वी क्ररेस्ट ३५३
 पौराणिक कथा २३८
 प्यारी मोहन ३९२
 प्रकृति ३४ ८ ९ ९२ ११३
 १२ १४४ अनादि अनन्त ८९
 आत्मा के लिए १२७ आन्तरिक
 और बाह्य १२०-२१ उसका
 आसय १२१ उसका उपयोगी बंध
 १ ७ उसका विकास का सिद्धान्त
 ९८ और व्यक्ति का सम्बन्ध १२३
 बटनार्थों की समष्टि १२१ दासी
 १२४ पुस्तक ९८ विभेदयुक्त
 १२
 प्रतिक्रम वेहू ९३ ४
 'प्रतीक' रामकृष्ण मिशन का ३४६
 प्रतीकवाद १३५
 प्रत्यक्ष अनुभूति ७१ १३५ बोध
 १३५ दासी २९ ४१ ४९
 'प्रथमपत्नी' ८६

प्रत्ययात्मक मार्ग १२८
 प्रपञ्चगीता १११ (पा टि)
 प्रबुद्ध मार्ग ३१८ १९, ३२४
 प्रभु १२८, २३९ २४५ अन्तर्मायी
 २४ आत्मन्मय ३४ ७ सर्व
 स्वर १६
 प्रमदाणास मित्र ३५ (पा टि)
 प्रयाम १५२
 प्रवाहल जीवनिक राजा ३
 प्रमान्त महासागर ५७ ३१
 प्रधिया २ ९
 प्लेटो उनका सिद्धान्त १२८
 प्लेस व एताय् मुनि ३४७-५ ३५३,
 ३५५, ३५७ ३५८ ६
 प्रापैतिहासिक युग १ २
 प्राचीन अग्नि २६ वैगम्बर ५७ अरसी
 ३५, ११६ बौद्ध उनका मत ५
 प्राचीन ब्यबस्थान (Old Testament)
 २ ७६ (पा टि) १ ६
 'प्राण' ८५
 प्राण जीवन का मूल उत्पन्न ३७
 प्राणायाम २५७-५८
 प्रिन्स ऑफ वेल्स २ १
 प्रियमाण मुक्तोपाय्याम २५७ सिन्हा
 २२७
 प्रेम १७ ६ १११ २७९-८ २८८
 अब्मुत १२९ अपानिब स्वर्गीय
 २३८ असीम और सहीम ६
 आनन्द की अभिव्यक्ति १४
 उसकी महत्ता व्यापकता १५ परि
 पालक संक्ति ६ पशु प्राणी से
 १३ प्रतियोगिता का मूक ६ मार्ग
 २८ मूक ६ सुखम रूप ७७४
 स्वर्गीय २३८
 प्रेमानन्द स्वामी २७१ ३५१
 'प्रिंस पैय' १५९
 प्रीतिघटेक २२३
 प्रो विजियम वेम्स ३५५ (रेविएर डॉ
 वेम्स)
 प्रोटेस्टेण्ट वर्म १७८

'प्रोटेस्टेन्ट-प्रबल' २१०

फक, श्रीमती ३६१

फरात १०४

फान माल्त्के २०९

फारस १९४, २१३, २१५, २१६-१७,
जाति २१६

फारसी २१७, प्राचीन ३५, ११६

फार्डिनेण्डलेसेप्स १८८

फिडियस (कलाकार) २२१, २२३

फिनीशियन १९१

फिलिस्तीन १९१

'फिलो' १९८

फेटिश, उसका अर्थ १३४ (पा० टि०),
पूजा १३४-३५

फेरिस-चक्र २९१

फेरो (मिस्र का बादशाह) १८०, १९०

फेरो-वश १८१

फास १६४, १८०, २०१, २०७, २१०-

११, २२०, २४७, ३०३, ३२०,

३२६, ३४४, ३४९, ३५७, ३५९,

और जर्मनी में अंतर २०७

फासिस लेगेट ३५५

फासीसी १५४, १७९, १९०-९१, २००-

१, २०४-५, २०९, २१४, पुरुष

२०१, भाषा १९४, विद्वान् २२२-

२३

फिस्को ३०८, ३१३, ३२१

फेच चाल २०९, जहाज ३४६, जाति

२१२, डिक्शनरी ३१६, भाषा

२००, २०३, २१९, ३२५, ३५३-

५५, लेखक ३६०, सम्यता २०७,

स्त्री-पुरुष २११

फ्लोरेंस ३७४

वग देश १५३, १६५, १६८, १७१,

१७५, पूर्व १६५, भाषा २०२,

भूमि २०५, २७०-७१, भूमि

और उमका रूप १५१, सागर

१५७

वगला १६६, १७६, १७८, भाषा
१९७, १९९

वगाल १६८, १७६, २०१, २४३,

२७५-७६, २८०, २९०, ३६३,

३६८-७०, ३७२, ३७८, ३८१,

आधुनिक १३६, देश १७६, पूर्व

१५६, पूर्वी ३७३-७५, ३७९, प्रदेश

१८२, मे कुल गुरु प्रथा २४७

वगाली १४८, १६८, नौकर १६५,

भाषा १७६ (पा० टि०), मकान

३८८, राजा विजय सिंह १७६,

लडकी २०२, साहित्य २८०

बगोपसागर १६८

बकासुर १५७

बगदाद १९०

बडौदा ३७१, ३७३

'बदफरिगम' ३००

बनर्जी, एम० एन० ३८३, श्रीमती

३१८, ३७२

बनारस ३८९

बन्धन ३०, ४७, ७८, ११०, १२४,

१४०, ३३२, ३४२-४३

बम्बई १६३, १६५, ३७१, ३७५-७६,

प्रेसीडेन्सी ३७८

बरखज्जाई १६०, २१६

बरमी १७६, १९४

बर्गस (जर्मन पडित्त) १९४

बर्गेन शहर १६३

बर्दमान नगर १४९

बर्लिन १५०

'बल का आदर्श' १३२

बलगेरिया २१३-१४, २१८

बलगम वसु २४७

बलराम वावू २३७, २६९, २७१

(देखिए वसु, बलराम)

बलिराज १४८

बसु, जगदीश चन्द्र (डॉ०) २०५, बल-

गम २४७, रामतनु २५८

'बहुजनहिताय बहुजनमुखाय' ५८

बहु विवाह १६१

बाँकीपुर १५४
 बाह्विध २ २९ ३४ ४२, ७३
 (पा टि) १७ १९१ १९३
 १९७-९८
 बाघबाजार २३७ २४८, २५७
 बान्ताम बाहर (बाभियम केन्द्र) १६८
 बाबुलिन १९३
 बाबुलिन १९ १९३ २२२ पाति
 १९७ प्राचीन १९५ साहसी १९१
 बाबुली १९७
 बाबुलीमिया १९५
 बाबुली प्राचीन १९४
 बाबुराम ३५ ३९२ (देखिए स्वामी
 प्रेमालम्ब)
 बार्नहार्ड २ २ २११ १२
 'बास' १९७
 बाक गंगानर लिखक १९६
 बास बाह्यकारी १५ विवाह २७५-७६
 बास्य विवाह १९१
 बासीमिरी १७१
 बिस्मार्क २ ९
 बी आई एस एन कम्पनी १६१
 बूक कुमारी ३४४ ३५५ श्रीमती ३४७
 बुनकराज १७
 बुनापेस्त २१४
 बुध १८, १२७ १४३ २९४ और
 महिषा १३२ और उनका देवत्व
 १४२ और उनका महाप्रयाण
 २९६ और कृष्ण १३६ और चर
 बाहा १३७ मगवान् १७६ (देखिए
 बुद्धदेव)
 बुद्धदेव ३१
 बुद्धि ४३ ८४ उसका अनुसरण ४४
 और भावना १७ और हृदय १८
 बुद्धी बंस २११
 बुलगेरिया २१४
 बुल श्रीमती ३ ५, ३१५, ३१८, ३२८
 ३३१ ३५, ३५ ३५६, ३५८,
 ३६६, ३७६, ३८२, ३८८, ३९२ ९३
 बुलेवर ह्यूस सुबम ३४८

बुस्मार २१५
 बृहदारण्यकोपनिषद् ६९ ७२ (पा
 टि)
 बेंजमिन मिस्त्र ३ ३
 बेदूख श्रीमती ३३४
 बेटी श्रीमती ३९३
 बेडार्न मरब १८२
 बबीलोना १८९
 बेबीलोनिज्जान उनकी मारणा ९३
 बेसूह माँव ३८३ मठ २२७ २३७
 २४५, २६३ २६५, २६८-७१
 २७३-७५, ३७७-७८, ३८०-८१
 ३८३-८४ ३९४
 बेसगार्ड मादाम ३५९
 बीजा मस्य २ ६ (देखिए बुल बोमा)
 बीमरा १७७-७८, १८
 बीमराया ३८७
 बीनापार्ट २१ बंस २११ सभ्यता
 २११
 बीया श्री ३५९, ३६३, ३७ ३८१
 (देखिए बुल बोमा)
 बीस बाँ ३६७
 बीस परिवार ३४
 बीस्टन ३५६
 बीड ४ ९२ अनुशासन १३८
 उत्तर प्राचीन ३८९ उनका मठ
 ५ और हिन्दू १७५ और
 हिन्दू बर्म में भेद १३८ कट्टर
 १७४ त्यागी २१७ बर्म ४
 २४१ प्रचारक १७४ प्राचीन
 ४८ भिक्षु १७४ मठ ५ ५३,
 १३८ ३८७ पुग २३८ मङ्गली
 १७६ साहित्य ३८७ सीसोनी
 १७३
 ब्रह्म ३ २ २२, २७ ४५ ६, ७७
 ८३, १ ५, ११३ १३ २९२,
 ३८७ मनुजव २५ मनुमूर्ति २४
 चिन्तन २३९ ज्ञान २१ २३१
 तत्त्व ८३ विद्य १७६ निर्गुण २९
 ११८ पुस्त्य ४६ पूर्व २३६ फल

१४८, लोक २४, १४१, विद्या ४,
सर्वव्यापी २३, साक्षात्कार २१,
सूत्र ३८७
ब्रह्मचर्य ३६६, अखड २५०, २५५,
और उसकी महत्ता २५६, जीवन
का गौरव ३९५, पालन २३२,
भाव ३९४, व्रत २४२
ब्रह्मचारिणी और उसकी आवश्यकता
२७८
ब्रह्मचारी २०, २७२, २९०, ३४७,
३६५, और उसकी आवश्यकता
२७८, पुरुष ३९४, शिष्य १९
ब्रह्मपुत्र ३७९, नदी ३७२
ब्रह्मभावापन्न २२
'ब्रह्मवादिन्' १७२
ब्रह्मा ७६, ३४२
ब्रह्माण्ड ६, २३, २६, ३०-१, ३३, ६८,
७०-१, ७६, ७९, २८४, ३१८,
जगत् ६९, ७३, स्वरूप ७३
ब्रह्मानन्द, स्वामी २५७, ३०३, ३०६,
३०९, ३५१, ३६४, ३८३, ३८८,
३९२
ब्राउनिंग १३७
ब्राह्मण १९, उडिया १६९, कुल २४८,
कोकण १६९, गुजराती १६९,
२२०, २४८, दक्षिणी १६९
ब्रिटिश कौन्सिल ऑफिस ३५०
ब्रिटिश जहाज़ ५७, म्यूज़ियम १९३
ब्रीटानी ३५९
ब्रेस कम्पेन ३५९
ब्लाजेट, श्रीमती ३१२, ३३७
ब्लावट्स्की, मैडम २९२
भक्ति, और त्याग १४२, और द्वैत
२७२, और श्रद्धा २३२, के पाँच
प्रकार २७२, ज्ञान मिश्रित २८१,
परा २७३, मार्गी २७३, योग
२७१-७२
भगवत्प्राप्ति २८०
भगवद्गीता ४ (देखिए गीता)

भगवान् २२, ५९, ७१, २३०, २४१,
२४४, २४९, २७३, ३३६, और
उच्चतर भाव ३५, हृदय-स्थित ६२
भगिनी क्रिश्चन ३६०, ३८०, निवे-
दिता ३०४, ३१४, ३२४, ३८-३९,
३४२-४४, ३५०, ३५५, ३६४,
३८४, ३९०
भागीरथ १८७
भागीरथी १५४
भारत २९, ४०, ४९, ९७, १०४-५,
११६, १४०, १४४, १६४, १६७-
६८, १७३, १७५, १७७, १७९,
१८२-८३, १८८-८९, १९१-९६,
२०१, २१५-१६, २२९-३०, २३२,
२३४, २४२, २४६, २४८, २५४,
२५७, २७५, २८५-८७, २९२,
२९५, २९७, २९९, ३०५, ३२०,
३२४, ३३१, ३३३, ३३९, ३४१-
४२, ३४४, ३४७, ३५०-५१,
३५५, ३६१, ३६३, ३६६, ३७३-
७४, ३७८-७९, आधुनिक १५३,
उत्तरी १६९, उसका उच्च भाव
२५४, उसका सदेश १२७, उसका
हित २३३, उसके निवासी १०६,
उसके श्रमजीवी १९०, और
आत्मा विषयक धारणा ९५, और
उच्च वर्णवाले १६७, और उसकी
सहिष्णुता १६७, और कृष्ण १३३,
और जन समाज २५४, और
जीवन शक्ति १६७, और दुर्भिक्षो
की समस्या २५०, और पश्चिमी
देश में अन्तर १२७-२८, और
प्राचीनतम दर्शन-पद्धति १२१,
और 'महान् त्याग' १३७, और
वैष्णव धर्म १३०, और सामाजिक
नाम्यवाद १३४, की लक्ष्मी १८९,
धारणा ९५, पश्चिमी २४३,
प्राचीन १९, १०८, भक्त २०५,
भूमि ३८८, भ्रमण २०२, महा-
सागर १७२, १७९, माता ३४५,

में स्त्री-शिक्षा १३९ साक्षिप्रिय
 २९६ अज्ञा मन्त्रि का ह्रास २६९
 भारतीय उसकी आत्मा विषयक भारतमा
 १७ उसकी विशेषता १२१
 कला ३८९ जाति ३४ आक-
 विभाग ३७९ उत्पन्नितक (प्राचीन)
 और शरीर संबंधी भारतमा १६
 धर्म और उसका बोध १३३ नारी
 २७७-७८ प्रयोग १३४ मन
 १२१ महिला २७८ वाणिज्य
 १८९ विचारधारा १२१ विद्रोह
 २९८ वेस-भूषा २३६ समाज
 २९८ सामु ३५६ स्त्री २९८
 भावना उसकी महत्ता और व्यापकता
 १८
 भाववादी ४९
 माया व्योमो २ १ २ ४ २१३
 ईरानी १ ४ श्रीक १९२ १९६
 तमिल १७५ फ्रांसीसी १९४
 फ्रेञ्च २ २१९ २५३-५५,
 ३२५ बग २ २ बंगला १९७
 १९९ यहुदी १९८ संस्कृत १ ४
 १ ९, १९३
 माप्यकार २२
 मिथु-संन्यासी ३६१
 मुबन मोहन सरकार
 भूटानी १७६
 मूटिया १९४
 भूमध्य सागर १८३ १८८, १९१
 १९६ २ ३ २ ५, २८२
 'मेला' १५६
 भैरव-सौपताल २६६
 भैरवी-सुकताला २६१ सौपताल २६७
 मौलिक तत्व ८९ भाष १२२ २९२
 बादी २९ विज्ञान १४ घास्य
 २३
 मंगोल १९५ जाति १९५
 मंगोलार्क (कोले मंगोल) १९५
 मंत्र-दीक्षा २४९

मन्त्रो-मन्त्रो १ ४
 मईसीमियन २२२ कला २२२
 मठ, बेल्लू ३६३ ३६५, ३६९-७१
 ३७९-७५, ३७७-७८ ३८०-८१
 ३८३-८६ ३९४
 मठवाच १३८
 'मबर' १ ८ ३१७
 मद्रास १५ १६८ १७१ १७७ २२१
 ३६५, ३६९ ३७५ और तमिस
 जाति १७ जर्मन ३८८
 मद्रासपट्टम् १९८
 मद्रासी १६९, १७०-७१ जमावार
 १७ तिसक १६९ मित्र १७१
 मधुर भाष २७९-८१
 मध्य वेष्ट १५६
 मध्य मुनि १६९ सम्प्रदाय १६९
 मर्म १८ (पा टि)
 मनुष्य' ४४ २७ उसका प्रकृत
 स्वरूप ६२
 मनोमय कोम १४१
 मनोविज्ञान १४ २५४ २५७
 मलाबार १७ १९६
 मलायलम (मलाबार) १५१
 मलायी १९४
 मसीहा ३४
 महाकाली पाठशाळा १४
 महा निर्वाण मूर्ति १७४
 महा प्रवाण और बुद्ध २९६
 महाभारत २३३
 महाभाषा २४२, ३६६
 महाभान १७६ २१६ मठ ३८७
 महायान्द्र १६४
 महाविषयत् रेला १५७
 महावीर १४७-४८ १७५
 महिम ३४८
 महेश्वरी १९५ (पा टि)
 महेश्वरनाथ गुप्त २७१
 मां १३ १५ ३ ७ १ ९, ३२६
 ३२ ३ ३३२ ३३ ३५९
 मां पुनपुनलिनी २६१

- मागधी भाषा १७६
 माता जी (महाकाली पाठशाला की
 सस्थापिका) १४०
 मातृभूमि २७८
 मादमोबाजेल २०१, ३६३, उसका
 अर्थ २०१
 मवुकरी ३९०
 मानचू १९५
 मानव-आत्मा २९
 मानवतावादी १४०
 मानसिक विद्या २९२
 मानिकी १८१
 माया ३१, ७५, ७६, ९२, १०९, ११३,
 १३६, १३८, १६७, २७१, २७३-
 ७४, ३८७; अमरावती २०६,
 उसका अर्थ १२३, उसकी परि-
 भाषा १४२, उसकी व्यापकता
 २७५, जाल ७५, नामरूप १४२,
 पाश २७३, मोह ७०-१
 मायातीत अवस्था ७५
 मायामय ६८
 मायावती ३४७, ३६६-६८, ३९३
 मायावरण २७
 मारमोरा २२१
 मारवाड १८२
 मारवाडी २३०
 मार्गट ३१४, ३२४, ३३५-३७, ३४३,
 ३४५, ३५५-५६, ३६९-७०, ३७२,
 ३९३ (देखिए निवेदिता, भगिनी)
 मार्गरेट ३०५
 मार्टिन लूथर २०३
 मार्साइ १८३, १९९
 मालद्वीप १५७, १८४
 मालाबार १८०
 'मालिम' १६५
 माल्टा १४९
 मासपेरो १९३-९४
 मास्टर महाशय २७१-७२ (देखिए
 महेंद्रनाथ गुप्त)
 माहिन्दो १७४
 मि० श्यामीएर १७१
 मित्र, प्रमदादास ३५०
 मिल २७५, २९०
 मिल्टन १३७, श्रीमती ३२२, ३२७,
 ३३५
 मिल्वार्ड एडम्स, श्रीमती ३३७
 मिस्त्र १८०-८१, १९१, १९८, २०२,
 २०५, २२१, ३६०, जाति २२२,
 देश १०६ १९३, देशवानी १०३,
 पुरातत्त्व १९३, प्राचीन १९०,
 १९५-९६
 मिस्त्री ९३-४, आदमी १८३, उसका
 प्राचीन मत १८१, सम्यता १७०
 मुकुन्दमाला १११ (पा० टि०)
 मुक्ति ३४, ५५, ६७, ७५-६, ९७,
 १२३-२४, २७२, ३१७, ३४१-४२,
 अमरता से अविच्छिन्न सबध ११७,
 उसका अर्थ ११६, उसका सरलार्थ
 ११०, उसका सिद्धान्त ११०, मे
 अनुकम्पा की आवश्यकता ११२,
 सन्यास १३३
 मुखोपाध्याय, प्रियनाथ २५७
 मुगल १६८, प्रतिनिधि १६८,
 बादशाह २१६
 मुण्डकोपनिषद् ६८ (पा० टि०), ११२-१३
 मुराद, सुल्तान २२०
 मुर्शीदाबाद १५४
 'मुल्लक' १९७
 मुसलमान २५, २९, ४३, ५९, ७७,
 १६५, २००, २०३, २०८, २१३,
 २४७, २५२, धर्म २१६, नेता
 ओसमान १९२, नौकर १६५,
 हिन्दी भाषी २२०
 मुसलमानी धर्म १८९, २१८, बगदाद
 १८९
 मुहम्मद १४३, १८२
 'मूमिया' १८१
 मूर्ति-पूजन १६१
 मूर्ति-पूजा १९८, २९२, उसका उद्गम
 २३७

मूलर, कुमारी ३२ ३४४ ३८६
 मुसा यहुदी नेता १८
 मृत्यु का निरन्तर चिन्तन २८४
 मैक्सवॉइड मिस २ १ २१९ (देखिए
 जोसेफिन मैक्सवॉइड)
 मेघदूत २३३
 मेटारनिक २११ १२
 मेबाबिस्ट ३४३
 'मिनुस' १९६
 मेनेसिक (हल्की बाबय्याह) १८
 मिमफ्रिस प्रवास २८९
 मेर्टोन २२१
 मेरी ३ ८ ३१६ ३२५, ३३६ ३७
 ३३९, ३४२, ३७३-७४ ३७९,
 ३८१-८२ (देखिए मेरी हेक
 कुमारी)
 मेरी कर्ई (वास्त्रियन राजकुमारी)
 २१ ११
 मेरी हेक कुमारी ३ ८ ३१६-१४
 ३३६ ३७ ३३९ ३४२ ३४४
 ३७३ ३७९ ३८१
 मेल्काबि मादमोजाबेक २२१
 मेल्का मादाम २ २
 मिस्टन श्रीमती ३११ १२ ३१९, ३२५
 ३५५-५६
 मेसाजरी मारीटीम (क्रासीटी) १३१
 'मै' ३०-१ ४९ ५८९, ६२, ८४-५
 १२३ उसकी पहचान ६२
 मैकक्रिडली परिवार ३१६ बहनों ३३७
 मैक्सवॉइड कुमारी ३१३, ३२३ ३२८
 ३७३ ३७९ (देखिए मैक्सवॉइड
 जोसेफिन)
 मैक्सवॉइड जोसेफिन ३ ५, ३१८,
 ३२८ ३३१ ३३४ ३४५ ४६,
 ३५५ ३६२ ६३ ३६५, ३७
 ७१ ३७५ ३७७-७८, ३८१
 ३८६ ३९३ ९४
 मैकबीध परिवार ३८२
 मैडम मेजिन ३१५
 मैक्सिम २ ४-५ तीप २ ५

'मैक्सिम मग' २०४
 मैक्सिम श्रीमती ३७६
 मैडामास्कर १४९
 मैसूर १७२, १७८, ३७५
 मैसूरी रामानुजी 'रसम्' १७२
 मोक्ष १११ ११४ १४ और
 षण्कितत्व मुक्ति १२८ मिर्जा
 १२४ सिद्धि ११
 मोती ३८४
 मोनरो एण्ड कम्पनी ३७४
 'मोक्ष' १९७-९८
 म्सेण्ड १३५
 यमराज १५९
 यवन १९२ १९६ आशीन १९१
 सौग १८१
 यश श्रीमती ३३७
 यहुदी १ ४ १ ६ १९१ १९३ ९७
 २९९ उनकी सैतान की कम्पना
 १ ४ जाति १९७ बेवता १ ३
 बर्म १९८ माया १९८
 पारकम्पी १५१
 'पावे' बेवता १८ १९८
 मुक्रेटिस १७ १९७ नवी १९३
 मुस्क (तुरस्क-सभ्राट्) २१६
 मूबीय या कबीली बेवता १ ३
 पुनाग १८२, २३८, ३१
 मुनानी बेवता १३५ हकीमी १८१
 मूरोप ४३ ४८, १३३ ४४ १४७ १६३
 १६५, १७८-७९, १८३, १८८, १९३
 १९५, २ ०-१ २ ३ २ ७ २ ९
 १ २१३ १४ २१८, २२१ २२८,
 २२७ २४७ २७४ २७६, २८७
 ३८ खण्ड २१२ पूर्वी १९२
 मम्मकालीन ४ यात्रा १४५
 बासी २१४ १५, २१४ २३६
 मूरोपियन १६५, १७५ पौसाक १६२
 राजमपण २११ बैरा १८२
 यहुदीय ३६७ सम्पत्ता १९२, १९६,
 १९९

यूरोपीय कमीज २३६, कोट-कमीज
२३६, विद्या ३५४, वेशभूषा
२२८, सम्यता १७७

यूसफजाई २१६

यूसुफ १९८

योग, उसका अर्थ २४२, ज्ञान २७१-
७२, ध्यान २४२, भक्ति २७१-
७२, माया १०९

योगानन्द, स्वामी २५७

योगीन माँ ३६९

योगिक सिद्धि और सीमा के प्रश्न १४१

रगून १४९

रघुवश १४७ (पा० टि०), १५२
(पा० टि०)

रजोगुण १५०, २४८, २५६

रजोगुणी २५३

रब्बी (उपदेशक) १९९

रमते योगी १४३

राइट, श्रीमती २८६

राक्सी चाची ३३७ (देखिए ब्लाजेट,
श्रीमती)

राखाल ३५०, ३९२ (देखिए ब्रह्मानन्द,
स्वामी)

राजकुमार (एक वृद्ध क्लर्क) २६३-६६

राजकुमारी डेमी डॉफ ३५७

राजदरवार, उसका महत्त्व २४३,
सम्यता और सस्कृति का केन्द्र
२४३

राजपूताना १७८, १८२

'राजयोग' (पुस्तक) २५७-५८

राजस्थान २३८, २४३

राजेन्द्रलाल, डॉ० ३८७

राधाकान्त देव, राजा २५०

रावा प्रेम २८०

राम १४७

रामकृष्ण देव २६०, २६२, २७१-७२,
३०५, ३१५-१६, ३२६, ३५१,
३९१ (देखिए रामकृष्ण परमहंस)
रामकृष्ण परमहंस १२७, १२९-३०,

१३२, १३६, २२७, २३२, २३४,
२४१, २४४-४५, २५१, २५४,
२६०-६२, २७३, ३०७, ३३२,

उनका श्रेष्ठत्व २५२, और
विवेकानन्द १४१, जन्मोत्सव ३०९,
भगवान् रूप २४२

रामकृष्ण मठ ३४६, मठ एव मिशन
२८५ (पा० टि०), मिशन ३४६,
३५१

रामकृष्णानन्द, स्वामी ३६५, ३६९,
३७४ (देखिए शशि)

रामगढ ३२०

रामतनु बसु २५८

राम बाबू ३९१

रामलाल २६०

रामसनेही १६९

रामानन्दी तिलक १६९

रामानुज १६९

रामानुजी तिलक १६९

रामायण २३३

रामेश्वर १४९

रामेश्वरम् ३६९

रावण-कुम्भकर्ण १७३

रावण, राजा १७३

राष्ट्र, उसके इतिहास का महत्त्व २२८

रुडयर्ड किप्लिंग २९७-९८

रुवाटिनो कम्पनी (इटैलियन) १६१

रूपनारायण (नद) १५५

रूमानिया २१८

'रूल ब्रिटानिया, रूल दी वेल्स' १५३

रूस १६४, १८०, २०८, ३६५, युद्ध
२१४

रूसी भावना ३६५

रुस्काइव ३७४

रेड-बुड वृक्ष ३३६

रेजाँ २११

'रोजेट्टा स्टॉन' १९६

रोम १५०, १८९-९०, १९२, १९९,
२०९, उसके बादशाह १९३, राज
२१२, राज्य २१०, २१७,

साम्राज्य १८९
रोमन १३७ १८१-८२, १९६, १९९
कैथोलिक ४३ २१८, ३९४ वर्ष
२ ३ निवासी जननी बर्बरता
१३७ बाघघाह (कालस्तामसिद्ध)
१७९ बाले २ ३

संका १४७ १७३-७५
'कविन्द के बाप' (बंगाली कहानी में
एक पात्र) १५९

कवच ६, १९, ३० ४८, १५ १९९
३ ५, ३ ७ ३१ ३३१ ३२,
३३४ ३७ ३७९

'काइल्ट ऑफ एशिया' २९८
काइल्ट विविड का आक्रमण ३२९

काइपजिक २११
कागल डॉ ३५५

कायबल मस्य २ ३
काई बर्जन ३८६

का माटिन २ २
कासबेस १५

कासुमागर १७९-८१, १८३ १८९
कासुन २९७ २९९

कासि एजिसिस ३ ५ ६, ३१२, ३२०-
२३ ३३४ ३३७ ३३९, ३४८, ३५५

'का सीपन' ३४६
काहीर ३७६

काइवडी ३७१
काइसिब २९७

काइमिप्य २२३
काइरूबप ३७६

काइनासाथ ७८
काइल परिवार ३२१ ३४५ मिस्टर

२ ३
काइलेट, का ३१२, ३२४ ३२९, ३३१
३० ३३४ ३५, ३४७ ३६२,
३९३ काइमनी ३१ ३१५, ३१९,
३२१ ३२३ ३२५, ३२७-२८,
३३१ ३३४ ३५, ३७९

काइले प्रोपोजर २२१

सेन्वा १९४
कोहित सागर १८८

कट-बुख ४७ ३३
कनिममबाड़ी ३६५

कणह १९७
कण्य ३३ १५३

'कर्तमान मारुत' १५३
कसीमतनामा ३ ७ ३९४ ३३५

कस्तु १३५ ज्वाबान नाम-रुम का
योग १२३

काईकाऊ, काइमनी ३४७
काटरलू २११

कायु-पील १६३
काइलेना १५४

काइलसी ३८९ काइमनी ३८७-८८,
३९०-९२ कासी १५ (पा
टि)

काइलम काइमनी ३५४
काइली कुमारी ३१८ १९, ३४५ ४६,
३५४

काइलीक १४८
काइप पील १६३ ६४ १६६

काइलु घिल्य ३८
काइलेर २१९ २

'काइलस' ८७
काइलसाथ ३९, ५२ ३ काडी ८१,
२९६

काइलर हागी २ २ महाकवि २ ३
काइल सिई १७३

काइला का मंदिर २२१
काइलन भापुनिक ३९ काडी (Idea-
lnt) ४१ ४८

काइलनगर १७
काइलरुम मुनि १७

काइलनापर ईलनाथ २३३
काइला-काइल २७१

काइला २ ५, २११ ३६२ नकदी
२ ८ गटर ३ ९, २१२

काइलेम गज २

विलायत १५८, १६३, १६५-६६,
 १७१, २५२, २५४-५५
 विवाह २७५, अन्तर्जातीय २७१, और
 भावात्मक शिक्षा २७७, विधवा
 २७१
 विवेकचूडामणि ७३ (पा० टि०)
 विवेकानन्द, स्वामी ८३, १२७, २५०,
 २५५, २५८, २८६, २९०, २९२-
 ९३, २९८-९९, ३००, ३०४-५,
 ३०८-१२, ३१४-२०, ३२४-२५,
 ३२८-३१, ३३३-३९, ३४१-४९,
 ३५२-५३, ३५७-६०, ३६२-६५,
 ३६७-७४, ३७७, ३७९-८२, ३८४-
 ८६, ३९०-९३, ३९५, उनकी
 निश्चिन्तता २६६-६८, उनके
 विवाह सब्बी विचार २७६, और
 अद्वैत १४१, और उनकी सहृदयता
 २६२-६६, और चित्रकला २३८,
 और चैतन्य २७९, और धर्म तथा
 सम्प्रदाय २९३, और निर्वाण
 ३३२, और बुद्ध १४२, और
 यौगिक सिद्धियाँ १४१, और राम-
 कृष्ण परमहंस १४१, और व्यक्तित्व
 का प्रश्न १४३, और शंकराचार्य
 १४३, और सगीत कला २४६,
 और सत्य दर्शन २७४, और हिन्दू
 धर्म २९४
 विशिष्टाद्वैत और ईश्वर ६८
 'विशिष्टाद्वैतवाद' ९०
 विष्व-ब्रह्मांड १४
 विश्वामित्र २४९
 विष्णु, उनकी उपासना १३३, प्रतिमा
 २३२
 विष्णु मोहिनी ३९१
 वीर रस २४७, २८०
 वीर-वैष्णव सम्प्रदाय १७०
 वीर-शैव १७०, शैववाद १७५
 वील माट, श्रीमती ३५८
 वुड्न पागा २१९-२०
 वृष और मत्स्यकाम २०

वेकूहम, कुमारी ३५५
 वेद २८, ३०, ४४, ४८, ८८, १०५
 ११२, १३२, १३५, १३९, १८९,
 १९६, २४२, उसका सहिता भाग
 २५, उसकी आवश्यकता २४२,
 उसके भाग २३, पाठ ३६५, भाष्य-
 कार सायण १७० (पा० टि०),
 वाक्य २७४
 वेदान्त ७, १६, २९, ३२, ५३-४, ५६,
 ६०, १३२, १४४, १७०, २२७
 २४१, ३३४, उसका आदर्श ३४,
 उसका उपदेश ३३, उसका मत
 ३३, उसका मूलतत्त्व २५, उसका
 मूल सिद्धान्त (एकत्व भाव) ८,
 उसका वैशिष्ट्य २२, उसका व्या-
 वहारिक पक्ष २१, उसका श्रेष्ठत्व
 ११२, उसका सरलीकरण १२,
 उमका सिद्धान्त २२९, उसकी
 साधना ३५, और अद्वैत ५२, और
 अद्वैतवाद ४०, और ईश्वर ६८,
 और उसका कथन ६१, और उसकी
 उपयोगिता ३, और गीता २४०,
 और धर्म ३, और प्रणेता ३, और
 सभवा आदर्श ६, और सिद्धान्त ३,
 दर्शन ४, ८४, दर्शन में ईश्वर का
 स्थान ८३, धर्म ५८, भाव २०२,
 मत २७, ३१७, युक्त पाश्चात्य
 विज्ञान २२९, वादी ६७, ममिति
 ३२४, सोसायटी ३१२, ३२९,
 ३३५, ३४२
 वेदान्ती, प्राचीन ४८
 वेनिस १९०, ३६०, ३८०
 वेल, कुमारी ३५५
 वैदिकन २१०
 वैदिक अग्नि १३९, धर्म त्यागी २१७,
 यज्ञ २३९, यज्ञानुष्ठान २४१, वेदी
 १३९
 वैष्णव १७०, २४१, २८१, धर्म १३०,
 १३३ १७०, सम्प्रदाय ३००
 वैश्य २४८-४९

४ १ ४ ३ ४ ५ ६ ४ ८
 ४१ ४१३ १५
 विश्वकाम्यसंग्रह ११ ३४१ (पा० टि)
 विशिष्ट' उद्योग अर्थ ६७
 विशिष्टाद्वैतभाव ३३
 विशिष्टाद्वैतवाद ४६-७ ६७ भावी
 ६२
 विश्वविद्यालय १ २
 विष्णु ३४ ३७-८ ४७ ५७ १७५
 १७६, ३५७ उपासना और नाम
 १७४ प्रभु १७३ रूप १७५
 विष्णुपुराण १७६ (पा टि) ३१५
 बीजा १२७
 'बीर' ९२
 बुद्ध साङ्ख्य ३७१
 बुद्धावन १९९
 बंद ११ ४३४ ४६-७ ५१ ५७
 ६२, ६४ ७१ ८३ २ ४-५
 २ ८ २६४ २६६ २८३-८५
 २८९, २९२ ९३ ३१५ और
 विद्या २९८ ऋगु २८३
 वेदव्यास ३१४
 वेदान्त ४७ ५२ ६१२ ७४ ८८,
 १११ १४ २८६, ३१४ अद्वैत
 ६८ और भावा ११७ वर्धन
 ९५ ४७ १८७ २८ अर्थ ५५
 सूत्र ५६-७ ३१५
 वेदान्त-केसरी' ४६
 वेदाध्ययन ४७
 वेदोक्त तत्त्व ६२
 वेत्स ३७३
 वैकुण्ठ १४४
 वैदिक भाषा २८४ मृग ३ साहित्य
 २८४
 वैदेही १४२ (वेदिए सीता)
 वैद्यनाथ ३५७ ३६१ ३६५
 वैद्यनाथ ७८
 वैश्य ४७
 वैष्णव सम्प्रदाय ३७
 व्यक्तित्ववाद ३५७

व्यास ४२, ४६-७ १६५, १६८,
 ३१४ सूत्र ४६, ५३
 व्यूह-रचना १६२
 शंकर ४२, ४९, ५०-१ ५९, ६२, ६४
 ८ ७१ ११२ (वेदिए शंकराचार्य)
 शंकराचार्य ६८, ३१४ १५, ३४२,
 ४४
 शंख १७३ १७५
 शकुनि १५३
 शकुन्तला १४८
 शक्ति' ३६
 शतपथ ब्राह्मण ३१६
 शनिग्रह ७७
 'शब्द' ७ २९ और गद्य ७
 शारत् ३७५, ३९१
 शरीर ९ १२, २६, २८ ३२
 ३६ ६ १४ ६६, ७४ ७७
 ८७ ८९ ९७ १ ५, १ ७
 १ ६१ ११४ १२१ २२, १४७
 १५८ १७१ २ ६ २२९ २३४
 २३८ २५१ २५६ २६५ ६६,
 २९३ ३ ५, ३ ७ ३ ९१
 ३२२, ३२९
 शंकर-भाष्य ४२, ५६
 शाक्य ३५
 शापेनहाकर ६२
 शाक्तिधाम-सिखा ३४
 शास्त्रा २१२ २९३
 शास्त्र २८ १ ५ उद्योग कार्य ६५
 शिकागो ८६ ३६६ ३७७ ३८३
 ३९३ ४ २-३ ४१३ ४१५
 शिवा और सहानुभूति ११९ शान
 २४३ लौकिक २४४
 शिव ३२ ३४ ३७ ४७ ५ ५७
 १२९ मनु १३६
 शिवजी का मृत ३३६ ३७
 शिवमहिम्ना स्तोत्रम् २६३ (पा टि)
 शिवस्वल्प ४२
 शुक्ल रामायण २ ५ (पा टि)

'शुभ' ८

शुभ-अशुभ १३०

शून्यवाद ५३, वादी ५४, ३७१

शूर्पणखा १३७

'शैक्सपियर क्लब' १३२, १७७

'शैक्सपियर सभा' १४८

शैव ३७

श्याम २००

श्यामा माँ ११२

श्रवण १२६

श्राद्ध-संस्कार २४३

श्री ऊली ३६७, बूली ३७६, लेगेट
३९३, ३९६, ४००

श्री कृष्ण २१, २७, ३१, १५२-५३,
१६८, १८६-९०, २२९, २३५,
२४०, ३०१, ३०६, ३१९

श्री चैतन्यचरितामृत ३९

श्री चैतन्यदेव ३९ (पा० टि०)

श्रीनगर ३५३-५४

श्री भाष्य ३१५

श्रीमद्भागवत् १३ (पा० टि०)

श्री रामकृष्ण २४, २९, ३२-४, ३६,
७०, १००, २४१, २५६, और
उनके विचार २६९-७०, परमहंस
२६७, २६९, २७१, राष्ट्र के आदर्श
२७१

श्री रामकृष्ण देव ३१, ४०५ (देखिए
श्रीरामकृष्ण)

श्रुतिशास्त्र २०८

श्वेतकेतु ७८

श्वेताश्वतर उप० २१ (पा० टि०)

सजय ३१८, ३१९

सगीत ४१

सदेहवादी २५९

सन्यास-मार्ग २५३

सन्यासिनी ३२

'सन्यासी' ३९०, घर्म ३९०

संस्कृत, प्राचीन २८३, भाषा १३२, २८४

सत् ८, ७०

सत्यकाम ९३

सत्यवान १५५-५८

सत्त्व (गुण) १९-२०, २२

सत्त्वगुण ५७, ६८, ९६, ३१९

सनक २५ (पा० टि०)

सनत्कुमार २५ (पा० टि०)

सनन्दन २५ (पा० टि०)

सनातन २५ (पा० टि०)

सनातन तत्त्व ७४

सनातनी दर्शन ४६

सन्त पॉल ३३, ७८, जॉन ७

सन्त-समागम १५५

सन्देहवादी २१८ (पा० टि०)

समत्वभाव ४१, १०१

समाजवाद ३५७

समाधि ५२, अवस्था ७०, ७२,

और अर्थ ४१, घर्ममेघ ७९,

निर्विकल्प १०३, सविकल्प १०३

'समारिया' वासियो २२८

सर एडविन आर्नल्ड २०५ (पा० टि०)

सरयू १४४

सरला घोषाल, श्रीमती ३६८

सविकल्प (समाधि) १०३,

सहदेव १५९, १६१, १६६

सहस्रद्वीपोद्यान, १२२

साख्य १६५, दर्शन ६८, ३०१

साख्यवादी ६८

साउटर, कुमारी ३७३

साकार उपासना १८२

साधन पथ १४६, भजन ७५

साम्यवाद ३४

साम्यावस्था ३२६

मादृश्यमूलक ज्ञान ४०

सारदा ३७४

मारदानन्द ३५४-५५, ३७१, ३८०,

३९७, ४००, ४०३-५, ४०७

सावित्री १५४-५८

'साहित्यकल्पद्रुम' ३३८

मिकन्दर २००

मिण्डरेला नृत्य ३७७

हम सोच इस मर्यादोक्त क साधारण मनुष्य की स्थिति में रहेंगे तब तक हमें मनुष्यों में ही मजबूत की देखाया पड़ेगा। इसीलिए हमारी मजबूत विषयक बातों एवं उपासना स्वभावतः माणुषी है। सबमूब ही यह धरीर मजबूत का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है। इसीसे हम देखते हैं कि युवों से मनुष्य मनुष्य को ही उपासना करवाया रहा है। लोगों का इस मनुष्योपासना के विषय में जब कभी स्वाभाविक रूप से विकसित अभिप्रायार देखने में आता है वो चतकी निम्ना या आलोचना भी होती है। फिर भी हमें यह दिखायी देता है कि इसकी चीज काफी मजबूत है। ऊपर की पाशा-प्रकाशाएँ भले ही ज़री आलोचना क योग्य हों पर उनकी अड़ बहुत ही गहरी तक पहुँची हुई और सुदृढ़ है। ऊपरी आडम्बरों के होने पर भी उसमें एक सार-रत्न है। मैं तुमसे यह कहना मही चाहता कि तुम बिना समझे किसी पुरानी कथाओं अथवा अद्वैतानिक अमर्त्यक धिदान्तों को कबरबस्तो गळे के गोले उतार जाओ। दुर्भाग्यवश कई पुरानों में बामाचारी व्याख्याएँ बनें पा मयी हैं। मैं यह मही चाहता कि तुम उन सब पर विस्वाह करो। मैं ऐसा करने को नहीं कह सकता बल्कि मेरा मतलब यह है कि इन पुरानों के अस्तित्व की रता का कारण एक सार-रत्न है जिसे कप्त मही होने देना चाहिए। और यह सार-रत्न है उनमें मिश्रित मन्त्रि सम्बन्धो उपदेश अर्थ को मनुष्य के दैनिक जीवन में परिचय करना बर्तनों के उन्नाकास में विचरण करनेवाले अर्थ का साधारण मनुष्यों के लिए दैनिक जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाया।

‘ट्रिब्यून’ में प्रकाशित रिपोर्ट

इस भाषण की जो रिपोर्ट ‘ट्रिब्यून’ में प्रकाशित हुई उसका विवरण निम्न लिखित है

कल्ला म्हादेव ने मन्त्रि की सापना में प्रतीक-प्रतिमाओं की उपयोगिता का समर्पण किया और उन्होंने कहा कि मनुष्य इस समय जिध अकस्मा में है, ईश्वरकेसा से यदि ऐसी अवस्था न होती तो बड़ा अच्छा होता। परन्तु विद्यमान समय का अविचार अर्थ है। मनुष्य वैतन्य और आध्यात्मिकता कादि विषयों पर जाड़े जिज्ञाती बामें क्यों न बनावे पर वास्तव न यह अनी अङ्गमावापन ही है। ऐसी अड़ मनुष्य को हाव परदकर नीरे नीरे उठाना हीपा—तब तक उठाना हीपा जब तब यह वैतन्यमय मनुष्य आध्यात्मिक सावाकप्र न हो पाव। आरकल के बमाने में १९ की धरी ऐगे आदमी है, जिनके लिए आध्यात्मिकता की समानता कठिन है। जो प्रेरक पत्नियों हम अनेककर आग बड़ा रही है, तथा हम जो अन्त प्राप्त करना चाहते हैं, वे मयी अड़ हैं। अर्बे स्वीकार के लक्षों में कैरा बहना है कि हम

केवल उसी रास्ते से आगे बढ़ सकते हैं, जो अल्पतम प्रतिरोध का हो। और पुराण-प्रणेताओं को यह बात भली भाँति मालूम थी, तभी वे हमारे लिए ऐसी पद्धति बता गये हैं। इस प्रकार के कार्य में पुराणों को विस्मयजनक और बेजोड़ सफलता मिली है। भक्ति का आदर्श अवश्य ही आध्यात्मिक है, पर उमका रास्ता जड़ वस्तु के भीतर से होकर है और इस रास्ते के सिवा दूसरा रास्ता भी नहीं है। अतः, जड़ जगत् में जो कुछ ऐसा है, जो आध्यात्मिकता प्राप्त करने में हमारी सहायता कर सकता है, उसे ग्रहण करना होगा, और उसे इस तरह काम में लाना होगा कि मानव क्रमशः आगे बढ़ता हुआ पूर्ण आध्यात्मिक स्थिति में विकसित हो सके। शास्त्र आरम्भ से ही लिंग, जाति या धर्म का भेदभाव छोड़कर सबको वेद-पाठ करने का अधिकार प्रदान करते हैं। हमें भी इसी तरह उदार होना चाहिए। यदि मनुष्य जड़ मन्दिर बनाकर भगवान् में प्रीति कर सके तो अच्छा ही है। यदि भगवान् की मूर्ति बनाकर इस प्रेम के आदर्श पर पहुँचने में मनुष्य को कुछ भी सहायता मिलती है तो उसे एक की जगह बीस मूर्तियाँ पूजने दो। चाहे कोई भी काम क्यों न हो, यदि उसके द्वारा धर्म के उस उच्चतम आदर्श पर पहुँचने में सहायता मिलती हो तो उसे वह अबाध गति से करने दो, पर हाँ, वह काम नैतिकता के विरुद्ध न हो। 'नैतिकता के विरुद्ध न हो', ऐसा इसलिए कहा गया कि नैतिकता विरोधी काम हमारे धर्म-मार्ग के महायक नहीं होते, बल्कि विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं।

स्वामी जी ने मूर्ति-पूजा के विरोध की समीक्षा करते हुए कहा कि भारतवर्ष में सर्वप्रथम कवीर ने ही ईश्वरोपासना के लिए मूर्ति का व्यवहार करने के विरुद्ध आवाज उठायी थी। परन्तु भारत में ऐसे कितने ही बड़े बड़े दार्शनिक और धर्म-संस्थापक हुए हैं, जिन्होंने भगवान् का सगुण रूप अस्वीकार कर निर्भीकता के साथ अपने निर्गुण मत का प्रचार करने पर भी मूर्ति-पूजा की निन्दा नहीं की। हाँ, उन्होंने मूर्ति-पूजा को उच्च कोटि की उपासना नहीं माना है, और न किसी पुराण में ही मूर्ति-पूजन को ऊँचे दर्जे की उपासना ठहराया गया है।

यहूदियों के मूर्ति-पूजन के इतिहास का जिक्र करते हुए स्वामी जी ने कहा कि जिहोवा एक सन्दूक के भीतर रहते हैं, ऐसा विश्वास करनेवाले यहूदी लोग भी मूर्तिपूजक ही थे। इस ऐतिहासिक दृष्टान्त के उपस्थित रहते हमें मूर्ति-पूजा की इसलिए निन्दा नहीं करनी चाहिए कि और लोग उसे दोषपूर्ण बताते हैं। मूर्ति या किसी और भी जड़ वस्तु के प्रतीक को, जो मनुष्य को धर्म की प्राप्ति में सहायता करे, बिना सकोच ग्रहण करना चाहिए। पर हमारा कोई भी धर्मग्रन्थ ऐसा नहीं है, जो स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहता कि जड़ वस्तु की सहायता से अनुष्ठित होने-वाली उपासना निरूद्ध श्रेणी की है। सारे भारतवर्ष के सब लोगों को बलपूर्वक

मूर्तिपूजक बनाने की चेष्टा की गयी थी और इसकी जितनी निम्ना की जाय वह कम है। प्रत्येक व्यक्ति को कैंची उपासना करनी चाहिए, जबका किस पीव की सहायता से उपासना करनी चाहिए—यह बात बोर से या हुक्म से करने की क्या आवश्यकता पड़ी थी? यह बात अन्य कोई कैसे जान सकता है कि कौन जावमी किस वस्तु के सहारे उन्नति कर सकता है? कोई प्रतिमा-पूजा द्वारा कोई अग्नि-पूजा द्वारा यहाँ तक कि कोई केवल एक शब्द के सहारे उपासना की सिद्धि प्राप्त कर सकता है, यह किसी और को कैसे मालूम हो सकता है? इन बातों का निर्णय अपने अपने गुरुओं के द्वारा ही होना चाहिए। भक्ति विपन्न प्रश्नों में इष्टदेव सम्बन्धी को नियम है उन्हींमें इस बात की व्याख्या देखने में आती है—वर्षात् व्यक्तिविशेष को अपनी विशिष्ट उपासना पद्धति से अपने इष्ट देव के पास पहुँचने के लिए आये बढ़ना पड़ेगा और वह जिस निर्बाधित रास्ते से आये बढ़ेगा वही उसका इष्ट है। मनुष्य को चम्पना ही चाहिए अपनी ही उपासना पद्धति के मार्ग से पर साध ही अन्य मार्गों की ओर भी सहानुभूति की दृष्टि से देखना चाहिए। और इस मार्ग का अवलम्बन उसको तब तक करना पड़ेगा जब तक वह अपने निरिष्ट स्वान पर नहीं पहुँच जाता—जब तक वह उस केन्द्रस्थल पर नहीं पहुँच जाता वह वस्तु की सहायता की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

इसी प्रसंग में भारतवर्ष के बहुतेरे स्थानों में प्रचलित कुङ्कुम-प्रसा के विषय में जो एक प्रकार से बंधमत्त मुस्वाइ की तरह हो गयी है, सावधान कर देना आवश्यक है। हम पास्तों में पढ़ते हैं—'जो बेबों का धार-तत्त्व समझते हैं जो मिष्ठाप हैं जो मन के छोम से और किसी प्रकार के स्वार्थ से लोगों की शिक्षा नहीं देते जिनकी इया हेतुविशेष से नहीं प्राप्त होती बसन्त ज्ञानु जिस प्रकार पेड़-पौधों और कृता-मुस्मों से बचके में कुछ न चाहते हुए सभी पेड़-पौधों में नया जीवन आकर उन्हें हरा-भरा कर देती है, उनमें नयी नयी कोपले निकल आती हैं, उसी प्रकार जिनका स्वभाव ही लोगों का कल्याण करनेवाला है जिनका धारा जीवन ही दूसरों के हित के लिए है जो इसके बचके लोगों से कुछ भी नहीं चाहते ऐसे महान् व्यक्ति ही गुरु कहलाने योग्य हैं दूसरे नहीं। असद्गुरु के पास ही काम-काम की आका ही नहीं है, उस्टे उनके शिक्षा से विपत्ति ही ही सम्भावना रहती है क्योंकि बुद्ध केवल शिक्षक या उपदेसक ही नहीं है, शिक्षा देना ही उनके कर्तव्य का एक बहुत ही मामूली अंश है। हिन्दुओं का विश्वास है कि गुरु ही सिष्य में समित का संचार करते हैं। इस बात को समझने के लिए जड़ जगत् का ही एक दृष्टान्त ले लो। मानो किसी ने रोग-निवारक टीका नहीं किया ऐसी अवस्था में उसके शरीर के अन्दर रोग के दूषित कोटाबुद्धों के प्रवेश कर जाने की बहुत आशंका है।

उसी प्रकार असद्गुरु से शिक्षा लेने में भी बुराइयों के सीख लेने की बहुत कुछ आशंका है। इसलिए भारत से इस कुलगुरु-प्रथा को एकदम उठा देना अत्यन्त आवश्यक हो रहा है। गुरु का काम व्यवसाय न हो जाय, इसे रोकने की चेष्टा करनी होगी, क्योंकि यह एकदम शास्त्र-विरुद्ध है। किसी भी आदमी को अपने को गुरु नहीं बतलाना चाहिए और कुलगुरु-प्रथा के कारण जो वर्तमान परिस्थिति है, उसका समर्थन भी नहीं करना चाहिए।

खाद्याखाद्य-विचार के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि आजकल खान-पान के विषय में जिन कठोर नियमों पर जोर दिया जाता है, वे अधिकांश छिछले हैं। जिस उद्देश्य से इन नियमों को आरम्भ में चलाया गया था, उस उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो पाती। खाद्य वस्तुओं को स्पर्श करने का अधिकार किसे है?—यह प्रश्न विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि इसमें एक बड़ा भारी मनोवैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। पर साधारण मनुष्यों के दैनिक जीवन में उतनी सावधानी रखना अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। जिन लोगों ने केवल धर्म के लिए ही अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया है, ये नियम केवल उन्हींके लिए पालनीय हैं, पर इसकी जगह हर एक आदमी के लिए इन नियमों का पालन करना आवश्यक बतकर बड़ी भारी गलती की गयी है। क्योंकि सर्वसाधारण में अधिकतर ऐसे ही लोग हैं जो जड़ जगत् के सुखों से तृप्त नहीं हुए हैं, और ऐसे अतृप्त लोगों पर जबरदस्ती आध्यात्मिकता लादने की चेष्टा व्यर्थ है।

भक्तों के लिए जो उपासना पद्धतियाँ हैं, उनमें मनुष्य रूप की उपासना ही सबसे उत्तम है। वास्तव में यदि किसी रूप की पूजा करनी है, तो अपनी हैसियत के अनुसार प्रतिदिन छ या बारह दरिद्रों को अपने घर लाकर, उन्हें नारायण समझकर उनकी सेवा करना अच्छा है। मैंने कितनी जगहों में प्रचलित दान की प्रथाएँ देखी हैं, पर उनसे वैसा कोई सुफल होते नहीं देखा है। इसका कारण यही है कि वह दान की क्रिया यथोचित भाव से अनुष्ठित नहीं है। 'अरे! यह ले जा'—इस प्रकार के दान को दान या दया-धर्म का अनुष्ठान नहीं कह सकते। यह तो हृदय के अहंकार का परिचायक है। इस प्रकार दान देनेवाले का उद्देश्य यही रहता है कि लोग जानें या समझें कि वह दया-धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। हिन्दुओं को यह जानना चाहिए कि स्मृतियों के मत में दान ग्रहण करनेवालों की अपेक्षा दान देनेवाला छोटा समझा जाता है। ग्रहण करनेवाला ग्रहण करते समय साक्षात् नारायण समझा जाता है। अतः मेरे मत में यदि इस प्रकार की नयी पूजा-पद्धति प्रचलित की जाय, तो बड़ा अच्छा हो—कुछ दरिद्रनारायण, अवनारायण या क्षुवात्तनारायण को प्रतिदिन प्रतिगृह में लाना एवं प्रतिमा की

जिस प्रकार पूजा की जाती है, उसी प्रकार उसकी भी भोजन-वस्त्रादि क द्वारा पूजा करना। मैं किसी प्रकार की उपासना या पूजा-प्रवृत्ति की न तो निन्दा करता हूँ और न किसी को बुरा बताता हूँ बल्कि मेरे कहने का सारांश यही है कि इस प्रकार की मात्सर्य-पूजा सर्वविधा भ्रष्ट पूजा है, और भारत के लिए इसी पूजा की सबसे अधिक आवश्यकता है।

अन्त में स्वामी जी ने भक्ति की तुलना एक त्रिकोण के साथ की। उन्होंने कहा कि इस त्रिकोण का पहला कोण यह है कि भक्ति या प्रेम कोई प्रतिदान नहीं चाहता। प्रेम में भय नहीं है, यह उसका दूसरा कोण है। पुरस्कार या प्रतिदान पाने के उद्देश्य से प्रेम करना मित्रापी का बर्म है व्यवसायी का बर्म है, सत्त्व बर्म के साथ उसका बहुत ही कम सम्बन्ध है। कोई मित्रुक न बने क्योंकि वैसा होता नास्तिकता का चिह्न है। 'ओ आदमी रहता तो है गंगा के तीर पर किन्तु पानी पीने के लिए कुन्नी खोजता है वह मूर्ख नहीं तो और क्या है? — बड़ वस्तु की प्राप्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करना भी ठीक वैसा ही है। भक्त को भगवान् से सवा इस प्रकार कहने के लिए तैयार रहना चाहिए—'प्रभो मैं तुमसे कुछ भी नहीं चाहता मैं तुम्हारे लिए अपना सब कुछ अर्पित करने को तैयार हूँ। प्रेम में भय नहीं रहता। क्या तुमने नहीं देखा है कि यह बछ्छी हुई कमजोर हड्डन वाली स्त्री एक छोटे से कुत्ते के भौंकने से भाग बड़ी होती है घर में बुर जाती है? बूधरे बिल नहीं उसी रास्ते से जा रही है। बाज उसकी गोब में एक छोटा सा बच्चा भी है एकाएक किसी घर में निकलकर उस पर चोट करना चाहा। ऐसी अवस्था में भी तुम उसे अपनी जान बचाने के लिए भागते या घर के अन्दर बुरते देखोगे? नहीं कदापि नहीं। बाज अपने लम्बे बच्चे की रक्षा के लिए, यदि आवश्यकता पड़े तो वह घेर के मुँह में बुरते से भी बाज न आयेगी। जब इस त्रिकोण का तीसरा कोण यह है कि प्रेम ही प्रेम का उद्देश्य है। अन्त में भक्त इसी भाव पर आ पहुँचता है कि स्वयं प्रेम ही भगवान् है। और बाकी सब कुछ बसवृ है। भगवान् का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए मनुष्य को जब और कहाँ जाना होगा? इस प्रत्यक्ष संसार में जो कुछ भी परार्थ है उसके अन्दर सर्वविधा स्पष्ट दिवाणी बेने-बाळा तो भगवान् ही है। नहीं वह सक्ति है जो सूर्य चाँद और तारों को बुझाती एव बछ्छती है तथा स्त्री-पुरुषों में सभी जीवों में सभी वस्तुओं में प्रकाशित हो रही है। बड़ सक्ति के राज्य में मध्याकर्षण सक्ति के रूप में नहीं विद्यमान है प्रत्येक स्थान में प्रत्येक परमानु में नहीं वर्तमान है—सर्वत्र उसकी ज्योति विद्यमान हुई है। नहीं अमन्त प्रेमस्वरूप है संसार की एकमात्र संचालिनी सक्ति है और नहीं सर्वत्र प्रत्यक्ष दिवाणी दे रखा है।

वेदान्त

(१२ नवम्बर, १८९७ को लाहौर में दिया गया व्याख्यान)

जगत् दो हैं जिनमे हम वसते हैं—एक बहिर्जगत् और दूसरा अन्तर्जगत् । अति प्राचीन काल से ही मनुष्य इन दोनों भूमियो मे समानान्तर रेखाओ की तरह बराबर उन्नति करते आये हैं। खोज पहले बहिर्जगत् मे ही शुरू हुई। मनुष्यो ने पहले पहल दुरूह समस्याओ के उत्तर बाह्य प्रकृति से पाने की चेष्टा की। प्रथमत मनुष्यो ने अपने चारो ओर की वस्तुओ से सुन्दर और उदात्त की तृष्णा निवृत्त करनी चाही। वे अपने को और अपने सभी भीतरी भावो को स्थूल भाषा मे प्रकाशित करने के लिए प्रवृत्त हुए, तथा उन्हे जो सब उत्तर मिले, ईश्वर-तत्त्व और उपासना-तत्त्व के जो सब अति अद्भुत सिद्धान्त उन्हे प्राप्त हुए, और उस शिव-सुन्दर का उन्होंने जो उच्छ्वासमय वर्णन किया, ये सभी वास्तव मे अति अपूर्व हैं। बहिर्जगत् से निस्सन्देह महान् भावो का आविर्भाव हुआ। परन्तु बाद मे मनुष्य जाति के लिए जो अन्य जगत् उन्मुक्त हुआ, वह और भी महान्, और भी सुन्दर तथा अनन्त गुना विस्तृत था। वेदो के कर्मकाण्ड-भाग मे हम धर्म के बडे ही आश्चर्यमय तत्त्वो का वर्णन पाते हैं। हम ससार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले विधाता के सम्बन्ध के वहाँ अत्यन्त अद्भुत तत्त्व-समूह देखते हैं, ये सब हमारे सामने मर्मस्पर्शी भाषा मे रखे गये हैं। तुममे से अनेक को ऋग्वेद संहिता का वह श्लोक, जो प्रलय के वर्णन मे आया है, याद होगा। भावो को उद्दीप्त करनेवाला ऐसा उदात्त वर्णन शायद कभी किसीने नही किया। इन सबके होते हुए भी हम देखते हैं कि इनमे केवल बहिर्जगत् की ही महत्ता का चित्रण किया गया है, वह वर्णन स्थूल का है, इसमे कुछ जडत्व फिर भी लगा हुआ है। तथापि हम देखते हैं, जड और ससीम भाषा मे यह असीम का ही वर्णन है। यह जड शरीर के अनन्त विस्तार का वर्णन है, किन्तु मन का नही, यह देश के अनन्तत्व का वर्णन है, किन्तु विचार का नही। इसलिए वेदो के दूसरे भाग मे, अर्थात् ज्ञानकाण्ड मे, हम देखते हैं, एक बिल्कुल ही भिन्न प्रणाली का अनुसरण किया गया है। पहली प्रणाली थी बाह्य प्रकृति मे विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रकृत सत्य का अनुसन्धान, यह जड ससार से जीवन

की सभी गम्भीर समस्याओं की मीमांसा करने की चेष्टा थी। फल्यंते हितवन्तो महित्वा—यह हिमालय पर्वत भिन्नकी महत्ता बतला रहा है। यह बड़ा ऊँचा विचार है जबस्य किन्तु फिर भी भारत के लिए यह पर्याप्त नहीं था। भारतीय मन को इस पथ का परिखाग करना पड़ा था। भारतीय गवेषणा पूर्वतया बहिर्जन्तु को छोड़कर दूसरी ओर मुड़ी—सोम अन्तर्जगत् में धुक हुई, क्रमशः वे जड़ से चेतन में आये। आर्यों और से यह प्रश्न उठाने लगा 'मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का क्या हाल होता है? अस्तीत्यैके नाममस्तीति चैके (कठोपनिषद् १।१।२) —'किसी किसी का कथन है कि मनुष्य की मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कोई कोई कहते हैं कि नहीं रहता है परन्तु इनमें कौन सा सत्य है? यहाँ हम देखते हैं एक दूसरी ही प्रणाली का अनुसरण किया गया है। भारतीय मन को बहिर्जन्तु से जो कुछ मिलना था मिल चुका था परन्तु उससे इसे वृत्ति नहीं हुई। अनुसंधान के लिए वह और आगे बढ़ा। समस्या के समाधान के लिए उसने अपने में ही खोजा रूपामा तब यथार्थ उत्तर मिला।

देवों के इस भाग का नाम है उपनिषद् या वेदान्त या आरम्भिक या रहस्य। यहाँ हम देखते हैं, बर्म बाहरी बिलकावे से बिल्कुल व्यक्त है यहाँ हम देखते हैं आध्यात्मिक विषयों का वर्णन जड़ की भाषा से नहीं हुआ आत्मा की भाषा से हुआ है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों के लिए तदनुक्य भाषा का व्यवहार किया गया है। यहाँ और कोई स्पृष्ट भाष नहीं है यहाँ जम् के विषयों से कोई समझौता नहीं है। हमारी भाष की आरम्भ के पदे, उपनिषदों के और तथा साहसी महामना अपि निर्मम भाष से बिना समझौता किये ही मनुष्य भाष के लिए ऊँचे से ऊँचे तत्त्वों की बोधना कर गये हैं जो कभी भी प्रचारित नहीं हुए। ऐ हमारे वैद्यवाचियों में उन्हींको तुम्हारे आने रहना चाहता हूँ। देवों का ज्ञानकाण्ड एक विद्याल महासागर है इसका बोझ ही अंध समझने के लिए जनेक जन्मों की आवश्यकता है। रामानुज ने उपनिषदों के सम्बन्ध में यथार्थ ही कहा है कि वेदान्त देवों का मुकुट है और जबस्य ही यह वर्तमान भारत की वास्तविक है। देवों के कर्मकाण्ड पर हिन्दुओं की बड़ी श्रद्धा है परन्तु हम जानते हैं मुगों तक मूर्ति के नाम से केवल उपनिषदों का ही जर्न किया जाता था। हम जानते हैं, हमारे बड़े बड़े सब वर्धनकारों ने—स्वात ही, चाहे वर्तमान या गौतम यहाँ तक कि सभी वर्धनशास्त्रों के जनकस्वरूप महापुरुष कपिल ने भी—जब अपने मन के समर्पन में प्रयाशों का संघर्ष करना चाहा तब उनमें से हट एक-को उपनिषदों ही में प्रमाण, मिले हैं और नहीं-नहीं-न्योकि धारण सत्य केवल उपनिषदों ही में है।

कुछ समय ऐसे हैं जो किसी विशेष पथ से विशेष विवेक जनकजाओं और समर्थों

श्लोको का अर्थ लगाने में हमें अपने ऐसे भाव रखने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए जो उनमें अभिप्रेत न थे। जब तुम अधिकार-भेद का अपूर्व रहस्य समझोगे, तब श्लोको का यथार्थ अर्थ सहज ही तुम्हारी समझ में आ जायगा।

यह सच है कि सम्पूर्ण उपनिषदों का लक्ष्य एक है, कस्मिन् भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति (मुडकोपनिषद् १।३)—‘वह कौन सी वस्तु है जिसे जान लेने पर सम्पूर्ण ज्ञान करतलगत हो जाता है?’ आजकल की भाषा में अगर कहा जाय तो यही कहना चाहिए कि उपनिषदों का उद्देश्य चरम एकत्व के आविष्कार की चेष्टा है, और भिन्नत्व में एकत्व की खोज ही ज्ञान है। हर एक विज्ञान इसी नींव पर प्रतिष्ठित है। मनुष्यों का सम्पूर्ण ज्ञान भिन्नत्व में एकत्व की खोज पर ही प्रतिष्ठित है। और, यदि दृश्य जगत् की थोड़ी सी घटनाओं में ही एकत्व के अनुसन्धान की चेष्टा क्षुद्र मानवीय विज्ञान का कार्य हो तो इस अपूर्व विचित्रता-सकुल विश्व के भीतर, हम जिसके नाम और रूपों में सहस्रधा वैभिन्न्य देख रहे हैं, जहाँ जड़ और चेतन में भेद वर्तमान है, जहाँ सभी चित्तवृत्तियाँ एक दूसरी से भिन्न हैं, जहाँ कोई रूप किसी दूसरे से नहीं मिलता, जहाँ प्रत्येक वस्तु अपर वस्तु से पृथक् है, एकत्व का आविष्कार करने का हमारा उद्देश्य कितना कठिन है। परन्तु इन विभिन्न स्तरों और अनन्त लोको के भीतर एकत्व का आविष्कार करना ही उपनिषदों का लक्ष्य है। दूसरी ओर हमें अरुन्वती न्याय का भी सहारा लेना चाहिए। यदि किसी को अरुन्वती नक्षत्र दिखलाना है तो पहले पासवाला उससे कोई बड़ा और उज्ज्वलतर नक्षत्र दिखलाकर उस पर देखनेवाले की दृष्टि स्थिर करनी चाहिए, इसके बाद छोटे नक्षत्र अरुन्वती का दिखलाना आसान होगा। इसी तरह सूक्ष्मतम ब्रह्मतत्त्व समझाने के लिए, दूसरे कितने ही स्थूल भावों के उपदेश देकर ऋषियों ने उच्च तत्त्व को समझाया है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए मुझे ज्यादा कुछ नहीं करना, केवल उपनिषदों को तुम्हारे सामने रख देना है, फिर तुम स्वयं समझ जाओगे। प्रायः प्रत्येक अव्याय द्वैतवाद या उपासना के उपदेश से आरम्भ होता है। पहले शिक्षा दी गयी है कि ईश्वर-सत्ता का सृष्टि-कर्ता है, संरक्षक है और अन्त में प्रत्येक वस्तु उसीमें विलीन हो जाती है, वही हमारा उपास्य है, वही शासक है, वही वहिर्प्रकृति और अन्तर्प्रकृति का प्रेरक है, फिर भी वह मानो प्रकृति के बाहर है। एक कदम और बढ़कर हम देखते हैं, वे ही आचार्य वतलाते हैं कि ईश्वर प्रकृति के बाहर नहीं, बल्कि प्रकृति में अन्तर्व्याप्त है। अन्त में ये दोनों भाव छोड़ दिये गये हैं, और जो कुछ है सब वही है—कोई भेद नहीं। तत्त्वमसि श्वेतकेतो—‘हे श्वेतकेतु, तুম वही (ब्रह्म) हो।’ अन्त में यही घोषणा की गयी कि जो समग्र जगत् के भीतर विद्यमान है वही मनुष्यों की

सम्प्रदाय की नींव डाली है, उसे इन तीनों प्रस्थानों को ग्रहण करना ही पड़ा और उन पर एक नये भाष्य की रचना करनी पड़ी। अतः बेदान्त को उपनिषदों के किसी एक ही नाम में ईतबाद विशिष्टाईतबाद या अईतबाद के रूप में आबद्ध कर बेनाडीक नहीं। जब कि बेदान्त से ये सभी मत निकले हैं तो उसे इन मतों की समष्टि ही कहना चाहिए। एक अईतबादी अपने को बेदान्ती कहकर परिचय देने का अितना अधिकारी है उतना ही रामानुज सम्प्रदाय के विशिष्टाईतबादी को भी है। परन्तु मैं कुछ और बढ़कर कहना चाहता हूँ कि हिन्दू धर्म कहने से हम लोगों का नहीं अभिप्राय है जो वास्तव में बेदान्ती का है। मैं तुमसे कहता हूँ कि ये तीनों भारत में स्वरनादीत काक से प्रचलित हैं। तुम कदापि यह विश्वास न करो कि अईतबाद के आविष्कारक संकर थे। उनके जन्म क बहुत पहले ही से यह मत यहाँ था। वे केवल इसके अन्तिम प्रतिनिधियों में से एक थे। रामानुज के मत के लिए भी यही बात कहनी चाहिए। उनके भाष्य ही से यह सूचित हो जाता है कि उनके आविर्भाव के बहुत पहले से यह मत विद्यमान था। जो ईतबादी सम्प्रदाय अथ सम्प्रदायों के साथ साथ भारत में वर्तमान हैं उन पर भी यही बात लागू होती है। और अपने थोड़े से ज्ञान के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ये सब मत एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं।

जिस तरह हमारे पदार्थगत महान् तत्त्व के क्रमिक उद्घाटन मान है जो संकीर्ण की तरह पिछले बीसे स्वरबाले परबों से उठते हैं और अन्त में समाप्त होते हैं अईत की ब्रह्ममन्त्रीर ध्वनि में उसी तरह हम देखते हैं कि पूर्वोक्त तीनों मतों में भी मनुष्य मन उच्च से उच्चतर आवर्ष की ओर अप्रतर हुआ है और अन्त में सभी मत अईतबाद के उच्चतम सोपान पर पहुँचकर एक बहुमत एकत्व में परिणाम्य हुए हैं। मत ये तीनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। ब्रह्मण्य और, मुझे यह कहना पड़ता है कि बहुत लोम इस भ्रम में पड़े हैं कि ये तीनों मत परस्पर विरोधी हैं। हम देखते हैं अईतबादी आचार्य जिन धर्मोक्तों में अईतबाद की ही धिक्ता की गयी है, उन्हें तो ज्यों का त्यों रच बैठे हैं, परन्तु जिनमें ईत या विशिष्टाईतबाद के उपदेश हैं उन्हें उबरदस्ती अईतबाद की ओर बसीट साते हैं, उनका भी अईत अर्थ नर डालते हैं। उबर ईतबादी आचार्य अईतात्मक धर्मोक्तों का ईतबाद का अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा करते हैं। वे हमारे पूज्य आचार्य हैं यह मैं मानता हूँ परन्तु बीबा बाध्यागुदेरपि भी एक प्रसिद्ध बाध्या है। मेरा मत है कि केवल इसी एक विषय में उन्हें अज्ञ हुआ है। इन्हें धर्मोक्तों की विरुद्ध व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। धार्मिक विषयों में हमें किसी प्रकार की बेईमानी का सहाय्य लेकर धर्म की व्याख्या करने की उम्मत नहीं है। व्याकरण के शीघ्र-शैव विधान से नया धारणा।

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपञ्च सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था में रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियों का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति बिल्कुल ही बन्द नहीं हो जाती। वैदिक सूक्तों के आनीदवातम्—‘वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था’—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ ‘वात’ शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनों अर्थों में बहुधा लोगों को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतों की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतों में ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश में लीन हो जाती हैं, इस आकाश में फिर भूतसमूहों की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यो ज्यो प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यो त्यो आकाश की तरफें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढ़ते हैं, यदिद किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—‘इस ससार में जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से निःसृत होता है।’ यहाँ ‘एजति’ शब्द पर ध्यान दो, क्योंकि ‘एज्’ घातु का अर्थ है काँपना, ‘निःसृतम्’ का अर्थ है प्रक्षिप्त और ‘यदिदम् किञ्च’ का अर्थ है इस ससार में जो भी कुछ।

जगत्-प्रपञ्च की सृष्टि का यह थोड़ा सा आभास दिया गया। इसके विषय में बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की ओर आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश में कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पड़ेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नहीं पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते

आत्मा में भी विद्यमान है। यहाँ किसी तरह की रियायत नहीं यहाँ बूझों के मतमत्त की परवाह नहीं की गयी। यहाँ सत्य विचारण सत्य निर्मीक भाषा में प्रचारित किया गया है। आवश्यक उस महान् सत्य का उसी निर्मीक भाषा से प्रचार करने में हमें हृदयिक न डरना चाहिए, और ईश्वर की कृपा से मैं स्वयं तो कम से कम उसी प्रकार का एक निर्मीक प्रचारक होने की आशा रखता हूँ।

अब मैं पूर्व प्रसंग का अनुसरण करते हुए दो बातों को धमझाता हूँ। एक है मनस्तापिक पक्ष जो सभी वैद्वान्त्वियों का सामान्य विषय है, और दूसरा है चमत्-सृष्टि पक्ष। पहले मैं चमत्-सृष्टि पक्ष पर विचार करूँगा। हम देखते हैं आधुनिक आधुनिक विज्ञान के विभिन्न विभिन्न आविष्कार हमें आकस्मिक रूप से चमत्कृत कर रहे हैं, और स्वप्न में भी अकल्पनीय अद्भुत चमत्कारों को हमारे सामने रखकर हमारी आँखों को चकाचौंध कर देते हैं। परन्तु वास्तव में इन आविष्कारों का अविनाश बहुत पहले के आविष्कृत सत्तों का पुनराविष्कार मात्र है। जमी हाथ की बात है, आधुनिक विज्ञान ने विभिन्न शक्तियों में एकत्र का आविष्कार किया है। उसने जमी जमी यह आविष्कृत किया कि ताप विद्युत् चुम्बक आदि विभिन्न विभिन्न नामों से परिचित जितनी शक्तियाँ हैं, वे एक ही शक्ति में परिवर्तित की जा सकती हैं। अब दूसरे उन्हें चाहे जिन नामों से पुकारते रहें विज्ञान उनके लिए एक ही नाम व्यवहार में लाता है। यही बात संहिता में भी पायी जाती है। अथवा यह एक प्राचीन ग्रन्थ है, तथापि उसमें भी शक्ति विषयक ऐसा ही सिद्धान्त मिलता है जिसका मैंने उल्लेख किया है। जितनी शक्तियाँ हैं, चाहे तुम उन्हें मुस्ताकर्षण नहीं चाहे आकर्षण या विकर्षण कहो अथवा ताप कहो, या विद्युत् के सब उसी शक्ति-तरंग के विभिन्न रूप हैं। चाहे मनुष्यों के बाह्य इन्द्रियों का व्यापार बहो या उनके अन्तःकरण की चिन्तन-शक्ति ही कहो है सब एक ही शक्ति से उद्भूत जिसे प्राण-शक्ति कहते हैं। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि प्राण क्या है? प्राण स्पन्दन या कम्पन है। जब सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का विक्रम इसके चिरन्तन स्वरूप में हो जाता है, तब वे अनन्त शक्तियाँ नहीं बनी जाती हैं? क्या तुम सोचने हो कि इनका भी सोच ही प्राण है? नहीं कदापि नहीं। यदि शक्तिशाली किन्तुम नष्ट हो जाय तो फिर अचिन्त्य में अपसरण का उत्पान कैसे और किम आपार पर हो सकता है? क्योंकि यदि तो तरंगकार संभरण है जो उठती है, बिटती है, फिर उठती है फिर बिटती है। इसी जगत्-प्रसंग के विनाश को हमारे शास्त्रों में 'सृष्टि' कहा गया है। परन्तु, प्यास रहे 'सृष्टि' अर्थात् वा (creation) नहीं। अर्थात् मैं गंभीर शक्तों का प्रसार अनुवाद नहीं होता। अर्थात् सृष्टिजने में सगुण के साथ अर्थात् मैं व्यक्त करता हूँ। 'सृष्टि' शब्द का शाब्दिक अर्थ

है—प्रक्षेपण। प्रलय होने पर जगत्-प्रपञ्च सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर अपनी प्राथमिक अवस्था को प्राप्त होता है, कुछ काल उसी शान्त अवस्था में रहकर फिर विकसित होता है। यही सृष्टि है। अच्छा, तो फिर इन प्राणरूपिणी शक्तियों का क्या होता है? वे आदि-प्राण से मिल जाती हैं। यह प्राण उस समय बहुत कुछ गतिहीन हो जाता है, परन्तु इसकी गति विल्कुल ही बन्द नहीं हो जाती। वैदिक सूक्तों के आनीदवातम्—‘वह गतिहीन भाव से स्पन्दित हुआ था’—इस वाक्य से इसी तत्त्व का वर्णन किया गया है। वेदों के कितने ही पारिभाषिक शब्दों का अर्थ-निर्णय करना अत्यन्त कठिन काम है। उदाहरण के रूप में हम यहाँ ‘वात’ शब्द को ही लेते हैं। कभी कभी तो इससे वायु का अर्थ निकलता है और कभी कभी गति सूचित होती है। इन दोनों अर्थों में बहुधा लोगो को भ्रम हो जाता है। अतएव इस पर ध्यान रखना चाहिए। अच्छा, तो उस समय भूतों की क्या अवस्था होती है? शक्तियाँ सर्वभूतों में ओतप्रोत हैं। वे उस समय आकाश में लीन हो जाती हैं, इस आकाश से फिर भूतसमूहों की सृष्टि होती है। यह आकाश ही आदि-भूत है। यही आकाश प्राण की शक्ति से स्पन्दित होता रहता है, और प्रत्येक नयी सृष्टि के साथ ज्यों ज्यों प्राण का स्पन्दन द्रुत होता जाता है, त्यों त्यों आकाश की तरफें क्षुब्ध होती हुई चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के आकार धारण करती जाती हैं। हम पढ़ते हैं, यदिद किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। (ऋग्वेद, १०।१२९।२)—‘इस ससार में जो कुछ है, प्राण के कम्पित होने से निःसृत होता है।’ यहाँ ‘एजति’ शब्द पर ध्यान दो, क्योंकि ‘एज्’ धातु का अर्थ है कांपना, ‘निःसृतम्’ का अर्थ है प्रक्षिप्त और ‘यदिदम् किञ्च’ का अर्थ है इस ससार में जो भी कुछ।

जगत्-प्रपञ्च की सृष्टि का यह थोड़ा सा आभास दिया गया। इसके विषय में बहुत सी छोटी छोटी बातें कही जा सकती हैं। उदाहरणस्वरूप किस तरह सृष्टि होती है, किस तरह पहले आकाश की ओर आकाश से दूसरी वस्तुओं की सृष्टि होती है, आकाश में कम्पन होने पर वायु की उत्पत्ति कैसे होती है, आदि कितनी ही बातें कहनी पड़ेंगी। परन्तु यहाँ एक बात पर ध्यान रखना चाहिए, वह यह कि सूक्ष्मतर तत्त्व से स्थूलतर तत्त्व की उत्पत्ति होती है, सबसे पीछे स्थूल भूत की सृष्टि होती है। यही बाह्यतम वस्तु है, और इसके पीछे सूक्ष्मतर भूत विद्यमान हैं। यहाँ तक विश्लेषण करने पर भी, हमने देखा कि सम्पूर्ण ससार केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक चरम एकत्व पर हम नहीं पहुँचे। शक्ति-तत्त्व के एकत्व को प्राण, और जड़-तत्त्व के एकत्व को आकाश कहा गया है। क्या इन दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते

है? हमारा आधुनिक विज्ञान यहाँ मूक है, वह किसी तरह की मीमांसा नहीं कर सका। और यदि उसे इसकी मीमांसा करनी ही पड़े तो जैसे उसने प्राचीन पुस्तों की तरह आकाश और प्राणों का आधिपत्य किया है, उसी तरह उनके मार्ग पर उसे आगे भी चटना होगा।

जिस एक तरफ से आकाश और प्राण की सृष्टि हुई है वह सर्वव्यापी निर्गुण तत्व है जो पुराणों में ब्रह्मा अतुरानन ब्रह्मा के नाम से परिचित है और मनस्तत्त्व के अनुसार जिसको 'महत्' भी कहा जाता है। यही उन दोनों तत्वों का मेक होता है। जिसे मन कहते हैं वह मस्तिष्क बाल में फँसा हुआ उसी महत् का एक छोटा सा भंश है और मस्तिष्क बाल में फँसे हुए संसार के सामूहिक मनों का नाम समष्टि महत् है। परन्तु विस्मयन को आगे भी अग्रसर होना है महत् अब भी पूर्ण नहीं है। हममें से हर एक मनुष्य मानो एक क्षुद्र ब्रह्माण्ड है और सम्पूर्ण जगत् विश्व ब्रह्माण्ड है। जो कुछ व्यष्टि में हो रहा है वही समष्टि में भी होता है—यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। यह बात सहज ही हमारी समझ में आ सकती है। यदि हम अपने मन का विस्मयन कर सकते तो समष्टि मन में क्या होता है इसका भी बहुत कुछ निश्चित अनुमान कर सकते। अब प्रश्न यह है कि वह मन है क्या चीज? इस समय पारब्रह्मण्य वेदों में भौतिक विज्ञान की वैसे ही उत उभरति हो रही है और शरीरविज्ञान जिस तरह पीरे पीरे प्राचीन जर्मों के एक के बाद दूसरे दुर्ग पर अपना अधिकार बना रहा है उसे देखते हुए पारब्रह्मण्यवासियों को कोई टिकाऊ आशंका नहीं मिस रहा है क्योंकि आधुनिक शरीरविज्ञान में पद पद पर मन की मस्तिष्क के साथ अभिन्नता देखकर वे बड़ी उत्साह में पढ़ गये हैं परन्तु सार्वभौम में हम ज्ञेय यह तत्व पहले ही से जानते हैं। हिन्दू आदर्श को पहले ही यह तत्व सीखना पड़ता है कि मन अज्ञेय है परन्तु सूक्ष्मतर अज्ञेय है। हमारा यह जो स्मृक शरीर है, इसके पश्चात् सूक्ष्म शरीर अज्ञेय मन है। यह भी अज्ञेय है केवल सूक्ष्मतर अज्ञेय है परन्तु यह आत्मा नहीं।

मैं इस 'आत्मा' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद नहीं कर सकता कारण यूरोप में 'आत्मा' शब्द का शोथक कोई भाव ही नहीं अतएव इस शब्द का अनुवाद नहीं किया जा सकता। जर्मन शार्शनिक इस 'आत्मा' शब्द का सेल्फ (self) शब्द से अनुवाद करते हैं, परन्तु जब तक इस शब्द को शार्शनिक माय्यता प्राप्त न हो जाय तब तक इसे व्यवहार में लाना असम्भव है। अतएव उसे सेल्फ (self) कहो चाहे कुछ और कहो हमारी आत्मा के विषय यह और कुछ नहीं है। यही आत्मा मनुष्य के भीतर अज्ञेय मनुष्य है। यही आत्मा अज्ञेय को अपने मन के रूप में अज्ञेय मनोविज्ञान की भाषा में कहो तो अपने अन्तःकरण के रूप में अज्ञेय विद्यती है और मन अन्तःस्त्रियी की सहायता से शरीर की वृथमान बाह्य इन्द्रियों पर काम करता

है। अस्तु, यह मन है क्या ? अभी हाल में ही पाश्चात्य दार्शनिक यह जान सके हैं कि नेत्र वास्तव में दर्शनेन्द्रिय नहीं है, किन्तु यथार्थ इन्द्रिय इनके पीछे वर्तमान है, और यदि यह नष्ट हो जाय तो सहस्रलोचन इन्द्र की तरह चाहे मनुष्य की हज़ार आँखें हो, पर वह कुछ देख नहीं सकता। तुम्हारा दर्शन यह स्वतः सिद्ध सिद्धान्त लेकर आगे बढ़ता है कि दृष्टि का तात्पर्य वास्तव में बाह्य दृष्टि से नहीं, यथार्थ दृष्टि अन्तरिन्द्रिय की, भीतर रहनेवाले मस्तिष्क के केन्द्रसमूहों की है। तुम चाहे जिस नाम से पुकारो, परन्तु इन्द्रिय शब्द से हमारी नाक, कान आँखें नहीं सिद्ध होती। और इन इन्द्रियसमूहों की ही समष्टि, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के साथ मिलकर अंग्रेज़ी में माइण्ड (mind) नाम से पुकारी जाती है। और यदि आधुनिक शरीर-वैज्ञानिक तुमसे आकर कहें कि मस्तिष्क ही माइण्ड (mind) है, और वह मस्तिष्क ही विभिन्न सूक्ष्म अवयवों से गठित है तो तुम्हारे लिए डरने का कोई कारण नहीं। उनसे तुम तत्काल कह सकते हो कि हमारे दार्शनिक बराबर यह बात जानते हैं, यह हमारे धर्म के प्रथम मुख्य सिद्धान्तों में से एक है।

खैर, इस समय तुम्हें समझना होगा कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि शब्दों के क्या अर्थ हैं। सबसे पहले हम चित्त की भीमासा करें। चित्त वास्तव में अन्तःकरण का मूल उपादान है, यह महत् का ही अंश है। विभिन्न अवस्थाओं के साथ मन का ही एक साधारण नाम चित्त है। उदाहरणार्थ ग्रीष्मकाल की उस स्थिर और शान्त झील को लो जिस पर एक भी तरंग नहीं है। सोचो, किसीने उस पर एक पत्थर फेंका। तो उससे क्या होगा ? पहले, पानी पर जो आघात किया गया उससे एक क्रिया हुई, इसके पश्चात् पानी उठकर पत्थर की ओर प्रतिक्रिया करने लगा और उसी प्रतिक्रिया ने तरंग का आकार धारण किया। पहले पहल पानी ज़रा काँप उठता है, उसके बाद ही तरंग के आकार में प्रतिक्रिया होती है। इस चित्त को झील की तरह समझो, और बाहरी वस्तुएँ उस पर फेंके गये प्रस्तर खड हैं। जब कभी वह इन्द्रियों की सहायता से किसी बहिर्वस्तु के सस्पर्श में आता है, बहिर्वस्तुओं को भीतर ले जाने के लिए इन इन्द्रियों की ज़रूरत होती है, तभी एक कम्पन उत्थित होता है। वह मन है—सकल्प-विकल्पात्मक। इसके बाद ही एक प्रतिक्रिया होती है, वह निश्चयात्मिका बुद्धि है, और इस बुद्धि के साथ साथ अज्ञान और बाहरी वस्तु का बोध पैदा होता है। जैसे हमारे हाथ पर मच्छर ने बैठकर डक मारा, सवेदना हमारे चित्त तक पहुँची, चित्त ज़रा काँप उठा—हमारे मनोविज्ञान के मत से वही मन है। इसके बाद एक प्रतिक्रिया उठी और साथ ही साथ हमारे भीतर यह भाव पैदा हुआ कि हमारे हाथ में मच्छर काट रहा है, इसे भगाना चाहिए। इसी प्रकार झील में पत्थर फेंके जाते हैं। परन्तु इतना ज़रूर समझना होगा कि झील पर जितने

आवाज होते हैं सब बाहर से आते हैं परन्तु मन की शीघ्र में बाहर से भी आवाज आ सकते हैं और भीतर से भी। पिछ और उसकी इन भिन्न भिन्न अवस्थाओं का नाम ही मन्तव्य है।

पहले जो कुछ कहा गया उसके साथ एक और भी बात समझनी होगी। उसके अंतर्भाव समझने में हम लोगों को विशेष सुविधा होगी। तुममें से हर एक ने मुक्ता मन्त्र ही देखी होगी और तुममें से अनेक को साफ़ भी होगा कि मुक्ता किस तरह बनती है। सुक्ति (शीघ्र) के भीतर सूक्ति अपना बाधुका की कब्रिका पड़कर उसे उत्तेजित करती रहती है और सुक्ति की वैह इस उत्तेजना की प्रतिक्रिया करते हुए उस छोटी सी बाल की रज को अपने शरीर से निकले हुए रस से ढकती रहती है। वही कब्रिका एक निश्चित आकार को प्राप्त कर मुक्ता के रूप में परिवर्त होती है। यह मुक्ता जिस तरह निर्मित होती है, हम सम्पूर्ण ससार को उसी तरह स्थापित करते हैं। बाहरी संसार से हम आवाज मर पाते हैं। यहाँ तक कि उस आवाज के प्रति चेतन्य होने में भी हमें अपने भीतर से ही प्रतिक्रिया करनी पड़ती है और जब हम प्रतिक्रियाशील होते हैं तब वास्तव में हम अपने मन के अंतर्निक्षेप को ही उस आवाज के प्रति प्रक्षेपित करते हैं और जब हमें उसकी जानकारी होती है, तब वह और कुछ नहीं उस आवाज से आकार प्राप्त हुआ अपना मन ही है। जो लोग बहिर्बन्धु की बनावट पर विश्वास करना चाहते हैं, उन्हें यह बात माननी पड़ेगी और आश्चर्य इस शरीरविज्ञान की उत्पत्ति के बिना में इस बात को बिना माने दूसरा उपाय ही नहीं है। यदि बहिर्बन्धु को हम 'क' मान लें तो वास्तव में हम 'क + मन' को ही जानते हैं और इस जानकारी के भीतर मन का भाग इतना अधिक है कि उसने 'क' को सर्वोपर्य तक किया है और उस 'क' का यथार्थ रूप वास्तव में सर्वत्र अज्ञान और अज्ञेय है। अतएव यदि बहिर्बन्धु के नाम से कोई वस्तु ही भी तो वह सर्वत्र अज्ञान और अज्ञेय है। हमारे मन के द्वारा वह जिस चीज़ में बाल ही जाती है, वही स्थापित होती है, हम उसकी उसी रूप में जानते हैं। अन्तर्बन्धु के सम्बन्ध में भी यही बात है। हमारी आत्मा के सम्बन्ध में भी यह बात किन्तु सब उत्पत्ती है। हम आत्मा को जानना चाहें तो उसे भी अपने मन के भीतर से समझें। अतः हम आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ जानते हैं वह 'आत्मा + मन' के सिवा और कुछ नहीं। अर्थात् मन ही के द्वारा जात मन ही के द्वारा स्थापित आत्मा को हम जानते हैं। इस तरह के सम्बन्ध में हम जाने चलकर कुछ और विवेचना करें। यहाँ हमें ध्यान ही स्मरण रखना होगा।

इसके परवत् हमें जो विषय समझना है, वह यह है कि यह वैह एक निरवच्छिन्न अज्ञ प्रवाह का नाम है। प्रथमतः हम इसमें नये नये पदार्थ जोड़ रहे हैं, फिर प्रति-

क्षण इससे कितने ही पदार्थ निकलते जा रहे हैं। जैसे एक निरन्तर बहती हुई नदी है, उसकी सलिलराशि सदा ही एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही है, फिर भी हम अपनी कल्पना के बल से उसके समस्त अंशों को एक ही वस्तु मानकर उसे एक ही नदी कहते हैं। परन्तु वास्तव में नदी है क्या? प्रतिक्षण नया पानी आ रहा है, प्रतिक्षण उसकी तटभूमि परिवर्तित हो रही है, प्रतिक्षण सारा वातावरण परिवर्तित होता जा रहा है। तब नदी है क्या? वह इसी परिवर्तन-समष्टि का नाम है। मन के सम्बन्ध में भी यही बात है। बौद्धों ने इस सदा ही होनेवाले परिवर्तन को लक्ष्य करके महान् क्षणिक विज्ञानवाद की सृष्टि की थी। उसे ठीक ठीक समझना बड़ा कठिन काम है। परन्तु बौद्ध दर्शनों में यह मत सुदृढ युक्तियों द्वारा समर्थित और प्रमाणित हुआ है। भारत में यह वेदान्त के किसी किसी अंश के विरोध में उठ खड़ा हुआ था। इस मत को निरस्त करने की जरूरत आ पड़ी थी, और हम आगे देखेंगे, इस मत का खंडन करने में केवल अद्वैतवाद ही समर्थ हुआ था और कोई मत नहीं। आगे चलकर हम यह भी देखेंगे कि अद्वैतवाद के सम्बन्ध में लोगों की अनेक विचित्र धारणाएँ होने पर भी और अद्वैतवाद से लोगों के भयभीत होने पर भी, वास्तव में ससार का कल्याण इसीसे होता है, कारण इस अद्वैतवाद से ही सब प्रकार की समस्याओं का उत्तर मिलता है। द्वैतवाद और दूसरे जितने 'वाद' हैं उपासना आदि के लिए बहुत अच्छे हैं, उनसे मन को बड़ी तृप्ति होती है और हो सकता है कि उनसे मन के उच्च पथ पर बढ़ने में सहायता मिलती हो, परन्तु यदि कोई तर्कसंगत एवं धर्मपरायण होना चाहे तो उसके लिए एकमात्र गति द्वैतवाद ही है। अस्तु, मन को भी देह की तरह किसी नदी के सदृश समझना चाहिए। वह भी सदा एक ओर खाली और दूसरी ओर पूर्ण हो रहा है। परन्तु वह एकत्व कहाँ है, जिसे हम आत्मा कहते हैं? हम देखते हैं कि हमारी देह और मन में इस तरह सदा ही परिवर्तन होने पर भी हमारे भीतर कोई ऐसी वस्तु है, जो अपरिवर्तनीय है, जिसके कारण हमारी वस्तु विषयक धारणाएँ अपरिवर्तनीय हैं। जब विभिन्न दिशाओं से आलोक-रश्मियाँ किसी यवनिका या दीवार अथवा किसी दूसरी अचल वस्तु पर पड़ती हैं, केवल तभी उनके लिए एकता-स्थापन संभव होता है, केवल तभी वे एक अखंड भाव की सृष्टि कर सकती हैं। मनुष्य के विभिन्न शारीरिक अवयवों में वह एकत्व कहाँ है, जिस पर पहुँचकर विभिन्न भावराशियाँ एकत्व और पूर्ण अखंडत्व को प्राप्त हो सकें? इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वस्तु कभी मन नहीं हो सकती, क्योंकि वह परिवर्तनशील है। इसलिए अवश्य वह ऐसी वस्तु है जो न देह है, न मन है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, जिसमें आकर हमारे समस्त भाव, बाहर के समस्त विषय एक अखंड भाव में परिणत हो जाते हैं—यही वास्तव में हमारी आत्मा है।

और जब कि हम देख रहे हैं कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ जिसे तुम सूक्ष्म जड़ अथवा मन
 माने जिस नाम से पुकारो परिवर्तनशील है और जब कि सम्पूर्ण स्बुद्ध जड़ या वायु
 अथवा भी परिवर्तनशील है तो यह अपरिवर्तनीय वस्तु (आत्मा) कदापि जड़ पदार्थ
 नहीं हो सकती अतएव यह चेतन-स्वभाव अविनाशी और अपरिचामी है।

इसके बाद एक दूसरा प्रश्न उठता है। यह प्रश्न बहिर्ब्रह्म सम्बन्धी पुण्ये
 सृष्टि रचनावादी (Dedgn Theories) से निम्न है। इस संसार को देख कर
 किसने इसकी सृष्टि की किसने जड़ पदार्थ बनाया आदि प्रश्नों से जिस सृष्टि-रचना-
 वाद की उत्पत्ति होती है मैं उसकी बात नहीं कहता। मनुष्य की भौतिकी प्रकृति
 से सत्य को जानना यही मुख्य बात है। आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में जिस तरह
 प्रश्न उठा जा यहाँ भी ठीक उसी तरह प्रश्न उठ रहा है। यदि यह द्रुव सत्य माना
 जाय कि हर एक मनुष्य में शरीर और मन से पृथक एक अपरिवर्तनीय आत्मा
 विद्यमान है तो यह भी मानना पड़ता है कि इन आत्माओं के भीतर कारण भाव
 और सहानुभूति की एकता विद्यमान है। अन्यथा हमारी आत्मा तुम्हारी आत्मा
 पर कैसे प्रभाव डाल सकती है? परन्तु आत्माओं के बीच में रहनेवाली वह कौन
 सी वस्तु है जिसके भीतर से एक आत्मा दूसरी आत्मा पर कार्य कर सकती है?
 वह माध्यम कहाँ है जिसके द्वारा वह क्रियाशील होती है। मैं तुम्हारी आत्मा के
 बारे में किस प्रकार कुछ भी अनुभव कर सकता हूँ? वह कौन सी वस्तु है, जो हमारी
 और तुम्हारी आत्मा में सम्बन्ध है? अतः यहाँ एक दूसरी आत्मा के मानने की
 धार्मिक आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि वह आत्मा सम्पूर्ण विभिन्न आत्माओं
 और जड़ वस्तुओं के भीतर से अपना कार्य करती है, वह संसार की सर्वस्य
 आत्माओं में अंतर्प्रवेश भाव से विद्यमान रहती है उसीकी सहायता से दूसरी
 आत्माओं में जीवन शक्ति का संचार होता है एक आत्मा दूसरी आत्मा को
 प्यार करती है एक दूसरे से सहानुभूति रखती है या एक दूसरे के लिए कार्य करती
 है। इती सर्वव्यापी आत्मा को परमात्मा कहते हैं। यह सम्पूर्ण संसार का प्रभु है
 ईश्वर है। और जब कि आत्मा जड़ पदार्थ से नहीं बनी जब कि वह चेतन स्वरूप
 है तो वह जड़ के नियमों का अनुसरण नहीं कर सकती—उसका विचार जड़ के
 नियमानुसार नहीं किया जा सकता। अतएव यह अजेय अजन्मा अविनाशी तथा
 अपरिचामी है।

ईशं शिष्यानि शरणागि नैव शक्ति वाक्यः।
 न चर्षं बलैरवयवगतो न शोषयति मास्तः॥
 नापि तर्षगतः रचानुरक्तोऽयं सत्त्वजः॥
 (पीठा १।२३ २४)

—'इस आत्मा को न आग जला सकती है, न कोई शस्त्र इसे छेद सकता है, न वायु इसे सुखा सकती है, न पानी गीला कर सकता है, यह आत्मा नित्य, सर्वगत, कूटस्थ और सनातन है।' गीता और वेदान्त के अनुसार जीवात्मा विभु है, कपिल के मत में यह सर्वव्यापी है। यह सच है कि भारत में ऐसे अनेक सम्प्रदाय हैं जिनके मतानुसार यह जीवात्मा अणु है, किन्तु उनका यह भी मत है कि आत्मा का प्रकृत स्वरूप विभु है, केवल व्यक्त अवस्था में ही वह अणु है।

इसके बाद एक दूसरे विषय की ओर ध्यान देना चाहिए। बहुत सम्भव है, यह तुम्हें आश्चर्यजनक प्रतीत हो, परन्तु यह तत्त्व भी विशेष रूप से भारतीय है और हमारे सभी सम्प्रदायों में वह सामान्य रूप में विद्यमान है। इसीलिए मैं तुमसे इस तत्त्व की ओर ध्यान देने और उसे याद रखने का अनुरोध करता हूँ, कारण, यह सभी भारतीय विषयों की बुनियाद है। पश्चात्य देशों में जर्मन और अंग्रेज पण्डितों द्वारा प्रचारित भौतिक विकासवाद तुम लोगों ने सुना होगा। उस मत के अनुसार वास्तव में सभी प्राणियों के शरीर अभिन्न हैं, जो भेद हम देखते हैं वे एक ही शृंखला की भिन्न भिन्न अभिव्यक्ति मात्र है और क्षुद्रतम कीट से लेकर श्रेष्ठतम सावु तक सभी वास्तव में एक हैं, एक ही दूसरे में परिणत हो रहा है तथा इसी तरह चलते हुए क्रमशः उन्नत होकर जीव पूर्णत्व प्राप्त कर रहे हैं। यह सिद्धान्त परिणामवाद के नाम से हमारे शास्त्रों में भी है। योगी पतजलि कहते हैं, **जात्यन्तरपरिणाम प्रकृत्यापूरात्**। (पातजल योगसूत्र, ४।२)—'एक जाति, एक श्रेणी दूसरी जाति, दूसरी श्रेणी में परिणत होती है।' 'परिणाम' का अर्थ है एक वस्तु का दूसरी वस्तु में परिवर्तित होना। परन्तु यहाँ यूरोपवालों से हमारा मतभेद कहाँ पर होता है? पतजलि कहते हैं, **प्रकृत्यापूरात्**—प्रकृति के आपूरण से। यूरोपीय कहते हैं कि प्रतिद्वन्द्विता, प्राकृतिक और यौन-निर्वाचन आदि ही एक प्राणी को दूसरे प्राणी का शरीर ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं, परन्तु हमारे शास्त्रों में इस **जात्यन्तर-परिणाम** का जो कारण बतलाया गया है, उसे देखते हुए यही कहना पड़ता है कि यहाँवालों ने यूरोपीयों से और भी अच्छा विश्लेषण किया है—इन्होंने यहाँवालों से और भी गहरे पहुँचने की कोशिश की है। ये कहते हैं, **प्रकृत्यापूरात्**—'प्रकृति के आपूरण से।' इसका क्या अर्थ है? हम यह मानते हैं कि जीवाणु क्रमशः उन्नत होते हुए वृद्ध बन जाता है, किन्तु साथ ही हमारी यह भी दृढ़ धारणा है कि किसी यन्त्र में यदि किसी न किसी तरह की शक्ति यथोचित मात्रा में न भर दी जाय तो उस यन्त्र से तदनु रूप कार्य सम्भव नहीं हो सकता। उस शक्ति का विकास चाहे जिस किसी रूप में हो, पर शक्तिसमष्टि की मात्रा सदा एक ही रहती है। यदि तुम्हें एक प्रान्त में शक्ति का विकास देखना है तो दूसरे प्रान्त में उसका प्रयोग करना होगा—वह

शक्ति किसी दूसरे आकार में प्रकाशित भले ही हो परन्तु उसका परिमाण एक हीना ही चाहिए। अतएव बुद्ध यदि परिणाम का एक प्राप्त हो तो दूसरे प्राप्त का पीवानु अवश्य ही बुद्ध के समुच्च होगा। यदि बुद्ध कमविकसित परिणत पीवानु हो तो वह पीवानु भी कमविकसित (अल्पवत्) बुद्ध ही है। यदि यह ब्रह्माण्ड अनन्त शक्ति का व्यक्त रूप हो तो जब इस ब्रह्माण्ड में प्रकृत्य की अवस्था हींसी है, तब भी दूसरे किसी आकार में उसी अनन्त शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करनी पड़ेगी। इससे व्ययमा कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चित है कि प्रत्येक आत्मा अनन्त है। हमारे पीरों तसे रंगते रहनेवाले सुदृढ़ कौट से छेकर महत्तम और उच्चतम सामुत्तक सब में वह अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता और समी गुण अनन्त परिमाण में मौजूद है। भेद केवल अमित्यक्ति की म्युलाधिक मात्रा में है। कौट में उस महाशक्ति का बोझ ही विकास पाया जाता है तुममें उससे भी अधिक और किसी दूसरे वैशेष्य पुरुष में तुमसे भी कुछ अधिक शक्ति का विकास हुआ है भेद बल इतना ही है, परन्तु है समी में वही एक शक्ति। पतञ्जलि कहते हैं, तत ओन्निकम्पु (पार्लसम मोगसूत्र ४।१)—‘किञ्चान त्रिस तच्छ अपने बेट में पानी भरता है। किसी बकासम से वह अपने बेट का एक कोना काटकर पानी भर रहा है, और बस के बेग से बेट के वह जाने के मय से उसने माली का मुँह बन्द कर रखा है। जब पानी की बरूत पड़ती है, तब वह द्वार खोल देता है, पानी अपनी ही शक्ति से उसमें भर जाता है। पानी जाने के बेग को बंद करने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह बकासम के बस में पहुँचे ही से विकसित है। इसी तरह हममें से हर एक के पीछे अनन्त शक्ति अनन्त पवित्रता अनन्त सत्ता अनन्त नीर्म अनन्त आनन्द का भाण्डार परिपूर्ण है, केवल यह द्वार—अग्नी देहस्त्री द्वार हमारे वास्तविक रूप के पूर्ण विकास में बाधा पहुँचाता है।

और इस देह का संयोजन बितना ही उमर होता जाता है कितना ही तमोपुत्र रजोपुत्र में और रजोपुत्र सत्त्वपुत्र में परिवर्त होता है, यह शक्ति और बुद्धता सतनी ही प्रकाशित होती रहती है, और इसीलिए सोचन-पान के सम्बन्ध में हम इतना सावधान रहते हैं। वह सम्भव है कि हम लोग मूल सत्त्व भूल गये हों जैसे हम अपनी विवाह-मन्था के सम्बन्ध में कह सकते हैं। यह विषय यद्यपि यहाँ अप्रासंगिक है, फिर भी हम बुध्यान्त के तीर पर यहाँ इसका शिक कर सकते हैं। यदि कोई दूसरा अवसर मिलेगा तो मैं इन विषयों पर विशेष रूप से कर्तव्य परन्तु इस समय मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ कि बिना मूल भावों से हमारी विवाह-मन्था का प्रचलन हुआ है, उनके प्रह्व करके से ही अर्थात् सम्भवा का संचार ही सकता है, किसी दूसरे उपाय से कदापि नहीं। यदि हर एक स्त्री-पुरुष को जिस किसी पुरुष या स्त्री

को पति अथवा पत्नी के रूप से ग्रहण करने की स्वाधीनता दी जाय, यदि व्यक्तिगत सुख, पाशव प्रकृति की परितृप्ति, समाज में बिना किसी बाधा के संचरित होती रहे, तो उसका फल अवश्य ही अशुभ होगा। उससे दुष्ट प्रकृति और आसुर स्वभाव की सन्तान उत्पन्न होगी। प्रत्येक देश में एक ओर मनुष्य इस तरह की पशु प्रकृति की सन्तान उत्पन्न कर रहे हैं, दूसरी ओर इनके दमन के लिए पुलिस की सख्या बढ़ा रहे हैं। इस तरह की सामाजिक व्याधि के प्रतिकार की चेष्टा में कोई फल नहीं होता, बल्कि समाज में इन दोषों की उत्पत्ति को कैसे रोका जाय, सन्तानों की सृष्टि किस उपाय से रोकी जाय, यह समस्या उठ खड़ी होती है। और जब तक तुम समाज में हो, तब तक तुम्हारे विवाह का प्रभाव समाज के प्रत्येक मनुष्य पर अवश्य ही पड़ेगा, अतएव तुम्हें किस तरह विवाह करना चाहिए, किस तरह का नहीं, इस पर तुम्हें आदेश देने का अधिकार समाज को है। भारतीय विवाह-प्रथा के पीछे इसी तरह के ऊँचे भाव हैं। जन्मपत्रों में वर-कन्या की जैसी जाति, गण आदि लिखे रहते हैं, अब भी उन्हींके अनुसार हिन्दू समाज में विवाह होते हैं और प्रसंग के अनुसार मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मनु के मत से कामोद्भूत पुत्र आर्य नहीं है। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त जिस सतान के सस्कार वैदिक विधि के अनुसार हो, वही वास्तव में आर्य है। आजकल सभी देशों में ऐसी आर्य सन्तान बहुत कम पैदा होती है, और इसीका फल है कि कलियुग नाम की दोषराशि की उत्पत्ति हो रही है। हम प्राचीन महान् आदर्शों को भूल गये हैं। यह सच है कि हम लोग इस समय इन भावों को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं कर सकते, यह भी सम्पूर्ण सत्य है कि हम लोगो ने इन सब महान् भावों में से कुछ को हास्यास्पद बना दिया है। यह बिल्कुल सच है और शोक का विषय है कि आजकल प्राचीन काल के से पिता-माता नहीं हैं, समाज भी अब पहले सा शिक्षित नहीं है, और प्राचीन समाज में जिस तरह समाज के सभी लोगो पर प्रीति रहती थी, अब वैसी नहीं रहती, किन्तु व्यावहारिक रूप में दोषों के आ जाने पर भी वह मूल तत्त्व बड़े ही महत्त्व का है, और यदि उसका कार्यान्वित होना सद्योप है, यदि इसके लिए कोई खास तरीका नाकामयाव हुआ है, तो उसी मूल तत्त्व को लेकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे वह अच्छी तरह काम में आ सके। मूल तत्त्व के नष्ट करने की चेष्टा क्यों? भोजन सम्बन्धी समस्या के लिए भी यही बात है। वह तत्त्व भी जिस तरह काम में लाया जा रहा है, वह निस्सन्देह बहुत ही खराब है, किन्तु इसमें उस तत्त्व का कोई दोष नहीं। वह सनातन है, वह सदा ही रहेगा, ऐसा पुन प्रयत्न करो जिससे वह तत्त्व ठीक ठीक भाव से काम में लाया जा सके।

भारत में हमारे सभी सम्प्रदायों को आत्मा सम्बन्धी इस तत्त्व पर विश्वास

करना पड़ता है। केवल ईतबादी कहते हैं जैसा हम भाग विचार करेंगे वस्तु
 कर्मों से वह संकुचित हो जाती है, उसको सम्पूर्ण व्यक्ति और स्वभाव संकोच को प्राप्त
 हो जाते हैं फिर उत्कर्ष करने से उस स्वभाव का विकास होता है। और ईतबादी
 कहते हैं आत्मा का न कमी संकोच हाता है, न विकास इस तरह होने की प्रतीति
 मात्र होती है। ईतबादी और ईतबादियों में बस इतना ही भेद है परन्तु यह
 बात समी मात्र है कि हमारी आत्मा में पहले हा से सम्पूर्ण व्यक्ति विद्यमान है, एसा
 नहीं कि कुछ बाहर से आत्मा में आव या कोई चीज इसमें आसमात्र से टपक पड़े।
 ध्यान देने योग्य बात है कि तुम्हारे भेद प्रेरित (Impured) नहीं है एसे नहीं
 कि वे बाहर से भीतर आ रहे हैं किन्तु अन्तस्फुरित (expured) है अर्थात्
 भीतर से बाहर आ रहे हैं—वे सनातन निरम है जिनकी अवस्थिति प्रत्येक आत्मा
 में है। भीटी से लेकर देवता तक सबकी आत्मा में वेद अवस्थित है। भीटी को कम
 विकसित होकर अग्नि-सदृश प्राप्त करना है तभी उसके भीतर वेद अर्थात् सनातन
 तत्त्व प्रकाशित होया। इस महान् मान को समझने की आवश्यकता है कि हमारी
 व्यक्ति पहले ही से हमारे भीतर मौजूब है—मुक्ति पहले ही से हम में है। उसके
 लिए इतना कह सकते हो कि वह संकुचित हो गयी है, अथवा माया के आवरण से
 आवृत हो गयी है, परन्तु इससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। पहले ही से वह वहीं मौजूब
 है, यह तुम्हें समझ लेना होगा। इस पर तुम्हें विश्वास करना होया—विश्वास
 करना होया कि बुद्ध के भीतर जो शक्ति है, वह एक छोटे से छोटे मनुष्य में भी है।
 यही हिन्दुओं का आत्म-तत्त्व है।

परन्तु यही भीड़ों के साथ महा विरोध बढ़ा हो जाता है। वे वेद का विस्तेष्यन
 करके उसे एक अज्ञ भीत मान कहते हैं और सही तरह मन का विस्तेष्यन करके
 उसे भी एक दूसरा अज्ञ प्रवाह बतलाते हैं। आत्मा के सम्बन्ध में वे कहते हैं, यह
 अनावश्यक है और उसके अस्तित्व की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं।
 किसी इन्द्र और उसमें संख्या गुणवृद्धि की कल्पना का क्या काम? हम लोग बुद्ध
 गुण ही मानते हैं। जहाँ सिद्ध एक कारण मान लेते पर सब विषयों की व्याख्या हो
 जाती है, वहाँ दो कारण मानना युक्तिघ्नमत नहीं है। इसी तरह भीड़ों के साथ
 विवाद किड़ा और जो सत् इन्द्र विरोध का अस्तित्व मानते वे सतका संज्ञन करके
 भीड़ों ने उनको बूक में मिला दिया। जो इन्द्र और गुण दोनों का अस्तित्व मानते
 हैं जो कहते हैं—तुममें एक अत्मा आत्मा है, हममें एक अत्मा हर एक के सदृश
 और सग से अन्तम एक एक आत्मा है, हर एक का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है—उनकी
 वर्क-पद्धति में पहले ही से कुछ भुटि पी।

यही तक तो ईतबाद का मत ठीक है, हम पहले ही वेद बुद्धे हैं कि यह सदृश

है, यह सूक्ष्म मन है, यह आत्मा है और सब आत्माओ में है वह परमात्मा। यहाँ मुश्किल इतनी ही है कि आत्मा और परमात्मा दोनों ही द्रव्य बतलाये जा रहे हैं और देह-मन आदि तथाकथित द्रव्य उनसे गुणवत् सलग्न है, ऐसा स्वीकार किया जा रहा है। अब बात यह है कि किसीने कभी जिस द्रव्य को नहीं देखा, उसके सम्बन्ध में वह कभी विचार नहीं कर सकता। अतः वे कहते हैं, ऐसी दशा में इस तरह के द्रव्य के मानने की ज़रूरत क्या है? तो फिर क्षणिकविज्ञानवादी क्यों नहीं हो जाते और क्यों नहीं कहते कि मानसिक तरंगों के सिवा और किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है?—उनमें से कोई एक दूसरी से मिली हुई नहीं, वे आपस में मिलकर एक वस्तु नहीं हुईं, समुद्र की तरंगों की तरह एक दूसरी के पीछे पीछे चली आ रही हैं, वे कभी भी सम्पूर्ण नहीं, वे कभी एक अखण्ड इकाई नहीं बनाती। मनुष्य बस इसी तरह की तरंग-परम्परा है—जब एक तरंग चली जाती है, तब दूसरी तरंग पैदा कर जाती है, ऐसा ही चलता रहता है और इन्हीं तरंगों की निवृत्ति को निर्वाण कहते हैं। तुम देखते हो, इसके सामने द्वैतवाद मूक है, यह असम्भव है कि वह इसके विरुद्ध कोई युक्ति दे सके, और द्वैतवाद का ईश्वर भी यहाँ नहीं टिक सकता। जो सर्वव्यापी है तथा व्यक्तिविशेष है, बिना हाथों के ससार की सृष्टि कर रहा है, बिना पैरों के जो चल सकता है—इसी प्रकार और भी, कुम्भकार जिस तरह घट का निर्माण करता है, उसी तरह जो विश्व की सृष्टि करता है—उसके लिए बौद्ध कहते हैं, इस तरह की कल्पना बच्चों की जैसी है और यदि ईश्वर इस तरह का है तो वे उस ईश्वर के साथ विरोध करने को तैयार हैं, उसकी उपासना करने के अभिलाषी नहीं। यह ससार दुःख से परिपूर्ण है, यदि यह ईश्वर का काम हो तो बौद्ध कहते हैं, हम इस तरह के ईश्वर के साथ लड़ने को तैयार हैं। और दूसरे, इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व अयौक्तिक और असम्भव है। सृष्टि-रचनावाद (Design Theory) की श्रुतियों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि क्षणिकविज्ञानवादियों ने उनके सम्पूर्ण युक्तिजाल का खडन कर डाला है। अतएव वैयक्तिक ईश्वर नहीं टिक सकता।

सत्य, एकमात्र सत्य अद्वैतवादियों का लक्ष्य है। सत्यमेव जयते नानृतम् । सत्येन पन्था विततो देवयानः —‘सत्य ही की विजय होती है, मिथ्या को कभी विजय नहीं मिलती, सत्य से ही देवयान मार्ग की प्राप्ति होती है।’ (मुण्डकोपनिषद्, ३।१।६) सत्य की पताका सभी उड़ाया करते हैं, किन्तु यह केवल दुर्बलों को पद-दलित करने के लिए। तुम अपने ईश्वर विषयक द्वैतवादात्मक विचार लेकर किसी वेचारे प्रतिमापूजक के साथ विवाद करने जा रहे हो, सोच रहे हो, तुम बड़े युक्तिवादी हो, उसे अनायास ही परास्त कर सकते हो, यदि वह उल्टे तुम्हारे ही वैयक्तिक

ईश्वर को छोड़ा दे—उसे कास्मिक कहे तो फिर तुम्हारी क्या बचा हो? तब तुम बर्म की दुहाई देने लगते हो अपने प्रतिद्वन्द्वी को नास्तिक नाम से पुकार कर बिस्म-नों मचाने लगते हो और यह तो बुर्बल मनुष्यों का सवाही गारा रहा है—जो मुझे परास्त करेगा वह जोर नास्तिक है! यदि युक्तिवादी होना चाहते हो तो यदि से अस्त तक युक्तिवादी ही बने रहो और अगर न रह सको तो तुम अपने स्मि बितनी स्वाधीनता चाहते हो चतनी ही दूसरे को भी क्यों नहीं देते? तुम इस तरह के ईश्वर का अस्तित्व कैसे प्रमाणित करोये? दूसरी ओर, वह प्रायः अप्रमाणित किया जा सकता है। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में रंजमान प्रमाण नहीं बल्कि नास्तित्व के सम्बन्ध में कुछ भति प्रबल प्रमाण है भी। तुम्हारा ईश्वर, उसके गुण इन्धस्वस्म असस्म बीबात्मा प्रत्येक बीबात्मा का एक स्पष्टि मात्र इन सबको लेकर तुम उसका अस्तित्व कैसे प्रमाणित कर सकते हो? तुम व्यक्ति हो किस विषय में? देह के सम्बन्ध में तुम व्यक्ति हो ही नहीं क्योंकि इस समय प्राचीन बीडों की अपेक्षा तुम्हें और अच्छी तरह मारूम है कि जो अकृपाधि कभी सूर्य में रही होमी बही तुममें जा गयी है, और बही तुम्हारे भीतर से निकलकर बलस्पतियों में बकी जा सकती है। इस तरह तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? तुम्हारे भीतर जान रात एक तरह का विचार है तो कक सुवह दूसरी तरह का। तुम उसी रीति से अब विचार नहीं करते जिस रीति से बचपन में करते थे कोई व्यक्ति अपनी युवावस्था में जिस बंग से विचार करता था वैसे बूढावस्था में नहीं करता। तो फिर तुम्हारा व्यक्तित्व कहाँ रह जाता है? यह मत कहो कि जान में ही तुम्हारा व्यक्तित्व है—जान अहंकार मात्र है और यह तुम्हारे प्रकृत अस्तित्व के एक बहुत छोटे बख में व्याप्त है। जब मैं तुमसे बातचीत करता हूँ तब मेरी सभी इन्द्रियों काम करती रहती है, परन्तु उनके सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जान सकता। यदि वस्तु की सत्ता का प्रमाण जान ही हो तो कहना पड़ेगा कि उनका (इन्द्रियों का) अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मुझे उनके अस्तित्व का ज्ञान नहीं रहता। तो अब तुम अपने वैयक्तिक ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर कहाँ रह जाते हो? इस तरह का ईश्वर तुम कैसे प्रमाणित कर सकते हो?

फिर और, बीड सबे हीकर वह बोधना करेये कि यह केवल अयौक्तिक ही नहीं बरन् अनैतिक भी है क्योंकि वह मनुष्य को कापुस्व बन जाना और बाहर से सहायता लेने की प्रार्थना करना सिखाता है— इस तरह कोई भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। यह भी बह्याण्ड है इसका निर्माण मनुष्य में ही किया है। तो फिर बाहर क्यों एक कास्मिक व्यक्ति विशेष पर विश्वास करते ही जिसे न कभी देखा न जिसका कभी अनुभव किया अबना जिससे न कभी किसीकी कोई सहायता

मिली ? क्यों फिर अपने को कापुरुष बना रहे हो और अपनी सन्तानो को सिखलाते हो कि कुत्ते की तरह हो जाना मनुष्य की सर्वोच्च अवस्था है, और चूँकि हम कमजोर, अपवित्र और ससार में अत्यन्त हेय और अधम हैं, इसलिए इस काल्पनिक सत्ता के सामने घुटने टेककर बैठ जाना चाहिए ? दूसरी ओर, बौद्ध, तुमसे कहेंगे, तुम अपने को इस तरह कहकर केवल झूठ ही नहीं कहते, किन्तु तुम अपनी सन्तानो के लिए घोर पाप का सच्य कर रहे हो, क्योंकि, स्मरण रहे, यह ससार एक प्रकार का सम्मोहन है, मनुष्य जैसा सोचते हैं, वैसे ही हो जाते हैं। अपने सम्बन्ध में तुम जैसा कहोगे, वही बन जाओगे। भगवान् बुद्ध की पहली बात यह है — 'तुमने अपने सम्बन्ध में जो कुछ सोचा है, तुम वही हुए हो, भविष्य में जो कुछ सोचोगे वैसे ही होगे।' यदि यह सत्य है तो कभी यह मत सोचना कि तुम कुछ नहीं हो, या जब तक तुम किसी दूसरे की, जो यहाँ नहीं रहता, स्वर्ग में रहता है, सहायता नहीं पाते, तब तक कुछ नहीं कर सकते। इस तरह सोचने से उसका फल यह होगा कि तुम प्रतिदिन अधिकाधिक कमजोर होते जाओगे। 'हम महा अपवित्र हैं, हे प्रभो, हमें पवित्र करो'—इसका परिणाम होगा कि तुम अपने को हर प्रकार के पापों के लिए विवश कर दोगे। बौद्ध कहते हैं, प्रत्येक समाज में जिन पापों को देखते हो, उसमें नब्बे फी सदी बुराइयाँ इसी वैयक्तिक ईश्वर की धारणा के कारण उत्पन्न हुई हैं, मनुष्य-जीवन का, अद्भुत मनुष्य-जीवन का, एकमात्र उद्देश्य एव लक्ष्य अपने को कुत्ते की तरह बना डालना—यह मनुष्य की एक भयानक धारणा है। बौद्ध वैष्णवों से कहते हैं, यदि तुम्हारा आदर्श, तुम्हारे जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य भगवान् के वैकुण्ठ नामक स्थान में जाकर अनन्त काल तक हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा रहना ही है तो इससे आत्महत्या कर डालना अधिक अच्छा है। बौद्ध यहाँ तक कह सकते हैं, इस भाव से वचने के लिए निर्वाण या विनाश की चेष्टा बंद कर रहे हैं। मैं तुम लोगों के सामने ठीक बौद्धों की ही तरह ये बातें कह रहा हूँ, क्योंकि आजकल लोग कहा करते हैं कि अद्वैतवाद से लोगों में अनैतिकता घुस जाती है। इसलिए दूसरे पक्ष के लोगों का जो कुछ कहना है, वही मैं तुमसे कहने की चेष्टा कर रहा हूँ। हमें दोनों पक्षों पर निर्भीक भाव से विचार करना है।

एक वैयक्तिक ईश्वर ने ससार की सृष्टि की—इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यह हमने सर्वप्रथम समझ लिया। क्या एक बालक भी आजकल इस बात पर विश्वास कर सकता है ? चूँकि एक कुम्भकार ने घट का निर्माण किया, अतएव एक ईश्वर ने इस जगत् की सृष्टि की। यदि ऐसा ही हो तो ईश्वर भी तुम्हारा एक कुम्भकार ही हुआ। और यदि कोई तुमसे कहे कि सिर और हाथों के न रहने पर भी वह काम करता है, तो तुम उसे पागलखाने में रखने की ठानोगे। तुम्हारे

ईश्वर न—इस संसार के सृष्टिकर्ता वैयक्तिक ईश्वर ने जिसके पास तुम जीवन् मर से चिन्ता रहे हो क्या कभी तुम्हें कोई सहायता दी? आधुनिक विज्ञान तुम लोगों के सामने यह एक और प्रश्न पेश करके उसके उत्तर के लिए चुनौती दे रहा है। वे प्रमाणित कर देंगे कि इस तरह की जो सहायता तुम्हें मिली है, उस तुम अपनी ही चेष्टा से प्राप्त कर सकते थे। इस तरह के रोबन से नृवा सन्तुष्टि करने की तुम्हारे लिए कोई आवश्यकता न थी इस तरह न रोकर तुम अपना उद्देश्य बनायास ही प्राप्त कर सकते थे। और भी हम सोच पाहके देख चुके हैं कि इस तरह के वैयक्तिक ईश्वर की चारणा से ही अत्याचार और पुरोहित-प्रपंच का आविर्भाव हुआ। यहाँ यह चारणा विद्यमान थी वहाँ अत्याचार और पुरोहित प्रपंच प्रचलित थे और बीड़ों का कथन है कि जब तक वह मिथ्या भाव पड़ समेत नष्ट नहीं होता तब तक यह अत्याचार बन्द नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य सोचता है कि किसी दूसरे अधीकृतिक पुरुष के सामने उसे विनीत मान से रहना होगा तब तक पुरोहित का अस्तित्व अनस्य रहेगा। वे विशेष अधिकार या दावे पेश करेंगे ऐसी चेष्टा करेंगे जिससे मनुष्य उनके सामने सिर झुकाये और बेचारे असहाय व्यक्ति मध्यस्थता करने के लिए पुरोहितों के प्रार्थी बने रहेंगे। तुम सोम ब्राह्मणों को निर्मूलक कर सकते हो परन्तु इस बात पर ध्यान रखो कि जो सोच ऐसा करेंगे वे ही उनके स्थान पर अपना अधिकार जमायेंगे और वे फिर ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक अत्याचारी बन जायेंगे। क्योंकि ब्राह्मणों में फिर भी कुछ उदात्ता है, परन्तु वे स्वयमिद ब्राह्मण सत्ता से ही बड़े दुःखचारी हुआ करते हैं। मियुक्त का यदि कुछ मन मिल जाय तो वह मम्मून संसार को एक तिनके के बराबर समझता है। अतएव जब तक इस वैयक्तिक ईश्वर की चारणा बनी रहेगी तब तक वे सब पुरोहित भी रहेंगे। और समाज में किसी तरह की उच्च नैतिकता की आशा की ही नहीं जा सकेगी। पुरोहित-प्रपंच और अत्याचार तब एक साथ रहेंगे। क्यों लोगों ने इन वैयक्तिक ईश्वर की कल्पना की? कारण इसका यह है कि प्राचीन समय में कुछ बलवान मनुष्यों ने मापारण मनुष्यों को अपने हाथ में तारकर उनमें बड़ा वा गुम्हें हमारा आदेश मानकर चलना होगा नहीं तो हम तुम्हारा नाम कर दामेंगे। यही दगाका अर्थ और दण्ड है। इसका कोई दूसरा कारण नहीं—सहृदय बन्धुमुक्तम्—एकलगा पुरुष है जो हाथ में सदा ही बन्धु सिय रहता है, और जो अपनी आत्मा का उन्मथन करता है, उगाका वह कल्पना विनाश कर दामता है।

इसके बाद बीड़ कहते हैं तुम्हारा यह कथन पूर्णतया सुनिश्चित है कि तब कुछ कर्मकाण्ड का कर्तृ है। तुम लोग अनस्य जीवात्माओं के सम्बन्ध में विज्ञान करते हो और तुम्हारे मा में इन जीवात्मा का न ध्यान है, न मृत्यु। यही तब ही तुम्हारे

के नाम से कुछ भी नहीं रह जाता, कारण व्यक्तित्व के नाम से ऐसा कुछ सूचित होता है, जो अपरिणामी है। परिवर्तनशील व्यक्तित्व ही नहीं सकता, यह स्वविरोधी वाक्य है। इसलिए हमारे इस क्षुद्र जगत् में व्यक्तित्व के नाम से कुछ भी नहीं रह जाता। विचार, भाव, मन, शरीर, जीव-जन्तु और वनस्पति— इनका सदा ही परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। अब सम्पूर्ण विश्व को एक समष्टि की इकाई के रूप में ग्रहण करो। क्या यह परिवर्तित या गतिशील हो सकती है? कदापि नहीं। किसी अल्प गतिशील या सम्पूर्ण गतिहीन वस्तु से तुलना करने पर ही गति का निश्चय होता है। अतः समष्टि के रूप में विश्व गति और परिणाम से रहित है। यहाँ मालूम हो जाता है कि जब तुम अपने को सम्पूर्ण विश्व से अभिन्न समझोगे, जब 'मैं ही विश्वब्रह्माण्ड हूँ' यह अनुभव होगा, तभी—केवल तभी, तुम्हारे यथार्थ व्यक्तित्व का विकास होगा। यही कारण है कि अद्वैतवादी कहते हैं, जब तक द्वैत है, तब तक भय से छूटने का कोई उपाय नहीं है। जब कोई दूसरी वस्तु दिखलायी नहीं पड़ती, किसी भिन्न भाव का अनुभव नहीं होता, जब केवल एक ही सत्ता रह जाती है, तभी भय दूर होता है, तभी मनुष्य मृत्यु के पार जा सकता है। और तभी ससार-बोध लोप हो जाता है। अद्वैतवाद हमें यह शिक्षा देता है कि मनुष्य का यथार्थ व्यक्तित्व है समष्टि-ज्ञान में, व्यष्टि-ज्ञान में नहीं। जब तुम अपने को सम्पूर्ण समझोगे, तभी तुम अमर होगे। तभी तुम निर्भय और अमृतस्वरूप हो सकोगे, जब विश्व, ब्रह्माण्ड और तुम एक हो जाओगे, और तभी जिसे तुम परमात्मा कहते हो, जिसे सत्ता कहते हो और जिसे पूर्ण कहते हो, वह विश्व से एक हो जायगा। और हमारी तरह की मनोवृत्तियाँ लोग एक ही अखंड सत्ता को विविधतापूर्ण विश्व के रूप में देखते हैं। जो लोग कुछ और अच्छे कर्म करते हैं तथा उन्हीं सत्कर्मों के बल से जिनकी मनोवृत्ति कुछ और उत्तम हो जाती है, वे मृत्यु के पश्चात् इसी ब्रह्माण्ड में इन्द्रादि देवों का स्वर्गलोक देखते हैं। उनसे भी ऊँचे लोग इसमें ही ब्रह्मलोक देखते हैं। और जो लोग पूर्ण सिद्ध हो गये हैं, वे पृथ्वी, स्वर्ग या कोई दूसरा लोक नहीं देखते, उनके लिए यह ब्रह्माण्ड अन्तर्हित हो जाता है, उसकी जगह एकमात्र ब्रह्म ही विराजमान रहता है।

क्या हम इस ब्रह्म को जान सकते हैं? मैंने तुमसे पहले ही सहिता में अनन्त के वर्णन की कथा कही है। यहाँ हमको उसका ठीक विपरीत पक्ष मिलता है—यहाँ आन्तरिक अनन्त है। सहिता में वहिर्जगत् के अनन्त का वर्णन है। यहाँ चिन्तन-जगत्, भाव-जगत् के अनन्त का वर्णन है। सहिता में अस्तिभाव का बोध करानेवाली भाषा में अनन्त के वर्णन की चेष्टा हुई थी, यहाँ उस भाषा से काम नहीं निकला, नास्तिभावात्मक या

बार्थनिकों के अस्तित्व में एक बार्थनिक व्यापार मात्र है क्योंकि इन्में और गुण के नामों से वास्तव में किसी प्रकार का अस्तित्व नहीं है। यदि तुम एक साधारण मनुष्य हो तो तुम केवल पुण्यरसि देखोगे और यदि तुम कोई बड़े योगी हो तो तुम इन्में का ही अस्तित्व देखोगे परन्तु दोनों को एक ही समय में तुम कदापि नहीं देख सकते। अतएव है बौद्ध इन्में और पुण्य की लेकर तुम जो विचार कर रहे हो, सब तो यह है कि यह बेबुनियाद है। परन्तु, यदि इन्में पुण्यरहित है तो केवल एक ही इन्में का अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि तुम आत्मा से पुण्यरसि उठा लो और यह सिद्ध करो कि पुण्यरसि का अस्तित्व मन में ही है आत्मा पर उतका आरोप मात्र किया गया है तो दो आत्मा भी नहीं रह जाती क्योंकि एक आत्मा से दूसरी आत्मा की विशेषता गुणों ही की बरौफ्त सिद्ध होती है। तुम्हें कैसे मानन होता है कि एक आत्मा दूसरी आत्मा से पुण्य है?—कुछ भेदात्मक किन्तु कुछ गुणों के कारण। और नहीं गुणों की उता नहीं है, बहो कैसे भेद रह सकता है? अतः आत्मा दो नहीं आत्मा 'एक' ही है, और तुम्हारा परमात्मा अनाद्यत्मक है, वह आत्मा ही है। इसी एक आत्मा को परमात्मा कहते हैं इसे जीवात्मा और दूसरे नामों से भी पुकारते हैं। और है साक्ष्य तथा अजर ईतबादिमो तुम कोय कहते रहते हो—आत्मा सर्वव्यापी विभु है इस पर तुम काम किस तरह अनेक आत्मामों का अस्तित्व स्वीकार करते हो? असीम क्या कमी हो हो सकते हैं? एक होना ही सम्भव है। एक ही असीम आत्मा है और सब उसी की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त में बौद्ध मीन है परन्तु अद्वैतवादी पुण्य नहीं रह पाते।

दुर्लभ मर्तों की तरह केवल दूसरे मर्तों की समालोचना करके ही अद्वैत पथ निरस्त नहीं होता। अद्वैतवादी सभी उन सभी मर्तों की समालोचना करते हैं जब वे उसके बहुत निरस्त वा पाते हैं और उसके संज्ञन की चेष्टा करते हैं। वह निरस्त इतना ही करता है कि दूसरे मर्तों का निरस्तकरण कर अपने सिद्धांत को स्थापित करता है। एकमात्र अद्वैतवादी ही ऐसा है जो दूसरे मर्तों का संज्ञन तो करता है परन्तु दूसरों की तरह उसके संज्ञन का आकार शस्त्रों की दुर्दाई देना नहीं है। अद्वैतवादिनों की मुक्ति इस प्रकार है, वे कहते हैं तुम संसार को एक अविद्यमान मति प्रवाह मात्र कहने लो ठीक है, स्पष्टि में सब गतिहीन है भी तुममें भी गति है और वेद में भी गति है मति सर्वत्र है। 'मक्ति इसका नाम संसार है, इतिहास इतना नाम जगत् है—मक्ति मति।' यदि यही है तो तुम्हारे संसार में अस्तित्व

१ नू धानु का अर्थ 'गर्तव्य' का 'गति' होना है और जगत् में नम् धानु विद्यु प्रत्यय के साथ है।

यही वैराग्य का मूल मन्त्र है, यही सब तरह की नैतिकताओं और निःश्रेयस् का मूल मन्त्र है, क्योंकि तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि त्याग-तपस्या से ही ससार की सृष्टि हुई है। और जितना ही पीछे की ओर तुम जाओगे उसी क्रम से तुम्हारे सामने भिन्न भिन्न रूप, भिन्न भिन्न देह अभिव्यक्त होते रहेंगे और एक एक करके उनका त्याग होगा, अन्त में तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे, यही मोक्ष या मुक्ति है।

यह तत्त्व हमें समझ लेना चाहिए, विज्ञातारमरे केन विजानीयात्—‘विज्ञाता को कैसे जानोगे?’ ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता। और यदि तुम आइने में अपनी आंखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आंखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा—यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न ससार का सम्भोग ही कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। “हे हिन्दुओं, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो”—यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, ‘जो साक्षीस्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।’ अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हे मिलता है?—जो लोग कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें? इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है—

'निश्चि-नेति' की भाषा में अनन्त के वर्णन का प्रयत्न किया गया। यह विश्व ब्रह्मांड है माना कि यह ब्रह्म है। क्या हम इसे जान सकते हैं? नहीं— नहीं जान सकते। तुम्हें इस विषय को स्पष्ट रीति से फिर समझना होगा। तुम्हारे मन में बार बार इस सन्देह का आविर्भाव होगा कि यदि यह ब्रह्म है तो किस तरह हम इसे जान सकते हैं। विज्ञातारमरे केन विज्ञानीयात्। (बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१४)—विज्ञाता को किस तरह जाना जाता है? विज्ञाता को कैसे जान सकते हैं? यहाँ सब वस्तुओं को देखती हूँ पर क्या वे अपने को भी देख सकती हैं? नहीं देख सकती। ज्ञान की क्रिया ही एक नीची अवस्था है। ऐ आर्य सन्तानो तुम्हें यह विषय अच्छी तरह भाव रखना चाहिए, क्योंकि इस तत्त्व में महान् तथ्य निहित है। तुम्हारे निकट परिचय के जो सार प्रकोभन आया करते हैं, उनका वार्षनिक बुनियाद एक यही है कि इन्द्रिय-ज्ञान से बढ़कर दूसरा ज्ञान नहीं है। पूर्व में हमारे वेदों में कहा गया है कि यह वस्तु-ज्ञान वस्तु की अपेक्षा नीचे बनें का है, क्योंकि ज्ञान के अर्थ से सदा सहीम भाव ही समझ में आता है। जब कभी तुम किसी वस्तु को जानना चाहते हो तभी यह तुम्हारे मन से सीमाबद्ध हो जाती है। पूर्व कथित वृष्टान्त में जिस तरह सुक्ति से मुक्ता बनती है उस पर विचार करो तभी समझो कि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना कैसे हुआ। किसी वस्तु को चुनकर तुम उसे बेतना क-धरे में से आते ही और उसको सम्पूर्ण भाव से जान नहीं पाते हो। यही बात समस्त ज्ञान के सम्बन्ध में ठीक है। यदि ज्ञान का अर्थ सीमाबद्ध करना ही हो तो क्या उस अनन्त के सम्बन्ध में भी तुम ऐसा कर सकते हो? जो सब जानों का उपादान (आधार) है जिसे छोड़कर तुम किसी तरह का ज्ञान अर्जित नहीं कर सकते जिसके कोई गुण नहीं है जो सम्पूर्ण ससार और हम लोगों की आत्मा का छाया स्वरूप है उसके सम्बन्ध में तुम क्या कैसे कर सकते हो—उस तुम कैसे सीमा में ला सकते हो? उसे तुम कैसे जान सकते हो? किस उपाय से उसे बाँधो? हर एक वस्तु यह सम्पूर्ण ससार प्रपञ्च उस अनन्त के जानने की बुधा भेष्टा मात्र है। मानो यह अनन्त आत्मा अपने मुलाबसोरुन की भेष्टा कर रही है और सर्वोच्च देवता से लेकर निम्नतम प्राणी तक सभी मानो उसके मुख का प्रतिबिम्ब बह्य करने के बर्णन हैं। एक एक करके एक एक बर्णन में अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखने की भेष्टा करके उसे उपयुक्त न देण अन्त में मनुष्य देह में आत्मा समझ पाती है कि यह सब सहीम है, और अनन्त कभी शान्त के भीतर अपने को प्रकाशित नहीं कर सकता। उती समय पीछे की ओर की भाषा शुरू होती है और ज्ञानीको त्पाय या वैतन्य कहते हैं। इन्द्रियों से पीछे हट जाओ इन्द्रियों की ओर मन आओ

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणों का ही आवार नहीं है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नहीं रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पडेगा और हिम्मत वाँचकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पडेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' में पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियों में शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।' उन्हे सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा हो, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गी, सब कुछ आनन्द है, इस ससार में जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अंश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे मामने के इस प्रकाश में चाहे तुम किसी गरीब को हज़ार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश में तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनों ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, वल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव में हैं ही नहीं, कुछ दार्शनिक शब्दों ने ही तुम्हें धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगों में कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर है ही नहीं। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीज़ें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओं के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय में मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। एक समय में एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड़ वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योंकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हें नहीं दिखायी पडता। और जिस समय तुम कारण

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

—चडी ५।४७-९, ५।७४-६॥

और इस देश काक तिमिल को जाये नाम-रूप में परिणत किया गया है। नाम को समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पूरक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें बिलीन ही या सखी हैं और तरंग में जो नाम और रूप हैं, वे भी चाहे फिर काक के लिए बिलीन हो जायें पर पानी पहले की तरह सम साग्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह भाषा ही तुममें और हममें पशुओं में और मनुष्यों में देवताओं में और मनुष्यों में भेद भाव पैदा करती है। सब तो यह है कि यह भाषा ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर मिश्रता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय नाम और रूप दूर कर दिये जायें तो वह सब के लिए अस्वहित हो जायगी तब तुम वास्तव में जो कुछ ही बची रह जाओगे। यही भाषा है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है केवल उर्ध्वों का कथन मात्र है।

जब कोई यथार्थवादी कहता है कि हम भेद का अस्तित्व है तब उसके कहने का अर्थप्रायः होता है कि उस भेद की अपनी एक जास निरोपण सत्ता है उसका अस्तित्व संसार की किसी भी दूसरी वस्तु पर अवलम्बित नहीं और यदि यह सम्पूर्ण बिम्ब नष्ट हो जाय तो भी वह उर्ध्वों की उर्ध्वों ही बनी रहेगी। कुछ बोध ता विचार करने पर ही तुम्हारी समझ में आ जायगा कि ऐसा कभी ही नहीं सकता। इस इन्द्रियब्राह्म संसार की सभी चीजें एक दूसरी पर अवलम्बित हैं वे एक दूसरी की जोड़ा एतदी हैं; वे सगोच और परस्पर सम्बन्धित हैं—एक का अस्तित्व दूसरे पर निर्भर है। हमारे वस्तु-ज्ञान के तीन सोपान हैं। पहला यह है कि प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है और एक दूसरी से अलग है दूसरा यह कि सभी वस्तुओं में पारस्परिक सम्बन्ध है और अन्तिम सोपान यह है कि वस्तु एक ही है जिसे हम लोग अनेक रूपों में देग रहे हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में भक्त मनुष्य की पहली धारणा यह होती है कि वह इन ब्रह्मांड के बाहर नहीं रहता है जिसका मतलब है कि उन समय का ईश्वर विषयक ज्ञान पूर्णतः मानवीय होता है अर्थात् जो कुछ मनुष्य करते हैं ईश्वर भी नहीं करता है, भेद बैधन नहीं है कि ईश्वर के कार्य अर्थात् बड़े पैमाने पर तथा अधिक उच्च प्रकार के होते हैं। हम लोग पालन गमना बुके हैं कि ईश्वर सम्बन्धी ऐसी धारणा बाड़े ही शर्तों में बने अर्थात् ईश्वर और आदर्शन प्रमाणात् की जा सकती है। ईश्वर के सम्बन्ध में दूसरी धारणा यह है कि वह एक शक्ति है और उसीकी सर्वत्र अभिव्यक्ति है। हमें वास्तव में हम मनुष्य ईश्वर बट नहीं हैं 'बही' में ही ईश्वर की बात नहीं

गयी है। परन्तु इस पर ध्यान रहे कि यह ईश्वर केवल सम्पूर्ण कल्याणकारी गुणों का ही आधार नहीं है। ईश्वर और शैतान—दो देवता नहीं रह सकते, एक ही ईश्वर का अस्तित्व मानना पड़ेगा और हिम्मत वाँचकर भला और बुरा उसी ईश्वर को मानना पड़ेगा, और यह युक्तिसम्मत सिद्धान्त मान लेने पर जो कुछ ठहरता है, उसे भी लेना होगा। हम 'चडी' में पढते हैं, 'जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में अवस्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जो देवी सभी प्राणियों में शुद्धिरूपा होकर स्थित है, उसे हम नमस्कार करते हैं।' उन्हें सर्वस्वरूप कहने से उसका फल चाहे जैसा ही, साथ ही उसे भी लेना होगा। 'हे गार्गी, सब कुछ आनन्द है, इस ससार में जो कुछ आनन्द देख रही हो, सब उसी आध्यात्मिक तत्त्व का अंश है।' इसकी सहायता से तुम हर एक काम कर सकते हो। मेरे सामने के इस प्रकाश में चाहे तुम किसी गरीब को हजार रुपये गिन दो और चाहे कोई दूसरा इसी प्रकाश में तुम्हारा जाली हस्ताक्षर करे, प्रकाश दोनों ही के लिए बराबर है। यह हुआ ईश्वर-ज्ञान का दूसरा सोपान। तीसरा सोपान यह है कि ईश्वर न तो प्रकृति के बाहर ही है और न भीतर ही, बल्कि ईश्वर प्रकृति, आत्मा, विश्व—ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। दो वस्तुएँ वास्तव में ही नहीं, कुछ दार्शनिक शब्दों ने ही तुम्हें धोखा दिया है। तुम सोच रहे हो, तुम शरीर भी हो और आत्मा भी हो, और एक साथ ही तुम शरीर और आत्मा बन गये हो। यह कैसे हो सकता है? मन ही मन इसकी जाँच करो। यदि तुम लोगो में कोई योगी होगा तो वह अपने को चैतन्य स्वरूप जानता होगा, उसके लिए शरीर ही नहीं। यदि तुम साधारण मनुष्य होगे तो तुम अपने को देह सोचोगे, उस समय चैतन्य के सम्पूर्ण ज्ञान का लोप हो जायगा। मनुष्य के देह है, आत्मा है, और भी बहुत सी चीजें हैं—इन सब दार्शनिक धाराओं के रहने के कारण तुम लोग सोचते होगे कि ये सब एक ही समय में मौजूद हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। एक समय में एक वस्तु का अस्तित्व है। जब तुम जड़ वस्तु देख रहे हो, तब ईश्वर की चर्चा मत करो, क्योंकि तुम केवल कार्य ही देख रहे हो, उसका कारण तुम्हें नहीं दिखायी पड़ता। और जिस समय तुम कारण

१ या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

या देवी सर्वभूतेषु शुद्धिरूपेण सस्थिता ।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

—चडी ५।४७-९, ५।७४-६॥

दूसरे उस समय कार्य का लोप हो जायगा। तब यह संसार न जाने कहीं बचा जाया है, न जाने कौन इसका प्रास करेगा है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविद् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में अनिर्बचनीय केवल ज्ञानस्वरूप उपमायुक्त अपार, नित्यमुक्त निष्कम्य असीम आकाशमुन्य अचहीन मेदरहित पूर्वस्वरूप ऐसा ही ब्रह्म प्रकाशमान होता है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविद् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा पूर्ण ब्रह्म प्रकाशमान होता है जो प्रकृति की विकृति से रहित है अचिन्त्य स्वरूप है, अभिमान होने पर भी किसी समता करनेवाला कोई नहीं है, जिसमें किसी तरह के परिचाम का सम्बन्ध नहीं है (जो अपरिमेय है) जो वेद-वाक्यों द्वारा सिद्ध है और जिसे हम अपनी सत्ता कहते हैं तथा जो उसका सार है।

हे महात्मन् हे तत्त्वविद् समाधि अवस्था में ज्ञानी के हृदय में ऐसा ब्रह्म प्रकाशमान होता है, जो जगत् और मृत्यु से रहित है, जो पूर्ण अज्ञेय और अनुष्नीय है और जो महाप्रकम्पकासीम अकम्पावन में निराम्य उस समस्त विश्व क सदृश है जिसके ऊपर, नीचे चारों तरफ जल ही जल है और प्रस की सतह पर तरंग की कौन कहे एक छोटी सी लहर भी नहीं है—निस्तम्बता और शान्ति है समस्त वर्णन आदि का अस्त हो गया है मूर्तों तथा सत्तों के सभी लक्षण समझों और पुष्टों का सबा के लिए अस्त हो गया है।

मनुष्य की ऐसी अवस्था भी होती है, और जब यह अवस्था आती है तब संसार विलीन हो जाता है।

अब हमने देखा कि सत्यस्वरूप ब्रह्म अज्ञेय और अज्ञेय है, परन्तु अज्ञेयवाकियों की दृष्टि से नहीं। हम 'उसे' जान गये यह कहना ही पाषण्डपूर्व बात है क्योंकि पहले ही से तुम नहीं (ब्रह्म) हो। हमने यह भी देखा है कि एक लटके से ब्रह्म यह मेव नहीं है फिर दूसरे लटके से वह मेव है भी। नाम और रूप उद्य को फिर जो सत्य वस्तु बची खूटी है वह नहीं है। वह इत एक वस्तु के भीतर सत्यस्वरूप है।

तुम्हीं स्त्री हो पुरुष भी तुम्हीं हो तुम कुमार, तुम्हीं कुमारी भी हो और तुम्हीं सब का सहायक लिए हुए ब्रह्म हो, जिसमें सर्वत्र तुम ही हो।

१ इ विश्वकामन्दगीता ॥४ ८-४१ ॥

२ त्वं स्त्री त्वं कुमारति त्वं कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो वडेन वंचति त्वं ज्योती वंचति विश्वतोमुज ॥

अद्वैतवाद का यही विषय है। इस सम्बन्ध में कुछ बातें और हैं। इस अद्वैतवाद से सभी वस्तुओं के मूल तत्त्व की व्याख्या मिल जाती है। हमने देखा है, तर्कशास्त्र और विज्ञान के आक्रमणों के विरोध में हम केवल इसी अद्वैतवाद को लेकर खड़े हो सकते हैं। अन्त में सारे तर्कों को यही ठहरने की एक दृढ़ भूमि मिलती है। भारतीय वेदान्ती अपने सिद्धान्त के पूर्ववर्ती सोपानों पर कभी दोषारोपण नहीं करते, बल्कि वे अपने सिद्धान्त पर ठहर कर, उन पर नज़र डालते हुए, उनका समर्थन करते हैं, वे जानते हैं, वे सत्य हैं, सिर्फ वे गलत ढंग से उपलब्ध हुए हैं— भ्रम के आधार पर उनका वर्णन किया गया है। वे भी वही सत्य हैं, अन्तर इतना ही है कि वे माया के माध्यम से देखे गये हैं, कुछ विकृत होने पर भी वे सत्य—केवल सत्य ही है। एक ही ब्रह्म है, जिसे अज्ञ प्रकृति के बाहर किसी स्थान में अवस्थित देखता है, जिसे अल्पज्ञ ससार का अन्तर्यामी देखता है, जिसका अनुभव ज्ञानी आत्म-स्वरूप या सम्पूर्ण ससार के स्वरूप में करता है। यह सब एक ही वस्तु है, एक ही वस्तु भिन्न भिन्न भावों से दृष्टिगोचर हो रही है, माया के विभिन्न शीशों के भीतर से दिखायी दे रही है, विभिन्न मन से दिखायी दे रही है, और पृथक् पृथक् मन से दिखायी देने के कारण ही यह सब विभिन्नता है। केवल इतना ही नहीं, उनमें से एक भाव दूसरे में ले जाता है। विज्ञान और सामान्य ज्ञान में क्या भेद है? रास्ते पर जब कभी कोई असाधारण घटना घट जाती है तो पथिकों में से किसी से उसका कारण पूछो। दस आदमियों में से कम से कम नौ आदमी कहेंगे, यह घटना भूतों की करामात है। वे बाहर सदा भूत-प्रेतों के पीछे दौड़ते हैं, क्योंकि अज्ञान का स्वभाव ही है कार्य के बाहर कारण की खोज करना। एक पत्थर गिरने पर अज्ञ कहता है, भूत या शैतान का फेंका हुआ पत्थर है। परन्तु वैज्ञानिक कहता है वह प्रकृति का नियम या गुस्त्वाकर्षण है।

विज्ञान और धर्म में सर्वत्र कौन सा विरोध है? प्रचलित धर्म जितने हैं, सभी बहिरागत व्याख्या द्वारा आच्छन्न हैं। सूर्य के अधिष्ठाता देवता, चन्द्र के अधिष्ठाता देवता—इस तरह के अनन्त देवता हैं, और जितनी घटनाएँ हो रही हैं, सब कोई न कोई देवता या भूत ही कर रहा है, इसका साराश यही है कि किसी विषय के कारण की खोज उसके बाहर की जाती है, और विज्ञान का अर्थ यह है कि किसी वस्तु के कारण की व्याख्या उसी प्रकृति से की जाती है। धीरे धीरे विज्ञान ज्यों ज्यों प्रगति कर रहा है, त्यों त्यों वह प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या भूत-प्रेतों और देवदूतों के हाथ से छीनता जा रहा है। और चूँकि आध्यात्मिक क्षेत्र में अद्वैतवाद इसकी सावना कर चुका है, इसलिए यही सबसे अधिक विज्ञान-सम्मत धर्म है। इस जगत् को विश्व के बाहर के किसी ईश्वर ने नहीं बनाया,

संसार के बाहर की किसी प्रतिमा ने इसकी सृष्टि नहीं की। वह आप ही आप सृष्ट हो रहा है, आप ही आप उसकी अभिव्यक्ति हो रही है। आप ही आप उसका प्रसन्न हो रहा है—एक ही अनन्त सत्ता ब्रह्म है। तद्व्यतिरिक्तो हे व्यतिरिक्तो तुम नहीं हो।

इस तरह तुम देख रहे हो यही एकमात्र यही वैज्ञानिक बर्तन बन सकता है, कोई दूसरा नहीं। और इस अर्धसिद्धित वर्तमान भारत में आवश्यक प्रतिदिन विज्ञान की जो बकवास चल रही है प्रतिदिन मैं जिस धुक्तिदाय और बिचार धीकता की पुष्टाई सुन रहा हूँ उससे मुझे आशा है तुम्हारे समस्त सम्प्रदाय अद्वैतवादी होने और बुद्ध के शब्दों में अनुबन्धनहिताय अनुबन्धनमुखाय संसार में इस अद्वैतवाद का प्रचार करने का साहस करेये। यदि तुम ऐसा न कर सको तो मैं तुम्हें इत्योक समझूँगा। यदि तुमने अपनी कायरता दूर नहीं की यदि अपने भय को तुमने बहाना बना लिया तो दूसरे को भी वही ही स्वीकारण दो। बेचारे मूर्तिपूजक को बिस्फुक्त उड़ा देने की चेष्टा न करो उसे पीतल मत कहो। जो तुम्हारे साथ पूर्वतया सहमत न हो उसीके पास अपना मठ प्रचार करने के लिए न जाओ। पहले यह समझो कि तुम खुद कायर हो और यदि तुम्हें समाज का भय है यदि तुम्हें अपने ही प्राचीन कुसंस्कारों का इतना भय है तो यह भी सोच लो कि जो लोग ब्रह्म हैं उन्हें अपने कुसंस्कारों का और कितना अधिक भय और बन्धन होना। अद्वैतवादियों की यही बात है। दूसरों पर रना करो। परमात्मा करे एक ही सम्पूर्ण संसार केवल मठ में ही नहीं अनुसूति के सम्बन्ध में भी अद्वैतवादी हो जाय। परन्तु यदि बीसा नहीं हो सकता तो हमको जो अच्छा करते बने वही करना चाहिए। ब्रह्म का हाथ पकड़कर उसकी सन्ति के अनुसार उन्हें पीरे पीरे भागे में चलो, जितना वे जाने बड़ सकते हैं। और हमको कि भारत में सभी बर्तों का विकास क्रमोन्नति के निममानुसार पीरे पीरे हुआ है। बात ऐसी नहीं कि बुरे से मला हो रहा है, बल्कि सब से और भी मला हो रहा है।

अद्वैतवाद के नैतिक सम्बन्धों के विषय में कुछ और कहना आवश्यक है। हमारे बड़के आवश्यक प्रमुदित मान से बातचीत करते हैं—किसीसे सत जोयों ने सुना होगा परमात्मा जाने किससे सुना—कि अद्वैतवाद से लोग बुराचार्य हो जाते हैं क्योंकि अद्वैतवाद सिखाता है कि हम सब एक हैं, सभी ईश्वर हैं अतएव हमें अब सवाचार मपमाने की कोई आवश्यकता नहीं। इस बात के उत्तर में पहले तो यहाँ कहना है कि यह युक्ति पशुप्रकृति मनुष्य के मुख में सोमा देती है, कसाबात के बिना जिसके दमन करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि तुम ऐसे ही हो तो इस तरह कसाबात द्वारा पाचित करने योग्य मनुष्य कहलाने की अपेक्षा आत्म

हत्या कर लेना कदाचित् तुम्हारे लिए श्रेयस्कर होगा। कशाघात वन्द होते ही तुम लोग अमुर हो जाओगे। यदि ऐसा ही हो तो इसी समय तुम्हारा, अन्त कर देना उचित होगा। तुम्हारे लिए दूसरा उपाय और कोई नहीं। इस तरह तो सदा ही तुम्हें कोड़े और डंडे के भय से चलना होगा और तुम्हारे उद्धार तथा निस्तार का रास्ता अब नहीं रह गया।

दूसरे अद्वैतवाद, केवल अद्वैतवाद से ही नैतिकता की व्याख्या हो सकती है। हर एक धर्म यही प्रचार कर रहा है कि सब नैतिक तत्त्वों का सार दूसरों की हित-साधना ही है। क्यों हम दूसरों का हित करें? नि स्वार्थ होना चाहिए। क्यों हमें नि स्वार्थ होना चाहिए? कोई देवता ऐसा कह गये है? वे देवता मेरे लिए मान्य नहीं हैं। शास्त्रों ने ऐसा कहा है—शास्त्र कहते रहे, क्यों हम उसे मानें? शास्त्र यदि ऐसा कहते हैं तो मेरे लिए उनका क्या महत्त्व है? ससार के अविकाश आदमियों की यही नीति है कि वे अपना ही भला ताकते हैं। हर एक व्यक्ति अपना अपना हित साधन करे, कोई न कोई सबसे पीछे रहेगा। किस कारण मैं नैतिक बनूँ? जब तक गीता में वर्णित इस सत्य को न जानोगे, तब तक तुम इसकी व्याख्या नहीं कर सकते। 'जो महात्मा अपनी आत्मा को सब भूतों में स्थित देखता है और आत्मा में सब भूतों को देखता है, वह इस तरह ईश्वर को सर्वत्र सम भाव से अवस्थित देखता हुआ आत्मा द्वारा आत्मा की हिंसा नहीं करता।'

अद्वैतवाद की शिक्षा से तुम्हें यह ज्ञान होता है कि दूसरों की हिंसा करते हुए तुम अपनी ही हिंसा करने हो, क्योंकि वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हें मालूम हो या न हो, सब हाथों से तुम्हीं कार्य कर रहे हो, सब पैरों से तुम्हीं चल रहे हो, राजा के रूप में तुम्हीं प्रासाद में सुखों का भोग कर रहे हो, फिर तुम्हीं रास्ते के भिखारी के रूप में अपना दुःखमय जीवन बिता रहे हो। अज्ञ में भी तुम हो, विद्वान् में भी तुम हो, दुर्बल में भी तुम हो, सबल में भी तुम हो। इस तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर तुम्हें सबके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। चूँकि दूसरे को कष्ट पहुँचाना अपने ही को कष्ट पहुँचाना है, इसलिए हमें कदापि दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहिए। इसीलिए यदि मैं बिना भोजन के मर भी जाऊँ तो भी मुझे इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि जिस समय मैं भूखा मर रहा हूँ उस समय मैं लाखों मुँह से भोजन भी कर रहा हूँ। अतएव यह 'मैं', 'मेरा'—इन सब विषयों पर

१. सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि ॥ गीता ६।२९॥

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।

न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥ गीता १३।२८॥

हमें क्या ही नहीं देना चाहिए, यह सम्पूर्ण संसार मेरा ही है, मैं ही एक बूझरी चीति से संसार के सम्पूर्ण आनन्द का भोग कर रहा हूँ। और, मेरा या इस संसार का बिनाश भी कौन कर सकता है? इस तरह देखते हो अद्वैतवाद ही नैतिक तत्त्वों की एकमात्र व्याख्या है। अन्याय्य बाव तुम्हें नैतिकता की शिक्षा दे सकते हैं परन्तु हम क्यों नीतिपरचयन हों इसका हेतुनिर्देश नहीं कर सकते। यह सब तो हुई व्याख्या की बात।

अद्वैतवाद की सामग्री में काम क्या है? उससे शक्ति प्राप्त होती है। तुमने जगत् पर सम्बोधन का जो पर्व डाल रखा है उसे हटा दो। मनुष्य को दुर्बल न सोचो उसे दुर्बल न कहो। समझ लो कि एक दुर्बलता शब्द से ही सब पापों और सम्पूर्ण अशुभ कर्मों का निर्देश हो जाता है। सारे दोषपूर्ण कार्यों की मूल प्रेरक दुर्बलता ही है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य सभी स्वार्थों में प्रवृत्त होता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरों को कष्ट पहुँचाता है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य अपना सम्बन्ध स्वल्प प्रकाशित नहीं कर सकता। सब लोग जाने कि वे क्या हैं? दिन-रात वे अपने स्वल्प—सोभ्यन् का जप करें। माता के स्तन-पात्र के साथ सोभ्यन् (मैं नहीं हूँ)—इस ओजमयी वाणी का पान करे। ओजमयी अन्तर्मो निर्विघ्नास्तित्तम्यः आदि का पहले भजन करें। तत्परचात् से उसका चिन्तन करें, और उसी चिन्तन उसी मनन से पेश कार्य होंगे जिन्हें संसार ने कमी देना ही नहीं था। किस तरह यह काम में लाया जाय? कोई कोई कहते हैं—यह अद्वैतवाद कार्य में परिणत नहीं किया जा सकता जबकि भौतिक अराजक पर उसकी शक्ति का प्रकाश नहीं हुआ। इस कथन में अधिक सत्य अवश्य है। वेद की उस वाणी का स्मरण करो

मौमित्येकाकारं ब्रह्म मौमित्येकाकारं परम् ।

मौमित्येकाकारं ज्ञात्वा यो परिच्छति तस्य तत् ॥

—ॐ यही ब्रह्म है। ॐ यह परम सत्ता है। जो इस बीजार का रहस्य जानते हैं, वे जो कुछ चाहते हैं वही उन्हें मिलता है।

अतएव पहले तुम इस बीजार का रहस्य समझो। यह बीजार तुम्हीं ही हमारा ज्ञान प्राप्त करा। इस तत्त्वज्ञानि महापात्रय का रहस्य समझो तभी वेदल तमी तुम को कुछ चाहोगे वह पामोक्ष। यदि भौतिक दृष्टि से बड़े होगा चाहो तो विश्वास करत तुम बड़ हो। मैं एक छोटा सा बुद्धबुद्ध ही समझता हूँ तुम पर्यन्तार ऊँची तरफ ही सारते हो परन्तु यह मानन रखो कि हम दोनों के लिए पृष्ठभूमि अन्तत समुद्र ही है। अन्तत ब्रह्म हमारी सब शक्ति

और वीर्य का भंडार है, और हम दोनों ही क्षुद्र हो या महान् उससे अपनी इच्छा भर शक्ति-संग्रह कर सकते हैं। अतएव अपने पर विश्वास करो। अद्वैतवाद का यह रहस्य है कि पहले अपने पर विश्वास करो, फिर अन्य सब पर। ससार के इतिहास में देखोगे कि केवल वे ही राष्ट्र महान् एव प्रबल हो सके हैं, जो आत्म-विश्वास रखते हैं। हर एक राष्ट्र के इतिहास में तुम देखोगे, जिन व्यक्तियों ने अपने पर विश्वास किया वे ही महान् तथा सबल हो सके। यहाँ, इस भारत में एक अंग्रेज आया था, वह एक साधारण क्लर्क था, रुपये-पैसे के अभाव से और दूसरे कारणों से भी उसने अपने सिर में गोली मारकर दो बार आत्महत्या करने की चेष्टा की, और जब वह उसमें असफल हुआ तब उसे विश्वास हो गया कि बड़े बड़े काम करने के लिए वह पैदा हुआ है—वही लॉर्ड क्लाइव इस साम्राज्य का प्रतिष्ठाता बन गया। यदि वह पादरियों पर विश्वास करके घुटने टेककर 'हे प्रभु, मैं दुर्बल हूँ, दीन हूँ,' ऐसा किया करता तो जानते हो उसे कहाँ जगह मिलती? निस्सन्देह उसे पागलखाने में रहना पड़ता। इस प्रकार की कुशिक्षाओं ने तुम्हें पागल बना डाला है। मैंने सारे ससार में देखा है, दीनता के उस उपदेश से, जो दीर्बल्य का पोषक है, बड़े अशुभ परिणाम हुए हैं—मनुष्य जाति को उसने नष्ट कर डाला है। हमारी सन्तानों को जब ऐसी ही शिक्षा दी जाती है, तब इसमें क्या आश्चर्य यदि वे अन्त में अर्धविक्षिप्त हो जाते हैं!

यह अद्वैतवाद के व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा है। अतएव अपने पर विश्वास रखो, और यदि तुम्हें भौतिक ऐश्वर्य की आकांक्षा हो तो इसको कार्यान्वित करो, धन तुम्हारे पास आयेगा। यदि विद्वान् और बुद्धिमान होने की इच्छा है तो उसी ओर अद्वैतवाद का प्रयोग करो, तुम महामनीषी हो जाओगे। और यदि तुम मुक्ति लाभ करना चाहते हो तो तुम्हें आध्यात्मिक भूमि में इस अद्वैतवाद का प्रयोग करना होगा, तभी तुम परमानन्द स्वरूप निर्वाण लाभ करोगे। इतनी ही मूल हुई थी कि आज तक उसका प्रयोग आध्यात्मिकता की ओर ही हुआ था—बस। अब व्यावहारिक जीवन में उसके प्रयोग का समय आया है। अब उसे रहस्य मात्र या गोपनीय रखने से काम नहीं चलेगा, अब वह हिमालय की गुफाओं और जंगलों में साधु-सन्यासियों ही के पास बँधा नहीं रहेगा—अब लोगों के दैनिक जीवन के कार्यों में उसका प्रयोग अवश्य होना चाहिए। राजप्रासाद में, साधु-सन्यासियों की गुहा में, गरीबों की कुटियों में सर्वत्र, यहाँ तक कि रास्ते के भिखारी द्वारा भी वह कार्यान्वित होगा, कारण क्या गीता में नहीं बतलाया गया?—स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। (गीता, २।४०)—'इस धर्म का अल्प मात्र उपयोग भी बड़े बड़े भय से हमारा उद्धार कर सकता है।'

अतएव चाहे तुम स्त्री हो चाहे गृह अथवा चाहे और ही कुछ हो तुम्हारे लिए भय का अल्प मात्र भी कारण नहीं कारण भी कृप्य कहते हैं यह बर्म इतना महान् है कि इसका अल्प मात्र अनुष्ठान करने से भी महाकल्याण की प्राप्ति होती है।

अतएव हे आर्यसन्तान आत्मसी होकर बैठे मत रहो—जागो उठो और सब तक इस चरम कल्प तक न पहुँच जाओ तब तक मत रहो। अब अद्वैतवाद को व्यावहारिक क्षेत्र में प्रयोग करने का समय आया है। उसे अब स्वर्ग से स्वर्ग में ले जाना होगा। इस समय विधाता का विधान यही है। हमारे प्राचीन काल के पूर्वज की बानी से हमें निर्देश मिल रहा है कि इस अद्वैतवाद को स्वर्ग से पृथ्वी पर ले आओ। तुम्हारे उस प्राचीन शास्त्र का उपदेश सम्पूर्ण सृष्टार में इस प्रकार व्याप्त हो जाय कि समाज के प्रत्येक मनुष्य की वह साधारण सम्पत्ति हो जाय हमारी गस गस में खरिद के प्रत्येक कण में उसका प्रवाह हो जाय।

तुम्हें सुनकर आश्चर्य होमा कि हम लोगों से कहीं बढ़कर अमेरिकनो ने वेदान्त को अपने व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ कर लिया है। मैं स्पूमार्ले क समुद्र तट पर खड़ा खड़ा बैसा करता था—मिन्न मिन्न देशों से लोग बसने के लिए अमेरिका आ रहे हैं। उन्हें देखकर मुझे यह मालूम होता था मानो उनका रूप सुसुप्त पमा है वे पैरों तकें कुचले पड़े हैं उनकी आवाज मुरझा गयी है किसीसे निवाह मिमाने की उनमें हिम्मत नहीं है कपड़ों की एक पोटली मात्र उनका सर्वस्व है और वे कपड़े भी फटे हुए हैं पुछिस का आबनी देखते ही भय से दूसरी ओर के झूटपाव पर चलने का इच्छा करते हैं। और फिर ऊँ ही मूर्खों में उन्हें देखो वे छात्र कपड़े पहने हुए सिर उठाकर सीबे चल रहे हैं और उटकर लोगों की नजर से नजर मिभाते हैं। ऐसा विचित्र परिवर्तन किसन किया ? सोचो वह आबनी आरमेनिया या किसी दूसरी जगह से आ रहा है, वहाँ कोई उसे कुछ समझते नहीं वे सभी पीस डालने की चेष्टा करते थे। वहाँ सभी उससे कहते थे—“तू गुलाम होकर पैसा हुआ है गुलाम ही रहेगा।” वहाँ उसके बरा भी हिम्मेत डलने की चेष्टा करने पर वह कुचल डाला जाता था। चारों ओर भी सभी बस्तुएँ मानो उससे कहती थीं—“गुलाम तू गुलाम है—ओ कुछ है तू वही बना रह निघटा के जिस बँबरे में पैसा हुआ था उसीमें जीवन भर पड़ा रह। हुआ भी मानो गुँडकर उससे कहती थी—“तेरे लिए कोई आशा नहीं—गुलाम होकर फिरकाल तू नैराश्व के आत्मकार में पड़ा रह। वहाँ बलमाना ने पीसकर उसकी जान मिचका ली थी। और क्यों ही वह अहाज से उतरकर स्पूमार्ले के रास्तों पर चलने लगा उसने बैसा कि अच्छे कपड़े पहने हुए किसी भले आबनी ने उससे हाथ मिचाया। एक तो फटे कपड़े पहने हुए था और दूसरा अच्छे कपड़े

कपडों से मुसज्ज था। इससे कोई अन्तर नहीं पडा। और कुछ आगे बढ़कर भोजनालय में जाकर उसने देखा—भद्रमडली मेज़ के चारों ओर बैठी भोजन कर रही थी, उसी मेज़ के एक ओर उससे भी बैठने के लिए कहा गया। वह चारों ओर घूमने लगा—देखा, यह एक नया जीवन है। उसने देखा, ऐसी जगह भी है, जहाँ और पाँच आदमियों में वह भी एक आदमी गिना जा रहा है। कभी मौका मिला तो वार्शिंगटन जाकर संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति से हाथ मिला आया, वहाँ उसने देखा, दूर के गाँवों से मँले कपड़े पहने हुए किसान आकर राष्ट्रपति से हाथ मिला रहे हैं। तब उससे माया का पर्दा दूर हो गया। वह ब्रह्म ही है—मायावश इस तरह दुर्बलता तथा दासता के सम्मोह में पडा हुआ था। अब उसने फिर से जागकर देखा—मनुष्यों के ससार में वह भी एक मनुष्य है। हमारे इस देश में, इस वेदान्त की जन्मभूमि में हमारा जन साधारण शत शत वर्षों से सम्मोहित बना कर इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अन्वकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इसी अँधेरे में पड़े रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अँधेरे से और गहरे अँधेरे में डूबते चले जा रहे हैं। अन्त में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं। क्योंकि, ऐसा देश कहाँ है जहाँ मनुष्य को जानवरों के साथ एक ही जगह पर सोना पडता हो? इसके लिए किसी दूसरे पर दोषारोपण न करो—अज्ञ मनुष्य जो भूल किया करते हैं, वही भूल तुम मत करो। कार्य-कारण दोनों यही विद्यमान है। दोष वास्तव में हमारा ही है। हिम्मत बाँधकर खड़े हो जाओ—अपने ही सिर सब दोष ले लो। दूसरे पर दोष न मढो। तुम जो कष्ट भोग रहे हो उसके एकमात्र कारण तुम्हीं हो।

अतः लाहौर के युवकों, निश्चयपूर्वक समझो इस आनुवंशिक तथा राष्ट्रीय महापाप के लिए हमी लोग उत्तरदायी हैं। बिना इसे दूर किये हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम चाहे हज़ारों समितियाँ गठ लो, चाहे बीस हज़ार राजनीतिक सम्मेलन करो, चाहे पचास हज़ार सस्थाएँ स्थापित करो, इसका कोई फल न होगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह सहानुभूति, वह प्रेम न आयेगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह हृदय न आयेगा, जो सबके लिए सोचता है। जब तक फिर से भारत को बुद्ध का हृदय प्राप्त नहीं होता और भगवान् कृष्ण की वाणी व्यावहारिक जीवन में परिणत नहीं की जाती, तब तक हमारे लिए कोई आशा नहीं। तुम लोग यूरोपियनों और उनकी सभा-समितियों का अनुकरण कर रहे हो, परन्तु उनके हृदय के भावों का तुमने क्या अनुकरण किया है?

मैं तुमसे एक खासों देखा किस्सा कहूँगा। यहाँ के यूरोपियनों का एक बल कुछ बर्मी लोगों को लेकर सम्बन्ध गया बाब में पता चला कि वे यूरेशियन थे। वहाँ उन्होंने उन लोगों की एक प्रदर्शनी खोलकर खूब बनोपार्जन किया। अन्त में सब बल आपस में बैठकर उन्होंने उन लोगों को यूरोप के किसी दूसरे देश में ले जाकर छोड़ दिया। ये छठीय बेचारे यूरोप की किसी भाषा का एक एब्ज भी नहीं जानते थे। लेकिन वास्तिव्या के अनेक वैज्ञानिक प्रतिनिधि ने इन्हें सम्बन्ध भेज दिया। वे खोप सम्बन्ध में भी किसीको नहीं जानते थे अतएव वहाँ जाकर भी निरन्तर अवस्था में पड़ गये। परन्तु एक अंग्रेज महिष्ठा को इनकी सूचना मिली। वे इन बर्मी विदेशियों को अपने घर के यहीं और अपने कपड़े अपने बिछौने तथा जो कुछ आवश्यक हुआ सब लेकर उनकी सेवा करने लगीं और समाचार पत्रों में उन्होंने इनका हाल प्रकाशित कर दिया। देखो उसका फल कैसा हुआ! उसके दूसरे ही दिन मानो सारा राष्ट्र सन्नत हो गया। चारों ओर से उनकी सहायता के लिए रुपये जाने लगे। अन्त में वे बर्मा आपस भेज दिये गये। उनकी राज नीतिक और दूसरी जितनी समा-समितियाँ हैं वे ऐसी ही सद्गानुभूति पर प्रसिद्धि हैं, कम से कम अपने लिए उनकी बड़ नीब प्रेम पर आधारित है। वे सम्पूर्ण संसार को चाहे प्यार न कर सके बर्मा चाहे उनके अनु भले ही हों परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि अपनी जाति के लिए उनका प्रेम अगाध है और अपने द्वार पर आये हुए विदेशियों के साथ भी वे सत्य न्याय और दया का व्यवहार करते हैं। पश्चिमी देशों के सभी स्वानों में उन्होंने किछ तरह मेरा जातिव्य-सत्कार और जातिरक्षा की भी इसका यदि मैं तुमसे उल्लेख न करूँ तो वह मेरी अज्ञानता होगी। यहाँ वह हृदय नहीं है जिसकी मुनिबाह पर इस जाति की बीभार उठनी जायगी? हम पाँच भावनी मिलकर एक छोटी सी सम्मिश्रित धुँजी की कम्पनी बोलते हैं। कुछ दिनों के अन्तर ही हम लोग आपस में एक दूसरे को पट्टी पहाना शुरू कर देते हैं अन्त में सब कारोबार मट भट्ट हो जाता है। तुम लोग अनेकों के अनुकरण की बात कहते हो और उनकी तरह किसान राष्ट्र का संभल करना चाहते हो परन्तु तुम्हारी वह नीब नहीं है? हमारी नीब कामू की है, इनीलिए उस पर जो धर जठया जाता है वह बीड़े ही बिना में टूटकर ध्वस्त हो जाता है।

अतः हे साहीर के मुँहको फिर अँधेरा की बही प्रबल पनाका फहराओ क्योंकि और किसी आचार पर तुम्हारे भीतर वैसा अपूर्व प्रेम नहीं पैदा ही सकता। जब तक तुम लोग उसी एक भयवान् की सर्वत्र एक ही भाव में अवस्थित नहीं बनते तब तक तुम्हारे भीतर वह प्रेम पैदा नहीं हो सकता—जगी प्रेम की पहचान करवाओ।

उठो, जागो, जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मत रुको। उठो, एक बार और उठो, क्योंकि त्याग के बिना कुछ हो नहीं सकता। दूसरे की यदि सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने अहभाव को छोड़ना होगा। ईसाइयों की भाषा में कहता हूँ—तुम ईश्वर और शैतान की सेवा एक साथ ही नहीं कर सकते। चाहिए वैराग्य। तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने बड़े बड़े कार्य करने के लिए ससार का त्याग किया था। वर्तमान समय में ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जिन्होंने अपनी ही मुक्ति के लिए ससार का त्याग किया है। तुम सब कुछ दूर फेंको—यहाँ तक कि अपनी 'मुक्ति का विचार भी दूर रखो—जाओ, दूसरों की सहायता करो। तुम सदा बड़ी बड़ी साहसिक बातें करते हो, परन्तु अब तुम्हारे सामने यह व्यावहारिक वेदान्त रखा गया है। तुम अपने इस तुच्छ जीवन की बलि देने के लिए तैयार हो जाओ। यदि यह जाति बची रहे तो तुम्हारे और हमारे जैसे हज़ारों आदमियों के भूखो मरने से भी क्या हानि होगी? यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे गिर पर है, सदा ही अजस्र जलघारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हे नावदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भाण्डार रहते हुए भी जिन्हे हमने भूखो मार डाला, जिन्हे हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया और जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे ज़वानी तो यह कहा कि सब वरावर हैं, सब वही एक ब्रह्म हैं, परन्तु इस उक्ति को काम में लाने का तिल मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। 'मन में रखने ही से काम हो जायगा, परन्तु व्यावहारिक ससार में अद्वैतवाद को घसीटना?—हरे! हरे!।' अपने चरित्र का यह दाग मिटा दो। उठो, जागो। यदि यह क्षुद्र जीवन चला भी जाय तो क्या हानि है? सभी मरेंगे—साधु या असाधु, धनी या दरिद्र—सभी मरेंगे। चिर काल तक किसी का शरीर नहीं रहेगा। अतएव उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत में घोर कपट समा गया है। चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढ़ता और चरित्र का बल जिससे मनुष्य आजीवन दृढव्रत बन सके। 'नीतिनिपुण मनुष्य चाहे निन्दा करे चाहे स्तुति, लक्ष्मी आये या चली जाय, मृत्यु आज ही हो चाहे शताब्दी के पश्चात्, जो धीर हैं वे न्यायमार्ग से एक पग भी नहीं हिलते।' उठो, जागो, समय बीता जा रहा है और व्यर्थ के वित्तावादा में हमारी सम्पूर्ण शक्ति का क्षय होता जा रहा है। उठो, जागो, छोटे छोटे विषयो

१ निन्वन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥

वीर मतमतान्तरों को लेकर स्वयं का विवाद मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—भाषों भाषमी बूब रहे हैं उनका उद्धार करो। हम बात पर बचड़ी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहुँच आये थे तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। आज उनकी संख्या कितनी बट गयी है। इसका कोई प्रतिभार हुए बिना यह दिन और बटती ही जायगी अन्तः से पूर्वतः विमुक्त हो जायेंगे। हिन्दू जाति लुप्त हो जाय तो हाने दो लेकिन साथ ही—उनके सैकड़ों बोप रहने पर भी संसार के सम्मुख उनके सैकड़ों विद्वत् विष उपस्थित करने पर भी—जब तक वे जिन जिन महान् भाषों के प्रतिनिधि स्वल्प हैं, वे भी लुप्त हो जायेंगे। और उनके लोप के साथ साथ सारे अध्यात्म ज्ञान का विरोधोपपन्न अपूर्व अद्वैत तत्त्व भी लुप्त हो जायगा। अतएव उठो जागो संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बढ़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तत्त्व को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी इस भौतिक संसार में अद्वैतवाद को बड़ा कार्य में परिचलित करने की। पहले रोटी और तब बर्न चाहिए। गरीब बेचारे मूखों मर रहे हैं और हम उन्हें आवश्यकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से घेठ नहीं मरता। हमारे दो बोप बड़े ही प्रबल हैं पहला बोप हमारी पुर्वछटा है दूसरा है बुना करना हृदयहीनता। भाषों मत-मतान्तरों की बात कह सकते हो करोड़ों सम्प्रदाय संगठित कर सकते हो परन्तु जब तक उनके बुद्ध का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही पटीर के बंध हैं जब तक तुम और वे—बनी और बरिह साधु और असाधु सभी उषी एक अनन्त पूर्व के बिसे तुम बह्य कहते हो बंध नहीं हो जाते तब तक कुछ न होया।

सम्बन्धो मैंने तुम्हारे सामने इतितवाद के कुछ प्रबल भाषों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं सब जगह। आधुनिक विज्ञान के सोहे के मुद्दमरों की चोट खाकर इतितवादात्मक धर्मों की मजबूत बीमार चूर चूर हो रही है। ऐसा नहीं कि इतितवादी सम्प्रदाय केवल नहीं धास्त्रों का बर्न लीच-लीच कर कुछका कुछ कर रहे हैं। लीचातानी की हद हो गयी है—कहाँ तक लीचातानी हो—कलक रबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल नहीं ये इतितवादी आत्मपक्षा के लिए बँबेरे के किसी कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रबल और भी स्थाय है। और वहाँ भी माण्ड के इस अद्वैतवाद का कुछ बंध जाना चाहिए। वह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका प्रसार बढ़ाना चाहिए। परिवर्नी

सम्यक्ता की भी इससे रक्षा होगी। कारण, पश्चिमी देशों में पहले का भाव उठ गया है और एक नया ढंग—काचन की पूजा के रूप में शैतान की पूजा प्रवर्तित हुई है। इस आधुनिक धर्म अर्थात् पारस्परिक प्रतियोगिता और काचन की पूजा की अपेक्षा तो पहले के अपरिमाजित धर्म की राह अच्छी थी। कोई भी राष्ट्र हो, चाहे वह कितना ही प्रबल क्यों न हो, ऐसी बुनियाद पर कभी नहीं टिक सकता। और नसार का इतिहास हममें कह रहा है, जिन किन्हीं लोगों ने ऐसी बुनियाद पर अपने समाज की प्रतिष्ठा की, वे विनष्ट हो गये। भारत में काचन-पूजा की यह तरंग न आ सके, उसकी ओर पहले ही से नज़र रखनी होगी। अतएव सबसे पहले अद्वैतवाद प्रचारित करो, जिसमें धर्म आधुनिक विज्ञान के प्रबल आघातों से भी अक्षत बना रहे। केवल इतना ही नहीं, तुम्हें दूसरों की भी सहायता करनी होगी—तुम्हारे विचार यूरोप और अमेरिका के सहायक होंगे, परन्तु सबसे पहले तुम्हें याद दिलाता हूँ कि व्यावहारिक कार्य की आवश्यकता है, और उसका प्रथमांश यह है कि घोर से घोरतम दारिद्र्य और अज्ञान-तिमिर में डूबे हुए साधारण लाखों भारतीयों की उन्नति-साधना के लिए उनके समीप जाओ। और उनको अपना हाथ का सहारा दो और भगवान् कृष्ण की यह वाणी याद रखो

इहैव तैर्जितं सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्वोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

(गीता ५।१९)

—‘जिनका मन इस साम्य भाव में अवस्थित है, उन्होंने इस जीवन में ही संसार पर विजय प्राप्त कर ली है। चूँकि ब्रह्म निर्दोष और सबके लिए सम है, इसलिए वे ब्रह्म में अवस्थित हैं।’

और मतमतान्तरों को लेकर स्वयं का विवाद मत करो। तुम्हारे सामने सबसे महान् कार्य पड़ा हुआ है—काबों आरमी बंद रहे हैं उनका उद्धार करो। इस बात पर अच्छी तरह ध्यान दो कि मुसलमान जब भारत में पहले पहुँच जाते थे तब भारत में कितने अधिक हिन्दू रहते थे। जब उनकी संख्या कितनी बढ़ गयी है। इसका कोई प्रतिकार हुए बिना यह दिन दिन और बढ़ती ही जायगी अन्ततः वे पूर्णतः विसुप्त हो जायेंगे। हिन्दू प्राण कष्ट हो जाय तो होने दो लेकिन साध ही—उनके संकटों को धोप रहने पर भी संसार के सम्मुख उनके संकटों विद्वत विष उपस्थित करने पर भी—अब तक वे बिन बिन महान् भावों के प्रतिनिधि स्वरूप हैं, वे भी कष्ट हो जायेंगे। और उनके लोप के साथ साथ सारे आध्यात्म ज्ञान का सिरोभूषण अपूर्व बढ़ैत तब भी सुप्त हो जायगा। अतएव उठो जाओ संसार की आध्यात्मिकता की रक्षा के लिए हाथ बड़ाओ। और पहले अपने देश के कल्याण के लिए इस तरह को काम में लाओ। हमें आध्यात्मिकता की उतनी आवश्यकता नहीं बितनी इस मूर्ख संसार में अज्ञानवाद को बौद्धा कार्य में परिणत करने की। पहले रोटी और तब धर्म चाहिए। परीब बेचारे भूखा मर रहे हैं और हम उन्हें आध्यात्मिकता से अधिक धर्मोपदेश दे रहे हैं। मतमतान्तरों से पैट नहीं भरता। हमारे ही धोप बड़े ही प्रबल हैं पहले धोप हमारी दुर्बलता है, इसका ही नृणा करना हृदयहीनता। काबों मत-मतान्तरों की बात कह सकते ही करोड़ों सम्प्रदाय संमिलित कर सकते हो परन्तु जब तक उनके पुत्र का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते वैदिक उपदेशों के अनुधार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही घरीर के अंग हैं जब तक तुम और वे—बनी और बरिख साधु और असाधु सभी उसी एक अमल पूर्व के जिसे तुम ब्रह्म कहते हो अंग नहीं हो जाते तब तक कुछ न होगा।

सम्प्रदायों में तुम्हारे सामने अज्ञानवाद के कुछ प्रधान भावों को प्रकाशित करने की चेष्टा की और अब इसे काम में लाने का समय आ गया है। केवल इसी देश में नहीं अब जगत्। आधुनिक विज्ञान के लोहे के मुद्गारों की चोट ताकर अज्ञानवादत्मक धर्मों की मजबूत दीवार बुर बुर हो रही है। ऐसा नहीं कि अज्ञानवादी सम्प्रदाय केवल नहीं धारणों का अर्थ खीच-खीच कर कुछ ना कुछ कर रहे हैं। सीबावानी की हद हो गयी है—कहाँ तक सीबावानी हो—इन्फि रबर नहीं है। ऐसा नहीं कि केवल नहीं वे अज्ञानवादी आरम्भता के लिए अंधेरे क बिजली कोने में छिपने की चेष्टा कर रहे हैं नहीं यूरोप और अमेरिका में तो यह प्रपल और भी ज्यादा है। और वहाँ भी भारत के इन अज्ञानवाद का कुछ अंग जाना चाहिए। यह वहाँ पहुँच भी गया है। वहाँ दिन दिन उसका प्रचार बढ़ता जादिए। बरिचपी

इसके पश्चात् स्वामी जी ने यूरोप पर भारतीय विचारों के प्रभाव की विस्तृत समीक्षा करके दिखाया कि विभिन्न युगों में स्पेन, जर्मनी एवं अन्यान्य यूरोपीय देशों के ऊपर इन विचारों की कौसी छाप पड़ी थी। भारतीय राजकुमार दारा-शिकोह ने उपनिषद् का अनुवाद फारसी में किया। शॉपेनहॉवर नामक जर्मन दार्शनिक उसका लैटिन अनुवाद देखकर उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। उसके दर्शन में उपनिषदों का यथेष्ट प्रभाव देखा जाता है। इसके बाद ही काण्ट के दर्शन-ग्रन्थों में भी उपनिषदों के भावों के चिह्न देखे जाते हैं। यूरोप में साधारणतया तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की अभिरुचि के कारण ही विद्वान् लोग सस्कृत के अध्ययन की ओर आकृष्ट होते हैं। परन्तु अध्यापक डॉयसन जैसे व्यक्ति भी हैं जो केवल दार्शनिक ज्ञान के लिए ही दर्शनों का अध्ययन करते हैं। स्वामी जी ने आशा प्रकट की कि भविष्य में यूरोप में सस्कृत के पठन-पाठन में और अधिक दिलचस्पी ली जायगी। इसके बाद स्वामी जी ने दिखलाया कि पूर्वकाल में 'हिन्दू' शब्द सार्यक था और वह सिन्धु नदी के इस पार बसनेवालों के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु इस समय वह सर्वथा निरर्थक है, क्योंकि इस समय सिन्धु नदी के इस पार नाना धर्माबिलम्बी बहुत सी जातियाँ बसती हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने वेदों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा, "वेद किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य नहीं हैं। पहले कतिपय विचारों का शनैः शनैः विकास हुआ, अतत उन्हें ग्रथ का रूप दिया गया, और वह ग्रथ प्रमाण बन गया।" स्वामी जी ने कहा, "अनेक धर्म इसी भाँति ग्रन्थबद्ध हुए हैं। ग्रन्थों का प्रभाव भी असीम प्रतीत होता है। हिन्दुओं के ग्रन्थ वेद हैं जिन पर अभी हजारों वर्षों तक हिन्दुओं को निर्भर रहना होगा। लेकिन उन्हें वेदों के सम्बन्ध में अपने विचार बदलने होंगे और उन्हें नये मिर्रे से दृढ़ चट्टान की नींव पर स्थापित करना होगा। वेदों का वाङ्मय विशाल है, किन्तु वेदों का नब्बे प्रतिशत अंश इस समय उपलब्ध नहीं है। विशेष विशेष परिवार में एक एक वेदांश थे। उन परिवारों के लोप ही जाने से वे वेदांश भी लुप्त हो गये, किन्तु जो इस समय भी मिलते हैं, वे भी इस जैसे कमरे में समा नहीं सकते। ये वेद अत्यन्त प्राचीन तथा अति सरल भाषा में लिखे गये हैं। वेदों का व्याकरण भी इतना अस्पष्ट है कि बहुतों के विचार में वेदों के कई अंशों का कोई अर्थ ही नहीं निकलता।"

इसके बाद स्वामी जी ने वेद के दो भागों—कर्मकांड और ज्ञानकांड की विस्तृत समीक्षा की। कर्मकांड कहने से संहिता और ब्राह्मण का बोध होता है। ब्राह्मणों में यज्ञ आदि का वर्णन है। संहिता अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती प्रमृति छंदों में रचित गेय पद हैं। साधारणतः उनमें इन्द्र, वरुण अथवा अन्य किसी देवता की

वेदान्त

(सोसडी में दिया हुआ भाषण)

२ दिसम्बर, १८९७ को स्वामी जी अपने शिष्यों के साथ महालय के बंगले में बहरे हुए थे वहाँ उन्होंने बेदान्त के सम्बन्ध में करीब डेढ़ घंटे तक व्याख्यान दिया। स्वामीय बहुत से सज्जन एवं कई यूरोपीय महिलाएँ उपस्थित थीं। खेउड़ी के राजा साहब समापति ने उन्होंने ही उपस्थित खेउड़ाओं से स्वामी का परिचय कराया। स्वामी जी ने बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया परन्तु वह का विषय है कि उस समय कोई पीछछिपि का लेखक उपस्थित नहीं था। अतः समस्त व्याख्यान उपलब्ध नहीं है। स्वामी जी के दो शिष्यों ने जो नोट लिखे वे उसीका अनुबाध नीचे दिया जाता है।

स्वामी जी का भाषण

यूनानी और आर्य प्राचीन काल की वे दो जातियाँ भिन्न भिन्न जातारणों और परिस्थितियों में पड़ीं। प्रकृति में जो कुछ सुन्दर था जो कुछ मधुर था जो कुछ कोमलीय था उसीके मध्य स्थापित होकर स्तूतिप्रद बलनायु में विचारण कर यूनानी जाति ने एव जारों ओर सब प्रकार महिमामय प्राकृतिक दृष्टियों के मध्य अवस्थित होकर तथा अधिक सापीरिक परिचय के अनुकूल बलनायु न पाकर हिन्दू जाति ने दो प्रकार की विभिन्न तथा विधिष्ट सम्प्रदायों के आदर्शों का विकास किया। यूनानी लोग बाह्य प्रकृति की अनन्त एवं आर्य लोग आन्तरिक प्रकृति की अनन्त सम्बन्धी जीवन में दत्तचित्त हुए। यूनानी लोग बह्यज की जीवन में व्यस्त हुए और आर्य लोग अन्तःकर्म या सूक्ष्म जगत् के उत्थानुत्थान में मग्न हुए। संसार की सम्प्रदाय में दोनों को ही अपना अपना विधिष्ट अथ विशेष सम्पन्न करना पड़ा था। आवश्यक नहीं है कि इनमें से एक को दूसरे से कुछ उधार लेना है। लेकिन परस्पर तुलनात्मक अध्ययन से दोनों लाभान्वित होंगे। आर्यों की प्रकृति विश्लेषण-प्रिय थी। पणित और व्याकरण में आर्यों की अनुसृत उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं और मन के विश्लेषण में वे जलम सीमा को पहुँच गये थे। हमें पाश्चात्तरस सप्रेमिष ज्येष्ठी एव मिन के लभ्य व्यष्टीवाधियों के विचारों में भारतीय विचार की शक्य सीख पड़ती है।

है कि ईश्वर के साक्षात्कार के पश्चात् ही मनुष्य का यथार्थ जीवन आरम्भ होता है।

अब यह प्रश्न उठा, ये देवता कौन थे ? इन्द्र समय समय पर मनुष्यों की सहायता करते हैं। कभी कभी वे अत्यधिक सोम का पान भी करते हैं, स्थान स्थान पर उनके लिए सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी प्रभृति विशेषणों का भी प्रयोग हुआ है। वरुण के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की नाना धारणाएँ हैं। देवों के चरित्र सम्बन्धी ये सब वर्णनात्मक मंत्र कही कही बहुत ही अपूर्व हैं और भाषा भी अत्यन्त उदात्त है। इसके पश्चात् स्वामी जी ने प्रलय वर्णनात्मक विख्यात नासदीय सूक्त—जिसमें अन्वकार का अन्वकार से आवृत होना वर्णित है—सुनाया और कहा, जिन लोगों ने इन सब महान् भावों का इस प्रकार की कविता में वर्णन किया है, यदि वे ही असम्य और असंस्कृत थे तो फिर हमें अपने को क्या कहना चाहिए ? इन ऋषियों की अथवा उनके देवता इन्द्र, वरुण आदि की किसी प्रकार की समालोचना करने या उनके बारे में कोई निर्णय देने में मैं अक्षम हूँ। मानो क्रमागत दृश्य पर दृश्य बदलता चला आ रहा है और सबके पीछे एक सद्भिप्रा बहुधा बदन्ति की यवनिका है। इन देवताओं का वर्णन बड़ा ही रहस्यमय, अपूर्व और अति सुन्दर है। वह बिल्कुल अगम्य प्रतीत होता है—पर्दा इतना सूक्ष्म है कि मानो स्पर्श मात्र से ही फट जायगा और मृगमरीचिका की भाँति लुप्त हो जायगा।

आगे चलकर स्वामी जी ने कहा, “मुझे एक बात बहुत सम्भव और स्पष्ट मालूम होती है और वह यह है कि यूनानियों की भाँति आर्य लोग भी ससार की समस्या हल करने के लिए पहले बाह्य प्रकृति की ओर उन्मुख हुए—सुन्दर रमणीय बाह्य प्रकृति भी उन्हें प्रलोभित करके धीरे धीरे बाह्य जगत् में ले गयी। किन्तु भारत की यही विशेषता है कि जिस वस्तु में कुछ उदात्तता नहीं होती उसका यहाँ कुछ मूल्य ही नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसकी यथार्थ तात्त्विक विवेचना साधारणतः यूनानियों के मन में उठी ही नहीं। किन्तु भारत में आरम्भ से ही यह प्रश्न बार बार पूछा जा रहा है—‘मैं कौन हूँ ? मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या अवस्था होगी ?’ यूनानियों के मत में मनुष्य मर कर स्वर्ग जाता है। स्वर्ग जाने का क्या अर्थ है ? सब कुछ के बाहर जाना, भीतर कुछ नहीं है। सब कुछ केवल बाहर है। उनका लक्ष्य केवल बाहर की ओर था, केवल इतना ही नहीं, मानो वे स्वयं भी अपने आप से बाहर थे। और उन्होंने सोचा, जिस समय वे एक ऐसे स्थान में जा पहुँचेंगे जो बहुत कुछ इसी ससार की भाँति है, किन्तु वहाँ इस ससार के दुःख-क्लेश का सर्वथा अभाव है, तभी उन्हें ईप्सित सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जायँगी और वे तृप्त हो जायँगे। उनकी धर्म सम्बन्धी भावना इसके और ऊपर नहीं उठ सकी।

स्तुति है। इस पर प्रश्न यह उठा ये देवता कौन थे? इनके सम्बन्ध में अनेक मत निर्धारित हुए, किन्तु अग्याम्य मतों द्वारा ये मत संक्षिप्त कर दिये गये। ऐसा बहुत दिनों तक चलता रहा।

इसके बाद स्वामी जी ने उपासना प्रणाली सम्बन्धी विभिन्न चारनाओं की चर्चा की। बेबिजोन के प्राचीन निवासियों की आत्मा के सम्बन्ध में यह चारना थी कि वह केवल एक प्रतिरूप देह (double) मात्र है उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता और वह देह मूल देह से अपना सम्बन्ध कदापि विच्छिन्न नहीं कर सकती। इस 'प्रतिरूप' देह को भी मूल शरीर की भाँति तुषा तुषा मनोवृत्ति आदि के विकार होते हैं ऐसा उनका विश्वास था साथ ही यह भी विश्वास था कि मूल मूल शरीर पर किसी प्रकार का आघात करने से 'प्रतिरूप' देह भी बाह्य होनी। मूल शरीर के लुप्त होने पर 'प्रतिरूप' देह भी लुप्त हो जायगी। इसलिए मूल शरीर की रक्षा करने की प्रथा आरम्भ हुई। इसीसे ममी समाधि मन्दिर, छत्र आदि की उत्पत्ति हुई। भिक्षु और बेबिजोन के निवासी एवं यहूदियों की विचार-धारा इससे अधिक अग्रसर न हो सकी वे आत्म-वृत्त तक नहीं पहुँच सके।

प्रो मैक्समूलर का कहना है कि ऋग्वेद में पितर-पूजा का सामान्य विज्ञान भी नहीं दिखायी पड़ता। ममी और फाड़े हुए हम लोगों की ओर देख रहे हैं। ऐसा भीमत्स और भयानक दुश्म भी वेदों में नहीं मिलता। देवता मनुष्यों के प्रति मित्रभाव रखते हैं। उपास्य और उपासक का सम्बन्ध सहज और सीम्य है। उसमें किसी प्रकार की स्तानता का भाव नहीं है उनमें सहज आनन्द और तरल हास्य का अभाव नहीं है। स्वामी जी ने कहा वेदों की चर्चा करते समय मानो मैं देवताओं की हास्य-व्यभि स्पष्ट सुनता हूँ। वैदिक ऋषिगण अपने सम्पूर्ण भाव भाषा में भके ही न प्रकट कर सके हों किन्तु वे संस्कृति और सहृदयता के आसार थे। हम लोग उनकी तुलना में बंगछी हैं।

इसके बाद स्वामी जी ने अपने कथन की पुष्टि में अनेक वैदिक मर्मों का उच्चारण किया। जिस स्थान पर त्रिगुण निवास करते हैं उनको उही स्थान पर लै जाओ—यहाँ कोई बुल्ल शोक नहीं है। इत्यादि। इसी भाँति इस देश में इस चारना का आधिर्भाव हुआ कि जितनी पत्नी शव बना दिया जायगा उतना ही अच्छा है। उनको जमरा ज्ञात हो गया कि स्कूल देह के अतिरिक्त एक सूक्ष्म देह है वह सूक्ष्म देह स्कूल देह के त्याग के पश्चात् एक ऐसे स्थान में पहुँच जाती है जिस स्थान में केवल आनन्द है बुल्ल का तो तामोनिदान भी नहीं है। श्रमैतिक धर्म में मय और कष्ट के भाव प्रचुर हैं। उनकी यह चारना थी कि यदि मनुष्य ने ईश्वर का दर्शन कर लिया तो वह मर जायगा। किन्तु ऋग्वेद का भाव यह

थे, उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए खींचतान कर उनका विकृत अर्थ किया। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने भी शुद्ध अद्वैतभाव प्रतिपादक वेदाशो की द्वैत व्याख्या करके वैसी ही भूल की है। यह सर्वथा सत्य है कि उपनिषद् एक तत्त्व की शिक्षा देते हैं, किन्तु इस तत्त्व में सोपानारोहण की भाँति शिक्षा दी गयी है। इसके बाद स्वामी जी ने कहा कि खेद की बात है कि वर्तमान भारत में धर्म का मूल तत्त्व नहीं रह गया है, सिर्फ थोड़े वाह्य अनुष्ठान मात्र शेष बचे हैं। भारतवासी इस समय न तो हिन्दू ही हैं और न वेदान्ती ही। वे केवल छुआछूत मत के पोषक हैं। रसोई-घर ही उनके मन्दिर हैं और रसोई की हँडिया और वर्तन ही उनके देवता हैं। इस स्थिति का अन्त होना ही चाहिए, और जितना शीघ्र इसका अन्त हो, उतना ही हमारे धर्म के लिए अच्छा है। उपनिषद् अपनी महिमा में उद्भासित हो और साथ ही विभिन्न सम्प्रदायों में विवाद की इति भी हो जाय।

शरीर स्वस्थ न होने से इतना ही बोल कर स्वामी जी थक गये। अतः उन्होंने आघ घटे विश्राम किया। उनके व्याख्यान का शेषांश सुनने के लिए श्रोतागण इस बीच धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते रहे। स्वामी जी बाहर आये और उन्होंने फिर आघ घटे भाषण किया। उन्होंने समझाया कि बहुत्व में एकत्व की खोज को ही ज्ञान कहते हैं और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तब माना जाता है, जब सारे अनेकत्व में एक एकत्व का अनुसन्धान पूरा हो जाता है। यह नियम भौतिक विज्ञान तथा आध्यात्मिक विज्ञान दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

किन्तु हिन्दुओं का मन इतने से तृप्त नहीं हुआ। उनके विचार में स्वर्ग भी स्वर्ग बन्धु के अन्तर्गत है। हिन्दुओं का मत है कि जो कुछ संभोयोत्पन्न है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होंने बाह्य प्रकृति से पूछा 'आत्मा क्या है, इसे क्या तुम चाकती हो?' उत्तर मिला 'नहीं। प्रकृत हुआ 'क्या कोई ईश्वर है?' प्रकृति ने उत्तर दिया "मैं नहीं जानती। तब वे प्रकृति से विमुख हो गये और वे समझने लगे कि बाह्य प्रकृति किन्तु ही महान् और मध्य क्यों न हो वह वेद-काण्ड की सीमा से बाहर है। तब एक बन्धु वाली सुनामी बैठी है गये उदात्त भावों की धारणा उनके मन में उदित होती है। 'मह' वाली भी 'निति निति'—'मह नहीं यह नहीं'—उस समय विभिन्न बंधन एक ही गये सूर्य बन्धु ठारा इतना ही क्यों समझ बहाना एक हो गया—उस समय इस मूलन आधार पर उनके धर्म का आध्यात्मिक आधार प्रतिष्ठित हुआ।

न तत्र सूर्यो भास्ति न बन्धुत्कारकं मेमा विद्युतो भास्ति कुतोऽप्यमग्निः।

तमेव भास्तिमनुभास्ति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभास्ति॥

(कठोपनिषद् ३।१)

—'यहाँ सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता न बन्धु न तारा न विद्युत्, फिर इस भौतिक अग्नि का तो कहना ही क्या! उसीके प्रकाशमान होने से ही सब कुछ प्रकाशित होता है, उसीके प्रकाश से ही सब चीजें प्रकाशित हैं। उस हीमात्रक अपरिपक्व व्यक्तित्वविशेष सबके पाप-पुण्यों का विचार करनेवाले बुद्ध ईश्वर की धारणा सेप नहीं रही अब बाहर का अन्वेषण समाप्त हुआ अपने भीतर अन्वेषण आरम्भ हुआ। इस भाँति उपनिषद् भारत के बाह्यिक हो गये। इन उपनिषदों का यह विद्याक साहित्य है। और माध्य में जो विभिन्न मतवाद प्रचलित हैं, सभी उपनिषदों की मिति पर प्रतिष्ठित हुए।

इसके बाद स्वामी जी ने ईत विधिष्टाईत अईत मतों का वर्णन करके उनके सिद्धान्तों का निम्नलिखित कथन से समाख्य किया। उन्होंने कहा "इनमें प्रत्येक मात्री एक एक सोपान है—एक सोपान पर चढ़ने के बाद परबर्ती सोपान पर चढ़ना होता है, सबके अन्त में अईतवाद की स्वामाधिक परिपत्ति है और अन्तिम सोपान है तत्त्ववर्ति। उन्होंने बताया कि प्राचीन आध्यकार शंकराचार्य रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य आदि भी उपनिषद् को ही एकमात्र प्रमाण मानते थे तथापि सभी इस धर्म में पड़े कि उपनिषद् एक ही मन की धिया देते हैं। तबने प्रकृतियाँ की हैं। शंकराचार्य इस धर्म में पड़े थे कि सब उपनिषदों में सबसे अईतवाद की धिया है इनका कुछ है ही नहीं। इनलिए त्रिध स्थान पर स्पष्ट ईत भावात्मक शंकीक धितने

ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने मानवता तथा सामाजिक उन्नति की दिशा मे कार्य करने की, सम्यता और प्रगति की महती क्षमता का विकास किया है। इतना ही नहीं, कुछ और आगे बढ़कर मैं यह भी कह सकता हूँ कि यदि उस ऐंग्लो-सैक्सन जाति की शक्ति का प्रभाव इतना विस्तारित नहीं हुआ होता तो हम शायद इस तरह इकट्ठे भी नहीं होते और आज यहाँ पर 'भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' विषय पर चर्चा भी न कर पाते। फिर पाश्चात्य से प्राच्य को, अपने स्वदेश को, लौटकर देखता हूँ कि वही ऐंग्लो-सैक्सन शक्ति अपने समस्त दोषों के साथ भी अपने गुणों की निश्चित विशिष्टताओं की रक्षा करते हुए अपना कार्य यहाँ कर रही है और मेरा विश्वास है कि अन्ततः महान् परिणाम सिद्ध होगा। ब्रिटिश जाति का विस्तार और उन्नति का भाव हमें बलपूर्वक उन्नति की ओर अग्रसर कर रहा है। साथ ही हमें यह भी याद रखना चाहिए कि पाश्चात्य सम्यता का मूल स्रोत यूनानी सम्यता है और यूनानी सम्यता का प्रधान भाव है—अभिव्यक्ति। हम भारतवासी मननशील तो हैं, परन्तु कभी कभी दुर्भाग्यवश हम इतने मननशील हो जाते हैं कि हममें भाव व्यक्त करने की शक्ति बिल्कुल नहीं रह जाती। मतलब यह कि धीरे धीरे ससार के समक्ष भारतवासियों की भाव प्रकाशित करने की शक्ति अव्यक्त ही रह गयी और उसका फल क्या हुआ? फल यही हुआ कि हमारे पास जो कुछ था, सबको हम गुप्त रखने की चेष्टा करने लगे। भाव गुप्त रखने का यह सिलसिला आरम्भ तो हुआ व्यक्ति विशेष की ओर से, पर क्रमशः बढ़ता हुआ यह अन्त में जातीय स्वभाव बन गया। और आज भाव को अभिव्यक्त करने की शक्ति का हममें इतना अभाव हो गया है कि हमारी जाति एक मरी हुई जाति समझी जाने लगी है। ऐसी अवस्था में अभिव्यक्त किये बिना हमारी जाति के जीवित रहने की सम्भावना कहाँ है? पाश्चात्य सम्यता का मेरुदंड है विस्तार और अभिव्यक्ति। भारतवर्ष में ऐंग्लो-सैक्सन जाति के कामों में से जिस कार्य की ओर मैंने तुम लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहा है, वही हमारी जाति को जगाकर एक बार फिर हमें अपने को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार करेगा। और आज भी यही शक्तिशाली ऐंग्लो-सैक्सन जाति अपने भाव-विनिमय के साधनों की सहायता से हमें ससार के आगे अपने गुप्त रत्नों को प्रकट करने के लिए उत्साहित कर रही है। ऐंग्लो-सैक्सन जाति ने भारतवर्ष की भावी उन्नति का रास्ता खोल दिया है और हमारे पूर्वपुरुषों के भाव जिस तरह धीरे धीरे बहुतेरे स्थानों में फैलते जा रहे हैं, यह वास्तव में विलक्षण है। लेकिन जब हमारे पूर्वपुरुषों ने अपना सत्य और मुक्ति का सदेश प्रचारित किया, तब उन्हें कितना सुभीता था! भगवान् बुद्ध ने किस तरह मार्गजनीन भ्रातृभाव के महान् तत्त्व का प्रचार किया था। उस समय भी

इंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव

११वीं मार्च सन् १८९८ ई. को स्वामी जी की शिष्या सिस्टर विवेकिता (कुमारी एम. ई. मोबस) ने कम्ब्रिज के स्टार थियेटर में 'इंग्लैंड में भारतीय आध्यात्मिक विचारों का प्रभाव' नामक विषय पर एक व्याख्यान दिया। समापति का वाचन स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने ही ग्रहण किया था। स्वामी जी ने उठकर पहले मोताजों को उभर महिला का परिचय देते हुए नीचे किन्हीं बातें कहीं

स्वामी जी का भाषण

बेबियो और सन्धनी

मैं जिस समय एशिया के पूर्वी हिस्से में भ्रमण कर रहा था उस समय एक विषय की ओर मेरी दृष्टि विशेष रूप से आकृष्ट हुई थी। मैंने देखा कि उन स्वानों में भारतीय आध्यात्मिक विचार व्याप्त हैं। चीन और जापान के किन्तों ही मन्त्रियों की बीमारियों के ऊपर कई सुपरिचित संस्कृत मंत्रों को किन्ना हुआ देखकर मैं किन्तना विस्मित हुआ था यह तुम लोग आसानी से समझ सकते हो। और यह सुनकर शायद तुम्हें और भी आश्चर्य होगा और कुछ लोगों को सम्भवतः प्रसन्नता भी होगी कि वे सब मंत्र पुरानी बौद्धा लिपि में लिखे हुए हैं। हमारे बंगाल के पूर्वपुरुषों का जर्म प्रचार में किन्तना उत्साह और स्फूर्ति थी मानो वही बताने के लिए आज भी वे मंत्र उन पर स्मारक के रूप में मौजूद हैं।

भारतीय आध्यात्मिक विचारों की पहूँच एशिया महाद्वीप के इन देशों तक ही हुई है ऐसा नहीं बरन् वे बहुत दूर तक फैले हुए हैं और उनके विह्वल मुस्पष्ट हैं। यहाँ तक कि पारश्चात्य देशों में भी किन्तों ही स्वानों के व्याचार-व्यवहार के जर्म में पैठकर मैंने उसके प्रभाव-विह्वल देखे। प्राचीन काल में भारत के आध्यात्मिक विचार भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों ही ओर फैले। यह बात अब ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रमाणित हो चुकी है। सारा संसार भारत के अध्यात्म-सत्य के लिए नहीं तक नहीं है तथा यहाँ की आध्यात्मिक शक्ति ने मानव जाति को जीवन सचयन के कार्य में प्राचीन अथवा वर्तमान समय में किन्तनी बड़ी सहायता पहुँचायी है, यह बात अब सब लोग जान गये हैं। ये सब तो पुरानी बातें हैं। मैं संसार में एक और सर्वाधिक उम्मेदनीय बात बोलता हूँ। वह यही है कि उस अद्भुतकर्म

मैं अब केवल दो चार बातें और कहना चाहता हूँ। हमारी धारणा है कि हम भारतवासी भी कुछ काम कर सकते हैं। भारतवासियों मे हम वगाली लोग भले ही इस बात की हँसी उडा सकें, पर मैं वैसा नहीं करता। तुम लोगो के अन्दर एक अदम्य उत्साह, एक अदम्य चेष्टा जाग्रत कर देना ही मेरा जीवन-व्रत है। चाहे तुम अद्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी हो अथवा तुम द्वैतवादी ही क्यों न हो, इससे कुछ अतर नहीं पडता। परन्तु एक बात की ओर जिसे दुर्भाग्यवश हम लोग हमेशा भूल जाया करते हैं, इस समय मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। वह यह कि 'ऐ मानव, तू अपने आप पर विश्वास कर।' केवल इसी एक उपाय से हम ईश्वर के विश्वास-परायण बन सकते हैं। तुम चाहे अद्वैतवादी हो या द्वैतवादी, तुम्हारा विश्वास चाहे योगशास्त्र पर हो या शकराचार्य पर, चाहे तुम व्यास के अनुयायी हो या विश्वामित्र के, इससे कोई फर्क नहीं पडता। बात यह है कि पूर्वोक्त आत्मा सम्बन्धी विश्वास के विषय मे भारतवासियों के विचार ससार की अन्य सभी जातियों के विचारो से निराले हैं। एक पल के लिए इसे ध्यान मे रखो कि जब अन्यान्य सभी वर्गों और देशो मे आत्मा की शक्ति को लोग बिल्कुल स्वीकार नहीं करते—वे आत्मा को प्रायः शक्तिहीन, दुर्बल और जड वस्तु की तरह समझते हैं, हम लोग भारतवर्ष मे आत्मा को अनन्त शक्ति-सम्पन्न समझते हैं और हमारी धारणा है कि आत्मा शाश्वत पूर्ण ही रहेगी। हमे सदा उपनिषदो मे दिये गये उपदेशो को स्मरण रखना चाहिए।

अपने जीवन के महान् व्रत को याद रखो। हम भारतवासी और विशेषतः हम वगाली बहुत परिमाण मे विदेशी भावो से आक्रान्त हो गये हैं, जो हमारे जातीय धर्म की सम्पूर्ण जीवनी शक्ति को चूसे डालते हैं। हम आज इतने पिछडे हुए क्यों हैं? क्यों हममे से निन्यानबे फी सदी आदमी सम्पूर्णतः पाश्चात्य भावो और उपादानो से विनिर्मित हो रहे हैं? अगर हम लोग राष्ट्रीय गौरव के उच्च शिखर पर आरोहण करना चाहते हैं तो हमे इस विदेशी भाव को दूर फेंक देना होगा, साथ ही यदि हम ऊपर चढना चाहते हैं तो हमे यह भी याद रखना होगा कि हमे पाश्चात्य देशो से बहुत कुछ सीखना वाकी है। पाश्चात्य देशो से हमे उनका शिल्प और विज्ञान सीखना होगा, उनके यहाँ के भौतिक विज्ञानो को सीखना होगा और उबर पाश्चात्य देशवासियों को हमारे पास आकर धर्म और अध्यात्म-विद्या की शिक्षा ग्रहण करनी होगी। हम हिन्दुओं को विश्वास करना होगा कि हम ससार के गुरु हैं। हम यहाँ पर राजनीतिक अधिकार तथा इसी प्रकार की अन्यान्य बातो के लिए चिल्ला रहे हैं। अच्छी बात है, परन्तु अधिकार और सुभीते केवल मित्रता के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं और मित्रता की आशा वही की जाती है, जहाँ दोनो पक्ष समान होते हैं। यदि एक पक्ष-

महाँ हमारे प्रिय भारतवर्ष में वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के यत्न सुभीत थे और हम बहुत ही सुगमता के साथ पृथ्वी की एक छोर से दूसरे छोर तक अपने भावों और विचारों को प्रचारित कर सकते थे परन्तु अब हम उससे और भी आगे बढ़कर ऐंम्बो-वीक्सन जाति तक अपने भावों का प्रचार करने में कृतकार्य हो रहे हैं।

इसी तरह क्रिया प्रतिक्रिया इस समय चल रही है और हम देख रहे हैं कि हमारे देश का संवेदन बर्हीबाके सुनते हैं और वेचन सुनते ही नहीं है, बल्कि उन पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ रहा है। इसी बीच इन्सूड ने अपने कई महान् मन्त्रिमन्त्र व्यक्तियों को हमारे काम में सहायता पहुँचाने के लिए भेज दिया है। तुम लोगों ने सायब मेरी मित्र मिश्र मूलर की बात सुनी है और सम्मन है तुम लोगों में से बहुतों का उनके साथ परिचय भी हो—ये इस समय इसी मंच पर उपस्थित हैं। उच्च कुष्ठ में उत्पन्न इस सुलक्षित महिला ने भारत के प्रति अपना प्रेम होने के कारण अपना समस्त जीवन भारत के कल्याण के लिए न्याय्य कर दिया है। उन्होंने भारत को अपना घर तथा भारतवासियों को ही अपना परिवार बना लिया है। तुम सभी उन सुप्रसिद्ध उदाररूप्या अग्नेय महिला के नाम से भी परिचित हो—उन्होंने भी अपना सारा जीवन भारत के कल्याण तथा पुनरुत्थान के लिए अर्पण कर दिया है। मेरा अभिप्राय श्रीमती बेसेन्ट से है। प्यारे माइयो आज इस मंच पर दो अमेरिकन महिलाएँ उपस्थित हैं—ये भी अपने हृदय में बैसा ही उद्देश्य धारण किये हुए हैं और मैं आप लोगों से निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ये भी हमारे इस गरीब देश के कल्याण के लिए अपने जीवन को उत्सर्ग करने को तैयार हैं। इस अवसर पर मैं तुम लोगों को एक स्वदेशवासी का नाम याद दिलाता जाहूँ। इन्होंने इन्सूड और अमेरिका जाति देशों को देखा है, उनके ऊपर मेरा बड़ा विश्वास और श्रद्धा है, इन्हें मैं विशेष सम्मान और प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ साम्प्रतिक राज्य में ये बहुत आगे बढ़े हुए हैं, ये बड़ी बुद्धता के साथ और बुध्दाय हमारे देश के कल्याण के लिए कार्य कर रहे हैं आज यदि उन्हें किसी और जगह कोई विशेष काम न होता तो वे अबस ही इस समा में उपस्थित होते—यहाँ पर मेरा मतलब श्री मोहिनीमोहन ऋट्टोपाध्याय से है। इन लोगों के अतिरिक्त अब इन्सूड ने कुमारी मारमेट मोबस को उपहारस्वरूप भेजा है—इससे हम बहुत कुछ आशा रखते हैं। बस और अधिक बातें न कर मैं तुम लोगों से कुमारी मारमेट मोबस का परिचय कराता हूँ जो तुम्हारे समस्त भायन करेगी।

जब सिस्टर निवेदिता ने अपना दिक्कतस्व व्याख्यान समाप्त कर दिया तब स्वामी जी फिर उठे हुए और उन्होंने कहा

जल्दी या देरी से माया के बन्धन से मुक्त होंगे। यही हमारा सबसे पहला कर्तव्य है। अनन्त आशा से ही अनन्त आकाशा और चैष्टा की उत्पत्ति होती है। यदि यह विश्वास हमारे अन्दर बैठ जाय तो वह हमारे जातीय जीवन में व्यास और अर्जुन का समय—वह समय, जब कि हमारे यहाँ से समग्र मानव जाति के लिए कल्याणकर उदात्त मतवाद प्रचारित हुआ था—ले आयेगा। आज हम लोग आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि और आध्यात्मिक विचारों में बहुत ही पिछड़ गये हैं—भारत में यथेष्ट परिमाण में आध्यात्मिकता विद्यमान थी, इतने अधिक परिमाण में थी कि उसकी आध्यात्मिक महानता ने ही भारतीयों को सारे ससार की जातियों का सिरमौर बना दिया था। और यदि परम्परा तथा लोगों की आशा पर विश्वास किया जाय तो हमारा वह दिन फिर लौट आयेगा, और वह तुम लोगों के ऊपर ही निर्भर करता है। ऐ बंगाली नवयुवको, तुम लोग धनी-मानियों और बड़े आदमियों का मुँह ताकना छोड़ दो। याद रखो, ससार में जितने भी बड़े बड़े और महान् कार्य हुए हैं, उन्हें गरीबों ने ही किया है। इसलिए ऐ गरीब बंगालियों, उठो और काम में लग जाओ, तुम लोग सब काम कर सकते हो और तुम्हें सब काम करने पड़ेंगे। यद्यपि तुम गरीब हो, फिर भी बहुत लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे। दृढचित्त बनो और इससे भी बढ़कर पूर्ण पवित्र और धर्म के मूल तत्त्व के प्रति निष्ठावान बनो। विश्वास रखो कि तुम्हारा भविष्य अत्यन्त गौरवपूर्ण है। ऐ बंगाली नवयुवको, तुम लोगों के द्वारा ही भारत का उद्धार होनेवाला है। तुम इस पर विश्वास करो या न करो, पर तुम इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखो और ऐसा मत समझो कि यह काम आज या कल ही पूरा हो जायगा। मुझे अपनी देह और अपनी आत्मा के अस्तित्व पर जैसा दृढ विश्वास है, इस पर भी मेरा वैसा ही अटल विश्वास है। इसलिए ऐ बंगाली नवयुवको, तुम्हारे प्रति मेरा हृदय इतना आकृष्ट है। जिनके पास धन-दौलत नहीं है, जो गरीब हैं, केवल उन्हीं लोगों का भरोसा है, और चूँकि तुम गरीब हो, इसलिए तुम्हारे द्वारा यह कार्य होगा। चूँकि तुम्हारे पास कुछ नहीं है, इसीलिए तुम सच्चे हो सकते हो, और सच्चे होने के कारण ही तुम सब कुछ त्याग करने के लिए तैयार हो सकते हो। बस, केवल यही बात मैं तुमसे अभी अभी कह रहा था। और पुनः तुम्हारे समक्ष मैं इसे दुहराता हूँ—यही तुम लोगों का जीवन-व्रत है और यही मेरा भी जीवन-व्रत है। तुम चाहे किसी भी दार्शनिक मत का अवलम्बन क्यों न करो, मैं यहाँ पर केवल यही प्रमाणित करना चाहता हूँ कि सारे भारत में मानव जाति की पूर्णता में अनन्त विश्वासरूप प्रेम-सूत्र ओतप्रोत भाव से विद्यमान है। मैं चाहता हूँ कि इस विश्वास का सारे भारत में प्रचार हो।

वाला जीवन घर भील मोगटा रहे ता क्या यही पर मित्रता स्थापित हो सकती है? ये सब बातें कह देना बहुत आसान है पर मेरा तात्पर्य यह है कि पारस्परिक सहयोग के बिना हम लोग कभी शक्तिशाली नहीं हो सकते। इसीलिए मैं तुम लोगों को मित्रमर्गों की तरफ नहीं धर्माचार्य के रूप में ईश्वर और अमेरिका आदि देशों में जाने के लिए कह रहा हूँ। हमें अपने धर्मार्थ के अनुसार विनिमय के नियम का प्रयोग करना होगा। यदि हमें इस लोक में सुखी रहने के उपाय सीखने हैं तो हम भी उसके बचसे में क्यों न उन्हें अनन्त काम तक सुखी रहने के उपाय बतायें ?

सर्वोपरि, समग्र मानव जाति के कल्याण के लिए कार्य करते रहो। तुम एक संकीर्ण घेरे के अन्दर बँधे रहकर अपने को 'बुद्ध' हित्वा समझने का जो गर्व करते हो उसे छोड़ दो। मृत्यु सबके लिए राह बैल रही है और इसे कभी मठ भूको जो सर्वाधिक अद्भुत ऐतिहासिक सत्य है कि संसार की सब जातियों को भारतीय साहित्य में निबद्ध समागत सत्यसमूह को सीखने के लिए प्रेरित करके भारत के चरनों के समीप बैठना पड़ेगा। भारत का विनाश नहीं है चीन का भी नहीं है और जापान का भी नहीं। अतएव हमें अपने धर्मरूपी मेखर की बात को सर्वथा स्मरण रखना होगा और ऐसा करने के लिए, हमें रास्ता बताने के लिए एक पत्रप्रसारक की आवश्यकता है—वह रास्ता जिसके विषय में मैं अभी तुम लोगों से कह रहा था। यदि तुम लोगों में कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह विश्वास न करता हो यदि हमारे यहाँ कोई ऐसा हिन्दू वास्तविक हो जो यह विश्वास करने के लिए उद्यत न हो कि हमारा धर्म पूर्णतः आध्यात्मिक है तो मैं उसे हिन्दू मानने को तैयार नहीं हूँ। मुझे याद है, एक बार काशीर राज्य के किसी गाँव में मैंने एक बूढ़ी औरत से बातचीत करते समय पूछा था 'तुम किस धर्म को मानती हो?' इस पर बूढ़ा ने उपाक से जवाब दिया था "ईश्वर की भयभाव उसकी कृपा से मैं मुसलमान हूँ। इसके बाद किसी हिन्दू से मैं यही प्रश्न पूछा तो उसने साधारण ढंग से कह दिया "मैं हिन्दू हूँ। कठोपनिषद् का यह महावाक्य स्मरण आता है—'अज्ञानं वा अद्भुतं विश्वासः। त्रिभुक्तानाम् जीवन में अज्ञान का एक मुख्य दुष्टान्त विनाशी होता है। इस अज्ञान का प्रचार करना ही मेरा जीवनोद्देश्य है। मैं तुम लोगों से फिर एक बार कहना चाहता हूँ कि यह अज्ञान ही मानव जाति के जीवन का और संसार के सब धर्मों का महत्त्वपूर्ण अंग है। सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करने का अभ्यास करो। यह जान लो कि कोई आध्यात्मिक छोटे से बाल-बुद्ध के बराबर ही सकता है और दूसरा व्यक्ति पर्वताकार तरंग के समान बड़ा। पर उस छोटे बाल-बुद्ध और पर्वताकार तरंग दोनों के ही पीछे अज्ञान समुद्र है। अतएव सबका जीवन आध्यात्मिक है सबके लिए मुक्ति का रास्ता खुला हुआ है और सभी

अत्यन्त अकिंचन अश हो, इसीलिए केवल इस तुच्छ स्वयं के अभ्युदयार्थं यत्न करने की अपेक्षा यह श्रेष्ठ है कि तुम अपने करोड़ी भाइयों की सेवा करते रहो।

सर्वत्र पाणिपाद तत् सर्वतोऽक्षिशरोमुखम्।

सर्वत्र श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३।१३)

—‘सर्वत्र उसके हाथ और पैर हैं, सर्वत्र उसके नेत्र, शिर और मुख हैं तथा लोक में सर्वत्र उसके कान हैं। वह ईश्वर सर्वव्यापी होकर सर्वत्र विद्यमान है।’

इस प्रकार धीरे धीरे मृत्यु को प्राप्त हो जाओ। ऐसी ही मृत्यु में स्वर्ग है, उसीमें सारी भलाई है। और इसके विपरीत समस्त अमंगल तथा नरक है।

अब हमें यह विचार करना चाहिए कि किन उपायों अथवा साधनों द्वारा हम इन आदर्शों को कार्यरूप में परिणत कर सकते हैं। सबसे पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा आदर्श ऐसा न हो जो असम्भव हो। अत्यन्त उच्च आदर्श रखने में एक बुराई यह है कि उससे राष्ट्र कमजोर हो जाता है तथा धीरे धीरे गिरने लगता है। यही हाल बौद्ध तथा जैन सुधारों के बाद हुआ। परन्तु साथ ही हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि अत्यधिक व्यावहारिकता भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि तुममें थोड़ी भी कल्पना-शक्ति नहीं है, यदि तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के लिए तुम्हारे सामने कोई भी आदर्श नहीं है, तो तुम निराले ही हो। अतएव हमें अपने आदर्शों को कभी नीचा नहीं करना चाहिए और साथ ही यह भी न होना चाहिए कि हम व्यावहारिकता को बिल्कुल भूल बैठें। इन दो ‘अतियों’ से हमें बचना चाहिए। हमारे देश में तो प्राचीन पद्धति यह है कि हम एक गुफा में बैठ जायें, वही ध्यान करें और बस वही मर जायें, परन्तु मुक्ति-लाभ के लिए यह गलत सिद्धान्त है कि हम दूसरों से आगे ही बढ़ते चले जायें। आगे या पीछे साधक को यह समझ लेना चाहिए कि यदि वह अपने अन्य भाइयों की मुक्ति के लिए भी यत्न नहीं करता है तो उसे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। अतएव तुम्हें इस बात का यत्न करना चाहिए कि तुम्हारे जीवन में उच्च आदर्श तथा उत्कृष्ट व्यावहारिकता का सुन्दर सामंजस्य हो। तुम्हें इस बात के लिए तैयार होना चाहिए कि एक क्षण तो तुम पूर्ण रूप से ध्यान में मग्न हो सको, पर दूसरे ही क्षण (मठ के चरागाह की भूमि की ओर इशारा करके स्वामी जी ने कहा) इन खेतों को जोतने के लिए उद्यत हो जाओ। अभी तुम इस बात के योग्य बनी कि शास्त्रों की कठिन गुत्थियों को स्पष्ट रूप से समझा सको, पर दूसरे ही क्षण उमी उत्साह से इन खेतों की फसल को ले जाकर बाजार में भी बेच सको। छोटे से छोटे सेवा-टहल के कार्य

सन्यास उसका आदर्श तथा साधन

१९ जून सन् १८९९ को जब स्वामी जी दूसरी बार पारश्वत्य बेघों को जाने लगे उस अवसर पर विशाई के उपरुक्ष्य में बेतुङ्ग मठ के भुजा सन्यासियों ने उन्हें एक मानपत्र दिया। उसके उत्तर में स्वामी जी ने जो कहा था उसका सारांश निम्नलिखित है

स्वामी जी का भाषण

यह समय कम्पा भाषण देने का नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं कुछ उन बातों की चर्चा कर्त्तव्यता बिना तुम्हें आश्चर्य न करना चाहिए। पहले हमें अपने आदर्श को सही भाँति समझ लेना चाहिए और फिर उन साधनों को भी जानना चाहिए, जिसके द्वारा हम उसको अर्पित कर सकते हैं। तुम लोगों में से जो संन्यासी हैं उन्हें सर्वत्र दूसरों के प्रति भलाई करने का यत्न करना चाहिए, क्योंकि संन्यास का यही अर्थ है। इस समय 'स्वाम्य' पर भी एक कम्पा भाषण देने का अवसर नहीं है, परन्तु संक्षेप में मैं इसकी परिभाषा इस प्रकार करूँगा कि 'स्वाम्य' का अर्थ है 'मृत्यु के प्रति प्रेम। सांसारिक जीवन जीवन से प्रेम करते हैं, परन्तु संन्यासी के लिए प्रेम करने की मृत्यु है। तो प्रकृत यह उठता है कि क्या फिर हम आत्महत्या कर लें ? नहीं नहीं इससे बहुत दूर। आत्महत्या करनेवालों को मृत्यु तो कभी प्यारी नहीं होती क्योंकि यह बहुधा वेला गया है कि कोई मनुष्य आत्महत्या करने जाता है और यदि वह अपने यत्न में असफल रहता है तो दुःखार्थ फिर वह उसका कभी नाम भी नहीं लेता। तो फिर प्रकृत यह है कि मृत्यु के लिए प्रेम कैसा होता है ?

हम यह विचिन्तन जानते हैं कि हम एक न एक दिन अवश्य मरेंगे और जब ऐसा है तो फिर किसी उत्कर्ष के लिए ही हम क्यों न मरें ! हमें चाहिए कि हम अपने सारे कार्यों को जैसे जाना-पीना पीना उठाना बैठना आदि सभी—आत्म त्याग की ओर लगा दें। भोजन द्वारा तुम अपने शरीर को पुष्ट करते हो परन्तु उससे क्या काम हुआ यदि तुमने उस शरीर को दूसरों की भलाई के लिए अर्पण न किया ? इसी प्रकार तुम पुस्तकें पढ़कर अपने मस्तिष्क को पुष्ट करते हो परन्तु उससे भी कोई काम नहीं यदि समस्त संसार के हित के लिए तुमने उस मस्तिष्क को सेवा कर आत्म-त्याग न किया। चूंकि साधन संसार एक है और तुम इसके एक

मैंने क्या सीखा ?

(ढाका में मार्च, सन् १९०१ में दिया गया व्याख्यान)

ढाका में स्वामी जी ने दो भाषण अंग्रेजी में दिये। प्रथम भाषण का विषय था, 'मैंने क्या सीखा ?' और द्वितीय का विषय था, 'वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए।' बंगला भाषा में एक शिष्य ने प्रथम भाषण की जो रिपोर्ट ली, उसमें व्याख्यान का सारांश आ गया है और उसीका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

स्वामी जी का भाषण

सर्वप्रथम मैं इस बात पर हर्ष प्रकट करता हूँ कि मुझे पूर्वी बंगाल में आने और देश के इस भाग की सविशेष जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। यद्यपि मैं पश्चिम के बहुत से सम्य देशों में घूम चुका हूँ, पर अपने देश के इस भाग के दर्शन का सौभाग्य मुझे नहीं मिला था। अपनी ही जन्मभूमि बंगाल के इस अचल की विशाल नदियों, विस्तृत उपजाऊ मैदानों और रमणीक ग्रामों का दर्शन पाने पर मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं नहीं जानता था कि इस देश के जल और स्थल सभी में इतना सौन्दर्य तथा आकर्षण भरा पड़ा है। किन्तु नाना देशों के भ्रमण से मुझे यह लाभ हुआ है कि मैं विशेष रूप से अपने देश के सौन्दर्य का मूल्यांकन कर सकता हूँ।

इसी भाँति मैं पहले धर्म-जिज्ञासा से नाना सम्प्रदायों में—अनेक ऐसे सम्प्रदायों में जिन्होंने दूसरे राष्ट्रों के भावों को अपना लिया है—भ्रमण करता था, दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता था। तब मैं जानता न था कि मेरे देश का धर्म, मेरी जाति का धर्म इतना सुन्दर और महान् है। कई वर्ष हुए मुझे पता लगा कि हिन्दू धर्म ससार का सर्वाधिक पूर्ण सन्तोषजनक धर्म है। अतः मुझे यह देखकर हार्दिक क्लेश होता है कि यद्यपि हमारे देशवासी अप्रतिम धर्मनिष्ठ होने का दावा करते हैं, पर हमारे इस महान् देश में यूरोपीय ढंग के विचार फैलने के कारण उनमें धर्म के प्रति व्यापक उदासीनता आ गयी है। हाँ, यह बात जरूर है और उससे मैं भली भाँति अवगत हूँ कि उन्हें जिन भौतिक परिस्थितियों में जीवन-यापन करना पड़ता है, वे प्रतिकूल हैं।

के लिए भी तुम्हें उद्यत रहना चाहिए और वह भी केवल यही नहीं बल्कि सर्वत्र।

अब दूसरी बात जो ध्यान में रखने योग्य है वह यह है कि इस मठ का उद्देश्य है 'मनुष्य' का निर्माण करना। तुम्हें केवल यही नहीं सीखना चाहिए, जो हमें ऋषियों ने सिखाया है। वे ऋषि जले मये और उतकी सम्प्रतियाँ भी ऊर्ध्वकि साध जसी यहीं। अब तुम्हें स्वयं ऋषि बनना होगा। तुम भी जैसे ही मनुष्य हो जैसे कि बड़े से बड़े व्यक्ति जो कभी पैदा हुए, यहाँ तक कि तुम अबतारों के सङ्घ हो। केवल प्रार्थों के पढ़ने से ही क्या होगा? केवल ध्यान-धारणा से भी क्या होगा तथा केवल मंत्र-तंत्र भी क्या कर सकते हैं? तुम्हें तो अपने ही पैरों पर खड़े होना चाहिए और इस मये संघ से कार्य करना चाहिए—वह संघ जिससे मनुष्य 'मनुष्य' बन पाता है। संन्या 'मर' यही है जो इतना धक्तिशाली हो जितनी समित स्वयं है, परन्तु फिर भी जिसका हृदय एक मारी के सदृश कोमल हो। तुम्हारे चारों ओर जो करोड़ों व्यक्ति हैं उनके लिए तुम्हारे हृदय में प्रेम जाग होना चाहिए, परन्तु साध ही तुम कोड़े के समान बड़ और कठोर बने रहो पर ध्यान रहे कि साध ही तुममें आत्मा-मात्मन की ममता भी हो। मैं जानता हूँ कि ये पुत्र एक दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, परन्तु हाँ ऐसे ही परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले पुत्र तुममें होने चाहिए। यदि तुम्हारे वरिष्ठ तुम्हें इस बात की आज्ञा दें कि तुम नदी में कूब पड़ो और एक मगर को पकड़ लो तो तुम्हारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि पहले तुम आत्मा-मात्मन करो और फिर कारण पूछो। मले ही तुम्हें बी हुई आज्ञा ठीक न हो परन्तु फिर भी तुम पहले उसका पालन करो और फिर उसका प्रतिवार करो। हमारे सम्प्रदायों में विशेषकर बंगीय सम्प्रदायों में एक विशेष बोध यह है कि यदि किसीके मत में कुछ अन्तर होता है तो बिना कुछ सोचे-विचारे वह तट से एक नया सम्प्रदाय शुरू कर देता है। चौड़ा सा भी स्काने का उत्तम और न यही होता। अतएव अपने संघ के प्रति तुममें अटूट मत्ता तथा विश्वास होना चाहिए। यहाँ अबज्ञा को तनिक भी स्थान नहीं मिल सकता और यदि कहीं वह विश्वासी वे तो निर्ययतापूर्वक उसे कुचलकर नष्ट कर लो। हमारे इस संघ में एक भी अबज्ञाकारी सदस्य नहीं रह सकता और यदि कोई हो तो उसे निकाल बाहर करो। हमारे इस सिबिर में दयावादी नहीं बल सकती यहाँ एक भी बीजेवादी नहीं रह सकता। इतने स्वतंत्र रहो जितनी वामु, पर ही साध ही ऐसे ज्ञानात्मक तथा नम्र वीसा कि यह पीना या कुता।

और मिश्रया है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो !' अस्तु। उनके मतानुसार यदि घर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभ त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम् ।

मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्व महापुरुषसश्रयः ॥

(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससर्ग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एव साधन हैं और जीवन में श्रेणी-भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह निःसर्ग कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभंग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अंगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मविस्तम । (विवेकचूडामणि ३३)

—'जिसे वेदों का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पठित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो

वर्तमान काल में हम लोगों के बीच ऐसे कुछ सुधारक हैं जो हिन्दू जाति के पुनरुत्थान के लिए हमारे धर्म में सुधार या यों कहिए कि उल्ट-पल्ट करना चाहते हैं। मिस्त्रन्वेह उन लोगों में कुछ विचारशील व्यक्ति हैं लेकिन साथ ही ऐसे बहुत से लोग भी हैं जो अपने उद्देश्य को बिना जाने दूसरों का अन्यायपूर्ण करते हैं और अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं। इस वर्ग के सुधारक हमारे धर्म में विवादास्पद विचारों का प्रवेश करने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। यह सुधारक धर्म मूर्ति-पूजा का विरोधी हैं। इस वर्ग के सुधारक कहते हैं कि हिन्दू धर्म सच्चा धर्म नहीं है क्योंकि इसमें मूर्ति-पूजा का विधान है। मूर्ति-पूजा क्या है? यह अच्छी है या बुरी—इसका अनुसन्धान कोई नहीं करता केवल दूसरों के इशारे पर वे हिन्दू धर्म को बदनाम करने का साहस करते हैं। एक दूसरा धर्म और भी है जो हिन्दुओं के प्रत्येक रीति-रिवाजों में वैज्ञानिकता और निकासन का लक्षण प्रयत्न कर रहा है। वे सवा विद्युत् शक्ति शुम्भकीय शक्ति वायु-कम्पन तथा उसी तरह की अन्य बातें किया करते हैं। कौन कह सकता है कि वे छोय एक दिन ईश्वर की परिभाषा करने में उसे विद्युत्-कम्पन का समूह न कह सकें। जो कुछ भी हो मैं इनका भी भ्रम करे। भगवन्वा ही भिन्न भिन्न प्रकृतियों और प्रभुत्वों के द्वारा अपना कार्य साधन करती हैं।

उक्त विचारवालों के विपरीत एक और वर्ग है, यह प्राचीन धर्म कहता है कि हम लोग तुम्हारी बात की बात निकालनेवाला ठर्कबाद नहीं जानते और न हमें जानने की इच्छा ही है हम लोग तो ईश्वर और आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। हम सुक्त-मुक्तमय इस संसार को छोड़कर इसके अतीत प्रदेश में जहाँ परम आनन्द है, जाना चाहते हैं। यह धर्म कहता है कि 'सविस्वास पंथा-त्याग करने से मुक्ति होती है' शिव राम विष्णु आदि किसी एक में ईश्वर-बुद्धि रखकर यज्ञ-मन्त्रपूर्वक उपासना करने से मुक्ति होती है। मुझे भ्रम है कि मैं इन कुछ आस्थावालों के प्राचीन धर्म का हूँ।

इसके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो ईश्वर और संसार दोनों की एक साथ ही उपासना करने के लिए कहता है। यह सच्चा नहीं है। वे जो कहते हैं वह समक हृदय का भाव नहीं रखा। प्रकृत महात्माओं का उपदेश है

जहाँ राम तहाँ काम नहीं जहाँ काम तहाँ राम।

सुम्सी कबहूँ होत नहि रवि रखने एक ठाम ॥

महापुरुषों की बाणी हमसे दम बात की बोधना करती है कि 'यदि ईश्वर की उपासना करते हो, तो काम-नाशय का त्याग करना हीना। यह संसार अकार, मायामय

और मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को नहीं पा सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो। सबते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो !' अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है, यदि ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा ? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा ? यही सीखा

दुर्लभ त्रयमेवैतत् देवानुग्रहेतुकम् ।
मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व महापुरुषसक्षय ॥
(विवेकचूडामणि ३)

—'मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुष का ससंग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते।' मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है—मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य-शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिए मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्ति-भेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपाजन के उनके विशेष अधिकार एव साधन हैं और जीवन में श्रेणी-भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह निःसर्कोच कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है ? इस ससार के सुख-दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस ससार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर-प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिए ब्रह्मदर्शी महापुरुष का सग अर्थात् गुरु-लाभ। गुरु-परम्परा से बिना क्रमभंग के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसीके साथ अपना सयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। श्रोत्रियोऽवुजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तम । (विवेकचूडामणि ३३)

—'जिसे वेदों का रहस्य-ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो, जो ब्रह्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पढित ही न हो, वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो'—वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो

के बस सीधे बन गये हैं। उस व्यक्ति को वास्तविक पब्लिक समझना चाहिए जिसने सास्त्रों का केवल एक अक्षर पढ़कर (बिम्ब) प्रेम का काम कर लिया।" केवल पोषी ज्ञान से पब्लिक हुए लोगों से काम न चलेगा। आवश्यक प्रत्येक व्यक्ति नुर बनना चाहता है। कंगाल भिक्षुक काय स्वयं का काम करना चाहता है। तो नुर अवश्य ही ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे पाप छू तक न गया हो जो अज्ञानमय हो अर्थात् जो कामसामर्थों से सन्तुष्ट न हो विमुक्त परोपकार के सिवा जिसका दूसरा कोई इरादा न हो जो अहंशुक्त इयासिन्दु हो और जो नाम-मय के लिये जबदा किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अर्थापवेश न करता हो। जो ब्रह्म की मन्त्री प्राप्ति जान चुका है अर्थात् जिसने ब्रह्म-साक्षात्कार कर लिया है, जिसके लिए ईश्वर 'कच्छता-मसकनवद्' है—भूति का कहना है कि यही पुरु होने योग्य है। जब यह आध्यात्मिक संयोग स्थापित हो जाता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है—तब ईश्वर-भूटि सुकम होती है।

पुरु से बीसा लेने के पश्चात् सत्यान्वेषी साधक के लिए आवश्यकता पड़ती है अस्यास की। पुरुपदिष्ट सामर्थों के सहारे इष्ट के तिरस्तर ध्यान द्वारा सत्य का कार्यरूप में परिचित करने के सन्ने और बारंबार प्रयास को अस्यास कहते हैं। मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के लिए चाहे जितना ही व्याकुल क्यों न हो चाहे कितना ही अज्ञान पुरु क्यों न मिले साधना—अस्यास बिना किम उस कभी ईश्वरोपलब्धि न होगी। जिस समय अस्यास बुर ही जायगा उसी समय ईश्वर प्रत्यक्ष हीपा।

इसीलिए कहता हूँ कि हे हिन्दुओं हे आर्य सन्तानों तुम लोग हमारे धर्म के हिन्दुओं के इस महान् आदर्श को कभी न भूलो। हिन्दुओं का प्रयास सत्य इन भवसागर के पार जाना है—कबल इसी संसार को छोड़ना होगा ऐसा नहीं है अपितु स्वयं को भी छोड़ना पड़ेगा—अनुभ के ही छोड़ने से काम नहीं चलेगा पुरु का भी त्याग आवश्यक है और इसी प्रकार सृष्टि-संसार बुर-जला इन सबके अतीत होता होगा और अन्ततोगत्वा सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार करना होगा।

१ पोषी पढ़ चुकी जयो, बंदिन भया न कोय।

अक्षर एक जो प्रेम से पढ़े तो पब्लिक होय॥

वह धर्म जिसमें हम पैदा हुए

३१ मार्च, १९०१ को ढाका में एक सभा का आयोजन खुले मैदान में किया गया था। स्वामी जी ने इस सभा में उपर्युक्त विषय पर अंग्रेजी में दो घण्टे व्याख्यान दिया। श्रोताओं की बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। एक शिष्य ने उक्त भाषण की रिपोर्ट बंगला में तैयार की, जिसका हिन्दी रूपान्तर निम्नलिखित है

प्राचीन काल में हमारे देश में आध्यात्मिक भाव की अतिशय उन्नति हुई थी। हमें आज वही प्राचीन गाथा स्मरण करनी होगी। किन्तु प्राचीन गौरव के अनुचिन्तन में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि हम कोई नवीन काम करना पसन्द नहीं करते और केवल अपने प्राचीन गौरव के स्मरण और कीर्तन से ही सन्तुष्ट होकर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लग जाते हैं। हमें इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। यह सही है कि प्राचीन काल में ऐसे अनेक ऋषि-महर्षि थे जिन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ था। किन्तु प्राचीन गौरव के स्मरण से वास्तविक उपकार तभी होगा, जब हम भी उनके सदृश ऋषि हो सकें। केवल इतना ही नहीं, मेरा तो दृढ विश्वास है कि हम और भी श्रेष्ठ ऋषि हो सकेंगे। भूतकाल में हमारी खूब उन्नति हुई थी—मुझे उसे स्मरण करते हुए बड़े गौरव का अनुभव होता है। वर्तमान अवनत अवस्था को देखकर भी मैं दुःखी नहीं होता और भविष्य में जो होगा, उसकी कल्पना कर मैं आशान्वित होता हूँ। ऐसा क्यों? क्योंकि मैं जानता हूँ कि बीज का सम्पूर्ण रूपान्तरण होना होता है, हाँ, जब बीज का बीजत्व भाव नष्ट होगा, तभी वह वृक्ष हो सकेगा। इसी प्रकार हमारी वर्तमान अवनत अवस्था के भीतर ही, चाहे थोड़े समय के लिए ही, भविष्य की हमारी धार्मिक महानता की सम्भावनाएँ प्रसुप्त हैं जो अधिक शक्तिशाली एवं गौरवशाली रूपों में उठ खड़ी होने के लिए तत्पर हैं। अब हमें विचार करना चाहिए कि जिस धर्म में हमने जन्म लिया है, उसमें सहमत होने के लिए समान भूमियाँ क्या हैं? ऊपर से विचार करने पर हमें पता चलता है कि हमारे धर्म में नाना प्रकार के विरोध हैं। कुछ लोग अद्वैतवादी, कुछ विशिष्टा-द्वैतवादी और कुछ द्वैतवादी हैं। कोई अवतार मानते हैं, कोई मूर्ति-पूजा में विश्वास रखते हैं तो कोई निराकारवादी हैं। आचार के सम्बन्ध में भी नाना प्रकार की विभिन्नता दिखायी पड़ती है। जाट लोग मुसलमान या ईसाई की कन्या से विवाह करने पर भी जातिच्युत नहीं होते। वे बिना किसी विरोध के सब हिन्दू मन्दिरों

में प्रवेश कर सकते हैं। पंजाब के अनेक गाँवों में जो व्यक्ति सूबर का मांस नहीं खाता उसे लोग हिन्दू समझते ही नहीं। मैसूर में ब्राह्मण चारों बपों में विवाह कर सकता है, जब कि बंगाल में ब्राह्मण अपनी जाति की अन्य शाखाओं में भी विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार की और भी विभिन्नताएँ देखने में आती हैं। किन्तु इन सभी विभिन्नताओं के बावजूद एकता का एक समान बिन्दु है कि हमारे धर्म के अन्तर्निभाओं में भी एकता की एक समान भूमि है जैसे कोई भी हिन्दू गोमांस भक्षण नहीं करता। इसी प्रकार हमारे धर्म के सभी अन्तर्भागों में एक महान् सामंजस्य है।

पहले तो शास्त्रों की व्याख्यान करते समय एक महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने आता है कि केवल उन्हीं धर्मों ने उत्तरोत्तर उत्पत्ति की जिनके पास अपने एक या अनेक शास्त्र थे फिर चाहे उन पर कितने ही अत्याचार किये गये हों। मूलानी धर्म अपनी विशिष्ट सुन्दरताओं के होते हुए भी शास्त्र के अभाव में अस्त हो गया जब कि पड़ोसी धर्म आदि धर्म-ग्रन्थ (Old Testament) के बस पर आज भी बहुधा रूप से प्रतापशाही है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद पर आधारित होने के कारण यही हास हिन्दू धर्म का भी है। वेद के दो भाग हैं—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। भारतवर्ष के सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से कर्मकाण्ड का भावकक कोप हो गया है, हालांकि बर्षान में अब भी कुछ ब्राह्मण कभी कभी अज्ञान-बन्धि लेकर यज्ञ करते हैं, और हमारे विवाह-मांदादि के मन्त्रों में भी वैदिक क्रियाकाण्ड का आभास दिखायी पड़ जाता है। इस समय उस पूर्व की सौंठि पुनः प्रतिष्ठित करने का उपाय नहीं है। कुमारिक मठ ने एक बार चेष्टा की थी किन्तु वे अपने प्रयत्न में असफल ही रहे। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है, जिसे उपनिषद्, वेदान्त या श्रुति भी कहते हैं। आचार्य कोप जब कभी श्रुति का कोई वाक्य उद्धृत करते हैं तो वह उपनिषद् का ही होता है। यही वेदान्त धर्म इस समय हिन्दुओं का धर्म है। यदि कोई सम्प्रदाय सिद्धान्तों की बुद्धिप्रतिष्ठा करना चाहता है तो उसे वेदान्त का ही आचार लेना होगा। ईतनाही अथवा अर्धैतनाही सभी को उसी आचार की धारण लेनी होगी। यहाँ तक कि वैष्णवों को भी अपने सिद्धान्तों की सत्यता सिद्ध करने के लिए गोपास्त्यापनी उपनिषद् की धारण लेनी पड़ती है। यदि किसी नये सम्प्रदाय को अपने सिद्धान्तों के पुष्टिकारक अथवा उपनिषद् में नहीं मिलते तो वे एक नये उपनिषद् की रचना करके उसे व्यवहृत करने का यत्न करते हैं। अर्थात् वे इसके कतिपय उदाहरण मिलते हैं।

इहाँ के सम्बन्ध में हिन्दुओं की यह धारणा है कि वे प्राचीन काल से किसी व्यक्ति विशेष की रचना अथवा ग्रन्थ मात्र नहीं हैं। वे उसे ईश्वर की अन्त

ज्ञानराशि मानते हैं जो किसी समय व्यक्त और किसी समय अव्यक्त रहती है। टीकाकार सायणाचार्य ने एक स्थान पर लिखा है, यो वेदेभ्योऽखिल जगत् निर्ममे— जिसने वेदज्ञान के प्रभाव से सारे जगत् की सृष्टि की है। वेद के रचयिता को कभी किसीने नहीं देखा। इसलिए इसकी कल्पना करना भी असम्भव है। ऋषि लोग उन मन्त्रों अथवा शाश्वत नियमों के मात्र अन्वेषक थे। उन्होंने आदि काल से स्थित ज्ञानराशि वेदों का साक्षात्कार किया था।

ये ऋषिगण कौन थे? वात्स्यायन कहते हैं, जिसने यथाविहित धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति की है, केवल वही ऋषि हो सकता है, चाहे वह जन्म से म्लेच्छ ही क्यों न हो। इसी लिए प्राचीन काल में जारज-पुत्र वशिष्ठ, धीवर-तनय व्यास, दासी-पुत्र नारद प्रभृति ऋषि कहलाते थे। सच्ची बात यह है कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रह जाता। उपर्युक्त व्यक्ति यदि ऋषि हो सकते हैं तो हे आधुनिक कुलीन ब्राह्मण, तुम सभी और भी उच्च ऋषि हो सकते हो। इसी ऋषित्व के लाभ करने की चेष्टा करो, अपना लक्ष्य प्राप्त करने तक रुको नहीं, समस्त ससार तुम्हारे चरणों के सामने स्वयं ही नत हो जायगा।

ये वेद ही हमारे एकमात्र प्रमाण हैं और इन पर सबका अधिकार है।

यथेमा वाच कल्याणीमावादानि जनेभ्यः।

ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥^१

क्या तुम हमें वेद में ऐसा कोई प्रमाण दिखला सकते हो, जिससे यह सिद्ध हो जाय कि वेद में सबका अधिकार नहीं है? पुराणों में अवश्य लिखा है कि वेद की अमुक शाखा में अमुक जाति का अधिकार है या अमुक अश सत्ययुग के लिए और अमुक अश कलियुग के लिए है। किन्तु, ध्यान रखो, वेद में इस प्रकार का कोई अश नहीं है, ऐसा केवल पुराणों में ही है। क्या नौकर कभी अपने मालिक को आज्ञा दे सकता है? स्मृति, पुराण, तन्त्र—ये सब वहीं तक ब्राह्म हैं, जहाँ तक वे वेद का अनुमोदन करते हैं। ऐसा न होने पर उन्हें अविश्वसनीय मान कर त्याग देना चाहिए। किन्तु आजकल हम लोगों ने पुराणों को वेद की अपेक्षा श्रेष्ठ समझ रखा है। वेदों की चर्चा तो बंगाल प्रान्त में लोप ही हो गयी है। मैं वह दिन शीघ्र देखना चाहता हूँ, जिस दिन प्रत्येक घर में गृहदेवता शालग्राम की मूर्ति के साथ साथ वेद की पूजा भी होने लगेगी, जब बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ वेद-अर्चना का शुभारम्भ करेंगी।

वेदों के सम्बन्ध में पारंपार्य विद्वानों के सिद्धान्तों में मेरा विश्वास नहीं है। आज वेदों का समय वे कुछ निश्चित करते हैं और कछ उसे बदलकर फिर एक हजार वर्ष पीछे बसीट से जाते हैं। पुराणों के विषय में हम अगर कह जायें हैं कि वे वहीं तक प्रायः हैं, वहाँ तक वेदों का समर्पन करते हैं। पुराणों में ऐसी अनेक बातें हैं जिनका वेदों के साथ मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए पुराण में लिखा है कि कोई व्यक्ति उस हजार वर्ष तक और कोई दूसरे बीस हजार वर्ष तक जीवित रहे किन्तु वेदों में लिखा है—**अथामूर्ध्वं पुष्कः**। इनमें से हमारे लिए कौन सा मत स्वीकार्य है? निश्चय ही वेद। इस प्रकार के कथनों के बावजूद मैं पुराणों की निन्दा नहीं करता। उनमें योग भक्ति ज्ञान और कर्म की अनेक सुन्दर सुन्दर बातें बखाने में आती हैं और हमें उन सभी को ग्रहण करना ही चाहिए। इसके बाद है तन्त्र। तन्त्र का वास्तविक अर्थ है सास्त्र जैसे कापिस तन्त्र। किन्तु तन्त्र शब्द प्रायः सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। बौद्ध धर्मविद्वान्नी एवं बहिष्ता के प्रचारक-प्रसारक गुप्तियों के छासन-काल में वैदिक याग-यज्ञों का लोप हो गया। तब राजदण्ड के मय से कोई भी हिंसा नहीं कर सकता था। किन्तु कालांतर में बौद्ध धर्म में ही इन याग-यज्ञों के श्रेष्ठ अथ गुप्त रूप से सम्मिश्रित हो गये। इसीसे तन्त्रों की उत्पत्ति हुई। तन्त्रों में सामाजिक प्रभुति बहुत से अक्ष कारण होने पर भी तन्त्रों को लोग अतिना करार समझते हैं, वे उठने खड़ा नहीं हैं। उनमें वेदास्त सम्बन्धी कुछ उच्च एवं सूक्ष्म विचार निहित हैं। वास्तविक बात तो यह है कि वेदों के ब्राह्मण भाग को ही कुछ परिवर्तित कर तन्त्रों में समाहित कर दिया गया था। वर्तमान काल की पूजा विधियाँ और उपासना पद्धति तन्त्रों के अनुसार होती हैं।

अब हमें अपने धर्म के सिद्धान्तों पर भी जोड़ा विचार करना चाहिए। हमारे धर्म के सम्प्रदायों में अनेक विभिन्नताएँ एवं अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक क्षेत्र हैं। प्रथम सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं—ईश्वर, आत्मा और जगत्। ईश्वर वह है, जो अनन्त काल से सम्पूर्ण जगत् का सर्वत्र पालन और संहार करता आ रहा है। सकल वर्धन के अतिरिक्त सभी इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इसके बाद आत्मा का सिद्धान्त और पुनर्जन्म की बात आती है। इसके अनुसार अक्षय्य जीवात्माएँ बार-बार अपने कर्मों के अनुसार घटित धारण कर जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमती रहती हैं। इसीको संसारबाध या प्रकल्पित रूप से पुनर्जन्मवाद कहते हैं। इसके बाद यह अनादि अनन्त जगत् है। यद्यपि कुछ लोग इन तीनों को विभिन्न भिन्न मानते हैं तथा कुछ हमें एक ही के भिन्न भिन्न तीन रूप और कुछ अन्य प्रकारों से इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। पर इन तीनों का अस्तित्व वे सभी मानते हैं।

यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि चिरकाल से हिन्दू आत्मा को मन से पृथक् मानते आ रहे हैं। पाश्चात्य विद्वान् मन के परे किसी चीज़ की कल्पना नहीं कर सके। वे लोग जगत् को आनन्दपूर्ण मानते हैं और इसीलिए उसे मौज मारने की जगह समझते हैं। जब कि प्राच्य लोगो की जन्म से ही यह धारणा होती है कि यह ससार नित्य परिवर्तनशील तथा दुःखपूर्ण है। और इसीलिए यह मिथ्या के सिवा कुछ नहीं है और न ही इसके क्षणिक सुखो के लिए आत्मा का धन गँवाया जा सकता है। इसी कारण पाश्चात्य लोग सघबद्ध कर्म मे विशेष पटु है और प्राच्य लोग अन्तर्जगत् के अन्वेषण मे ही विशेष साहस दिखाते हैं।

जो कुछ भी हो, यहाँ अब हमे हिन्दू धर्म की दो एक और बातों पर विचार करना आवश्यक है। हिन्दुओं मे अवतारवाद प्रचलित है। वेदो मे हमे केवल मत्स्यावतार का ही उल्लेख मिलता है। सभी लोग इस पर विश्वास करते हैं या नहीं, यह कोई विचारणीय विषय नहीं है। पर इस अवतारवाद का वास्तविक अर्थ है मनुष्य-पूजा—मनुष्य के भीतर ईश्वर को साक्षात् करना ही ईश्वर का वास्तविक साक्षात्कार करना है। हिन्दू प्रकृति के द्वारा प्रकृति के ईश्वर तक नहीं पहुँचते—मनुष्य के द्वारा मनुष्य के ईश्वर के निकट जाते हैं।

इसके बाद है मूर्ति-पूजा। शास्त्रो मे विहित हर एक शुभ कर्म मे उपास्य पंच देवताओं के अतिरिक्त अन्य देवता केवल उनके द्वारा अधिष्ठित पदो के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। किन्तु ये पाँचो उपास्य देवता भी उसी एक भगवान् के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। यह बाह्य मूर्ति-पूजा हमारे सब शास्त्रो मे अधमतम कोटि की पूजा मानी गयी है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मूर्ति-पूजा करना गलत है। वर्तमान समय मे प्रचलित इस मूर्ति-पूजा के भीतर नाना प्रकार के कुत्सित भावो के प्रवेश कर लेने पर भी, मैं उसकी निन्दा नहीं कर सकता। यदि उसी कट्टर मूर्ति-पूजक ब्राह्मण (श्री रामकृष्ण) की पद-बूलि से मैं पुनीत न बनता तो आज मैं कहाँ होता ?

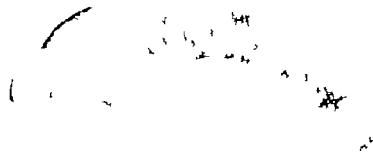
वे सुधारक जो मूर्ति-पूजा के विरुद्ध प्रचार करते हैं अथवा उसकी निन्दा करते हैं, उनमे मैं कहूँगा कि भाइयो, यदि तुम बिना किसी सहायता के निराकार ईश्वर की उपामना कर सकते हो तो तुम भले ही वैसा करो, किन्तु जो लोग ऐसा नहीं कर सकते हैं, उनकी निन्दा क्यों करते हो ? प्राचीनतम समय का गौरवान्वित स्मृति-चिह्नरूप एक सुन्दर एवं भव्य मकान उपेक्षा या अव्यवहार के कारण जर्जर हो गया है। यह हो सकता है कि उसमे हर कहीं बूल जमी हुई है, यह भी हो सकता है कि उसके कुछ हिस्से जमीन पर भहंग पड़े हो। पर तुम उसे क्या करोगे ? क्या तुम उसकी नफाई-मरम्मत काने उनकी पुगनी धज ठीटा दोगे या उसे, उन उभारत को गिरा कर उसके स्थान पर एक नदिग्न न्यायित्व वाले सुत्नित आधुनिक योजना के

अनुसार कोई दूसरी इमारत गढ़ी कराये ? हमें उनका गुप्ता करना होना उनके मर्मे है उसकी उचित गार्ज-अरम्भ करना न कि उसे ध्वस्त कर देना। यही पर सुपार का काम समाप्त हो जाता है। यदि ऐसा कर सकन हो तो कौरे अम्भवा दूर रही। पीसोंडार ही जान पर उनकी और क्या आवश्यकता ? किन्तु हमारे देश के सुपारक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय का संरक्षण करना चाहते हैं। तो भी उन्होंने क्या कार्य किया है। ईश्वर के आशीर्वादों की उनके लिए पर क्या ही। किन्तु तुम लोग अपने की नहीं महान् समुदाय से पृथक् करना चाहते ही ? हिन्दू नाम लेने ही से क्यों अग्रिम होते हो ? — जो कि तुम लोगों की महान् और गौरवपूर्ण सम्पत्ति है। जो अमर पुत्रों मरे देशवासियों यह हमारा जातीय जहाज मुणों तक मुसाफिरी को के आता के जाता रहा है और इसने अपनी अनुत्तनीय सम्पदा से संसार को समृद्ध बनाया है। अनेक पीरवपूर्व गताम्बियों तक हमारा यह जहाज जीवन-सागर में चलता रहा है और करोड़ों आत्माओं को उसने दुःख से दूर संसार के उन पार पहुँचाया है। आज सागर उसमें एक छेद हो गया हो और इससे यह भत हो गया हो यह चाहे तुम्हारी अपनी शक्ति से या चाहे किसी और कारण से। तुम जो इस जहाज पर चढ़े हुए हो अब क्या करोये ? क्या तुम दुर्बलन कहते हुए आपस में झगड़ो ? क्या तुम सब मिलकर उस छेद को बन्द करने की पूर्ण चेष्टा करोये ? हम सब लोगों की अपनी पूरी जान सड़ाकर खुशी खुशी उसे बन्द कर देना चाहिए। अमर न कर सके तो हम लोगों की एक सभ बूब भरना होगा।

और बाह्यनों से भी मैं कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा अम्भगत तथा बंधनत अभिमान मिट्या है, उसे छोड़ दो। सास्त्रों के अनुसार तुम में भी अब बाह्यतत्व घेप नहीं रह गया क्योंकि तुम भी इतने दिनों से म्लेच्छ राज्य में रह रहे हो। यदि तुम लोगों को अपने पूर्वजों की कब्रों में विरवास है तो जिस प्रकार प्राचीन कुमारिक मन्दू ने बीड़ों के संहार करने के अभिप्राय से पहले बीड़ों का शिष्यत्व ग्रहण किया पर अन्त में उनकी हत्या के प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने तुषामि में प्रवेश किया उसी प्रकार तुम भी तुषामि में प्रवेश करो। यदि ऐसा न कर सको तो अपनी दुर्बलता स्वीकार कर लो। और सभी के सिम् ज्ञान का द्वार खोल दो और परबन्धित बलता को उनका उचित एवं प्रद्वत अधिकार दे दो।



पत्रावली—६



पत्रावली

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

हाई व्यू, कैवरशम्, रीडिंग,
३ जुलाई, १८९६

प्रिय शशि,

इस पत्र को देखते ही काली (स्वामी अभेदानन्द) को इंग्लैण्ड रवाना कर देना। पहले पत्र मे ही तुम्हे सब कुछ लिख चुका हूँ। कलकत्ते के मेसर्स ग्रिण्डले कम्पनी के पास उसका द्वितीय श्रेणी का मार्ग-व्यय तथा वस्त्रादि खरीदने के लिए आवश्यक धन भी भेजा जा चुका है। अधिक वस्त्रादि की आवश्यकता नहीं है।

काली को अपने साथ कुछ पुस्तकें लानी होगी। मेरे पास केवल ऋग्वेद-सहिता है। यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वन् सहिताएँ एव शतपथ्यादि जितने भी 'ब्राह्मण' प्राप्त हो सके तथा कुछ सूत्र एव यास्क के निरुक्त यदि उपलब्ध हो तो इन ग्रन्थो को वह अपने ही साथ लेता आये। अर्थात् इन पुस्तको की मुझे आवश्यकता है। उनको काठ के बक्स मे भरकर लाने की व्यवस्था करे।

शरत् के आने मे जैसा विलम्ब हुआ था, वैसा नहीं होना चाहिए, काली फौरन आये। शरत् अमेरिका रवाना हो चुका है, क्योंकि यहाँ पर उसकी कोई आवश्यकता नहीं रह गयी। कहने का मतलब यह कि वह छ महीने की देर करके आया और फिर जब वह आया, उस समय मैं खुद ही यहाँ पहुँच चुका था। काली के बारे मे यह बात नहीं होनी चाहिए। शरत् के आने के समय जैसे चिट्ठी खो जाने से गडबडी हुई थी, अब की बार वैसे ही कही चिट्ठी न खो जाय। शीघ्रता से उसे भेज देना।

सस्नेह,
विवेकानन्द

धीरे उस अवस्था की ओर बढ़ रहा हूँ, जहाँ खुद 'शैतान' को भी, अगर वह हो तो मैं प्यार कर सकूँगा।

बीस वर्ष की अवस्था में मैं अत्यन्त असहिष्णु और कट्टर था। कलकत्ते में सड़को के जिस किनारे पर थियेटर हैं, मैं उस ओर के पैदल-मार्ग से ही नहीं चलता था। अब तीस वर्ष की उम्र में मैं वेश्याओं के साथ एक ही मकान में ठहर सकता हूँ और उनसे तिरस्कार का एक शब्द कहने का विचार भी मेरे मन में नहीं आयेगा। क्या यह अवोगति है? अथवा मेरा हृदय विस्तृत होता हुआ मुझे उस विश्वव्यापी प्रेम की ओर ले जा रहा है, जो साक्षात् भगवान् है? लोग कहते हैं कि वह मनुष्य, जो अपने चारों ओर होनेवाली बुराइयों को नहीं देख पाता, अच्छा काम नहीं कर सकता, उसकी परिणति एक तरह के भाग्यवाद में होती है। मैं तो ऐसा नहीं देखता। वरन् मेरी कार्य करने की शक्ति अत्यधिक बढ़ रही है और अत्यधिक प्रभावशील भी होती जा रही है। कभी कभी मुझे एक प्रकार का दिव्य भावावेश होता है। ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं प्रत्येक प्राणी और वस्तु को आशीर्वाद दूँ—प्रत्येक से प्रेम करूँ और गले लगा लूँ और मैं यह भी देखता हूँ कि बुराई एक भ्रान्ति मात्र है। प्रिय फ्रैन्सिस, इस समय मैं ऐसी ही अवस्था में हूँ और अपने प्रति तुम्हारे तथा श्रीमती लेगेट के प्रेम और सहानुभूति का स्मरण कर मैं सचमुच आनन्द के आँसू बहा रहा हूँ। मैं जिस दिन पैदा हुआ था, उस दिन को धन्यवाद देता हूँ। यहाँ पर मुझे कितनी सहानुभूति, कितना प्रेम मिला है! और जिस अनन्त प्रेमस्वरूप भगवान् ने मुझे जन्म दिया है, उसने मेरे हर एक भले और बुरे (बुरे शब्द से डरो मत) काम पर दृष्टि रखी है—क्योंकि मैं उसीके हाथ के एक औजार के सिवा और हूँ ही क्या, और रहा ही क्या? उसीकी सेवा के लिए मैंने अपना सब कुछ—अपने प्रियजनो को, अपना सुख, अपना जीवन—त्याग दिया है। वह मेरा लीलामय प्रियतम है और मैं उसकी लीला का साथी हूँ। इस विश्व में कोई युक्ति-परिपाटी नहीं है। ईश्वर पर भला किस युक्ति का वश चलेगा? वह लीलामय इस नाटक की समस्त भूमिकाओं पर हास्य और रुदन का अभिनय कर रहा है। जैसा 'जो' कहती हैं—अजब तमाशा है! अजब तमाशा है!

यह दुनिया बड़े मजे की जगह है, और सबसे मजेदार है—वह असीम प्रियतम! क्या यह तमाशा नहीं है? सब एक दूसरे के भाई हो या खेल के साथी, पर वास्तव में हैं ये मानो पाठशाला के हल्ला मचानेवाले बच्चे, जो कि इम ससाररूपी मैदान में खेल-कूद करने के लिए छोड़ दिये गये हैं। यही है न? किसकी तारीफ करूँ और किसे बुरा कहूँ—सब तो उसीका खेल है। लोग इसकी व्याख्या चाहते हैं। पर ईश्वर की व्याख्या तुम कैसे करोगे? वह मस्तिष्कहीन है, उसके पास युक्ति भी

(फ्रैंसिस सेमेट को लिखित)

६३ सेमेट चार्ल्स रोड लन्डन
६ जुलाई, १८९६

प्रिय फ्रैंसिस

अदृश्यात्मिक महासागर के इस पार मेरा कार्य बहुत अच्छी रीति से चल रहा है।

मेरी रचिबार की बस्तुताएँ बहुत सफल हुईं और जसी तरह कजाएँ भी। काम का सौख्य बरस ही चुका है और मैं भी बेहद पक चुका हूँ। जब मैं कुमारी मूलर के साथ स्विटजरलैंड के भ्रमण के लिए जा रहा हूँ। गास्टरबर्ग परिवार ने मेरे साथ बड़ा सुख व्ययहार किया है। जो मैंने बड़ी खुशखबरी से उन्हें मेरी तरफ आह्वान किया। उनकी खुशखबरी और पान्थिपूर्ण कार्य-रीति की मैं मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हूँ। वे एक राजनीतिक कुशल महिला कही जा सकती हैं। वे एक राज बन सकती हैं। मनुष्य में ऐसी प्रकृति, साथ ही अच्छी सहज-बुद्धि मैंने कितने ही देखी है। अमली घर न्यू यॉर्क में मैं अमेरिका लौटूँगा और वहाँ का कार्य फिर आरम्भ करूँगा।

परासों रात को मैं श्रीमती मार्टिन के यहाँ एक पार्टी में गया था जिसके सम्बन्ध में तुमने अबस्य ही 'जो' से बहुत कुछ सुना होगा।

इंस्पीक में यह कार्य चुपचाप पर निरिच्छत रूप से बढ़ रहा है। यहाँ प्रायः हर दूसरे पुरुष अबस्य स्त्री के मेरे पास आकर मेरे कार्य के सम्बन्ध में बातचीत की। लिटिल साम्राज्य के कितने ही शोध कर्मी न हों पर भाव-मन्थार का ऐसा उत्कृष्ट यत्न अब तक कहीं नहीं रहा है। मैं इस यत्न के केन्द्रस्वरूप में अपने विचार रख देना चाहता हूँ और वे सारी बुनिया में फँस जायेंगे। यह सच है कि सभी बड़े काम बहुत धीरे धीरे होते हैं, और उनकी राह में असंख्य विघ्न उपस्थित होते हैं, विशेषकर इसकिए कि हम हिन्दू परराष्ट्रीय जाति हैं। परन्तु इसी कारण हमें सचसत्ता अबस्य विशेषी क्योंकि आध्यात्मिक आदर्श सदा परवर्धित जातियों में से ही पैदा हुए हैं। मजूरी अपने आध्यात्मिक आदर्शों से रोम साम्राज्य पर का गये थे। तुम्हें यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैं भी विनीतियन पैर्य और विशेषकर सहानुभूति के सबक सीख रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि सभित्तवाली ऐन्कोइजिडियनों तक के मातृ में परमात्मा को प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। मेरा विचार है कि मैं धीरे

(श्रीमती ओलि वुल को लिखित)

६३, सेण्ट जार्ज रोड, लन्दन,

८ जुलाई, १८९६

प्रिय श्रीमती वुल,

अग्रेज जाति अत्यन्त उदार है। उस दिन करीब तीन मिनट के अन्दर ही आगामी शरद् में कार्य सचालनार्थ नवीन मकान के लिए मेरी कक्षा से १५० पौण्ड का चन्दा मिला। यदि मांगा जाता तो तत्काल ही वे ५०० पौण्ड प्रदान करने में किञ्चिन्मात्र भी नहीं हिचकते। किन्तु हम लोग धीरे धीरे कार्य करना चाहते हैं, एक साथ जल्दी अधिक खर्च करने का कोई अभिप्राय हमारा नहीं है। यहाँ पर इस कार्य का सचालन करने के लिए हमें अनेक व्यक्ति प्राप्त होंगे एव वे लोग त्याग की भावना से भी कुछ कुछ परिचित हैं—अग्रेजों के चरित्र की गहराई का पता यही मिलता है।

शुभाकाक्षी,

विवेकानन्द

(डॉ० नजुन्दा राव को लिखित)

इंग्लैण्ड,

१४ जुलाई, १८९६

प्रिय नजुन्दा राव,

'प्रबुद्ध भारत' की प्रतियाँ मिली तथा उनका कक्षा में वितरण भी कर दिया गया है। यह अत्यन्त सन्तोषजनक है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में इसकी बहुत विक्री होगी। कुछ ग्राहक तो अमेरिका में ही बन जाने की आशा है। अमेरिका में इसका विज्ञापन देने की व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है एव 'गुड इयर' ने उसे कार्य में भी परिणत कर दिया है। किन्तु यहाँ इंग्लैण्ड में कार्य अपेक्षाकृत कुछ धीरे धीरे अग्रसर होगा। यहाँ पर बड़ी मुश्किल यह है कि सब कोई अपना अपना पत्र निकालना चाहते हैं। ऐसा ठीक भी है, क्योंकि कोई भी विदेशी व्यक्ति असली अग्रेजों की तरह अच्छी अग्रेजी कभी नहीं लिख सकता तथा अच्छी अग्रेजी में लिखने से विचारों का सुदूर तक जितना विस्तार हो सकेगा उतना हिन्दू-अग्रेजी के द्वारा नहीं। साथ ही विदेशी भाषा में लेख लिखने की अपेक्षा कहानी लिखना और भी कठिन है।

मैं आपके लिए यहाँ ग्राहक बनाने की पूरी चेष्टा कर रहा हूँ, किन्तु आप विदेशी सहायता पर क़तई निर्भर न रहें। व्यक्ति की तरह जाति को भी अपनी सहायता

मही है। वह छोटे मस्तिष्क तथा सीमित शक्त-शक्तिवाले हम लोगों को मुक्त बना रहा है, पर इस बार वह मुझे ऊँचता नहीं पा सकेगा।

मैंने दो-एक बातें सीधी हैं प्रेम और प्रियतम—तुम्हें पाश्चित्य और बायाइम्बर के बहुत परे। ऐ चाक्री प्याला भर दे और हम पीकर मस्त हो जायें।

तुम्हारा ही प्रेमोन्मत्त
त्रिविक्रान्त

(इस बहनों को लिखित)

कन्दन

७ जुलाई, १८९९

प्रिय बच्चियो,

यहाँ कार्य में आरम्भजनक प्रतीत हुई। भारत का एक संन्यासी यहाँ मेरे साथ था जिसे मैंने अमेरिका भेज दिया है। भारत से एक और संन्यासी बुका भेजा है। कार्य का समय समाप्त हो गया है, इसलिए कक्षाओं के लगने तथा एजिवासीय व्याख्यानों का कार्य भी आगामी १९ तारीख से बन्द हो जायगा। १९ तारीख को मैं कृषि एक महीने के लिए छात्रिपूर्ण भाषास तथा विद्या के निमित्त सिद्धारक्षक के पहाड़ों पर चला जाऊँगा और आगामी शरद ऋतु में कन्दन वापस जाकर फिर कार्य आरम्भ करूँगा। यहाँ का कार्य बड़ा सन्तोषजनक रहा है। यहाँ लोगों में विद्यवासी पैदा कर मैं भारत के लिए बसकी जेवा सचमुच करी बहिक कार्य कर रहा हूँ जो भारत में रहकर करता। मैं मे मुझको किता है कि यदि तुम जोग अपना मकान किराये पर उठव दो तो तुम लोगों को साथ लेकर शिम प्रमथ करने में उन्हें प्रसन्नता होगी। मैं तीन अंग्रेज मित्रों के साथ सिद्धारक्षक के पहाड़ों पर जा रहा हूँ। बार में शीत ऋतु के अन्त के कृषि कुछ अंग्रेज मित्रों के साथ भारत जाने की मुझे आशा है। वे जोग बहूँ मेरे मठ में रहनेवाले हैं, जिसके निर्माण की अभी तो केवल कल्पना भर है। हिमालय पर्वत के अंश में किसी बगइ उसके निर्माण का उद्योग किया जा रहा है।

तुम जोग कहीं पर हो? शीघ्र ऋतु का पूरा होर है, यहाँ तक कि कन्दन में भी बड़ी मरमी पड़ रही है। कपमा भीमती ऐडम्ब भीमती कॉपोट और चिकानो के अन्य सभी मित्रों के प्रति मेरा हार्दिक प्रेम ज्ञापित करता।

तुम्हारा तस्नेह नाई,
त्रिविक्रान्त

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

ग्रैंड होटल, वेलै,
स्विट्ज़रलैंड

प्रिय स्टर्डी,

मैं थोड़ा बहुत अध्ययन कर रहा हूँ—उपवास बहुत कर रहा हूँ तथा साधना उससे भी अधिक कर रहा हूँ। वनो में भ्रमण करना अत्यन्त आनन्ददायक है। हमारे रहने का स्थान तीन विशाल हिमनदों के नीचे है तथा प्राकृतिक दृश्य भी अत्यन्त मनोरम है।

एक बात है कि स्विट्ज़रलैंड की झील में आर्यों के आदि निवास-स्थान सम्बन्धी मेरे मन में जो कुछ भी थोड़ा सा सन्देह था, वह एकदम निर्मूल हो चुका है, 'तातार' जाति के माथे से लम्बी चोटी हटा देने पर जो दशा होती है, स्विट्ज़रलैंड के निवासी ठीक उसी प्रकार के हैं।

शुभाकाशी,
विवेकानन्द

(श्री लाला बन्नी शाह को लिखित)

द्वारा ई० टी० स्टर्डी
हाई व्यू, कैवरशम्, रीडिंग, लंदन
५ अगस्त, १८९६

प्रिय शाह जी,

आपके सहृदय अभिनन्दन के लिए धन्यवाद। आपसे एक बात मैं जानना चाहता हूँ। यदि लिखने का कष्ट करें तो इस कृपा के लिए मैं विशेष अनुग्रहीत होऊँगा। मैं एक मठ स्थापित करना चाहता हूँ—मेरी इच्छा है कि वह अल्मोडा में या अच्छा हो उसके समीप किसी स्थान में हो। मैंने सुना है कि श्री रैमसे नामक कोई सज्जन अल्मोडा के समीप एक बँगले में रहते थे, उस बँगले के चारों ओर एक बगीचा था। क्या वह बँगला खरीदा जा सकता है? उसका मूल्य क्या होगा? यदि खरीदना सम्भव न हो तो किराये पर मिल सकता है या नहीं?

क्या आप अल्मोडा के समीप किसी ऐसे उपयुक्त स्थान को जानते हैं, जहाँ बगीचे आदि के साथ मैं अपना मठ बना सकूँ? बगीचे का होना नितान्त आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि अलग एक छोटी सी पहाड़ी मिल जाय तो अच्छा हो।

आशा है कि पत्र का उत्तर शीघ्र प्राप्त होगा। आप एवं अल्मोडा के अन्य मित्रों को मेरा आशीर्वाद तथा प्रेम।

भवदीय,
विवेकानन्द

जाप ही करनी चाहिए। यही मन्थन स्वदेश-मेम है। यदि कोई जाति ऐसा करने में असमर्थ हो तो यह कहना पड़ेगा कि उसका अभी समय नहीं आया उसे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मद्रास से ही यह नवीन जालोक भारत के चारों ओर फैलना चाहिए—इसी उद्देश्य को लेकर आपको कार्य-क्षेत्र में अग्रसर होना पड़ेगा। एक बात पर मुझे अपना मत व्यक्त करना है वह यह कि पत्र का मुखपृष्ठ एकत्रय गैबार्क देखते में निराला रही तथा महा है। यदि सम्भव हो तो इसे बदल दें। इसे भावव्यंजक तथा साब ही सरल बनायें—इसमें मानव-धर्म बिल्कुल नहीं होना चाहिए। 'बटबुस' कठोर प्रबुध होने का चिह्न नहीं है और मपहाड़ नसन्त ही यूरोपीय दम्पति भी नहीं। 'कमल' ही पुनरमुत्थान का प्रतीक है। 'अस्मि कसा' में हम लाभ बहुत ही पिछड़े हुए हैं खासकर 'विश्वकसा' में। उपाहरवस्वरूप मन में बसन्त के पुनरागमन का एक छोटा सा बृष्य बनाइए—नवपस्त्र तथा कलिकाएँ प्रस्फुटित हो रही हों। बीरे बीरे आये बड़िए, चौकड़ो भाव है जिन्हें प्रकाश में लाया जा सकता है।

मैंने 'राजयोग' के लिए जो प्रतीक बनाया था उसे देखिए। 'कागमैन श्रीम एम्ब कम्पनी' ने यह पुस्तक प्रकाशित की है। आपको यह सम्बन्ध में लिख सकती है। राजयोग पर न्यूयार्क में जो व्याख्यान दिये थे वही इसमें है।

आगामी एविचार को मैं स्विट्जरलैण्ड जा रहा हूँ और अरक्तार में इन्सैण्ड जापस जाकर पुनः कार्य प्रारम्भ करूँगा। यदि सम्भव हो सका तो स्विट्जरलैण्ड से मैं बापवाहिक रूप से आपको कुछ खेब भेजूँगा। आपको भास्म ही होया कि मेरे लिए विद्याम अत्यन्त आवश्यक हो उठा है।

शुभाकांशी
विश्वकामन्द

(श्रीमती ओकि बुक को लिखित)

सैन्त प्रैम्ब स्विट्जरलैण्ड
२५ जुलाई, १८९९

प्रिय श्रीमती बुक

कम से कम दो मास के लिए मैं जपद् को एकत्रय मूल जाना चाहता हूँ और कठोर साधना करना चाहता हूँ। यही मेरा विद्याम है। पहाड़ों तथा बर्फ के दृश्य से मेरे हृदय में एक अपूर्व ध्यान्ति सी छा जाती है। यहाँ पर मुझे पौसी अर्धरी नीर आ रही है, दीर्घ काल तक मुझे वैसे नीर नहीं आयी।

सभी मित्रों को मेरा प्यार।

शुभाकांशी
विश्वकामन्द

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड,

६ अगस्त, १८९६

प्रिय आलासिंगा,

तुम्हारे पत्र से 'ब्रह्मवादिन्' की आर्थिक दुर्दशा का समाचार विदित हुआ। लन्दन लौटने पर तुम्हें सहायता भेजने की चेष्टा करूँगा। तुम पत्रिका का स्तर नीचा न करना, उसको उन्नत रखना, अत्यन्त शीघ्र ही मैं तुम्हारी ऐसी सहायता कर सकूँगा कि इस बेहूदे अध्यापन-कार्य से तुम्हें मुक्ति मिल सके। डरने की कोई बात नहीं है वत्स, सभी महान् कार्य सम्पन्न होंगे। साहस से काम लो। 'ब्रह्मवादिन्' एक रत्न है, इसे नष्ट नहीं होना चाहिए। यह ठीक है कि ऐसी पत्रिकाओं को सदा निजी दान से ही जीवित रखना पड़ता है, हम भी वैसा ही करेंगे। कुछ महीने और जमे रहो।

मैक्समूलर महोदय का श्री रामकृष्ण सम्बन्धी लेख 'दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी' में प्रकाशित हुआ है। मुझे मिलते ही मैं उसकी एक प्रतिलिपि तुम्हारे पास भेज दूँगा। वे मुझे अत्यन्त सुन्दर पत्र लिखते हैं। श्री रामकृष्ण देव की एक बड़ी जीवनी लिखने के लिए वे सामग्री चाहते हैं। तुम कलकत्ते एक पत्र लिखकर सूचित कर दो कि जहाँ तक हो सके सामग्री एकत्र करके उन्हें भेज दी जाय।

अमेरिकी पत्र के लिए भेजा हुआ समाचार मुझे पहले ही मिल चुका है। भारत में उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है, समाचार-पत्र द्वारा इस प्रकार का प्रचार बहुत हो चुका है। इस विषय में खासकर मेरी अब कुछ भी रुचि नहीं है। मूर्खों को बकने दो, हमें तो अपना कार्य करना है। सत्य को कोई नहीं रोक सकता।

यह तो तुम्हें पता ही है कि मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में हूँ और बराबर घूम रहा हूँ। पढ़ने अथवा लिखने का कार्य कुछ भी नहीं कर पा रहा हूँ, और करना भी उचित प्रतीत नहीं होता। लन्दन में मुझे एक महान् कार्य करना है, आगामी माह में उसे प्रारम्भ करना है। अगले जाडो में भारत लौटकर मैं वहाँ के कार्य को भी ठीक करने की कोशिश करूँगा।

सब लोगों को मेरा प्रेम। वहादुरो, कार्य करते रहो, पीछे न हटो—'नहीं' मत कहो। कार्य करते रहो—तुम्हारी सहायता के लिए प्रभु तुम्हारे पीछे खड़े हैं। महाशक्ति तुम्हारे साथ विद्यमान है।

शुभाकाक्षी,
दिवेकानन्द

(भी ई टी स्टडी को सिद्धित)

स्विट्जरलैंड

५ अगस्त १८९९

प्रिय स्टडी

आज सुबह प्रोफेसर मैक्समूलर का एक पत्र मिला; उससे पता चला कि भी रामकृष्ण परमहंस सम्मन्धी उनका लेख 'दि नाइस्टीम सेन्चुरी' पत्रिका के बनसत बंक में प्रकाशित हुआ है। क्या तुमने उसे पढ़ा है? उन्होंने इस लेख के बारे में मेरा अभिमत माँगा है। अभी तक मैंने उसे नहीं देखा है, अतः उन्हें कुछ भी नहीं लिख पाया हूँ। यदि तुम्हें वह प्रति प्राप्त हुई हो तो कृपया मुझे भेज देना। 'ब्रह्मवापित्' की भी यदि कोई प्रति आती हो तो उसे भी भेजना; मैक्समूलर महोदय हमारी योजनाओं से परिचित होना चाहते हैं तथा पत्रिकाओं से भी उन्होंने अधिकाधिक सहायता प्रदान करने का वचन दिया है तथा भी रामकृष्ण परमहंस पर एक पुस्तक लिखने को वे प्रस्तुत हैं।

मैं समझता हूँ कि पत्रिकाओं के विषय में उनके साथ तुम्हारा सीधा पत्र-व्यवहार होना ही उचित है। 'दि नाइस्टीम सेन्चुरी' पढ़ने के बाद उनके पत्र का जबाब लिख कर जब मैं तुमको उनका पत्र भेज दूँगा तब तुम देखोगे कि वे हमारे प्रयास पर कितने प्रसन्न हैं तथा यथासाध्य सहायता प्रदान करने के लिए तैयार हैं।

पुनरुक्त—आशा है कि तुम पत्रिका को बढ़े आकार की करने के प्रयत्न पर भली भाँति विचार करोगे। अमेरिका से कुछ बनराशि एकत्र करने की व्यवस्था हो सकती है एवं साथ ही पत्रिका अपने लोगों के हाथों ही रखी जा सकती है। इस बारे में तुम्हारी तथा मैक्समूलर महोदय की सिद्धित योजना से अवगत होने के बाद मैं अमेरिका पत्र लिखना चाहता हूँ।

सिद्धितम्बो महाशुभाः कलछायासमन्वितम् ।

यदि ईवात् फलं नास्ति छाया केन निवार्यते ॥

—'त्रिषु बुधु में फल एव छाया ही उसी का आशय लेना चाहिए कदाचित् फल न भी मिले फिर भी उनकी छाया से ही कोई भी बचिप नहीं कर सकता। अतः मूल बात यह है कि महान् कार्य को इसी भावना से प्रारम्भ करना चाहिए।

गुमानांधी

विश्वकालम्

बहरहाल, श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपने निवास स्थान पर मुझे—भक्ति पर बोलने के लिए—निमंत्रित किया था। मैंने वहाँ एक रात व्याख्यान दिया। कर्नल अल्कांट भी वहाँ थे। मैंने सभी सम्प्रदाय के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए ही भाषण देना स्वीकार किया। हमारे देशवासियों को यह याद रखना चाहिए कि अध्यात्म के बारे में हम ही जगद्गुरु हैं—विदेशी नहीं—किन्तु, सासारिकता अभी हमें उनसे सीखना है।

मैंने मैक्समूलर का लेख पढ़ा है। हालाँकि छ माह पूर्व जब कि उन्होंने इसे लिखा था—उनके पास मजूमदार के पर्चे के सिवा और कोई सामग्री नहीं थी। इस दृष्टि से यह लेख सुन्दर है। इधर उन्होंने मुझे एक लम्बी और प्यारी चिट्ठी लिखी है, जिसमें उन्होंने श्री रामकृष्ण पर एक किताब लिखने की इच्छा प्रकट की है। मैंने उन्हें बहुत सारी सामग्री दी है, किन्तु भारत से और भी अधिक मँगाने की आवश्यकता है।

काम करते चलो। डटे रहो बहादुरी से। सभी कठिनाइयों को झेलने की चुनौती दो।

देखते नहीं बत्स, यह ससार—डु खपूर्ण है।

प्यार के साथ,
विवेकानन्द

(श्री जे० जे० गुडविन को लिखित)

स्विट्ज़रलैण्ड
८ अगस्त, १८९६

प्रिय गुडविन,

मैं अब विश्राम कर रहा हूँ। भिन्न भिन्न पत्रों से मुझे कृपानन्द के विषय में बहुत कुछ मालूम होता रहता है। मुझे उसके लिए दुःख है। उसके मस्तिष्क में अवश्य कुछ दोष होगा। उसे अकेला छोड़ दो। तुममें से किसीको भी उसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं।

मुझे आघात पहुँचाने की देव या दानव किमीमें भी शक्ति नहीं है। इसलिए निश्चिन्त रहो। अचल प्रेम और पूर्ण निःस्वार्थ भाव की ही सर्वत्र विजय होती है। प्रत्येक कठिनाई के आने पर हम वेदान्तियों को स्वतः यह प्रश्न करना चाहिए, 'मैं इसे क्यों देखता हूँ?' 'प्रेम से मैं क्यों नहीं इस पर विजय पा सकता हूँ?'

स्वामी गग जो स्वागत किया गया, उनमें मैं अति प्रसन्न हूँ और वे जो अच्छा कार्य कर रहे हैं, उनमें भी। बड़े काम में बहुत समय तक लगातार और महान्

पुनरुत्थ—उरने की कोई बात नहीं है वन तथा अन्य वस्तुएँ सीम ही प्राप्त होंगी।

(श्री आसासिंघा पेशमस को लिखित)

स्विट्जरलैंड

८ अगस्त १८९६

प्रिय आसासिंघा

कई दिन पहले मैं अपने पत्र में तुम्हें इस बात का आभास दिया था कि मैं 'ब्रह्मचरिन्' के लिए कुछ करने की स्थिति में हूँ। मैं तुम्हें एक या दो वर्षों तक ? स्वयं माह्वार दूंगा—अर्थात् साल में १ बचता ७ पौंड—भारी भित्ति से सी रुपये माह्वार हो सके। तब तुम मुक्त होकर 'ब्रह्मचरिन्' का कार्य कर सकोगे तथा इसे और भी सफल बना सकोगे। धीमे धीमे अम्मर और कुछ मित्र कोप इकट्ठा करने में तुम्हारी सहायता कर सकते हैं—जिससे छाई बारि की सीमत पूरी हो जायगी। तब से किठनी आमदनी होती है? क्या इस काम से सेबकों को पारिव्यक्तिक देकर उनसे अच्छी सामग्री नहीं मिलवायी जा सकती? यह आवश्यक नहीं कि 'ब्रह्मचरिन्' में प्रकाशित होनेवाली सभी रचनाएँ सभी की समस्त में आये—परन्तु यह जरूरी है कि बेधमकित और सुकर्म की मावना—प्ररणा से ही लोग इसे करीबें। सोय से मेघ मतकर हिन्दुओं से है।

यों बहुत सी बातें आवश्यक हैं। पहली बात है—पूरी ईमानदारी। मेरे मन में इस बात की रती मर शंका नहीं कि तुम लोगों से से कोई भी इससे उपासीन रहोगे। बल्कि आत्मसाधिक मामलों में हिन्दुओं में एक अजीब बिकारी देखी जाती है—बेतरतीब हिस्सा-किताब और बेसिधसिधे का कारवार। दूसरी बात उद्देश्य के प्रति पूर्ण निष्ठ—यह पालते हुए कि 'ब्रह्मचरिन्' की सफलता पर ही तुम्हारी मुक्ति निर्भर करती है।

इस पत्र (ब्रह्मचरिन्) को अपना इच्छेकता बसाओ और तब देखना सफलता किस तरह आती है। मैंने अभीधानन्द को भारत से बुला मेबा है। आसा है, अन्य संस्थाओं की जाति उसे बेरी नहीं छोपी। पत्र पाठे ही तुम 'ब्रह्मचरिन्' के आय-व्यय का पूरा सेसा-ओबा भेजो बिसे देखकर मैं यह सोच सकूँ कि इसके लिए क्या किया जा सकता है? यह माव रही कि पवित्रता निस्वार्थ भावना और गुण की आभाकारिठा ही सभी सफलताओं के रहस्य हैं।

किछी वामिक पत्र की क्षमता—बिरेस में अर्धमद है। इसे हिन्दुओं की ही सहायता मिलनी चाहिए—बकि उनमें भले-बुरे का जग ही।

अथवा 'अन्धकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार साधु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोड़कर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौड़ी बातें तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे, उसके भुलावे में मत आना। सभी क्षेत्रों में 'उन्नति' नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति हो रही होगी। एक समाज में एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालों की भी है। मध्य युग में चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल में वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे में वेश्यावृत्ति अधिक। एक में शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे में उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति में गुरुत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पड़ा? क्या तुम रेड इन्डियनों (उत्तर अमेरिका के आदिवासियों) से अधिक सुखी हो?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप में जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुच्य—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो। इस ससार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।

ईश्वर व्यक्तियों की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वयं एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समझिए। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परालम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोकों में शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि बोझे से व्यक्ति असफल भी हो चार्ज हो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। संसार का यह नियम ही है कि बनेक नीचे गिरते हैं, कितने ही पुनः जाते हैं, कितनी ही मयकर कठिनाइयों सामने उपस्थित होती हैं, स्वार्थपरता तथा अन्य पुराणों का मानव रूप में बोर संघर्ष होता है। और सभी आध्यात्मिकता की अग्नि में इन सभी का विनाश होनेवाला होता है। इस समय में श्रेय का मार्ग सबसे दुर्लभ और पथरीला है। आश्चर्य की बात है कि इतने श्रेय सफलता प्राप्त करते हैं, कितने श्रेय असफल होते हैं यह आश्चर्य नहीं। सहेसों ठोकर खाकर चरित्र का मजबूत होता है।

मुझे अब बहुत ताकती मालूम होती है। मैं बिक्री से बाहर दृष्टि डालता हूँ मुझे बड़ी बड़ी हिम-नदियाँ दिखती हैं और मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं हिमालय में हूँ। मैं विस्तृत घाट हूँ। मेरे स्नायुओं ने अपनी पुरानी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली है और छोटी छोटी परेशानियाँ जिस तरह की परेशानियों का तुमने भिन्न किया है, मुझे स्वर्ण भी नहीं करती। मैं बच्चों के इस लोक से कैसे विचलित हो सकता हूँ। साधु संसार बच्चों का लोक मान है—प्रचार करना सिखा देना तथा सभी कुछ। श्रेयः स नित्यसंप्राप्तीषो न हेच्छि न कोक्षति—'उसे सम्प्राप्ती समस्तो नो न श्रेयः कप्ता है, न इच्छम कप्ता है। और इस संसार की छोटी सी कीचड़ भरी तलैया में जहाँ कुछ रोग तथा मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है, क्या है जिसकी इच्छा की जा सके? त्यागात् शान्तिरनन्तरम्—जिसने सब इच्छाओं को त्याग दिया है वही सुखी है।

यह विद्याम—नित्य और शांतिमम विद्याम—इस रमणीक स्वान में अब उसकी सफल मुझे मिल रही है। आत्मानं श्रेय विजानीयात् अपमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसहरेत्।—'एक बार वह जानकर कि इस ज्ञान का ही केवल अस्तित्व है और किन्तीका नहीं किध भी बकी या किसीके लिए इच्छा करके तुम इस शरीर के लिए कुछ उठाओये ?

मुझे ऐसा विहित होता है कि जिसकी वे लोभ 'दर्म' कहते हैं, उसका मैं अपने हित्से का अनुभव कर चुका हूँ। मैं जर पाया अब निकलने की मुझे उत्कृष्ट क्षमिकावा है। मनुष्याणां सहेषु करिषत् प्रसति सिद्धये। यततानपि सिद्धानां करिषन्मा भेति तत्पत्तः।—'सहेसों मनुष्यों में कोई एक लक्ष्य को प्राप्त करने का पल करता है। और पल करनेवाले उद्योगी पुरुषों में बोझे ही श्रेय तक पहुँचते हैं। इन्द्रियाणि प्रबाधीनि हृदन्ति प्रसर्तं पत्तः—'बयौक्ति इन्द्रियां बलवती है और वे मनुष्य को भीषे की ओर खींचती हैं।

'सामु सत्तार' मुनी जयन् और 'सामाजिक उन्नति' से सब 'उत्तम कर्तव्य'

अथवा 'अन्वकारमय प्रकाश' के समान ही हैं। यदि ससार सावु होता तो यह ससार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा, चैतन्य को जड द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझकर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है, ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं, परन्तु छोटे से अपने ममत्व को छोड़कर, सबके लिए प्रेम। वह 'मानवी उन्नति' और इसके समान जो लम्बी चौड़ी वाते तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे, उसके भुलावे में मत आना। सभी क्षेत्रों में 'उन्नति' नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति हो रही होगी। एक समाज में एक प्रकार के दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। यही बात इतिहास के विशिष्ट कालों की भी है। मध्य युग में चोर डाकू अधिक थे, अब छल-कपट करनेवाले अधिक हैं। एक विशिष्ट काल में वैवाहिक जीवन का सिद्धान्त कम है तो दूसरे में वेश्यावृत्ति अधिक। एक में शारीरिक कष्ट अधिक है, तो दूसरे में उससे सहस्र गुनी अधिक मानसिक यातनाएँ। इसी प्रकार ज्ञान की भी स्थिति है। क्या प्रकृति में गुरुत्वाकर्षण का निरीक्षण और नाम रखने से पहले उसका अस्तित्व ही न था ? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पडा ? क्या तुम रेड इन्डियनों (उत्तर अमेरिका के आदिवासियों) से अधिक सुखी हो ?

यह सब व्यर्थ है, निरर्थक है—इसे यथार्थ रूप में जानना ही ज्ञान है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। तमेवैक जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुचथ—उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो। इस ससार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य जाति को इस प्रकार पुकारना कि उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत—'जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं।' यही एकमात्र कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।

ईश्वर व्यक्तियों की एक समष्टि है। फिर भी वह स्वयं एक व्यक्ति है, उसी प्रकार जिस प्रकार मानवी शरीर एक ईकाई है और उसका प्रत्येक 'कोश' एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अश आत्मा या जीव है। इसलिए ईश्वर का अस्तित्व जीव पर निर्भर है, जैसे कि शरीर का उसके कोश पर, इसी प्रकार इसका विलोम समक्षिण। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है, तब तक दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोको में शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है, इसलिए वह समष्टिस्वरूप ईश्वर, शिवस्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ

कहा जा सकता है। मे प्रयत्न मुझ हैं और ईश्वर से सम्बन्ध होने के कारण उन्हें प्रमाणित करने के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं।

बहुत इन दोनों से पते हैं और वह कोई विशिष्ट अवस्था नहीं है। यह एक ऐसी ईकाई है जो अनेक की समष्टि से नहीं बनी। यह एक ऐसी सत्ता है जो क्रोध से लेकर ईश्वर तक सब में व्याप्त है और उसके बिना किसीका अस्तित्व नहीं हो सकता। वही सत्ता अपना बहु वास्तविक है। जब मैं सोचता हूँ 'मैं बहुत हूँ' तब मेरा ही यथार्थ अस्तित्व होता है। ऐसा ही सब के बारे में है। विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र नहीं सत्ता है।

कुछ दिन हुए इपानन्द को मिलने की मुझे अकस्मात् प्रवक्तृ इच्छा हुई। घामद वह बुद्धी का और मुझे आदर करता होगा। इसलिए मैंने उसे सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा। आज अमेरिका से लखर मिलने पर मेरी समझ में आया कि ऐसा क्यों हुआ। हिम-नदियों के पास से तोड़े हुए पुष्प मैंने उसे भेजे। कुमारी बार्न्डी से कहना कि अपना आन्तरिक स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसे कुछ बत भेज दें। प्रेम का कभी नाश नहीं होता। पिता का प्रेम अमर है सन्तान चाहे जो करे या भीमे भी हो। वह मेरा पुत्र जैसा है। जब वह बुद्ध में है इसलिए वह समान या अपन भाग से अधिक मेरे प्रेम तथा सहायता का अधिकारी है।

सुमाकाशी

दिव्यकामन्द

(भी ई टी स्टडी को लिखित)

रीड होटल सत श्री

बीके सिवट्बरलीड

८ अगस्त १८९९

महामास एवं परम प्रिय

तुम्हारे पत्र के साथ ही पत्रों का एक बड़ा पुलिका मिला। यैकामूतर न मुझको जो पत्र लिखा है उसे तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मेरे प्रति उनकी बड़ी इत्ता और गौरव्य है।

कुमारी मूलर का विचार है कि वे बहुत उत्साह इंगीजत जनी जानेंगी। तब मैं 'प्याण्टी वापिस' के शरीर हान के लिए बर्न जा मरुंगा डिगटे लिए मैंने बारा दिया था। यदि मरियन बर्गति मुझे अपने गाव के चलने की राशी हो तबे तभी मैं बौध जाऊंगा और मूषमार्य तुम्हें पढ़ें ही पत्र लिख दूँगा। मरियर बर्गति बड़ मज्दम और इत्ता है किन्तु उनकी उदारता के साथ उठाने का मुझे

अधिकार नहीं। क्योंकि वहाँ का खर्च भयानक है। ऐसी दशा में वर्न कांग्रेस में शरीक होने का विचार त्याग देना ही मेरे विचार से सर्वोत्तम है, क्योंकि बैठक सितम्बर के मध्य में होगी जिसमें अभी बहुत देर है।

अतः जर्मनी में जाने का मेरा विचार हो रहा है। वहाँ की यात्रा का अन्तिम स्थान कील होगा, जहाँ से इंग्लैंड वापस आऊँगा।

वाल गगाघर तिलक (श्री तिलक) नाम है और 'ओरायन' उनकी पुस्तक का नाम है।

तुम्हारा,
विवेकानन्द

पुनश्च—जेकबी की भी एक (पुस्तक) है—शायद उन्हीं पद्धतियों पर वह अनूदित है तथा उसके वे ही निष्कर्ष हैं।

पुनश्च—मुझे आशा है कि तुम ठहरने के स्थान और हाल के विषय में कुमारी मूलर की राय ले लोगे, क्योंकि यदि उनकी तथा अन्य लोगों की सलाह न ली गयी तो वे बहुत अप्रसन्न होगी।

वि०

कल रात कुमारी मूलर ने प्रोफेसर डॉयसन को तार भेजा और आज सबरे ९ अगस्त को तार का जवाब आ गया, जिसमें उन्होंने मेरा स्वागत किया है। १० सितम्बर को मैं कील में डॉयसन के यहाँ पहुँचनेवाला हूँ। तो तुम मुझसे कहाँ मिलोगे? कील में? कुमारी मूलर स्विट्ज़रलैंड से इंग्लैंड जा रही है, मैं सेवियर दम्पति के साथ कील जा रहा हूँ। १० सितम्बर को मैं वहाँ रहूँगा।

वि०

पुनश्च—व्याख्यान के विषय में अभी तक मैंने कुछ निर्धारित नहीं किया है। पढ़ने का मुझे अवकाश नहीं। बहुत सम्भव है कि 'सालेम सोसायटी' किसी हिन्दू सम्प्रदाय का सगठन है, क्षत्रियों का नहीं।

वि०

(श्री ई० टी० स्टर्डी को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड,
१२ अगस्त, १८९६

प्रिय श्री स्टर्डी,

आज मुझे एक पत्र अमेरिका से मिला जिसे मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मैंने उनको लिख दिया है कि मैं चाहता हूँ कि कम से कम वर्तमान प्रारम्भिक

कार्य में ध्यान केन्द्रित किया जाय। मैंने उनको यह भी समझा ही है कि कई पत्रिकाएँ शुरू करने के बजाय 'बहुभाषिन्' में अमेरिका में शिक्षित कुछ लक्ष रख कर काम शुरू करें और पचास कुछ बढ़ा दें जिससे अमेरिका में होनेवाला कार्य निरस्त जाये। पता नहीं वे क्या करेंगे।

हम सोम अमले सप्ताह जर्मनी की तरफ रवाना होंगे। जैसे हम जर्मनी पहुँचे कुमारी मूरर इम्पैण्ड रवाना हो जायेंगी।

कैप्टेन तथा श्रीमती सेवियर और मैं बीस में तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे।

मैंने अब तक कुछ नहीं सिखा और मैं कुछ पढ़ा ही है। वस्तुतः मैं पूर्ण विषाम के रूढ़ हूँ। बिम्बा न करना तुमको खेद तैयार मिलेगा। मुझे मठ से इस वाक्य का पत्र मिला है कि बृसय स्वामी रवाना होने के लिए तैयार है। मुझे आशा है कि वह तुम्हारी इच्छा के सम्मुख व्यक्ति होगा। वह हमारे संस्कृत के अच्छे विद्वानों में से है और जैसा कि मैंने सुना है उसने अपनी बंगाली काफ़ी सुधार की है। सारवानन्द के बारे में मुझे अमेरिका से अच्छाचारों की बहुत सी कठरने मिली हैं। उनसे पता चलता है कि उसने बड़ी बहुत अच्छा काम किया है। मनुष्य के अन्दर जो कुछ है उसे निरक्षित करने के लिए अमेरिका एक अत्यन्त सुन्दर प्रशिक्षण केन्द्र है। बहूँ का वातावरण कितना सहानुभूतिपूर्ण है। मुझे मुद्रविन तथा सारवानन्द के पत्र मिले हैं। सारवानन्द में तुमको श्रीमती स्टर्डी तथा अच्छे को स्नेह भेजा है।

मुभाकांसी
विश्वकालम्

(श्रीमती जोति बाल को लिखित)

स्युडनि सिव्द्वरलैण्ड
२३ अगस्त १८९९

प्रिय श्रीमती बाल

आपका अन्तिम पत्र मुझे आज मिला आपके भेजे हुए ५ पौंड की रसीद अब तक आपकी मिल चुकी हुई। आप जो सदस्य होने की बात लिखी है, उस में टीक ठीक नहीं समझा गया फिर भी किसी सत्वा की सत्य-शुची में मेरे नामोस्तान के सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु इन विषय में स्टर्डी का क्या अभिमत है मैं नहीं जानता। मैं हम समय सिव्द्वरलैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ। यहाँ मैं जर्मनी जाऊँगा बाद में इंग्लैण्ड जाता है तथा अगले जाड़े में भारत। यह जानकर कि सारवानन्द तथा मुद्रविन अमेरिका में अच्छी तरह से प्रचार-वार्ता

चला रहे हैं, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मेरी अपनी बात तो यह है कि किसी कार्य के प्रतिदान स्वरूप मैं उस ५०० पाँड पर अपना कोई हक कायम करना नहीं चाहता। मैं तो यह समझता हूँ कि मैं काफी परिश्रम कर चुका। अब मैं अवकाश लेने जा रहा हूँ। मैंने भारत से एक और व्यक्ति माँगा है, आगामी माह मे वह मेरे पास आ जायगा। मैंने कार्य प्रारम्भ कर दिया है, अब दूसरे लोग उसको पूरा करे। आप तो देखती ही है कि कार्य को चालू करने के लिए कुछ समय के लिए मुझे रुपया-पैसा छूना पडा। अब मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरा कर्तव्य समाप्त हो चुका है। वेदान्त अथवा जगत् के अन्य किसी दर्शन अथवा स्वयं कार्य के प्रति अब मुझे कोई आकर्षण नहीं है। मैं प्रस्थान करने के लिए तैयारी कर रहा हूँ—इस जगत् मे, इस नरक मे, मैं फिर लौटना नहीं चाहता। यहाँ तक कि इस कार्य की आध्यात्मिक उपादेयता के प्रति भी मेरी अरुचि होती जा रही है। मैं चाहता हूँ कि माँ मुझे शीघ्र ही अपने पास बुला लें! फिर कभी मुझे लौटना न पड़े।

ये सब कार्य तथा उपकार आदि कार्य चित्तशुद्धि के साधन मात्र हैं, इसे मैं बहुत देख चुका। जगत् अनन्त काल तक सदैव जगत् ही रहेगा। हम लोग जैसे हैं, वैसे ही उसे देखते हैं। कौन कार्य करता है और किसका कार्य है? जगत् नामक कोई भी वस्तु नहीं है, यह सब कुछ स्वयं भगवान् हैं। भ्रम से हम इसे जगत् कहते हैं। यहाँ पर न तो मैं हूँ और न तुम और न आप—एकमात्र वही है, प्रभु—**एकमेवाद्वितीयम्**। अतः अब रुपये-पैसे के मामलो से मैं अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। यह सब आप लोगो का ही पैसा है, आप लोगो को जो रुपया मिले, आप अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करें। आप लोगो का कल्याण हो।

प्रभुपदाश्रित, आपका

विवेकानन्द

पुनश्च—डॉक्टर जेन्स के कार्य के प्रति मेरी पूर्ण सहानुभूति है एव मैंने उनको यह बात लिख दी है। यदि गुडविन तथा सारदानन्द अमेरिका मे कार्य को बढ़ा सकते हैं तो भगवान् उन्हें सफलता दे। स्टर्डी के, मेरे अथवा अन्य किसी के पास तो उन्होंने अपने को गिरवी नहीं रखा। 'ग्रीनएकर' के कार्यक्रम मे यह एक मारी भूल हुई है कि उसमे यह छापा गया है कि स्टर्डी ने कृपा कर सारदानन्द को वहाँ रहने की (इग्लैण्ड से अवकाश लेकर वहाँ रहने की) अनुमति प्रदान की है। स्टर्डी अथवा और कोई एक सन्धासी को अनुमति देनेवाला कौन होता है? स्टर्डी को स्वयं इस पर हँसी आयी और खेद भी हुआ। यह निरी मूर्खता है, और

कुछ भी नहीं। यह स्टर्लिंग का अपमान है, और यह समाचार यदि भारत में पहुँच जाता तो मेरे कार्य में अल्पतः हानि होती। श्रीभाम्यबस मैंने उन विज्ञापना को टुकड़े टुकड़े कर फाड़कर मासी में फेंक दिया है। मुझे आश्चर्य है कि क्या यह बही प्रसिद्ध 'यान्की' आचरण है जिसके बारे में बातें करके अंग्रेज साय मजा करते हैं? यहाँ तक कि मैं खुद भी जगन् के एक भी संन्यासी का स्वामी नहीं हूँ। संन्यासियों को जो कार्य करना उचित प्रतीत होता है उसे वे करते हैं और मैं चाहता हूँ कि मैं उनकी कुछ सहायता कर सकूँ—बस इतना ही उनसे मेरा सम्बन्ध है। पारिवारिक बन्धन स्त्री लोहे की साँकल में लौड़ चुका हूँ—जब मैं बर्मसंघ की छोने की साँकल पहिनना नहीं चाहता। मैं मुक्त हूँ सदा मुक्त रहूँगा। मेरी अभिप्राया है कि सभी कोई मुक्त हो जायें—वायु के समान मुक्त। यदि स्पूमार्क बोस्टन मजदूरा अमेरिका के अस्य किसी स्वस के निवासी बेवान्त बर्षों के लिए आपहृसील हो तो उन्हें बेवान्त के आचार्यों को आदरपूर्वक ग्रहण करना उनको बेखमाक तथा उनके प्रतिपात्म की ध्यवस्था करनी चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है मैं तो एक प्रकार से अशकाश के चुका हूँ। जगत् की नाट्यशाला में मेरा अभिनय समाप्त हो चुका है।

भगवीन
त्रिवेदानन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

लेक स्पूकनि रिब्ट्बरलैण्ड

२३ अक्ट १८९६

प्रिय शशि

आज रामदयाल बाबू का पत्र मुझे मिला जिसमें वे लिखते हैं कि दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण के वार्षिकोत्सव के दिन बहुत सी बेस्मारें वहाँ आयी थीं इसलिए बहुत से लोगों को वहाँ जाने की इच्छा कम होती है। इसके अतिरिक्त उनके विचार से पुण्यी के जाने के लिए एक दिन निम्नक्त होना चाहिए और स्त्रियों के लिए दूसरा। इस विषय पर मेरा निर्णय यह है

१ यदि बेस्मारों को दक्षिणेश्वर जैसे महान् तीर्थ में जाने की अनुमति नहीं है, तब वे और कहीं जायें। ईश्वर विशेषकर पाप्मियों के लिए प्रकट होते हैं, पुण्यवालों के लिए कम।

२ किंग जाति बन दिशा और इनके समान और बहुत सी बस्तों के बेध-धारों को जो साम्राज्य नरक के द्वार हैं संसार में ही सीमाबद्ध रहने दी। यदि

तीर्थों के पवित्र स्थानों में ये भेदभाव बने रहेंगे तो उनमें और नरक में क्या अन्तर रह जायगा ?

३ अपनी विशाल जगन्नाथपुरी है, जहाँ पापी और पुण्यात्मा, महात्मा और दुरात्मा, पुरुष, स्त्री और बालक—बिना किसी उम्र अथवा अवस्था के भेदभाव के—सबको समान अधिकार है। वर्ष में कम से कम एक दिन के लिए सहस्रों स्त्री-पुरुष पाप और भेदभाव से छुटकारा पाते हैं और परमात्मा का नाम सुनते और गाते हैं। यह स्वयं परम श्रेय है।

४ यदि तीर्थस्थान में भी एक दिन के लिए लोगों की पापप्रवृत्ति पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, तब समझो कि दोष तुम्हारा है, उनका नहीं। आध्यात्मिकता की एक ऐसी शक्तिशाली लहर उठा दो कि उसके समीप जो भी आ जायें, वे उसमें बह जायें।

५ जो लोग मन्दिर में भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, दरिद्र है तथा यह मामूली आदमी है—ऐसे लोगों की सख्या (जिन्हें तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना ही अच्छा। क्या वे लोग, जो भक्तों की जाति, लिंग या व्यवसाय देखते हैं, हमारे प्रभु को समझ सकते हैं ? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकड़ों वेश्याएँ आयें और 'उनके' चरणों में अपना सिर नवायें, और यदि एक भी सज्जन न आये तो भी कोई हानि नहीं। आओ वेश्याओ, आओ शराबियों, आओ चोरो, सब आओ—श्री प्रभु का द्वार सबके लिए खुला है। 'It is easier for a camel to pass through the eye of a needle than for a rich man to enter the Kingdom of God' (घनवान का ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छेद में घुसना सहज है।) कभी कोई ऐसे क्रूर और राक्षसी भावों को अपने मन में न आने दो।

६ परन्तु कुछ सामाजिक सावधानी की आवश्यकता है—हम यह कैसे रख सकते हैं ? कुछ पुरुष (यदि वृद्ध हो तो अच्छा हो) पहरेदारी का भार दिन भर के लिए ले लें। वे उत्सव के स्थान में परिभ्रमण करें, और यदि वे किसी पुरुष अथवा स्त्री की बातचीत या आचरण में अशिष्ट व्यवहार पायें तो वे उन्हें तुरन्त ही उद्यान से निकाल दें। परन्तु जब तक शिष्ट स्त्री-पुरुषों के समान उनका आचरण रहे, तब तक वे भक्त हैं और आदरणीय हैं—चाहे वे पुरुष हो या स्त्री, सच्चरित्र या दुश्चरित्र।

मैं इस समय स्विट्ज़रलैण्ड में भ्रमण कर रहा हूँ और प्रोफेसर डॉयसन से भेंट करने शीघ्र ही जर्मनी जानेवाला हूँ। वहाँ से मैं २३ या २४ सितम्बर तक

इंग्लैण्ड लौटकर आऊँगा और आपापी आड़े में तुम मुझे भारत में पाओगे। तुम्हें और सबको मेरा प्यार।

तुम्हाण
द्विवेकानन्द

(डॉ० ननुन्दा राव की लिखित)

स्विट्जरलण्ड,
२९ अगस्त १८९९

प्रिय ननुन्दा राव

मुझे तुम्हाण पर अभी भिन्ना। मैं बराबर भूय रहा हूँ मैं आल्प्स के बहुत से पहाड़ों पर चढ़ा हूँ और मैंने कई हिम नदियाँ पार की हैं। अब मैं जर्मनी जा रहा हूँ। प्रोफेसर डॉयसन ने मुझे कौल जाने का निमन्त्रण दिया है। वहाँ से मैं इंग्लैण्ड आऊँगा। सम्भव है कि इसी रातों में मैं भारत लौटूँ।

मैंने 'प्रकृत भारत' के मूल-गुण की विज्ञान की वित्त बात पर आपत्ति की थी यह सिद्ध हमारा फूटफुल ही नहीं था बल्कि इसमें अनेक बिजों की निरदोष भरमार भी है। विज्ञान परल प्रतीकारमक एवं सधिया होनी चाहिए। मैं 'प्रकृत भारत' के लिए लम्बन में विज्ञान बनाने की कोशिश करूँगा और तुम्हारे पास गे भेजूँगा।

मुझ बड़ा हर्ष है कि काम अतिमुन्दर रूप से चल रहा है। परन्तु मैं तुम्हें एक मन्त्राह भूँगा। भारत में जो काम सामे में होता है वह एक दीप के बोग से चल जाता है। हमने अभी तक व्यावसायिक दृष्टिकोण नहीं विकसित किया। अपने वास्तविक अर्थ में व्यवसाय व्यवसाय ही है, मित्रता नहीं जैसी कि हिन्दू कहाता है 'मूर्खता' न होनी चाहिए। अपने विषय जो विज्ञान-विज्ञान ही वह बना ही जगत् के लाना चाहिए और अभी एक कोर का मन रिगी दूसरे काम न बसायि न लाना चाहिए, चाहे दूसरे काम भूय ही क्यों न रहना पड़े। यही है व्यावसायिक ईमानदारी। दूसरी बात यह है कि कार्य करने की बहुत शक्ति होती चाहिए। जो कुछ तुम करने ही उग समय के लिए तुम अपनी पूरा मदमी। इन समय इन परिभा का बनना ईश्वर बना ला और तुम्हें गणना जान होनी।

तुम इन परिभा के मन्त्रान के मन्त्रान दान के बाद इसी प्रकार भारतीय बनानी में—अभिना लेखन और बरक आदि में—भी बरकतार्थ भूय करी। भारतीय तुम्हारा है तुम्हारी है यह सब कुछ है परन्तु लेख बनाने होगा है कि सदावर्ती की आपत्ति के लक्षण का भाव ली दिया है।

मेरे बच्चों को मर्घर्ष में कूदना होगा, ससार त्यागना होगा—तब दृढ़ नीव पड़ेगी।

वीरता से आगे बढ़ो—डिजाइन और दूसरी छोटी छोटी बातों की चिन्ता न करो—‘घोड़े के साथ लगाम भी मिल जायगी।’ मृत्युपर्यन्त काम करो—मैं तुम्हारे साथ हूँ, और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है—नाम, यश, भोग, यह सब थोड़े दिन के हैं। ससारी कीड़े की तरह मरने से अच्छा है—कहीं अधिक अच्छा है कर्तव्य क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढ़ो।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

(स्वामी कृपानन्द को लिखित)

स्विट्ज़रलैंड,
अगस्त, १८९६

प्रिय कृपानन्द,

तुम पवित्र तथा सर्वोपरि निष्ठावान बनो, एक मुहूर्त के लिए भी भगवान् के प्रति अपनी आस्था न खोओ, इसीसे तुम्हें प्रकाश दिखायी देगा। जो कुछ सत्य है, वही चिरस्थायी बनेगा, किन्तु जो सत्य नहीं है, उसकी कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। आधुनिक समय में तीव्र गति से प्रत्येक वस्तु की खोज की जाती है, इस समय हमारा जन्म होने के कारण हमें बहुत कुछ सुविधा प्राप्त हुई है। और लोग चाहे कुछ भी क्यों न सोचें, तुम कभी अपनी पवित्रता, नैतिकता तथा भगवत्प्रीति के आदर्श को छोटा न बनाना। सभी प्रकार की गुप्त सस्थाओं से सावधान रहना, इस बात का सबसे अधिक ख्याल रखना। भगवत्प्रेमियों को किसी इन्द्रजाल से नहीं डरना चाहिए। स्वर्ग तथा मर्त्य लोक में सर्वत्र केवल पवित्रता ही सर्वश्रेष्ठ तथा दिव्यतम शक्ति है। सत्यमेव जयते नानृतम्, सत्येन पन्था विततो देवयान । —‘सत्य की ही जय होती है, मिथ्या की नहीं, सत्य के ही मध्य होकर देवयान मार्ग अग्रसर हुआ है’ कोई तुम्हारा सहगामी बना या न बना, इस विषय को लेकर माथापच्ची करने की आवश्यकता नहीं है, केवल प्रभु का हाथ पकड़ने में भूल न होनी चाहिए, वस इतना ही पर्याप्त है।

कल मैं ‘मॉन्टि रोसा’ हिमनद के किनारे गया था तथा चिरकालिक हिम के प्राय मध्य में उत्पन्न कुछ एक सदाबहार फूल तोड़ लाया था। उनमें से एक इस पत्र के अन्दर रखकर तुम्हारे लिए भेज रहा हूँ—आशा है कि इस पार्थिव जीवन के समस्त

हिम तथा गर्द के बीच में तुम भी उसी प्रकार की आध्यात्मिक वृद्धि प्राप्त करोगे।

तुम्हारा स्वप्न बलि सुन्दर है। स्वप्न में हमें अपने एक ऐसे मानसिक 'स्तर' का परिचय मिलता है, जिसकी अनुमति वास्तव जगत् में नहीं होती और कल्पना चाहे कितनी ही क्याही क्यों न हो—जगत आध्यात्मिक सत्य तथा कल्पना के पीछे रहते हैं। साहस से काम लो। मानव जाति के कल्याण के लिए हम यथासाम्य प्रयास करेंगे। वेप सब प्रभु पर निर्भर है।

अधीर न बनो उतावली न करो। धैर्यपूर्वक एकनिष्ठ तथा शान्तिपूर्वक कर्म के द्वारा ही सफलता मिलती है। प्रभु सर्वोपरि है। बस हम जबस्य सफल होंगे—सफलता जबस्य मिलेगी। 'उसका' नाम धन्य है।

अमेरिका में कोई आशय नहीं है। यदि एक आशय होता तो क्या ही सुन्दर होता। उससे मुझे न जाने कितना आनन्द मिलता और उसके द्वारा इस देश का न जाने कितना कल्याण होता।

शुभाकांक्षी
द्विवेकानन्द

(पी ई टी स्टडी को लिखित)

कील

१ सितम्बर, १८९९

प्रिय मित्र

आखिर प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरी भेंट हुई। उनके साथ वर्तनीय स्वार्थों को देखने तथा वेदान्त पर विचार-विमर्श करने में कल का सारा दिन बहुत ही अच्छी तरह बीता।

मैं समझता हूँ कि वे एक सड़ाक जाँतवादी (A warring Advaitist) है। जाँतवाद को छोड़कर और किसी से वे कुछ करना नहीं चाहते। 'द्वैत' धर्म से वे आकर्षित हो उठते हैं। यदि उनसे सम्मेलन होता तो वे इसको एकदम निर्मूलक कर देते। मासिक पत्रिका सम्बन्धी तुम्हारी योजना से वे अत्यन्त आनन्दित हैं तथा इस बारे में तुम्हारे साथ कल्पन में विचार-विमर्श करना चाहते हैं। चीज ही वे नहीं जा रहे हैं।

शुभाकांक्षी
द्विवेकानन्द

(कुमारी हैरियेट हेल को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,

विम्बलडन, इंग्लैण्ड,

१७ सितम्बर, १८९६

प्रिय वहन,

स्विट्ज़रलैण्ड से यहाँ वापस आने पर अभी अभी तुम्हारा अत्यन्त शुभ समाचार मिला। 'चिरकुमारी आश्रम' (Old Maids Home) में प्राप्य सुख के बारे में आखिर तुमने अपना मतपरिवर्तन किया है, उससे मुझे बहुत ही खुशी हुई। अब तुम्हारा यह सिद्धान्त विल्कुल ठीक है कि नब्बे प्रतिशत व्यक्तियों के लिए विवाह जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है, और जब वे इस चिरन्तन सत्य का अनुभव कर उसका अनुसरण करने को प्रस्तुत हो जायेंगे, उन्हें सहनशीलता और क्षमाशीलता अपनाती पड़ेगी तथा जीवन-यात्रा में मिल-जुल कर चलना पड़ेगा, तभी उनका जीवन अत्यन्त सुखपूर्ण होगा।

प्रिय हैरियेट, तुम यह निश्चित जानना कि 'सम्पन्न जीवन' में अन्तर्विरोध है। अतः हमें सर्वदा इस बात की सम्भावना स्वीकार करनी चाहिए कि हमारे उच्चतम आदर्श से निम्न श्रेणी की ही वस्तुएँ हमें मिलेगी, यह समझ लेने पर प्रत्येक वस्तु का हम अधिक से अधिक सदुपयोग करेंगे। मैं जहाँ तक तुमको जानता हूँ, उससे मेरी धारणा बनी है कि तुम्हारे अन्दर ऐसी प्रशान्त शक्ति विद्यमान है, जो क्षमा तथा सहनशीलता से पर्याप्त पूर्ण है। अतः मैं निश्चित रूप से यह भविष्यवाणी कर सकता हूँ कि तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त सुखमय होगा।

तुम तथा तुम्हारे वाग्दत्त पति को मेरा आशीर्वाद। प्रभु तुम्हारे पति के हृदय में सर्वदा यह बात जाग्रत रखें कि तुम जैसी पवित्र, सच्चरित्र, बुद्धिशालिनी, स्नेहमयी तथा सुन्दरी सहवर्मािणी को पाना उनका सौभाग्य था। इतने शीघ्र 'अटलांटिक' महासागर पार करने की मेरी कोई सम्भावना नहीं है, यद्यपि मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि तुम्हारे विवाह में उपस्थित रहूँ।

ऐसी दशा में हम लोगो की एक पुस्तक में से कुछ अंश उद्धृत करना ही मेरे लिए उत्तम है 'अपने पति को इहलोक की समस्त काम्य वस्तुओं की प्राप्ति करने में सहायता प्रदान कर, तुम सर्वदा उनके ऐकान्तिक प्रेम की अधिकारिणी बनो, अनन्तर पौत्र-पौत्रियों की प्राप्ति के बाद जब आयु समाप्त होने लगे, तब जिस सच्चिदानन्द सागर के जलस्पर्श से सब प्रकार के विभेद दूर हो जाते हैं एव हम सब एक में परिणत होते हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिए तुम दोनों परस्पर सहायक बनो।'

जमा की तरह तुम जीवन भर पवित्र तथा निष्काम रहो तथा तुम्हारे पति का जीवन शिब जैसा समापनप्राप्त हो !

तुम्हारा स्नेहाशील भाई
बिबेकानन्द

(कुमायी मेरी हस्त को लिखित)

एमएलसी साँज रिजवे पार्सन्स
बिम्बस्वत इन्डिया
१७ सितम्बर, १८९९

प्रिय बहन

स्विट्जरलैण्ड में ही महीन तक पर्यटारोहण पद-यात्रा और हिमनदों का दृश्य देखने के लिए आज सम्पन्न पहुँचा। इससे मुझे एक काम हुआ—घरिीर का व्यर्थ का मुटापा छँट गया और बचन कुछ पीड़ा बट गया। ठीक किन्तु उसमें भी शौरियत नहीं क्योंकि इस जन्म में जो ठोस शरीर प्राप्त हुआ है, उसने अत्यन्त विस्तार की होड़ में मन को मात देने की ठान रखी है। अगर यह रबैया जारी रहा तो मुझे बस्थ ही अपने शारीरिक रूप में अपनी व्यक्तिगत पहिचान खोनी पड़ेगी—कम से कम सब सारी बुनियाद की निगाह में।

शौरियट के पत्र के मूम संबाव से मुझे जो प्रसन्नता हुई, उसे सत्रों में व्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है। मैंने उसे आज पत्र लिखा है। खेद है कि उसके बिबाह के अवसर पर मैं न आ सकूँगा किन्तु समस्त धूमकामनाओं और आशीर्वातों के साथ मैं अपने 'सूक्ष्म शरीर' से उपस्थित रहूँगा। और, अपनी प्रसन्नता की पूर्णता के निमित्त मैं तुमसे तथा अन्य बहनों से भी इसी प्रकार के समाचार की अपेक्षा करता हूँ।

इस जीवन में मुझे एक बड़ी नसीहत मिली है, और प्रिय मेरी मैं अब उसे तुम्हें बताना चाहता हूँ। वह है—'जितना ही ऊँचा तुम्हारा ध्येय होया उतना ही अधिक तुम्हें सन्तुष्ट होना पड़ेगा। कारण यह है कि 'संसार में' अबका इस जीवन में भी आदर्श नाम की वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती। जो संसार में पूर्णता चाहता है वह पागल है क्योंकि वह ही नहीं सकती।

असीम में असीम तुम्हें कैसे मिलेगा? इनलिए मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि शौरियट का जीवन अत्यन्त आनन्दमय और सुखमय होया क्योंकि वह इतनी कल्पनाशील और साबुक्त नहीं है कि अपने को मूर्ख बना ले। जीवन को सुमधुर बनाने के लिए उसमें पर्याप्त साबुक्ता है और जीवन की कठोर गुलियों

को, जो प्रत्येक के सामने धानी ही है, मुलजान के लिए उगमे काफी समझदारी तथा कोमलता भी है। उनमें भी अधिक मात्रा में वे ही गुण मैकारिकटले में भी है। वह ऐसी लडकी है जो सर्वोत्तम पत्नी होने लायक है, पर यह दुनिया ऐसे मूढ़ों की खान है कि इन्-गिने लोग ही आन्तर्गिक मीन्द्र्य पर्य पाते हैं। जहाँ तक तुम्हारा और आइसावेल का मवाल है, मैं तुम्हें मच बताऊँगा और मेरी भाषा स्पष्ट है।

मेरी, तुम तो एक बहादुर बरख जैनी हो—गानदार और भव्य। तुम भव्य राजमहिषी बनने योग्य हो—शारीरिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से भी। तुम किसी तेज-नरक, बहादुर और जोशिम उठानेवाले वीर पति की पार्श्ववर्ती बन कर चमक उठोगी, किन्तु प्रिय बहन, पत्नी के रूप में तुम खराब में खराब मिट्ट होगी। सामान्य दुनिया में जो आराम में जीवन व्यतीत करनेवाले, व्यावहारिक तथा कार्य के बोझ से पिननेवाले पति हुआ करते हैं, उनकी तो तुम जान ही निकाल लोगी। सावधान, बहन, यद्यपि किसी उपन्यास की अपेक्षा वास्तविक जीवन में अधिक रूमानिबत है, लेकिन वह है बहुत कम। अतएव तुम्हें मेरी मलाह है कि जब तक तुम अपने आदर्शों को व्यावहारिक स्तर पर न ले आ सको, तब तक हरगिज विवाह मत करना। यदि कर लिया तो दोनों का जीवन दुःखमय होगा। कुछ ही महीनों में सामान्य कोटि के उत्तम, भले युवक के प्रति तुम अपना सारा आदर खो बैठोगी और तब जीवन नीरस हो जायगा। बहन आइसावेल का स्वभाव भी तुम्हारे ही जैसा है। अन्तर इतना ही है कि किडरगार्टन की अध्यापिका होने के नाते उसने धैर्य और सहिष्णुता का अच्छा पाठ सीख लिया है। सम्भवत वह अच्छी पत्नी बनेगी।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक कोटि तो उन लोगों की है जो दृढ़ स्नायुओवाले, शान्त तथा प्रकृति के अनुरूप आचरण करनेवाले होते हैं, वे अधिक कल्पनाशील नहीं होते, फिर भी अच्छे, दयालु, सौम्य आदि होते हैं। दुनिया ऐसे लोगों के लिए ही है—वे ही सुखी रहने के लिए पैदा हुए हैं। दूसरी कोटि उन लोगों की है जिनके स्नायु अधिक तनाव के हैं, जिनमें प्रगाढ़ भावना है, जो अत्यधिक कल्पनाशील हैं, सदा एक क्षण में बहुत ऊँचे चले जाते हैं और दूसरे क्षण नीचे उतर आते हैं—उनके लिए सुख नहीं। प्रथम कोटि के लोगों का सुख-काल प्रायः सम होता है और द्वितीय कोटि के लोगों को हर्ष विषाद के द्वन्द्व में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। किन्तु इसी द्वितीय कोटि में ही उन लोगों का आविर्भाव होता है, जिन्हें हम प्रतिभासम्पन्न कहते हैं। इस हाल के सिद्धान्त में कुछ सत्य है कि प्रतिभा एक प्रकार का पागलपन है।'

इस कोटि के सोम यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें बारे-ब्यारे की छार्ई छद्मी होगी—मुझ के लिए मैदान छाक करना पड़ेगा। कोई बोल नहीं—न पारु न जाता न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आवश्यकता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'भाव' के प्रति और उसीके निमित्त पीना-भरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वैशान्त का भाव ग्रहण किया है और 'मुज के लिए मैदान छाक कर लिया है। तुम और आइसाबेक भी इसी कोटि में हो परन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ मद्यपि है यह कट्टु सत्य कि 'तुम सोय अपना जीवन व्यर्थ बीगट कर रही हो। या तो तुम सोय एक भाव ग्रहण कर लो, तन्निमित्त मैदान छाक कर लो और जीवन अर्पित कर दो या समुप्य एवं व्यावहारिक बनो आदर्श नीपा करो विवाह कर लो एवं 'मुग्रमय जीवन' स्वीकृत करो। या तो 'मोग' या 'योग'—सांसारिक सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। एक साथ दोनों की उपसर्पि किसीकी नहीं हो सकती। अभी या फिर कभी नहीं—नोध चुन लो। बहावत है कि 'जो बहुत लक्ष्मीय होता है उगके हाथ कुछ नहीं समझता। अब मध्ये दिस से वास्तव में और मग के लिए कम-संपाद के लिए 'मैदान माफ करने' का संकल्प करो कुछ भी से लो, दर्शन या विज्ञान या पर्य अपवा साहित्य कुछ भी से लो और अपने सोय जीवन के लिए उगीका करना ईश्वर बना लो। या तो मुग ही लाग करो या मतामता। मुहारे और आइसाबेक के प्रति मेरी सगामुभूति नहीं मुमने इमे पुना है न जो। मैं मुहें मुगी—बैसा कि ईरिपट मे ठीक ही पुना है—अपवा 'महान्' देवता बारा है। भोजन अद्यान श्रुवार तथा सामाजिक अस्हृफान ऐसी सम्पुर्ण नहीं कि जीवन को उगत ह्वाक कर दो—विषयत तुम मेरी। तुम एक उरुष्ट मन्वित और पाण्ड्यार्षी में चुन लगने से नहीं हो विमत लिए बरा भी बारा नहीं है। तुमय बतान् बनन की बालबावांता होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन बालिवा का सम्बन्ध भाव में पश्य बरागी बपारि मुहें मानव है कि मैं मुहें बतन दत बर जो मग्गीका बरा है बैसा ही या उगत भी अर्पित मुहें प्यार बरा है। इी बतान का मग बतन करने में विचार का और जों जों अनुभव बरा या महा है तो ली इमे बत देने का विचार हो बत है। ईरिपट मे या लोबन मयावार मिया उगत हान् मुहें बत मय करने को अंगित ह्वा। लहात की विवाहित है। बारे और मुगी होे बर जों तद इन मयात में मय मुल्य ही मरना है बत बेश्वर मरी हीर्द अपवा मैं मुहारे बारे में बत मुवता बतन बरनेत कि मय बतान् काई बर नहीं हो।

अबदी के इन्तरेण इन्तरेण मे मेरी भेद बरेणत की। बरे विषय-व है कि

तुमने मुना होगा कि वे जीवित जर्मन दार्शनिकों में सर्वश्रेष्ठ हैं। हम दोनों साथ ही इंग्लैंड आये और आज साथ ही यहाँ अपने मित्र से मिलने आये, जहाँ इंग्लैंड के प्रवास-काल में मैं ठहरनेवाला हूँ। सस्कृत में वार्तालाप उन्हें अत्यन्त प्रिय है और पाश्चात्य देशों में सस्कृत के विद्वानों में वे ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो उसमें वातचीत कर सकते हैं। वह अभ्यस्त वनना चाहते हैं, इसलिए सस्कृत के सिवा अन्य किसी भाषा में वे मुझसे बातें नहीं करते।

यहाँ मैं अपने मित्रों के बीच आया हूँ, कुछ सप्ताह कार्य करूँगा और तब जाडो में भारत वापस लौट जाऊँगा।

तुम्हारा सदैव सस्नेह भाई,
विवेकानन्द

(श्री आलामिंगा पेरुमल को लिखित)

द्वारा कुमारी मूलर,
एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्बलडन, इंग्लैंड,
२२ सितम्बर, १८९६

प्रिय आलामिंगा,

मैक्समूलर द्वारा लिखित रामकृष्ण पर जो लेख मैंने तुम्हें भेजा था, आशा है मिला होगा। उन्होंने कहीं भी मेरे नाम की चर्चा नहीं की है—इसके लिए दुःखित मत होना। क्योंकि मुझसे परिचय होने के छ माह पूर्व उन्होंने यह लेख लिखा था। और, यदि उनका मूल वक्तव्य सही है तो फिर इससे क्या लेना देना कि किसका नाम उन्होंने लिया और नहीं लिया। जर्मनी में प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरा समय आनन्दपूर्वक कटा। इसके बाद हम दोनों साथ ही लन्दन आये और हमारी मित्रता घनिष्ठ हो गयी है।

मैं शीघ्र ही उनके सम्बन्ध में एक लेख भेज रहा हूँ। सिर्फ एक प्रार्थना है, मेरे लेख के पहले पुराने ढग का—‘प्रिय महाशय’ मत जोडा करो। तुमने ‘राजयोग’ पुस्तक अभी तक देखी है या नहीं, इस वर्ष के लिए मैं एक प्रारूप भेजने की चेष्टा करूँगा। मैं तुम्हें ‘डेली न्यूज’ में प्रकाशित रूस के जार द्वारा लिखित यात्रा-पुस्तक की समीक्षा भेज रहा हूँ। जिस परिच्छेद में उन्होंने भारत को अध्यात्म और ज्ञान का देश कहा है—उसको तुम अपने पत्र में उद्धृत करके एक निबन्ध ‘इंडियन मिरर’ को भेज दो।

तुम ज्ञानयोग के व्याख्यान को खुशी से प्रकाशित कर सकते हो। और

इस कोटि के लोग यदि महान् बनना चाहें तो उन्हें बारे-ब्यारे की कर्तव्य कर्मनी होनी—मुझ के लिए मैदान साफ़ करना पड़ेगा। कोई बौद्ध नहीं—ब बोक न पाठा न बच्चे और न किसी वस्तु के प्रति आबन्धकता से अधिक आसक्ति। अनुरक्ति केवल एक 'मात्र' के प्रति और उसीके निमित्त जीना-भरना। मैं इसी प्रकार का व्यक्ति हूँ। मैंने केवल वेदान्त का मात्र ग्रहण किया है और 'मुझ' के लिए मैदान साफ़ कर लिया है। तुम और आइसाबेल भी इसी कोटि में हो परन्तु मैं तुम्हें बता देना चाहता हूँ मद्यपि है यह कष्ट सत्य कि 'तुम लोग अपना जीवन व्यर्थ जीवत कर रही हो। या तो तुम लोग एक मात्र ग्रहण कर जो तन्निमित्त मैदान साफ़ कर लो और जीवन अर्पित कर दो या सन्तुष्ट एवं व्यावहारिक बनो आदर्श लीला करो विवाह कर लो एवं 'सुखमय जीवन' व्यतीत करो। या तो 'भोग' या 'भोग्य'—सांसारिक सुख भोगो या सब त्याग कर योगी बनो। 'एक साथ दोनों की उपरकम्पि किसीको नहीं हो सकती। जमी या फिर कभी नहीं—सीधे चुन लो। कहावत है कि 'जो बहुत विशेष होता है, उसके हाथ कुछ नहीं लगता। अब अपने दिम से वास्तव में और सदा के लिए कर्म-संधान के लिए 'मैदान साफ़ करने' का संकल्प करो कुछ भी से लो धर्मन या विज्ञान या कर्म अथवा साहित्य कुछ भी ले लो और अपने शेष जीवन के लिए उसीको अपना ईश्वर बना लो। या तो मुझ ही काम करो या महानता। तुम्हारे और आइसाबेल के प्रति मेरी सहानुभूति नहीं तुमने इसे चुना है न उसे। मैं तुम्हें सुखी—जैसा कि हीरियट ने ठीक ही चुना है—अथवा 'महान्' बनना चाहता हूँ। भोजन मद्यपान श्रृंगार तथा सामाजिक बहुरूपन ऐसी वस्तुएँ नहीं कि जीवन को उनके हवाले कर दो—विशेषतः तुम मेरी। तुम एक उत्कृष्ट मस्तिष्क और पोष्यताओं में चुन लगने दे रही हो जिसके लिए जरा भी कारण नहीं है। तुममें महान् बनने की महत्वाकांक्षा होनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम मेरी इन कट्टरताओं को समुचित मात्र से ग्रहण करोगी क्योंकि तुम्हें माकूम है कि मैं तुम्हें बहल कह कर जो सम्बोधित करता हूँ जैसा ही या उससे भी अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ। इसे कताने का भेदा बहुत पहले से विचार बा और ज्यों ज्यों अनुभव बढ़ता जा रहा है, त्यों त्यों इसे बता देने का विचार हो रहा है। हीरियट से भी हर्षमय समाचार मिला उससे इत्यत् तुम्हें यह सब कहने को प्रेरित हुआ। तुम्हारे भी विवाहित हो जाने और सुखी होने पर, जहाँ तक इस संसार में तुम मुक्त हो सकती हो, मुझे बहल नहीं हीगी अथवा मैं तुम्हारे बारे में यह सुनना पसन्द करनेवा कि तुम महान् कार्य कर रही हो।

अर्जन्ती मैं प्रीसेजर डायमन से मेरी भेंट मजेश्वर की। मुझे विश्वास है कि

सदा सहायता मिलती थी तथा जो मुझमें शक्ति एवं उत्साह का संचार करता था। और कई हजार मील की दूरी के बावजूद वही मुखमंडल मेरे मनश्चक्षु के सम्मुख उदित हुआ, क्योंकि उस अतीन्द्रिय भूमि में दूरत्व का स्थान ही कहाँ है? अस्तु, तुम तो अपने शान्तिमय तथा पूर्ण विश्रामदायक घर लौट चुकी हो—परन्तु मेरे समक्ष प्रतिक्षण कर्मों का ताडव बढ़ता ही जा रहा है। फिर भी तुम्हारी शुभ-कामनाएँ सदा ही मेरे साथ हैं—ठीक है न?

किसी गुफा में जाकर चुपचाप निवास करना ही मेरा स्वाभाविक सस्कार है, किन्तु पीछे से मेरा अदृष्ट मुझे आगे की ओर ढकेल रहा है और मैं आगे बढ़ता जा रहा हूँ। अदृष्ट की गति को कौन रोक सकता है?

ईसा मसीह ने अपने 'पर्वत पर उपदेश' (Sermon on the Mount) में यह क्यों नहीं कहा—'जो सदा आनन्दमय तथा आशावादी है, वे ही धन्य हैं, क्योंकि उनको स्वर्ग का राज्य तो पहले ही प्राप्त हो चुका है।' मेरा विश्वास है कि उन्होंने निश्चय ही ऐसा कहा होगा, यद्यपि वह लिपिबद्ध नहीं हुआ, कारण यह है कि उन्होंने अपने हृदय में विश्व के अनन्त दुःख को धारण किया था एवं यह कहा था कि साधु का हृदय शिशु के अन्तःकरण के सदृश है। मैं समझता हूँ, उनके हजारों उपदेशों में से शायद एकाग्र उपदेश, जो याद रहा, लिपिबद्ध किया गया है।

हमारे अधिकांश मित्र आज आये थे। गाल्सवर्दी परिवार की एक सदस्या—विवाहित पुत्री भी आयी थी। श्रीमती गाल्सवर्दी आज नहीं आ सकी, सूचना बहुत देर से दी गयी थी। अब हमारे पास एक हॉल भी है, खासा बड़ा जिसमें लगभग दो सौ व्यक्ति अथवा इससे अधिक भी आ सकते हैं। इसमें एक बड़ा सा कोना है जिसमें पुस्तकालय की व्यवस्था की जायगी। अब मेरी सहायता के लिए भारत से एक और व्यक्ति आ गया है।

मुझे स्विट्जरलैण्ड में बड़ा आनन्द आया, जर्मनी में भी। प्रोफेसर डॉयसन बहुत ही कृपालु रहे—हम दोनों साथ लन्दन आये और दोनों ने यहाँ काफ़ी आनन्द लिया। प्रोफेसर मैक्समूलर भी बहुत अच्छे मित्र हैं। कुल मिलाकर इंग्लैंड का काम मजबूत हो रहा है—और सम्माननीय भी, यह देखकर कि बड़े बड़े विद्वान् सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे हैं। शायद मैं अगली सर्दियों में कुछ अग्रज मित्रों के साथ भारत जाऊँगा। यह तो बात हुई अपने वारे में।

उस धार्मिक परिवार का क्या हाल है? मुझे विश्वास है कि सब कुछ विल्कुल ठीक चल रहा है। अब तो तुम्हें फोक्स का समाचार सुनने को मिला होगा। मुझे डर है कि उसके जहाज़ी याया शुरू करने के एक दिन पहले, मेरे यह कहने से कि तुम तब तक मेवेल से विवाह नहीं कर सकते, जब तक तुम काफ़ी कमाने न लगे,

डॉक्टर मन्बुन्वा राज भी उसे अपने 'प्रबुद्ध भारत' के लिए ले सकते हैं किन्तु सिर्फ़ सरस और सहज भाषणों को। उन व्याख्यानों को एक बार सावधानी से देखकर उसमें पुनरावृत्ति और परस्पर विरोधी बिचारों को निकाल देना है। मुझे पूरी धारा है कि लिखने के लिए अब अधिक समय मिलेगा। पूरी शक्ति के साथ कार्य में जुट रही।

समी को प्यार—

तुम्हारा

बिबेकानन्द

पुनरुत्प—मैंने उद्यत होनेवाले परिच्छेद को रेखांकित कर दिया है। बाकी बचा किसी पत्रिका के लिए निरर्थक है।

मैं नहीं समझता कि अभी पत्रिका को मासिक बनाने से कोई काम होया— जब तक कि तुमको यह विश्वास न हो जाय कि उसका कलेक्टर मोटा होना। वैसे कि अभी है—कलेक्टर और सामग्री समी सामूची है। अभी भी एक बहुत बड़ा लेख पढ़ा हुआ है, जो अभी तक छूआ नहीं गया है। यथा—तुलसीदास कबीर और नानक तथा दक्षिण भारत के सन्तों के जीवन और कृति के सम्बन्ध में लिखना। इसे विद्वत्तापूर्ण ढंगी तथा पूरी जानकारी के साथ लिखना होया—जीसे डाले और अपकचरे डग से नहीं बसल मे पत्र को आकर्षण—देशान्त के प्रचार के अलावा भारतीय अनुसंधान और ज्ञानविषयाचार्यों का—मुख-मन बनाया होगा। हाँ बर्म ही इसका आचार होगा। तुम्हें अच्छे लेखकों से निककर अच्छी सामग्री के लिए आग्रह करना होया तथा उनकी सहायता से अच्छी रचना बसूळ करनी होनी।

समन के साथ कार्य में लगे रहो—

तुम्हारा

बिबेकानन्द

(कुमाठी जौरेडिग मैकलिगॉड को लिखित)

हाथ कुमाठी मूलर,

एवरली लॉज रिजने गार्डन

बिम्बलडन ईंग्लैण्ड

७ अक्टूबर, १८९६

प्रिय जो

पुनः जमी लम्बन मे। और कराएँ मे। यथायथ शुरु हो गयी हैं। मेरा मन था ही उन परिचिन मगर को पारों आर ईइ रहा था जिसमें कभी निरुन्वाह की एन देना तक नहीं दिगनी की जो कभी परिचिन नहीं होना था और जिससे मुझे

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओं का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन में एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदारशयता तथा अन्य समस्त गुणों को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्बलडन, इंग्लैण्ड
८ अक्टूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड में मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पाँल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुतः अन्य स्थानों की अपेक्षा यूरोप में मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष में इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन में पुनः कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियंत्रण है, उसमें दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं।

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियों की अपेक्षा उन लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमों के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे में मुझे विशेष कुछ ज्ञात नहीं। वह बंगाली है तथा कुछ कुछ संस्कृत भी पढ़ सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ धारणा से परिचित ही हो कि

वह कुछ निराश हो गया था। क्या मेरेस अभी तुम्हारे यहाँ है? उससे मैं प्यार कहता। तुम अपना वर्तमान पता भी मुझको लिखना।

मैं कैसे है? मुझे बिरबाम है कि फ्रांसिस पूर्ववत् उनके पत्रे साने की तरह है। अस्वर्ता वो संगीत और भाषाएँ सीख रही होगी पूर्ववत् गूब हँसती होगी और खूब धन कास्ती हामी? हाँ आजकल फ्ल-बादाम ही मेरा मुख्य आहार है, एव मे मुझे कास्त्रि अनुकूल जाम पड़ते हैं। यदि कभी उस अज्ञात 'जन्म देशीय' बड़े डॉक्टर के साथ तुम्हारी मेट हो ता वह रहस्य उन्हें बतलाना। मेरी जर्नी बहुत कुछ घट चुकी है जिस दिन मायन बना होता है, उस दिन अबस्य पीटिक मोजन करना पड़ता है। हासिस का क्या समाचार है? उसकी तरह के मधुर स्वभाव का कोई दूसरा बालक मुझे बिलामी नहीं दिया। उसका समस्त जीवन सर्वविध आसीर्बादि से पूर्ण हो।

मैंने सुना है कि जारपुट्ट के मतबाद के समर्जन में तुम्हारे मित्र कोका भायन वे रहे है? इसमें सन्देह नहीं कि उनका भाव्य विशेष अनुकूल नहीं है। कुमारी एप्पीज तथा हमारे मोपानन्द का क्या समाचार है? 'ज ज ज' गोष्ठी की क्या खबर है? और हमारी श्रीमती (नाम बाद नहीं है) कैसे हैं? ऐसा सुना जा रहा है कि हास ही में आभा बहाब भरकर हिन्दू, बौद्ध मुसलमान तथा अन्य और न जाने कितने ही सम्प्रदाय के लोग अमेरिका जा पहुँचे हैं तथा महात्माओं की शोक करनेवालों ईसाई धर्म-अन्धकारको जादि का वृक्षय बल भारत में बुझा है। बहुत खूब। भारतवर्ष तथा अमेरिका—वे दोनों देस धर्म-उद्योग के लिए बने जान पड़ते हैं। किन्तु 'जो' सावधान! विधिमियों की कूट खतरनाक है। श्रीमती स्टर्लिंग से आब रास्ते में मेट हुईं। आजकल वे मेरे मायन सुनने नहीं आती। यह उनके लिए उचित ही है क्योंकि अत्यधिक बाधनिकता भी ठीक नहीं है। क्या तुम्हें उस महिला की याद है जो मेरी हर सना में इतनी बेर से आती थी कि उसको कुछ भी सुनने को न मिच्छता था किन्तु तुरन्त बाद मे वह मुझे फकड़कर इतनी बेर तक बातचीत में समाये रखती कि भूख से मेरे जबर में 'वाटरसू' का महासंधाम छिड़ जाता था। वह भाषी थी। लोग आ रहे हैं तथा और भी आरंभ। यह ज्ञान का विषय है।

रात बढ़ती जा रही है अत 'जो' बिदा—(स्यूयार्क मे भी क्या ठीक ठीक अरब-कामरे का पालन करना आवश्यक है?) प्रभु निरन्तर तुम्हारा कस्यान करे।

'मनुष्य के प्रवीण रचयिता ब्रह्मा को एक ऐसे निर्दोष रूप की रचना करने की इच्छा हुई जिसका अनुपम सौष्ठव सृष्टि की सुखरत्नम कृत्तियों में सर्वोत्तम हो।

इसके लिए उसने महाकाक्षा से समस्त सुन्दर वस्तुओं का एक साथ आवाहन कर अपने शाश्वत मन में एकत्र किया और उनको एक चित्र की भाँति उत्कृष्ट तथा आदर्श रूप दिया। ऐसे दिव्य, ऐसे आश्चर्यजनक आदि रूप से उस सौन्दर्य राशि की रचना हुई।' (कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

'जो', 'जो' तुम वह हो, मैं केवल इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि उसी रचयिता ने समस्त पवित्रता, समस्त उदारशयता तथा अन्य समस्त गुणों को भी एकत्र किया और तब 'जो' की रचना हुई।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

पुनश्च—सेवियर दम्पति तुम्हें अपनी शुभकामनाएँ भेज रहे हैं। उनके निवासस्थान से ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

विवेकानन्द

(कुमारी एलेन वाल्डो या हरिदासी नामक एक शिष्या को लिखित)

एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स,
विम्बलडन, इंग्लैण्ड
८ अक्टूबर, १८९६

प्रिय वाल्डो,

स्विट्ज़रलैण्ड में मुझे पूर्ण विश्राम मिला एव प्रोफेसर पॉल डॉयसन के साथ मेरी विशेष मित्रता हो गयी है। वस्तुतः अन्य स्थानों की अपेक्षा यूरोप में मेरा कार्य अधिक सन्तोषजनक रूप से बढ़ रहा है तथा भारतवर्ष में इसका बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। लन्दन में पुनः कक्षाएँ चालू हो गयी हैं—आज तत्सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान होगा। अब मुझे एक ऐसा सभागृह मिल गया है, जिस पर मेरा ही नियंत्रण है, उसमें दो सौ या उससे भी अधिक व्यक्ति बैठ सकते हैं।

यह तो तुम जानती ही हो कि अग्रेज लोग कितने दृढचित्त होते हैं, अन्य जातियों की अपेक्षा उन लोगों में पारस्परिक ईर्ष्या की भावना भी बहुत ही कम होती है और यही कारण है कि उनका प्रभुत्व सारे ससार पर है। दासता की प्रतीक खुशामद से सर्वथा दूर रहकर उन्होंने आज्ञा-पालन, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ नियमों के पालन के रहस्य का पता लगा लिया है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है। 'र' नामक युवक के बारे में मुझे विशेष कुछ ज्ञात नहीं। वह बंगाली है तथा कुछ कुछ संस्कृत भी पढा सकता है। तुम तो मेरी इस दृढ धारणा से परिचित ही हो कि

विश्वसे काम-काज पर नियम नहीं पायी उस पर मुझे इतनाई मरोसा नहीं। तुम उसे सैद्धांतिक विषयों की शिक्षा देने का अवसर प्रदान कर देना चाहती हो किन्तु वह 'रामयोग' कमी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रसिद्धि नहीं उसके लिए इससे सिखाया करना नितांत कठोरता है। सारदानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ योगी का आशीर्वाद उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' बाहक की अपेक्षा तुम्हारा वार्षिकिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कक्षा' की नोटिस निकालो तथा नियमित रूप से वर्गवर्ग करो और व्याख्यान दो।

बनेक हिन्दुओं यहाँ तक कि मेरे किसी मुठभाई को अमेरिका में सफरवा मिकी है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होवा है, उससे सहस्र गुना अधिक ज्ञानन्द मुझे तब प्राप्त होगा जब मैं यह देखूँगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया को पीतना चाहता है किन्तु अपनी सम्पन्न के निकट पराश्रित होना चाहता है। ज्ञानान्नि प्रवृत्त करो। ज्ञानान्नि प्रवृत्त करो।

दुभाकारी
विश्वकामन्द

(श्रीमती जोसि कुल को लिखित)

विश्वकामन्द इम्लीण्ड
८ अक्तूबर, १८९६

प्रिय श्रीमती कुल

जर्मनी में प्रोफेसर डॉयसन के साथ मेरी मेट हुई थी। कौक में मैं उनका बहिष्णि था। हम दोनों एक साथ सम्पन्न आये थे तथा वहाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विशेष आनन्द मिला। जर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न वर्गों के प्रति यद्यपि मेरी पूर्ण सहानुभूति है फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विशेष विमान होना नितांत आवश्यक है। वैदन्त प्रचार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहामवा पहुँचाना भी इसी आशय का सहायक होना चाहिए। माधा है कि आप इस विषय को सारदानन्द के हृदय में अच्छी तरह बुझता के साथ जमा हिये।

जब आपने प्रोफेसर मैक्लमूरर रचित श्री रामहृष्य सम्बन्धी लेख पढ़ा?

यहाँ पर इम्लीण्ड में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनत जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का यहाँ पर विस्तार हा रहा है, अपितु उनकी सम्मान भी मिल रहा है।

दुभाकारी
विश्वकामन्द

(१८९६ ई० के अन्त में डॉ० वरोज़ की भारतव्यापी व्याख्यान-यात्रा के पूर्व 'इण्डियन मिरर' नामक पत्र में स्वामी जी का एक पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने अपने देशवासियों को डॉ० वरोज़ का परिचय प्रदान करते हुए उनका उपयुक्त अभिनन्दन करने के लिए अनुरोध किया था। नीचे उसी का कुछ अंश दिया जा रहा है।)

लन्दन,

२८ अक्टूबर, १८९६

शिकागो विश्व मेला में सम्मेलनों की विराट् कल्पना को सफल बनाने के लिए श्री सी० बॉनी ने डॉ० वरोज़ को अपना सहकारी निर्वाचित कर सबसे उपयुक्त व्यक्ति पर ही कार्यभार सौंपा था, डॉ० वरोज़ के नेतृत्व में उन सम्मेलनों में धर्म-महासभा को जो महत्त्व प्राप्त हुआ था, वह आज इतिहास-प्रसिद्ध है।

डॉ० वरोज़ का अद्भुत साहस, अथक परिश्रम, अविचलित धैर्य तथा स्वभाव-सिद्ध भद्रता के फलस्वरूप ही इस सम्मेलन को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी।

उस आश्चर्यजनक शिकागो-सम्मेलन के द्वारा ही भारत, भारतवासी तथा भारतीय भावनाएँ ससार के समक्ष पहले से भी अधिक उज्ज्वल रूप से प्रकट हुई हैं एव इस स्वजातीय कल्याण के लिए उस सभा से सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा हम डॉ० वरोज़ के ही अधिक ऋणी हैं।

इसके सिवाय वे हमारे समीप धर्म के पवित्र नाम तथा मानव जाति के एक श्रेष्ठ आचार्य का नाम लेकर आ रहे हैं एव मेरा यह विश्वास है कि 'नेज़रथ के पैगम्बर' द्वारा प्रचारित धर्म की उनकी व्याख्या अत्यन्त उदार होगी तथा मन को उन्नत बनायेगी। ईसा की शक्ति का जो परिचय वे देना चाहते हैं, वह दूसरों के मत के प्रति असहिष्णु, प्रभुत्वपूर्ण और दूसरों के प्रति घृणापूर्ण मनोवृत्तिप्रसूत नहीं है। परन्तु एक भाई की तरह उन्नति-अभिलाषी भारत के विभिन्न वर्गों के सहयोगी भाइयों में सम्मिलित होने की आकांक्षा से प्रेरित होकर—वे जा रहे हैं। सबसे पहले हमें यह स्मरण रखना है कि कृतज्ञता तथा अतिथि-सेवा ही भारतीय जीवन का वैशिष्ट्य है, अतः अपने देशवासियों के समीप मेरा यह विनम्र अनुरोध है कि पृथिवी के दूसरे छोर से भारत जानेवाले इस विदेशी सज्जन के प्रति वे ऐसा आचरण करें जिससे उन्हें यह पता चल सके कि दुःख, दारिद्र्य तथा अवनति की स्थिति में भी हमारा हृदय, अतीत की तरह ही अर्थात् जब भारतवर्ष आर्यभूमि के नाम से प्रख्यात था एव उसके ऐश्वर्य की बात जगत् की सब जातियों की जिह्वा पर रहती थी, आज भी मित्रतापूर्ण है।

जिसने काम-काज पर विचार नहीं पायी उस पर मुझे इतरी मरोसा नहीं। तुम उसे सैखान्तिक विषयों की शिक्षा देने का बगसर प्रवान कर देण सक्ती हो किन्तु वह 'राजयोग' कमी भी न सिखा पाये। जो नियमित रूप से उसमें प्रशिक्षित नहीं उसके लिए इससे सिखपाइ करना निदान्त सतरमाक है। सारवानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है, वर्तमान भारत क सर्वश्रेष्ठ योगी का आधीर्वाह उसे प्राप्त है। तुम क्यों नहीं शिक्षा देना प्रारम्भ करती हो? इस 'र' बालक की अपेक्षा तुम्हारा दार्शनिक ज्ञान कहीं अधिक है। 'कथा' की मोटिस निकालो तथा नियमित रूप से वर्मबर्चा करो और व्याख्यान दो।

बनेक हिन्दुओं यहाँ तक कि मेरे किसी गुरुमाई की अमेरिका में सफसता मिली है—इस संवाद से मुझे जो आनन्दानुभव होता है, उससे सहस्र गुना अधिक आनन्द मुझे तब प्राप्त होता जब मैं वह देखूंगा कि तुम लोगों में से किसीने इसमें हाथ बँटाया है। मनुष्य दुनिया की जीतना चाहता है किन्तु अपनी सन्तान के निकट पराजित होना चाहता है। ज्ञानान्ति प्रवर्धित करो। ज्ञानान्ति प्रवर्धित करो।

शुभाकाशी
विश्वकालम्ब

(श्रीमती मोहि बुध की लिखित)

विश्वकालम्ब इन्दीय
८ जनवरी १८९६

प्रिय श्रीमती बुध

जर्मनी में प्रोफेसर डॉमसन के साथ मेरी मॅ हुई थी। जिस में मैं उतका अतिथि था। हम दोनों एक साथ अन्धन आये के तथा महाँ पर भी कई बार उनसे मिल कर मुझे विशेष आनन्द मिला। जर्म तथा समाज सम्बन्धी कार्य के विभिन्न अंगों के प्रति जबकि मेरी पूर्ण सहानुभूति है फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रत्येक के कार्यों का विशेष विभाय होना निदान्त आवश्यक है। वेदान्त-अन्वार ही हमारा मुख्य कार्य है। अन्य कार्यों में सहायता पहुँचाना भी इसी आशय का सहायक होना चाहिए। आशा है कि आग इस विषय को सारवानन्द के हृदय में अच्छी तरह बुझता के साथ जमा रीने।

क्या आपने प्रोफेसर मैक्समूलर रचित श्री रामकृष्ण सम्बन्धी केस पढ़ा? यहाँ पर इन्दीय से प्राप्त सभी लोग हमारे सहायक बनते जा रहे हैं। न केवल हमारे कार्यों का महाँ पर विस्तार हो रहा है, अपितु उनको सम्मान भी मिल रहा है।

शुभाकाशी
विश्वकालम्ब

बाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्पना में ही है, परन्तु मनुष्य के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की सुगन्ध के कारण की व्यर्थ खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाता है।

बाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—बाह्य जीवन की अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जितना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे सिर पर होता है, तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममें ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु बाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अधोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नहीं, भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में है, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरो की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बहुधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़नेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिथ्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी बढ़ती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाशाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हींके द्वारा दुःख का भी, और एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख और दुःख—दोनों की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। तुम अनन्त काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हें बहुत सुख और बहुत दुःख दोनों मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही हो, अशुभ नहीं, बालको का प्रलाप मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो सब प्रकार की आशा को छोड़कर ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की वेदना को सहन करें, इस आशा में कि कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जाय करेगा। दूसरा मार्ग यह है कि हम सुख को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर सुख की खोज को त्याग दें तथा सत्य की खोज करें—और जो सत्य की खोज करने का साहस रखते हैं, वे उसे नित्य अपने

(कुमारी मेरी हृद को मिलित)

१८ ट्रेकोड पार्क,
वेस्टमिनिस्टर, लन्दन,
१ नवम्बर, १८९९

प्रिय मेरी

'खोला और खोरी मेरे पास किन्तु मात्र नहीं है, किन्तु जो मेरे पास है वह मैं तुम्हें मुक्तहस्त दे रहा हूँ।—और वह मह ज्ञान है कि स्वर्ण का स्वर्णत्व रजत का रजतत्व पुष्प का पुष्पत्व स्त्री का स्त्रीत्व और सब वस्तुओं का सत्यस्वल्प परमत्मा ही है और इस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए बाह्य जगत् में हम जनार्दन काम से प्रयत्न करते आ रहे हैं, और इस प्रयत्न में हम अपनी कल्पना की 'विभिन्न' वस्तुओं—पुष्प स्त्री बालक सरीसृप, मन पुष्पी सूर्य चन्द्र तारे, संसार, प्रेम देव बन सम्पत्ति इत्यादि को और भूत राक्षस देवदूत देवता ईश्वर इत्यादि को भी—त्यागते रहे हैं।

सब तो यह है कि प्रभु हममें ही है, हम स्वयं प्रभु हैं—जो नित्य द्रष्टा सच्चा अहम् तथा बलीन्द्रिय है। उस ईश मात्र से देखने की प्रकृति तो केवल समय और बुद्धि को मूट करता ही है। जब जीव को यह ज्ञान ही जाता है, तब वह विषयों का आशय लेना छोड़ देता है और आत्मा की और अधिकाधिक प्रवृत्त होता है। यही क्रम-विकास है अर्थात् वास्तुवृष्टि का अधिकाधिक विकास एवं बहिर्वृष्टि का अधिकाधिक कोप। सर्वाधिक विकसित रूप मानव है क्योंकि वह मनमयी है—वह ऐसा प्राणी है जो विचार करता है ऐसा प्राणी नहीं जो केवल इन्द्रियों से सम्बद्ध है। धर्मशास्त्र में इसे 'त्याग' कहते हैं। समाज का निर्माण विवाह की व्यवस्था सम्मान-प्रेम हमारे शुभ कर्म बुद्धाचरण और नैतिकता से सब त्याग के विभिन्न रूप हैं। सब समाजों में हम लोगों का जीवन इच्छा विपासा या कामता के समन में ही निहित है। इच्छा अथवा मिथ्या आत्मा के इस परिष्कार—स्वार्थ से निकलने की अभिलाषा नित्य द्रष्टा को ईश मात्र से देखने के प्रयत्न के विरुद्ध समर्थ के भिन्न भिन्न रूप तथा उनकी अन्वेषण ही संसार के भिन्न भिन्न समाज एवं सामाजिक नियम हैं। मिथ्या आत्मा के समर्पण तथा स्वार्थनिग्रह का सबसे सरल उपाय है प्रेम तथा इसका विपरीत उपाय है द्वेष।

स्वर्ण-नरक तथा आकाश के परे चर करकेवासे सासकों से सम्बद्ध अनेक कथाओं अथवा अन्वेषणों के द्वारा मनुष्य को जलाने में आकर उसे आत्मसमर्पण के लक्ष्य की ओर अग्रसर किया जाता है। इन सब अन्वेषणों से दूर रहकर अन्वेषणों की वासना के त्याग द्वारा आत्मसमर्पण इस लक्ष्य की ओर आये बढ़ता है।

बाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्याण में ही है, परन्तु इसके भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की गुणधरा के पान करने की खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाना है।

बाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—बाह्य जीवन में। अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके साथ रहेगी, और जीवन जिनना लम्बा होगा, उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे निर पर होता है, तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, शुभ और अन्य सब कुछ हममें ही है तो अशुभ कहाँ? परन्तु बाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के साथ अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अवोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नहीं, भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में है, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरों की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हो, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बहुधा करते हैं, वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़नेवाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आयेगा, जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिव्या पूर्व पक्ष को स्वीकार कर लेने से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी बढ़ती है। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी आकाशाएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है, परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों गुना तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श मात्र का आभास होता है, उसीसे तुम्हें अशुभ के स्पर्श मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है, उन्हींके द्वारा दुःख का भी एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। ससार की उन्नति का अर्थ है सुख और दुःख—दोनों की अधिक मात्रा। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, जान और न जान—सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। अन्त काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करो—तुम्हें बहुत कुछ मिलेंगे। यह कहना कि ससार में केवल शुभ ही है, अशुभ मात्र है। दो मार्ग हमारे सामने हैं—एक तो ससार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की खोज करना—दूसरा कभी कभी सुख का अल्पांश मिल जाय—दुःख का अल्प अंश ही है। को दुःख का ही एक दूसरा रूप समझकर—दुःख का ही एक ही खोज करें—और जो

में ही विद्यमान पाते हैं। फिर हमें यह भी पता लग जाता है कि यही उत्पत्ति किस प्रकार हमारे व्यावहारिक जीवन के भ्रम और ज्ञान दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है— हमें यह भी पता लग जाता है कि यही उत्पत्ति 'आत्म' है, जो ज्ञान और अज्ञान दोनों रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। साथ ही हमें यह भी पता लग जाता है कि यही 'सत्' जीवन और मृत्यु दोनों रूपों में प्रकट हो रहा है।

इस प्रकार हम यह अनुभव करते हैं कि ये सब बातें उसी एक अस्तित्व— सत्-चित्-आत्म— सब चीजों के अस्तित्व स्वरूप में प्रकट स्वरूप की प्रथम त्रिप्रतिष्ठापाएँ मात्र हैं। जब और केवल तभी बिना कुराई के भलाई करना सम्भव होता है क्योंकि ऐसी आस्था में उस पदार्थ को जिससे कि ज्ञान और अज्ञान दोनों का निर्माण होता है, जान लिया है और अपने बंध में कर लिया है और वह अपनी इच्छामुसार एक या दूसरे का विकास कर सकता है। हम यह भी जानते हैं कि वह केवल ज्ञान का ही विकास करता है। यही 'जीवन्मुक्ति' है जो वेदान्त का और सब तत्त्व-ज्ञानों का अस्तित्व अस्त्य है।

मानवी समाज पर चारों बंध—पुरोहित धार्मिक व्यापारी और मजदूर जारी जारी से शासन करते हैं। हर शासन का अपना गौरव और अपना शोष होता है। जब साम्राज्य का राज्य होता है, तब आनुवंशिक आधार पर सर्वकार पृथक्ता रखती है—पुरोहित स्वयं और उनके बंधन नामा प्रकार के अधिकारों से सुपुत्रित रहते हैं, उनके अतिरिक्त किसीको कोई ज्ञान नहीं होता, और उनके अतिरिक्त किसीको शिक्षा देने का अधिकार नहीं है। इस विधिष्ठ युग में सब विद्याओं की नीच पकड़ी है, यह इसका गौरव है। साम्राज्य मन को उद्यत करते हैं, क्योंकि मन द्वारा ही वे राज्य करते हैं।

अधिन शासन कर और अत्यायी होता है, परन्तु उनमें पृथक्ता नहीं रखती और उनके युग में कला और सामाजिक संस्कृति उत्तम के सिद्ध पर फलित जाती है।

उसके बाद वैश्य शासन आता है। इसमें कुचक्रों की और जून बुद्धों की मीन शक्ति अत्यन्त मीथक होती है। इसका ज्ञान यह है कि व्यापारी सब बगल जाता है, इसलिए वह पहले दोनों युगों में एकत्र किये हुए विद्यार्थियों को फैलाने में सफल होता है। उनमें अधियों से भी कम पृथक्ता होती है, परन्तु सम्यता की अवगति आरम्भ हो जाती है।

अन्त में क्षत्रिय मजदूरों का शासन। उसका काम होगा भौतिक सुखों का समाज वितरण—और उससे हानि होनी कदाचित् संस्कृति का भिन्न स्तर पर गिर जाता। साधारण शिक्षा का बहुत प्रचार होया परन्तु असामान्य प्रतिभावाली व्यक्ति कम होते जायेंगे।

यदि ऐसा राज्य स्थापित करना सम्भव हो जिसमें ब्राह्मण युग का ज्ञान, क्षत्रिय युग की सम्यता, वैश्य युग का प्रचार-भाव और शूद्र युग की समानता रखी जा सके—उनके दोषों को त्याग कर—तो वह आदर्श राज्य होगा। परन्तु क्या यह सम्भव है ?

परन्तु पहले तीनों का राज्य हो चुका है। अब शूद्र शासन का युग आ गया है—वे अवश्य राज्य करेंगे, और उन्हें कोई रोक नहीं सकता। सिक्के का स्वर्ण अथवा रजतमान रखने में क्या क्या कठिनाइयाँ हैं, मैं यह सब नहीं जानता (और मैंने देखा है कि कोई भी इस विषय में अधिक नहीं जानता), परन्तु मैं यह देखता हूँ कि स्वर्णमान ने धनवानों को अधिक धनी तथा दरिद्रों को और भी अधिक दरिद्र बना दिया है। ब्रायन ने यह ठीक ही कहा था कि 'सोने के भी क्रॉस पर हम लटकाये जाना पसंद न करेंगे।' रजतमान हो जाने पर इस असमान युद्ध में गरीबों के पक्ष में कुछ बल आ जायगा। मैं समाजवादी हूँ, इसलिए नहीं कि मैं इसे पूर्ण रूप से निर्दोष व्यवस्था समझता हूँ, परन्तु इसलिए कि रोटी न मिलने से आधी रोटी ही अच्छी है।

और सब मतवाद काम में लाये जा चुके हैं और दोषयुक्त सिद्ध हुए हैं। इसकी भी अब परीक्षा होने दो—यदि और किसी कारण से नहीं तो उसकी नवीनता के लिए ही। सर्वदा एक ही वर्ग के व्यक्तियों को सुख और दुःख मिलने की अपेक्षा सुख और दुःख का बटवारा करना अच्छा है। शुभ और अशुभ की समष्टि ससार में समान ही रहती है। नये मतवादों से वह भार कंधे से कंधा बदल लेगा, और कुछ नहीं।

इस दुःखी ससार में सब को सुख-भोग का अवसर दो, जिससे इस तथाकथित सुख के अनुभव के पश्चात् वे ससार, शासन-विधि और अन्य झड़टों को छोड़कर प्रभु के पास आ सकें।

तुम सबको मेरा प्यार।

शुभाकाक्षी,
विवेकानन्द

(श्री आलार्सिंगा पेरुमल को लिखित)

१४, ग्रेकोट गार्डन्स,
वेस्टमिनिस्टर, एस० डब्ल्यू०,
११ नवम्बर, १८९६

प्रिय आलार्सिंगा,

बहुत सभ्य है कि मैं १६ दिसम्बर या उसके दो एक दिन बाद यहाँ से प्रस्थान

कहें। यहाँ से इटली जाऊँगा और वहाँ के कुछ स्थानों को देखने के बाद नेपुस में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। कुमारी मूलर, श्री और श्रीमती सेविपर तथा गुडविन नामक एक युवक मेरे साथ चल रहे हैं। सेविपर इम्पति अम्माड़े में बसने जा रहे हैं और कुमारी मूलर भी। सेविपर भारतीय सेना में पाँच सास तक अफसर के पद पर थे। वह भारत के बारे में उन्हें काफ़ी जानकारी है। कुमारी मूलर विद्योसॉडिस्ट थी जिन्होंने ज्ञान को गोद लिया। गुडविन अमेरन है जिनके द्वारा धीमलिपि में तैयार की गयी टिप्पणियों से पुस्तिकाओं का प्रकाशन सम्भव हुआ।

मैं कोकम्बो से सर्वप्रथम भ्रास पहुँचूँगा। अन्य लोग अहमोड़े जायेंगे। वहाँ से मैं कलकत्ता जाऊँगा। जब मैं वहाँ से प्रस्थान करूँगा तब ठीक ठीक सूचना सेते हुए पत्र लिखूँगा।

तुम्हारा शुभाकांक्षी
विश्वकालम्ब

पुनश्च— राजयोग्य पुस्तक के प्रथम संस्करण की सभी प्रतियाँ बिक गयीं और द्वितीय संस्करण छपने के लिए प्रेस में है। भारत और अमेरिका सबसे बड़े बरदार हैं।

दि

(श्रीमती बुल को लिखित)

ब्रेकोट मार्सेस
बेस्ट मिनिस्टर,
१३ नवम्बर, १८९९

प्रिय श्रीमती बुल

मैं भीम ही भारत के लिए प्रस्थान करनेवाला हूँ कदाचित् १९ दिसम्बर को। अमेरिका जाने से पहले मुझे एक बार भारत जाने की तीव्र अभिलाषा है और मैंने अपने साथ इन्सैरड से कई मिश्री को भारत के जाने का प्रबन्ध किया है इसलिये चाहें मेरी किशती ही इच्छा हो परन्तु अमेरिका हीटै हुए जाना मेरे लिए सम्भव है।

निरन्तर ही डॉ. वेन्स अति उत्तम काम कर रहे हैं। उन्होंने मेरी और मेरे कार्य की जो सहायता की है, उसके लिए और उनके इपामात्र के लिए इत्यत्रता प्रकट करने में मैं असमर्थ सा हूँ वहाँ का कार्य अत्यन्त सुन्दर रूप से जाने बढ़ रहा है।

तुम्हारा
विश्वकालम्ब

(श्री आलार्सिंगा पेरुमल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन,

२० नवम्बर, १८९६

प्रिय आलार्सिंगा,

मैं इंग्लैण्ड से इटली के लिए १६ दिसम्बर को रवाना होऊँगा और नेपाल से 'नार्थ जर्मन लॉयड एस० एस० प्रिन्स रीजेन्ट लिओपोल्ड' नामक जहाज से प्रस्थान करूँगा। जहाज आगामी १४ जनवरी को कोलम्बो पहुँचने-वाला है।

श्रीलंका में कुछ चीजें देखने की मेरी इच्छा है, वहाँ से फिर मद्रास पहुँचूँगा। मेरे साथ तीन अंग्रेज दोस्त हैं—कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर तथा श्री गुडविन। श्री सेवियर और उसकी पत्नी अल्मोडा के पास हिमालय में एक मठ बनाने की सोच रहे हैं, जिसे मैं अपना 'हिमालय केन्द्र' बनाना चाहता हूँ। और वही पाश्चात्य शिष्यों को ब्रह्मचारी और सन्यासी के रूप में रखूँगा। गुडविन एक अविवाहित नवयुवक है। वह मेरे साथ भ्रमण करेगा और मेरे ही साथ रहेगा। वह सन्यासी जैसा ही है।

मेरी तीव्र अभिलाषा है कि श्री रामकृष्ण देव के जन्मोत्सव से पहले मैं कलकत्ता पहुँच जाऊँ। मेरी वर्तमान कार्य-योजना यह है कि युवक प्रचारको के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता और मद्रास में दो केन्द्र स्थापित करना है। कलकत्ते के केन्द्र के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है। कलकत्ता श्री रामकृष्ण के कर्म-जीवन का क्षेत्र रह चुका है, इसलिए वह मेरा ध्यान पहले आकर्षित करता है। मद्रास के केन्द्र के लिए मैं आशा करता हूँ कि भारत से मुझे धन मिल जायगा।

इन तीन केन्द्रों से हम काम आरम्भ करेंगे। फिर इसके बाद बम्बई और इलाहाबाद में भी केन्द्र बनायेंगे। इन तीन स्थानों से, यदि भगवान् की कृपा हुई तो, हम भारत भर में ही नहीं, परन्तु ससार के प्रत्येक देश में प्रचारको का दल भेजेंगे। यह हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। दिल लगाकर काम करते रहो। कुछ समय के लिए लन्दन का मुख्य कार्यालय ३९, विक्टोरिया स्ट्रीट में रहेगा, क्योंकि कार्य यहीं से होगा। स्टर्डी के पास सन्दूक भर 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका है, जिसका मुझे पहले पता नहीं था। वह अब इसके लिए ग्राहक बनाने के लिए प्रचार-कार्य कर रहा है।

चूँकि अब अंग्रेजी भाषा में भारत से एक पत्रिका आरम्भ हो गयी है, अब अब भारतीय भाषाओं में भी हम कोई पत्रिका आरम्भ कर सकते हैं। विम्बलटन की कुमारी एम० नोबल बड़ी काम करनेवाली है। वह मद्रास की दोनो पत्रिकाओं

के लिए प्रचार-कार्य भी करेगी। वह तुम्हें सिखेगी। ऐसे कार्य धीरे धीरे, किन्तु निश्चित रूप से आगे बढ़ेंगे। ऐसी पत्रिकाओं को अनुयायियों के छोटे से समुदाय द्वारा ही सहायता मिलती है। एक ही समय में उनसे अनेक कार्य करने की आशा नहीं करनी चाहिए। उनको पुस्तकें खरीदनी पड़ती हैं। इंग्लैण्ड का कार्य बनाने के लिए पैसा एकत्र करना पड़ता है; यहाँ की पत्रिका के लिए ग्राहक ढूँढ़ने पड़ते हैं और फिर भारतीय पत्रिकाओं को खरीदना पड़ता है। यह बहुत क्लेशकी है। यह शिक्षा प्रचार की अपेक्षा व्यापार-कार्य अधिक जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में तुम धीरज रखो। फिर भी मुझे आशा है कि कुछ ग्राहक बन ही जायेंगे। इसके अलावा मेरे जाने के बाद यहाँ लोगों के पास करने के लिए काम होना चाहिए, नहीं तो सब किया-कराया मिट्टी में मिला जायगा। इसलिए धीरे धीरे यहाँ और अमेरिका में भी पत्रिका होनी चाहिए। भारतीय पत्रिकाओं की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। किसी पत्रिका के सब राष्ट्रों में समान प्राय से अपनाये जाने के लिए, सब राष्ट्रों के लेखकों का एक बड़ा भारी विभाय रखना पड़ेगा जिसके माने हैं प्रतिवर्ष एक लाख रुपये का खर्च।

तुम्हें वह न भूलना चाहिए कि मेरे कार्य अन्तर्राष्ट्रीय है केवल भारतीय नहीं। मेरा तथा अमेरालन्द दोनों का स्वास्थ्य अच्छा है।

शुभाकांक्षी

विश्वकालन्द

(भी लाला बड़ी साह की लिखित)

३९ विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन

२१ नवम्बर, १८९९

प्रिय लाला जी

जबतक मैं मद्रास पहुँचूँगा कुछ दिन समस्त क्षेत्र में खूबकर मेरी अहमोड़ा जाने की इच्छा है।

मेरे साथ मेरे तीन बड़े मित्र हैं, उनमें दो सेबियर सम्पत्ति अहमोड़ा में निवास करेंगे। आपको शायद यह पता होगा कि वे मेरे मित्र हैं एवं मेरे लिए हिमालय में वे एक मठ बनवायेंगे। इसीलिए मैंने आपको एक उपयुक्त स्वाम ढूँढ़ने के लिए लिखा था। हमारे लिए एक ऐसी पूरी पहचानी चाहिए, जहाँ वे हिम-दृश्य दिखायी देता हो। इसमें सन्देह नहीं कि उपयुक्त स्वाम निर्वाचित कर आत्म निर्माण के लिए समय चाहिए। इस बीच क्या आप मेरे मित्रों के रहने के लिए किराये पर एक छोटे से बोंबे की व्यवस्था करने की हवा करेंगे? उसमें तीन

व्यक्तियों के रहने लायक स्थान होना आवश्यक है। बहुत बड़ा मकान नहीं चाहिए, इस समय छोटे से ही कार्य चल सकेगा। मेरे मित्र वहाँ पर रहकर आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान तथा मकान की तलाश करेंगे।

इस पत्र के उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उत्तर मिलने से पहले ही मैं भारत की ओर रवाना हो जाऊँगा। मद्रास पहुँच कर मैं आपको तार से सूचित करूँगा।

आप सब लोगों को स्नेह तथा आशीर्वाद।

भवदीय,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी तथा हैरियट हेल को लिखित)

३९, विक्टोरिया स्ट्रीट,

लन्दन,

२८ नवम्बर, १८९६

प्रिय वहनो,

चाहे जिस कारण से भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम चारो से ही मैं सबसे अधिक स्नेह करता हूँ एव मुझे अत्यन्त गर्व के साथ यह विश्वास है कि तुम चारो भी मुझसे वैसा ही स्नेह करती हो। इसलिए भारत रवाना होने से पूर्व तुम लोगों को यह पत्र स्वयं ही आत्मप्रेरित होकर लिख रहा हूँ। लन्दन में हमारे कार्य को जबरदस्त सफलता मिली है। अग्रेज लोग अमेरिकनो की तरह उतने अधिक सजीव नहीं हैं, किन्तु यदि कोई एक बार उनके हृदय को छू ले तो फिर सदा के लिए वे उनके गुलाम बन जाते हैं। धीरे धीरे मैं उन पर अपना अधिकार जमा रहा हूँ। आश्चर्य है कि छ माह के अन्दर ही, सार्वजनिक भाषणों के अलावा भी मेरी कक्षा में १२० व्यक्ति नियमित रूप से उपस्थित हो रहे हैं। अग्रेज लोग अत्यन्त कार्यशील हैं, अतः यहाँ के सभी लोग क्रियात्मक रूप से कुछ करना चाहते हैं। कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन कार्य करने के लिए मेरे साथ भारत रवाना हो रहे हैं और उमका व्यय-भार भी वे स्वयं उठावेंगे। यहाँ पर और भी बहुत से लोग इस प्रकार कार्य करने को प्रस्तुत हैं। प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्क में एक बार किमी भावना को प्रवेश करा देने पर, उमे कार्य में परिणत करने के लिए वे अपना सब कुछ त्याग करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। और नवने अधिक आनन्दप्रद समाचार (यह कोई माघारण बात नहीं) यह है कि भारत में कार्य प्रारम्भ करने के लिए हमें आर्थिक सहायता प्राप्त हो गयी है एव आगे चार और भी प्राप्त होंगी। अग्रेज जाति के सम्बन्ध में मेरी धारणा पूर्णतया

बरस चुकी है। अब मुझे यह पता चल रहा है कि अत्याम्य जातिपों की अपेक्षा प्रभु ने जन पर अधिक दया कर्मा की है। व दृढ़मंजल्प तथा अत्यन्त मिष्टाभास है। साथ ही उनमें हासिक सहानुभूति है—बाहर उदासीमता का कबल एक आवरण रहता है। उसको टाड़ देना है, बस फिर तुम्हें अपनी पसन्द का व्यक्ति मिल जायगा।

इस समय कसकृता तथा हिमात्म्य में मैं एक एक केन्द्र स्थापित करके जा रहा हूँ। प्रायः ७ फूट ऊँची एक समूची पहाड़ी पर हिमात्म्य-केन्द्र स्थापित होगा। वह पहाड़ी गर्मी की ऋतु में छीतल तथा जाड़े में ठंडी रहेगी। कैप्टन तथा श्रीमती सेवियर वहीं रहेंगे एवं यूरोपीय कार्यकर्ताओं का वह केन्द्र होगा क्योंकि मैं उनको भारतीय रहन सहन अपनाने तथा निरासतप्त भारतीय समतल भूमि में बसने के लिए बाध्य कर मार डालना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि संकड़ों की संख्या में हिन्दू मुबक प्रत्येक सम्म बैस में जाकर बेदान्त का प्रचार करें और वहाँ से तर-भारियों को एकत्र कर कार्य करने के लिए भारत भेजें। यह आशान प्रदान बहुत ही उत्तम होगा। केन्द्रों को स्थापित कर मैं 'जॉब का प्रत्य' में बसित उस व्यक्ति की तरह ऊपर नीचे चारों ओर भूमिमा।

बाब यहीं पर पत्र को समाप्त करना चाहता हूँ—यहीं तो बाब की आक ध रवाना न हो सकेगा। सभी ओर से मेरे कार्यों के लिए सुविधा मिलती जा रही है—तर्जम में अत्यन्त सुधी हूँ एवं मैं समझता हूँ कि तुम लोगों को भी मेरी तरह सुख का अनुभव होया। तुम्हें अनन्त कस्याम तथा मुक्त-शान्ति प्राप्त ही। अनन्त प्यार के साथ —

सुभाकांक्षी
बिबेकानन्द

पुनश्च—बर्मपाक का क्या समाचार है? वह क्या कर रहा है? उससे भेंट होने पर मेरा स्नेह कहना।

वि

१ Book of Job (जॉब का प्रत्य) बाइबिल के प्राचीन व्यवस्थान का अंशविशेष है। इसमें एक कथा इस प्रकार है, एक बार अतान ईश्वर से मिलने गया। ईश्वर ने उससे पूछा कि वह कहीं से आ रहा है। उत्तर में उसने कहा "इस पृथिवी के इधर उधर कपकप लमाकर तथा उलटके ऊपर नीचे झुंझता हुआ मैं आ रहा हूँ। यहाँ पर स्वामी जी ने इधर उधर घूमने के प्रसंग में परिष्कारपूर्वक बाइबिल की उस घटना को लक्ष्य कर उत्तम वाक्य का प्रयोग किया है।

(कुमारी जोसेफिन मैक्लिऑड को लिखित)

ग्रेकोट गार्डन्स,

वेस्टमिनिस्टर एस० डब्ल्यू०, लन्दन,

३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय 'जो',

तुम्हारे कृपापूर्ण निमंत्रण के लिए अनेक धन्यवाद। किन्तु, प्रिय जो-जो, प्यारे भगवान् ने यह विधान किया है कि मुझे १६ तारीख को कप्तान तथा श्रीमती सेवियर एव श्री गुडविन के साथ भारत के लिए प्रस्थान करना है। सेवियर दम्पति मेरे साथ नेपुल्स में स्टीमर पर सवार होंगे। चूंकि चार दिन रोम में रुकना है, इसलिए मैं अल्वर्टा से विदा लेने जाऊंगा।

यहाँ अब कुछ चहल-पहल शुरू हो गयी है, ३९, विक्टोरिया के बड़े हाल में कक्षा लगती है, जो भर गया है, फिर भी और लोग कक्षा में शामिल होना चाहते हैं।

साथ ही, उस प्राचीन भले देश की पुकार है, मुझे जाना ही है। इसलिए इस अप्रैल में रूस जाने की सभी परियोजनाओं को नमस्कार।

मैं भारत में कर्म-चक्र का प्रवर्तन मात्र कर पुनः सदा रमणीय अमेरिका तथा इंग्लैण्ड इत्यादि के लिए प्रस्थान कर दूंगा।

मेवुल का पत्र भेज कर तुमने बड़ी कृपा की—सचमुच शुभ समाचार है। केवल थोड़ा अफसोस है तो बेचारे फॉक्स के लिए। चाहे जो हो मेवुल उससे वच गयी, यह बेहतर हुआ।

न्यूयाक में क्या हो रहा है, इसके बारे में तुमने कुछ नहीं लिखा। आशा है वहाँ सब अच्छा ही होगा। बेचारा कोला! क्या वह अब जीविकोपार्जन में समर्थ हो पाया?

गुडविन का आगमन बड़े मौक़े से हुआ, क्योंकि इससे व्याख्यानो का विवरण ठीक तौर से तैयार होने लगा जिसका प्रकाशन पत्रिका के रूप में हो रहा है। खर्च भर के लिए काफी ग्राहक बन गये हैं।

अगले मप्ताह तीन व्याख्यान होंगे और इस मीमम का मेरा लन्दन का कार्य समाप्त हो जायगा। यहाँ इस वक्त धूम मची है, इसलिए मेरे छोड़कर चले जाने को सभी लोग नादानो समझते हैं, परन्तु प्यारे प्रभु का आदेश है, 'प्राचीन भारत को प्रस्थान करो।' मैं आदेश का पालन कर रहा हूँ।

क्रिनिसेंस भाँ होसिस्टर तथा धन्य एबने मेरा बिर प्रेम तथा आजीर्ण और बही तुम्हारे लिए भी ।

तुम्हारा शुभाकांक्षी
विश्वकामन्द

(कुमारी अस्वर्दा स्टाणीय को लिखित)

१४ वेकोट गार्डन्स

वेस्टमिनिस्टर, एस डम्पू क्वन

३ दिसम्बर, १८९९

प्रिय अस्वर्दा

इस पत्र के साथ 'जो-जो' को लिखित मैकेक का पत्र भेज रहा हूँ। इसमें उल्लिखित समाचार से मुझे बड़ी खुशी हुई और मुझे विश्वास है, तुम्हें भी होगी।

यहाँ से १६ टायर को भारत खाना हो रहा है और नेपुस्थ में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। अब कुछ दिन इटली में और तीन चार दिन रोम में रहूँगा। बिदाई के समय तुमसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता होगी।

कप्तान सेवियर और श्रीमती सेवियर दोनों मेरे साथ इंग्लैण्ड से भारत जा रहे हैं और वे भी मेरे साथ इटली में रहेंगे। पिछली घीष्प शत्रु में तुम उनसे मिल चुकी हो। कथमम एक वर्ष में अमेरिका जीतने का मेरा इरादा है और वहाँ से यूरोप आऊँगा।

सप्रेम एवं साक्षीय
विश्वकामन्द

(श्रीमती जोकि बुक को लिखित)

३८, बिक्टोरिया स्ट्रीट,
क्वन

९ दिसम्बर, १८९९

प्रिय श्रीमती बुक

आपके इस अत्यन्त उदात्तापूर्ण हान के लिए हृदयता प्रकट करना अनावश्यक है। कार्य के प्रारम्भ में ही अधिक धन संग्रह कर मैं अपने को संकट में डालना नहीं चाहता हूँ किन्तु कार्य-विस्तार के साथ साथ उस धन का प्रयोग करने पर मुझे बड़ी खुशी होगी। अत्यन्त छोटे पैमाने पर मैं कार्य प्रारम्भ करना चाहता हूँ। अभी तक मेरी कोई स्पष्ट योजना नहीं है। भारत के कार्यक्षेत्र में पहुँचने पर वास्तविक स्थिति का पता चलेगा। भारत पहुँच कर मैं अपनी योजना

तथा उसे कार्य में परिणत करने के व्यावहारिक उपाय आपको विशद रूप से सूचित करूँगा। मैं १६ तारीख को रवाना हो रहा हूँ एव इटली में दो चार दिन रहकर नेपल्स से जहाज़ पकड़ूँगा।

कृपया श्रीमती वागान, सारदानन्द तथा वहाँ के अन्य मित्रों को मेरा स्नेह दीजियेगा। आपके बारे में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि सदा ही से मैं आपको अपना सर्वोत्तम मित्र मानता आया हूँ एव जीवन भर वैसे ही मानता रहूँगा। मेरा आन्तरिक स्नेह तथा आशीर्वाद ग्रहण करें।

शुभाकाशी,
विवेकानन्द

(एक अमेरिकन महिला को लिखित)

लन्दन,

१३ दिसम्बर, १८९६

प्रिय श्रीमती जी,

नैतिकता का क्रमविन्यास समझ लेने के बाद सब चीजें समझ में आने लगती हैं।

त्याग, अप्रतिरोध, अहिंसा के आदर्शों को सासारिकता, प्रतिरोध और हिंसा की प्रवृत्तियों को निरंतर कम करते रहने से प्राप्त किया जा सकता है। आदर्श सामने रखो और उसकी ओर बढ़ने का प्रयत्न करो। इस सस्यार में विना प्रतिरोध, विना हिंसा और विना इच्छा के कोई रह ही नहीं सकता। अभी सस्यार उस अवस्था में नहीं पहुँचा कि ये आदर्श समाज में प्राप्त किये जा सकें।

सब प्रकार की बुराइयों में से गुजरते हुए सस्यार की जो उन्नति हो रही है, वह उसे धीरे धीरे तथा निश्चित रूप से इन आदर्शों के उपयुक्त बना रही है। अधिकांश जनता को तो इस मद विकास के साथ चलना पड़ेगा, पर असाधारण लोगों को वर्तमान परिस्थितियों में इन आदर्शों की प्राप्ति के लिए अपना मार्ग अलग बनाना पड़ेगा।

जो जिस समय का कर्तव्य है, उसका पालन करना सबसे श्रेष्ठ मार्ग है, और यदि वह केवल कर्तव्य ममत्त कर किया जाय तो वह मनुष्य को आमक्त नहीं बनाता।

सगीत सर्वोत्तम कला है और जो उसे समझते हैं उनके लिए वह सर्वोत्तम उपानना भी है।

हमें अज्ञान और अधुम का नाश करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए, केवल यह समझ लेना है कि धूम की बुद्धि से ही अधुम का नाश होता है।

सुमाकांक्षी
विदेकानन्द

(श्री फैंसिस बेगेट को लिखित)

१३ दिसम्बर १८९९

प्रिय फैंसिस

तो गोपाल^१ बेनी घरीर धारण कर बैठा हुए। ऐसा होना ठीक ही था— समय और स्वान के विचार से। आजीवन उस पर प्रभु की कृपा बनी रहे। उसकी प्राप्ति के लिए तीव्र इच्छा थी और प्रार्थनाएँ भी की गयी थीं और वह धुम तथा तुम्हारी पत्नी के लिए जीवन में बरदान स्वरूप बानी है। मुझे इसमें रंज भी सन्देश नहीं है।

मेरी इच्छा थी कि चाहे यह रहस्य ही प्रकट करने के ब्यापक है कि 'आश्वास्य धिम्' के लिए प्राण्य मुनि उपहार का रहे है, मैं इस समय अमेरिका जा जाता। किन्तु सब प्रार्थनाओं और आशीर्वाहों से भरपूर मेरा हृदय नहीं पर है और घरीर की अनेका मन अधिक सक्रियताही होता है।

मैं इस महीने की १६वीं तारीख को रवाना हो रहा हूँ और मेक्सिको में स्टीमर पर सवार हो जाऊँगा। अस्पताल से रोम में अवस्य ही मिलूँगा।

पावन परिवार को बहुत बहुत प्यार।

सदा प्रभुपदाभित
विदेकानन्द

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

होटल मिन्नी पकोरेमा
२ दिसम्बर १८९९

प्रिय स्वामी

इन पत्र से ही मुझे यह भात्र हो रहा होगा कि मैं जनी तक मार्ग में हूँ। स्वप्न छोड़ने से पहले ही तुम्हारा पत्र तथा पुस्तिका मुझ मिली थी। मन्मथर के पासतपन पर कोई ध्यान न देना। इसमें कोई सन्देश नहीं कि ईप्सा के उन्ना विमाप

१ गोपाल का प्रयोग श्री इन्द्र के सिंगु रूप के लिए किया जाता है। यहाँ पुत्र जन्म की प्रतीक्षा में पुत्री के जन्म का संकेत किया गया है।

खराब कर दिया है। उन्होंने जिस अभद्रोचित भाषा का प्रयोग किया है, उसे सुनकर सम्य देश के लोग उनका उपहास ही करेंगे। इस प्रकार की अशिष्ट भाषा का प्रयोग कर उन्होंने स्वयं ही अपने उद्देश्य को विफल कर डाला है।

फिर भी हम कभी अपनी ओर में हरमोहन अथवा अन्य किसी व्यक्ति को ब्राह्मसमाजियों या और किसीके साथ झगडने की अनुमति नहीं दे सकते। जनता इस बात को अच्छी तरह से जान ले कि किसी सम्प्रदाय के साथ हमारा कोई विवाद नहीं है और यदि कोई झगडा करता है तो उसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। परस्पर विवाद करना तथा आपस में निन्दा करना हमारा जातीय स्वभाव है। आलसी, कर्महीन, कटुभाषी, ईर्ष्यापरायण, डरपोक तथा विवादप्रिय—यही तो हम वगालियों की प्रकृति है। मेरा मित्र कहकर अपना परिचय देनेवाले को पहले इन्हे त्यागना होगा। नहीं हरमोहन को कोई पुस्तक छापने की अनुमति देनी होगी, क्योंकि इस प्रकार के प्रकाशन केवल जनता को छलने के लिए होते हैं।

कलकत्ते में यदि सतरे मिलते हों तो मद्रास में आलासिंगा के पते पर सौ सतरे भेज देना, जिसमें मद्राम पहुँचने पर मुझे प्राप्त हो सके।

मुझे पता चला है कि मजूमदार ने यह लिखा है कि 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका में प्रकाशित श्री रामकृष्ण के उपदेश यथार्थ नहीं हैं, मिथ्या हैं। यदि ऐसा ही है तो सुरेश दत्त तथा रामबाबू को 'इण्डियन मिरर' में इसका प्रतिवाद करने को कहना। मुझे यह पता नहीं है कि उन उपदेशों का सग्रह किस प्रकार किया गया है, अतः इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ।

सस्नेह तुम्हारा,
विवेकानन्द

पुनश्च—इन मूर्खों की ओर कोई ध्यान न देना, कहावत है कि 'वृद्ध मूर्ख जैसा और कोई दूसरा मूर्ख नहीं है।' उन्हें चिल्लाने दो। अहा, उन बेचारों का पेशा ही मारा गया है। कुछ चिल्लाकर ही उन्हें सन्तुष्ट होने दो।

वि०

(श्री आलासिंगा पेरुमल को लिखित)

प्रिय आलासिंगा,

लगभग तीन सप्ताह हुए मैं स्विट्ज़रलैण्ड से लौटा हूँ, पर इसके पूर्व तुम्हें पत्र न लिख सका। पिछली ढाक से मैंने तुम्हें कील के पॉल डॉयसन पर लिखा एक लेख भेजा था। स्टर्डी की पत्रिका की योजना में अभी भी विलम्ब है।

जीसा कि तुम जानते हो मैंने सेंट जार्ज रोड स्थित भकान छोड़ दिया है। १९, विन्कोरिया स्ट्रीट पर एक सेक्टर हॉल हमें मिला गया है। ई टी स्टर्जी के मार्ग्रेट मेबम पर बिट्टी-पत्नी मुझ एक साल तक मिला जाया करेगी। ब्रेकोट गार्डन्स के कमरे मेरे तथा मात्र चीन सहीने के लिए आवे हुए स्वामियों के आवास के लिए हैं। लन्दन में काम सीधता से बढ़ रहा है और हमारी कक्षाएँ बढ़ी जाती जा रही हैं। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं कि यह इसी रफ्तार से बढ़ना ही जायगा क्योंकि अर्थव्यवस्था बृद्ध एवं निष्ठावान है। यह सही है कि मेरे छोड़ते ही इसका अधिकार तानाशाह दूट जायगा। कुछ बट्टि अक्सर होता। कोई समितिसाक्षी व्यक्ति इसे बहान करने के लिए उठ सका होता। ईस्वर जानता है कि क्या अच्छा है। अमेरिका में बेवान्त और योग पर बीच उपदेशकों की आवश्यकता है। पर ये उपदेशक और इन्हें यहाँ जाने के लिए धन कहाँ मिलेगा? यदि कुछ सन्ने और समितिसाक्षी मनुष्य मिल जायें तो आजा संयुक्त राज्य इस वर्ष में जीता जा सकता है। वे कहाँ हैं? वहाँ के लिए हम सब अहमक हैं। स्वामी कायर, बेध मक्ति की केवल मुझ से बकवास करनेवाले और अपनी कट्टरता तथा मामिकता के अभिमान से चूर।। मद्रासियों में अधिक स्फूर्ति और दृढता होती है, परन्तु वहाँ हर मूर्ख विवाहित है। ओफ विवाह! विवाह! विवाह! और फिर जानकस के विवाह का तरीका जिसमें लड़कों को जोत दिया जाता है। अमासगत गृहस्थ होने की इच्छा करना बहुत अच्छा है परन्तु मद्रास में यनी उसकी आवश्यकता नहीं है—बल्कि अविवाह की है।

मेरे बच्चे मैं जो चाहता हूँ वह है लोहे की तर्से और प्रीमार्क के स्नायु जिनके भीतर ऐंशान मत बाध करता हो जो कि बज्र के समान पदार्थ का बना हो। बल पुष्पार्थ आशनीय और ब्रह्मतेज। हमारे सुत्वर हस्तहार लड़के—उनके पास सब कुछ है यदि वे विवाह नाम की कूर बेदी पर लाखों की गिनती में बलिदान न किया जायें! हे मगवानु, मेरे हृदय का कथन सुनो। मद्रास तभी जाग्रत होना जब उसने प्रत्यक्ष हृदय स्वयं ही विहित सबपुत्रक समार को त्याग कर और कमर कट कर, बेध बेध में भ्रमण करते हुए सत्य का संघाम लड़क के लिए तैयार होने। भारत के बाहर का एक भाषात भारत के अन्तर के एक साथ आवातों के बराबर है। और, यदि प्रभु की इच्छा होनी तो सभी कुछ ही जायगा।

मिल मूलर ही वह व्यक्ति है जिनमें मैंने तुम्हें रुपये दिकाने का बचन दिया था।

१. मद्रासी राज्य का प्रयोग स्वामी श्री ने सर्वत्र एक व्यापक संदर्भ में किया है जिसके अन्तर्गत तत्पूर्व ब्रह्मिण्यवर्ती जा आते हैं।

मैंने उन्हें तुम्हारे नये प्रस्ताव के विषय में बतला दिया है। वे उसके बारे में सोच रही हैं। इस बीच मैं सोचता हूँ उन्हें कुछ काम दे देना उचित रहेगा। उन्होंने 'ब्रह्मवादिन्' और 'प्रबुद्ध भारत' का प्रतिनिधि बनना स्वीकार कर लिया है। इसके विषय में क्या तुम उन्हें लिखोगे? उनका पता है एयरली लॉज, रिजवे गार्डन्स, विम्बलडन, इंग्लैण्ड। वही उनके साथ पिछले कई हफ्तों से मैं रह रहा था। लेकिन लन्दन का काम मेरे वहाँ रहे बिना संभव नहीं है। इसीलिए मैंने अपना आवास बदल दिया है। मुझे दुःख है कि इससे मिस मूलर की भावनाओं को थोड़ी ठेस पहुँची है। लेकिन किया ही क्या जा सकता है! उनका पूरा नाम है मिस हेनरियेटा मूलर। मैक्समूलर के साथ गाढी मित्रता हो रही है। मैं शीघ्र ही ऑक्सफोर्ड में दो व्याख्यान देनेवाला हूँ।

मैं वेदान्त दर्शन पर कुछ बड़ी चीजें लिख रहा हूँ और भिन्न भिन्न वेदों से वाक्य संग्रह करने में लगा हूँ, जो कि वेदान्त की तीनों अवस्थाओं से सम्बन्ध रखते हैं। पहले अद्वैतवाद सम्बन्धी विचार, फिर विशिष्टाद्वैत और द्वैत से जो वाक्य सम्बन्ध रखते हों, वे सहिता, ब्राह्मण, उपनिषद् और पुराण में से किसीसे संग्रह करा कर तुम मेरी सहायता कर सकते हो। वे श्रेणीबद्ध होने चाहिए, शुद्ध अक्षरों में लिखे जाने चाहिए और प्रत्येक के साथ ग्रन्थ और अध्याय के नाम उद्धृत होने चाहिए। पुस्तक रूप में दर्शन शास्त्र को पश्चिम में छोड़े बिना पश्चिम में चल देना दयनीय होगा।

मैसूर से तमिल अक्षरों में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसमें सभी १०८ उपनिषद् सम्मिलित थे। मैंने प्रोफेसर डॉयसन के पुस्तकालय में वह पुस्तक देखी थी। क्या वह देवनागरी अक्षरों में भी मुद्रित हुई है? यदि हो तो मुझे एक प्रति भेजना। यदि न हो तो मुझे तमिल संस्करण तथा एक कागज पर तमिल अक्षर और सयुक्ताक्षर लिखकर भेज देना। उसके साथ देवनागरी समानार्थक अक्षर भी लिख देना जिससे मैं तमिल अक्षर पहचानना सीख जाऊँ।

श्री सत्यनाथन्, जिनसे कुछ दिन हुए मैं लन्दन में मिला था, कहते थे कि 'मद्रास मेल' ने जो मद्रास का मुख्य एंग्लो इण्डियन समाचार पत्र है, मेरी पुस्तक 'राजयोग' की अनुकूल समीक्षा की है। मैंने सुना है कि अमेरिका के प्रधान शरीर-शास्त्रज्ञ मेरे विचारों पर मुग्ध हो गये हैं। उसके साथ ही इंग्लैण्ड में कुछ लोगों ने मेरे विचारों का मञ्जाक उढाया है। यह ठीक ही है, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि मेरे विचार नितान्त साहसिक हैं और बहुत कुछ उनमें से हमेशा के लिए अर्थहीन रहेंगे, परन्तु उनमें कुछ ऐसे सकेत भी हैं जिन्हें शरीर-शास्त्रज्ञ यदि शीघ्र ही ग्रहण कर लें तो अच्छा हो। फिर भी उसके परिणाम से मैं विल्कुल सन्तुष्ट हूँ। वे चाहे मेरी निन्दा

ही करें, पर पर्चा तो करें। यह मरा आदर्श-वाक्य है। इंग्लैण्ड में वेसल मठ लोग हैं और बेहूवी बाते नहीं करते वैसे कि मैंने अमेरिका में पाया। और फिर इंग्लैण्ड के सगमम सभी मिशनरी मिशनरताबसम्बी बर्ष के हैं। वे इंग्लैण्ड के घर जन बम स मही आते। यहाँ के सभी धार्मिक भद्रजन इंग्लिश बर्ष को मानते हैं। उन मिशनरताबसम्बियों की इंग्लैण्ड में कोई पूछ नहीं है और वे विधित भी नहीं हैं। उनके बारे में मैं यहाँ कुछ भी नहीं सुनता जिनके विषय में तुम मुझे बार बार आगाह करते हो। उनको यहाँ कोई नहीं जानता और यहाँ बकवास करने की उनको हिम्मत भी नहीं है। भासा है भार क नामक मद्रास में ही होये और तुम कुछपूर्वक हो।

उठे रहो मेरे बहादुर बच्चो! हमने सभी कार्य आरम्भ ही किया है। निराशा न हो! अभी न कहो कि बस इतना काफ़ी है! जैसे ही मनुष्य परिचय में आकर दूसरे राष्ट्रों को बेचता है उसकी आँखें खुल जाती हैं। इसी तरह मुझे आशियासी वायफ़ती भिरु आते हैं—केवल बातों से नहीं प्रत्यक्ष दिखाने से कि हमारे पास भारत में क्या है और क्या नहीं। येटी कितनी दृष्टा है कि कम से कम बस सात हिन्दू पूरे संसार का अमल किये हुए होत।

प्रेमपूर्वक सदैव तुम्हारा
द्विवेकानन्द

(कुमाठी बस्वर्ट स्टारपीड को लिखित)

होटल मिन्नी फ़ोरेस
२० दिसम्बर, १८९९

प्रिय भद्रार्थी

कल हम लोग रोम पहुँच रहे हैं। चूँकि हम लोग रोम रात से देर से पहुँचेंगे इसी सम्मेलन में परतीं ही तुमसे मिलने के लिए आ सकूँगा। हम लोग 'होटल वाग्निस्टम' में ठहरेंगे।

सन्तुष्ट और सचीब
द्विवेकानन्द

(श्री आन्तानिया पेद्रजल को लिखित)

अमेरिका
१८९९

श्री आन्तानिया

दुन अन्तार्द मैंने तुमको 'ब्रह्मचरिण' के सम्बन्ध में लिखा था। उक्तर्ष अन्ति

विषयक व्याख्यानों के बारे में लिखना मैं भूल गया था। उनको एक साथ पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहिए। 'गुड ईयर' के नाम से न्यूयार्क, अमेरिका के पते पर उसकी एक सौ प्रतियाँ भेज सकते हो। मैं बीस दिन के अन्दर जहाज़ से इंग्लैण्ड रवाना हो रहा हूँ। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा राजयोग सम्बन्धी मेरी और भी बड़ी बड़ी पुस्तकें हैं। 'कर्मयोग' प्रकाशित हो चुका है। 'राजयोग' का आकार अत्यन्त वृहत् होगा—वह भी प्रेस में पहुँच चुका है। 'ज्ञानयोग' सम्भवत इंग्लैण्ड में छपवाना होगा।

तुमने 'ब्रह्मवादिन्' में 'क' का एक पत्र प्रकाशित किया है, उसका प्रकाशन न होना ही अच्छा था। थियोसॉफिस्टो ने 'क' की जो खबर ली है, उससे वह जल भुन रहा है। साथ ही उस प्रकार का पत्र सम्यजनोचित भी नहीं है, उससे सभी लोगो पर छीटाकशी होती है। 'ब्रह्मवादिन्' की नीति से वह मेल भी नहीं खाता। अतः भविष्य में यदि कभी 'क' किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध, चाहे वह कितना ही ख़त्ती और उद्धत हो, कुछ लिखे तो उसे नरम करके ही छापना। कोई भी सम्प्रदाय, चाहे वह बुरा हो या भला, उसके विरुद्ध 'ब्रह्मवादिन्' में कोई लेख प्रकाशित नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रवचको के साथ जानबूझ कर सहानुभूति दिखानी चाहिए। पुनः तुम लोगो को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि उक्त पत्र (ब्रह्मवादिन्) इतना अधिक शास्त्रीय (technical) बन चुका है कि यहाँ पर उसकी ग्राहक संख्या बढ़ने की आशा नहीं है। साधारणतया पश्चिम के लोगो का इतनी अधिक क्लिष्ट संस्कृत भाषा तथा उसकी बारीकियों का ज्ञान नहीं है और न उनमें जानने की इच्छा ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि भारत के लिए वह पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। किसी मतविशेष का समर्थन किया जा रहा हो, ऐसी एक भी बात उसके सम्पादकीय लेख में नहीं रहनी चाहिए। और तुम्हें यह सदा ध्यान रखना है कि तुम केवल भारत को नहीं, चरन् सारे ससार को सम्बोधित कर बातें कह रहे हो और तुम जो कुछ कहना चाहते हो, ससार उसके बारे में बिल्कुल अनजान है। प्रत्येक संस्कृत श्लोक का अनुवाद अत्यन्त सावधानी के साथ करना और जहाँ तक हो सके उसे सरल भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा करना।

तुम्हारे पत्र के जवाब मिलने से पहले ही मैं इंग्लैण्ड पहुँच जाऊँगा। अतः मुझे पत्र का जवाब द्वारा ई० टी० स्टर्डी, हाई व्यू, कैवरगम्, इंग्लैण्ड के पते पर देना।

तुम्हारा,
विवेकानन्द

(स्वामी जनेशानन्द को भिषित)

द्वारा ई टी स्टर्डी
 हाई न्यू कैबरसम् टैडिन इंग्लैण्ड
 १८९९

प्रेमास्पद

मेरा पहला पत्र मिला होगा। अब इंग्लैण्ड में मुझे पत्रादि उपयुक्त पत्र पर भेजना। श्री स्टर्डी को तारक बाबा (स्वामी विश्वकाम्य) जानते हैं। जहाँसे ही मुझे इन्वीट बुकामा है तथा हम दोनों मिलकर इंग्लैण्ड में आन्विक्रम बनाना चाहते हैं। नवम्बर महीने में पुनः अमेरिका जाने का मेरा विचार है। जहाँ वहाँ पर एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है, जो संस्कृत तथा अंग्रेजी साक्षर अंग्रेजी अच्छी तरह से जानता हो। मैं समझता हूँ कि इसके लिए सति साराभा मन्ना तुम उपयुक्त हो। इन तीनों में से यदि तुम्हारा शरीर पूर्णतया स्वस्थ हो गया हो तो तुम्हीं भेजे जाना। मेरी राय में यही अधिक अच्छा होता अन्यथा सार्ज को भेजना। कार्य बेजक इतना ही है कि मैं बिना सिम्प-सेवकों को यहाँ छोड़ जाऊँ उन्हें भिषा देना तथा भेदान्त पढाना होना और बोझ-अहुत अंग्रेजी में अनुवाद करना तथा बीच बीच में भाषण आदि भी देना पड़ेगा। कर्मका बाध्यते बुद्धि।—को जाने की अत्यन्त अभिलाषा है, किन्तु वह मजबूत किये बिना सब कुछ व्यर्थ हो जायगा। इस पत्र के साथ एक चेक भेज रहा हूँ उससे कपड़े-कपड़े खरीब लेना। महेश्वर बाम् (मास्टर महाशय) के नाम चेक भेजा जा रहा है। गंगाधर का लिखती चोना मठ में है उसी तरह का एक चोना मेरे से रंग लेना। काँसर कुछ ऊँचा होना चाहिए, जिससे कला बका जा सके। सबसे पहले एक अत्यन्त परम ओवरकोट की आवश्यकता है यहाँ पर अत्यधिक ठण्ड है। ओवरकोट के बिना बहाज में विशेष कष्ट होगा। द्वितीय श्रेणी का टिकट भेज रहा हूँ प्रथम श्रेणी तथा द्वितीय श्रेणी में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

बम्बई पहुँचकर—मेसर्स किंग किंग एण्ड कम्पनी प्रोर्ट बम्बई बाँधित में जाकर यह कहना कि 'मैं स्टर्डी साहब का आशनी हूँ' इसमें वे तुम्हारे लिए इंग्लैण्ड तक का एक टिकट देंगे। वहाँ से एक पत्र उक्त कम्पनी को भेजा जा रहा है। मित्रों के राजा साहब को भी मैं एक पत्र इस आशय का लिख रहा हूँ कि उनके बम्बई के एजेंट तुम्हारी अच्छी तरह से देखभाल कर टिकट आदि की व्यवस्था कर दें। यदि इन १५ वर्षों में उपयुक्त कपड़े-कपड़े की व्यवस्था न हो तो रायल बाकी वर्षों का इन्तजाम कर दे बाद में मैं उसे भेज दूँगा। इसके अलावा ९ रुपये पैच चार्ज के लिए रचना—ये भी रायल से देने को कहना। मैं बाद में भेज दूँगा। पुनः

बाबू के लिए मैंने जो रुपया भेजा है, आज तक उसका कोई समाचार मुझे नहीं मिला। पत्र के देखते ही रवाना हो जाना। महेन्द्र बाबू से कहना कि वे मेरे कलकत्ते के एजेण्ट हैं। इस पत्र को देखते ही वे श्री स्टर्डी को यह उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजें कि कलकत्ता सम्बन्धी हमें जो काम काज इत्यादि करने होंगे, वे उन कार्यों को करने के लिए प्रस्तुत हैं। अर्थात् श्री स्टर्डी मेरे इंग्लैण्ड के सेक्रेटरी हैं, महेन्द्र बाबू कलकत्ते के, आलासिगा मद्रास के। मद्रास में यह समाचार भेज देना। सभी के आन्तरिक प्रयास के बिना क्या कोई कार्य हो सकता है? उद्योगिन पुरुषसिंह-सुपैति लक्ष्मी—‘उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है।’ पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है—आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त वैर्य चाहिए, तभी महान् कार्य सम्पन्न होगा। दुनिया में आग फूंकनी है।

जिस दिन जहाज का प्रबन्ध हो, तत्काल ही श्री स्टर्डी को पत्र लिखना कि ‘अमुक जहाज में मैं आ रहा हूँ।’ अन्यथा लन्दन पहुँचने पर गड़बड़ी होने की सम्भावना है। जो जहाज सीधे लन्दन आता हो, उसीसे आना, क्योंकि यद्यपि उससे आने में दो चार दिन की देरी हो सकती है, किन्तु किराया कम लगता है। इस समय हमारे पास तो धन अधिक नहीं है। समय आने पर लोगो को हम चारों ओर भेज सकेंगे। किमधिकमिति।

विवेकानन्द

पुनश्च—इस पत्र को देखने ही खेतड़ी के राजा साहब को लिखना कि तुम बम्बई जा रहे हो, अतः उनके एजेण्ट तुम्हें जहाज में बिठाने के लिए सहायता करें।

वि०

यह पता किसी डायरी में लिखकर अपने साथ रखना—किसी प्रकार गड़बड़ी न हो।

(स्वामी रामकृष्णानन्द को लिखित)

ई० टी० स्टर्डी का मकान,

हाई ब्यू, कैवरशाम्, रीडिंग,

१८९६

प्रिय शशि,

मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने अपने पूर्व पत्र में इसका उल्लेख किया है या नहीं, अतः इस पत्र द्वारा तुम्हें यह सूचित करता हूँ कि काली अपने रवाना होने के दिन अथवा उससे पूर्व श्री ई० टी० स्टर्डी को पत्र डाल दे, ताकि वे जाकर जहाज से उसे

किन्ना सायें। यह सन्तन शहर मनुष्यों का सागर है—इस पन्द्रह कलकत्ता इसमें इकट्ठे समा सकते हैं। अतः उस प्रकार की व्यवस्था किये दिना गड़बड़ी होने की सम्भावना है। आन में बरी न हो पत्र देखते ही उसे निरुत्थन की कहना। सत्य की तरह आने में निरुत्थन नहीं होना चाहिए। और बाकी बातें स्वयं सोच-विचार कर ठीक कर लेना। काली को जैसे नी हो सीध भेजना। यदि सत्य की तरह आने में निरुत्थन हो तो फिर किसीक आने की आवश्यकता नहीं है—कुसमुल गीर्वाण के आकस्मिक से यह कार्य नहीं हो सकता यह तो महान् रजोगुण का कार्य है। तमोगुण से हमारा वेध छाया हुआ है—वहाँ बेलो वही तम रजोगुण चाहिए, उसके बाद सत्य यह तो अत्यन्त दूर की बात है।

सत्येन्द्र

नरेन्द्र

(कुमारी मेरी हेछ को किञ्चित)

ईम्फर,

प्रिंस रीजेण्ट सिम्पोसेट्स

३ जनवरी १८९०

प्रिय मेरी

तुम्हारा पत्र मिला जो सन्तन पहुँचाने के बाद रोम के सिम्प प्रिंसिपल किन्ना गया था। तुम्हारी हृषा भी जो इतना सुन्दर पत्र किन्ना और उसका पत्र पत्र मुझे अच्छा लगा। यूरोप में बाग-बून्द के विकास के विषय में मुझे कुछ साक्ष्य नहीं। मेपुस्त से चार दिनों की भयावह समुद्र-यात्रा के पश्चात् हम जीव पोर्ट सैंड के निकट पहुँच रहे हैं। जहाज अत्यधिक बोलावित हो रहा है, अतएव ऐसी परिस्थितियों में अपनी खराब लिखावट के लिए तुमसे क्षमा माँगा है।

स्वेड से एशिया महाद्वीप आरम्भ हो जाता है। एक बार फिर एशिया आया। मैं क्या हूँ? एशियाई, यूरोपीय या अमेरिकी? मैं तो अपने में व्यक्तियों की एक अजीब लिखावट पाता हूँ। तुमने धर्मपाल के बारे में उनके जाने जाने तथा कार्यों के विषय में कुछ नहीं लिखा। पाँची की अपेक्षा उनके प्रति मेरी दिलचस्पी बहुत ज्यादा है।

कुछ ही दिनों में मैं कोलम्बो में जहाज से उतरके और फिर लंका को बोझा देखने पर विचार है। एक समय पर जब लंका की आबादी दो करोड़ से भी अधिक थी और उनकी राजधानी विद्याल थी। राजधानी के असाधारण वा विस्तार लगभग एक ही वर्ष मील है।

लकावासी द्राविड नहीं हैं, बल्कि विशुद्ध आर्य हैं। ईसा के जन्म से ८ सौ वर्ष पूर्व बगाल के लोग वहाँ जाकर वसे और तब से लेकर आज तक लकावासियों ने अपना इतिहास बड़ा स्पष्ट रखा है। प्राचीन दुनिया का वह सबसे बड़ा व्यापार-केन्द्र था और अनुरावापुर प्राचीनो का लन्दन था।

पश्चिमी देशों के सभी स्थानों की अपेक्षा रोम मुझे ज़्यादा अच्छा लगा और पाम्पियाई देखने के बाद तो तथाकथित आधुनिक सम्यता के प्रति समादर की मेरी सारी भावना लुप्त हो गयी। वाष्प तथा विद्युत् शक्ति के अतिरिक्त उनके पास और सब कुछ था और कला सम्बन्धी उनके विचार तथा कृतियाँ तो आधुनिकों की अपेक्षा लाख गुनी अधिक थी।

कृपया कुमारी लॉक (Miss Locke) से कहना कि मैंने उन्हें जो यह बताया था कि मानव-मूर्ति-कला का जितना विकास यूनान में हुआ था, उतना भारत में नहीं, वह मेरी गलती थी। फर्ग्युसन तथा अन्य प्रामाणिक लेखकों की पुस्तकों में मुझे यह पढ़ने को मिल रहा है कि उड़ीसा या जगन्नाथ में, जहाँ मैं नहीं गया हूँ, ध्वसावशेषों में जो मानवीय मूर्तियाँ मिली हैं, वे सौन्दर्य तथा शारीरिक रचना-नैपुण्य में यूनानियों की किसी भी कृति की बराबरी कर सकती हैं। मृत्यु की एक महाकाय प्रतिमा है। उसमें मृत्यु की नारी के वृहदाकार अस्थि-पजर के रूप में दिखाया गया है, जिसके चमड़े पर तमाम झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं—शरीर-रचना की वारिकियों का इतना सच्चा प्रदर्शन परम भयावह और बीभत्स है। मेरे लेखक का मत है कि गवाक्ष में निर्मित एक नारी-मूर्ति बिल्कुल 'वीनस डी मेडिसी' से मिलती जुलती है, इत्यादि। पर तुम्हें याद रखना चाहिए कि प्रायः सब कुछ मूर्ति-भजक मुसलमानों ने नष्ट कर डाला, फिर भी जो कुछ बचा है, वह यूरोप के तमाम भग्नावशेषों की तुलना में श्रेष्ठ है! मैंने आठ वर्ष परिभ्रमण किया, किन्तु बहुत सी श्रेष्ठतम कलाकृतियों को नहीं देखा है।

वह लॉक से यह भी कहना कि भारत के वन-प्रान्त में एक मन्दिर के खण्डहर हैं और उसके साथ यदि यूनान के 'पार्थेनॉन' की समीक्षा की जाय तो फर्ग्युसन का मत है कि दोनों ही स्थापत्य कला के चरम बिन्दु तक पहुँच गये हैं—दोनों अपने अपने ढंग के निराले हैं—एक कल्पना में और दूसरा कल्पना एवं अलकरण में। बाद की मुगलकालीन इमारतों आदि में भारतीय तथा मुस्लिम कलाओं का सकर है और वे प्राचीन काल की सर्वोत्कृष्ट स्थापत्य कला की आशिक समता भी नहीं कर सकती।

तुम्हारा सस्नेह,
विवेकानन्द

पुनरुत्थ—संयोग से फुडोरेंस में 'मदर बर्ब' और 'छाबर पीप' के वर्णन हुए।
इसे तुम जानती ही हो।

वि

(कुमारी मेरी हेल्थ को सिखित)

रामनाडू

शनिवार, ३ जनवरी १८९७

प्रिय मेरी

परिस्थितियाँ अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप से मेरे लिए अनुकूल होती जा रही हैं। कोलम्बो में मैंने बहारा छोड़ा तथा भारत के दक्षिण स्थित प्रायः अन्तिम मूलस्थ रामनाडू में मैं इस समय वहाँ के राजा का अतिथि हूँ। मेरी माता एक बिरादू मूसूम के समान रही—बेशुमार जनता की सीढ़ी रोसनी मानवक बरीरहू बगैरह। भारत की भूमि पर, वहाँ मैंने प्रथम पर्याप्य किया वहाँ पर ४ फुट ऊँचा एक स्मृति स्तम्भ बनवाया जा रहा है। रामनाडू के राजा साहब ने अपना मानवक एक अत्यन्त सुन्दर लकड़ानी किया हुए उसी सोने के बड़े बॉक्स में रखकर मुझे प्रदान किया है। उनम मुझे 'परम पवित्र' (His Most Holiness) कहकर सम्बोधित किया गया है। मद्रास तथा कन्नडते में लोय बड़ी उत्कृष्टा के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मानो सारा देश मुझे सम्मानित करने के लिए उठ खड़ा हुआ है। अतः मेरी तुम यह देख रही हो कि मैं अपने भाग्य के उज्ज्वलतम भित्तर पर आकर हूँ। फिर भी मेरा मन भिन्नागो के उन निस्सम्ब विभ्रान्तिपूर्व दिनों की ओर बीड़ रहा है—किन्तु सुन्दर विध्यामवापक शान्ति तथा प्रमथूर्व से से दिन! इसीलिए मैं अभी तुमको पत्र लिखने बैठा हूँ। जाना है कि तुम अभी लक्ष्मण तथा आनन्दपूर्वक होये। डॉक्टर बरोड की आम्बर्भता करने के बिना मैंने लम्ब से अपने बेशावातियों को पत्र लिखा था। उन लोगों ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ उनकी आम्बर्भता की थी। किन्तु वे यहाँ के लोगों से प्रेरणा-संचार नहीं कर सके इसके लिए मैं शोपी रही हूँ। कन्नडते के भाषी में कोई नवीन भाषना पैदा करना बहुत कठिन है। अब मैं तुम रहा हूँ कि डॉक्टर बरोड के मन से मेरे प्रति अनेक बारजाएँ उठ रही हैं। इसीका नाम तो सनाए है।

जाना भी पता भी तथा तुम अभी की मर प्यार।

गुम्हारा स्नेहबद्ध
विश्वकालम्ब

(स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखित)

मद्रास,

१२ फरवरी, १८९७

प्रिय राखाल,

आगामी रविवार को 'यस० यस० मोम्बासा' जहाज़ से मेरे रवाना होने की बात है। स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण पूना तथा और भी अनेक स्थानों के निमंत्रण मुझे अस्वीकार करने पड़े। अत्यधिक परिश्रम तथा गर्मी के कारण स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका है।

थियोसॉफिस्ट तथा अन्य लोगो की इच्छा मुझे अत्यन्त भयभीत करने की थी, अतः उन्हें दो चार बातें स्पष्ट रूप से कहने के लिए मुझे बाध्य होना पडा था। तुम तो यह जानते हो कि उनके साथ सम्मिलित न होने के कारण उन लोगो ने अमेरिका में मुझे बराबर कष्ट दिया है। यहाँ पर भी उसी प्रकार के आचरण करने की उन लोगो की इच्छा थी। इसीलिए मुझे अपना अभिमत स्पष्ट रूप से व्यक्त करना पडा था। इससे यदि मेरे कलकत्ते के मित्रो में से कोई असन्तुष्ट हुए हो, तो भगवान् उन पर कृपा करे। तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं है, मैं अकेला नहीं हूँ, प्रभु सदा मेरे साथ है। इसके सिवाय और मैं कर ही क्या सकता था ?

तुम्हारा,

विवेकानन्द

पुनश्च—मकान तैयार हो गया हो तो उसे ले लेना।

वि०

अनुक्रमणिका

अप्रेत्र ८७-८, ११८, १३८, १८६,
१९२, २०५, २०८, २१८, ३००,
३६८, ३८१, ३८९, जाति १६०,
२०८, २०६, ३९१, मात्रक ८-
मित्र २०३

अप्रेत्री भाषा १०, ३८९, शैली ९९

अक्षर २२०

'अनामहत' २३६

'अजा' (जन्मरहित) १०८

अजुन ३३५

अज्ञेयवाद १११

अज्ञेयवादियों ३१२

अटलान्तिक महासागर २०४, ३५२, ३७३

अणिमा २२६

अतीन्द्रियवाद ५३

अथर्ववेद संहिता १९२, ३५१

अदृष्टवाद २४

अद्वैत १२८

अद्वैत तत्त्व २१९, ३२२

अद्वैतात्मक २८८

अद्वैत भाव १२९, १३२, १७४, ३२९

अद्वैतभावात्मक २२५

अद्वैतवाद २८-९, ५९, ८५, १२५-२६,

१३७, १४९, १७४-७५, २१८,

२३९, २६८, २८७-८८, २९४-

९५, ३०३, ३०५, ३०७, ३०९,

३१३-१८, ३२१-२३, ३२८, ३७२,

३९९

अद्वैतवादी १३, २०, ३३, ५८, १२४-

२५, १२८-२९, १३४, १५५, १८१,

१९१, २१३, २१५-१८, २२७,

२३२, २३७-३८, २८७-८८, ३००-

१, ३०५-७, ३१४

अज्ञानम ज्ञान ३२, ज्ञान ३०२, नन्व

३२०, पुनर्जन्मा ४२, प्रतिभा ३,

स्व ४५, त्रिधा ८५, शक्ति ९,

शिक्षा ५०

'अनाय' ९८, १८६

अनुभूति २६९, 'प्रत्यक्ष' २७०

अनुभूत छद्म ३२५

जन्मदृष्टि पर्यायण ८८

जन्तियोक २१५

'अन्वकारमय प्रज्ञा' २६३

अफगानिस्तान १८६

अफ्रीका ८८, १३८

अफ्रीकी ८८, १८६

अभाव मे भाव वस्तु का उद्भव २३

अभी ५७, १३२-३३, २१२, २७८

अभेदानान २८

अभेदानन्द ३५१, ३६०, ३९०, ४०२

(देखिए काली)

अमिताचार २८०

अमरीकी १८६, २००, जाति २०४,

राष्ट्रो ३

अमेरिका ७, १४, ४१, ६६, ७४-५,

८५-८, १०३-५, १०९, ११८,

१२१, १६२-६३, १६७, १७०,

१८३, २०४-५, २४१-४२, ३१८,

३२२-२३, ३३२, ३३४, ३५१,

३५४, ३५८, ३६४-६७, ३७२,

३८०, ३८२, ३८८, ३९०, ३९३-

९४, ३९६, ३९८-४०२, ४०७,

उत्तर ३६३

अमेरिकावासी १०४

अमेरिकी पत्र ३५९

अरब ९, ३७५

अरभ्यनिवासी १६५
 अरभ्यनिवासी १
 अरभ्यनी मन्त्र २८९ म्याम २८९
 अरभ्यनी, कर्नल ३६१
 अरभ्यर, मणि ३६
 अरभ्यर, मुद्राहास्य १ ४
 अरभ्यर ३८ ३९३ ३९६
 अरभ्यर २२
 'अरभ्यर' ३६१
 अरभ्यर १ २४१ ३४३ ३५७ ३८८ ९
 अरभ्यर २२०-२२१
 अरभ्यर आत्मन् २६
 'अरभ्यर' २३६
 अरभ्यर १७
 अरभ्यर २३८
 अरभ्यर प्रेम मन्त्र १५४

आकेतिस कुपेरी (पा टि) ९
 आइसा मेल ३७५-७६
 आइसा २९१
 आइसा कृति ७३
 आइसा ३९९
 आइसा-सात्म २६ २८९ ४७ ७९,
 ८५, १२६
 आइसा ६९-७०
 आइसा-सात्म ७९, ११२, १३६
 आइसा-सात्म २२३ २४७ २५७
 आइसा स्वल्प ५७
 आइसा स्वल्प २३८
 आइसा वर्धन २७ विज्ञान ५७
 आइसा २५-७३ ३ ४३ ४६, ७७
 ८१ ८५, ८९, ९५, ११३ (पा
 टि) ११६ ११९ १३१ १३४
 १३७ १३९ ४१ १४८ ४९, १५७
 १५९, १६१ १६५, १७९, १७८
 ७९ १९ २१३ २१८, २२६
 २२८, २३५, २३८, २४ २४६
 ४७ २५६ २६५ ६६ २६८ ६९
 २७१ २९ २९२ २९४ ३ १
 ३ ३ ८ ११ ३१५, ३१५-२६

३२८, ३३३ ३४ ३४६ ४७
 ३७१ ३८४ ३८६ उरका स्वल्प
 ११ और मन १६
 आध्यात्मिक अर्थबुद्धि ३३५ भावार्थ
 ७३ २ ९ २५२ आचार ३२८
 आधिष्ठातृ २ उन्मात् ५६, ६६
 उपदेश १२४ उपाधेयता ३६७
 अमर्ष १४८ जीवन ११६ ज्ञान
 १८, ३२ ११७ उत्पन्न २ १ २७४
 ३३१ तेज २४७ ज्ञान ३२
 पुनरुत्थान ४२ प्रतिमाएँ ५९
 महत्त्वाकांक्षाएँ २५७ राज्य ६७
 व्यवस्था ६६ धिक्का १४६, १९४
 २ ९, धर्म ५९, १४६ उत्पन्न
 १४८, २१४ ३६२ ३७२ उत्पन्न
 म्नेयम १८ संवत्ति ७३ अर्थ ९६
 आध्यात्म धिक्का ५२
 आध्यात्मिकता ४९
 आध्यात्मिकता जीवन रत्न १८१
 आनुमिक मन्त्र २२
 'आत्मन्' ३८६
 आनुमिक संकल्पवाच ८८
 आत्मन्तर धुक्ति २५१-५३
 आरभ्यक २८६
 आरभ्येनिया ३१८
 आर्य ९४ १४८ २३१ अर्थ २४२
 २५९, २९९ ३१८ ३२४ ३२७
 ३४२ ४ ५
 आर्जवर्ष ९८, १५ २५७
 आर्जवर्ष २१
 आर्जवर्षा देवमन्त्र ३५९ ६ ३७७
 ३८१ ३८७ ३८९, ३९७ ४
 ४ ३
 आत्मस ३७
 आत्मस बोध २२, २५२
 आत्मिया ३२
 आहार २२८ ३
 अर्थ ७ ९, १७ ६३ ६६ ९९,
 १ ३ ११८, १६५, १७ २ ५ ६

२४१, ३२०, ३५१-५२, ३५५-५६,
३६४-७०, ३७३-७४, ३७७-७८,
३८१-८२, ३८८, ३९०, ३९३-९४,
३९९-४०३

इंग्लिय चर्च ९९

इटली ३८८-८९, ३९४-९५

'इण्डियन मिरर' ३७७, ३८३, ३९७

इतिहास, भारतीय ३५

इन्द्र २६, २९६, ३२५, ३२७

इन्द्रत्व २६

इन्द्रपुत्र १७६

इलाहाबाद ३८९

'इष्ट निष्ठा' ३०, ८०

इमरायल ८२

इस्लाम धर्म ६३, १४४

ई० टी० स्टर्डी ३५७-५८, ३६४-६५,
३७२, ३९८, ४०१-३ (देखिए
स्टर्डी)

ईरानियो २५३

ईशोपनिषद् (पा० टि०) २६८

ईश्वर तत्त्व २६

ईश्वरत्व ९५, १३५

ईश्वराराधन २७

ईश्वरीय शक्ति २७६

ईसा ३१, १०५-६, १७६, २५३, ३७९

ईसाई २५३, २५६, धर्म ८, १७, ६३,

७९, ८६, १०६, ११२, १३६,

१४४, १५८, २०४, मतावलम्बी

१६९, मिशनरी २२५

ईसा मसीह १४५, १५८

उडीमा ४०५

उत्तरी ध्रुव १८६

उपनिषद् ९, २०, ५७, ७१, ११६,

१२०, १२४-२५, १२७-३७, १३९,

१५५, २१५-१६, २१९-२३, २२५,

२७७, २८६-८७, ३२५, ३२८-२९,

३३३, ३४४, ३९९, अल्लोपनिषद्

२२०-२१,

ईशोपनिषद् २६८, उसमे द्वैतभाव
१३२, कठोपनिषद् ८९, १३०,
(पा० टि०) १३०, १७५-७६,

२१२, २७७, ३२८, ३३४, केनो-

पनिषद् (पा० टि०) १७५, मुड-

कोपनिषद् २८९, ३०१, (पा०

टि०) १३०, २२३, २६९, बृहदा-

ग्न्यकोपनिषद् (पा० टि०) ३०८,

विद्या १२६, श्वेताश्वतरोपनिषद्

३१२

उपामना १५, १५५-५६, गृह ८३,

पद्धतियाँ १५८

उमा ३७४

'उष्ण वरफ' ३६२

ऊर्जासिधारणवाद ११

ऋग्वेद २९१, ३२५

ऋषि १३९, १४४, १४६-४९, १७२,

१८९, २२५, २२७, ३२७, ३३८,

३४३, ३४५

ए० कुलवीर सिंहम्, मन्त्री ४

एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति १३, ८३

एकमेवाद्वितीयम् २३२

एकेश्वरवाद ८२

'एजु' (घातु) २९१

एण्ड्रोज, कुमारी ३८०

एथेन्स २१५

एनी वेसेण्ट ३६१

एम० नोबल (कुमारी) ३६१, ३८९

एम० ई० नोबल ३३० (देखिए सिस्टर

निवेदिता)

एयरली लॉज ३७४, ३७६, ३७८, ३८१,

३९९

एशिया माइनर ११८

एसोटेरिक १०५

ऐग्लो इण्डियन ३९९

ऐग्लो-सैक्सन जाति ३३१-३२

बौकार १९६
 'बोरामन' ३६५
 भोलि बुझ श्रीमती ३५५-५६ ३६६,
 ३८२, ३९४
 मोस्व टेस्टामेण्ट ३७४

वीरंगजेव ९

कंचबोटिब ८
 कठोपनिषद् ८९ १३ (पा टि)
 १३ १७५ ७६ २१२, २७७
 ३२८ ३३४

कप्रद ३७
 कन्याकुमारी ११६
 'करतकामलकवत्' ३४२
 कर्नल अस्कोट ३६१ (रेखिए अस्कोट)
 कर्नल पुसी ४६
 'कमल' ३५६
 कर्मकाण्ड २ १२४ १५५ १९४
 २१२ २३४ ३५, २८५-८७ ३२५,
 ३४४ वैदिक २१७

कर्मफल २८८
 'कर्मयोग' ४ १
 कर्मबाह १२
 कर्मविधान २४-५
 कर्म संज्ञाम २७६
 कर्म समष्टि २७६
 कलकत्ता २ २ ३ २१५, २३६,
 ३५१-५२, ३५९, ३८८-८९ ३९२,
 ३९७ ४ ३४ ४ ६-७ मिवासी
 २ ३ २१२

कल्पियुग २१ ३२ ३८, ६६
 कल्प २२ ३
 कल्पान्त २२ २६५
 कल्पुटी मुन ३८५
 कालिदास ९६
 काल २३२ ३२५
 कापिल संव ३४६
 कावा १५
 कालिदास २२२, ३८१

काशी ३५१ ४ ३४ (रेखिए
 अमेदानन्द)

कास्मीर २४८
 किन्टर्गार्टन ३७५
 कौल ३६४ ६६ ३७ ३७२, ३८२
 ३९७

कुपमी १ ५
 कुम्भकोणम् ७३
 कुमार्पू २४२
 कुमारिस मट्ट ३४८
 कृपान २२५
 कृपानन्द ३६१ ३६५, ३७१
 कृष्ण ९ १३७ १४४ ४५, १४९,
 ५७ १६९ १७३ १७५, १८७
 १९७ २२५, २१९ ३२३ (रेखिए
 श्री कृष्ण)

केनोपनिषद् (पा टि) १७५
 कैपिटोकाइन पहाड ६
 कैपिटोक (पा टि) ६ (रेखिए
 कैपिटोकाइन)
 कैवरसम ३५१ ३५७ ४ १-२
 कोला ३८ ३९३
 कोल्म्बो १ ४ ७४ ९९१ ३८८
 -८९ ४ ४ ४ ६ मिवासी

कौशीलवादी ९३
 कम विकास १३४
 कम विकासबाह ११२
 कमसकोण १३४
 कलाइव कॉर्ड ३१७
 सभिक विज्ञानवादी ३ १
 सभिम-युग २२४ ३ ५

खेवरी ९७ २२४ ४ २-३

पंजा ३४४ ३८४
 पगावर ४ २
 पनेस २७६
 पानी ३११
 पानी ४ ४
 पाणपत्य २६२

- गाल्सवर्दी ३५२
 गीता २२, ३६, ५३, ८९, ९९, १०८,
 ११९, १३७, १३९-४०, १४२,
 १४५-४६, १५१, १५३-५७, १८६,
 २०७, २२०, २३२ २८७, २९६-
 ९७, ३१७, ३२३, ३३७, (पा०
 टि०) २२, २९, ३६, ११९, १३९,
 १५६, १६९
 'ग्रीनएकर' ३६७
 'गुडईयर' ४०१
 गुडविन, जे० जे० ३६१, ३६६-६७,
 ३८८-८९, ३९१, ३९३ (देखिए
 जे०जे० गुडविन)
 गुरखा रेजीमेण्ट २४६
 गुरु गोविन्द सिंह २५७, २७०-७१
 गोपाल ३९६
 गोपी प्रेम १५२-५३
 गौतम ३८६
 ग्रेकोट गार्डेन्स ३८४, ३८७-८८ ३९३-
 ९४, ३९७-९८
 ग्रैंड होटल, वैंले ३५७
 'चढी' ३१०-११
 चद्र २२३, २७७, २८४, २९१, ३१३,
 ३२८
 चद्रमा १३०, २४२
 चट्टोपाध्याय, मोहिनीमोहन ३३२
 चन्द्रलोक १३८
 चिकित्सा शास्त्र १८२
 चित्त २९३
 'चिरकुमारी आश्रम' ३७३
 चीन ७, ११७, १६९, २७२, ३३०,
 ३३४
 चुनी बाबू ४०२-३
 'चिन्नापुरी अन्नदान समाजम्' १९८
 चैतन्य १६०, १८४, २२८
 छुआछूत ३२९
 छूत-अछूत १६५
 ७ २७
 जगदम्बा ३४०
 जगन्नाथ ४०५
 जगन्नाथ जी १५८
 जगन्नाथपुरी ३६९
 'ज ज ज' गोष्ठी ३८०
 जनक १३४
 जनकत्व १३४
 जफना १७-८
 जम्मू २४८
 ज़रयुट्ट ३८०
 जर्मन १०, २९७, दार्शनिको ३७७
 जर्मनी ७, ८५, ३२५, ३६५, ३६९
 -७०, ३७६-७७, ३७९, ३८२
 जाट ३४३
 जाति, ऐंग्लो-सैक्सन ३३१-३२, तातार
 ३५७, ब्राह्मण १५८, ब्रिटिश ३३१,
 यूनानी ८१, १६४, रोमन १६९;
 हिन्दू ३४-५, ७६-७, ९१, ९३,
 १७७, २४६, ३२२
 जाति-दोष २२९, २५१
 जातीय जीवन १८३, धर्म १३३, मन
 १८३
 जानकी २४९
 जानकीपति २४९
 जापान ७, २७२, ३३०, ३३४
 जापानी ७३
 'जाँब का ग्रथ' ३९२
 जावा (पा० टि०) १६९
 जिहोवा ५०, २८१
 'जीवन्मुक्ति' ३८६
 जीवात्मा ११-२, २५-६, २९, १३०
 १४७, १५५-५६, १७५, २२६-
 २८, २३२, २६५, २९७, ३०२,
 ३०४-५
 जुपिटर देवता (पा० टि०) ६
 जेकवी ३६५
 जे० जे० गुडविन ३६१ (देखिए गुडविन)
 जेन्द अवस्ता ९
 जेन्दवेस्ता २२४
 जेन्टिल साहव ९

विष्णु जी ३६६ ३८८
 वीन १९ २४ ४६ धर्म १२६, १४४
 मुपारों ३३७
 'जो' ३५२ (देखिए मैक्सवॉड जोसेफिन)
 ज्ञानकांड २
 ज्ञानयोग ४
 ज्योतिषिज्ञान २३९

ट्रिप्लिकेन १६३
 'निम्न' २८

उच १७ १८६
 डॉपसन प्रोफेसर ३२५, ३६५, ३६९,
 ७ ३७० ३७६-७७ ३७९, ३८२,
 ३९९ (देखिए पॉड डॉपसन)

डिमोफेटिक बस ८
 'डिमी स्मूथ' ३७७
 डैम्पर ४ ४

डाना ३३९, ३४३

दंड मत्त २२५
 'दत्तमति' १४५, २१७
 दत्तानुसंधान १८
 दत्त २२८-२९ (देखिए दत्तानुसंधान)
 दत्तिल १७ ३७ अक्षरों ३९९
 दत्तानुसंधान २९८, ४ ४
 दत्तकान्त ३१३

दत्तानुसंधान १५९, १८ मानि ३५७
 दत्तकान्त ४ २ (देखिए दत्तानुसंधान
 स्वामी)

दत्तानुसंधान १५८ १८६
 दत्तानुसंधान ४ २
 दत्तकान्त बाल नंगापर ३६५
 दीर्घत्व ३८
 दुर्गमी ३४
 दुर्गमीराम कवि समाह २४१ ३७८
 दुर्ग १८
 दुर्गपु ३७७
 दीर्घत्वोपनिषद् (वा टि) १७५, २१३

द्विपिटक २२४ ३ ५
 द्विपिटक ३२५
 द्वेता २१
 'द्वय' ३३६
 द्वयसि निरञ्जन १३८

द्विपिटकोक्ति ३८८, ४ १, ४ ७
 द्विपिटकोक्ति सोसायटी १ ३-५

दक्षिण ब्राह्मण १८५
 दक्षिणेश्वर ३६८
 दम्पति सेविकर ३६४
 दयानन्द सरस्वती २१९
 दर्शन हित १८, ३४ वेदान्त २ १
 २ ४ २१५ १६, २१८, २२
 ३९९ बौद्ध २९५

दक्षि १२९, २२२
 दाहू ११४
 दाज १९८
 दारासिन्धु ९, ३२५
 दार्शनिक दत्त ३२ बाल ५, १६७
 दिद्वान्त १०९ संप्रदायी २२
 'दि नाइन्टीन्थ सन्वत्' ३५८-५९
 दिवत् २६, १७८
 दिवनामटी (धरारों) ३९९ भाषा
 (संस्कृत) १५७
 द्वाविह १८ १८५ भाषा १८५
 द्वौषधी १५२, १५४

द्वौषधी २१
 द्वौषधीस्तक श्रेय ६७
 देव राजा विजयहृष्य बहादुर २
 द्वौषधी १२९, १५५, १७४ १८४
 द्वौषधीस्तक २२५ देव १७४
 द्वौषधी ८९ १२६ १४९, १७४
 २३९, २६८, २८८-८९, २९५
 २९९ ३ १

द्वौषधीस्तक ३ १ ३२३
 द्वौषधी १३ २ ३३ ८७ १२४
 १२८-२७ १३४ १५६ १७४
 १८१ ११५ १७ २२७ २८७-८८

३००, ३०५, ३२२, ३४३-४४
द्वैतात्मक १७४

घनजय (पा० टि०) १५६

घर्म ७६, १४८, १७५, ३१८, उस्लाम
६३, ११४, ईसाई ८, १७, ६३, ७९,
८६, १०६, ११२, १३६, १४४,
१५८, २०४, जैन १२६, १४४,
बौद्ध १११-१२, १२४, १४४,
१५८-५९, २४८, २७९, ३३७,
३४६, ब्राह्मण १५८, यहूदी ३४४,
यूनानी ३४४, वर्णाश्रम ३३०,
विश्व ४१, २४५, वेदान्त १२४,
३४४, सार्वभौम २०८, सेमेटिक
३२६, हिन्दू ६२, ६६, ९६-७,
१०७, ११०, १६३-६४, २०२,
२१६, २४२, २४५, २५७, २७०,
३३९-४०, ३४४, ३४७

घर्मक्षेत्र ६२

घर्म-महासभा ७, ५२, ६१, ९६, १००,
२०३

घर्मपाल २९२, ४०४

घर्म राज्य २७०, विज्ञान ८५, शास्त्र
३८४, संप्रदाय ८७, १९५ आचार्य
४९

घर्मानुष्ठान १७

घार्मिक आदर्श ७५

घृति ५

ध्रुव २७८

नजुन्दा राव, डॉ० ३५५, ३७०, ३७७

नचिकेता १३९, २१२-१३, २२४, ३३४

नमाज (पा० टि०) १५

नरेन्द्र ४०४ (देखिए विवेकानन्द)

नहुष २६

नाज्जरथ १७६

नानक ११४, २५७, ३७८

नायडू, आर० के० ४००

नार्थ जर्मन लॉयड ३८९

नारायण २८३, पूजा २८४

नान्ति भावात्मक ३०७-८ (देखिए
नेति-नेति)

'नगर' १०९

निराकारवादी ३४३

निरुक्त ३५१

निर्गुण ईश्वरवाद १५१

निर्गुण ब्रह्म २८, २०८, पुरुष २८

निर्गुण ब्रह्मवाद २, ११, २९

नित्य बुद्ध २३

नित्य शुद्ध २३

निवृत्ति मार्ग ४६

निवेदिता, मिस्टर ३२०, ३३२ (देखिए

सिस्टर निवेदिता)

निष्काम कर्म १५४, प्रेम तत्त्व १५४

नीग्रो ८९, १०९, जाति ८८

'नेज्जरथ के पंगम्बर' ३८३

'नेति-नेति' २२७, ३२८

नेपाल ३४४

नेपुल्स ३८८, ३९३-९६, ४००

नैयायिक १६०

न्याय २२०

न्यूयार्क ३१८, ३५६, ३६८, ३८०,

३९६, ४०१

पचनद २५८

पचलक्षण २१

पजाव २१८, २४८, ३४४

पतजलि १२७, २२६, २८६, २९७-९८

पम्पियाई ४०५

परपरा (सांस्कृतिक) ५

परमात्म तत्त्व २५

परमकुडी ५२, निवासी ५२

परमहंस ४१ (देखिए रामकृष्ण)

'परम पवित्र' ४०६

परमात्मा १४६, २२८, २३६, २६६,

३०६-७, ३१४, ३५२, सगृण और

निर्गुण २७

परिणामवाद २९७

'पर्वत पर उपदेश' ३७९

पहाड, कैपिटोलाइन ६, हिमालय ४२,

६९, ११६ १२ १६४ १७२
 ७३ १७९ २१७ २४२, २४४
 २७३ २८६ ३५४ ३६३ ३९
 ३९२ (पा टि) २४१
 पाटि फेन्स मैक्सिमस ११२
 पाइनामोरस ३२४
 पाणिनि २२१
 पातञ्जलयोगसूत्र २९७ (पा टि) २२६
 'पार्थिवान' ४ ५
 पाठे हरिमाण २४६
 पाम्बल ३४
 पाल डॉयसन २९७ ३८१ (बेखिए
 डॉयसन)
 पार्थी २४३
 पारसियों २५३
 पाश्चात्य एव १५७ जयन्तू १ १
 वाति ४७ ८१ वरुन ४४
 वार्शनिक २९६ बेरा १७-८,
 ३५, ४१ ४४ ५२, ६ ७४ ७६,
 ८६ ९६ ९८ १ ३ १ ८ १९८
 ९९, २ १ २३ २९२ ३३३
 ३३६ ३४१ ३७७ मानो २६६
 विचारों २७७ विद्यान् ३४६-
 ४७ धिन्वों ३८९ सम्मता ४६,
 ३३१
 पाश्चात्यवादी १७१
 पाशुपत १८१
 'पाशुपत' ५६
 पी कुमारस्वामी ४
 पूराच १२, २१ २, ७ १२५ २६ १३३,
 १३८ १५ १७२, २१७ २२५,
 २७९ २८१ ३४५, ४६ ३९९
 पुनर्जन्मवाद २२५, ३४६
 पूर्वागामी १७ १८६
 पुण्यवामुखनाम ११
 पुरातन पुस्त २७
 पुरोहित-मंत्र १ २
 पूना ४ ७
 पश्चिम आलासिगा ३५९ ६ ३७७
 ३८१ ३८७ ३८९ ३९७ (बेखिए

आलासिया वेरुमक)
 मैरिवा (बाष्काल) ८९, ९४ १ ९-७
 ११४
 पोप (पा टि) १११
 पोर्न सहीद ४ ४
 पीरापिक १२७ परंपराएँ १४३
 'प्योरिटी कविता' ३६४
 प्लेटो ३२४
 प्लेटोवादियों ३२४
 'प्रकृति का परिवर्तन' २२७
 प्रक्षेपण ११ २९१
 प्रच्छन्न बीज २१८
 'प्रत्यक्षानभूति' २६८
 प्रत्यक्षवाद ५३
 प्रकृत्य २३
 प्रकृति मार्ग ४६
 प्रज्ञाव २४८, २६२, २७८
 प्राचीन संस्कृत १६४
 प्राण २९१
 प्रोटेस्टेंट ११२
 प्रोफेसर डॉयसन २६५, ३६९ ३७
 ३७६-७७ ३७९ ३८२ (बेखिए
 पाल डॉयसन)
 प्रेम २८४
 प्रेममयि (बाहुनी) १५४
 प्रिंस रीजेन्ट सिमोपोल्ड ४ ४

 कर्पुस ४ ५
 'आवर पोप' ४ ६
 कारस ९, ६८ १६२, १७५
 कारसियों १९
 कारसी ३२५ सापा ६
 'क्रिमिन्स' २७२
 क्रिस ७ ८५
 क्रिसीसी ९
 क्रामिस ३८
 कैंकिनस ३५४ ३९६
 क्रीमिस ३५३ (बेखिए क्रीमिस सेनेट)
 क्रीमिस सेनेट ३५२, ३९६
 'क्रीमिस हॉल' ४

वग देश २१७

वगला भाषा ३३९, लिपि ३३०

वगाल १०६-७, ११९, १६०, १६२,
२००, २१४, २१७-१८, २२७,
२३१, २३६, ३३०, ३३५, ३३९,
२४४, ४०५

वगाल, पूर्वी ३३९

वगाली १४, २०६, ३३३

वदरिकाश्रम २४२

बम्बई २३५, २५६, ३८९, ४०२

वरोज, डॉ० ३८३, ४०६

बलची १५९

'बलिष्ठ की अतिजीविता' १८९

बल्लभाचार्य २८७, सप्रदाय २३५

बुद्ध ७३, ११८, १४४-४५, १५८,

१७४, १८४, २३५, २९८, ३०५,

३१९, ३३१ (देखिए बुद्धदेव)

बुद्धदेव ११२, १४६, १४८, १६०

बुद्धि २९३-९४

बृहदारण्यक (पा० टि०) १४६

बृहदारण्यकोपनिषद् ३०८, (पा०टि०)

११६

बेबिलोन ३२६

बेबिलोनियन ८२, ३२६

बोघायन २१८, भाष्य २१९

बोर्नियो (पा० टि०) १६९

बेलुड मठ ३३६

बोस्टन ३६८

बैकुण्ठ ३०३

बैरोज ७९, ११२ (देखिए बरोज)

बैरेनो ४९

बौद्ध २४, ५६, ६३, १५९, २२५,

३००-६, ३८०, दर्शनो २९५,

धर्म १११-१२, १२४, १५८-५९,

२४८, २७९, ३३७, ३४६, मंदिर

१५, १५८

ब्रह्म २३, ३०७, ३१२

ब्रह्मचर्य आश्रम ३३

ब्रह्मचारी १५१

ब्रह्मज्ञानी १४९

ब्रह्म-दर्शन १३१

ब्रह्मपुत्र ११६

'ब्रह्मवादिन्' (पत्रिका) ३५८-६०, ३६६,

३८९, ३९७, ३९९, ४००-१

ब्रह्मसूत्रो १५२

ब्रह्मा २९२, ३८०

ब्रह्माण्ड १२, २८-९

ब्रह्माण्ड तत्त्व २५, १४१, २८८

ब्रह्माण्ड विज्ञान ११, २१

वाल गगाधर तिलक ३६५

ब्राह्मण ७०, ८९, ९२-४, १५८-६०,

१६२, १८९-९०, १९२, १९८,

२०७, २३१, ३०४, ३२५, ३४४,

३४८, ३५१, ३८६, ३९९, जाति

१८९-९०, धर्म १५८, युग ३८७

ब्राह्म समाज १०३

ब्राह्म समाजियो ३९७

ब्रायन ३८७

ब्रिटिश जाति १८७, ३३१, भूमि २०४;

शासन १८७, साम्राज्य ३५२

भक्ति २४८, २५७, अहैतुकी २७७,

३५४

भक्तिमार्ग २४८

भक्तिवाद २७८

भगवत्प्रेम १५२

भगवद्गीता १५१ (देखिए गीता)

भर्तृहरि १२१-२२

भवितव्यतावाद २४

भागवत १४९, १७५

भागवतकार १५०

भाग्यवाद ३५३

भारत १२-३, १६, १९-२०, २८,

३०, ३३, ३५-६, ४३, ४५-८, ५०-

१, ५४-७, ६६-८, ७५-६, ८१-३,

१०३-५, ११०-११, ११३, ११६-

१८, १२०-२१, १२४-२५, १२७-

३४, १३६, १३८, १४६, १४९-

५२, १५४, १५६, १५८-६१,

१६५-६७, १६९-७१, १७३,

१७७ २२१ २२, २२५, २२७-
 २९ २३९ २४१ २४५, २५
 २५७ २६१ २६४ २६८-७२
 २७४ २७६, २८१ २८३-८४
 २८६-८८ २९५, २९९ ३ ५,
 ३१४ ३१७ ३१९ ३२ ३२२
 ३३४ ३५, ३५४ ३५६, ३५९
 ६ ३६६ ३६८ ३७ ३७७
 ३७९-८ ३८३ ३८८-८९, ३९१
 ९८ ३९८ ४ १ ४ ५ ६ पश्चिम
 ३७८ (वेष्टिण्य भारतवर्ष) मूमि
 २१५, २१६ माता १९३
 भारतवर्ष ३ ७ २ ३५, ३७ ४१ ४३
 ४७ ४९५ ५२ ५४ ५६ ७४
 ८४ ९४ ९६ ९९, १ ६ ११५,
 २४२-४३ २५१ २६८ ६९ २७३
 २७५, २८१-८२ ३३१ ३३३ ३४४
 ३८०-८१ ३८३
 भारतवासी १३ ४ ४६ ८६ १ ५,
 ३२९ ३३१ ३३३ ३८३
 भारतीय अनुसंधान ३७८ आदर्श १५
 आर्षो १६४ २४१ इतिहास ३५
 गणपना २८६ बनता १ जीवन
 १ वर्णन ६१ ८५ वर्म १४८
 नागियों १५ पत्रिकाओं ३ ९
 भाषा १३५ मूमि ५३ मन १८३
 २८६ मनोविज्ञान २२६ महर्षियों
 १७८ मस्तिष्क १६४ राष्ट्र
 १११ विचार १४५, ३२४ (बाध्या
 रिमक) ३३०-३५ विज्ञान १६४
 विवाह २९९ वेदान्ती ३१३
 दिग्म्य १६४ स्थियों १११
 भाषा अर्थो १ ३८९ प्राविद्ध
 १८५ बनका ३३ रिन्वी
 २४६
 भाषा विज्ञान ३०५
 भाषा वैज्ञानिक १८५
 भाष्यकार १५५, १७४
 सैरक गा ४५
 भोग ३७६

मौक्तिक प्रकृति ४५
 मौक्तिकभाव ५, १७ ५३ ४ ५९ ६
 ६२ ३ ६६ ६९ ८१ ११६
 १७१-७२, २७१-७२
 मौक्तिकवादी २५, ५३ ४ ६ ६३
 ६९ ११६ १९७
 मौक्तिक विकासभाव २९७
 मौक्तिक विज्ञान २९७
 मंत्र इष्टा १७७
 मन्ना (नगर) १५
 मन्मथार २६१ ३९६ ९७
 मणि व्य्यार ३६
 'मवर वर्ष' ४ ६
 मयुरा ६६-७
 महाघ ९८ ९, १ २, १ ७ ११३
 १४ १२४ १२७ १४९ १६३
 १७१ १७८, १८५, १९४ ९६,
 १९८ २३ २७७ ३५६ ३८८
 ८९ ३९१ ३९७ ४ ४०३,
 ४ ६-७
 'महास मेक' ३९९
 मध्य अफ्रीका ८८
 मध्य मूमि २१७
 मध्याचार्य २१७ २८७-८८ ३२८-२९
 मन २९३ ९४
 मनु ४८ १६६ १९ २५७ २७३
 मनुस्मृति १९ २५२ (पा टि)
 ४८
 मनोविज्ञान २२६ २९३
 मन्वादि पुराणों २५४ स्मृतियों १४३
 २२४
 मन्मथ द्वीप ११८
 महामिर्बाज लंका (पा टि) २५६
 महामात्र ३२ ९३ १८६
 महामाध्य २२१
 महामाया २७३
 'महिम्न स्तोत्र' १४
 महेश बाबु ६ २ ३
 मनीषा ३

- मातृभूमि १५, ४२, ४९, ५४, ९५, १०३,
२०३, २१२, २२५, २३५, २४१
- मारगरेट, नोबल (कुमारी) ३३२
(देखिए निवेदिता)
- मालावार १८७
- मालावारी ८७
- माया २२, २२७, २३३, २३८, २७९,
३००, ३१०, ३१३, ३१९, ३३५,
३८५
- मायावाद १९१, २१८, २३२-३३
- मिल्टन १२९, २२२
- मिस मूलर ३३२
- मिस्र ३२४, ३२६
- मुद्दकोपनिषद् २८९, ३०१, (पा०टि०)
१३०, २२३, २६९
- मुक्ति २८, ३६, १५५, १७७, २२६,
२३३, (उपनिषदों के मूल मंत्र) ३६
- मुगल १८०
- मुमुक्षुत्व ३४१
- मुसलमान १५, १९, ६३, ११४, १६०,
१८७, २५३, २५६, ३२२, ३३४
- मुसलमानी १८८
- मुहम्मद ३१, ६०, १४४-४५, २२०
- मुहम्मद रसूलल्ला २२१
- मुहम्मद साहब (पा० टि०) १५ (देखिए
मुहम्मद)
- मूर्ति पूजा १५२, १५८
- मूल तत्त्व ४, १८
- मूलर, मिस ३३२, ३५२, ३६४-६६,
३७७-७८, ३८८
- मूल सत्य १५
- मुसा के दम ईश्वरादेश २५३
- मेवुल ३९३
- मेवेल ३८०
- मेरी ११२, ३७४-७६, ३८४, ३९१
- मेरी हेल, कुमारी ३७४, ३८४, ४०४,
४०६
- मेमर्स किंग-किंग एंड कंपनी ४०२
- मेमर्स प्रिण्डले कंपनी ३५१
- मेककिडले ३७५
- मैक्ममूलर २३२, ३२६, ३५८-५९,
३६१, ३६४, ३७७, ३७९, ३८१-
८२, ३९९
- मैवेल ३९४
- मैसूर ३९९
- मोलोक १२, ८२
- 'मोलक याह्वे' १३, ८२
- मोरिया १०५
- 'मोलोक याव' ८२
- मोहिनीमोहन चट्टोपाध्याय ३३२
- यजुर्वेद (पा० टि०) ३४५, ३५१
- यथार्थवादी ३१०
- यम २१३, २२४ (देखिए यमराज)
- यमराज २८६
- यहूदी १३, २८, ८२, ११३, २५३,
२८१, ३५१, जाति १३, धर्म ३४४
- 'यस० यस० मोम्बासा' ४०७
- 'याकी' ३६८
- याग-यज्ञ २०, २२, १२४, ३४६
- याज्ञवल्क्य २२४
- याज्ञवल्क्यादि संहिताओं १४३
- यास्क २५१
- युग, कलि २१, ३२, ३८, ६६, त्रेता २१,
सत्य २१, ७०
- युक्तिवाद ३१४
- युक्तिवादी ३०२
- युधिष्ठिर १५२
- यूनान ६, ९, ६८, ११२-१३, १६४-
६५, २१५, २३१, ४०५
- यूनानी ८१, ११८, २५६, ३२४,
(पा० टि०) २७२, जाति ८१,
१६४, धर्म ३४४, मेवा ८१,
मभ्यता ३३१, साहित्य १०
- यूरोपियन जाति ३२०
- यूरोप ९, ४१, ५५, ७३, ७५-६, ८५,
८७, ९३, १००-१, ११२, ११५,
१६२, १६५, १६७-६८, २०५,
२९७, ३००, ३२२ २३, ३२५,
३४२, ३८१, ४०४-५, वाद ६९

मूरीपियम ३ १९ ६९ ८७ ४ ४
 मूरीपीय २२२ सम्मता ४७
 मीम १९४ ३७६, ३९८ खास्त्र ३३३
 मीयानम्ब ३८

रबीयुन १५१ २९८, ४ ४
 रवि ३४
 राक्षा २९६, ४ २, ४ ७ (रेखिए
 ब्रह्मानम्ब स्वामी)
 'राजपीम' ३४९ ३५६ ३७७ ३८२,
 ३८८, ४ १

राजा राममोहन राय २१
 राजा रामाकाशबेन बहादुर २ ०
 राजा २५५
 राम ३४ १ ८, १४९, ५ १५७
 २४९ (रेखिए रामचंद्र)
 रामचंद्र ४१

रामकृष्ण १६२, ३४७ ३५९ ३६१
 ३६८ ३७७ ३८२, ३८९ ३९७
 परमहंस ३, ४१ ११३ १६१
 २ १ २ ३-७ २ ९ २३५ ३६
 २३९, २४७ २५८

रामकृष्णानम्ब ३५१ ३६८ ४ ३
 (रेखिए सखि)

रामचरित १५
 रामदत्तक बाबू ३६८
 रामनाथपुरम् ४१
 रामनाथ ३४ ३७ ४१ ४३ ६७ ४ ३
 रामराज्य ३८५

राम बाबू ३९७
 रामानुज ११२, ११४ १३४ १९
 १७५, १७८, १८४ २१८ १९
 २२७-२८ २३५, २३८ ३९, २८७-
 ८९ (रेखिए रामानुजाचार्य)

रामानुजाचार्य २१० ३२८ २९
 रामेश्वरम् ३८ ४१
 रामसिद्धी २४८
 राष्ठीय आचार्य १५९ श्रीराम १ ८
 रिखे गार्हस्थ ३०३-७४ ३०८ ३८१,
 ३९९

रिपमिन्क बल ८
 रूम् १५८, ३७७ ३९३ मिबाधी १५८
 रूष्ठी पुरातत्त्ववेत्ता १५८
 रेड इन्डियनो ३६२
 रेडिकल बल ८
 रोम ९ ११२ ३ ० ३५२, ३९३-
 ९४ ३९६, ४०४-५
 रोमन कैथोलिक २५३ वाति १९९
 रीप्यसमस्या ८

रंका १ (रेखिए श्रीलंका)
 रंकावाधी ४ ५
 सरमी ४ ३
 रक्ष्मीपति २४९
 रक्षिमा २२६
 'रंकाक जर्जववादी' ३७२
 रन्दन २ १, ३२ ३५२-५३,
 ३५५, ३५७ ३५९ ३७ ३७२
 ३७७-७८, ३८१-८४ ३८९ ९६,
 ३९३ ९४ ३९६ ९९, ४ ३-६

'साय मीन श्रीम एंड कंपनी' ३५६
 सांक कुमारी ४ ५
 साई बकाहन ३१७
 सासा बरीया २४३ ३५७ ३९
 साहीर २८५, ३१९-२
 सेनेट थीमटी ३५६
 सेक स्फुकनि ३६८ (रेखिए स्फुकनि)

सेट बूस ३५९
 सेरी चतुष्टय २३
 सेरीभम धर्म २३ विभाग २३
 सेमिनर साहू ९
 'सेरिय' १९४
 सेरु १२६, ३२५, ३२७
 साधिय्य नीति ४४-५
 साधिय्यबाह ९९
 सात्स्यायन ७१ १४८
 साह, अज्ञेय १११ वाईत २८ ९,
 ५९, ८५, १२५-२६, १३७
 १४९, १७४-७५, २१८ २३९

२६८, २८७-८८, २९४-९५, ३०३,
 ३०५, ३०७, ३०९, ३१३-१८,
 ३२१-२३, ३२८, ३७२, ३९९,
 ऊर्जासिंघारण ११, एकेश्वर ८२,
 ८६, १२६, १४९, १७४, २३९,
 २६८, २८८-८९, २९५, २९९,
 ३००-१, विशिष्टाद्वैत १२६, २२८,
 २३९, ३९९, शुद्धाद्वैत २१५, ससार
 २२५
 वानप्रस्थ ४६
 वानप्रस्थी २०
 वामाचार ३४६, तत्र २३१, ग्रथ
 २३२
 वाल्हो (कुमारी) ३६४
 वाल्मीकि १५०
 वार्शिगटन ३१९
 वाराणसी २१८
 विकासवाद ११
 विज्ञानवाद २९५
 वित्हावाद ३२१
 विद्यादान ३२
 विनय कृष्णदेव बहादुर २००
 विम्बलहन ३७-७४, ३७८, ३८१-३८२,
 ३८९, ३९९
 'विषयता मे एकता' ९८
 विवेकचूडामणि २३६, ३१२, ३४१
 विवेकानन्द ३, १७, ४१, ५२, ६०,
 १६३, २०० (देखिए नरेन्द्र)
 विशिष्टाद्वैत ३२८
 विशिष्टाद्वैतवाद १२६, २२८, २३९,
 ३९९
 विशिष्टाद्वैतवादी २०, ८७, १२४-
 २५, १८१, २१३, २१५-१६, २१८,
 ३३३, ३४३
 विशुद्धाद्वैतवादी २१७
 विश्वधर्म ४१, २४५
 विश्वधर्मत्व-भावना ३४
 विश्व ब्रह्माण्ड १६३, २८५
 विश्वामित्र ३३३
 'विषयान् विषयत् त्यज' ४५

विष्णु १३, २१८, २७३, ३४०
 'वीनस डी मेडिसी' ४०५
 वृन्दावन १५१-५२, १५४, विहारी
 १५४
 वेद ९, १८, २०, ७०, १०६, १२४-
 २६, १२८, १४४, १४९-५०,
 १७२, १७४-७६, १८८, २२५,
 २३१-३२, २३४, २३६-३७, २६१,
 २८५-८६, ३००, ३०५, ३१२,
 ३२५, ३४४-४६, ३६४
 वेद अर्चना ३४५, ज्ञान ३४५;
 पाठ १४०, पाठी ९३, वाक्य
 २२४
 वेद व्यास १५४, १६९ (देखिए व्यास)
 वेदान्त ९, ११, १७-२१, २३, २८,
 ३०, ५४, ५८, ७०-७३, ७९-८१,
 ८५, ९०-१, ९४, ९७-८, ११२,
 ११५, १२५-२६, १४१, १४५,
 १४८, १५९, १६५, १७१-७४,
 २२९, २३२, २५७, २८५-८८,
 २९५, २९७, ३१८-१९, ३२४,
 ३४६, ३६७-६८, ३७८, ३८२,
 ३८६, ३९२, ३९८-९९, ४०२;
 उसका अर्थ (वेदों का अन्तिम भाग,
 वेदों का चरम लक्ष्य) २०
 वेदान्त दर्शन २०१, २०४, २१५-१६,
 २१८, २२०, ३९९, धर्म २४,
 ३३४, प्रचार ३८२, भाष्य २१९,
 साहित्य २७७, सूत्र २२०
 वेदान्तवादी ८८
 वेदान्त सम्बन्धी ८२
 वेदान्ताचार्य २०१
 वेदान्तियो २२०
 वेदान्ती १२५,
 वेस्ट मिनिस्टर ३८७-८८, ३९३-९४
 ३९४, ३९७
 वेदोक्त १७, १४७-४८
 वैदिक १९, १२५, प्राचीन २२१,
 यज्ञो १५८ ज्ञान २४२, धर्म २४२,
 व्याकरण २२१

का कारण २३४ और व्यक्ति
२३६ पश्चिमी २८२ पिछड़े
हुए और पश्चिम के लोग २४२
प्रत्येक उसकी एक विधिपुता
२५ भारतीय संसार के प्रति
उनका सहित २३६ यूरोपीय २५५
राष्ट्रीय क्षमता २३४ जीवन २३५
पतन उसका असली कारण २५८
पाप २६ भावना जोपी अंध
विपदास ३९ रोग ३७३ दिवार
की धारा २३७

सासायनिक परिवर्तन १४२

रिजसे मैनर ३७३

रीडिंग ३११ १२ ३२४ ३२६, ३४६
४८ ३५१-५२ ३५५ ३७९ ३९६
स्त्र ११

'रूप' २९

रेचक ८५ १ १ १२०-२१ और
पूरक ९२ -क्रिया ९५

रोम २९३

रोमन कैथोलिक २५१

रघू स्त्रिक ४०५

संका १७८, ३१३ वहाँ का बुद्धमत
२४९

संज्ञ मिस्टर २५९ भी २८१

सम्मान मानवीय १३

संक्षेपीपति ३७

संक्षेप उसकी सिद्धि और मुख्य ९६

सुख सन्निवृत्तत्व १ २ -स्वक

७२ सर्वोच्च ५३

अगत ८१

अगम्य ३८९

अन्वय १४७ २३ २३६ ३७ २४२

२६२ २९ ३ ४ ३१५, ३३

३३२ ३३४ ३४२ ४३ ३४६ ४७

३५२ ३५५ ५६, ३५८ ३६ ६३

३ २ ४ २ ४ ५९

'अन्वय सीद्धत' २३६

कोक' कुमारी ३६५ बहन ३९६

'काई थी रामकृष्ण' ३२१

कोस एजिसिस १९७

काहौर ३६१

सीका २६८

भूकर १ ३

सयट एक ३ ३ एक एक थीमती

३४८ परिवार ३० छाहर

३३ फ्रांसिस ३३२ थी २८८

२० ३४२ ३६३ भीमती ३४८

३६४ ३८७

सैयडसुर्वा २८५, २९ २९२ भी

२७७-७८

बराहपुराण १

बखन ११

बस्तु अतीन्द्रिय १४७ अमूर्त १५८

अस्तित्वहीन १५३ उच्च स्तर और

उसका मापबद्ध १८९ उसका

संस्कार और प्रतिष्ठा १३२

उसका सञ्चाल अर्थ १२६ उसका

स्वभाव २२ उसकी बहुविध

अभिव्यक्ति १५१ एक समता ही

१८१ एक समय एक ही १५३

और आकास ११७ और मन ११

-निष्ठ पक्ष १४७ प्रत्येक उसमें

विकास की क्षमता २५६ प्रत्येक

वासता की श्रुतिका १३६ प्रत्येक

मौलिक १३५ बाह्य ६६ १२६

१३८ २२ बाह्य उसका

अस्तित्व १३२ बाह्य और भीष की

बस्तु १३३ बाहर की औट-उसका

कारण १३३ सजाठ से उत्पन्न

५८ सासारिक ५३ स्तुत

सूक्ष्म उपकरण से निर्मित १ ६

वास्तव्य भाष ७

बाव अर्ध २४६ २६ ३३६

३४८ ३८४ आदर्श १३३

हृच्छा ३४१ अमविकास ३४१

हीट १९१ ३३६ ३४८ मकार्म

१३३ विकास २२



वामाचार ३१०, साधना ४००
 वाराणसी ३६१
 'वालडोर्फ-होटल' २९५
 वाशिंगटन २३८, हाल १२२, १३१
 वामना ३४१, अभिव्यक्ति का मूल
 कारण ३४१, सामीरिक ४
 विकास, उमकी पूरी प्रक्रिया १८१,
 पुरातन का २५४
 विकासवाद २२०
 विक्टोरिया स्ट्रीट २४४
 विचार, अन्तर्मुखी २३६, अशुभ १०३,
 आकाश-तत्त्व में परिणत १७०,
 आहार में उत्पन्न १५४, उसका
 आधार ८१, उमके ससार में
 परिवर्तन २३३, एक प्रकार के
 चित्र ९१, और ज्ञान ११८,
 जनतांत्रिक २४०, -तरंग २९,
 १०३, १३९, -नीलता १३४,
 पवित्र, उसका अनुसरण ९३,
 प्रत्येक, उसकी तीन अवस्थाएँ ९८,
 प्राण का स्पन्दन ९८, -बुद्धि
 २६, -शक्ति ५, १०२, १५१,
 -संक्रमण १६९, साम्प्रदायिक
 ३१८, स्वतंत्र १७१
 विजय गोस्वामी ३१९
 विज्ञान, आधुनिक १९३, आध्यात्मिक
 १९१, इन्द्रियगोचर १४२,
 उसका काम १७७, और ज्ञान
 १३६, और मनोवैज्ञानिक धारणा
 १९३, पार्थिव ११४, भौतिक
 १४७, १९२, २२१, २३६,
 ३४१, रासायनिक १४७, सर्व-
 श्रेष्ठ ११४, स्वतः प्रमाण तथा
 स्वयसिद्ध १८०
 वितण्डावाद १४३
 विद्या, अध्यात्म ३८३, ३९५, अपरा
 ६०, परा ६०, -बुद्धि ३५४
 विद्याभ्यास ३६०
 विद्युत् लोक ३८५
 विधवा-विवाह २६२

विद्यान, नये युग का २५५
 विधि, अवैज्ञानिक १२४, वैज्ञानिक
 १२४, सार्वभौम १२४
 विभिन्नता और एकत्व १५३
 विमला ३०७-८
 विमोक ३८-९ (देखिए इन्द्रिय-निग्रह)
 'विरह', उसकी परिभाषा ५४
 विलियम स्टारगीज, श्रीमती ३३०
 विलियम हटर, सर २४४
 विलियम हैमिल्टन, सर १०१
 विविधता, उसमें एकता की उपलब्धि
 १९०
 विवेक, उसका अर्थ ३८, २२७
 विवेकचूडामणि २१ (पा० टि०), २३
 (पा० टि०), २५ (पा० टि०)
 विवेकानन्द, स्वामी ७९, १२२,
 १४७, २२५-२६, २३६, २५८,
 २६३, २६९, २७६-८०, २८४-
 ८८, २९०, २९२-९३, २९५,
 २९७, ३०२-५, ३१२, ३१४-
 -१५, ३२५, ३२८-२९, ३३२,
 ३३४-३५, ३३८, ३४२-४४,
 ३४६-४७, ३४९, ३५१-५२,
 ३५५-५९, ३६२-६६, ३६८-
 ६९, ३७१, ३७३, ३७५-७७,
 ३८०, ३८२-८३, ३८६-८८,
 ३९०-९६, ४०३-४, ४०६-७,
 उनका आदर्श ४०७-८, उनका
 उपदेश, धर्म-विरोधी नहीं २२९,
 उनका निजी अनुभव ३३६, उनका
 मूलभूत ३४८, उनका सत्य, ईश्वर,
 देश और समग्र विश्व ३३९, उनका
 सरल और प्रेमपूर्ण ढंग २३५,
 उनकी सफलता का कारण ३९१,
 उनके कार्य की गूढ़ता ३८६, उनके
 दर्शन का मूल तत्त्व २३०, उन्हें
 राजनीति में विश्वास नहीं ३४६-
 ४७, सत्य पर उनकी श्रद्धा २७६
 विशिष्टाद्वैत २८३, २९५
 विशिष्टाद्वैतवादी, उनका कथन ३३

विषय अंतिम रूप से लिख्या २४५
 -इतिहास १९२ उसका चिन्तन
 और ईश्वर ५९ उसका नियमन
 २ ९ उसका निर्माण २०८
 उसका निर्माण सृजन की समष्टि
 से १५४ उसका विभाजन १५१
 उसकी आत्मा ९ उसकी प्रत्येक
 वस्तु, तरंग स्रष्टा १९४ उसकी
 व्याख्या २ ७ उसके प्रकृत्य एवं
 प्रक्षेप की तुलना १९४ उसमें
 इच्छा का अस्तित्व २ ८ उसमें
 धर्म के विभिन्न रूप १८७ उसमें
 वस्तु का अभ्ययन १५९ उसमें
 धर्म और विभिन्न दृष्टिकोण
 १५२ और बुद्धि २ ८ और
 विन्दु १५५ और व्यक्ति २४५
 कल्पना मात्र २४५ तथा ईश्वर
 को समझने का उपाय २ ७
 -धर्म-महासभा २२५, २३१
 २३७ -अभ्युत्थ २३४ -अभ्युत्थ
 उसकी बात का अधिकार ५१
 ब्रह्मसम २४ -ब्रह्माब्द २९, ७३
 १३१ -ब्रह्माण्ड उसकी उत्पत्ति
 १ मगधम् का लेक ६९ -माघ
 १३७ -मन १५४ महान् पुस्तक
 १९८ में ११ वास्तव में एक
 १८१ विविधता में एकत्व का
 उदाहरण १५२ व्यक्त १७४
 -व्यक्ति का धरीर ९१ -व्यापी
 चेतना उसकी अभिव्यक्ति ३४१
 -व्यक्ति ३६८ संपूर्ण एक
 ऊर्जासूत्र १५८ उसीम भाषा में
 लिखा नसीम मात्र ६८
 विरवात्मा १२ और ईश्वर तथा
 विश्व १२ समुदा ३८५
 विषय ज्ञान और धारणा १३ -जोड
 ४६ ४९ -जासना ११३
 विष्णु-दृष्टि ३३
 विष्णुपुत्र ८ (पा टि) ५३
 (पा टि)

बुन्दावन ७३

बैर ३ २१ १४२ २४४ २६३
 २६७ ३१ अगाधि और मित्य
 २४६ अर्थात् ६ २७६ उनके
 द्वारा नियम स्वामी और अपरि
 बर्तनशील २४६ उनमें निहित
 ईश्वी धर्म ३४६ उसका विज्ञान
 १३६ उसका सबसे प्राचीन भाग
 २४४ उसकी प्रामाणिकता तथा के
 लिए २५४ ऋक ६ १९५
 (पा टि) ३२८ ३३८ और
 वेदान्त ३२ यजु ६ साम ६
 वेदान्त ३४ १९१ २११ २१५
 २१७ २२८ २४९ २५८ २६
 २८७ ३३४ ३५ ३७४ ३७७
 ३९ ४ ३-४ उसका अर्थ
 २४४ उसका विज्ञान १३६
 उसके अनुसार चेतना २१५
 उसके बिना धर्म अन्वविरवाच
 २५१ उसमें आध्यात्मिक आचार
 २५२ उसमें समग्र धर्म २८३
 -तत्त्व २२७ वर्धन २४३ २८७
 वर्धन उसके तीम भाग २९५
 वर्धन तीम स्तर में २८३ धर्म
 उसका अर्थ २८३ धर्म उनाशन
 ३६ -आध्याकार ६ धारण २२७
 धर्म धर्म का दार्ष्टिक धार २५१
 धारणा-पद्यति का अमूर्त विज्ञान
 २८८ -सूत्र ९ ३८
 वेदान्त एण्ड दि वेस्ट १२२
 वेदान्तशास्त्रीशुद्ध धारण भाष्य ३२७
 वेदान्तधारण २८
 वेदान्त धीशास्त्री शार्ङ्ग राजव कीर्ति-
 श्रोत्रिया १२२
 वेदान्ती २१ २१२ २५१ २९८
 आरसी २५६
 वेदवेदिया राजव २३६
 वेदो धर्मसम्भ ३८८
 वेस्ट मिनिस्टर पब्लि २९७
 वैदिक अनुसन्धान १९२- नवस्था

११२, आधार पर अतीन्द्रिय घटना १४७, आविष्कार १९३, क्रिया, सामान्य इन्द्रियगोचर १४९, जानकारी और व्यावहारिक उपयोग ११२, ज्ञान १९०, ३१६, धर्म १४३, पद्धति और ध्यान १३४, प्रतिभा, उसकी आवश्यकता ४०७, प्रदर्शन १४७-४८, प्रदर्शन, उसका अर्थ और खण्डन १४७-४८, रीति १३४, विधि १२४, विषय १४८, व्याख्या १४८, सत्य १९१
 वैदान्तिक, प्राण ३८३, ब्रह्माण्ड-विज्ञान ३८४, सिद्धान्त ३८४
 वैदिक अनुष्ठान, उसके लिए पत्नी आवश्यक २६६, -अश्वमेध यज्ञानुष्ठान ३०९, घर्माविलम्बी ४०, मंत्र, उनके प्रति विश्वास २४६, मंत्र, उसका पाठ, अर्थ-सहित, महत्त्वपूर्ण २४६, वाणी २४५, शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ ६०, सूक्त ३६८
 वैयक्तिक चुबक १७१
 वैराग्य ३२६, भक्तियोगी का स्वाभाविक ४६, और ज्ञानयोगी ४५, और विनय ३०६, -साधना ४७
 वैषम्यावस्था ३८
 व्यक्ति, अनुभूतिसम्पन्न ३३८, अन्त-स्फुरणसम्पन्न १३४, अपठ और ईश्वर-धारणा २६, उसके लिए उपयुक्त आसन ११०, उसमें धर्म-ग्रहण की तैयारी और गुरु-आगमन २४, उसे अपना उद्धार, स्वयं २८९, ऐतिहासिक २४७, और उसकी जीवन-शक्ति का स्रोत ३९५, और दान १२५, और धर्म ३५-६, और मृतात्मा १५९, और विश्व २४५, चमत्कारी १३४, तत्पर, कर्मठ ३३४, तथा सिद्धि १२४, घर्मान्वि ५, ३७४, निम्नतम, उससे भी सत्य की सीख २४८, पवित्रात्मा १०३,

प्रत्येक में शक्ति १२३, प्रत्येक, साक्षात् ब्रह्म २२९, प्राज्ञ ३०७, 'बलिष्ठ, द्रष्टिष्ठ' ४१, बुद्धिमान, उसका उद्देश्य २३९, मूढ १९, विचारवान ३३५, विचारशील २२८, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान १९८, सिद्धि के शिकार १२४
 व्यक्तित्व, उसका विकास आवश्यक ८१, उसकी विशेषता १७२, एक सत्य १७२, और नेता १७१
 व्यवसाय, उसके लिए मनोयोग की आवश्यकता १७९
 व्यवस्था, उसके भीतर जीवनी-शक्ति २५४, सामाजिक और राजनीतिक भलेपन पर टिकी २३४
 व्यवस्थापिका सस्था, उसका निर्माण २५५
 व्यावहारिकता, दृष्टि के अनुरूप १६१
 व्यायाम, उसका अर्थ १६५, मानसिक या शारीरिक १६५, वेगयुक्त, हानिकारक १६४
 व्यास ७, उनका कथन १२, उनकी दर्शन-पद्धति २०४, -भाष्य ८ (पा० टि०), -सूत्र ४
 व्रमन, डॉ ३००
 शकर २४५, २५६, आचार्य १२, भगवान् ६ (देखिए शकराचार्य)
 शकर पाण्डुरंग ३८८
 शकरलाल, मा० ३११
 शकराचार्य ३३, उनके मतानुसार आहार ३९, और आहार शब्द की व्याख्या ३९, भगवान् ३२
 शक्ति, अणिमादि १२-३, आकर्षण १८, आकर्षण और विकर्षण की १९३, आध्यात्मिक २३, इच्छा ४२, ८३, ८९-९०, ईप्सित १६४, ईश्वरीय ४९, उच्च ९४, उनका निरापद मार्ग १००, उगता अधिष्ठान १७३, उसका परिणाम १, ८,

उसका संघात और पुनर्स्थापना
 १९३ उसकी सम्पत्तम अभिव्यक्ति
 २२१ उसकी प्राप्ति १७ उसके
 बिना अर्थ परार्थ नहीं १९६ एक
 प्राण की विभिन्न अभिव्यक्ति
 ११८ एक संभावना १५७ और
 ऊर्जा ११७ और परार्थ १९६
 और विरहास ३६९ और सुख
 १७६ काम ८९ केन्द्रापसारी
 १९६ मूष २४८ चित्त ३८५
 जीवनी १५९ जीवनी और एका-
 क्ता ८६ बीबी ३३७ मिम्नतम
 १९३ नैतिकता और पवित्रता ही
 २३४ प्रकाशवायिनी १८
 प्रवक्तव्य, नीतर की ८५
 प्रवाह ९ १ -प्रवाह उसका
 नाम 'अम्ब' ८३ -प्रवाह, स्वस्थ
 शरीर में ८८ प्रेरक ६७ १८९
 बोध ८३ मौक्तिक ३८४ मन
 ९२ माह्वी ८९ मानसिक
 ४२, १ ३ मानसिक उसका
 नियंत्रण ८४ भौतिक, उनसे छतरा
 १ भौतिक और काम-प्रवृत्ति
 १ सत्य नहीं १ २ मन्त्र
 १४ -संचार १८ २४ सबसे
 अधिक सूक्ष्म में १७३
 सर्वाङ्ग १९३ शरीर सूक्ष्म में
 १७३ सूक्ष्म और कारण १७४
 सूक्ष्मतम बोध-समता की ११८
 सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और प्रकृति ११८
 स्नायविक ९२

सब्ज आरामाधिभाषित ९५ और भाष
 में निरत्य संबंध ३ -आत्म चित्त
 की मटकानेवाका महावन २१
 प्रतीकात्मक १२१ -ब्रह्म २९
 मन के क्रियाशील बनने की विधि
 १ ३

सुरनामति शब्दी ५९
 सरल ३ ७ ३११ ३१३-१४
 ३२४ ३२६ ३५ ३५२, ३७८,

३८८ ३९३ ३९७ ३९९, ४ ९
 (वेदिए सारबामन्द स्वामी)
 शरीर १३, ५८ ९, ८२ १ ० ११९,
 १५६, २६५, ३३९ ३४४
 अन्त्यतर की ऊपरी पर्य ११९
 उनका पुनर्वर्तन प्राणायाम द्वारा
 १२१ उसकी क्रिया का प्रभाव
 मन पर ११ उसकी गति-विधि
 १५१ उसकी प्रवृत्ति १ ३
 उसकी सूक्ष्मतम क्रिया १११
 उसके नाडीय प्रभाव का उच्चम
 ९९ उसमें क्रियाशील प्राण का
 नियंत्रण १५१ उसे बंधा करने
 की शक्ति मनुष्य में १ २ उसे
 बस में न करने से सुख १६१
 और इच्छा की अभिव्यक्ति २ ८
 और मन ४२, १ ७ १५ और
 मन से परे ९२ और माता-पिता
 १९९ और मानसिक अवस्था
 ११ -क्रिया १५४ छोटा सा
 वर्षण ९१ द्वारा मन तक पहुँचना
 ११ द्वारा मन साक्षित १५१
 बाह्य अभिव्यक्ति ११९ मन का
 बाह्य रूप ९२ मनुष्य का प्रमुख
 भाग २३६ रूप २९ विज्ञान
 आधुनिक १९७ २ २ विभिन्न
 शता नहीं ११९ सूक्ष्म ३९, ११०-
 ११ १९९ सूक्ष्म अपने विचार
 द्वारा निमित्त २३९ स्तूक ११
 १३ १९९ स्तूक अद्य ११
 २१३ स्वस्थ और इन्द्रिय-संबन्ध
 की प्रतिश्रुता ४२ हमारा नावर्ष
 और मौक्तिक सहायता १६४
 सदि ३ ७-८, ३१०-११ ३१३-
 १४ २२४ २६, ३५ ३५९,
 ३७८, ३८ ३८८, ४ १ ४ ८
 (वेदिए रामकृष्णानन्द स्वामी)
 शांकर भाष्य १३ (पा टि) ३२ ३
 (पा टि) ३९ (पा टि)
 ३२७

- शाक्त २८३
शाण्डिल्य ४, उनके 'अनुरक्ति' शब्द की व्याख्या ८, -सूत्र ८, ५४ (पा० टि०), ३२४, ३२७
शान्ति और प्रेम १८२, और सद्भावना २३२
शापेनहॉवर २३२, उनका कथन २०४, उनका विचार २०४, उनकी भविष्यवाणी २३७, और बौद्ध का इच्छावाद ३४१
शारीरिक अभ्यास, उसके तीन विभाग १०१, कष्ट, उसका परिहार १७४, परिवर्तन १२१, बल, नितान्त आवश्यक ४२
शालग्राम-शिला २६६
शास्ता ६७
शास्त्र, उसका उद्गम १७७, उसका कथन ७, १०, १३३, ३१६, उसका शब्दजाल २१, उसकी आत्मा का ज्ञान और गुरु २१, -ग्रन्थ ६७, प्राचीन २२८
शिकागो २२९, २३१, २३७, २५१, २५७, २७९-८०, २९३, २९६, ३०४, ३३०, ३४२, ३६५, ३९२, -वक्तृता ३६०, वहाँ की महासभा २५१
शिक्षक, आध्यात्मिक और लौकिक २६१
शिक्षा, उपयोगी २३, उसका अन्तर्-तम अंग, धर्म २६८, उसका आदर्श १५७, उसका ध्येय १७२, उसका रहस्य १७३, उसकी उपयोगिता १७३, और प्रगति, उसका उद्देश्य २२०, और विश्वविद्यालय २६२, और सस्कृति १३४, और सभ्यता ३४७, -दीक्षा २२७, ब्राह्मण-चाण्डाल, दोनों के लिए ३०९, -पद्धति ३७२, महान् २३३, महान् और जाति-भेद २३९, लोकोपयोगी २५२, सार्वजनिक ३७६
शिक्षाष्टक ३५ (पा० टि०), ७५ (पा० टि०)
शिव २९२, ३७८, भगवान् २५ 'शिव-सहिता' ३४०
शिवानन्द २८४
शिष्य २६३, उसका कर्तव्य ८१, उसकी परिभाषा १७, उसके लिए आवश्यक बातें २०, और अध्यवसाय २१, सच्चा १८
शुद्धि, उसकी साधना में त्याग, श्रेष्ठ ४५
शुभ २३, और अशुभ २९५, और अशुभ की भावना ३७२, और अशुभ विचार १०३, -विचार ३७१, -विचार और बीभत्सता की चरम सीमा ४०, विचार का उत्तराधिकारी १०३
शेक्सपियर, उसका 'एज़ यू लाइक इट' २३ (पा० टि०)
शैतान ५२, २२६, २८३, ३३१, ३४३, ३४५, उसकी उपासना, विकृत पाठ २४३
'शैतान-पूजा' २७५
शौच, आंतरिक ४०, उसके गुण, रामानुज के अनुसार ४०
श्रद्धा, उसका मूल ५४, -भाव ७९
श्रवण ७, -शक्ति १२४, १४०
श्रीभाष्य ८
श्रीमद्भागवत ११-२ (पा० टि०), २५ (पा० टि०), ५५ (पा० टि०), ७३
श्रीराम, कमललोचन ३७
श्रीश बाबू ३२७
श्रुत और श्रवण २०७
श्रुति ७, ३२, उसका कथन ३८, ४१, और स्मृति ३३
श्वास, -क्रिया, उसका नियमन १२०, -प्रश्वास-क्रिया १२७
श्वेताश्वतरोपनिषद् ३ (पा० टि०)

संस्कृत ३४१ अतिवेतन ३४२ वेतना-
रहित ३४२ बिना ज्ञान के अर्धमव
३४२ अर्धम वेतन ३४२
संगठन उससे ही सक्ति ४ ९ उस
प्राप्त करने का उपाय ३१५ १ ८
संपीठ -लोक १ ८ शास्त्रीय
संप्रदाय २१८
संघर्ष अज्ञान के कारण २२१ उसका
सृजन अशीरता २२१
संघात उसकी भावस्थकता २ ८
सजीवनी-सक्ति १७
सबे टाइम्स २३
संत महान् और भाषार्थ ८५
सम्पाद्य २३४ २८९ ४ १ उसे वेद
की स्वीकृति प्राप्त ३६७ और
संगठन २३१-आर्य ३२६ अथ
उसका अर्थ २३५
संस्थापि २८१-८२, २९८ ३११
३२३ ३२६ ३२८ ३३ ३४५
४६, ३४८, ३६१ ६२, ३८१
३८३ ३९१ ३९६ ३९९, ४०
४ ५ और मोगी २२७ पूर्व
२३२ महान् २३२ अथ का अर्थ
२३४ अथ ३९२ सम्प्रदाय
३४७ हिन्दू २२६, २५७
'संस्थापि का गीत' ३३२
सयम ४
सर्विक १९७ मित्र अवयव के लिए
मित्र इन्द्रिय १९७
सर्वेवता बाह्य ८५
सर्वेवता उसका विभाजन और प्रमाण
२१ और तरंग १३३ और
प्राण ८३
संस्कार २ ५ अतीत के १६३
उसकी साहचर्य-भाषि २ ७
पूर्व और पूर्व जन्म ११४ स्वयं
का १२६
संस्कृत एक पचना-पद्धति १७७
उसका विद्वान् ३४७ कथावत
२४१ शीघ्र ३८८ ज्ञान ३६९

प्राथमिक उसकी शिक्षा ३९९
भाषा ४९ ३४७ अथ १४१
धर्मोक्त २४८ साहित्य ३९५
संस्कृति केटिम और बुनानी २३२
संघात, अल्पविश्वास की गैरी से अकड़ा
४ ७ इन्द्रिय बुद्धि और मुक्ति का
१८७ उसकी प्राचीनतम विचार
भाषा २१२ उसके धर्म ४ ८
उसके महान् उपदेष्टा का कथन
७९ उसके मुख्य धर्म ३४ उसके
समी धर्म की घोषणा १९ उसमें
आध्यात्मिकता की बाढ़ २८ उसमें
विशेष कुछ नैसर्गिक नहीं ३१९
उसमें कुछ मूर्खता के कारण १६१
उसमें दो प्रकार के मनुष्य ५२
उसमें स्वार्थपरता की बाढ़ ५८
एक पागलखाना ७५ एक भ्रम
१५९ और ऐम्ब्रिक कुछ १ ६
अन्वयगुर ५८ कुछ से परिपूर्ण
१६१ अथमान ५६ न अथवा
न कुछ १६२ निरन्तर परिवर्तित
१४६ पश्चिमी २५८, २७५ बहु
धमी एक स्वप्न १५९ बाह्य १ ६
मौलिकविद्यापूर्ण १५ अथवि ७६
शास्त्र के प्रति सुवृत्त १ ६ सुभ
और अशुभ का मिश्रण २९५ सुभ
और कुछ का मिश्रण २९५
संहिता पुरानी संस्कृत में २४४ वेद
का सबसे प्राचीन नाम २४४
सम्प्रदायम् ३४१
सन्धेतिष और बाह्यण १८८
सत्युक्त ३२३
सत् १९४ ३३५ कर्म १६०-६१
चिन्तन ८९ प्रवृत्ति उसके विप
रीत कार्य ११३
सत्ता अतीन्द्रिय २२ अगवतीत १८८
सत्य १६ १५३ अनुभव द्वारा प्राप्त
१९२ आपातप्रतीयमान उसका
कारण २४५ आत्मन्तर १९२
आत्मन्तर अनुभूति बाह्य प्राप्त

१९२, ईश्वर विषयक और
आत्मविषयक १३६, उदात्त,
उसकी शिक्षा, पुराण का उद्देश्य
२४७, उमका प्रचार २७६,
उसकी खोज २४, उसकी
जय २३०, २७६, ३१८, उसकी
प्राप्ति, प्रथम कर्तव्य १९, उसकी
सीख, निम्नतम व्यक्ति से २४८,
उसके निम्न पाठ २४३, उसको
प्रकाशित करने की भाषा ३१९,
ऐतिहासिक और पुराण २४७,
और ज्ञान २०, और भगवत्प्राप्ति
की तीव्र आकांक्षा ८०, और शिव
२७७, केन्द्रीय दिव्यत्व की अमि-
व्यक्ति २३३, केन्द्रीय, भीतर का
ईश्वर २३३, देवी, अपरिवर्तन-
शील २४६, परम १३८ (पा०
टि०), पूर्ण १९२, बाह्य १९२,
भौतिक, उसका समनुरूप १९२,
-लाभ २०७, वस्तु की नक़ल १६९,
वैज्ञानिक १९१, सनातन २०,
-समूह ३३६, सार्वभौमिक ११५,
स्वप्रकाश २०, स्वयंप्रमाण २०,
२२९, -स्वरूप केन्द्र की त्रिज्याएँ
२३३

सत्ययुग, उसका आविर्भाव ३०९
सत्त्व, पदार्थ ३८-९, -शुद्धि ३९
सनातनी, अन्धविश्वास २६४, लोग
२६१, हिन्दू २६४
सन्तुलन-केन्द्र ३१६
सद्गुण और साहस ३८७
सदसद्विचार, उसका आनन्द २२७
सदानन्द, स्वामी ४०१
सच्चाटेरियन, कट्टर ३०५
सम्यता, अमेरिका २६१
समाप्ति, इकाई ५६, ईश्वर ही ५६,
उसके माध्यम से विश्व-प्रेम समव
५६, और व्यष्टि ५६, -क्रम २१७,
-शुद्धि २१६, ब्रह्माण्ड २१७, भक्त
का भगवान् ६७, भाव ५६,

-मन १५४, १७०, २१६, ३८४-
८५, महत् २९, ३८५, सूक्ष्म और
स्थूल जड २१६
समन्वय और शांति २५८
समरिया देश ३८९
समाज, उसका मूल आधार, दोषजनक
१५७, उसकी पूजा और मूर्ति-पूजा
८०, -व्यवस्था २३४, शिक्षित
३३५, -सुधार २५०
समाजवाद २४३
समाजवादी ३४९
समाधि ८४, ९५, -अवस्था ९६,
-अवस्था, उसकी भूमिका १०७,
-अवस्था, सर्वोच्च २१३, उच्चा-
वस्था १२९, तथा द्रष्टा और साक्षी
१२९, -दशा १५६, धर्ममेघ ३३७,
स्वरूपशून्यता १३२
समाधिपाद ७ (पा० टि०)
'समुद्र-पीडा' ३६५
सम्प्रदाय, उदार-भावापन्न ३५, उसकी
उपयोगिता की सीमा २३५,
उसकी शक्ति का स्रोत १२९, और
भक्ति ३५, ब्रिटिश २३०, वैष्णव
१२६, सुधारवादी २६३, हठ-
योग २२६
सम्प्रदायवादी, सकीर्ण ३५
सम्मोहन १८१
सर्वभूत ५८
'सर्वव्यापी' २६
'सर्वशक्तिमान' २६
सहस्रद्विपीठान २७७, २८७-८८, २९२,
२९५-९६, ३०२-३, ३३०, ३३२-
३३, ३४२
सहस्रार ८५, ९४, १४०
सहारनपुर ३१२
सहिष्णुता ८०
मास्थ ११, उमका दृष्टिकोण २००,
उमका पुरुष २१०, उसका मत
२०१, उमके अनुसार, अहंकार
एक तत्त्व २११, उमके अनुसार

प्रकृति २ १ और प्रीक वार्ध
 निक विचार का समारंभ २ ३
 और वेदान्त १९१ वार्षिक
 १९३ २ १ २ ८ वार्षिक
 और प्रकृति २ १ मतानुसार
 बस्तु की सत्ता २ वावी २१
 २१४ सर्वोत्पूर्व सामान्यीकरण
 मही २१ -सूत्र २१२ (पा टि)
 साम्य दर्शन १९४ २११ २१४
 १४१ उसके अनुसार भारतमा २१४
 उसके अनुसार प्रकृति २११ उसके
 अनुसार सत्त्व रज और तम ३८
 उसके क्या बोध २११ उसे
 समझने की सीढ़ी २ ३ अणु
 का सर्व प्राचीन वर्धन १९१
 भारत की वर्धन प्रकाश की आधार
 विद्या १९१ विरव-दर्शन का
 आधार २ ३
 साम्यकारिका ३४ ३७५
 सांसारिक आकांक्षा ५९ कुछ उसका
 कारण ११४ प्रेम ५५, ७५
 बस्तु ५३ वासना ४ सुख ११२
 स्वार्थ ४९
 साधक ८ १८ आदर्श १८ उसके
 लिए एकनिष्ठा आवश्यक ३७
 और आत्मा के बन्धन ५३ और
 आहार संबंधी नियम ३९ और
 ब्रह्माण्ड का चिन्तन ३१ और
 सत्ता मगवान् ६ और भक्त्य
 प्रेम ३९ सफलताकाशी और तीन
 बातों की आवश्यकता ८
 साधन उसमें परिश्रम अधिक ५२
 और विकास १७५ इन्द्रिय १७९
 द्वारा हृत्वर-भक्ति का उदय ४२
 -नियम ७ -यथ १८ भक्ति
 १५
 साधना उमका लक्ष्य ८४ उतका
 सर्वोत्तम समय ८१ और सिद्धि
 २१ -पद्धति १५६ २२८
 प्रजापती ६

साधनात्मत्वा १५
 साधु, भाव २३ -महापुरुष ४
 -संन्यासी ३ ८
 साम्यात् ३ ७ ३१२ ३२ ३२२
 ३२४ ३२९, ३७
 सामवेद ६
 साम्यवादी सिद्धान्त २५२
 सामाजिक कल्याण ३३७ परिस्थिति
 ३१७ व्यवस्था २४१ सघटन,
 राष्ट्रीय विचार की अभिव्यक्ति
 २३९ समस्या १५६ समस्या
 और हिन्दू जाति-मया ३४९
 सुचार २४ २६२ सुचार, उसकी
 आवश्यकता २५४ स्थिति इंग्लैण्ड
 की २५९
 सामाज्यीकरण और सूक्ष्म विचार २३५
 साम्यावस्था १९३ २११ आदिम
 १९३ और सृष्टि का अस्तित्व
 १९३ पूर्व उसमें गति नहीं २ १
 प्रकृति ३८
 सार-सत्त्व और प्रेम २३८
 सारवा ३ ३१३ ३१५ १६
 ३१८ १९ ३२४ ३५ ३७८
 ३८ (बेकिए विमुजातीयानन्द,
 स्वामी)
 सारदानन्द ४ ६-७ स्वामी ३६९
 (बेकिए करतू)
 सारा सी बुद्ध भीमती ७९
 'साहसी' ४ ८
 सिंगारारकेसू मुनास्मिर २९३ (बेकिए
 किरी)
 सिकंदरिया २१२
 सिद्धान्त ३९४ आधुनिक और आकाश
 २ १ आधुनिकताम ३५६ साम्य
 वावी २५२
 सिद्धि अप्राकृत्य ९८ और ज्ञान १३
 ममत्कारिणक व्याधि के लक्षण
 ९८ यौगिक १ ५ -जात्र १२
 ४ ७
 सिद्धि सर्वेष्ट २३७

मिलवरलाक, श्री ३५६
मीता ३७
मीतापति २६८
मुकर्म ३८१
मुख और दुःख-भोग २१३, दुःखात्मक
अनुभव ४५, बुद्धिजन्य ४७, -भोग
१४, १४४, -सम्पदा ५९
मुवार, आदर्श २५४, आध्यात्मिक
३३१, उमका अचूक मार्ग ९८,
प्रगतिशील २५४, सामाजिक २६२,
सामाजिक, उसकी आवश्यकता २५४
मुधारक, आधुनिक २५६, और यूरोपीय
लोग २६१
मुद्रहण्य, अट्यर, न्यायाधीश २५७
सुरेश ३२९, दत्त ३२७
मुपुष्णा ९९, १०१, १०४, १३९,
उसका ध्यान, लाभदायक ९४,
उसकी सर्वोत्तम विधि ९४, उसके
दो छोर पर कमल ९४, उसके
मूल मे स्थित शक्ति १३८ (पा०
टि०), -पथ ९०, -मार्ग १००
सूक्ष्म और सयम ३९
सूडान २३६, २४१
सूत्रात्मा ९८
सूरज २० (देखिए सूर्य)
सूर्य ११, २०, २४, ५१, ७०, ११७,
१४८, १५३-५४, २१३, ३५९,
४०७, और चन्द्र ७२, ८६, ८८,
(पिंगला) ८५, प्राच्य २२९,
-लोक ३८४
मृष्टि, अनादि ९, आत्मा के हित के
लिए १९८, उसका क्रम १९५-
९६, उसका तथ्य १४६, उसका
सर्वश्रेष्ठ विद्यालय ३४३, उसकी
समष्टि से विश्व १५४, उसके
पीछे एकता २४३, और उपादान
२११, और प्रलय १९४-९५,
कर्ममय ६९, क्रम १९६, द्वारा
ईश्वर का अनुसंधान १४६,
-निर्माण ६९, -रचनावाद, उसका

सिद्धान्त १९८, -शक्ति, आदि
३८४, सम्पूर्ण, उसके पीछे
एकता २४३
सेट जार्जस रोड ४०३, ४०५-८
सेन, केशवचन्द्र २४३
सेमिटिक जाति २८३
सेमेटिक लोग, उनमे नारी २६६
सेवियर, श्री और श्रीमती २६२-६३
सेन फ्रान्सिस्को १२२, १३१, १५१,
१६०
सैम ३७५, ३९६
सोम ११
सोलोमन, श्री एव श्रीमती ३६६
सौन्दर्य और महानता ५१
सौर-जगत् १९४
स्टर्डी २८४, ३४२, ३४७-५२,
३५५, ३५८, ३७९-८०, ३८८,
३९१, ई० टी० २७५-७६, ३११-
१२, ३२४-२६, ३३४-३५,
३४०, ३४३-४४, ३४६, ३४८-
४९, ३५२, ३५६, ३५८-५९,
३६४-६५, ३६७, ३७३, ३७५,
३८३, ३८७-८९, कट्टर वेदान्ती
३२७, श्रीमती ३५८-५९, ३६४,
साहव ३२७
स्टारगीज़, अल्वर्टा ३०४, कुमारी
२९२, श्रीमती ३०३
स्टील, कुमारी ३७३
'स्टैन्डर्ड' ३५६
स्ट्रीट, डॉक्टर ३८३
स्त्री, उसका महत्त्व ३१७, उसकी
अवस्था-सुधार और जगत् ३१७
'स्त्री-गुरु' ३१७
स्थूल, उसका कारण सूक्ष्म मे ११८
स्नायु-केन्द्र १९६
स्पेन्सर, हर्बर्ट २६०
स्फोट, अव्यक्त २९, ३०, ईश्वर के
निकटवर्ती ३०, ईश्वरीय ज्ञान की
प्रथम अभिव्यक्ति ३०-१, उसका
अर्थ २९, उसका एकमात्र वाचक

मूल भित्ति १४५ उसकी सहि
 प्पुता ४२ उसमें अन्तर्निब की
 र्जित २६१ उसमें कामदायक
 सभर्ष ९६ उसमें सीखने योग्य
 बात ६३ एक स्पन्दन ११७
 और भर्म ३७९ और मृत्यु ७८
 ८५, १९५ यंत्रिण व्यापार २३६
 जड़वत् और झूठ १४ ज्ञानमय
 १६२ तथा स्वर्ग १३६ -ज्ञान
 २६ शीघ्र ५९ शीघ्रक ८५
 दूसरो की भलाई के लिए काम
 करना ३३५ नायिक १३२
 -नाटक २५५ -नाटक उसमें
 शब्द प्रतीक का स्थान ४९ -यय
 ८४ पापिक २३ -अभाव १३४
 प्रेम ही ३३२ भोग-विद्यासंपूर्ण
 १२२ भौतिकपरामर्श ४९
 मरणोत्तर ११८ मिथ्या ही ३७९
 मृत्युस्वरूप जन्म स्तर का २६
 यथार्थ कर्ममय ३७ यथार्थ त्याग
 मय ३७ राष्ट्रीय ३३२ राष्ट्रीय
 आध्यात्मिक ३३९ विस्तार ही
 ३३३ व्यावहारिक ३८ ११४
 -संग्राम ९, १४ संघर्ष का नाम
 ५९ सन्धा २६ सदा विस्तार
 करता ही ३५५ सन्ध्या १३४
 सम्पूर्ण एक व्यायामशाला २६
 सम्मिश्रित व्यापार ५९
 जीवन्त उसके सामान्य सङ्घम २ ४
 तत्त्व १९८ शक्ति १९८ सत्य १९८
 जीवन्मुक्त और संसार २६१
 जीवार्त्ता १५१ १५८ १६७ १७३
 १९६ २७ २१७ २२०-२१
 २२३ २५९, ३७५-७६ आत्मन्
 मय २२१ उसका क्या स्वरूप
 २२१ उसकी पूर्णता की स्थिति
 होने पर २२३ उसकी पूर्णता
 प्राप्ति २२३ उसके विस्तार की
 आवश्यकता २२१ और ईश्वर
 २८५ बाह्यी स्तर पर २२८

धेन २८
 प्रेम्ताइस ६७
 वेम्स डॉ १६४
 प्रिक २१२ २२८
 धेन और और २४३ ५५०
 ३२८
 धेनी ६२
 ओसेफ ६
 ओसेफिन बहुत ३८८ सॉक १
 ज्ञान अतीन्द्रिय १५३
 २८ आत्मस्तरिक १ ७
 उसके विग्रह १९९ उसका ५
 मात्र उपाय १५४ उसका ५
 मात्र मूल्य २२९ और ७ १५
 ८४ और कर्म १५१ वैतन्ध न
 बाहिरस्थ ११८ -ज्योति १३८
 १५८ तत्त्व ३५, १६ वाग ७
 भीजे सारीरिक ९
 २८ ध्यान की शक्ति से १८१
 पारमात्मिक २८ प्रत्यक्ष ७७७
 मूलमूल कारण १५२
 १५ बाहर से नहीं ३ शीघ्रिक
 १९५ मनुष्य का प्रकृत जीवन २८
 मनुष्य में अन्तर्निहित ३ -यार्थ
 ८१ यथार्थ ३३ -योग ६७ ९६
 १६९-७ -योग उसकी शिक्षा
 १५८ -योग और ईश्वरस्वरूप
 की अनुभूति १७ -योगी १५६
 योगी उसका प्रथम मार्ग ७२ रहस्य
 १६४ -विचार १५१ वैज्ञानिक
 ११५ -शक्ति १७ सास्वत
 १८४ सम्पूर्ण हममें निहित
 १ ६ सांसारिक वस्तु विषय
 ३३ -स्वल्प आत्मा ४
 आत्मलोक ३३८
 आनी उसका अनुभव १५७
 उसकी दृष्टि १ ५ उसकी
 पहचान १५७ और एकत्रानु
 मुक्तिव्य मोय १५१ तथा कर्म
 और अन्त ६१

ज्यामिति, विज्ञान मे श्रेष्ठ २२६
 ज्योति की मन्तान ३७५
 ज्योतिर्विद् १५३
 ज्योतिष ३५२
 ज्योतिषी लोग ३६७
 'ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनी' १११
 टाउन हॉल ३१९, ३३१
 टोटेन, श्रीमती ३२१ (देखिए ई०
 टोटेन)
 ट्रान्सक्रिप्ट ३९२
 डाइनेमो २७१
 डाक्टर, नजुन्दा राव ३३६, राव ३३६
 डाबिन ११५
 डिट्रॉप्ट २७३, ३५५
 डिट्रॉप्ट फ्री प्रेस २७३
 डियरवोन एवेन्सू ३२८, ३४३, ३५८,
 ३६४-६५
 'डेगो' ३५३
 डे, डॉ० ३८५
 डेमोक्रेट २३९
 तत्र-ग्रथ २३
 तत्त्व, उपदेश १३३, जीवत १९८,
 ज्ञान ६५, १६०, २५४, ३६८,
 ज्ञानी १००, दर्शन १७५, दैवी
 २८५, पौराणिक १४५-४६,
 भौतिक २३२, वीरोचित ३०२
 तत्त्वमसि १५८
 तम, उसकी अभिव्यक्ति ११
 तमोगुण ११
 तर्क, उसके पथ मे वाघा १५२
 तामसिक पुरुष १४
 तारक दादा ३००, ३५२, ३५४, ३५७
 (देखिए शिवानन्द स्वामी)
 तितिक्षा, उसकी परिभाषा १००,
 उसकी प्राप्ति के लिए कार्य १००
 तिथ्वत १४७, २९६, ३७३
 तीर्थयात्रा २५१

तुलसी ३००
 तुलसीदास ३८१ (पा० टि०)
 तुलसीराम ३६३, वावू ३०९
 त्याग, उसका अर्थ १८६, २७८,
 उसकी परिभाषा १७९, उसकी
 महिमा १७६, उसकी सीमा कही
 नहीं १७६, उसके बिना धर्म
 नहीं १८५, और आत्म-बलिदान
 २१२, और आध्यात्मिकता १३६,
 और मनुष्य १७६, और विवाह
 १७६, द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति
 ३१३, निवृत्तिमुखी ९-१०,
 सच्चा १३
 त्यागी और तेजस्विता ३१३
 'त्राहि माम्' ३०७
 त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी ३७३ (देखिए
 सारदा)
 'त्रिपुरमदभजन' ३७४
 त्रिभुज, उसका तीसरा कोण २७६
 थर्ड यूनिटेरियन चर्च २७२
 थर्सवी, कुमारी ६५, ३८४, श्रीमती
 ३७८, ३८८
 थियोसॉफिकल सोसायटी ३४६-४७
 थियोसॉफिस्ट ३०७, ३३६, ३६९, ३७१
 थेरेसा, सत २७५
 दम और आहम्बर २७१
 दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् १९९
 दक्षिणी ध्रुव ३०१
 दण्ड और पुरस्कार ९८, २७५
 'दम', उसका अर्थ १००
 दया ५१, एक हेतु १६३, और
 नि स्वार्थपरता के कार्यरूप मे
 ३५, दैवी सम्पत्ति ३५, मौलिक
 वस्तु नहीं १८२
 दर्शन, उच्चतम कविता २२८, और
 धर्म ६१, -प्रणाली १११, प्राच्य
 ३, शास्त्र ६०, ११७, २१७,
 सार्वभौमिक १४१

बलवन्दी ३२
 बला और क्रोध ७४
 बर्तन ८५
 बार्थनिक ६१ माया १४१
 बाबू २६३
 बास ३३ उसमें सच्चा प्रेम संभव नहीं ३३ बच्चे कार्य और उसका बोध ३५
 'बासों का बास' ३६
 दिव्य प्रकाश उसका अनायास जागि मर्ति १९
 'दिव्य प्रेम' २१४ (पा टि)
 दिव्य प्रेरणा २३६ (वेदिए अन्त-स्फुरण)
 दीनता और समर्पितत्व ३७८
 दीवान भी ३२८ साहब ३ २, ३२५ (वेदिए बेसाई, हरिदास विहारीदास)
 दुःख उसका उद्गम १६७ उसका कारण ५१ और कष्ट १५५ और श्लेष और भ्रम १६७ और मृत्यु २५९
 दुःखानुत्पन्न सुख ७८
 दुनिया बच्चों का शिक्षादाइ नहीं ३ ९
 दुराग्रह ५४ २३४ एक प्रकार का रोम २३५ और बृष्टान्त ५४ और महात्माता ५३ पूर्ण सुचार २३५ प्रेम का विरोधी ५५
 दुराग्रही कई प्रकार के २३४-३५
 दुराचार ३३५
 दुर्बलता साक्षुता तथा सबलता ६३
 दुर्भावना उसके कारण अत्याचार ४
 'दुकानबारी जर्म' २३८
 देवतागण उच्च अवस्थाप्राप्त विभवत मानव २६१
 देव-मानव ६ १५२ २४७
 देवमान मार्ग ३ ५ हाथ प्राप्त गति सेण्ट ३५९ (पा टि)
 देवालय ३८

देस ३७५ उसके लिए और की आवश्यकता ३२३ -काल और परिचाम ११९
 देव-काण्ड-निमित्त ६९ ७१ ११९ १७४
 देवमन्त्रि सदा पक्षपाती १४१
 देसाई, हरिदास विहारीदास ३ २ ३२५, ३२८
 देह और प्राण ३७६
 देवी उगमाद २५७ कार्य ३३
 दत्त २८५ संपत् २९५
 दूत-स्त्री २२
 दूत और संघर्ष १४
 द्विवेदी श्री ३२६
 द्वय और कठिनाई २२१
 द्वैत बुनिया में १६८ भाग १६८
 द्वैतवाद १६७ २२८ २३९
 द्वैतवादी उसका कथन २५८ धर्म २ ५ स्तर २१७
 धन और सीधर्म २६३
 धर्म १६२ २१२, २३८, २६ ३ ४ ३२३ ३३८ अनुभूति की वस्तु १५९ आचरण का २७४ इस्लाम ७ १३६ ईस्वर के विमान की लक्षित १३१ ईसाई ४७ ८६ १२६, १२८ १४३ १७१ १७६ २६५, ३४७ ३६८, ३८ ३८९
 उदार, उसकी सृष्टि तथा अम्युचम का १३८ उनका उच्चतम स्वप्न १७१ उनका लक्ष्य एक १६९ उनकी उत्पत्ति और अवगति १२७ उसका अर्थ २४८ उसका आरम्भ २८ ३७६ उसका उद्देश्य २६९ उसका कार्य १५
 उसका लोभ १ ९ उसका चरम आदर्श १३१ उसका द्वार १५
 उसका पतन २ १ उसका पुरुष हाथ विशेषत २७३ उसका बाहरी लोग ३८ उसका अर्थ

तत्त्व ३१८, उसका सार २५८, उसका स्थूल भाग १४१, उसकी उपलब्धि और आरम्भ १३६, उसकी ओर झुकाव १०९, उसकी पकड़ १३४, उसकी परिणति, भारत में २७६, उसकी परिभाषा १५९, उसकी पूर्व तैयारियाँ २५१, उसकी रूपरेखा १५०, उसकी वर्तमान अवस्था १५०, २५०, उसकी शक्ति और मनुष्य १४०, उसकी शिशुशालाएँ २४८, उसकी सच्चाई ३४०, उसके उद्देश्य की सूक्ष्मता और क्रियाशीलता १३९, उसके ऊपर उत्तरदायित्व १३३, उसके क्षुद्रतम भेद, शाब्दिक २६०, उसके चरम लक्ष्य-प्राप्ति के साधन का नाम १६९, उसके नाम पर दूकानदारी वृत्ति ३८०, उसके पास सदेश २६५, उसके प्रचारक होने का इच्छुक ४२, उसके प्रतीक की उत्पत्ति, स्वाभाविक रूप से ४७, उसके बाह्य रूप २२५, उसके सबध में असाधारण बात १३४, उसके सबध में सार्वभौमिक लक्षण १४४, उसके समन्वय की चेष्टा, व्यर्थ १४७, उसके हीनतम रूप २५९, उसमें नामोपासना की कल्पना २४६, उसमें प्रबल जीवनी-शक्ति १२५, उसमें मुक्ति-लाभ की चेष्टा ८२, उसमें विद्वत्ता का स्थान नहीं २२८, उससे प्राप्त तीव्रतम प्रेम और ज्ञान १३९, उससे समाज का क्या लाभ २७०, और आत्मा १२९, और जापानी फूलदान २५०, और परमेश्वर १०१, और पात्र का आकार १४७, और मुक्ति १९७, और योग का रहस्य, व्यक्ति में २८१, -कार्य १६, -ग्रथ १०६,

२३७, -चिन्तन और जीवन का उच्च स्तर १३९, -जगत् १३९, ज़रथुष्ट्र १२६, -जीवन, उसका रहस्य १२३, ज्ञात भाव से अग्रसर १३१, तथा कारण १४७, द्वारा कठोर शत्रुता और विद्वेष १२५, द्वारा घृणा और विद्वेष १२५, द्वारा दातव्य चिकित्सालय-स्थापना १२५, द्वारा भयकरता की सृष्टि १२४, द्वारा रक्त की नदी प्रवाहित १२५, द्वारा शक्ति को मान्यता ४९, ध्वजी १५०, न पथ में, न विवाद में २४८, परस्पर पूरक १३०, पवित्रता ही ४२, पारसी का १२६, पाश्चात्य ३१७, पुत्र का ३७, प्रचार १३१, -प्रचार, उसकी रूपरेखा १५१, -प्रचार और प्राच्य १२६, -प्रचारक ५, ९, ६१, १३२, ३४६, प्रत्येक, उनमें तीन भाग १४१, प्रत्येक, उनमें तीन मुख्य बात २४७, प्रत्येक, उसके पीछे आत्मा १२९, प्रत्येक, उसके विभाग ४७, प्राचीन १२६, प्राच्य ३६४, -प्रासाद ७९, -प्रेरणा १३९-४०, -प्रेरणा और मनुष्य-स्वभाव १४०, फैशन रूप में २५०, बौद्ध ३४६, ब्राह्मण २३७, -भाव ३५९, ३८५, -भित्ति ३३५, मत, उसकी विभिन्नता लाभदायक १७०, मत, सब सत्य १४७, मनुष्य के स्वभाव का अंग २७२, -मन्दिर, सार्वभौमिक १२४, -महासभा २३७, ३२६-२७, ३४२, मुसलमान १३४-३६, मुस्लिम २३७, मूल में सभी समान १७०, यथार्थ १५८, यहूदी १२५, -युद्ध २३, -राज्य १२८, -लाभ २५०, -लाभ, उसे करने की सभावना १३२, विभिन्न, उनमें सामजस्य कठिन १४१, विश्व १४५. विविध

१७१-७२, १७४-७६ व्यावहारिक उसकी परिभाषा १७९ व्यावहारिक उसकी व्याख्या १७७-७८ व्यावहारिक तथा ईसाई धारणा १८२ -शास्त्र १७१ २२, २९ -शिक्षा ३६६ संन्यास ३५५, ३६१ संसार के १२६ संसार के सभी सत्य १४७ संस्थापक १४३ सन्ना ११ सन्ना उसका आरम्भ ७१ सत मृगी ८६ सगर्भण अस्वाचार पीड़ित ३३७ -समन्वय-समस्वा १४१ समस्त अंतःअनुमति २२८ समस्त महान् भीषित १२६ -सम्प्रदाय १२५, १३८ १५५ -सम्प्रदाय-समूह १२४ सर्वाधिक सान्निध्यमी १२४ -साधन १६ सार्वजनीन १६९, ३६२ सार्वभौमिक १३१ १४३ सैद्यात्मिक उसका क्या अर्थ १७१ सैद्यात्मिक उसको पाना सरल १८२ स्व २३ हिन्दू १२६, १३६ १६ २३८ ३१७ ३३१ (पा टि) ३३९ ३४८ ४९ ३५१ ३८ धर्मपाल ३४६ ४७ धर्मशास्त्रा २३ १४ धर्मान्ध २६४ उत्तरधामित्वहीन १४१ मानसता के ईमानदार ८६ सबसे निष्कपट १४१ धर्मान्धता ३४ एक ममानक बीमारी १४१ हाथ कुट्ट बुद्धि १४१ धर्मोन्मोचना ३६४ धर्मोपदेश १६, ३२७ ३५७ ३८ धर्मोपदेशक आचार्य १२ धार्मिक आन्धोत्पन्न १८५ जस्ताह २७४ उत्पत्ति ३३४ और आप्पा रिमक उत्पत्ति १६९ कार्य ११५ इन्द्र १७ जीवन १३९, १७ छत्र ३१७ धारणा २९६

नास्तिक धम्मी २४९, पुण्य ३२६ मठ-मठान्तर ३२३ विचार ४८ ३३३ विचारधारा २३७ विषय ३३८ व्यक्ति २३८, २५१ यथार्थ १४ सम्प्रदाय १८५, १८९ ध्यान १२३ -अवस्था मन की ९७ उसकी प्राप्ति १८ उसकी प्राप्ति कर्म द्वारा ८८ उसकी शक्ति १८ उसकी शक्ति से अनिष्ट का निराकरण १७९ एकमात्र असर वस्तु ९७ क्या है १८ हाथ भीतिक भावना से स्वतन्त्रता १२३ हाथ सामर्थ्य १८ बस है १८ सबसे महत्त्वपूर्ण ९७ ध्येय-प्राप्ति १२२ मन को संयमित करना २२९ ध्येय १३ ध्रुव प्रवेश ३९४ ध्रुव सत्य ३३ मजिक्ता १६ १६२ ६३ मदी गंगा ११६ १२६ १६६ २९९ ३१९ फरात १२६ मानस बन ३२५ 'ममोनायमनाम' १८७ मर-ईश्वर २६ मरक १९, ९६, १९६, २९ २०२, २३३ २५४ २७३ २८१ २८५ ३-१ ३ ३ ३२४ -कृष्ण ६६ -चित्र ८५ मरक्यामी १३३ मरुतिह ३४२ मरुतिहाचारिकर, जी जी ३६८ मरेन्द्र ३१ ३१४ ३५४ ३६३ (बैसिए विश्वकालम् स्वामी) मरुध्वस्तान ११४ मरुद्वीप २६१ नाम ७ उसकी उपासना २४६ उसकी मरुतरता ३७९ और वैश्व-मानव

२४७, और बोध अन्योन्याश्रित,
२४६, और यश १९५, ३३८, ३४८,
३८७, और यश, उसकी नश्वरता
३७९, और यश, उसकी प्रबल
आकाक्षा ३७०, और व्यक्ति २६२,
-प्रचार ३४०, -यश ८-९, ६०,
९५, ९८, १८४, ३२३, ३५९,
-रूप ४८

नारद २८८, ३८२

नारायण ५२

नारायण, हेमचन्द्र ३२५

नारी, उसका ईश्वर के प्रति प्यार २७३,
उसकी प्रकृति २७३, -कवि २०८,
कुलटा भी दिव्य माँ १८८, हिन्दू
२७३-७४

नासदीयसूक्तम् १६६ (पा० टि०)
'नास्ति' १३

नास्तिक २०२, २५०, २७४, ३५६,
धार्मिक २४९

नि स्वार्थ भाव ३४४

नि स्वार्थता, अधिक फलदायी ८,
उसकी उपलब्धि, प्रयत्न द्वारा ८४,
उसकी महत्तम शिक्षा ४२, और
सत्कर्म ८३, शक्ति की महान्
अभिव्यक्ति ८, हमारा लक्ष्य ८८

नि स्वार्थपरता, उसका अर्थ ८२,
चरम लक्ष्य ८२

'निजत्व' ८३

'नित्यानित्यविवेक' १०५

निदिध्यासन १२३

निन्दा-स्तुति १७

'निम्न अह' ४१

नियम ६९, २२०, उसकी परिभाषा
६९, उसके सर्वव्यापी होने का अर्थ
६९, प्राकृतिक २७२, शब्द का
अर्थ ६८, सनातन ६, सासारिक
१३२, सामाजिक ३४१, सार्व-
भौमिक ३३१, सीमाबद्ध जगत् मे
सम्भव ६९

'नियम तत्त्व' ६८

नियात्रा ३५४

निरजन ३१९, ३५२, ३९१

निराशा, परम सुख ३८३

निराशावादी ५०, ६६, ८५-६, वृत्ति
१०४

निर्गुण ईश्वर २१६, पक्ष २१६,
सत्ता २१६

निर्वाण ८९

निवृत्ति, उसका अर्थ ६०, उसकी पूर्णता
६०, नैतिकता एव धर्म की नीव
६०, -मार्ग ७१, -मुखी त्याग
९-१०

निष्क्रिय अवस्था १४

नीग्रो ३२९, ३६२

नीति और धर्म ३२६, -शिक्षा ३७

नीतिशास्त्र ८२-३, १११, १२०,
२११, २५८, हिन्दू १६

'नीतिसाधन-समिति' ३६४

नेगेन्सन, कर्नल ३४६

'नेति', 'नेति' ७१

नैतिक, ८३, विधान ५९, ८३, शिक्षा
५०, शिक्षा, उसका लक्ष्य ८२
नैतिकता, उसका सार २०६, उसकी
एकमात्र परिभाषा ८३

न्याय, उसकी भाषा मे १५२

न्यूटन ४

न्यूयार्क १२८, १८०, २०५, २१०,
२४३, २५५, २९८, ३०४-५,
३१८, ३२५, ३३१-३२, ३३८-

४१, ३५३, ३६४-६५, ३६९,
३७३, ३७७-७८, ३८१, ३८४,
३८५ (पा० टि०), ३८६, ३८८,
३९०, ३९२, कोषागारस्वरूप

३९४, वीर भौतिकतावादी ३०७,
शहर ३६४, संयुक्त राज्य का

मस्तक तथा हाथ ३०४, ससार मे
सबसे धनी ३५३, स्टेशन ३६४

पञ्चभौतिक देह १५०

पजाव ३५७, ३६२

पर्यवेष्टि ११४
 पतिव्रता स्त्री ४२
 पद्मप्रदर्शक ज्योति १३२
 पदार्थ उसके चेतन तत्त्व १९५ अङ्क
 १७७ २५९ ३७६ रासायनिक
 ३५२
 पद्मति सार्वभौमीय १६९
 पद्माङ्क २२
 परबर्म-सहिष्णुता १३८
 परमाहंस १८७ रामकृष्ण ३५२
 परमाहंस वेद ३ १ ३५४ ३८१
 (देखिए रामकृष्ण)
 परमात्मा ४४ ९८ १ ७ ११
 १५१ १५८ १६९ २३५ २५
 २६८ ३४६ ३४९ ३७०-७१
 ३७६, ३७९ ३८१ और
 जीवात्मा १९७ गतिमान करने
 वाली शक्ति २५५ अक्षय प्रभु १५८
 परमानन्द २५१
 परमेस्वर ८६, १ ७ ११ ११६
 ११९ १२२, १६४ १६८ २४६
 २४८ ४९, २५१-५४ चसका
 स्तूक प्रतीक २४६ प्राप्ति १६३
 २४७ २५ वास्तविक सत्ता
 १६७ समुच्च २४३ सर्वत्र विद्य
 मान २४७ सर्वव्यापी २४५
 सर्वसक्तिमान २५२ (देखिए ईश्वर)
 पराधेयता २६२
 परस्पर भूमि का विषय ११
 'परीक्ष विकित्सा' ३८४
 परोपकार ३ ९, ३३६ उसकी इच्छा
 ५१ बान और बाता ५१ पुष्प
 ६ ३९ वही जीवन ३३३
 पबहापी बाबा ४५ (पा टि)
 २७८ उनमें विषय मान ७९
 पवित्र पुरप २४६ पुस्तक २४४
 मैरी २ २
 पवित्रता ५८ अनन्तर ३४४ एवं
 अम्बकसाय ३५ और सजीव
 ४२ सर्वप्रथम बर्म ४२

पशुत्व-भाव ७७
 पश्चिम उत्तका अम्बकसाय-बापिन्य
 २३९ और पूर्व में अन्तर २३९
 वही बर्म जाता क्रिसम २३९ वही
 के लोभ और अम्बकसाय २३९
 पश्चिमी ईसाई २३८ देश ४ राष्ट्र
 और ईश्वर प्रेम का आधार २७४
 राष्ट्र और डॉक्टर की पूजा २७४
 रिवाज ३७ विचारभाषा २३८
 पसाडेमा १२४
 पश्चि पाश्चय ३६
 पाप ८, ३५, ७४ १६२ ६३ १९८,
 २४४ २५९ २६१ ३९१ और
 पापी तथा दुष्टप्रभु ५५ दुष्ट पाप
 चाना ३९ मम ही सबसे बड़ा
 ३७९ -मोचन ३ ७
 पापी तथा पुष्पारत्ना ३९४
 पारसी १२६ २ ५
 पारितोषिक और बन्ध २५४
 पश्चिम उसकी परिभाषा २३ जीवन
 २३ वस्तु २३१
 पार्वती १९
 पापी भाषा ३१९
 पाश्चिक प्रकृतिकाला ४२ भाव ४२
 पाश्चात्य और प्राच्य के आदर्श ३१७
 देश २४९ ३ ९, ३१७ देश
 उनकी बाह ११८ देश उसका
 प्रमाण अन्वय ९६ देश और सामा
 जिक तथा धार्मिक उन्नति ३१७
 देशवासि १३ १२६ देशवासी ३ ४
 देशवासी उनकी सफलता का
 रहस्य ३२८ देश वही अद्भुत
 पश्चि और अशक्ति का विकास ३ ८
 देश वही की स्थियों के मूल ३ ८
 देश वही के लोग और 'मोम ३ ८
 बर्म ३१७ भाषा ३७२ महाशक्ति
 का विकास ३ ८ राष्ट्र ३३२
 विचार ३६६ विवाह प्रथा ३ ६
 उत्कृति १ ६
 'पियका' ११६

'पिता' २७५
 पितृ ३२१
 पिशाच विद्या ३०६
 पीक, श्रीमती ३८७-८८
 पीर-पूजा २२५
 'पीलिया रोग' १६५
 पुण्य ८, १६२, अनश्वर है ३४४
 पुनरावर्तन की प्रवृत्ति ६८
 पुरस्कार, अथवा दण्ड ७८, और दण्ड
 २५२-५३
 पुराण २८०, पुरुष १६२-६३,
 -साहित्य १४१
 पुरुष तथा नारी, दोनो आवश्यक ३०१,
 मुक्त, उसका लक्षण ३०९ (पा०
 टि०)
 पुरुषार्थी १५१
 पुरोहित ८, १५१, और पैगम्बर मे
 अन्तर २२४, कट्टरपथी, उसका
 कारण १३१, -प्रपञ्च ३३४, ३४५,
 रुद्धिवादी शक्ति के प्रतीक २२४
 पुस्तक, उसमे जीवत शक्ति नही १९८,
 -प्रकाशन ३१०
 पूजा, उसका अर्थ २८२, २९९, उसका
 आरम्भ २१५, उसका प्रतीकात्मक
 रूप २२७, उसके रूप २२६,
 औपचारिक, एक आवश्यक अवस्था
 २६८, -पद्धति १४१, -पाठ
 ३४८, पीर २२५, वृक्ष २२५,
 सर्प २२५ (देखिए उपासना)
 पूजागृह २५२
 'पूर्ण जीवन', स्वविरोधात्मक ५९
 पूर्णत्व, प्रकृति से ढका १०६, -प्राप्ति
 ६५
 पूर्व, वहाँ धर्म, व्यवसाय २३९, वहाँ
 धर्म की व्यावहारिकता २३९
 पूर्वावस्था, उसकी ओर प्रतिगमन और
 पतन ९३
 पृथ्वी, उसके धर्म और समाधान १२९-
 ३०
 पेट्रो ३२५

पेरिस १११
 पेरीपेटिक क्लव २३७
 पैगम्बर, उनकी दो श्रेणियाँ ८९,
 शक्ति के प्रतीक २२४
 'पैत्रिक धर्म' १४०
 पौराणिक, अभिव्यक्ति और भाव
 २१०, कथा १४७, कहानी १४२,
 तत्त्व १४१, १४५, १५५, भाग
 १४१, व्याख्या २०६, सावभौमिक
 १४६
 प्यार, उसके साथ भय नही २५३
 'प्यु' २३९
 प्यूरिटन और मुसलमान १३७
 प्रकाश २०६, अशुभ को नही जानता
 २०८, उसका अस्तित्व ९४, उसकी
 उपलब्धि ४६, और अधकार १७६,
 और कम्पन १७८, सबमे है १९६
 प्रकृति १०, ५७, ७७, ८८, १०५,
 २१२, २३१, २४९, २५९, २६४,
 २६६-६७, २७०, अनुभूत २१०,
 आसुरी ६०, उसका अन्तिम ध्येय
 ८३, उसका कथन १८०, उसका
 धर्म, क्रियाशीलता २१०, उसका
 भीषण प्रभाव १०३, उसकी चाहना
 १८०, उसकी विजय, कार्य का प्रति-
 मान १८२, उसके अस्तित्व का
 प्रयोजन ३२, उसके इशारों पर
 व्यक्ति १७९, उसमे साम्यावस्था
 १२०, उससे सबकी सहायता ६३,
 उसे विशेषत्व-प्रकाशन की स्वाधी-
 नता ३६७, और जीवात्मा २१७,
 और बुद्धि २१४, चञ्चल और परि-
 वर्तनशील ३७५, तम, रज, सत्त्व
 से निर्मित ११, प्रत्येक, उसका
 अपना मार्ग १८०, बाह्य ५९,
 लडाकू, उसमे रज या क्रियाशीलता
 ७९, सनातन, और ईश्वर २२०,
 समस्त, आत्मा के लिए ३२, सम्पूर्ण,
 उसका चीत्कार १७४, साधु ६०
 प्रगति और विगति ७०

प्रचारक उत्साही का वल ३०२
 प्रचार-कार्य १३१ -कार्य और प्राथ्य १२६
 'प्रतिष्ठा' १०५
 प्रतिदान ३५
 प्रतियोगिता कक का नियम २७२
 प्रतिरोध १३४ और धक्ति का प्रसन्न १३
 प्रतीक उनका विशेष कारण ४८ उसकी आकषण-शक्ति २२७ और अनुष्ठान २७५ और बाह्य अनुष्ठान २४३ और विधि २५१ कर्म काष्ठीय ४८ क्रॉस पर कटके महापुरय का ४८ कूस पीवन पर प्रसूत्व २२७ कूस सुपरिचित २२६ इतिव्यय माध नहीं ४८ बर्ष ४८ विधान उसका निर्माण कृत्रिम उपाय से नहीं ४८ धन्द ४८
 प्रतीकवाद २२६
 प्रतीकोपासना २४४
 प्रत्यक्षानुभूति १ ९
 प्रत्ययवाद ११९
 'प्रबुद्ध भारत' ३८६
 प्रभु ७५, १३४ २१६ २३३ ३ ३१९ ३३८, ३६८, ३९४ अन्त-र्यामी १६६ वर्षा ३७ चिन्मय १६५ प्रेममय २५२ सतत कर्मशील विधाता ८ सत्यवपी २७९ सर्वशक्तिमान ८
 प्रमत्त-काम १५
 प्रमात्त चरित्र का ३६९ पवित्रता का ३६९ सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ३६९
 प्रयोगशाळा १५३
 प्रकट ८६ ७
 प्रकृति ६ उसका अर्थ ६ और निष्कृति ६ और पद्धति १३९ -मार्ग ७२
 प्राचीन व्यवस्था १ ८
 प्राण्य उसकी अवगति का कारण ३२५ और पाषाण के आरम्भ ३१७

जाति उसका चरित्र ३७२ ज्ञान १५ इस और धर्म १२६ ३१७ ३६४ धर्म उसके गुण ३१८ लोग उनका नाम १२६ समाज ३१७
 प्राण उसका महत्त्व ११७ उसकी अभिव्यक्ति ११६ उसकी क्रिया ११७ उसके सर्वोच्च स्पन्दन का कार्य ११७ ब्रह्म-सन्धि ११७ द्वारा ईशाना-पिमला का कार्य ११७ मस्तिष्क द्वारा विचार-रूप में वर्धित ११७ विद्यत् धक्ति ११७
 प्राणायाम ९७ १२२, ११५ १७ उसका महत्त्व उद्देश्य ११६
 प्रार्थना प्रगति के प्रथम साधन २६२ -स्तुति १३७
 प्रीति परम साध्य ३६ (पा टि)
 प्रेतोपासना ३ ७
 प्रेम सर्वत्र २७६ असीम २५६ आकर्षक मानवीय २५६ इष्ट को देखता है २७६ ईश्वर की स्वामी पाठ २७ ईश्वर है २८१ उच्चतम २६९, २७६ उस पर आधारित पद्धति २७५ उसका अस्तित्व है २५१ उसका आरम्भ और प्रेमी २५४ उसका आरम्भ २८८ उसका उन्मत्त २५६ उसका कथन २८५ उसका पहला चिह्न २७९ उसका प्रकाश २५६ उसका प्रतिदान १५६ उसका प्रतीक निकोच २७९ उसका महत्त्व २८१ उसका कथन २५१ ५२ उसकी अनन्त महिमा २८५ उसकी अभिव्यक्ति समग्र नहीं २७७ उसकी असाध्य-साधिनी धक्ति ३२३ उसकी पहचान २८५ उसकी पाँच अवस्थाएँ २६२ उसकी प्रकृति २८२ उसकी महानता और मुक्ति २१३ उसकी विविध अभिव्यक्तियाँ २५६ उसकी

शक्ति द्वारा इन्द्रिय परिष्कृत २७०, उसके आरंभिक क्षण २८५, उसके त्रिकोण का कोण २८०, उसके द्वारा उपासना २६८, २७९, उसके लिए ईश्वर-पूजा में विश्वास २३९, उसके लिए प्रेम २६२, २६९-७०, उसके सब आदर्श २८६, उसमें इन्द्रियाँ तीव्र २७७, एकमात्र उपासना ३३१, एव श्रद्धा ३५९, और अनुभव २७०, और उपासना २६२, और गूंगा मनुष्य २९०, और ज्ञान २६६, २८१, और दूकानदारी २५२, और भक्ति २४३, और भौतिक भावना २६९, और शक्तिसमूह १५४, और सहानुभूति ३३१, कभी निष्फल नहीं ३२३, कभी मांगता नहीं २७९, केवल प्रेम के लिए २७६, गहनतम २८६, गुण और अवस्था के अनुसार २९१, चिरन्तन २१५, दिव्य मिलन में २६२, दैवी २७५, नि-स्वार्थ २१०, ३३०, निम्नतम २७७, पति और पत्नी का २६९, पारस्परिक २७७, प्रश्न नहीं करता २७९, प्रेम तथा प्रेमास्पद २५७, बड़ा सपना १०२, बन्धनरहित ३०१, बिना स्वाधीनता के नहीं ३३, भय नहीं जानता २७७, भिखारी नहीं २७९, भीख नहीं मांगता २७७, -मय पुरुष, उसकी क्रिया १०७, महान् है १७२, मातृवत २६९, मानव २७०, मानव, अन्योन्याश्रित २७०, मानव-संबंध में दुर्लभ २७०, मानवीय २५७, २७७, २८८, मित्र का २६९, यथार्थ ३३, वही परमेश्वर २५५, वही प्रेम का उपहार २५७, वही सर्वोपरि २९२, वास्तविक, उसका आरम्भ २६२, विश्वव्यापी १६८, उसका यथार्थ अर्थ ३३,

'शात' २६९, शान्तिमय २७५, शाश्वत १८४, शुद्ध, उसका उद्देश्य नहीं २६२, सच्चा १६८, २७३, २७७, सच्चा, उसकी प्रतिक्रिया ३४, सच्चा, उससे अनासक्ति ३४, सच्चा और सहानुभूति २३५, सदा इष्ट २७७, सदा देता है २५२, २७९, सदा ही सर्वोच्च आदर्श २५३, सर्वोच्च और अनुभव २६९, सर्वोत्तम अनुभूति २९०, सर्वोपरि २८९, २९१, सात, अनंत तत्त्व २३२-३३, -माधना ३४, स्वय अनादि, अनन्त बलिदान २८५, स्वय ईश्वर २८०

प्रेमी, और प्रेमी पात्र २६५, कल्पना से अतीत २५४

प्रेय-मार्ग १६२

प्रेरणा, उच्च प्रेम की १३, दिव्य २३६, -शक्ति ८८, सर्वोत्कृष्ट ५१, स्वतः स्फूर्त ३२७

प्रेसविटेरियन १२८, गिरजा ३४७
प्रोटेस्टेंट ईसाई और बाह्य अनुष्ठान २४३, और कैथोलिक चर्च २२७, और गिरजाघर २४४, पथवाले २४४

प्रोटेस्टेंटवाद २२७, २७८

प्लीमाथ ३४६

प्लेग २९९

फरात १२६

फर्स्ट यनिटेरियन चर्च २१२

फर्स्ट स्ट्रीट ३२४

फार्मर, कुमारी ३४१, ३६४, ३८२, ३८४, ३८७

फिलाडेलफिया ३१८, ३२१, ३२४

फिलिपाइनवासी १२८

फिलिप्स, कुमारी २९७, ३६५

फिजिकल २९८

'फैरिसी' १७०

फोनोग्राफ ३३६, ३३८

फ्रांसिस डेमेट, श्री ३९
 फ्रांसीसी १११ १२
 फ्रजरिक डमरुस ३२१

बंगाल १८६ ३३ ३५२, ३६२,
 ३६६, ३७४ ३८१

बंमाली २९८ महाबत ३ ३
 बनर्जी काशीचरण ३१५
 बन्धन ३२५ ७१ २, ८७ ८९, १ ५,
 १ ९ १७४ २५९ उससे मरुत
 होने का उपाय ७१ रुपी सौचा
 * सामाजिक ३१७
 बपतिस्मा उद्यका कर्म १९७ सन्ना
 १९८
 बम्बई २९९, ३२ ३२८, ३४५,
 ३६६

बरोज डॉ ३४२ ३६९
 बल और ब्या ३५
 बसुराम बाबू ३५१
 बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' ३४६
 बहुत्व में एकत्व ३६ (पा टि)
 बहुविधा १३२
 बाइबैलियाइन कक्षा २६६
 बाइबिल १२७ १३८, १७२ १९८
 २२४ २४४ २४६ २७३-७४

बामुखाम ३१३ १४ ३१९
 बाकक जन्मजात-बाधावाही २०५
 बूक ३५६ बूक जनकी परीक्षा
 और सफलता ३६
 बाकाजी ३ ४ डॉ ३७१
 बास्टिमोर ३१८ २१ ३२४
 बाह्य अनुष्ठान २४४ अनुष्ठान
 उसके अन्तराल में कल्पना २४६
 उपचार २४३ अवत् २५४ रूप
 और अनुष्ठान १९८ वस्तु, उसमें
 सहीपन २५४

बिष्णु १९६
 बुद्ध ६, ९ ३१ ७८ ९, १२२ १३८
 १७८, २४६, ३२४ आदर्श कर्म
 योगी ९ और ईसा ७ और

कर्मयोग की शिक्षा ८९ ज्ञानी ३१
 भगवान् ११२ मत १७६ महान्
 दार्शनिक ९ सर्वप्रथम सुधारक
 ९९ सामंजस्य-भाव के सर्वश्रेष्ठ
 उदाहरण ९

बुद्धि अन्तःस्फुरण नहीं १ ७ उसकी
 अन्तिम गति १ ८ उससे प्राप्त
 सुख और इन्द्रिय १७५ और विद्वता
 १ ७ तर्क के क्षेत्र में १ ६ मनुष्य
 में १५२ -शक्ति १५२ सुसंस्कृत
 और परिणाम १ ८

'बुद्धि से अतीत शान्ति' ७१
 बूझ भीमती ३१४ ३२१ ३४१
 ३६४ ३७८-८ ३८२, ३८६,
 ३८८-८९, ३९२ (देखिए भीति
 बूझ भीमती)

बृहदारण्यकोपनिषत् २५५ (पा टि)
 २६३ (पा० टि)

बेकन स्ट्रीट २९६ ९७ ३१४
 बेबिकोनियन २ ५
 बेक कुमारी ३७७
 बेल्जियम होटल २९५ ९६ ३१४
 बैकुंठनाथ साय्याक ३८१
 बैन्की भीमती २९५
 बैटल स्ट्रीट ३४
 बोस्टन १ ४ २९५ ९८ ३१४
 ३२५, ३६९ नमर १८४ 'बाह्यजों
 का सहर' ३ ४ विद्या-बनौ का
 प्रमाण स्थान ३ ४

'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' २९५
 बीड ७ १२६, १३८ पन्ना ३१९
 बापि ३३१ कर्म उसके नीति
 तत्व ३४६

बीडिक आगत्य उसकी व्याख्या १७५
 ज्ञान १९५ बुद्धिकोम २२६
 विकास २४५ व्यापार १ ९
 सहायता २८ ९

बहा ६१ १६२, १८८ २१९ १७
 २६२ -चित्ता ३ ६ -आन
 १७ निर्गुण २५८ -यव १६५

परम १७४, पूर्ण १६७, सगुण
 २५८-५९, सर्वव्यापी २१६
 ब्रह्मचर्य १६, ३०७
 ब्रह्मचारी ३३७
 ब्रह्मसूत्र ११० (पा० टि०)
 ब्रह्मा-विष्णु ३१३ (पा० टि०)
 ब्रह्माण्ड ७०, १६०, १७३, १९४-९५,
 २१६, २६६, २७८, २८२, २८५,
 उसका आधार २२०, उसका
 कारण २२०, उसका सर्जक
 २२०, उसके धारणकर्ता २६३,
 पिता का राज्य २६७
 ब्राह्मण २०९, ३०३, उपदेशक २३७,
 धर्म २३७, धर्मग्रन्थ २३७, निर्धन
 ३६
 ब्राह्म समाजी २९८
 बुकलिन ३६४-६५, ३७५, ३७७
 भक्त ६१, २८३, ३५६, उसके साथ
 भगवान् का योग १५१, -सन्ध्यासी,
 उसकी परिभाषा २८८
 भक्ति २२, २५९, ३०१, ३४०, ईश्वर
 के प्रति अनुराग २८७, उसका मार्ग
 २६२, २९१, उसका मुख्य कारण
 २८९, उसका स्वरूप अनिर्वचनीय
 २९०, उसकी प्राप्ति की आवश्यक
 वार्ते २९२, उसके इच्छुक की पह-
 चान २९०, एक उच्चतर वस्तु
 २५९, और उपासना २४३, और
 ज्ञान ६१, ३६५, कर्म से ऊँची
 २८८, गुरु में ३४९, द्वारा इच्छा
 का तिरोभाव २८७, द्वारा मनुष्य
 अमर और सतुष्ट २८७, द्वारा
 योग २६४, द्वारा हानि नहीं
 २९१, परा २५६, प्रगाढ २५७,
 प्रेम का अमृत २८७, मार्ग ८१,
 सबधी आवश्यक वार्ते २८९,
 -सम्प्रदाय १४९, साधन और
 साध्य, दोनों २८८, स्वयं अपना
 फल २८८

भक्तियोग ६७, १५५-५६, १६९,
 २४१, २६२, उसकी शिक्षा १५६
 भगवत्प्राप्ति ९४
 भगवत्प्रेम ४२
 भगवद्गीता १३, २९, ३९, ८९
 भगवद्भावना १७०
 भगवदवतार ३१३ (पा० टि०)
 भगवदाराधना १५४
 भगवान् ७५-६, ७९, ९४, १०८, १२८,
 १३२-३३, १३६-३८, १५१, १५८,
 १६९-७०, १७२, १७८, १८५,
 २५६-५७, २५९, २६२, ३२३,
 ३४८, ३५३, ३६५, ३६९-७०,
 ३७४, ३७६, ३८७, ३९४, आत्मा
 की आत्मा १५७, उनकी ओर ले
 जानेवाले मार्ग १७०, उसका
 विराट् स्वरूप २९९, जगत् के पिता
 १५७, नारायण २९९, पथप्रदर्शक
 १५७, पालक १५५, प्राणों के प्राण
 १५७, प्रेममय १४९, माता १५७,
 सृष्टिकर्ता १५७ (देखिए ईश्वर)
 भय, उन्नति में ईर्ष्या का ३८३, और
 लाभ २११, गुण से खल का ३८३,
 ज्ञान रहने से अज्ञान का ३८३,
 दुर्बलता का चिह्न २४, धन से
 दारिद्र्य का ३८३, रूप में बुढ़ापे
 का ३८३, शरीर से मृत्यु का ३८३
 भर्तृहरि ३८१
 भलाई, और बुराई सापेक्षिक शब्द
 २१८, दूसरे की ३०० (देखिए
 शुभ)
 भवनाथ ३६३
 भवसागर १४९
 'भागवत' ३७४
 भारत १६, २५, ४७, ७८, ९६, १००-
 २, १११, ११३-१७, १२६, १३२,
 १५०, २१०, २२२, २२७, २३४,
 २३७, २३९-४०, २७४-७५, २९५,
 २९७, ३००-१, ३०३, ३१४,
 ३१६-२०, ३२३-२९, ३४२-४५,

३४७ ३४९-५ ३६६ ३७०-७२,
 ३७४ ३८२ ३८७ ३८९ ३९२
 ९३ उसका उत्पान ३३७ उसका
 धर्म और मृतोपीय समाज ३३४
 उसका भविष्य सङ्घर्षपर
 ३३६ उसकी लोकलोकित १९
 उसके अन्वयन का कारण ३३७
 उसके सठने के सुमोच ३३७
 उसके महान् आदर्श ३३६ उसमें
 एक कदावत् ८५ उसमें दान-आज
 का कर्त्वीकरण ३७ उसमें धर्म के
 प्रति समझ ३ ३ उसमें पौराणिक
 अभिव्यक्ति का दबाव २१ उसमें
 सैदान की धारणा नहीं २ ७
 चिरकाल से दुःख का भोक्ता ३३७
 मध्य ३३४ वहाँ अंधविश्वास
 २३९ वहाँ अतिथि का महत्त्व ३६
 वहाँ के शरीर ३२ वहाँ के नी-
 पनाम की प्रकृति और अर्थ ३३४
 वहाँ धर्म की परिणति २७६ वहाँ
 में सबसे कमर २१ (बेसिए
 भारतवर्ष)

मायतवर्ष ३८ ४५, ६५, १२६ १४७
 २५६, ३१६ ३२२, ३३४ उसकी
 अवलति का प्रमान कारण ३३१
 धर्मप्रबन्ध या अन्तर्मुख ३१७
 वहाँ की सचवस्तु १४३

मायतवासी १११

भारतीय आदर्श २२२ किसान २३९
 शरीर ६८ मकर २२९ भाषा
 २७७ मग ९६ वस्तु ३७५
 संत २७५ समाचारपत्र ३४३
 साम्राज्य २७९ हिन्दू २९८

भाव अनाद्यन्त १५५ ईस्वीय ६१
 और कवि १३७ और वास्तविक
 कार्य २१५ हीन-हीन एक बीजापी
 १ ९ मानवीय १३६ मुक्त ७९
 सांसारिक ६२ धाम् ६१ धर्म
 धर्मिक ३६ धर्मबोधिक १४७
 स्वाधीन ७२

भावुक उसका आदर्श १४९
 भाषा अंग्रेजी तथा वैधीय ३७२ आर्ष
 संस्कृत १६ भासकारिक १२१
 पाकी ३१९ भारतीय २७७
 मनोवैज्ञानिक ३

भाष्य और दर्शन ३६६

भिन्नाटन २७९

भुक्ति-भुक्ति ३ १

भूमी ३५२

भूतोपासना १४७

'भैरवभावहीन प्रेम' २७६

भोक्ता उसकी परिमाणा १६३

भोग ३ ८ उसकी भावना के साथ
 स्वार्थ ७४ और ज्ञानमय जीवन
 १६२ और प्रकृति १७९ शय
 मंगुर, कुपिया के १६८ -विद्यास
 ३५३

भौतिक आकर्षण ३४ भावस्यकृता
 २८ इच्छा २३२ क्रिया ९७
 पद-वस्तु १६७ तत्त्व २३२ पर
 मानु ८६ प्रयति ९६ भावना
 और प्रेम २६९ विज्ञान ५६ ११५
 १५६ शास्त्र १२९ धात्री १५

सम्पत्ता ३३४

भौतिकवाद १७२

भौतिकवादी १७७

भाष-प्रेम ३२९

भोग वैतम्य शब्द के दो भिन्न अर्थ
 २ ४ -तंत्र २४३ तांत्रिक २ ४
 -शास्त्री २ ४

मजदूर, अंग्रेज ११३ धर्मन ११३

मजूमदार ३५८

मणि जम्मर ३६९ ३८५

मन-मन्वर्तक १२७

मकर वर्ष २९५, ३२०-२१ ३२५,
 ३४१ ३७७

मकर टेम्पल ३४१

महास २९५, २९७-९८ ३१ ३४२
 ३४५, ३४८-५ ३५२, ३५५

३५७, ३५९, ३६३, ३६६, ३७२,
-वाले ३११, ३१३, -वासी ३२२
मद्रासी, युवक ३८६, लोग २९८,
शिष्य ३३२

मधुकरि की प्रथा १८६

मन सयोग, उसका अर्थ १५१

मन, अचेतन का नियंत्रण १२१, उसका
लक्ष्य २३२, उसका सूक्ष्म रूप
२६७, उसकी अभिव्यक्ति ५,
उसकी क्रिया, बाह्य तथा आन्तर
९९, उसकी वहिर्मुखी गति ९,
उसके कई स्तर १३७, एक इन्द्रिय
३०, एक झील के समान १८०,
और अशुभ विचार ३१, और इन्द्रिय
१००, और घात-प्रतिघात ४, और
प्रवचना १९४, और प्राण से काम
३९२, और सस्कार ३१, १४९,
चेतन ही अचेतन का कारण १२१,
तथा तन का नियंत्रण और प्रकृति
१८२, वँधा हुआ ५६, बहुत चंचल
१८०, प्रत्येक, उसका अपना शरीर
२६७ प्रभाव तथा तनाव ५६,
विचारशील १६७, समष्टि-मन
का अंश १६७, सूक्ष्म स्तर से बना
२६७

मनन ६६-७

मनरो स्ट्रीट २७२

मनस्तत्त्व-विश्लेषण १५०

मनु १८६, ३७९, उनका मत ३८३

मनुदेव २०६, २१०

मनुष्य, अधिकांश नास्तिक २४९,
अशुभ से ऊँचे १९४, आत्मा की
शक्ति द्वारा विजयी १८२, आदर्श,
उद्देश्य की प्रतिमूर्तिस्वरूप १३५,
इन्द्रियलोलुप १७२, ईश्वर-प्रेम
का आकाक्षी २६९, ईश्वर-प्रेम
का इच्छुक २६९, उनका धर्म
सवधी भ्रम २४५, उसका अंतिम
लक्ष्य ३, उसका अपना आदर्श १५,
उसका अपना विश्वास और ईश्वर

१३, उसका आश्रयी स्वभाव और
दुःख १८१, उमका कर्तव्य १२,
१५-६, ३९, १४८, उसका कर्तव्य,
अन्याय का प्रतिकार १४, उसका
गुण और अवस्था ११२, उसका
चरित्र और दुःख-क्लेश २९, उसका
चरित्र, सस्कार की समष्टि ३०,
उसका दृष्टिकोण, नियमित ३९,
उसका दृष्टिक्षेत्र २००, उसका
ध्येय ८८, उसका प्रकृत स्वभाव
१६९, उसका प्रतिरोध और पाप
१३, उसका प्रतिरोध न करने का
कारण १३, उसका प्रेम, आरोपित
२७०, उसका मन और शरीर
२६७, उसका मूलमंत्र १३८,
उसका लक्ष्य २६७, उसका विकास,
स्वभावानुसार १६९, उसका
विश्वास और ईश्वर २७१, उसका
सच्चा स्वरूप ११८-१९, उसका
सत्य से सत्य में गमन १३०, उसका
सांसारिक भाव ७२, उसका
स्वभाव और शारीरिक सहायता
२९, उसका स्वरूप ७३,
उसकी अच्छाई का कारण १२०,
उसकी अमरता ११८, १६५,
उसकी आत्मा और शक्ति ६४,
उसकी आध्यात्मिक उन्नति का रूप
१४८, उसकी इच्छा-शक्ति का
प्रकाश ६, उसकी इन्द्रिय-भोग की
लालसा तथा ईश्वर २०१, उसकी
उन्नति का उपाय ४३, उसकी
उपासना २३२, उसकी गुलामी
और स्वतन्त्रता की इच्छा १०५,
उसकी जन्मजात-पवृत्ति २९,
उसकी दृष्टि और ससार २५४,
उसकी देह सवधी मान्यता ३१२ (पा०
टि०), उसकी प्रकृति ४९, २२६,
उसकी प्रकृति के अनुसार पवृत्ति
२६४, उसकी प्रज्ञा १०७, उसकी
प्रथम महान् साधना ९७, उसकी

प्रकृति के अनुसार विभाजन ८१
 उसकी भूख ३३ उसकी मुक्ति
 २१३ उसकी क्षति की उच्चतम
 अभिव्यक्ति १४ उसकी सत्य होने
 की प्रक्रिया १८४ उसकी स्वार्थ
 परता और एकात्मियता २३४ उसके
 अध्ययन का विषय ९३ उसके
 क्लेश का अंत २९ उसके चरित्र
 का नियमन और वस्तु ३५ उसके
 निर्गुण प्रह्वन करने का प्रयत्न २४३
 उसके लिए महान् की पूजा २७२
 उसके साथ मनुष्य-आदि का योग
 १५१ उसके स्वभाव का अंग
 धर्म २७२ उसमें ईश्वर-प्राप्ति की
 विधाता २४८ उसमें ईश्वरी प्रवेश
 २७१ उसमें एकत्व ही सृष्टि
 विधान १६ उसमें पुष्ट बुद्धि १४१
 उसमें ईश्वरी सम्प्राप्त २५७ उसमें
 दो प्रकार की बुद्धि १४ उसमें
 धर्म और परमेश्वर के प्रांत अज्ञा
 १ १ उसमें भेद का कारण ८७
 उसमें युक्तिसयत विवक्षा २३६
 उसमें विषय विद्यमान २७८ उसमें
 सबसे निष्कण्ठ धर्मान्य १४१ उसे
 तीन वस्तुओं की शक्यता २७१, एक
 मसीम वृत्त ११९ और अन्तःप्रेरणा
 ३८७ और अपनी प्रकृति तथा
 भावार्थ २६५ और अधुम १९४
 और आत्म-वैतना ११९ और
 आमास १८१ और ईश्वर संबंधी
 विचार २१२ और कर्म न करने
 का कारण १५५ और कर्मशीलता
 १५५ और चेतना २२५ और
 जीवन के विभिन्न भाग २५७
 और धर्म ३२३ और धर्म प्रेरणा
 की शक्ति १४ और परमेश्वर
 १ ४ और पशु २३१ ३२, २५९
 और मानव रूप में परमेश्वर-गुण
 २४८ और विचार का अविकल अनु
 वाद २३२ और विविध प्रेरणा ७

और शक्ति ७ मृगा और प्रेम २९०
 -आदि ९ १४५ -आदि उसका
 वर्तमान इतिहास १२७ -जीवन
 ७२, ७६ ज्ञानी १९ तथा अस्वा
 भाविक संघर्ष और भूजा १६
 तथा कर्मफल और वर्तमान कर्म ७
 तथा कर्मशीलता १४ तथा चिन्तन
 १२८ तथा प्रतीक और अनुष्ठान
 २७१ पुर्वक ३२३ पुर्वक और
 आत्मा ३ ९ दो का परिणाम
 २ ६ द्वार धर्म का स्वीकार्य ३१३
 नाकी प्रधान २ ६ निम्नतम १५३
 पवित्रतम ८९ प्रकृति का गुणधर्म
 १ ५ प्रत्येक उसके भावार्थ की
 निश्चिता १५ भविष्य का २१५
 भोजी व्याघ्र और असम्य अंगली
 १२९ भौतिकपराम्यन २८३
 मनुष्य में भेद १३ मुक्तिवादी
 १३७ विज्ञानवेत्ता ३५४ -विष्णु
 विरोधाभासी २७ संबंधी शिवा
 न्त २१४ सबसे मुझी की १ २
 सुख-सुख की समष्टि मान ५
 स्वयं से पीड़ित १ १
 'मनुष्य-विष्णु' २७
 मनुष्यत्व उसका अमूर्त भाग १४४
 उसकी विद्यमानता १ ४
 मनुसंहिता २ (पा टि)
 मनोविज्ञान ९८ ११४ १५ २८
 यूरोपीय ९९ व्यावहारिक १२
 सच्चा १२१
 'यमी' १४६ (पा टि)
 मरमन (mormon) १३२
 महा मा उनकी संपत्ति कठिन २८९
 वैदिकमान्य ज्योति १९६
 महारथ ३ ९
 महान् आहुति ७६ उसकी परिभाषा ५
 'महामता' ११२
 महाविवाह तथा १६
 महापुरुष उनकी शिवा तथा विष्णु
 ३५१; उन्हें विचार-शक्ति ज्ञान

७९, और भगवान् १४९, द्वारा उदात्त भाव का सग्रह ७९, शान्त, अमूखर और अज्ञात ७९, शुद्ध सात्त्विक ७८, सर्वश्रेष्ठ ७८

महाभारत ४४

महामाया ३५६

महावैराग्य ३०६

महाशक्ति ३५६

महिम चक्रवर्ती ३६१

माँ ३८१, उसकी छाया २०९, उसकी लीला २०८, २१०, उसके गुण २०८, उसके प्रति समर्पण और शान्ति २११, उसके लीला-सखा २०८, गोलाप ३०१, ३०९, ३११, गौरी ३०१, ३०९-१०, ३६१, दुखो मे दुख २०९, योगेन ३०१, ३६१, विश्व की निष्पक्ष शक्ति २१०, सारा २९७, सुखो का सुख २०९

माता, उसका कर्तव्य ४२

माता जी ३१० (देखिए सारदा देवी)

मातृदेवी, उसकी भावना से प्रेम-प्रारम्भ २६२

मातृ-पूजा उच्चतम वर्ग में प्रचलित २१०, उसका उद्देश्य २०६, एक विशिष्ट दर्शन २१०, -विचार का जन्म २१०

मादक-द्रव्य-निषेध २३५

मानव-जाति, उसका चरम लक्ष्य ३, -प्रकृति २१४, -प्रेम में पाँच अवस्था २६९, -प्रेम, सदा अन्योन्याश्रित २७०, मन के स्तर और प्रकार १३३, वास्तविक ५, श्रेणीबद्ध संगठन ११, -समाज, -स्वभाव, उसकी कमजोरी ४१ (देखिए मनुष्य)

'मानव-निर्मायिक धर्म' २२८

मानवात्मा ८१, अनन्त १७३

माया ११८, २१५-१६, २५८,

२९०, ३७५

मार्ग, कर्म ८१, ज्ञान ८१, निवृत्ति, ७२, प्रवृत्ति ७२, भक्ति ८१, योग ८१

मार्सेल्स १११

मिथ्याचार १५

मिनियापोलिस २३७, जर्नल २३७

'मिरर' ३७३

मिशनरी, ईसाई ३४३, पत्रिका ३४२,

पाखडी ३०७, लोग ३४९

मिस्र देश १२८, १४६ (पा० टि०), -वासी ८४

मिस्री, प्राचीन २०५

मीराबाई २७३ (पा० टि०), द्वारा ईश्वर-प्रेम का प्रचार २७३, रानी २७५

मुडकोपनिषद् १५८ (पा० टि०)

मुकर्जी, प्यारीमोहन ३३१

मुक्त २६१, होने में सहायक प्रक्रिया ७५

मुक्तावस्था ६९-७०

मुक्ति ७३, ८१, ८७, ९३, ९६, १११, १७२, २३०, २५६, २६७, २८८, ३००, ३३५, ३३७-३८, उसका अर्थ ३१, उसकी इच्छा २६९, उसकी खोज और दृष्टि-भेद ८२, उसके मार्ग पर मनुष्य १८८, उसके लिए सघर्ष ८१, उसको प्राप्त करने का उपाय ७१, और जगत् का कल्याण १८५, और सिद्धि ३४०, कर्म और प्रेम में २१३, कर्मयोग का लक्ष्य ८०, -कामना ३३७, तथा भक्ति ३००, नैतिकता तथा निस्वार्थता की नींव ८२, पूर्ण १७४, पूर्ण निस्वार्थता द्वारा प्राप्त ८३, प्रकृति से १८२, लक्ष्य २२२, -लाम २२, ७०, -लाम, उसकी इच्छा ३१, ८३, -लाम, उसके लिए सघर्ष ८१, -लाम, उसे करने का धर्म ८३, -लाम, भक्ति में समव ३००

मुखोपाध्याय यज्ञेश्वर ३१९
 'मुमुक्षु' १०५ उसका अर्थ १०
 'मुनि मत-बु-बाप' २६
 मुद्राविमर, सिंगारविमू ६ ४ ३४
 (रेलिया किडी)
 मुसलमान ३८ १२५ २६ १३४
 १३८ २२५ २२८ २४४
 ३३ ३३४ ३७ उसका
 जोड़नापन १४३ उनकी
 सम्पा-बुद्धि १२५ उसका प्रकार
 १२६ उसका सार-तत्व १३६
 और प्रोटेस्टेंट ईसाई २४३ और
 बौद्ध १२७ और विश्वबन्धुत्व
 १४३ अर्थ १३४ ३६ अर्थहीन
 २४४
 मुसलमानी अत्याचार ३६७
 मुस्लिम अर्थ २३७
 मुहम्मद २७२ २७४
 मूर्ति और प्रतिमा २२६
 मूर्ति-पूजा २४५ उसका रहस्य १८८
 उसके मार्ग २२५
 मूर्तिपूजक २४५
 मूसर, कुमारी ३२३
 मूसा ४७ १ ८
 मूयजस १ २
 मृत्यु उसकी निघाती २२९ और
 जीवन १६८ अर्थ ३३२ अर्थ
 ही ३७९ सकोच ३३२, ३३५
 तर्कन ही १७७ स्वार्थपरता ही
 ३३३
 मृत्युमूय जीवन ७८
 म फ्रायर २३५
 मेडिसन स्त्रोवर कम्पर्ट हॉक २४३
 मयर लॉर्ड २७१
 मेरठ ३१९
 मेरी हेल् २९५ ९६ ३ ६ कुमारी
 ३२१ ३२४ ३४ ४१ ३०८
 मेनराज ३१४
 मे ६ ७४ १९५ बहुराती १५८
 'और मेरा' ७४-५, ८२ 'मैरी सु

२ ६ -मन ७९ 'मन हूँ' ११७
 सरीर हूँ ११७ साक्षी हूँ ९७
 मैक्सवॉड कुमारी ३९
 मैसूर ३४८ नरेश ३८६
 मोक-काम ३७
 मौलोक देवता २ ५
 म्सेन्ड ३२४
 यंग कुमारी ३२२
 मजबूत संहिता ३६८ (पा टि)
 यज्ञ उसका महत्त्व १६ उसकी अर्थ
 ३५७ प्रत्येक की बसिना १६
 भूमि ३६
 यज्ञेश्वर मुखोपाध्याय ३१९
 यम १६ १६४ ३ ७ ३५४ ३७४
 यमपुरी ३५९
 यद्य और कीर्ति १७
 यहूदी ६७ १४२, २ ५, २७७
 इतिहास २२४ उनकी सत्या
 १२५ वाति १९९ अर्थ १२५
 राजवि २५६ विचार-संपत्ति का
 निर्माण २२४
 'याकी' २९६, ३८५
 युक्ताहार, उसका अर्थ १८३
 युक्तिवाद १५६
 यूनानी ८६ और रोमन ८४
 यूनिटेरियन २६४ अर्थ २३७ २७३
 यूरोप ४ १११ १२६ १४७,
 २ ५, ३ २, ३४६ ३४५, ३५२
 ५३ -यागा ३१०
 यूरोपियन प्लान ३१४
 यूरोपीय मनाविज्ञान ६९ समाज
 तथा भारत का अर्थ ३३४
 'योके' (yoke) उसका अर्थ १६९
 योग ४३ ४५, १५१ २८ उसका
 अर्थ ३१ उसका साधन १५१
 उनकी अर्थ अर्थ १२२
 उसकी प्रीतिक क्रिया ७ उसकी
 सनाप्ति और आत्मा २३२
 उसकी विधि का अर्थ और अर्थान

१२२, उसके आभ्यन्तरीण मूल-
भाव १५३, उसके विभिन्न प्रकार
१६९-७०, उसके सहायक १२२,
एकत्वानुभूतिरूप १५१, कर्म ६७,
१५४, १६९, कर्म के माध्यम
से १५१, निष्काम ६७, ज्ञान
६७, भक्ति ६७, १५५-५६,
१६९, भगवान् के भीतर से १५१,
मनुष्य को पूर्ण बनाने में समर्थ
६७, मार्ग ८२, रहस्यवाद द्वारा
१५१, राज १५१, १५३, १६९,
२६४, २८८, विभिन्न, उनमें
विरोधी नहीं ६६, शब्द, उसकी
उत्पत्ति १६९, शब्द, उससे तात्पर्य
१५१, -साधन १५१, -साधना
१२२, -साधना और अनासक्ति ७५
योगक्षेम ३४८
योगाभ्यास ४३-४
योगी ७८, ११७, १५०, २८०,
२८३, उनका मत ११६, उसका
कथन १८२, उसका लक्ष्य १८२,
उसकी पहचान १२१, उसके लिए
जीवात्मा, परमात्मा का योग
१५१, और चित्त की एकाग्रता
१२१, और सत्य की उपलब्धि
१२१, कर्म १५१, ज्ञान १५१,
भक्ति १५१, महान् २८३, राज
१५१, सर्वोच्च १५३
योगवाशिष्ठ रामायण ३८२
योगेन ३१३-१४, ३१९, ३५४, माँ
३०१, ३६१
'योग्यतम की अतिजीविता' १२६
योजना, सगठित और प्रचार-कार्य ३५२
रक्तमेघ १२९
रघुवर ३६२
रज, उसकी कर्मशीलता ११
रमावाई ३८६
रसायनविद् १५३
रहस्यवाद १५१, २८१

रहस्यवादी २६४
राहुट, प्रोफेसर २९७, ३२४
राखाल २९८, ३५७, ३९१
राग-द्वेष १३९
राजपूताना १८८, ३२०, ३४५,
३५७, ३६२-६३
राजयोग १६९, २८८, उसका आलोच्य
विषय १५४, और ईश्वरीय अनुभूति
१७०, और शारीरिक व्यायाम
३६४, मनस्तरव का विषय १५३
राजसकर्मी ७९
राम ३७१
राम बाबू ३६२
रामकृष्ण (एक व्यक्ति) ३६३
रामकृष्ण २६१, २९८, ३१०, ३११-
१२ (पा० टि०), ३२०, ३३०,
३३७-४०, ३५६-५७, ३६१,
३६३, ३७३, ३८५, ३९१, उनका
जीवन, ज्योतिर्मय दीपक ३३९,
उनका श्रेष्ठत्व ३१३ (पा० टि०),
उनकी लीला-सहृदयिणी ३१०
(पा० टि०), उनकी सन्तान
३४४, उनके शिष्य की विशेष-
ता ३४४, गुरुदेव १९४, जीव-
न्मुक्त और आचार्य २६१, ज्ञान
के उदाहरणस्वरूप ३३९, -तनय
३५८, परमहंस २५२, परम-
हंस देव २९८, परमहंस देव,
उनका आविर्भाव ३०१, -महोत्सव
३५१, यतिराज १८५, स्वयं
अपनी पुस्तक २२८
रामकृष्णानन्द ३१९, स्वामी ३५१,
३५८, ३९१ (देखिए शशि)
रामदयाल बाबू ३०९-१०, ३७३-७४
रामदादा ३६१
रामनाड ३४८
रामलाल ३६३
रामानुज ३३५
रामेश्वर ३००
राव, डॉ० नजुन्दा ३३६

राष्ट्र ३३६ उसका अपना जीवन-
 बंध १३५ उसका निर्माण उपाधि
 प्राप्त व्यक्ति से नहीं ३३
 उसका निर्माण धनवान से नहीं
 ३३ उसकी रक्षा ३७ उसके
 जीवन में मुख्य प्रवाह ३३८
 राष्ट्रीय आध्यात्मिक जीवन ३३९
 जीवन ३३२ धर्म १४१ भाग
 १३६
 रिपब्लिकन २३६
 रीति-नीति ३१७ -रिवाज २९ ४
 ३३१
 स २११
 सहास ३७३
 रूप २२५ २६ और अनुष्ठान
 २६६ और सम्प्रभाव २६९
 और सिद्धान्त २६९
 रोमन ८४ ८६, १४८ २८४ ३८६
 कैथोलिक २६४ कैथोलिक धर्म
 २८२
 रुका ३१९
 सक्षमी ३ ८
 रुस्य उसकी प्राप्ति के साधन १६९
 सखनठ २९८ ३५७
 सन्तान ११४ १८ ३१९ ३२३
 लॉक बहन ३८८
 सादू ३५२
 सामा २९६ ९७
 साक्षा मोक्षिय सहाम ३५
 सॉस एथिक्स १११
 सिम प्रतीक १८२ और सिक्रेमेण्ट
 १४३
 सिमिडी ३१६, ३२ न्यूमिया धर्म
 ३२
 सनक सर पॉन १४३
 सैनेट भी ३९३
 सैन्ट्रलवर्स २९७ ३६४ ३८१ ३८५
 ८६ स्थान २९५ भी ३८३
 (शेखिए इयात्म)

संक्रियण २७२
 'सोकमत' ३७८
 बरुन और इन्ड २ ६
 बर्न-विमाम ३६७
 बस्तु, उसका साम्य है १८६ अस्तिर
 १ ६ उच्चतम ३७ उसका
 उपार्जन ६ उसका प्रत्यक्ष ९९
 उसका सार-सत्ता २८८ उसके मर्म
 तक पहुँचना कठिन २१२ उसमें
 विस्तार की प्रकृति ८१ ऐहिक
 ९७ और जीवन २१९ और
 दृष्टि २६४ और कर्म १७४
 बुद्धमान २५८ बुद्धिकोण से
 देखी जानेवाली ७८ पाबिब
 २ १ २३०-३१ प्रत्यक्ष उसके
 लिए तीन बर्षों ९९ प्रत्येक
 उसका निरन्तर स्थित्यन्तर १ ६
 प्रत्येक एक बर्ष १७३ बाह्य
 १६४ २५४ भौतिक जड़
 १६७ विजातीय १ १ विद्यमान
 एक ११७ सहीम १३४ साक्षा
 रिक ३४ १७५
 न्यूमियाधर्म किमिडी ३२
 नादेवी ३७४
 नाद अद्वैत ३ ७ नावर्ष २२५
 ईश १६७ मौरिक १७२
 नाममायी ३ ८
 नाधिगटन ३१८ ३२०-२२, ३२४
 ३८८
 नासना उससे नासना में बुद्धि २
 और क्रोध २८९ और सरीर
 २ तथा ईर्ष्या ३८३ भोग
 से वृष्ट नहीं २ बस्तु २
 विचार ११७ अधुम ३१ उसका
 प्रथम कथन १२९ उसकी शक्ति
 व्यक्ति के माध्यम से २७१
 एकाग्रता २३२ और कल्पना ६९
 और श्रेय २७८ और मन की
 एकाग्रता २३२ और मनुष्य १४६

और वायुमण्डल ५७, और वैचित्र्य १२८, और सस्कार ३०, -चेतन १२१, तथा शब्द ४९, २६७, -तरंग ५६, ३५५, पश्चिम तथा पूर्व की तुलना २३८, पार्थिव १९५, -प्रणाली ३६८, मूर्त तथा प्रतीक २४३, व्यापारी, हिसाब-किताब करनेवाले १८८, -शक्ति ६७, १६७, युग ३१, सहानुभूति का ५९

विजय वावू ३११

विज्ञानवाद ११९

विज्ञानवादी, पुरातन १७८

विज्ञानशास्त्र १६९

'विदेशी शैतान' ४०

विदेह, उसका अर्थ ६५, राजा ६५

विद्वत्ता, उसका मूल्य नहीं २२९,

और तर्क १९७, और पुस्तक ३७०, और बुद्धि १०७, प्रगति की शर्त नहीं १९७

विधवा-विवाह २३४

विधि, उपासना २९९, और प्रतीक २५१, -विधान ७०

विराट् और स्वराट् २९९

विरोचन ३०८

विलासमयता, उसकी जरूरत ३३४

विवाह, और व्यभिचार-त्याग १७६, -प्रथा ७७

विविधता, उसका अर्थ ३६७, जीवन का चिह्न २२९

विवेकचूडामणि १२ (पा० टि०)

विवेकानन्द, स्वामी ४५ (पा० टि०), १७०, १८७, २०५, २१२, २३७-३८, २७२-७३, २९५-९८, ३०१-४, ३१४-१६, ३१८, ३२०-२२, ३२४-२५, ३२८, ३३१-३२, ३३६, ३३८-४३, ३४६, ३५०-५१, ३५६, ३५८, ३६५, ३७१, ३८१-८२, ३८४-८६, ३८८-९०, ३९४, अद्भुत व्यक्तित्व ३२७, अपनी अन्तरात्मा के प्रति

ईमानदार ३७९, आत्म-तत्त्व के चिन्तक ३१५, उनका मुक्ति ही एकमात्र धर्म ३८०, उनका व्यक्तित्व और दर्शन ३८०, उनकी कार्य-प्रणाली ३६७, उनकी प्रकृति ३२२, उनकी समस्त कार्य-योजना ३६८, तूफानी हिन्दू ३५९, त्यागी सन्यासी ३२२, देवी अधिकार-सम्पन्न वक्ता ३२७, धर्म-महासभा में महानतम व्यक्ति ३२७, ब्राह्मण उपदेशक २३७, राजनीतिज्ञ नहीं ३५१, सत्य की शिक्षा देने के सकल्पी ३६९, हिन्दू उपदेशक २१२, हिन्दू सन्यासी ३२७

विशेषाधिकार ३६७

विश्व, उसकी आत्मा सत्य है १६४,

उसकी द्रष्टव्य क्रिया ११६, उसके अपरिहार्य व्यापार ७३, उसमें आत्मा एक १६७, उसे गतिमान करने-वाली शक्ति २५५, एक परिवर्तन-शील पिण्ड १०६, एक प्रतीक २४४, जगत् १५२, प्रेम की अभिव्यक्ति मात्र २५५, ब्रह्माण्ड २५६, ब्रह्माण्ड, जड द्रव्य का सागर ११७, मानो परमेश्वर का स्थूल प्रतीक मुक्ति के लिए २४६, लहर और गर्त के सदृश ११३, शुभ और अशुभ का सघात २११, सघर्ष का परिणाम ८१, समस्त, उसमें एकता तथा अखण्ड सत्य १६८, सम्पूर्ण, एक शरीर १६७

विश्ववधुत्व और साम्य १४४

विश्वात्मा २१७, अनन्त है १६७, उसका अंश १६७

विश्वास-भक्ति ३६३

विपमता, सृष्टि की नींव ८६

विषय-भोग १०५, १३६, २९१

विषयीकरण २५९, उसका प्रयास २५९

विषुवतरेखीय उष्ण देश ३९४

विष्णु २४८ भक्त २४२
 बीट उपाका अर्थ २०९ उपाका उसकी
 पहचान ३२४
 पीरबंद माँपी ३२६ ३२८
 बुद्ध और प्रस्ताव-युवा २२५-युवा
 २२५
 बोट्ट हॉल २१२
 बेट २३ ३८ ४७ १३८ १६२, १६६
 २ ४ २ ६ ३ ३३९ ३६६
 उपाका कथन ३८० उसका मूलभूत
 सिद्धान्त १६६ और वेदान्त ३९
 प्राचीन २१ रूप समुह ३१३
 (पा टि)
 वेदान्त १६ १८७ २११ ३२४
 ३४९-५ ३७२ उपाका मत
 ३५९ वर्तमान ४४ १६६, मर्म
 उसका उद्देश्य तथ्य ८१ नैतिकता
 से उत्पन्न १८८ सूत्र उसके प्रणेता
 ६५
 वेदान्त ऐंड वि वेस्ट' २१४ (पा
 टि)
 वेदान्ती १ ३ ७ अर्द्ध २५९
 उनकी भार धर्म १९१
 वेपथ्यासा १७५
 वैज्ञानिक आधिपत्य २७ प्रणाली ७
 धैरिक शक्ति २ ६
 वैर भाव ३५
 वैराग्य ७४ २५९ २०९
 वैराग्यसूत्रम् ३८१ (पा टि)
 ३८३ (पा टि)
 वैषम्य १४५, १४८ जीवन का विह्वल
 १२८ भाव ८६
 वैश्वस्य मत ३ ७
 व्यक्ति 'उत्पन्न ३ ३ उपाकी भार
 धर्मियाँ १६९ उपाका सम्प्राप्त
 २३२ उपाके आदर्श की कल्पना
 और पूजा २५४ उपाके जीवन
 में वर्तमान १६ उपाके माध्यम से
 विचार की शक्ति २७१ उपाके
 तीन शक्तियाँ ११ उपाके रूप

की बाह १९१ एकान्तवासी
 १ और राष्ट्र ३३०) और
 सत्य-अनुभूति की बाह १९१ कर्म
 से परे ७२ अंगसी ११३ जीवन
 अर्पित करने को उद्यत ६१ ज्ञान
 के आसोक से सम्पन्न १७८ वर्तमान
 गृही २१ मर्मसिद्ध ८८ आत्मिक
 उसकी विजय अवयव ३५१ निष्ठा
 ज्ञान १४३ भावना-धील २७१
 योगप्रिय १५ योगमार्गी १४९
 विचारशील तथा मठमेव १२९
 साहित्यिक ७९ सामंजस्यपूर्वक
 २६४ स्वतंत्र ७६ (वैदिए अनुभूत्य)
 व्यक्तित्व उपाका महत्त्व २२९ और
 जीवन २२९ और मागधीय
 जीवन २२९ प्राप्त करने का प्रयास
 २२९ समस्त सफलता का रहस्य
 २६१
 व्यक्तित्वबाध ८९
 व्यक्तित्ववादी ८९
 स्पष्टि-धरीर १५७
 व्यास ४४ 'नीता' ४४
 'व्याप्ति' ६८
 व्यापाम और संगीत २३४
 व्यावहारिक धर्म का तीया अर्थ
 १७१ प्रयोजन १४९
 व्यास ६५, १८७ वैश ६५ अक्षात्
 सूत्र के प्रणेता ६५
 सूत्र बंधु ३२१
 संकर ९ १ ३३२ ३८१
 संकराचार्य १२९ ३३५
 शक्ति अनुभूत और ज्ञाना २१
 अमरिहल ३१२ अनुभूत ३१
 अगाध्य-गाथिनी ३२३ अहितकारी
 ३६१ आध्यात्मिक १३१
 दृष्टा ७५ उपाका कथन २११
 उपाका विचार आवरणक ३ १
 उपाका विचार २ ६ उपाका
 विचार में प्रवचन स्थान २१

उसकी परिभाषा ११८, उसकी बड़ी अभिव्यक्ति ८, उसके सघर्ष होने से गति १२८, उसके साथ बल का विचार २११, और धर्म के बाह्य रूप २२४, कल्याणकारी ३६१, केन्द्रगामी १३९, केन्द्राभि-मुखी ७३, केन्द्रापसारी ७३, १३९, खल की २०७, जीवत १९८, दैवी २६१, द्वारा गति-शील जड ११८, निर्माणशील, उसका उद्भव किस प्रकार ८६, प्रबल आत्मा की ३१२ (पा० टि०), प्राकृतिक १३१, प्रेरक १९, मन ७५, मानसिक १९४, विश्वव्यापी २१०, शुभ ३१०, सत की २०७, सब घटना के पीछे २०६, सर्वत्र व्यक्त २०८, सर्वत्र है २०६, स्त्री है २०८ 'शक्तिमान' २७५

शब्द, उसको प्रकट करने के प्रतीक ४८, और आनुषंगिक भाव ४८, और भाव स्वभावतः अविच्छेद्य ४८, और विचार अन्योन्याश्रित २४६, द्वारा भक्ति २६७, पवित्र और रहस्यमय २६७, -प्रतीक ४८, प्रत्येक विचार का अंश २६७, मनुष्य के उच्चतम भाव का शरीर २६७, शक्ति, उसका परिचय ४९, शक्ति, उसका महत्त्व ४९ 'शम', उसकी परिभाषा १००, और 'दम' ९९-१००

शरत् ३११, ३५४ (देखिए सारदानन्द) शरीर १८, ७६, ८४, ९५, ११३, ११८, १२३, १६३, १६६, १७६-७८, १९२, १९४, २६७, २६९, २८४, अध्ययन का विषय ९३, आत्मा का केन्द्र २२१, उसका निर्माण ९४, उसके प्रति दृष्टिकोण २८३, उससे आसक्ति, दुःख का कारण १२३, उससे ऊँची वस्तु

का अनुभव २३२, उसे आत्मा समझने का भ्रम १९५, और मन ७१, २१७, और मस्तिष्क २१८, और वासना २००, जड २५१, जीर्ण २२१, नवीन २२१, बाह्य ७५, मन का स्थूल रूप २६७, -विज्ञान ३२, शत्रु और मित्र ९७, स्थूल स्तर से बना २६७, स्वयं से छोटा जगत् १६७, स्वयं सबसे बड़ा रोग २२२ (देखिए देह)

शशि ३०५, ३१०-११, ३५१, ३५७-५८, ३९१ (देखिए रामकृष्णानन्द म्चामी)

शाडिल्यसूत्र ३८२

'शात' प्रेम २६९

शांति, शाश्वत, उसका पथ १६२

शा, अक्षय कुमार ३२३

शास्त्र ग्रन्थ, आधुनिक २६७, -पाठ ३४९, मतवाद मात्र ३३९

शिकागो २३४, २३७, २७२, २९५, ३०२, ३२०-२१, ३२५, ३२८, ३४१, ३४३, ३५०, ३५३, ३५८, ३६३-६५, ३६८, ३८७, महामेला ४०, ट्रिब्यून ३१८, हेरल्ड २७२

शिक्षक २९६, पुरोहित और पैगम्बर २२४

शिक्षा, उसका जनता में प्रचार और नाश ११३, और परिवेश १३०, नैतिक, उसका लक्ष्य ८२, -प्रसार ११३, बौद्धिक, उच्चतम १०६, सच्ची, उसका प्रथम लक्षण १५३

शिल्पकला और ईश्वरोपासना १३७

शिव २४८, ३९४, त्रिदानन्दस्वरूप ३०९

शिवोऽहम् ३०९-१०

शिशु, नाडी प्रधान मनुष्य २०६

शिशुशाला १७२, २४८, ३८८

शिष्य, उसका गुरु में विश्वास आवश्यक १९५, उसकी गुरु के प्रति पूजा १९९, उसकी पूर्णता और मुक्ति-

प्राप्ति २०३ उसकी सहज-शक्ति
 १९३ उसके नियंत्रण में इन्द्रिय
 १३३ उसके लिए आवश्यक घण्टे
 १९२-९३ २० २०३ और
 विषयता का अधिकारी १९३;
 वही मूल का उत्तराधिकारी २९६
 'शिष्यत्व' १९
 शुकदेव ६५
 सुखाचारवादी २३५
 सुम ३ ५ ८, २ ५ २ ७ २११
 उसके करने की प्रेरणा इस्वर २३९
 और मनुष्य १७४ १९४ २०७
 २१ २१९ और मनुष्य आत्मा
 के लिए बंधनत्वस्व २९ और
 मनुष्य उनके बन्धन परिणाम २९
 और मनुष्य उसकी आरथा
 २ ६ और मनुष्य उसकी परस्पर
 मनुष्यता २१८ और मनुष्य
 नशिया के समान १७४ और
 मनुष्य-शक्ति ५७ और मनुष्य
 शक्ति की समष्टि ८५ और मनुष्य
 में निहित उद्देश्य १७५ कर्म
 १६, १२ कर्म उसका फल
 २९ कामना १३ कार्य ५८
 २९२ कार्य करने का माध्यम
 २७१ फल ५७-८, १३७
 वस्तु, उसकी समष्टि ८४ वस्तु,
 उसके प्रति लाजसा भ्रम १९४
 संस्कार ३१
 सुखासुम १९९
 संतान ४४ ९६, ९८ १८२, २ ५,
 २१२ २१९ अहंकारस्त्री १८९
 और बुद्धिमान १ ७
 'सौन्दर्य' १४९
 स्वाम ३७१
 मन्त्र उसकी परिभाषा १ १ और
 शक्ति ९१ शक्ति १५१
 १५८ १४९
 मन्त्र ९६ उसका अर्थ १८७ एवं
 मन्त्र ९७

'श्री रामकृष्ण की जीवनी' ३१७
 शेष उसका मार्ग १६२
 श्वेताश्वतरौपनियम् २२ (पा टि)
 २२२ (पा टि०)
 संयुक्त उसकी आवश्यकता ३८७
 उसमें अवयुज ३८७
 संयुक्त-मन्त्रवादी ३९२
 संघ उसकी आवश्यकता ३७२
 संघर्ष आध्यात्मिक १२४ उसकी
 उत्पत्ति २६ उसके लिए निश्चय
 ९७ एक बड़ा पाठ ९६ जीवन में
 कामवापक ९६
 संत उसकी शक्ति २ ७ और पापी
 २ ७ २११ और शहीद २२७
 वेरेडा २७५ विषयक २२६
 संन्यास १६, २४ १८४ ३५५, ३६१
 उसका अर्थ २८७ -ग्रहण करने से
 पूर्व २९६ -जीवन २७ ३२६
 -कर्म ३५५
 संन्यासी २४ २६-७ ४३, ४५,
 १३३ १८८, ३ १ ३७९, ३८१
 आदर्श ३७ उनका ब्रत ३ १
 उनके लिए मित्रता और प्रेम-बन्धन
 ३७९ उसका कर्तव्य १८५
 उसका जीवन १८४ उसका घनी
 से भास्ता नहीं १८५ उसका
 मत सम्प्रदाय नहीं १८४ उसका
 कर्म १८५ उसकी परिभाषा
 २८८ उसके लिए भिक्षा-भूति
 १८६ ३५९ और गृहस्थ १८७
 ३६१ और संन्यासिनी २८२
 पनार्थ ३६१ वेदसौर्ष ३८ शब्द
 का अर्थ १८४ उज्ज्वे १८५
 सम्प्रदाय १८५
 संयुक्त राज्य ३२९
 संघाट, अश्वेतन १६५ अति मयाजक
 दुस्वप्न ३८ अनन्त बतौर
 का इच्छितान १०६ अपने कर्म
 द्वारा पाने का अधिकारी

६४, उसका इतिहास २१३, २७१, ३५१, उमका उपकार, स्वयं व्यक्तित्व का ४९, उमका ज्ञान-लाभ, मन से ४, उसका दृष्टान्त ५३, उसका ध्वंस और चरम साम्य १४६, उसका नियम ३३२, उसका मुख्य धर्म १२५, उसकी गति २१८, उसकी प्रकृति ८५, उमकी वस्तु प्रतीकरूप में ४७, उसके कार्य का सर्वोत्तम उपयोग ७३, उसके दुःख को बढ़ाते जाना १८२, उसके द्वारा उपामना का आरम्भ और परिणति २१५, उसके प्रति उपकार का अर्थ ८४, उसके लिए अग्नि का उदाहरण ६६, उसके लिए अभिशापस्वरूप २३६, उसके प्रति ऋणी ५४, उसमें आश्चर्य की बात १०३, उसमें एकागी शिक्षक २१५, उसमें कठिन बात १७, उसमें दुःख का मूल ३, उसमें पूर्ण सतुलन सम्भव नहीं ८७, उसमें बुराई क्यों २३०, उसमें भलाई-बुराई, सब जगह २१८, उसमें सम्प्रदाय की सख्या १२७, उसमें हँसी की अपेक्षा आँसू २०७, ऐंद्रिक १९५, और तीव्र इच्छा २०१, और दया १८२, और प्रकृति ४१, और स्वर्ग, इन्द्रिय से बँधे १९२, कर्मबहुल ७३, -चक्र ८४, -चक्र, उससे छूटने का उपाय ६२, चरित्र-गठन के लिए ५४, झूठा दृश्य-जाल १५८, -त्याग ३३७, न अच्छा, न बुरा ५०, प्रतीक है ४७, भोग के लिए नहीं ६४, माँ की लीला २१०, -यत्र ८८, रूपी क्षीरसागर १०७, -व्यूह ५८, सत्य नहीं है १९१, सुख-दुःख से बना २०५, -स्वप्न ७२, स्वयं पूर्ण ५०

संस्कार ३, ३२, अशुभ ३०, उसका नाश, शुभ द्वारा ३१, उसकी परिभाषा ३०, उसके द्वारा मनुष्य का चरित्र निर्मित ३०, बुरा, उसकी उत्पत्ति का कारण और व्यक्ति ३०, मनुष्य की जन्मजात-प्रवृत्ति २९, -समष्टि ८७, सु, और सत्कार्य की प्रवृत्ति ३१

संस्कृत, आर्य भाषा १६०, उसमें 'जाति' का अर्थ ३६६, उसमें दो शब्द ६०, कवि ६०, कहावत ११८, दर्शन ४८, पाठशाला ३११

सहिता, यजुर्वेद ३६८ (पा० टि०)

सतयुग ८५-७, २३४

सतयुगी, धर्म ८६, भावना ८६

सत् २२, ६०, १५६, १६६, २०७,

२११, और असत् ५७, २०३,

३९४, कर्म १७, ८८, कार्य ३०,

६२, ७५, ७८, ८२, ८९, १३७,

३०१, ३०३, ३३०, ३८३, चिन्तन

३०, पुरुष ३८, यथार्थ ३३, वस्तु

११८, संस्कार ३०, सर्वोच्च

फल ६०, सिन्धु १५६ (देखिए

शुभ)

सत्कर्मी, स्त्री और पुरुष २२६

सत्ता, अद्वितीय निरपेक्ष ११९, अनन्त

७०, १९५, असीम ७०, २१४,

निरपेक्ष २५९, निर्गुण २१६,

विराट् १४५

सत्य ६६, २९२, अद्भुत २४६,

अनन्त १३४, अनश्वर ३४४,

अन्तरस्थ ३७८, उच्चतम १९६,

उच्चतम, उसके ज्ञान की

प्राप्ति २०२, उच्चतर १३०,

३६६, उसका आविष्कार परमाणु-

विषयक १०८, उसका प्रभाव,

अनन्त ३६९, उसका स्वरूप १०९,

उसकी उपलब्धि और योगी १२१,

उसकी जय अवश्य ३२३, उसकी

तुलना ३७८, उसकी परिभाषा

उसना अस्तित्व १९ उसकी सीमा ४ उसकी सीमा में ही चिन्तन २७१ उससे परे जाने का उपाय २०१ और प्रवृत्ति ६३ और बुद्धि से परे २८५ और व्यक्ति २८७ कर्मव्यता ४ प्राण अणु २८ प्राण व्यापार १६३ पशु २३ पतित सुख और प्राणी १९९ नियन्त्रण १४६ पाँच ४६ ५७ ६५, २९९, २८५ मोम १४६ मन और बुद्धि ५४ मकार्म १ ९ वास्तविक २३ विकास ५५ विषय १३६ सीमाबद्ध १६० १८ -सुख ६८ १६९, १७६ २६८ २७ -सुख और बौद्धिक सुख २७ २७४ सुख और माया ७६ सूक्ष्म २०

इन्द्रियातीत तथ्य २४६

इष्ट वैधता निर्गुण २८६

इस्मिष्ट मेम ३८५

इस्लाम २४ २४९ धर्म २७८

ईश्वर ४४ तरंग २२२ सिद्धान्त ४४

ईशो ४८ (पा टि)

ईश-तिरस्कार २५९ -युगल २६

ईसोपमिषु १५ (पा टि) १५२,

१५७-५८ (पा टि) ३३७

ईश्वर २४ ६१ ६४ ६९ ८९ ९४

१ ९ ११९, १२४ १४५, १५५,

१७९ १९९, २ ५-८ २१

२१४ २२१ २२८ २३ २५६,

२७४-७५, २८४ ३ ३२

३२३-२४ ३२६ ३३३ ३३७

अज्ञात और ज्ञात नहीं ८९ अज्ञेय

८८ अनन्त आत्म १५८ अमल

मुच का माण्डार २ ४ अनन्त ज्ञान

१५८ अनन्त सत्ता १५८ अनन्त

सर्वव्यक्तिमान ६७ अन्वेषक २५८

अपरिणामी और अजर ६२ मार्का

शाहीन २२२ आत्मा के आकर्षण

का केन्द्र २ ७ इन्द्रिय-बुद्धि से

परे २८५ उपादान कारण २ ८

१ उसका ज्ञान और सेमेटिक

धर्म २३७ उसकी इच्छा १८१

उसकी उपासना और अभ्यक्त आत्मा

३४ उसकी उपासनास्वरूप प्रकृति

२९६ उसकी कृपा २४९ उसकी

वी धारा २८४ उसकी वादना

भाषा २९५, २९७ उसकी परि

२६५, २८१ उसकी पूजा २६

उसकी प्रत्यक्ष उपलब्धि ४१ उसकी

प्राप्ति ठर्क से नहीं १६६ उसकी

बाणी ६३ उसकी समुपता १७९

उसकी समुण धारा से निर्गुण धारा

१८ उसकी सत्ता २८१ उसके

अस्तित्व में विश्वास २ ३ उसके

चिन्तक २३२ उसके नाम में महान्

नाम २५३ उसके प्रति विकासशील

भाव २५८ उसकी पाता चरम

उद्देश्य २२९ उसकी समुण रूप में

पूजनेबाछे २६ उसमें मिश्रित बुद्धि

१ ६ उससे प्राबुर्भूत विषय २ ९

एक उपास्य १८६ एवं आत्मा

१६७ और अद्वैतभाव ९६ और

कुञ्ज ३५२ और द्वैतवादी ९६

और बन ३५ और पूजा तथा धर्म

१९१ और मानवीय अभिव्यक्ति

२६ और शैतान १८८ और

सृष्टि २ ८ अन्तरात्मा ३८

कारण २ ८ केवल प्रेम के लिए

२ ८ चिन्तन से भी भयता २९

चिरन्तन २ ३ चेतन और

धारण २ ९ चैतन्यस्वरूप ३ १

जगत् का केन्द्रस्वरूप १५८ जगत्

का समष्टिस्वरूप ६ जगत् के

वासककर्ता ७१ -ज्ञान २३१

२३३ तथा व्यक्ति और हिन्दू

धर्तन २३२ तथा स्वर्ग २५५ -वर्तन

१५ १५३ दृष्टवादी ९७

दृष्टि ३२७ द्वैतवादी का ९६

धर्ममय २९८ -धारणा ६७ २९३

नि स्वार्थं पुरुष ६७, नित्य २०४, नित्य ज्ञाता ८९, नित्य विपयी ८९, नित्य शुद्ध ६२, निर्गुण ९४, २८६-८७, २८९, निर्गुण और मनुष्य १८०, निमित्त कारण २०८, २१०, निर्विशेष, उसकी उपासना का माध्यम २८९, परम इच्छामय ३०३, पूर्ण आनन्द १५८, पूर्णत्व १३१, प्रकृत ६२, प्रकृति में व्याप्त २३२, प्रकृतिस्थ ८३, -प्राप्ति २३४-३५, प्रेममय और सर्वशक्तिमान ६५, बहु जीवात्मा के रूप से २९९, -बुद्धि १५३-५४, बुद्धियुक्त १०४, भक्ति २६२, भय का प्रतीक ३८९, मनुष्य के साथ अभिन्न ८९, महिमा-मय, अपरिणामीस्वरूप २९७, मानवीय २०४, यथार्थ आत्मा ८९, रूप १५४, रोग दूर करने की शक्ति ३८९, वाद, सगुण १८६, विश्व का सर्जक और शासक २०४, विश्व की आत्मा १८१, विश्वव्यापी बुद्धि १०६, १२६, विश्व से परे २३२, विश्वातीत २३२, शब्द की महिमा १०७, शाश्वत २६६, सबघी अन्त-मुखी जिज्ञासा २३७, सबघी धारणा ६२, ६५, ७१, सबघी धारणा और अद्वैतवाद ८९, सबघी सिद्धान्त २००, सगुण ५८, ६८, ९६-७, २०४, २५९-६०, २८७-८८, सगुण और मन १७३, सगुण का ज्ञान और वेदान्त ५९, सत्, मनुष्य की महान् कृति २६०, समी आत्माओं की आत्मा १८१, २०९, समष्टिस्वरूप ३०१, समुद्ररूपी २६०, सर्वशक्तिमान ३२९, सर्वशक्तिशाली २६६, सविशेष २८८-८९, सृष्टि का निमित्त तथा उपादान कारण २१०, सृष्टि का रचयिता २०४, २०८, सूक्ष्म इन्द्रिय से अधिक

समीप २९०, स्रष्टा ही नहीं, सृष्टि भी २१०, स्वतः सिद्ध २९७, स्वयं विश्व २१०, स्वाधीन २९४

ईश्वरत्व १८१

ईश्वरीय पुरुष ३६६, विधान ३६५, सत्ता १०९

ईर्ष्या १३६, २१३, ३३९, ३५१-५२, और सन्देह का परित्याग ३२४, राष्ट्रीय चरित्र का धन्वा ३२९

ईसप की कहानी १५५

ईसा ७, ५५, १२६, १५२, १६७, १७६, २२९, २४१, २५४, २५८, ३००, ३६१, ३८६ (पा० टि०), -मानव ८, १०५-६

ईसाई १०५, १६७, १८२, २०३, २५८, २७९, ३३८, ३६४-६५, और समृद्धिशाली राष्ट्र ५०, कट्टर और मिशनरी ३७१, कट्टरपथी शत्रुभावपन्न ३९३, दावा २७८, दोस्त २७९, धर्म ५०, १८२, २३१, २४०, २४९, ३४०, धर्मा-वलम्बी राष्ट्र की समृद्धि का कारण ५०, धर्मोपदेशक ३५०-५१, भूमि २२८, महिला ३१३, मिशन ३३९, मिशनरी ३११, ३४० (पा० टि०), राष्ट्र ५०, लोग १७२, ३६२, वैज्ञानिक ३८६, वैज्ञानिक सम्प्रदाय ३८७ (पा० टि०), ३९३, सज्जन ३७८

ईसावेल ३७९, मैर्क्किडली, कुमारी ३४४, ३४६, ३९१

ईसामसीह ९७, १५५, २३१, २३३, २४०, २९०, ३२४, ३६०

ईस्ट इंडिया ३५९

उड, श्री ३८७

उत्तरमीमामा २०३

उत्तरी ध्रुववासी १८८

उत्थान और पतन १०२, -पतन २०२ उन्नति, और अवनति १८२, और दुःख-

सुख की नींविका ५२ और विकास
 ५१ और बुद्धि १२३ नैतिक भाव
 की और मनुष्य का संग्राम ६३
 उपकार २६६ उनका संकुचित अर्थ ४
 उपनिषद् ४४ ६ ९५, १४२, २ ३
 २४१ ३२९ अन्तिम १७८
 आधुनिक ४३ १७८ ईस १५
 १५२ (पा टि) १५७-५८ (पा
 टि) ३३७ उनका कथन १४१
 उसका अन्तिम शब्द १८ उसका
 केन्द्रीय भाव १७३ उसका ज्ञानभाग
 और संकराचार्य ९४ उसका नीति
 भाग और बुद्धदेव ९४ उसकी कथा
 का तात्पर्य १७९ उसके सम्बन्ध से
 काम १७८ उसमें विचार भाग
 ९४ और गीता १७८ और वर्धन
 १८ ऋ ९५ (पा टि) १४
 (पा टि) १५९, १६१ १७८
 २१४ (पा टि) ३ १ (पा
 टि) छात्रोप ८९ प्राचीन ९४
 १५ प्राचीनतर १७८ मुद्रक
 २९९ (पा टि) स्वैताम्बर
 ४४ ५८ (पा टि) १ ७
 (पा टि) २८४ (पा टि)
 ३३७

उपमान ११६
 उपसमीक्षा उसका आधार १९६
 उसका चरम बिन्दु २७ और
 आध्यात्मिकता १९९ और नैतिक
 नियम १ ६ शूद्र बुद्धिबोध
 १९९ मध्य की बपीटी नहीं
 १९
 उपसमीक्षावादी १९६ १९८ अविद्येही
 २६ आधार १९९ और गमात्र
 १९७ नास्तिक २६९ नियंत्रण
 ममात्र की स्थिति १ ७ नैतिक
 १७४
 उपदेश आध्यात्मिक ५७ उपसमीक्षा
 ११८ और निमित्त कारण १ १
 विज्ञानयोग्यता ११८

उपासक उसकी क्रमोन्नति का स्वीकार्य
 ६१ और उपास्य ६२
 उपासना शैल ५८ -धारणा २८९
 निर्विशेष की २८९ पूर्वज की
 आत्माओं की २९२ प्रतीक ५८
 मृत-मेत की २९४ मृत व्यक्ति
 की २९२
 उपास्य शैलता तथा मृत पूर्वज ८२

ऊर्ध्व भी ३ ७
 ऊर्ध्व उसका परिणाम २६६ संवा-
 रणवाद १ ५

ऊर्ध्व ५ प्राचीन १३४ संहिता १९२
 श्रुति १९४
 श्रुति १६८ २७७ ३ १ उनका
 सत्यानुसंधान १७२ उसका अर्थ
 २४१ उसकी परिमाणा १९४
 बरित ५८ तथा नियम का आवि-
 श्यार २४२ प्राचीन ७९४
 विचारों का द्रष्टा २४१

एकर २१३ उसका भाव २४ उसकी
 और १४६ उसकी सौत्र २१,
 २३८ उसकी प्राप्ति २३८
 उसकी रक्षा २४ ऊँच-नीच में
 १५७ और नम २८ जाति में
 १५७ शैलता और मनुष्य में
 १५७ भर-भारी में १५७ भाव
 २८४ भासक २८ बस्तु के
 अन्तस्फल में १५७ भारतीय
 नहीं (बौद्ध मतानुसार) २८

एकत्वदर्शी पुरुष १५७
 एकमेवाद्वितीय ८७
 एकेश्वरवाद ८९ २३२ शूद्रक भाव
 का आश्रय ८३
 एहनिन आर्सेट १५९
 एही भीमगी ३८७
 'एबिचक कश्चर मीमांसनी' ३०१
 एवम २६४

एनिसक्वाम ३४१, ३५५, ३५८,
 ३८४, ३८६, ३९१
 एनी वेसेन्ट, श्रीमती ३०९
 एलिया २३१
 एलोहिम (Elohim) २३१
 एवॉन्स्टन ३९१
 एगिया २०४, ३११, वासी २३१
 'एगिया की ज्योति' १९४, २५७
 ऐक्य, उसकी प्राप्ति २३८
 ॐ, वेद मे उसकी महिमा १७०
 'ओडिन' देवता १६९
 ओलि बुल, श्री ३९१, श्रीमती ३९१
 ओल्ड, श्री ३७६
 'कट्टर' ३११, पादरी ३४२
 कट्टरता ५६
 कठोपनिषद् ९५ (पा० टि०), ११३
 (पा० टि०), १४० (पा० टि०),
 १५९, १६१, १७८, २१४ (पा०
 टि०), उसकी भाषा १७८
 कथा, नचिकेता और यम की १६१-
 ६५, माया और नारद की ७५-६,
 रोम के धनी की १६९, सिंह और
 भेड की १८, २३६, २६०-६१,
 हरिण और कुत्ता की १५५
 कथा-नायक २४०
 कनाडा ३३४
 कन्फ्यूशस १९७
 कन्याकुमारी ३३८
 कबीला, उसका देवता ६३, उसका
 रक्षक ६३, और प्रेम ६३
 कबीलीय भाव ६४
 'कर्मशियल एडवर्टाइजर' ३४३
 कर्ण-यन्त्र और श्रवण ज्ञान ११०
 कर्तव्य-भाव ६४
 कर्नल आल्कट ३८२, हिगिन्सन
 ३४७, ३९०
 कर्म, अशभ २७, उसका परिणाम

२२९, उसका फल ११४, १२०,
 उसकी महत्ता २७, -काण्ड २५३,
 २५९, -काण्ड और वाह्याचार
 २४०, क्रियमाण २१९, दोष
 १२०, पाप २०९, पुण्य २०९,
 पूर्व और विचार १५१, प्रारब्ध
 २१९, फल ११८, १४०, १५४,
 १५७, भूमि, सर्वश्रेष्ठ स्थान
 २७, सस्कार ११७, सत्
 और उसकी शक्ति का क्षय
 २७
 कलकत्ता ३३३-३४, ३४२, ३४४-४५,
 ३५४, ३६२, ३७५, ३७७, ३७९-
 ८१, ३८३ ३९४
 कलचिस ४८ (पा० टि०)
 कल्प २२, २६
 कविता, उसके द्वारा अन्त स्फुरण
 ९४, और विज्ञान ९४
 काम और काचन ३५०, और क्रोध
 और लोभ ७, -वासना १५८
 'काम के आदमी' ५६
 कारण, उच्चतम, आदिम और दूरवर्ती
 परिणाम २८२, उसका स्थूल
 रूप मे आविर्भाव १०२, उसमे कार्य
 की सभावना निहित २८२, और
 कार्य अभिन्न १०३, कार्य के भीतर
 वर्तमान १०३, निमित्त १०१,
 परिवर्तित रूप मे कार्य २०८,
 श्रृंखला २८२
 कारणता का सिद्धान्त २५५
 कार्य, असत् १२१, उसकी परिभाषा
 १८, उसके करने की समर्थता
 १५३, उसके दो अंश ९२, उसके
 लिए कारण अपेक्षित २०५, और
 कारण १०१, और कारण मे मौलिक
 भेद नहीं १२४, और विचार १८,
 १५१, कारण का रूपान्तर मात्र
 १०३, २८२, कारण का व्यक्त
 रूप १२४, कारण से मित्त नहीं
 १०२, २०८, पूर्ववर्ती कारण

की आवृत्ति मात्र २८२ प्रवृत्ति
 ६७ पृष्ठ १२१
 कार्य-कारण ११ नियम ८६ २१६,
 २१९, २२२ स्त्री-पीठार ७४ बाव
 १ ८५ ६, ९ १२९ २२२
 सम्बन्ध १२९ १ १८४ (देखिए
 निमित्त)
 कास, आत्मा में अवस्थित ११२
 उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं ९
 उसकी उत्पत्ति ११२ उसकी
 बाराणा ९ और निवार ११२
 रेश और निमित्त ९ दोषट्टामों
 पर निर्भर ९ मन की अवस्था
 पर निर्भर ९ मूय ९ सर्व
 संहारक ७६
 कासी ३४८ (देखिए अनेकानन्द)
 काशीरूप्य ३६२
 काशी १४२ ४३ २९७
 किडी (सिगारबेकू मुवास्मिर) ३२१
 ३२५ ३५८ ३७८ ३९४
 कुण्ड ७५ २५३ ३२४ ३२९,
 ३६ ३१ मयवान् ६१
 कुण्डस्वामी अम्बर ३५७
 कुक एरु सन्ध ३९३ कम्पनी ३१
 ३५५
 कुमारी आर्चर सिम ३८६ ईसाबेल
 मेककिडली ३८४ ३४६ फर्नीचरी
 ३८६ फिलिप्स ३८५ मेरी हेल
 ३३३ ३४१ ३७२ ३८५
 सीराब ३१३ स्टॉकहोम ३८६
 हेरिम्पट हेल ३८५ हेनेन मॉन्टल्
 ३४१ ह्यो ३८७ ३९ ३९२
 कुरान २३५, २४२ घटीक २७९
 कुसस्कार २ १८७-८७ ३७७
 उसका फल १५ (देखिए अन्ध
 विश्वास)
 केनिडवर्ष ३९
 केनिडव ३९२ बुनिवसिटी ३४६
 केरावचन्द्र संग ३५४ (पा टि)
 ३७६

कैडमस ४८ (पा टि)
 कैमोस्वि ३४
 कैन्टरबेरी ३१४
 कोरा ३८७ स्टॉकहोम ३९
 'कोरिनथियन सम्मेल' ३१७
 कर्मों ८६ प्रश्न का अर्थ ८७ माया
 में नहीं ४९
 कमविकसित बीज ही बूम १२४
 कमविकास १३४ ५ ९२ उसकी
 प्रक्रिया १२६ उसकी प्रक्रिया
 में अमूम-निवारण १३६ उसकी
 व्याख्या १२४ उसके पूर्व कम
 संकोच १२४ उसके साथ कम-
 संकोच की प्रक्रिया ८ और कम
 संकोच ८ १२३ उत्प १२६
 प्रक्रिया ११६
 कमविकासवा ९१ १ ३४ १७६
 उसकी व्याख्या १२३ उसके पहले
 कमसंकोच १२३ कमी बूम से
 नहीं १२३ (देखिए विकासवा ७)
 कमविकासवादी ७ १ ४ विद्या ७
 कमविकासवादी मूखता १ ४
 कमसंकोचित १ ७ बूम ही बीज १२४
 कमसंकोच ८ १ ३-४ १२३ २४
 उसकी परिभाषा १२३ उसके
 साथ कमविकास की ११६ तथा
 कमविकास-उत्प १२६ प्रक्रिया
 ११६ वा १७६
 काइस्ट, जीसस २७२
 क्रिया-कलाप और बाह्य अनुष्णान
 १८३
 क्रियाकाण्ड १८८
 'क्रियेदान' २ ८
 अत्रिय ३२९ बमों का उपदेशक ३२९
 मांसमोत्री ३२८
 छात्र स्पष्टि ३
 छागील विद्या २१९ ३६६
 चेतनी ३१३ ३१७ ३४१ ३४३
 ३५३ ३५६ ३९३

- गगातट ६,५९
 गठिया की बीमारी और जीवन के
 विरुद्ध भाव ४९
 गणितशास्त्र १२३, २५१
 गणितीय और निरपेक्ष निश्चय १२६
 गणितीय क्रम ५२, ६५, १७५, और
 ज्यामितीय क्रम ५२, ६५, १७५
 गतिशील (dynamic) २२
 गति, मसार की और माया ५०,
 सर्वत्र मापेक्ष १२
 गन्धर्व लोक १४२
 गर्नसी, कुमारी ३८६, डॉ० ई० ३७८
 गाँधी जी ३४५, वीरचन्द्र ३०९
 गाँड १४८, २४३ (देखिए ईश्वर)
 गार्गी ३६१
 गिरीशचन्द्र घोष ३३४, ३४४
 गीता ७८, ९५, ३०२ (पा० टि०),
 ३२९, ३७३ (पा० टि०),
 उपनिषदों से संगृहीत पुष्प-गुच्छ
 १७८ (देखिए भगवद्गीता)
 गीति-काव्य १७९
 गुरुत्वाकर्षण ११५, २०३, २८१,
 उमका नियम ११, उसका सिद्धान्त
 २४२, २८०, शक्ति ७४
 गुरुदेव ३२२, ३३३, ३३६, ३३८-
 ३९, ३४४, ३४९, ३५२, ३५६
 (देखिए रामकृष्ण)
 गैलीलियो २४२
 गोपाल ३५३
 गौतम बुद्ध ३९५
 ग्रन्थी, श्रीमती ६८
 ग्रन्थ और धर्म २३४, द्वारा ईश्वर
 सृष्टि नहीं २३४, मनुष्य की रचना
 का वहिर्गमन २७९, महान्,
 उसकी प्रेरणा, ईश्वर २३४
 (देखिए पुस्तक)
 ग्रीक ६०, ६५ (पा० टि०), २३१,
 पौराणिक साहित्य ४८ (पा० टि०)
 ग्रीनेकर ३८४, ३९१, सराय ३८५
 ग्लैंडस्टोन, भारत का ३५३
 घृणा ७८, १६८, ३१०, -भाव ९२
 'घृणित कीड़ा' ३३७
 घोष, गिरीशचन्द्र ३३४, ३४४
 चक्रवात, उससे आवागमन का एक
 दृष्टांत २१७-१८
 चण्डी ३५१ (पा० टि०)
 चन्द्र २२, ३१, ३३, ६३, ८२, १०२,
 १३१-३२, १३९, १४१, १५७,
 २१२, २८५, ३५१, -सूर्य ४२, लोक
 २६-७, ३५, ४५
 चरित्र, अवतार ५८, ऋषि ५८, और
 सस्कार २१७, -गठन ३२६, देव
 ५८, -निर्माण १९९, प्रेत ५८,
 महात्मा ५८
 चाण्डाल ३३७-३८, ३५७
 चारुचन्द्र वावू ३९३
 चार्वाक, उसके अनुसार धर्म ६९
 'चिकित्सा' ३८७
 चित् २८२
 चित्तवृत्ति, उसकी साधना देह से आरम्भ
 २५६
 चित्र, उससे अधिक आनन्द १५३
 चिन्तनधारा, आधुनिक २८१
 चिन्तन-शक्ति ८, शरीर में व्यक्त ८
 'चिन्तनशून्य प्रमाद' २७८
 चीन ८, १९१, ३७१, वाले १९२
 चीनी २५७
 चेतन और अचेतन स्तर २७२
 चैतन्य ३६०, राज्य ३८९
 चौम्बक १६०
 च्यापन, श्रीमती ३८६
 छान्दोग्य उपनिषद् ८९
 छुआछूत ३१६, मार्ग ३६३
 छूतमार्ग ३३७
 जगत्, ४१, १०२-३, अशत शुभ
 और अशुभ १३८, अन्तर १५९,
 अव्यात्म ३१, अपरिणामी आश्रय

२९ अविद्यामय १५८ आध्यात्मिक ८५, २६४ आनन्दमय १५४ आसुरी १५४ इन्द्रिय २८, २६४ ईश्वरका धरीर २ ९ उसका अर्थ मात्र ३९ ३ उसका उपकार १९ उसका उत्पादन और निमित्त कारण १ ७ उसका केन्द्रस्वरूप १५८ उसका प्रत्येक अणु अणु अणु से सम्बन्ध ८६ उसकी अनन्त शक्ति मनुष्य के भीतर २ उसकी उत्पत्ति का प्रश्न ८ उसकी रीति ५१ उसकी मुक्ति में विद्या और कर्म ८ उसकी वस्तु-जर्म की अभिव्यक्ति ७ उसकी सृष्टि १५९ उसके आचार्य ७१ उसके परे तत्त्व २९८ उसके प्रति अनासक्ति-भाव ११४ उसके रहस्य-मीमांसा की चेष्टा ७४ उसके विषय में मति-भारता १ ५ उसमें अद्भुत और कुत्स का कारण १८ उसमें कुत्स-भाव विकसित १४८ उसमें परिणाम और अपरिणाम ३ उसमें व्यक्ति नष्ट भाव ११४ एक कारणात् ७७ एक बीमत्स प्रहास १७६ एक रममूमि ११४ एकस्वरूप ३ और ईश्वर १५ और कर्म ३६ और जीवन १४५ और ज्ञान ३३ और पदार्थ १२५ और मनुष्य ७३ और मानव १७५ और शुभ अशुभ ५४ गोचर २८८ अङ्ग ११ ३१ ८५, १५९, १६२ अङ्गता अज्ञान से पूर्ण ७२ भाव १९ भाव और श्रेय २६४ तथा बोधोपेयन प्रवृत्ति १९ दृश्य २९ दृश्यमान ३४ ईद ज्ञान का फल ३ न आशावादी न निराशावादी १३८ मस्वर ३ ५ नाम-व्यपारमक २८७ नित्यता और स्थिरता नहीं २९ पंचेन्द्रियप्राण ३ पदार्थ स्वतंत्र

माही ८७ परिणामहीन ३० परिवृक्ष्यमान २८ प्रपञ्च २२, २९, १०७ १३४ प्रबाह २९४ पृथ्वी-मासा से उका मुर्धा ३७३ बहिः ११६ बहुत्वपूर्ण ७२ १३१ बाह्य ३ १ १ ८ १३४ १३८ १४१ १५९ ६१ बाह्य उसमें असीम वस्तु की शीघ्र १३४ बाह्य और मानव-बुद्धि २५२ बुरे-भले का मिश्रण १३९ ब्रह्म का एक विशेष रूप ९१ ब्रह्माण्ड १ १ १ ३ १ ६ भीतिक १९७ २८७ मन की अनुमति और पदार्थ सत्ता ४४ (पा टि) मनी ३१ १६१ मिथ्या १५ वस्तु ३ विचार १२९, २३७ वैचिष्यमय १३ श्रुतता ६६ सत्य की एक छाया मात्र १७६ समस्या १६१ उद्योग १५ सापेक्ष २८६ सूक्ष्म ८५ १ ३ स्वप्न सा ११४ (देखिए संसार)

अपवृत्तप्राण ३८८ अणुवन्ता ३७९ अणुप्रत्यय भी ३३१ अणुवन्ता की महिमा ३ ३ अङ्ग उसका अनुकरण और माया ७४ और मेलन २३८ २८३ और ब्रह्म ९३ तत्त्व ९ १ ५, ११७ १२३ पदार्थ १३५, २८३ २९२ परमाणु १३५, २८३ २९२ -रूप प्राप्ति की उत्पत्ति १८५ वस्तु १११ सिद्धांत २६१ अङ्गबाह ६९, १८५ और आत्मबाह १८५ अङ्गबाही ६८ ९, ११८ १२६ अन्त १६७ अङ्गता और अज्ञान ७२ अन्तर्गत एवं स्वाधीनता १७९ अन्तता उसकी अज्ञानता और शीघ्र जर्म ९४ उसकी उत्पत्ति नर उपम्य ३९१ विचारहीन ३४९

जनसमूह, उनके दुःख-कष्ट ५१
 जन्म और मरण २०६, २१८
 जन्म और मृत्यु १३०, -मृत्यु १०५,
 १८२, -मृत्यु प्रकृति में ३३
 जन्मजात-प्रवृत्ति ११५, २७२, इच्छा
 का भ्रष्टभाव ११६, उसका तत्त्व
 ११६, और दिव्य स्फुरण २७२,
 कार्य का क्रम-संकुचित भाव ११६
 जप-माला ३५०
 जरा-मरण २१०
 जर्मन दार्शनिक १७५
 जर्मनी ५४, प्राचीन १९२, भाषा
 २०२
 जीवनमुक्त, उसकी परिभाषा ३६
 जात-पात ३२१, ३५१
 जाति, दुर्बल १७५, -त्रया ३६५,
 भेद ३११, ३२५-२६, ३२९, -भेद,
 अर्थगत ३६८, यूरोपीय ९५,
 विभिन्न और ईश्वर सबधी सिद्धांत
 २३२, सबल १७५, सेमेटिक
 २२७, हिन्दू ९५ (देखिए राष्ट्र)
 जातीय जीवन ५५, दोष ३३९
 जॉन हेनरी राइट, प्रो० ३०७, ३४४,
 ३४७, ३५३, ३५८
 जापान ३७१
 जार्ज ३८२
 जार्ज डब्ल्यू० हेल० ३१४, ३१९, ३३४,
 ३७२, ३७८
 जिउस देवता ४८ (पा० टि०)
 जिहोवा ६१-२, ६४, १४८, २४३,
 २७९
 जी० डब्ल्यू० हेल, श्रीमती ३८१
 जीव ५७, २२२, ईश्वर की दया का
 अधिकारी १२०, क्षुद्र ३४८,
 परिणामी १२, प्रातिभासिक और
 यथार्थ ११, मर्त्य १४३, -विज्ञान
 २६५, व्यावहारिक १५, -शरीर,
 उच्चतर या निम्नतर ११९,
 -हिंसा २०७
 जीवन २८०, अनन्त सागर ७६,

अभिव्यक्ति का रूपविशेष १२९,
 आनन्दपूर्ण और क्रियाशील १५४,
 उसका अर्थ ५७, उनका एक और
 नाम १२९, उसका क्रम २२१,
 उसका चिह्न ३८३, उसका नियम
 १०२, उसका मूलभूत सिद्धांत
 २६५, उसका लक्ष्य ९२, २५४,
 उसका वास्तविक रहस्य १४५,
 उसकी अन्तरात्मा १४५, उसकी
 उन्नति का साधन ३२१, उसकी
 दो स्थितियाँ २२३, उसकी
 व्यर्थ वासना १७६, उसकी सभा-
 वना वीजाणु में १२४, उसके अग-
 स्वरूप ५७, उसके पीछे मृत्यु
 १२९, उसमें एकत्व नहीं २८,
 उसे ईश्वर से अनुप्राणित करने का
 प्रयास १५४, एक कठोर सत्य १४०,
 एक महान् सुयोग ३९०, और
 आनन्द १४७, और जगत् ७९,
 और जगत् दुःखमय १४८, और
 मृत्यु ७८, १२९, और विचार
 ६१, और विषम विरुद्ध भाव ४९,
 और व्रत १२३, जातीय ५५,
 -दृष्टि १४४, नैतिक १६८, पचे-
 न्द्रियगत १४८, पचेन्द्रियग्राह्य
 पाशविक ३४५, प्रकृत १७६,
 -बल ही भवरोग की दवा १८९,
 भावी १२३, भौतिक १४८,
 महान्, उसका लक्ष्य, ज्ञान २७०,
 मृत्युहीन ५३, वर्तमान, विगत
 का परिणाम २१८, विराम नहीं
 जानता ४७, -व्रत ३०७, शाश्वत
 २६९, -संग्राम १२२, सत् और
 असत् का सम्मिश्रण ४६, -समस्या
 की वास्तविक मीमांसा १३१-३२,
 सांसारिक ७८, सामाजिक ८१,
 सेवापूर्ण १५४
 जीवाणु कोश ११७-१८
 जीवात्मा २६, ८१, ९१, १६१, १८१,
 २०४, २३३, उसका अमरत्व

१२२ उसका सफ़ोष और विकास
 १८१ उसकी स्वाधीनता ११९
 और ईश्वर ८३ और धर्मस्त्री
 विमान २५२
 बीबिमार ८, १ ४-५ उच्चतम मानव
 की कममकुचित अवस्था १०५
 निम्नतर १२४
 बीसस काइस्ट २७२
 जूनामङ्ग ३३४ (पा टि) ३५३
 जे ज बीम्बी श्रीमती ३४३
 जे स्थान ३ ७
 जन्तु की ३११
 जमी बहुत ३८४
 जैन धर्म ३०९ प्रतिनिधि ३१३
 जैन ४८ (पा टि)
 ज्ञान ८७-८ और ज्ञय जपन् २६४
 ज्ञान ५६ २६२ २० अतीन्द्रिय
 १९६ जन्तु ९८ अनुभव से
 जल्प १२२ अनुभव से प्राप्त
 ११५ समूह २५३ अस्तित्व या
 मानस्य ११२ आत्मा के स्वरूप
 ११२ आकाश ३९६ उच्चतम
 ८ उमता कम्पास १९ उमका
 अर्थ २४४ २७५, २८१ उमका
 अमनी आगय २८३ उमता अत्र
 ४६ उमता अत्र ९८ उमता
 अत्र १५ उमता स्थान २५१
 २७२ उमती उमति १९ उमती
 अया जापोयिता १५ उमती
 कुमरी ध्याना २८१ उमती
 दृष्टि और मन की गजता ३२
 उमती प्रकिया ११ उमते बिना
 कृति अत्र ६ ६ एक निम्न
 अवस्था १५ और अनुभव का
 बहुत १६६ और अनुभव तप्य
 ३८७ और आनन्द ६६ और
 आनन्द अन्वेषणात्मक ८ और
 जपन् ३६ और प्रान्त अनुभव
 १६६ और प्रम ८ और
 प्रतिनिधि ३६ और मति ११५

कर्मोपेक्ष बर्मीकरण का पर्याय २८१
 कङ्क का भय नहीं ११ तथा
 मुक्त मुक्ति की ओर २५४
 कुल और मुक्त का ४९ बतता का
 ६ शब्द का २९ द्वारा आनन्द
 प्राप्ति २७ धार्मिक उसका
 अंतिम चरण २७५ परम २७७
 परम और आनन्द २७ पूर्वोक्त
 तथा काम १६ प्राप्ति २१४
 बुद्धि का आधार ११ भक्ति
 और याग ३६३ भौतिक १६
 मानव उसका आशय २३८
 मानवता संबंधी २३७ मानवीय
 ६६ १२३ मानवीय उत्तरी
 सीमा ६७ मानो कुम्हारी ३५
 मार्ग का गुण और अवगुण ३२९
 मिथ्या ३४ या सहज प्रकृति ११६
 योग १४३ रूप का ६७ अथ
 पक्षि १२ काम १४ सौमिक
 २८ सौमिक तथा धार्मिक
 २७७ विमान बाह्य २७८
 विभिन्न परमप्रणो म २५९ विषय
 ११ वैज्ञानिक ९८ २७५
 वाद का अर्थ ८८ वादक २७१
 सधवा २९१ सर्मा १४ गाथा
 रिक्त ७७ मापेस ३२ नामकस्थ
 पूर्ण अनुभव १२२ -मूय १
 स्वप्रकाश ११०-१२
 ज्ञानी उमक किण लक्ष आनन्दकर्म
 १५७ पुण्य १३३ १४१
 'मेष' ८८
 उपाधिधिय क्रम ५२ ६५ १७५
 स्थितिभव है १ परार्थ १
 उपाधि ६ ६७७
 टाकिम रूप ३७७ ४१ ३२२
 तिष्ठत ७ ११६
 तिष्ठत ३८४
 टाका अर्थ ३ ७ थीम्बी ३१३
 टाकात्मक का अर्थ ६५ ६

'एन्म लॉ प्लेनी' ३८४

एफगिन, रेडी ३७१

डॉ० ई० गनमी ३७८

डाइनेमो २२०

द्याना देवी ३१८

डॉयमन, प्रॉफेसर २०२

दारविन ७

टिड्रॉएट ३३०, ३३२-३३, ३३९-३४० (पा० टि०), ३४१, ३४३, ३५८, ३८१, ३८३, ३८६, मिगि-गन ३४३

डियरवॉर्न एवेन्यू ३१३-१४, ३१९, ३२५, ३३४, ३५२-५३, ३५८, ३७२, ३७४, ३७७, ३८०, ३८२

तत्त्व, अतीन्द्रिय १६७, अमिथ्र २५५, जड ९, ज्ञान ३३६, परम १६५, २१६, २३३, २४५, परमार्थ १६५, परलोक १६५, प्रकृत १८०, बुद्धि २५५

तत्त्वमसि १७, ४२, ८९, १३१, २८४
 तर्क और विचार १६६, -शास्त्र २८८
 तारक दादा २६२ (देखिए स्वामी शिवानन्द)

तिव्वत १३६

तिर्यग्जाति १००

तीर्थंकर ३२९

'तुम' १४, ३०, २१३

तुलसीदास ३७२

'तू' २५९, २८४, २८९

'तू ईश्वर है' ८९

त्याग १७६, उसका प्रकृत अर्थ १५३, उसकी माँग १९६, उस पर नैतिकता आधारित १९५, उससे विभिन्न धर्मों का सामजस्य २०१, और नैतिक विद्वान १९५, नीति-सहिता का मूलमंत्र १७६, पूर्णता-प्राप्ति का साधन ५५

त्यागी साधु ३७०

धियोर्नाफिकल मानायटी ३८२ (पा० टि०)

धियोर्नाफिन्ट ३७६, ३९३, हिन्दू ३८२

धेनाथी देग ४८ (पा० टि०)

दण्ड-पुरस्कार १२०

दर्शन, आधुनिक १८५, उमकी उप-योगिता १७३, और तर्क ९५, और धर्म २४९, क्रिया १०९
 दर्शनशास्त्र ५३-४, २९९, ३३८, उमका मत १६९-७०, और प्रकृति ३००

दानव और देवता ६७

दानव-पूजा २९४, -योनि २७

दार्शनिक, आधुनिक १२८, एव मर्हर्षि, उनका विश्वास २३१, जर्मन १७५, पण्डित ४४, भाषा ४४, मिद्धात १७५

दिव्य प्रेरणा २७३, स्फुरण २७२ (देखिए अन्त स्फुरण)

दिव्यातर (Transfiguration) २७२

दीवान जी ३६७, साहब ३६५-६६
 दुःख, उमका आगमन, वासना से १७४, उसकी उपयोगिता १५१, उसकी न्यूनता के लिए कर्म ५४, उमसे शिक्षा १५१, और अशुभ ५६, और ज्यामितीय क्रम १३७, और सुख, परस्पर आश्रित ५१-२, -कष्ट और घनवान ५१, गठिया के समान १७४, -भोग ५२, १४१, भोग, उसके भीतर गरिमा १५१, -सुख और पशु ६७-८

देव ३४, और असुर ३०१, चरित्र ५८, जीवन ३७, -दासी ३३७, -देह २७, -मानव १०५, २८४, ३६७, -शरीर २६-७

देवता, उनके कार्य के उद्देश्य और जिज्ञासा ६४, नीतिपरायण ६४,

प्राचीन ६४ संबंधी चारणा और प्रकृति ८२

दिव्य ४२ प्राप्ति १३४ विभिन्न पत्र का नाम मात्र १३४

दिव्यात् २७

द्वयोपाख्यात २११

द्वयोपाख्याता ८२

देश * आकार-उत्पत्ति का उपादान १३५ उसका अस्तित्व ९ उसकी मूल्य का विज्ञान ५६ और काष्ठ ४५, ९ २ १ और काष्ठ मासा के भीतर १३५ काष्ठ और निमित्त ४५ बर्बरों का १४ १४६

देश-काष्ठ-निमित्त १०-१ ११ ४६, ८५ ६, ८९ ९ उसकी समष्टि १ उसके नियम ६७ उसके भीतर विशेषत्व ९ छाया सङ्घा ९१

दिसाई, हरिबास बिहारीबास ३२९ ३६४
दोह, आत्मा नहीं है ११ और मन ३ १७१ स्तूक २५ (बिछिये शरीर)

दोन या भाष्य २१

दोषी कृपा २४४ प्रेरणा २७२, २७४

दोहिक कष्ट ३८९

दोष उसका कारण ७

दोष और संघर्ष ४ १३१

द्विषेयी मनिषास ३१३

द्वैत अवस्था २३३ तत्त्व १३८

भाव १३५, १३७ मिथ्या १३५

द्वैतवाद ९६, २ ४ २१२, २१४

१५ अपरिमाणित १८

द्वैतवादपरमक बर्म ९७

द्वैतवादी ३२३ १ १८९-८८

२ ४ २ ९ उनका कथन ९६

उनका बृष्टिकोष ९६ उनका मत

२६ उनका विभिन्न सिद्धांत २ १

उनकी अभिक संख्या का कारण

९६ उनकी ईस्वरसंबंधी मात्स्यता

२ ४ उनकी चारणा २ ८ और

अद्वैतवादी २५ भाग मिथ्या ३

धर्म २ ५ धर्म की लोक-प्रियता

का कारण ९७ धर्म प्राचीन ९३

भारत्या १३५ उनके निरामिय तथा

अहिंसावादी २ ७ भाग और

अमर ३

धन तथा विकास ३६८

धर्म ५८ १४४ १९४ ९५, २ ५,

२८२, ३३७ ३८४ -अभ्ययन

१३३ २२८, २४३ -अनुयायी

२५८ -अन्वता ५५, २४१

-अन्वता का सूत्रपाठ २४१ -अभ्यु

दय और निश्चयस की सिद्धि ३२७

-अवधम्बी २ ७ अर्थक संघ

३१४ -आचरण १७४ आत्मज्ञान

ही २४७ आत्मदायक २१

इन्द्रियातीत भूमिका की वस्तु

२६३ २७१ इत्थाम २७८

ईसाई ५ १८२, २४ २४९

उदार, उसकी धर्मिता २

उत्तका स्वीकार्य २२८ उत्तकी

बोधना २७५ उत्तकी सत्यता २२८

उत्तमें तत्त्व और धर्म १४९

उत्तका अल्पविश्वास ७ उत्तका

अर्थ वा परिभाषा ३२८ उत्तका

आत्ममूलक सिद्धांत १९१

उत्तका आचार पितृ-पुत्रा और

जीन १९२ उत्तका आरम्भ

६१ उत्तका आदिमति प्रकृति

-पुत्रा से १९१ ९२ उत्तका चतुर्थ

५८ उत्तका उपदेश ७९ उत्तका

एकमात्र पत्र ५ उत्तका एकमात्र

अर्थ १५४ २५२, २७१ ३२८

उत्तका नाम आत्मा से ३२८

उत्तका क्षेत्र २७१ २८ -८१

२८४ उत्तका पत्र २४१ उत्तका

परम भाग का दाना २७७ उत्तका

परमीहृदय २३४ उत्तका प्रत्य

कीकरण और उपाय २४८ उत्तका

प्रमाण, मनुष्य-रचना की सत्यता पर २७९, उसका प्रादुर्भाव २३२, उसका प्रारम्भ ७८, १६८, १९१, उसका भाव ६४, उसका मूलस्रोत २७४, उसका यथार्थ आरम्भ ५४, उसका यथार्थ विज्ञान २५१, उसका लक्ष्य एक ३०२, उसका वास्तविक बीज १९३, उसका विकास १९१-९२, उसका व्यावहारिक पक्ष २४८, उसका सार ३९, १६७, उसका सार-तत्त्व २३९, उसकी अभिव्यक्तियाँ और मूल धर्म तत्त्व ७०, १८२, २४३, उसकी आवश्यकता २०१, उसकी उत्पत्ति २५४, उसकी उदारता और महत्ता का परिचायक ६९, उसकी उपयोगिता २६९, उसकी एक स्वर से घोषणा ५, उसकी क्षमता २६९, उसकी तीन अवस्थाएँ २४०, उसकी नीव ३२७, उसकी पवित्रता एव पूर्णता २०९, उसकी भित्ति ७९, उसकी मान्यता २५५, उसकी रूपरेखा ३२०, उसकी विनष्टता के प्रति भय २२७, उसकी शक्ति १९१, उसकी शिक्षा ३७०, उसकी शिक्षा, अनुभव-माध्यम से २५१, उसके गुण १९१, २०९, उसके विषय में महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५, उसके शाश्वत तत्त्व २७८, उसमें अद्भुत शक्ति २००, उसमें विश्वास और प्रत्यक्ष अनुभूति ३९, उसमें स्वाधीनता ७०, उसे न मानने से बुराई ३३८, एक, और साधना अनेक २५३, एकभूत, उसका सदेश २२७, एक सूत्र में मोती के समान २५२, एक ही आधार पर आधारित २३३, एव देश ३४३, और अवर्म ९४, १६८, और आन्तरिक मनुष्य १९८, और आनन्दमय जगत्

१५४, और ईश्वर १६८, और ईश्वर की धारणा ६१, और दोषारोपण ३११, और प्रेरणा-शक्ति १९१, और बुद्धि २७९-८०, और मानव-जाति १९१, और युग ६, और विशुद्ध विज्ञान १९८, और समाज ६८, और सिद्धांत १९४, २८५, -कार्य १८८, कुसस्कारपूर्ण ३६९, -गुरु २४६, २४९, २७५, ३२३, -गुरु एव विचारक २७२, -गुरु तथा मार्ग २५०, -ग्रन्थ ५, १६७, २००, २०३, २१३, २४६-४७, २४९, २५९, २७९, -ग्रन्थ, उसका ज्ञान २३४, -ग्रन्थ को गढते हैं २३४, ग्रहणशील होना चाहिए २००, चार्वाक के अनुसार ६९, -जगत् ७०, जैन ३०९, ज्ञान तथा दर्शन २०३, तत्त्व १६६, १७४, तत्त्वज्ञ १०६, तत्त्वत एक २२८, तथा आध्यात्मिकता १९७, तथा रोटी-कपड़े की समस्या २६९, दूत २७९, द्वैतवादात्मक ९७, द्वैतवादी, प्राचीन ९३, निम्नतम ५८, निरर्थक २७८, पुराना और नया केन्द्र ३६६, -प्रचारार्थ सन्यासी ३९५, -प्रणाली १८३, -प्रतिनिधि ३६७, प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय १६६, प्राचीन ६१, १०८, बौद्ध ९४, १८३, २४०, २४९, २५७, ३०८, ३९५, ब्राह्मण १९४, भगवत्प्राप्ति ही २५३, भविष्य का ९४, -भाव ७०, -भाव, आदिम ६२, मत ५३, २९४, ३२६, मत और नम्प्रदाय-समूह ३००, मत, श्रेष्ठतम ३००, -महामभा ३०७-९, ३१२, ३१४, ३१९, ३४२-४३, ३५१, ३८३, मानव-मस्तिष्क की आवश्यकता २०८, मूलत एशिया से निम्न २३१,

मूल्य सभी एक २३५ स्त्री
 विज्ञान २५२ -साम ३६२
 लोकप्रिय २७८ वर्तमान उसका
 भावा १९४ वर्तमान जीवन की
 वस्तु २७४ वर्तमान में अनुभूति
 २४६ विज्ञान ५१ विज्ञान और
 अन्वेषण-पद्धति २७८ विज्ञान और
 उसमें निश्चयत्व का अभाव २५१
 विषय २४९ विश्वास ३१२
 विश्वास की वस्तु नहीं होने और
 बनने की २७९ -विषयक हमारे
 विचार २५५ वेदान्त ६८
 -शास्त्र हिन्दू ३ २ संघ २ २
 -संघ और रहस्यवादी २५१
 संबन्धित उनका मठ और संस्था
 पक १९४ सन्ने २३५ सटीक
 ५५ सत्य की खोज में २३८
 सनातन ३१६, ३४३ -समा ३७५
 ७६ सभी सत्य ३२४ समाज-
 सुधारक से उसका मतलब नहीं
 ३२८ सम्पूर्ण मानव-जीवन में
 परिष्कार २६९ सम्प्रदाय २८९
 २९१ सर्वश्रेष्ठ प्रेरक शक्ति
 १९९ सर्वोच्च लोक का २५४
 -साक्षात्कार ही एकमात्र मार्ग २४६
 सामान्य केन्द्रीय भित्ति ७९ सार्क-
 भौम २३४ ३२६ सिद्धांत
 मन्त्रिक की बात नहीं २३४
 स्वमायता पवित्र २ ९ स्वार्थो-
 न्मूलन ही २५४ हिन्दू ३ ९,
 ३२८ ३४३ ३६२ ३६६ ३९५
 वर्धपाठ ३१३ ३३६ ३५६
 धर्मधर्म ३७ ३२६
 बारना अभीष्टवी धर्माधी उत्तरार्द्ध
 की ९३ प्राचीन और वर्तमान
 ६१ -साम २ ४
 धार्मिक अनुभव २४७ अधिष्ठापित
 २ १ आर्यमी २४६ आर्य
 २ उपदेश ९७ उपास्यान
 २४९ उपासना ३८६ उर्ध्वता

२ २ उसके द्विष्ट बुद्ध प्रतिष्ठा
 ७९ उसके होने का अर्थ २४६
 एकता का सम्बन्ध १९१ क्षेत्र
 २४३ प्रत्य २४७ चिन्तन १९९
 २ २ ३३१ वेतना २४१
 जीवन ३६ तत्त्व २७४ तथ्य
 २४७-४८ नियम २ पद्धति
 २५८ परिभाषा १ ६ पुस्तक
 २५९ प्रकृति २७२ प्रकिया
 २३७ प्रकृति की विधि २३७
 बनने के लिए उपामि २४८ माय
 ३२ ३२३ भुजा २३७ छहर
 ३६६ बाद-विवाह २५२ वास्त
 विक ७९ विकास ९६ १९१
 विचार २ २४१ २६४ ३१९
 विचार-समूह ३६ व्यक्ति १७४
 विद्या २५१ ३६९ संविद्य २५३
 संस्कार २४८ संस्था ३४ सत्य
 २७५ सिद्धान्त २४२ सोपान और
 मानव-मस्तिष्क २ स्वर्णता ६८
 ७ स्वाधीनता और भारत
 ६९
 धार्मिक एवं अधार्मिक मिथ्या ३७८
 धार्मिक क्रोध ३७८
 धार्मिकता उसकी परत २३५
 'धार्मिक हत्या' ३७८
 'धर्मों की सहानुभूति' ३९
 ध्यान तथा एकाग्रता २५६
 ध्येय और विषय १९६
 ध्वनि-कल्प १ ९
 नसब-विज्ञान २३५
 नचिकेता १६१ १६३ १५, १७
 नरक ३३४ ८५, २९४ २९८ ९९,
 ३३७ ३६३ उनका द्वार ३३७
 नरपशु २६
 नरसिंह ३५५, ३८२, ३९३
 नरसिंहाचारिय, गद बहादुर ३७१
 नरसिंहाचार्य ३१ ३१२
 नरेन्द्र ३३४ (केलिए विश्वकामन्द)

नव व्यवस्थान १५५, २२९, २३२, २८४
 नाजरथ २४९, २७२, २९०
 नाम और रूप ३०, ९१, २११, और
 शरीर २११, भ्रमात्मक है ३१,
 -यश ३१०, ३१२, ३१८, वस्तु
 सबही मन की धारणा ९१
 नाम-रूप ३१, ३७, उसकी माया ३१,
 उसमें भेद ३१
 नायक, आदर्श २४०, पुराण के महान्
 नैतिक पुरुष २४०
 नारद २७७, और माया की कथा
 ७५-६
 'नारियो के अधिकार' २५८
 नारी, उसकी पूजा ३३७, देवी स्व-
 रूपा ३१८, घर का आधार-स्तम्भ
 ३१७ (देखिए स्त्री)
 नार्वेवासी, उनकी स्वर्ग सबही धारणा
 १६९-७०
 नाश का अर्थ १०१
 नास्तिक ६८, ९७, २३४, २७५,
 आधुनिक २०२ (देखिए अनी-
 श्वरवादी)
 निमित्त ८५-६, और जीवन ५५,
 कारण १०१ (देखिए कार्य-कारण)
 नियम, उसका अर्थ २६१, उसका पालन
 २६१, उसका पालन और मनुष्य-
 प्रकृति २९४, एकत्व का १३८,
 और प्रतीक २३५, और भविष्य
 १२५, गणितीय क्रम १३७,
 ज्यामितीय क्रम १३७, प्राकृतिक
 १५२, २६१, प्राकृतिक और
 मानव-जाति ५९, भौतिक १९४,
 सामाजिक १९६
 नियात्रा ३३५
 निरजन ३६१
 निरपेक्ष ब्रह्मसत्ता ८७
 निराशावाद ४७, १३७, और आशा-
 वाद, अतिवादी दृष्टिकोण २६७
 निराशावादी ४६, ५०, ५२, ५७,
 दृष्टिकोण २६७-६८

निरीश्वरवादी ९३ (देखिए नास्तिक)
 निर्गुण, इष्ट देवता २८६, उसके विना
 सगुण नहीं २८७
 निर्वाण, अवस्थाविशेष १८३
 निर्वाणषट्कम् १९० (पा० टि०)
 निर्विकल्पावस्था १९४
 निर्विशेष २८७, उसका बोध २८७,
 उसकी उपासना और परिणाम
 २९०
 निवृत्ति, उससे धर्म का आरम्भ ६३
 नीति, उसका अर्थ १७६, और दया-
 धर्म १७६
 नीतिपरायण और सामाजिक प्रतिष्ठा
 १६८
 नीतिशास्त्र १९५-९६, २६५, ३७८,
 उसका आदर्श १९६, उसका
 क्षेत्र १९७, उसका मूलतत्त्व २३९,
 उसका सम्पूर्ण विधान १९६, उसकी
 पृष्ठभूमि २३९, और आध्या-
 त्मिकता २१४
 नीति-सहिता, उसका तात्पर्य १५,
 उसका मूलमंत्र १७६
 'नेता' ३९४
 नेत्रपट (retina) २३, १२७
 नेफोल ४८ (पा० टि०)
 नैतिक विधान १९५, सतोष ३५२
 नैतिकता, उसका अर्थ ९२, उसका
 विकास २३९, उसकी भित्ति २३९,
 और पवित्रता २४०, सर्वोच्च ९७
 नैयायिक प्रक्रिया १८७
 न्याय-युक्ति ३९
 न्यूटन २४२, २८०, उसका आवि-
 ष्कार २४२
 न्यूयार्क २१, ९९, १०८, ३३०, ३४१-
 ४२, ३४४, ३४६-४७, ३५५,
 ३५८, ३७५, ३७८-७९, ३८६,
 ३९१, प्रदेश ३८५, वासी ३९२
 'न्यूयार्क सन' ३४३
 पचभूत, उसकी समष्टि ८

पथिन्द्रिय ६५, २८७
 पण्डित दार्शनिक ४४
 पण्डे-पुरोहित २४६
 पदार्थ उसकी अवस्था २५ उसका
 अस्तित्व का कारण १७२ और
 परमाणु १२५ कारणीभूत १२७
 पद २२ ज्योतिर्मय १ देह
 १ बुद्ध २२ राज्याधिक ३५७
 सान्त १३
 परमिष्ठा और हिर्या ३३३
 परम तत्त्व १६५, २१६
 परम पिता २८९
 परमहंस २६
 परमाणुवादी २ ४ उनका अनुसार
 प्रकृति २ ४
 परमाणु-सिद्धांत २ ४
 परमात्मा २१४ २३४ २६७ २९
 ३२२ ३३३ ३६८ ३९
 परमानन्द १९८ ९९ २ ६, २७०-७१
 परमार्थतत्त्व १६५ विज्ञान १६६
 परमेश्वर २३ ३५२, ३५५
 परब्रह्मण्य १६ बाह्य ३२
 परापूर्वा ३
 पराशक्ति ४६
 परिणामी जीव १२
 परिव्राजक प्रचारक ३१८
 परीषकार १५, २ ६ ३१२ उससे
 पुष्य ३३७
 पवित्रता और मुक्ति का प्रश्न १८६
 एवं पूर्णता २३३
 पशु-मानव ५९
 पश्चिम और पूर्व में अन्तर ३३४
 पश्चिमी देश ३२५ राष्ट्र ३२५
 पॉटर, पामर, श्रीमती ३७१ ३९१
 पाठशाळा निःशुल्क ३६६
 पादरी १३९
 पाप २ ३३ १३१ १५१ २ ६
 २ ९ २१४ २२९, २३८ ३ ३
 ३२६ ३३३ ३५४ ३७८ -अथवा
 बार १९ उसका प्राबुत्व २३

भीर अपवित्रता २९६ और
 दुष्कर्म २७९ -कर्म २ ९ -ताप
 २०८ ३ २ -तापभीरुसत् १९
 परपीडन ३ ३३७ प्रकृति १८
 भय ही ३५७
 पामर, श्री ३३०-३२ ३४१ श्रीमती
 ३७१ ३ १ सेनेटर ३८३
 पारमार्थिक व्यापार और कर्म १६६
 सत्ता १२
 पारसी ६
 पार्थिविस्ट १६३
 पॉल करस डॉ ३८१ ३८३
 पॉल संत ३
 पाश्चिक जीवन ६५
 पाश्चात्य और भारत में धार्मिक दृष्टि
 कोम २५८, २६१ और हिन्दू
 की जीवन-दृष्टि १४४ जाति
 १७९ तथा भारत में अंतर ३१५
 बर्तन २३८ देश १४५, १७९,
 २ २, २७१ ३६९ वेदवादी
 ३६८ लोप १४४ वासी ३६८
 विचारक २६ संस्थान १७
 पितर-पूजा उससे धर्म की उत्पत्ति और
 चीन १९२ और भारत १९२
 और हिन्दू १९२
 पिता में एकत्व २५९
 पितृपाल २७
 पुष्य २५४
 पुत्रत्व २२९
 पुनर्जन्म ३३ ११३-१४ १३ उसका
 सिद्धांत २२९ और आत्मा की
 स्वतंत्रता २२९
 पुनर्जन्मवाद ११३ १४ उसका नियम
 ११३ उसके बिना ज्ञान अशंभव
 ११४ और जीवात्मा की स्वा
 पीनता ११९ नैतिक उसका का
 उद्देश्यक ११३
 पुरस्कार और बंध २७
 पुराण आधिम काल में २३९ उसके
 नायक २४ उसमें सन्नि की

भावना २३९, और आत्मा मे लिंग
या जाति-भेद ३२७, और आदर्श
२४०, और सिद्धांत २४०, पथी
३०७, प्रभावशाली २४०
पुरुष, अनन्त ३९, पूर्णस्वरूप ३२,
साधु ३४, सिद्ध ३४
पुरोहित ६९, २७८, ३१८,
उनके अत्याचार ३११, और
समाज-सुधार ३२८, -सम्प्रदाय ६८
पुरोहिती शक्ति और विदेशी विजेता
३६९
पुलमैन, श्रीमती ३८४
पुस्तक, आन्तरिक २५१, उससे आत्मा
की सृष्टि नहीं २३४, तथा औप-
चारिकता २५३, दार्शनिक ४२,
बाह्य २५१, मात्र मानचित्र २४७
(देखिए ग्रय)
'पुस्तकें' २५३
पूजा-अर्चना १८३, -पद्धति २५९
पूना ३१३
पूर्ण पुरुष १७५, मानव १०६,
स्वरूप पुरुष ३२
पूर्णता, उसका अर्थ १७५, उसका मार्ग
३३२
पूर्वजन्म, उसका अस्तित्व ११३
पृथ्वी, उसकी उत्पत्ति १०४
पेरिस ३१०
पेलियस ४८
पैगम्बर २४२-४३, उसका तात्पर्य
२४४, और वेदान्त २४९-५०,
वनने के लिए प्रशिक्षण-केंद्र २४३,
वनाने का महान् कार्य २४४,
विशिष्ट तत्त्व की साकार प्रतिमा
२४६, सिद्ध २४७
पैशाचिक उपाय ५०, काण्ड १५०,
घटना ६५, मानव-प्रकृति ५१,
रीति ५०, हिन्दू ५६
पोप, धर्म के ११४, विज्ञान के ११४
पौराणिक कथा ७, ६५ (पा० टि०),
२३१, भाषा ७, युग और सम्यता

का उपाकाल ३, साहित्य, ग्रीक
४८ (पा० टि०)
प्यारीमोहन ३४९
प्रकाश, उसका दर्शन २५३, और अन्ध-
कार ५९, ६६, और छाया २९५,
और ज्ञानस्वरूप ७२, किरण २४,
१२७
'प्रकृत मनुष्य' १३
प्रकृति ३५, ४६, ७३, ७७, ९२, १३९,
१८३, १८६, २०५, २४२, २६०,
२९५, ३२१, अचेतन और जड
७४, अनन्त का सीमावद्ध भाव
९२, अपने कार्य मे एकरूप १००,
आत्मा के सम्मुख ३२, आत्मा के
सम्मुख गतिशील २१९, आतरिक
१९७, २३७-३८, उपादान २०४,
उसका आधारस्वरूप १३०, उसका
ज्ञाता २९७, उसका नित्यत्व २०४,
उसका नियमन १९७, उसका परि-
णाम ३३, उसका बन्धन ५८-९,
उसका भविष्य और भूत १२६,
उसका विरोध ५९, उसका सौंदर्य
और महिमा १०८, उसकी अभि-
व्यक्ति १२६, उसकी नियमावली
१००, २९४, उसकी भावमूलक
शक्ति ३१९, उसकी शक्ति का
मानवीकरण १९३, उसकी सहायता
से ब्रह्मदर्शन १५८, उसके ऊपर
उठने के लिए सघर्ष १९७, उसके
गुलाम ७४, उसके द्वन्द्व से परे
२५३, उसके नियम का पालन
२६१, उसके पीछे आत्मा १३०,
उसके प्रभु २९५, उसमे एक नियम
का राज्य ११६, उसमे जन्म-
मृत्यु ३३, उसमे विकास की प्रक्रिया
१०४, उममे शक्ति २०३, एव
जीवात्मा से पृथक् ईश्वर २०४, और
देशकालातीत सत्य १४, और
विविधता ८४, और वेदान्ती द्वैत-
वादी २०४, तथा आत्मा २०९,

ईवी २३६ परम सुन्दर १५८
परिवर्तन की परिणामी २९
बाह्य ९५, २३७-३८ मीतिक
२९६ मनुष्य का उद्देश्य नहीं
१९७ मानव १२२ १९७ मान
वीय २६ कपी पुस्तक २१२
व्यक्त २ ३ व्यक्त का परिचय
वीर विरव ८१ साहस २२८
संबन्धी चारपा ८२ सहीम और
मनुष्य का ज्ञान ९२ हिंसा से सद्गुण
१२६

प्रगति उसका चरमतम विकास २१
उसका पत्र २७५
प्रवाही और नियम १
प्रतीक उसका विकास २४
प्रत्यक्षावादी १६६
प्रत्यक्षानुभूति ३८४ १६५ ६६,
१६८ और धर्म १६६ धर्म का
सार ३९ सत्य की २४४

प्रत्यक्षीकरण २४८
'प्रबुद्ध भारत' १९५
प्रभु ७५, १२६ १३९ २६२, ३२३
३२५ ३३५, ३९६ उसका संसार
२६७ प्रत्येक मानव हृदय में १२
सर्वसमाधीन २३ सर्वव्यापी १५१
प्रकृत्य ५ ६ उसकी कथा ६
प्रभृति जगत के कर्म का परिणाम
२३ और इच्छिय ६५ और
निष्कृति ६३ और संयम ६४
पाषाणिक ३५८ समस्त कर्म का
मूल ६३

प्रवाल महासागर ३५५
प्राचीन कथा १४८ देवता ६४
प्राचीन नया मन व्यवस्थान १८३
प्राचीन व्यवस्थान ६१
'प्राप्त्य जिनियरीफिड' ३१७
प्राप्त्य चिन्तन १४४ दर्शन और धर्म
१६६ हम १५५ धार्मिक मान
३ -धामी मानव ३१७
प्राच ४ २१७ उमका प्रमाण

और जगत्-सृष्टि २२ उसका
स्वरूप १४५ और आत्मा २५
-कर्म से विश्व-उत्पत्ति २ ३
तत्त्व ४४-५ महासक्ति की जमि
व्यक्ति २२ मूल २२

प्राणायाम उसका छन्द २५६
प्रतापचन्द्र मजूमदार ३ ९
प्रतिबन्धिता उसका सिद्धांत २६६
प्रार्थना-विधि २८९
प्रेत-चरित ५८
प्रेतारत्ना १९२
प्रेम २६२, २७१ अस्मृत और माया
७५ उसकी अनन्त सक्ति ७१
और कबीकीय भाव ६४ और
जागतिक प्राणी ३७३ और मान
वता ६३ सुत्र २७१ तथा कबीका
६३ तथा निष्कपट सक्ति ३९६
तथा मानव-जाति ४१ भाव ३४८
-सागर २८९

'प्रेम तेजस्विता स्वाधीनता' ३८८
प्रेम और श्रेय १६५
प्रेरणा चेतन से प्राप्त २७२ ईवी
२७२ सहज ११६
प्रेसबिटेरियन ३४४ पुरोहित ३७८
प्रीट श्रीमती ३९
प्लाइमाउथ ३९
प्लेटो ९४

फल कर्म का ११४ पूर्व अनुभूति का
११६ समष्टिमूल ११४
फ्रायर पीप २४७ ३७९
फ्रिंस श्रीमती ३८७
फिरिक ३९ ९१ लीफिंग ३७८
फिलिप्स कुमारी ३८५
फैनी हार्टेली ३ १
फोनीपाक ३७६
फोरोम ३४५
फोन उमके निवास २५८ उसकी
जाति २७७
फोलीसी विज्ञान ३८५

फिक्सस ४८ (पा० टि०)

फलेग ३२२

वगाल ३२२, ३२५, ३३४ (पा० टि०)

वगाली ३७८, कहावत ३४९, ३६१

वन्धन ३७, ४८, ७८, ९५, १३१,

१७५, २०६, २१८-१९, २५३,

२५७, २६०, २९३, २९५, अनै-

तिकता का ९५, उसकी कारणीभूत

प्रकृति २९७, उसकी धारणा

२९५, और मुक्ति २९५, नैतिक,

उसकी धारणा २९६, प्रकृति का

५८, मुक्त ६९, ससार का ५५

वन्धुत्व, उसकी भावना २०१

वम्बई ३९३

वरोज़, डॉ० ३०९, ३१९, ३४३, ३७५,

३८०, जे० एच० ३८३, प्रेसी-

डेन्ट ३३६

वर्मी २५७

वर्वर देश १४५

वलिदान और बड़ा काम ३५६

वहिस्त २७८ (देखिए स्वर्ग)

वहुईश्वरवादी ३२६

वाइबिल १६८, १७५, १८२-८३,

२२९, २३१, २३५, २४२, २४६,

२७९, २८४, २९०

वाँनी, श्री, उनके गुण ३१९

वालक, क्रमसकुचित मनुष्य १२३

वाल-विवाह ५५

वालाजी ३८२, ३९४

विम ३५५

विमला ३६२-६३

बीज, उसमें उद्भिद् की सृष्टि १०१,

और सृष्टि १००-३

बुद्ध ७, ४७, ९३, १२६, १७६, १९४,

२२७, २५८, २७६, ३००, ३२४,

३२९, और ईसा २४१, भग-

वान् ६९, महान् ९७, -मानव

८, १०६ (देखिए बुद्धदेव)

बुद्धदेव ६९, ७८, ९३-४, ३११, ३६०-

६१, उनका अद्भुत प्रेम और
हृदय ९४

बुद्धि २३, १२७, उसका आदि तत्त्व

२८०, उसकी अभिव्यक्ति १०५-

६, उसकी देवी २७७, उसकी

परिभाषा २७२, उसके सहारे

अस्तित्व का अनुभव १११, उससे

आशय २८०, एव मनन १४३,

और जड १११, और सस्कृति

१४९, क्रमसकुचित १०४, जगत्

की अन्तिम वस्तु १०५, पहले

क्रमसकुचित, फिर क्रमविकसित

१०६, विश्वजनीन का नाम ईश्वर

१०६, विश्वव्यापी १०६-७

बेकन स्ट्रीट ३५१

बेविलोन ६, १९१-९२

बेविलोनियावासी २३१

बैंगली, परिवार ३९१, श्रीमती ३३२,

३४१, ३४६, ३५८, जे० जे० ३८३

बोधिवृक्ष ७८

बोस्टन २७३, ३०७, ३३०, ३३२,

३४५, ३४७-४८, ३५१, ३५५,

३५८, ३७५, ३८१, ३८७, ३९१-

९२, निवासी ३९२

'बोस्टन ट्रान्सक्रिप्ट' ३९२

बौद्ध २८, ४४, ६८, ३८२, ३९५,

अर्वाचीन २५७, आदि २५७,

उनकी प्रमुख प्रार्थना ३३३, उनकी

मान्यता २५५, और जैन २०२,

और नास्तिक ७१, और नैतिक

नियम १९४, दक्षिण सम्प्रदाय के

प्रतिनिधि १९४, दर्शन २८,

दार्शनिक ४४, धर्म १८३, २४०,

२४९, २५७, ३९५, धर्म, उसके

अनुयायी २५५, लोग २९, २०७,

सम्प्रदाय १८५

बौद्धिक अन्वेषण २७८, अवस्था १९४,

आनन्द ५५, २७०, चिन्तन १९४,

प्रगति, उसका मूलस्रोत २६८, श्रद्धा

९३, सुख २७०

ब्रह्म २६ १३ १५, १२६, १४२,
 १४४ १४८ १७ १८३ २१३
 २१६, २२ २४३ २५९ २८२,
 २८४ अमन्त ९ अपनो सत्ता
 का आधार ८७ उसमें बेस-क्राक-
 निमित्त नहीं ८७ एकमेबाहिती
 यम् ८७ और जगत् ९१ १४२
 और विद्व २२ और विपयी
 ९२ मान सहाय ३६३ वर्जन
 १४२ १५६ नित्य पूर्ण १७१
 निर्गुण पूर्व ७२ निविधेय उसकी
 परम अभिव्यक्ति २८८ बुद्धि
 १५५ भाष ८४ १५३ भाष
 निर्गुण ९७ लोक २६-७ ३२ ३६
 १४२ नहीं जगत् ८५ सास्वत
 २६९ संबधी विभिन्न मत और
 मूलमूल तत्व ८ सत्ता निरलेख
 ८७ सत्ता पूर्व ८९ स्वल्प ४
 १५ १९ २९९

'ब्रह्म की जानना' ८७
 ब्रह्मचर्य १७ -पठनारण ३१६
 ब्रह्मत्व उसकी अभिव्यक्ति ३२८ और
 पयुक्त २२३
 ब्रह्ममय १७
 ब्रह्माण्ड २२ २९, ४२ १ २ ३
 १६-६१ १७१ १८२ २११
 २२८ २८८ अस्मिन् २१२
 ईश्वर क शरीर जैसा १८१ उसमें
 मुक्ति २९७ जगत् १-१
 १ ६ ब्रह्म २१४ २९४ विविध
 १२५ विद्व १ ५, ११३ १८३
 ३ १ मूलम १ ३ २१४ २३
 २६४ स्वल्प १
 ब्रह्माण्ड १७ श्वायी ३६७
 ब्राह्मण गमात्र १ १ १४३ ३५४ ३७५
 ब्राह्मण १ १६४ ३११ ३२,
 ३३७ ३६२ धर्म १ ४ भाग ४४
 भाग वेद का १४२
 और धीकी ३४१ ३४५, ३८४
 ईश्वर धीनुन ३ १

भक्ति २ ४ उसके गुण और अवगुण
 ३२५ भक्त तथा भगवान् एक
 २६२
 भगवत्कृपा ३९३
 भगवत्सेवा ३५
 भगवद्गीता १७८ २२९ अन्तिम
 उपनिषद् १७८ (देखिए गीता)
 भगवान् ४ ९३ ९८ १२ १२६,
 १३६, १३९ १५२, १८९, २५२-
 ५४ २६२ २९९ ३ ३१२,
 ३२०-२१ ३२८ ३४२, ३५
 ३५६, ३६५, ३६७ ३७८-८
 भगवत २५९
 'भगवत विधर्म' ३१८
 मर्दुहरि ३३३ राजा ३५४ नीति-
 शास्त्रम् ३५
 भागवत और पुराण ३९
 भाष्य उसका शेष ४ और ईश्वर
 ११९ और जगत् ११९
 भास्व २१ ४१, ५८, ९३ ४ ९६,
 ९७, १४२ १७२, १८७ २ २
 ४ २ ७-८ २५८, २६१ ३ ९,
 ३१२, ३१६ ३१९ ३२१ २३
 ३२५, ३३१ ३३५ (पा टि)
 ३३९ ४३ ३४५ ४६ ३४९,
 ३५२, ३५४-५५, ३५७-६४
 ३६७ ३६९, ३७-७१ ३७५,
 ३७७ ३८ ३ ५ ९६ उत्तर
 ३११ उसकी अकीम-समस्या
 ३४५ उसकी बेटी ५९ उसकी
 स्थिति ३३७-३९ उसमें प्रचलित
 विविध धर्म २ २ और पाश्चात्य
 में जगत् १८, ७ और समाज
 मुधारक ४९ ब्रह्मिण ३३७ ३४
 परिचय ३६ मी ३६८ माता
 ३२९ नहीं उक्त ज्ञानि पार्थिव पर
 अत्याचार ३३७ बड़ी के गमात्र
 मुधारक ३११ बड़ी पार्थिव
 श्वाधीनता ९८ शर्मा ३३९
 (देखिए ब्राह्मण ३)

भारतवर्ष १७, ६८-७०, ९३-४,
९६, १२३, १४२, १६१, १६७,
२०८, २२८, २४०, ३११, ३२५,
३३७, उसके अनर्थ की जड
३६९

भारतीय एव अमेरिकन ३४५, चिन्तन-
धारा २०२, दर्शन ६८, २०२-३,
२१४, दर्शन, उसका विकास-क्रम
२१४, दार्शनिक १३, २१-२,
द्वारा भारत की उन्नति सम्भव ३२९,
धार्मिक चिन्तन २०२, धार्मिक
विचार-समूह ३६०, नारी ५६,
पत्र ३७४, पुराण ७, मत १८१,
महिला ३७१, वायुमण्डल ३११,
ममाचारपत्र ३१४, ३९३, साधु
१७

भाव, उसकी समष्टि और नाम ६४,
पौराणिक या रूपक १८१,
भ्रमात्मक, स्वामित्व का १५३,
साहचर्य-विधान १०६, सूक्ष्म
से स्थूल मे १२५, स्वर्गीय १५३
भावना और आदि मानव ६२, और
इन्द्रिय १५२

भाषा, अलंकारपूर्ण १६१, और मात्रा
का तारतम्य ७, जर्मन २०२,
पौराणिक ७, यूनानी ३०८,
लौकिक १०९, वैदिक १००,
संस्कृत १०, १२८

भूत-प्रेत ५८, -योनि २७

भेद-ज्ञान ३००, -ज्ञान और अशुभ
१६, -भाव १४६

भोग-वासना ११४, १६५, १७४,
-विलास १५४, ३७०, विषय
१६५, सबकी धारणा १३७,
सामग्री १६२

भौतिक, अन्वेषक, उसकी प्रवृत्ति
२८५, कार्यकलाप २२०, घटना
१२६, जगत् २५१, २८७, द्रव्य
२१६-१७, निधि २६८, पदार्थ
२३७, प्रकृति २९६, प्रगति २६८,

रूपाकार १२५, वस्तु २६५,
वाद ९३-४, २२७, २३०, वाद
और भोग-विलास ३२२, वादी
२२, २३०, विज्ञान २२, २४२,
२५१, २६५, २७७, २९१, शास्त्र
१९५, २६५, शास्त्री २८१,
साधन और जगत् २००

भौतिक कोप' ११८

भौतिकी वेत्ता १६६

अम ६०, उससे अम की उत्पत्ति
२१३, और वादल का दृष्टान्त
२१३

भ्रान्ति और मनुष्य ३३

मन्त्र, उसका द्रष्टा १९४, विशेष व्यक्ति
की सम्पत्ति नहीं २४१, शब्द का
अर्थ २४१

मंगल १३९ (देखिए शुभ)

मक्का २४९

मजदूर तथा पूंजीपति ३६८

मजूमदार ३५४, प्रतापचन्द्र ३०९,
महाशय ३३५

मणिलाल द्विवेदी ३१३

मत और प्रणाली १८१, और सम्प्रदाय
का अपना महत्त्व २३४, मन का
व्यायाम और बुद्धि की कसरत
१८१, शिक्षा और मनुष्य पर परि-
णाम १८९

मतान्व और कट्टर ७०

मदर चर्च ३४१, ३४५, ३७९, ३८७
मद्रास ३४३, ३५३, ३७४, ३८१,
३८३, ३९५

मद्रासी वन्द्यु ३७७, शिशु ३७६,
शिष्य ३१९, ३७४, लोग ३७६

मन, अनेक द्वार जन्म-ग्रहण ११८;
आत्मा के हाथ यत्र १२८, आत्मा
नहीं ११-२, ११०, उच्चतर सत्ता
२२, उसका आधार १०, उसका
नियामक १५८, उसका व्यक्तित्व
और ईश्वर १७३, उसका संस्कार

५१ उसका स्वभाव १२
 उसकी अनिर्वायता ११ उसकी
 प्रकृति १३ उसकी शक्ति और
 शरीर १८ उसकी सीमा और
 विषय ८७ उसकी सृष्टि १२
 उसके कार्य पूर्वनिर्भूति के फल
 ११७ उसके द्वारा उपयोगी उपा
 यामग्रहण ११८ उसके द्वारा ब्रह्म
 वस्तु सहीम ८७ उसके पीछे
 आत्मा २४ उसके संस्कारों की
 छाया ११७ उसमें ही संस्कारवास
 ११८ एक प्रकार के परिणाम
 का नाम ८५ और आत्मा २४
 २१६ और बाह्य वस्तु का प्रभाव
 १११ और बुद्धि २४ ५४ ११
 और मस्तिष्क १८९ और धर्म
 तर्क १६६ और शरीर ११४
 और संस्कार ११ कमी निर्बल
 कमी सबल ११ तथा इन्द्रिय
 २ १ यंत्र मात्र १२८ बाह्य
 ११ शरीर का विरोधी नहीं
 २३८ शरीर में विद्यमान २३८
 संस्कार-सूय और ब्रह्मा ११५
 सत्त्व परिणामशील विचार प्रवाह
 २८ सर्वव्यापी २३
 समग्र और सिद्धिप्राप्त १८
 मनस्वात्म १५
 मनु महर्षि ६ ३१५ १६
 मनु ३१५, ३३७ (पा टि)
 मनुष्य भक्तानी २६ अन्तर्गत सत्ता
 का आशय मात्र १५ अनुभूति
 की समष्टि लेकर उसका जन्म
 ११६ अन्ता १६७ अपना
 उत्तरदाता २ ५ ६ अपना भाग्य
 निर्माता १२ अमन्य २९६
 भावित ११७ भाषुनिक ५५,
 २७७-७८ आन्तरिक १९८
 उत्पन्न कमी १६८ उत्पन्न अमरत्व
 और कामना १६६ उत्पन्न अमल
 म्य ३६ उत्पन्न आका के प्रति

विरोह ३ ३ उसका आदर्श
 १५६ उसका इतिहास १४ उसका
 चक्षुष्य १९९ उसका चक्षुष्य 'प्रकृति'
 नहीं १९७ उसका कर्तव्य १७६
 उसका कष्ट और कल्याण बेव्या
 १२ उसका केन्द्र १६१ उसका
 लोया हुआ राज्य १८१ उसका
 ज्ञान १८ ६७ १२२ उसका
 नाम नाम और नैतिकता का
 विकास २३९ उसका वैश्व और
 पशुत्व २४५ उसका बर्म आत्मा
 में २५२ उसका ध्येय मुक्ति
 २६१ उसका परम ज्ञान २७
 उसका प्रकृत स्वरूप १-१११
 ११२ उसका प्रकृत ९९ उसका
 ब्रह्मभाव १८५ उसका भय से
 मुक्त होना सम्भव ८६ उसका
 भ्रम २१२ उसका मन १ ८
 उसका पदार्थ 'व्यक्तित्व' १३
 उसका वस्तु के लिए सर्वत्र
 २५६ उसका वास्तविक प्रेम ४
 उसका विकास और शक्ति की
 अभिव्यक्ति २४ उसका शरीर
 २४ उसका शय १२ उसका
 सबसे बड़ा प्रयोजन १६ उसका
 समग्र जीवन स्वाधीनता है २९१
 उसका स्वभाव १९८ उसका
 स्वरूप १४ उसकी अमल की
 लोच २६१ उसकी असमर्थता
 १९८ उसकी भावना १९१
 उसकी आत्मा १३ १३४ २५२
 उसकी आत्मा अनुभवकर्ता छास्ता
 एवं लपटा १२९ उसकी आत्मा
 कार्य-कारणबाध से परे १२ उसकी
 आत्मा की अन्तर्गता ८९ उसकी
 आत्मा की व्याख्या २४ उसकी
 आत्मा ध्येय में २४ उसकी
 आशयवत्ता १९७ उसकी ज्ञाना
 १ ६; उसकी इच्छा ब्रह्म ३७
 उसकी इन्द्रिय की रूप २५ उसकी

ईश्वर सवधी धारणा २६०, उसकी उत्पत्ति १०३, उसकी एकता और आस्था २८३, उसकी कोटि ३४, उसकी चिन्ता और मुक्ति ११, उसकी ज्ञानक्षेत्र में सफलता २७०, उसकी दृष्टि १००, उसकी धारणा ६३, उसकी प्रेम की पहचान ३६०, उसकी भूल ३३, उसकी महानता के लिए तीन बातें ३२४, उसकी मृत्यु इच्छानुसार ५, उसकी विचारधारा ९९, उसकी सत्य तथा धर्म के हेतु चेष्टा ७९, उसकी सफलता और प्रयत्न १५६, उसकी सबसे बड़ी मिथ्या बात ३४, उसकी स्थिति, धर्म की बदौलत २६९, उसकी स्थूल देह और मन ११२, उसकी स्वाभाविक दुर्बलता ११९, उसकी हताशा और ईश्वरीय चाणी ७८, उसके अध्ययन के विषय २३७, उसके आदर्श नायक २४०, उसके आन्तरिक स्वरूप की जिज्ञासा १५९, उसके ईश्वर को देखने की दृष्टि २६०, उसके चारों ओर १००, उसके ज्ञान होने पर ३४, उसके द्वारा आत्मा का विषयीकरण २६०, उसके द्वारा विश्लेषण १०८, उसके पीछे यथार्थ पुरुष ६२, उसके भीतर कष्ट से छुटकारा पाने का रास्ता २५६, उसके भीतर स्वर्ग का राज्य २३३, उसके शाश्वत सगी २२७, उसके सत्य का ज्ञान ३९, उसके सामने दुःख का प्रतीक १९५, उसके सुखी होने की इच्छा ४, उसके स्वरूप-प्राप्ति में साधना २५९, उसमें अनन्त शक्ति २०, उसमें जगत् की महाशक्ति २०, एक अपरिवर्तनशील तत्त्व २५५, एक इकाई २५५, और अन्वेषण १९३, और अपरिमित

शक्तिवाला आदर्श १९५, और असतुलन २१०, और आध्यात्मिक प्रदीप २३६, और ईश्वर २६०, और जगत् ३, और धर्म का विकास १९१, और धर्म तथा सत्य-प्राप्ति का पथ ७९, और नियम २९३, और नीतिसंगत भाव ६४, और नैतिक भाव की उन्नति ६३, और पशु तथा उसमें अन्तर ६७-८, २६८, २७०, और पूर्ण आदर्श १४, और प्रकृति ७४, ३२४, और बीजाणु १०३, और बौद्धिक श्रद्धा की आवश्यकता ९३, और आन्ति ३३, और महान् सत्य ४१, और मृत्यु-भय की विजय-प्राप्ति १३, और रुचि के अनुसार आदर्श २५२, और शरीर सबधी सिद्धान्त २१, और 'संस्कार' २५, २१७, और ममाज १४, और स्थूल देह ५, और स्वतन्त्रता ३२१, और हृदय-ग्रन्थि १४४, कमचोर पौधा २१०, कर्म का शाश्वत फल नहीं २०७, किसे कहा जाता है १९७, क्रमविकसित बालक १२३, क्रम-विकास का परिणाम ७, चिन्तनशील और जगत्-समस्या १६०, चैतन्य-स्वरूप ३०१, जगली ५१-२, २९६, जगत् का ईश्वर १३१, जगत् की आत्मा १३२, जगत् की एकमात्र सत्ता १३१, जगत् में सर्वश्रेष्ठ प्राणी २७, जन्म की प्रक्रिया २६, जाति का स्वभाव १९८, जाति की चेतना का अग २४२, जाति के परित्राता ४७ (देखिए बुद्ध), -जीवन ३७, जीवन भर पहली में आवद्ध ६६, ज्योतिस्वरूप १४०, तथा आदर्श का चुनाव २५२, तथा इन्द्रिय, उसका प्रश्न २७१, तथा जगन्नियन्ता, अभिन्न २८८, तथा धार्मिक विचार

और सत्यता २६४ तथा मया
 विचार और असंतुलन २१
 तथा प्रेम और श्रेय १६५ तथा
 महत्त्वपूर्ण प्रश्न २५५ तथा मान
 सिक संवेदन २५५ तथा विरहास
 २५६ तथा व्यक्तिगत विशेषता
 २५२ विषय है २४४ इष्टा २४४
 द्वारा मस्तु कर्म और सकोचन
 १८१ द्वारा ईश्वर ज्ञातव्य ३२३
 निर्मूल और निर्मूल ईश्वर १८
 निर्मूल पुरुष निष्पाप उसकी अब
 मति ५ नीतिपरायण क्यों ९५
 परिणामतः परिवर्तनशील २५५
 पापी और कुष्ट ३४ पापवी
 प्रकृतिवाले ५१ पूर्ण और वासना
 २२२ पूर्णतम १४ पूर्णस्वल्प
 १४ प्रकृत ३७-मकृति २९३
 प्रकृति का बिरोधी ५९ अष्ट ५८
 बलवान १५५ भौतिक पदार्थ से
 निर्मित २३७ मदीन नहीं है
 ३३१ मुक्त स्वभाव १४ २९३
 मुक्त है ३७ मृत्यु के पास उसकी
 बला १७०-७१ द्वापार्य एक अर्ध
 मत्तास्वरूप ३५ वर्तमान काल में
 १७४ विद्रोही और मरक का
 अस्तित्व २९४ व्यष्टि २४ सर्व
 श्रेष्ठ ११७ साधारण १९८
 सीमा से ऊपर ५८ स्वभाव से
 मुक्त १८४ स्वरूप ११
 अनुपपन्न और देवत्व १८१ ९२
 'मनुष्यी वा स्वामी' ३३४
 भगवित्ज्ञान २३
 मर्णावृत्ति और विचार ५७ और
 मर्णावृत्तियाँ ३४
 अन्दर और बाहर ६-अभिज्ञ २७४
 मरीचिका और मान ३६ और मय
 ३६
 मरेनिया उगता वाग्य ३६०
 मरिचक मय हृदय १६ और बुद्धि
 २७ और लीला ८

महाज्ञान उसकी विपासा ७३
 महात्मा उसकी पीढ़ी और नियम
 २४८-चरित्र ५८
 महापुरुष ७५ अनुभव के माध्यम
 २४७ उनके गुण और सुख अनु
 १४ और जानकारी ७१
 कस्याम के प्रेरक २४१ तथा
 पशुमार २४ ४१ प्राचीन और
 वैदिक दर्शन ७१
 महाशक्ति उसकी अभिव्यक्ति २२
 'महामेसा' ३७१
 महावीर ७९
 महिन ३५३
 महिला-कल्प ३४८
 महत्सत्त्व न्यायरत्न ३८
 माता ज्यमना गुलाम ७५
 माणव ३८८
 मान और मय १६१
 'मानव-कल्पन' ३३
 'मानव का अधिकार' २५८
 मानव-जन्म बहुभूत अबसर २८
 बहुभूत स्विति २८ महान् केन्द्र
 २८-मनु २८४
 मानवता उसका स्वरूप २९८ उसका
 विशिष्ट भाग २८
 मानवार्थता २९९ ईश्वर का अर्थ मान
 १२९ उसका उपभोग्य ५५
 पूजा के लिए सर्वश्रेष्ठ मंदिर १४२
 मानवी भाषा और लक्ष ६
 मानवीय अज्ञानता २८३
 मानसिक चिन्तितक ३८७
 माया ८३ ४ ५२ ५९ ६६-७ ७३
 ८०-१ ८३ ४ ९ १ १३७
 १४ १५१ १५३ उसका साधा
 रण भाव ३७ उसका स्वामी ३७
 उनही धारणा ६ उगती परि
 भाषा ५ उगती व्याख्या ५२
 ५७ उगते अर्थान ५५ उगते
 भाग ७७ उगते ज्ञानर व्यस्त
 ७६ उगते न वेग न बयी ४०

उसमे मनुष्य-जन्म और जीवन ६६, ७७, उसमे। अतीत आत्मा ७८, १८४, उसे ही प्रकृति समझी ४४, और आसक्ति ४७, और इन्द्रिय ७४, और इन्द्रिय-सुख ७६, और जड का अनुकरण ७४, और नारद ७६, और प्रकृति के गुलाम ७४, और प्रेम ७५, और बन्धन ४८, और मृत्यु ४९, तत्त्व ४३, त्रिगुणमयी ७८, देश-काल, उसके भीतर १३५, द्वारा व्यक्ति-सृजन तथा पार्थक्य बोध ३१, -प्रपञ्च ८३, 'भ्रम' नहीं ६०, महेश्वर ४४, वाद ४३-४, ५०, ५५, ६२, १८१, वाद, यथार्थ ४३, वादी, उसका कथन १८३, विशेष सिद्धान्त नहीं ६०, विषयक धारणा ४३, ससार का तथ्यात्मक कथन ६०, ससार की वस्तु-स्थिति का वर्णन मात्र ५२

मार ७९

मार्ग, वास्तविक १५४, सच्चा, अत्यन्त कठिन १४४

मार्स (मंगल) देवता ४८ (पा० टि०)

मासाचुसेट्स ३३९ (पा० टि०)

मित्र, हरिपद ३१४

मिथ्या और पाखण्ड ७८

मिनियापोलिस ३१३

मिल्स कम्पनी ३८७

मिल्स, श्रीमती ३८६, ३९१

मिशनरी ३८१, लोग ३५५, ३६४, ३७५, ३८०

मिशिगन एवेन्यू ३०७, भाषण ३३०

मिस्त्र ६, १९१, २३०, वासी १९१-९२

मुक्त पुरुष, उसका स्वरूप ८०

मुक्ति ३७, ८२, २१०, २३४, २५७, २९४-९५, ३६९, आत्मा का जन्म-गत स्वभाव ३७, आत्मा की अन्त-रात्मा ८३, ईश्वरस्वरूप २९६,

उसका अनुसन्धान २९६, उसका अर्थ १८४, उसका उपदेश ७९, उसका उपाय २९८, उमका पथ ३०१, उसका भाव ८२, उसका मार्ग ३५२, उसका मार्ग नैतिकता ९५, उसकी अदम्य आकांक्षा २९७, उमकी धारणा ९७, २९६, उसकी प्राप्ति २७, उसकी भावना ८०, उसके लिए सघर्ष और व्यक्ति २२१, और ईश्वर ५७, और उज्ज्वल अग्नि २९६, और ज्ञान २९६, और भक्ति ३६३, और स्वाधीनता २९६, तत्त्व २९८, मनुष्य का व्येय २६१, मनुष्य मे सदैव वर्तमान २९६, -लाभ २६-७, २९४, २९९, लाभ और प्रकृति पर आधिपत्य २९६, सुख-दुःख का अतिक्रमण २९८, ही यथार्थ स्वाधीनता २९६ मुण्डकोपनिषद् २९९ (पा० टि०) मुदालियर, सिंगारावेलू ३२५ (देखिए किडी)

मसलमान १६७, १८३, २०३, २४०, २४९, २५८, २७८-७९, ३३८, ३६५, सिपाही १७

मुहम्मद १८३, २५८, ३००, ३३८, ३६६

मूर्ति-पूजा ३२३, ३३६, ३६५

मूसा ७, २४१

मृत्यु, उसका रहस्य १५९ (पा० टि०),

उसकी महिमा ४८, और जीवन

१२९, प्रकृत सत्ता की अमिव्यक्ति

१८२, -मय १३, रूपी तथ्य ४७,

सबका लक्ष्य ४७, -हीन जीवन ५३

मेरी हेल, कुमारी ३३३, ३४१, ३८४-८५

'मैं' १४-५, ३०, १७६-७७, २१३,

२८९, २९१

'मैं और मेरा' २०७

'मैं नहीं तू' १९५

'मैं-पन' १२७

'मैं वही हूँ' २६०

मैकड्यूबेक कीमती ३३२
 मैक्स मूकर २ २ ३१३
 मैत्रिक मैन्टर्न ३५७
 मैडिसन ३१३
 'मैडोना' २३१
 मैथेयी ३३१
 मैसूर ३४३ ३६८ ३७१ ३७४ ३८२
 ३९३ ३९५
 मोक्ष २ ६-७ २३४ उसकी परिभाषा
 २६८ प्राप्ति २ ७ २२
 मोमेरी की ३१३-१४
 म्ल १६१ ६२ उसकी शक्ति १६४
 और आकाश १४ कर्षी १६१
 कार्य १६३ सर्वोच्च ज्ञान १६३
 मन्वार्थदात्र ४४
 मम १६२, १६४ ६६, १७ १७२
 (केलिए मम देवता)
 मम देवता १६२ पितर के सासनकर्ता
 १६२
 मसम्प्राप्ति २ ६
 मङ्गली ५, १६३ २३१ २४९, २७९,
 २९३ उसकी परम्परा २३१
 उसकी विशेषता २३७ और ईसाई
 १९४ प्राचीन ६१ लोभ २२९
 मुद्दोजब उसमें मरना भयस्कर ७९
 मुक्तिदिठ राजा ४१
 मूलान २३ २६४ (केलिए श्रीक)
 मूलानी भाषा ३ ८
 'मुनिवर्षक टूक' ३८६
 यूरोप ८७ ९४ २ ४ २३१ ३१०-१२
 ३६१ उसका उच्चारण बुद्धि
 पत्रक बर्म पर ९४ वहाँ बर्ष कुठि
 सकीर्ष ७
 यूरोपियन विदेशी ३४
 यूरोपीय जाति ९५ शार्पनिक ११५
 राजपरिवार ३७१ लीग ३१
 २५९ वैज्ञानिक आधुनिक ४५
 योगदान १४३ राज १४३
 योगी १४३ मुक्तपुरुष १ ५

योगिक पदार्थ समका शत्रु १२९
 नियम के राज्य के अन्तर्गत १२९
 रसायनशास्त्र १६६ २४३ २४७
 २६५ २७५, २७८ और प्रकृति
 पुस्तक २५१ नेता १६६
 रसायनशास्त्री २४७ २७५, २८१
 रहस्यवादी २५१ (केलिए अतीन्द्रिय
 वादी)
 राइट के एक ३८१ का ३ ८
 प्रोफेसर ३४५ ४६ ३९१
 राजा ३६२ (केलिए ब्रह्मानन्द स्वामी)
 राजपूताना ३४१ ३५६
 राजप्रासाद ४७
 राजयोग १४३
 राजा साहब (रामनाथ) ३८२
 राम ३२९
 रामहृष्य ३२६ ३२९, ३४८ ३६
 ३६३ ईश्वर के अकार ३६
 उनका जीवन और उपदेश ३२६
 उनका महत्त्व ३६१ उनकी विशेष
 कता ३६ -जन्मोत्सव ३४९
 परमईस ३२२, ३५९, ३७७
 भयवान् ३३४ (पा टि)
 समन्वयपूर्ण जीवन ३२६
 रामकृष्णानन्द स्वामी ३३४ (केलिए
 कवि)
 रामक्याक भाबू ३६२
 रामनाथ ३१२, ३४३ ३८२
 रामपार्टी रो ३९३
 राममोहन राम ३११
 रामायण ३७२
 राज बहादुर नरसिंहाचारियर ३७१
 राष्ट्र उसका बनी होना अन्य की कति
 २६३ उसकी भावी कति ३२१
 उसकी महानता के लिए तीन
 आवश्यक बातें ३२४ पवित्रनी
 ३२५ भारतीय उसके उच्चारण का
 उपाय ३२५ भारतीय शोधनी में
 बसा ३२१ हिन्दू ३२४

राष्ट्रीय जीवन ३१८, मृत्यु २६१
रामायनिक द्रव्य ३२१, सामग्री ३६५,
३६९

'रिव्यू ऑफ रिव्यूज़' ३४५

रिस डेविड्स ३१३

रीति-रिवाज ५६, ३२९, ३८३

रूप ९१, -आकृति १२५,

और आकार २०४

रूपक-कथा और प्रतीक २२९

रेवरेण्ड आर० ए० ह्यूम ३३९ (पा०-
टि०)

रोटी, रुपया और वस्त्र २६९

रोमन २३१, कैथोलिक २८९

लका ३१३

लदन ७३, ८५, १५९, ३१३, ३७६

(देखिए लन्दन)

लन्दन ३, ४३, १३३, १४८, १७८, १९१

'ललितविस्तर' ४७

लाग हाउस फार्म ३३१

लीन ३३१, ३४६, क्लब ३४१

लीम एबॉट ३४७

लेपेल, सर ३४५

लोकाचार १९७

'लोकायत दर्शन' ९३

'वयोवृद्ध बालक-सघ' ३३०

वरुण १३४

वर्ण-व्यवस्था ३११

वस्तु, अचल २४, अनन्त काल से १०४,

अपरिणामी २९, इन्द्रिय विषयक

१९८, उसका आदि और अन्त

१०१, उसका आभ्यन्तरिक सत्य

१५८, उसका मर्म १४५, उसका

वास्तविक स्वरूप १३३, उसकी

उत्पत्ति देश-काल मे १३५,

उसके अन्तराल मे एकत्व भाव

१२३, १५७, उसके दो विभिन्न

रूप १३५, उसके मर्म की खोज

१४५, उसके स्वरूप की व्याख्या

१३१, उसमे ईश्वर-बुद्धि १५४,

उससे आत्मा, पृथक् २३९,

एकता की ओर २३९, एक ही,

दुःख-सुख का कारण १३५, और

अज्ञानी प्राणी २३९, और ज्ञान-

लाभ १४, काम्य ५५, १३३,

चलनशील २४, जड १११,

जीवित २९२, तथा नियम १३०,

तरंग की भाँति १०४, दृश्य ३०,

नाम-रूपयुक्त १२३, परमाणु

की सहति मात्र १०, परमाणु के

समवायविशेष १२५, प्रकृति २८२,

सयोगजनित और पाप २४४,

समानधर्मी २८०, सर्वव्यापी एक

३०, ससीम १२, सासारिक २८९,

स्थिर २४

वाद्य संगीत २२८

वाल्डोर्फ ३४६, होटल ३४६

वाशिंगटन एवेन्यू ३८३

वासना, उसकी शक्ति १७५, उससे

दुःख १७४, उसे पूर्ण करने की

शक्ति १७४, -त्याग, उसका क्या

अर्थ १५१-५२, सासारिक १५३

विकास ५४, उसका सार २८२,

उसकी पहली शतें ६९

विकासवाद २८४, उसका सिद्धान्त

२८२ (देखिए क्रमविकासवाद)

विचार, असत् १२१, और कार्य ३२०,

और काल ११२, और जड पदार्थ

२८३, कार्य-प्रवृत्ति का नियामक

१५६, दार्शनिक १३४, १८६,

धर्म विषयक २५५, नया २१०,

परिवर्तनशील २५५, मानवीय

भावात्मक ३२४, -शक्ति २४१,

शक्ति, उससे आकाश और प्राण की

उत्पत्ति २२, सत् १२१, -सागर

२८३

विज्ञान, आधुनिक २२, ४४, ९५, २८३,

उसका अध्यापक ९५, और अध्या-

त्म-तत्त्व १४६, और कविता ९४,

और धर्म १४ वर्षा १४५
 जगत् २८४ मौक्तिक २२ - भाव
 ४४ - काशी १६६
 विस्त-मोह १६५
 विद्या अपरा २७७ वान ३३८
 विद्युत्सोक २६
 विद्यार्थी ३ ८
 विद्यवा-संगठन ३६६
 विधि-निषेध सामाजिक ३८६
 विविधता उत्तमै एकता २७५ और
 प्रकृति ८४
 विवेकानन्द ३ ७-८, ३१ ३१२
 ३१४ ३१७ ३१९ ३२१ ३३
 ३४ ३६९, ३४ (पा टि)
 ३४१ ४२, ३४४ ३४६ ४८,
 ३५१ ५५, ३५८-५९ ३६३ ३६८
 ३७१-७२ ३७४ ३७८-७९ ३८४-
 ८५, ३९०-९२, ३९६
 विविधार्थ २ ८ - काशी २ ९
 २१५ सम्प्रदाय २ ८
 विषेपाधिकार ७
 विद्वान् उत्सका अस्तित्व २३९ उत्सका
 इतिहास २७१ उत्सका उपकार
 २६९ उत्सका प्रयोजन २६७
 उत्सका समष्टिक्रम अक्षर २८८
 उत्सके मूल में मधीम की भाषना
 २६३ उत्समें ब्रह्म सत्य २१६
 और अस्तित्व का ब्यपत्त २६७
 -कविता १५३ -कविता २१३
 न अक्षर न बुरा २६७ प्रपञ्च
 २९९ ब्रह्माण्ड ३७ ३ १ ब्रह्मा
 ण्डस्वरूप ३७ मौक्तिक तथा वेदान्त
 २३९ -महाभारत ३८३
 विरवात्मा २९ ९१
 विश्वास उमन मुनि ३२५ और
 अन्तर्दृष्टि ३२५ और यज्ञा ३५७
 विषय ८ अनुभूति २३ इन्द्रियार्थी
 १९४ उत्सकी अर्थमिता १९९
 ज्ञान की प्रक्रिया ११ भाग ३
 १३७ १६ - १७ १७३ -मौय

वासना १७४ -सविदना ११०
 -सुख १७६
 विषयी और ब्रह्म १२
 'विषयीकरण' ८८
 'विषयीकृत' ८८ ९
 वीरबन्धु गौरी ३ ९
 बुन्दानाम ३७४
 वेद ४३-४ ६३ ४ १२३ ३४ १४२,
 १७ १७२ १७७ १८१ २३५,
 २३८ २४३ २५६ २५९, २७७
 ३२३ ३२९ जनकी शोषणा २५९
 जनकी चरम शिक्षा २१४ उत्सका
 अल्पमन १७८ उत्सका चरम रहस्य
 ३२७ उत्सका प्राचीन माग १६३
 उत्सका ब्राह्मण माग १४२ उत्सका
 महत्त्व १७२ उत्सका संहिता नाम
 १६२ उत्सकी विज्ञाना आत्मा से
 २६७ उत्समें ईश्वर संबंधी ज्ञान
 २ ३ उत्समें की महिमा १७
 उत्सक महान् शिक्षा २४२ ऋषि
 द्वारा रचित १९४ द्वारा जगत्
 सृष्टि १७२ पवित्र और विज्ञान
 ३६९ बुद्धिसंगत संस २५९
 विभिन्न अर्थों में प्रतिपादित २५९
 -वेदान्त ३६ शाश्वत २ ३
 २४२ शाश्वत आप्त वाक्य २ ३
 समस्त ज्ञान का केन्द्र १७२ समस्त
 ज्ञान की समष्टि २५९
 वेदान्त ४३ ४ ५३ ६ ६६, ८९-७
 ८९, ९३-४ १३९ ४ १४८-५
 १५२, १५७ १६७ १७९ १७९,
 १८२ १८८, २१२ २१४ २३९,
 २४८ ४९, २५७-५८ २८२, २८८,
 २९३ ३५५ अद्वैत ८५, १८७
 २१७ उत्सका आपारिक विज्ञान
 ६ उत्सका आत्म्य ८१ उत्सका
 उद्देश्य ६१ उत्सका कथन १३७
 १३९, १४२, १४७, १५३-५४
 १९ २४६ उत्सका कर्तव्य ३१
 ८ उत्सका शेष २६१ उत्सका

दृष्टिकोण ५७, उसका पहला कार्य १३८, उसका पहला सिद्धान्त २४७, उसका प्रारम्भ १५१, उसका मत १७०-७१, १८६, उसका मूल १६८, उसका सिद्धान्त २४६, उसकी भाषा ५७, उसकी शिक्षा ८३, १३९, १५०, उसके ईश्वर विषयक विचार २९६, उसमें, वैराग्य का अर्थ १५०, उसमें सिद्धान्त जीवित २४०, और अद्वैत ६०, तथा प्राच्य दर्शन और धर्म १४४, दर्शन २७, ५२, ७१, २५९, दर्शन, असली २०८, दर्शन और वाद ५२, दर्शन का आदि-अन्त २२१, दर्शन का उद्देश्य २१, दर्शन पर तीन व्याख्यान २०२-३, -धर्म ६८, २८४, धर्म की तीन अवस्थाएँ २४०, मत २५, ३६, ५९, -वादी ४५, व्यक्ति पर आधारित नहीं २४०, सभी धर्मों में सर्वाधिक साहसी ६८

वेदान्ती १४८, १६७, २१४, उनका मत तथा मान्यता २०३, उनके प्रमुख भेद २०३, उसका लक्ष्य ३६, द्वैतवादी २०४, मनीषी १८२, लोग १८३

वैज्ञानिक, आधुनिक ९३, ११६, तथा बाह्य पुस्तक २५१, सिद्धान्त, आधुनिक २१

वैदिक, दर्शन ४५, दार्शनिक ४५, भाषा १००, वाक्य, प्राचीन ९९, विचारक ४५, साहित्य ४३, साहित्य और प्राचीन आचार-व्यवहार १७९

वैराग्य और वैदिक नीति १६५, चूडान्त १५०

व्यक्ति, अज्ञानी १४४, अपने कष्ट का उत्तरदायी २३०, असाधु ३४, ३७२, अस्वस्थ ३५३, उनके गुरु तथा धर्म मन्त्री इच्छा २४९,

२-२८

उसका जन्मसिद्ध अधिकार २४४, उसका जीवन-दर्शन और विचार-स्वतन्त्रता २१५, उसका तत्त्वज्ञान १३२, उसका प्रभाव, सवेग पर २४१, उसका भेद, प्रकारगत ८२, उसकी दुःख-प्रतिकार की चेष्टा १४८, उसकी परख ६०, उसके अभ्यन्तर से धर्मोदय २६४, उसके कार्य और विचार की छाया २१७, उसके भीतर स्वर्ग-राज्य १५२, उसके लिए देश का स्वरूप अनजान ९०, और धार्मिक संस्कार २४८, और विचार-प्रभाव ३३, और विश्व की मूलभूत एकता २४९, और संयोग २४४, चिन्तनशील ११३, १८८, जगली १३६, ज्ञानी १७२, तथा राष्ट्र और व्यक्तिभाव ३३८, तीन तत्त्व से निर्मित २१६, दानी ८२, दिशाहीन ४७, धर्मान्ध ५६, ७१, धर्मार्थी २५१, धार्मिक १७४, धैर्यवान और न्याय-पथ ३५०, पवित्र ४०, पूर्ण और उनकी आकांक्षा में अन्तर २२३, पूर्ण, जीवन्मुक्त के लिए ३२, प्रत्येक, एक एक अलग मन ३२, प्राच्य ३१०, भावुक २४८, महा-अवम १८२, विचारशील १०३, विभिन्न स्वभाववाले और साधना २४८, विशाल हृदय ९८, शुद्ध स्वभाव १८३, साधु ४०, ३७२, स्वभावतः मुक्त १८३ (देखिए मनुष्य)

व्यक्तित्व १२-३, १५, २९४, अनन्त १३, आपातप्रतीयमान १५, उसके अभाव का परिज्ञान २३९, -उमको प्राप्त करने के लिए संघर्ष १३, सुदृ ५३, -भाव १२, मामाजिक ३११

व्यष्टि भाव ९६, -मनुष्य २४

व्यापार, नैतिक जगत् का १६१, पार-

'शिकागो हेरल्ड' ३४३
 शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उसके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, बडी, भगवान् की २५२, -लाभ ३२०, सामना करने की २९८
 शिव १८९-९०, और महत् १९९
 शिवनाथ शास्त्री, पंडित ३५४
 शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)
 शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)
 शिवोऽह १३१, १८६, १९०, ३८८
 शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य बराबर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नहीं ५३, कर्म २७, ५६, -देवता १३८
 शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नहीं १०४
 शून्यवादी ४-५
 शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३
 शैलोपदेश १६७, २७९
 श्रद्धा, बौद्धिक ९३
 श्रवण १८, -क्रिया १०९
 श्रीघर ३०९
 श्री माताजी ३३९
 श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०, विषयक धारणा १७२
 श्रेय और प्रेय १६५
 श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३
 श्वेताश्वत्थरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७
 सक्क और प्रलोभन १५५

सगठन, उसका राज ३८२
 सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०
 मत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९
 सन्यास ३३३, ३५४
 सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सम्राट् १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, मन्चा ३५४
 सयम, उसकी भावना और ममाज ६४
 सयमी पुरुष १३६, ३७२
 सयोजक (adhesive) १०१
 सवेग, उसका सबध बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१
 सवेदक नाडी १२७
 सशयवादी २७१, २७३
 ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका बन्वन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिभाषा ६६, उसके सभी मतों में सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमें प्रतिद्वन्द्विता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, -क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा में २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२, ६२, मापेक्ष २८८, मुख और आराम का उपासक २९८, मुख-दुःख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)
 'समार माया है' ४४
 सम्कार २१७, २१९, उसकी व्याख्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

मायिक और धर्म १६६ बुद्धि राज्य
का १६१ मनोब्रम्ह का १६१
व्यास ३३७
व्याससूत्र ३२९
वसु-वासुदेव १६१

संकर ९८ (देखिए संकराचार्य)
संकराचार्य ९४ मगवान् ४४
शक्ति आकार एवं भौतिक द्रव्य २१६
मान्तरिक उसकी प्रेरणा २५६
इच्छा १२४ उसका पुनारी ३१५
उसकी अभिव्यक्ति १ उसकी
उपासना ३६१ उसकी कृपा ३६१
उसकी व्याख्या ९ और आध्यात्मिक
आदर्श १९९ और ज्ञान २६ और
मृत ३५ और महिमा ३ ३
और शरीर ९ क्रियाशील २९
गुरुवाकर्षण ७४ चिन्तन ८९,
१२७ जगत्समी सर्वव्यापी १२९
जागतिक १ ७ ज्ञानस्वरूप १२
तथा नीतिपरायण ६४ बुद्ध की
और बुद्ध-भोग की ५२ शाय सक्ति
प्राप्ति १ ५ शारा संसार का उद्धार
३६१ जर्म की १९१ प्रतिस्त्रिया
१२७ प्राकृतिक १९१ भौतिक
१२७ मानसिक और उपचार
३८६ विचार २२ १२७ शास्त्र
२५३ ३२५ शिवात्मक २ १
सुप्त एवं असुप्त ५४ संज्ञिति १२४
शरीर ५, ८ २४ ३४ ३८ ६२ ६६
७६ ९१ १ ७ ११६ ११८
१२६ १३४ १५६ १६२, १७१
१८४ ८५, १९२ ३ २ ४ २२२
आत्मा का आवरण २१६ आध्या-
त्मिक ११ उसका अन्त होने पर
१ ८ उसका कर्म ११७ उसका
संकाशक मूल से ११२ उसका
राज्य ११ उसकी शक्ति ८६
उसकी रसा १६ उसकी रश्मिशी
१२७ उसमें उदय और अवनति

११ एक अर्थ में नित्य रूप १२५
एक परिणाम ८५ और आत्मा
२२९ और इच्छा ८३ और मन
२४-५, २८ ३० २१७-१८ और
मन का संबन्ध ११ और मन
परिचर्तनशील ११ और विचार
२८७ और सक्ति ९ और सिद्धांत
२१ कभी आत्मा नहीं १२७
-मठन ११९ चतन योगिक नहीं
२१९ ज्ञान-प्रकाश करने में असमर्थ
१२८ ज्योतिर्मय १ नरकर
२२८ परिवर्तित पर आत्मा नहीं
२२१ पूर्व कर्म जमीन ३६
मन का द्वितीय नहीं २३८ मन में
बिभीन २३८ मनस्य प्राप्ति ३५
मृत १९२ रसा १५१ रश्मि
१७२ वैज्ञानिक १२७ सतत
परिणामशील जड़ प्रकाश २८
सूक्ष्म २५ ६, ११ ११२, ११९,
१३ सूक्ष्म और संस्कार २५
स्थूल २३ ११ ११२, ११९,
१२९ स्वप्रकाश नहीं १११

(देखिए देह)

धर्मन श्रीमती ३४१
धर्मि ३३४ ३४५, ३६२ ६३
(देखिए रामकृष्णानन्द)
धर्मि सत्याक ३४८
शक्ति उसका अर्थ ३१५
सापेक्षज्ञान ८६
शास्त्र उसका तात्पर्य २४२
शास्त्र और पुराण ५
शास्त्री सिद्धान्त पंडित ३५४
शिकागो ३ ७-९ ३१३ १४ ३१९,
३२२, ३२५, ३३२, ३३४ ३५,
३४२-४३ ३४६ ४७ ३५२-५४
३६४ ३६८, ३७१-७२, ३७४
३७७ ३८३ ३८६ ३९
'शिकागो इन्टीरिगर ३४४
शिकागो इन्सिमागोस ३४३
'शिकागो हिंडोल' ५२२

'शिकागो हेरल्ड' ३४३
 शिक्षा, उसका अर्थ ३२८, उसका फल ६३, उसके अवगुण २०, उसके प्रसार की आवश्यकता ३६६, एव धर्म ३२२, और गरीबी ३७०, और सगठन ३७०, -प्रणाली १८९, बडी, भगवान् की २५२, -लाम ३२०, सामना करने की २९८
 शिव १८९-९०, और महत् १९९
 शिवनाथ शास्त्री, पंडित ३५४
 शिवमहिम्नस्तोत्र ३१८ (पा० टि०)
 शिवानन्द, स्वामी ३५९ (देखिए तारक दादा)
 शिवोद्द १३१, १८६, १९०, ३८८
 शुभ ४७, ५२, १३७, -अशुभ, विश्व के अग २८६, उसका परिणाम ५१, उसका साधन ४६, उसकी मनोज्ञता २६५, और अशुभ २७, ३८, ५१-४, १७१, २०६, २८५-८६, २९०, और अशुभ का मूल्य बराबर ५७, और अशुभ पृथक् सत्ता नहीं ५३, कर्म २७, ५६, -द्वेषता १३८
 शून्य, उससे वस्तु की उत्पत्ति नहीं १०४
 शून्यवादी ४-५
 शैतान ३३, १५५, १८१, १८९, २०५, और धर्म १८७, जगत् ३३
 शैलोपदेश १६७, २७९
 श्रद्धा, बौद्धिक ९३
 श्रवण १८, -क्रिया १०९
 श्रीघर ३०९
 श्री माताजी ३३९
 श्रुति, ग्रन्थ २३५, वाक्य १४०, विषयक चारणा १७२
 श्रेय और प्रेय १६५
 श्रेष्ठ पुरुष, उनकी पूजा २९३
 श्वेताश्वतरोपनिषद् ४४, ५८ (पा० टि०), १०७ (पा० टि०), २८४ (पा० टि०), ३३७
 सकट और प्रलोभन १५५

सगठन, उसका राज ३८२
 सघर्ष २२०, शाश्वत, उसकी अभिव्यक्ति २२०
 मत, उनका जीवन-चरित्र और साधना २४८, और आन्तरिक पुस्तक, २५१, और द्रष्टा २४९, पॉल ३००, महात्मा २८९
 सन्यास ३३३, ३५४
 सन्यासी ९३, १८८, ३३८, ३५२, ३९५, और महात्मा १७, और सभा १०८, नि स्वार्थ परोपकारी ३३८, सच्चा ३५४
 सयम, उसकी भावना और समाज ६४
 सयमी पुरुष १३६, ३७२
 सयोजक (adhesive) १०१
 सवेग, उसका सबध बुद्धि से अधिक इन्द्रिय से २४१, और व्यक्तित्व २४१
 सवेदक नाडी १२७
 सहायवादी २७१, २७३
 ससार, इन्द्रिय, बुद्धि और युक्ति का २६३, उसका तथ्यात्मक कथन ६०, उसका बन्धन ५५, उसका शाब्दिक अर्थ २२०, उसकी परिभाषा ६६, उनके सभी मतों में सर्वनिष्ठ भाव १८१, उसमें प्रतिद्वंद्विता १७६, और धर्म ७९, और प्रयोजन का अर्थ ८१, और स्वर्ग २११, -क्षेत्र १५५, चमत्कार की आशा में २९३, -त्याग २२१, न अच्छा, न बुरा २६७, परिदृश्यमान १४६, भयावह ३३३, -वृक्ष १४२, व्यावहारिक स्तर पर १७५, शुभ और अशुभ ५२, ६२, मापेक्ष २८८, मुख और आराम का उपासक २९८, मुख-दुःख का मिश्रण ५३ (देखिए जगत्)
 'मनार माया है' ४४
 मन्वार २१७, २१९, उनकी ध्यात्या २५-६, और पुनर्जन्मवाद ११५,

और शक्ति का समवेत फल २६
 पूर्व उसका अतिशय प्रभाव १७३
 पूर्व और प्राचीन ११५ मौक्तिक
 ११७ मन का ११७ मन में ही
 वास ११८ मानव-स्वभावमुत्थम
 २९४ मामिक ११७
 संस्कृत उसके प्राचीन ग्रन्थ ६३ माया
 १ १२८
 संज्ञित-शक्ति (adhesion) १२४
 संज्ञिता ६ श्रुति ११२
 सकाम भाव २६
 सकेटिस २६४ २७२ और बाह्य २६४
 सच्चिदानन्द-सामर २८४
 सत्वगुण ५
 सती स्त्री १३६
 सतीत्व वापि की जीवनी शक्ति ५६
 धर्म ५५
 सत् १८, ४६ ५३ ९९ १ ५, २८ २८२
 ३ २ अमूर्त १९५ और अज्ञान
 १८२ और असत् १६८ कर्म
 ३२४ कर्म उसका मूल आधार १५
 कर्म उसके फल का भोग २७
 कल्पना तथा शून्य चिन्तन ३८९
 कार्य २७ १२१ परार्थ २५५
 -विचार १२१ साव्यत २८५
 स्वल्प ईश्वर २८५
 मन्-चित् आनन्द १८२
 सत्ता अपरिणामी २९, ३५ अपरिमेय
 २ ९ २११ अनीम ५४ ईश्वर
 शीघ्र १ ९ केवल एक ३१
 जबरानीत ३ निरपेक्ष ५४ निर्गुण
 तथा मगुण १९५ पारमार्थिक
 १२ प्रहृष्ट १८२ मादक २११
 मार्गमार्थिक उसकी विवेचना ९५
 मध्य आम्बलरिफ ६ ईश्वर का
 महान् नाम २५३ उच्यते १७
 ७७ ४ उसका नाशान्तर और
 उदर ३८ उग्रास्त्र २१३
 उमर्गी उमर्गी ३५ उमर्गी का
 ५ उमर्गी शीघ्र और मानवता

२७ उसकी जानकारी १८ १४९,
 २१३ उसकी जीवन में परिधि
 २ उसकी प्रत्यक्षानुमति २४४
 उसकी महत्ता और समान १६
 उसकी शिखा १८८ उसके व्यक्त
 का साक्ष्य १८ उसके सामन की
 विधि २३८ और अज्ञान १५२
 और प्राचीन श्रुति ९४ और
 मरीचिका ३६ और मिथ्या-मिथ्य
 का प्रश्न ६६ मात ७१ तथा
 उच्चतर भावर्स ६५ द्वारा बल-
 प्राप्ति ६५, १८८ निरपेक्ष ५१
 प्रेरणावाचक २६२ भयव्यपत्ति
 का फल २५३ महान् ४२ मयाई
 ११ समाप्तन १९, १ ९ सर्वोच्च
 १७ ९७ सार्वभौमिक ५
 स्वाभाव, उसकी शक्ति में विरवास ३२४
 सनत्कुमार २७७
 सनत्तन धर्म ३४३ सत्य १५
 सम्प्रा-बन्धन ६
 सम्पत्ता एवं शिखा ३६४
 समर्पण १५
 सम-धर्मार्थम्भी ३८२
 समष्टि और आत्मा २४ भाव ९६
 मन और ईश्वर २४ -योग १२३
 सभाज उसकी प्रभुति १८ और धर्म
 ६८ वाह्य ३४३ व्यक्ति क समूह
 का नाम १९७ -सुधार ३२७
 ३५४ सुधारक ४९, ३६५
 सत्त्वती ३ ९, ३१७
 सत्-सुभा २९२
 सर्वेश्वरवादी ३२६
 सन्निवेश ईश्वर ७८८
 सनीम बस्तु १२
 महान् प्रेरणा ११६
 माह्यभुता उसकी आवश्यता ६४
 और लोचप्रिय मन ७१ और मंत्री
 धनी जोषधि ७१
 मारय ग्याय और मीमांसा २ ३ -वादी
 १२८

सुभाषा द्वीप ३९५
 सुरेश बामू ३६९ ३७४-७५, ३७८
 सुपुष्पा ७२ ७६ ७ ७९ ८१ ८८,
 १३९ उसकी स्थिति साधारण
 मनुष्य में ७५ ममी ७६ नाडी
 उस पर विजय पाना आवश्यक
 ७५ -मार्ग ७६
 मूत्रकार उसका कथन १३३
 सूर्य ८ १८ २ ४ १ ६२ ३ ६९
 ११ १३५, १६ १७२, २३३
 २३८ २४५-५ २९५, ४११
 मास्वर १८ -श्लोक २३३
 सत्यस्वरूप १७४
 सुम सिद्धास्त ३४२
 सृष्टि-उत्पादक ९ उत्पादन-शक्ति
 २३३ उसका जर्ब ९ उसका न
 आदि न अस्त ८ उसका ईश्वर
 समर्पण मिली २५ उसका
 कारण २३९ २४८ उसकी आदि
 वस्तु १६८ उसकी कल्पना
 बाड़ी विधि २२९ उसकी
 योजना २९७ ३ ३ उसके आदि
 में आकाश ५८ उसके पूर्व
 प्रकृति १२६ १६६ -कल्प
 १३१ कल्प ३३ रचनाकार
 उसका सिद्धास्त ९५ व्यापार
 १२ समग्र उसका नित्य प्रभ
 १२९
 सन केयबषण्ड २९५
 समेटिक जाति २७३
 सैन फ्रांसिस्को २६२
 सैन बार्न कुमाठी ४ ८ भी ४ ८
 सैनिक कान्ध २९२ शासन २६२
 मसीठ २९२
 सैरा टाका ४ ८
 माम रत्न २१९, २४ -नता २४
 माझम् २३८ २५६
 मोनरि बुनि २२५
 सौर प्रया ६२ प्रदेश २३३
 स्नात-पायक २४४

स्त्री उसका मुख्य धर्म ३९१ -जीवन
 उसका महान् उद्देश्य ३१२
 स्नान-पूजा और साधना ५६
 स्नायनिक प्रवाह १९६ -शक्ति
 प्रवाह १९६
 स्नायु, उसके भीतर दो प्रकार के प्रवाह
 ७३ -केन्द्र ८३ -मुक्क-स्तम्भ
 ७५ ज्ञानारमक और कर्मरमक
 ७५ -तन्तु ७६ -प्रवाह ७५,
 ७९ -मत्र १६
 स्वयंन्य बलिबेतन ७ उच्चतर
 उसकी भूमि ७ उसके अलग
 अलग स्तर ७ -श्रेण ७
 स्वार्ण ३४१
 स्वयंवासे २८१ ३२२ बासी २८
 स्पेन्सर ३४५ उसका अन्वेष २८८
 हर्बर्ट ३२
 स्मरण और भक्ति १ २
 स्मृति ३३९ उसका जर्ब १४
 उसकी परिभाषा १२२ २१ एक
 प्रकार की वृत्ति १२२ और विवरण-
 मुख्य समाधि १४५ और संस्कार
 २१
 स्वतन्त्रता माध्यमिक और हिन्दू
 २८६ राजनीतिक और मूनामी
 २८६ सामाजिक २८६
 स्वयं मनुभूतिक्य ७६ उसकी
 परिभाषा १२२
 'स्वयंशक्तियों' २८४
 स्वयंवासे १६२ और सत्य का
 ध्यान १६३
 स्वभाष राष्ट्रीय और विश्वध्यायी ३ ३
 स्वयंशक्तिय कर्त्र ७५
 स्वर्ग ५, १ ९, १६४ २ २ ९
 २३६ २३८ २७५ २९८
 ३७६ ३८७ ४ ८ मूर्तों का
 २८६ राज्य ४ ४ राज्य-वर्ष
 ९६ सत्य १ ५
 स्वानि-नशात्र ८९
 स्वाधिष्ठा १०

स्वाधीनता, उसकी रक्षा के प्रति
सतकंता ८६

स्वाध्याय १५१, १७६, सत्त्वशुद्धिकर,
उसका अर्थ १०२

स्वामी, अखण्डानन्द ३३१, ३५९,
३६६-६७, अभेदानन्द ३७२,
ज्ञानानन्द ३७८, प्रेमानन्द ३३८
(पा० टि०), विवेकानन्द ५
(पा० टि०), ३३ (पा० टि०),
२६२, २६३-६५, २६९, २७३,
३०६, ३२४, ३२५ (पा० टि०),
३३१ (पा० टि०), ३८७ (पा०
टि०), सदानन्द ३५८, सारदानन्द
३७७

स्वार्थ १९५, उसके हटाने पर ईश्वर
प्रविष्ट ३०१, उसमें सयम करने
से पुष्प का ज्ञान १९४, 'हर
मनुष्य में शैतान का अवतार ३०१
स्वेज नहर २८१

हजरत मुहम्मद २९७

हठधर्मिता ४

हठयोग ३६६, उसका उद्देश्य ४९

हठयोगी, उनका एकमात्र लक्ष्य ४९,

उनका दृढ सक्तप ४९

हतुमान २९५

हव्शी ३४१

'हमारे स्वर्गस्थ पिता' ३११

हम्प्री डेवी, सर ६३, उनका कथन ६३

हरवक्स ३८०

हरि ३९२

हरिदास विहारीदास देसाई ३८१-८३,

३८८-८९, ३९२

हरिद्वार ३३१-३२, ३४९

हरिपद ३९१, मित्र ३९४

हर्वर्ट स्पेन्सर ३२०

हाग काग ३९५-९७

हार्वर्ड और येल विश्वविद्यालय ३२१

हिंसा ४

हिगिन्सन, कर्नल ४१०

हिन्द महासागर २७८

हिन्दुस्तान २२ (देखिए भारतवर्ष)

हिन्दू ३, ६, १३, ८०, २४५-८६,

२०४, २५६, ३२१, ३२३-२४,

आदर्श, परमात्मा ३२३, आदर्श-

लीन, उनमें दृष्टि का अभाव २९०,

आधुनिक, उसके जीवन की केन्द्रीय

भावना ३२४, ईमानदार १०;

उसका कथन ३१३, ३१५, ३२३,

उसका गुण ३२३, उसका जीवन

२७०, उसका तर्क २७०, उसका

देश, साधु का ३१६, उसका

दृष्टिकोण ३२३, उसका मूलभूत

सिद्धान्त २९२, उसका लक्ष्य,

जगदतीत ३२३, उसका विश्वास

१०, २९९, उसकी आत्म-विज्ञान

में प्रगति २९०, उसकी आत्मा का

आतुर स्वभाव २७७, उसकी आरा-

धना और वाह्य प्रतीक १७,

उसकी दृष्टि १८, उसकी

दृष्टि में धर्म-जगत् १९, उसकी

धर्म-भावना १७, उसकी प्रवृत्ति

२७५, उसकी विशेषता २८३,

उसकी साधना-प्रणाली का लक्ष्य

१५; उसके धर्म की शिक्षा ३१८,

उसके धार्मिक विचार की रूप-रेखा

२०, उसके मन में 'स्त्री' शब्द

३०९, उसके लिए 'माता' शब्द

३११, उसमें सामाजिक प्रधानता

२७४, उसे अपने धर्म की आवश्यक-

कता २८३, उसे यिर्मूर्ति में विश्वास

२८१, ऋषि १४, एक विचित्र

व्यक्ति २७०, और ईसा का जीवन

२८४, और देवमूर्ति का उदाहरण

१६, और भाव का सबब, मूर्ति

से १७, कष्टुर ३८५, चतुर २८२,

चित्त २९०, जाति ७, जीवन,

उसकी बड़ी समस्या, कन्या ३१८,

जीवन और अन्व-विश्वास २५१,

तत्त्वज्ञान और दर्शन के अनुसार,

विद्वत् २४७ वर्तन ३ ६
 देश उसका विभिन्न रीति-रिवाज
 ३२ धर्म ७ १९९, २५४
 २८९ ३ ३४ ३८३ ४ १३
 धर्म सामुनिक ३ २ ३२५
 धर्म उसका धर्म २६१ धर्म
 उसका तत्त्व ३२५ (पा टि)
 धर्म उसका मूलभूत सिद्धान्त १४
 धर्म उसकी विशेषता २८७ धर्म
 उद्भूती सारभूत बातें २८७ धर्म
 उसके अनुसार समाज का आदर्श
 ३१९ धर्म उसके दो मान २३
 धर्म उसके संबंध में सत्य बात
 २८८ धर्म उससे तात्पर्य २३
 धर्म और बौद्ध धर्म २८८ ४ ३
 धर्म-ग्रन्थ उस पर आस्था आध
 र्भक्त २८३ धर्म वर्तमान और
 बुद्धधर्म ३ २ नाटक २८१
 गारी २४ ३२५ गारी उसके
 जीवन की केन्द्रीय भावना ३२३
 बालक ८ २७६ बाळिका ३२२
 मम २४६ मन उसकी विशेषता
 ५९ मनोविज्ञानशास्त्र उसकी
 गति २३ मतिष्क उसका मुकाब
 ३८४ माता ३११ रीति-रिवाज

३१७ सोम १९२ २४३ २६
 कस्ता २६५ विचार, उसका विषय
 ३१३ विषय ३२४ विज्ञान
 २६७ संस्थापनी २६७ २७७
 संस्कृति ३२१ सन्त उनका कथन
 २८३ समाजपरक ३१४ स्त्री
 ३२१ ३२४ २५ स्त्री-पुरुष
 उनका सामाजिक जीवन ३१९
 'हिन्दू ईसा' २८४
 हिन्दू उनका सिनाम पर्वत २८६
 हिमाक्ष्य १३ २९३ ३३६ ३७९,
 ४१ माखीय धर्म का २८६
 'हु' बीज का चिह्नन २२२
 हृदय-मग ४९
 हृषीकेश ३५३-५४ ३५९, ३६४ ३६८
 हेनेम २५३ ३६४
 हेनरी १९
 'हेनोबिज़म' २४३
 हेल्ड्स ३४१
 हेराबाब ३८२ ३८६
 हेमलेट ३८८
 हेरक बन्ध ९६
 हेटक मोरियेष्टल ३९४
 होम ३५५
 होमिओपैथिक चिकित्सा ३३५

.. स्वामी विवेकानन्द की यही अनुभूति है, जिसने उन्हें कर्मयोग का महान् प्रचारक सिद्ध किया, जो ज्ञान-भक्ति से अलग नहीं बरन् उन्हें अभिव्यक्त करने-वाला है। उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, मैदान, खेत आदि भगवान् के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य क्षेत्र हैं जैसे साधु की गुफ़ा या मन्दिर का महाद्वार। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता में कोई अन्तर नहीं है।

अपने गुरुदेव के जीवन और व्यक्तित्व में संक्षिप्त किन्तु सशक्त प्रतीक के समान जिस परिपूर्णता के दर्शन हुए थे उसकी व्याप्ति का अनुभव पाने के लिए कन्या-कुमारी से हिमालय तक समग्र भारत का भ्रमण करना, सर्वत्र साधु-सत, विद्वान् और साधारण लोगों से सम भाव से मिलना, सबसे शिक्षा ग्रहण करना और सबको उपदेश देना, सबके साथ जीवन बिताना और भारत के अतीत और वर्तमान का यथार्थ परिवय प्राप्त करना अनिवार्य था।

इस प्रकार विवेकानन्द की कृतियों का सगीत शास्त्र, गुरु तथा मातृभूमि—इन तीन स्वर-लहरियों से निर्मित हुआ है। उनके पास देने योग्य यही निधि थी। इन्हीं से उन्हें वे उपकरण मिले जिनसे विश्व-विकार को दूर करनेवाली आध्यात्मिक सम्पत्ति का परिपाक उन्होंने प्रस्तुत किया। १९ सितम्बर, १८९३ ई० से ४ जुलाई, १९०२ ई० तक कार्य की अल्पावधि में भारत ने अपनी तथा विश्व की संतति के पथ-प्रदर्शन के लिए उनके हाथों से जो एक दीप प्रज्वलित एव प्रतिष्ठित कराया उसके भीतर ये ही तीन दीपशिखाएं प्रोज्ज्वल हैं। इसमें से अनेक इसी प्रकाश और अपने पीछे छोड़ी गयी उनकी कृतियों के लिए उनको जन्म देनेवाली पुण्यभूमि को, तथा जिन अदृश्य शक्तियों ने उन्हें विश्व में भेजा, उनको धन्य कहते हैं और विश्वास करते हैं कि उनके महान् सन्देश की व्यापकता एव सार्थकता का मर्म जानने में हम असमर्थ रहे हैं।